क़ुरआन मजीद
की
इन्साइक्लोपीडिया

लेखक
प्रो. डॉ. मुहम्मद ज़ियाउर्रहमान आज़मी
मदीना मुनव्वरा
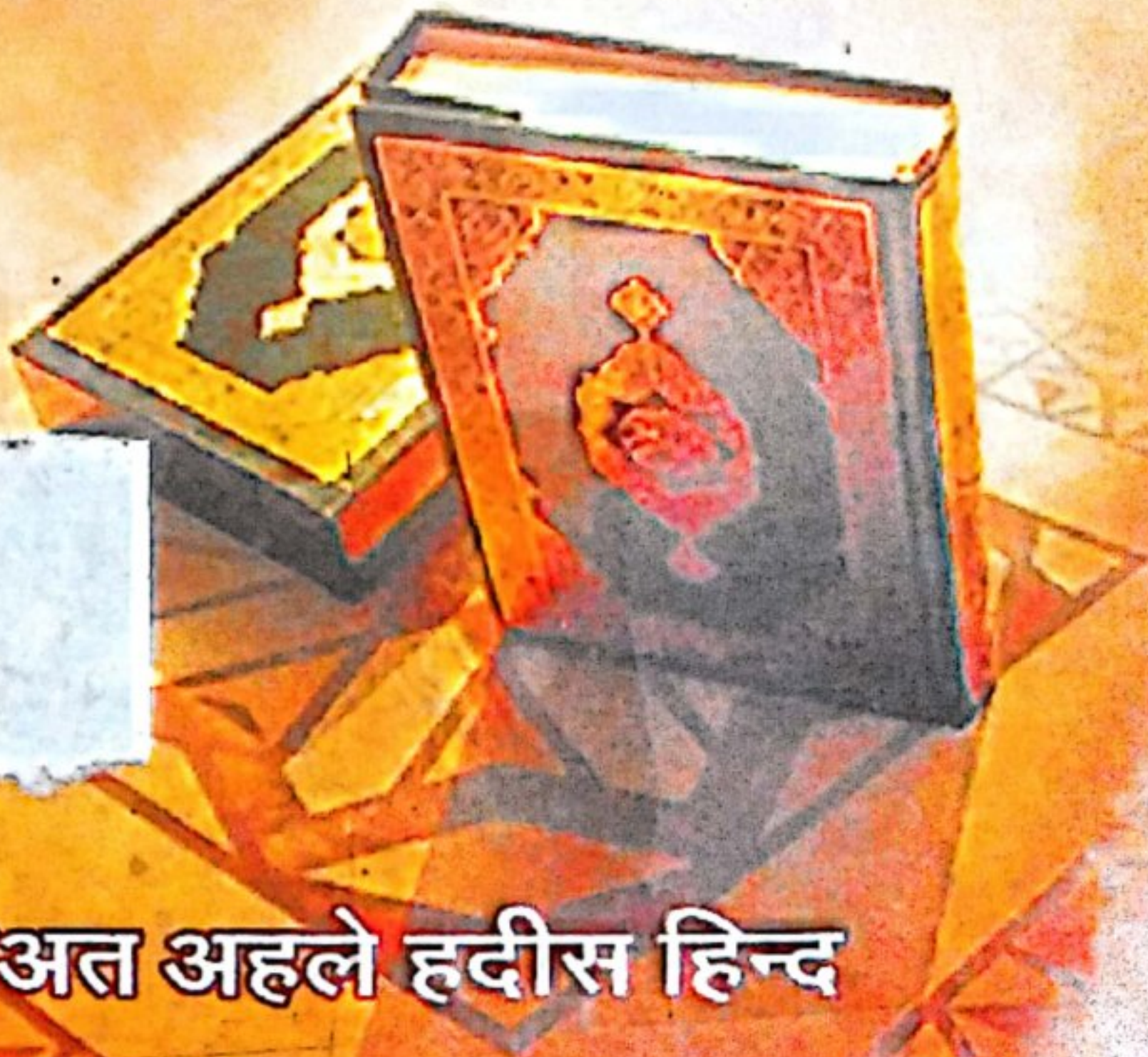
...जी जमीअत अहले हदीस हिन्द

पहले दो शब्द

अल्लाह तआला इन्सानों और दूसरी तमाम सृष्टि पर सब से अधिक दयावान है। पूरी दुनिया की पूरी सृष्टि मिल कर एक दूसरे पर जितनी मुहब्बत और करूणा निछावर करती है वह केवल एक हिस्सा है उन सौ हिस्सों में से जो अल्लाह अपने बन्दों पर करता है। इसी अथाह और असीमित कृपा की वजह से वह बिना भेदभाव अच्छे बुरे सब को अपनी विशेष नेमतों, पानी, हवा और आहार देता रहता है। वह जिस तरह से हमारे शारीरिक आवश्यकताओं को अपनी करूणा से पर्वान चढ़ाता है और दोस्त दुश्मन सब को देता है। आध्यात्मिक तौर पर भी उस ने इन्सानों के लिये अपनी सब से बड़ी नेमत, अपनी विशेष हिदायत और शिक्षा से प्रतिष्ठित किया है और इस के लिये उस ने अपने अन्तिम संदेष्ठा मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर कुरआन करीम की शकल में सब से बड़ी नेमत और दौलत दे दी है और लोक तथा प्रलोक में सफलता के लिये अपनी अन्तिम शिक्षायें अवतरित कर दिये हैं और बिना भेद भाव जिस तरह संसार की नेमतों को उस ने साधारण कर दिया है उसी तरह अपनी किताब और संदेष्ठा मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को भी सब के लिये करूणा तथा मार्गदर्शन का माध्यम बना कर भेजा है इस लिये इन्सानों के लिये यह किताब साधारण है और सब के लिये आवश्यक है कि इस किताब को अपने सृष्टिकर्ता, स्वामी और माबूद की किताब मान कर इसे पढ़े, समझे और इस के अनुसार अमल कर के लोक तथा प्रलोक में सफलता प्राप्त करे। दुनिया में शान्ति और मानवता तथा अल्लाह के बन्दों के अधिकारों की सुरक्षा और उन के साथ दया का बर्ताव करके दुनिया को शान्तिमय बना दे ताकि प्रलोक में उसे सफलता मिले और अल्लह के रोष और जहन्नम से बचे। यह कुरआन करीम अर्बी भाषा में अवतरित हुआ। अर्बी भाषा न जानने वालों के लिये इस्लामिक विश्वविद्यालय मदीना मुनव्वरा के महान स्कालर और हदीस तथा कुरआन के विशेषज्ञ डा० जियाउर्रहमान आजमी हफिजहुल्लाह ने कुरआन करीम की इन्साइकलोपेडिया तैयार की है। डा० साहब ने अनुभव की बुनियाद पर उन समस्याओं को सामने रख कर तौयार किया है जो एक साधारण पाठक, अर्बी भाषा न जानने वालों और गैर मुस्लिम भाइयों को पेश आती रहती हैं।

यह बात सम्माननीय लेखक डा० जियाउर्रहमान आजमी हफिजहुल्लाह से कई बार सुनी गयी कि "कुरआन को समझने के लिये हिन्दी इन्साइकलोपेडिया तैयार करना मेरा कर्तव्य भी है और मुझ पर कर्ज़ भी, जिसे मैं ने इस किताब की शकल में निभाने की भरपूर कोशिश की है। अब भारतीय मुसलमान भाइयों की जिम्मेदारी है कि इस किताब के प्रसारण का काम इतने बड़े स्तर पर करें कि अल्लाह के हर बन्दे तक पहुँच जाये, जो अल्लाह की इस नेमत

से वंचित है"।

इस किताब पर एक दृष्टि डालने से यह बात स्पष्ट हो गयी है कि किताब अत्यंत लाभदायक है और हिन्दी भाषा में कुरआन का अनुवाद पढ़ने वालों के लिये अतिआवश्यक है। मुझे आशा है कि इस किताब के माध्यम से हिन्दी भाषियों को कुरआन को समझने में सहायता मिलेगी और जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है उस से इन को राहत मिलेगी और कुरआन करीम जिस की शिक्षा ग्रहण करना और पठ करना सब पर फर्ज है, उस को समझने में सहायक साबित होगी। विशेषकर डाकटरों, वकीलों, इंजीनियरों, स्कालरों, बुद्धिजीवियों, शोधकर्ताओं और क्षात्रों को इस से बहुत ज्यादा रहनुमाई मिलेगी, इसी मकसद को सामने रख कर इस्लाम के सुप्रसिद्ध व्यक्ति डा० जियाउर्रहमान आजमी ने इसे तैयार किया है और दुनिया की एक महान प्रकाशन संस्था दारूस्सलाम ने इसे रियाज से प्रकाशित किया है। अब इन की लिखित अनुमति से मर्कजी जमीअत अहले हदीस को इस किताब के प्रकाशन का अवसर मिल रहा है। हिन्दुस्तान में इस का प्रकाशन सब से उचित स्थान है क्यों कि हिन्दी यहां की सरकारी भाषा है। मुझे आशा है कि इस से कुरआन को पढ़ने और समझने में मदद मिलेगी और अल्लाह कुरआन के सिलसिले में हम सब की इस कोशिश को कुबूल फरमाए।

अल्लाह तआला लेखक डा० आजमी हफिजहुल्लाह और मकतबा दारूस्सलाम के उत्तरदायी तथा कर्मचारियों और मर्कजी जमीअत के अमीर, उत्तरदायीयों, सदस्यों और तमाम सहयोगियों को अच्छा बदला दे जिन की सरपरस्ती के कारण हमें इस किताब को छापने का अवसर मिल रहा है। आशा है कि मर्कजी जमीअत के प्रकाशन प्रभाग मकतबा तर्जुमान की यह पहल पाठकों को पसन्द आयेगी और ज्ञानात्मक तथा धार्मिक जगत में इस की सराहना होगी।

असग़र अली इमाम महदी सलफी

महा सचिव

मर्कज़ी जमीअत अहले हदीस हिन्द

13 सितंबर 2010 ई०

3 शव्वाल 1431 हिजरी

प्रस्तावना

क़ुरआन मजीद अल्लाह का अन्तिम धर्म-शास्त्र है। जिसको उसने अपने अन्तिम रसूल मुहम्मद (ﷺ) पर उतारा, जिसमें सारे मनुष्यों के लिए हिदायत है। (देखिए : सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–185)

यह क़ुरआन अरबी भाषा में है। छ: हज़ार से अधिक भाष्यकारों ने विभिन्न शीर्षकों से अरबी भाषा में इस पर टीकाएँ लिखी हैं। ताकि उसके छिपे हुए हीरे-जवाहिर को उजागर किया जा सके। अब तक लगभग एक सौ बीस भाषाओं में इसका अनुवाद किया जा चुका है। कुछ दूसरे विद्वानों ने क़ुरआन के शब्दाक्षरों का "इन्डेक्स" भी तैयार किया है। इनमें मुहम्मद फ़ुवाद अब्दुल-बाक़ी का "इन्डेक्स" सबसे अधिक प्रसिद्ध है। एक फ़्रान्सीसी विद्वान "चोल लाबोम" ने क़ुरआन की आयतों को अठारह शीर्षकों में विभाजित किया, और एक दूसरे फ़्रान्सीसी विद्वान "अदवार मोन्ती" ने क़ुरआन के फ़्रान्सीसी अनुवाद के साथ क़ुरआन के शीर्षकों की अल्फ़ाबेटिकल (वर्णमालानुसार) विषय सूची भी तैयार की है अर्थात् पूर्व से लेकर पश्चिम तक हज़ारों विद्वान क़ुरआन की सेवा में लगे हुए हैं। यह क़ुरआन के चमत्कार होने का बहुत बड़ा प्रमाण है।

हिन्दी भाषा में क़ुरआन मजीद के लगभग दस अनुवाद हो चुके हैं। परन्तु मैंने अनुभव किया कि हिन्दी पाठकों के लिए एक ऐसी व्याख्या की आवश्यकता है जो क़ुरआन के विभिन्न शीर्षकों पर लिखी गई हो और क़ुरआन, सहीह हदीस तथा इतिहास इत्यादि में जो कुछ आया है उसका वृत्तांत पूर्वक विवरण किया गया हो। मैं अल्लाह की प्रशंसा बयान करता हूँ, जिसने इसे पूर्ण करने का साहस दिया। अब मैं इसको हिन्दी पाठकों की सेवा में भेंट करते हुए बड़ी प्रसन्नता अनुभव कर रहा हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि क़ुरआन समझने में उनको इससे बड़ी सहायता मिलेगी। और उनकी बहुत सारी भ्रान्तियाँ दूर हो जाएँगी। इस "कोष" के लिखने का मेरा उद्देश्य भी यही है। अगर मैं इसमें सफल रहा तो यह सब अल्लाह की कृपा से हुआ। और अगर कहीं कोई त्रुटि रह गई तो यह मेरी ओर से है। जिसके लिए मैं अल्लाह से क्षमा की प्रार्थना करता हूँ।

लेखक
शव्वाल 1429 हि.
28 अक्तूबर 2008 ई.

एक शुभ सूचना

प्रिय पाठको! हम सब एक आदम की सन्तान हैं, इस लिए हमें सदैव एक दूसरे के विषय में पवित्र भावनाएँ रखनी चाहिएँ। इन पवित्र भावनाओं में एक यह भी है कि जो चीज़ मैं अपने लिए पसन्द करूँ वही दूसरों के लिए भी पसन्द करूँ। मैं कभी नहीं चाहूँगा कि मेरा सांसारिक जीवन किसी विधान के बिना बीते जिसके फलस्वरूप मुझे मरने के बाद नरक की आग में झोंक दिया जाए। इस लिए मेरे और आपके, बल्कि सारे संसार के रचयिता ने जीवन व्यतीत करने के लिए एक पुस्तक भेजी, जिसका नाम 'कुरआन' है। उसी के साथ एक नबी भेजा जिनका नाम मुहम्मद (ﷺ) है, जिन्होंने इस पुस्तक पर अमल करके दिखाया और सारे संसार को यह शुभ सूचना दी कि इस पर अमल करके ही लोग स्वर्ग में जा सकते हैं।

इसलिए आप कुरआन का अध्ययन इस प्रकार करें कि यह आपकी और सारे इन्सानों की पुस्तक है, और नबी मुहम्मद (ﷺ) सारे इन्सानों के लिए अन्तिम नबी हैं। फिर आपको वह बात समझ आ जाएगी जिसकी मैं शुभ-सूचना सुना रहा हूँ। आप की सरलता के लिए मैंने 'कुरआन की इन्साइक्लोपीडिया' तैयार की है ताकि कुरआन समझने में आप इससे सहायता प्राप्त कर सके।

अब यह बात तो आप ही बता सकते हैं कि मैं अपने उद्देश्य में कितना सफल रहा हूँ।

आपका प्रिय लेखक

एक महत्वपूर्ण सूचना

अपने पाठकों को यह बात बता देना चाहता हूँ कि अल्लाह का अन्तिम ग्रन्थ "क़ुरआन मजीद" अरबी भाषा में अवतरित हुआ। इसलिए जब हम यह कहते हैं कि अल्लाह ने यह फ़रमाया, या क़ुरआन में ऐसा आया है तो इससे अभिप्राय यही अरबी क़ुरआन है। परन्तु पाठकों की आसानी के लिए अरबी भाषा में क़ुरआन लिखने के स्थान पर केवल उसकी अरबी का अनुवाद कर दिया गया है। परन्तु इस अनुवाद को क़ुरआन नहीं कहा जा सकता। यह तो केवल उसका अर्थ है।

सल्ल. (ﷺ): यह संक्षेप है (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का। जिसका अर्थ है 'ऐ नबी! आप पर अल्लाह की सलामती हो।'

मुसलमानों पर अनिवार्य है कि जब नबी (ﷺ) का नाम आए तो उन पर सलामती की दुआ करें। जिसका आदेश क़ुरआन ने दिया है।

«अल्लाह तथा उसके फ़रिश्ते नबी पर रहमत भेजते हैं। इसलिए ऐ ईमानवालो, तुम भी उस पर रहमत भेजो तथा अधिक से अधिक सलामती भी भेजते रहो।» (सूर-35, अल-अहज़ाब, आयत-56)

अलैहि. (عليه السلام) : यह संक्षेप है (अलैहिस्सलाम) का। यह दुआ नबी (ﷺ) के अतिरिक्त दूसरे नबियों के लिए प्रयोग होती है, जिसका अर्थ है अल्लाह की उन पर सलामती हो।

एक चेतावनी

प्रत्येक अक्षर के बीच जो अनुक्रम होता है उसका ध्यान नहीं रखा गया। इसलिए पाठकों की सरलता के लिए विषय-सूची बना दी गयी है जिसके द्वारा आप जो विषय पढ़ना चाहते हैं वह विषय सूची में देख लें।

हदीस की परिभाषाएँ

- **हदीस :** नबी (ﷺ) के कथन, कर्म या किसी कर्म पर आपकी ख़ामोशी को हदीस कहते हैं। इनको इकट्ठा करने में मुस्लिम विद्वानों ने जो प्रयत्न किया उसका उदाहरण किसी धर्म में नहीं मिलता। यहाँ तक कि इसके लिए उनको एक नए विज्ञान की खोज करनी पड़ी, जिसको अरबी में 'जरह-तादील' कहते हैं। तथा इसके लिए परिभाषाएं भी बनानी पड़ीं, जो इससे पहले नहीं थीं। चूँकि इस किताब में कुछ परिभाषाओं का प्रयोग किया गया है, इसलिए अनिवार्य हो गया कि इनका अर्थ बता दिया जाए।

- **सहीह :** सहीह हदीस के लिए निम्नलिखित शर्तों का होना आवश्यक है।

  1. इसके बयान करनेवाले "आदिल" अर्थात् चरित्र की दृष्टि से विश्वसनीय हों।
  2. उनका स्मरण शक्तिशाली हो। या फिर जो कह रहे हों वह लिखित हो।
  3. उसकी सनद मुत्तसिल हो। अर्थात् हर रावी (बयान करनेवाले) ने वह हदीस अपने गुरु से स्वयं सुनी हो।
  4. उसमें कोई 'शाज़' बात न बताई गई हो।
  5. उसमें किसी प्रकार की कोई 'इल्लत' न पाई जाती हो।

- **हसन :** यह वह हदीस है जिसमें सहीह हदीस की सारी शर्तें पाई जाती हों। केवल रावी की स्मरण शक्ति कुछ कमज़ोर हो। परन्तु इतनी भी नहीं कि वह 'ज़ईफ़' बन जाए।

- **ज़ईफ़ :** यह वह हदीस है जिसमें सहीह हदीस के कुछ गुण न पाए जाते हों।

- **ज़ईफ़ जिद्दन:** जिसकी सनद का कोई रावी बहुत अधिक कमज़ोर हो परन्तु झूठा न हो।

- **मौज़ूअ :** यह वास्तव में हदीस है ही नहीं, क्योंकि यह हदीस की वह क़िस्म है जिसको किसी रावी ने अपनी ओर से घड़कर नबी (ﷺ) से सम्बद्ध कर दिया। चूँकि 'मौज़ूअ' को परखने के लिए बहुत अधिक प्रयत्न करना पड़ा, इसलिए विद्वानों ने इस विषय में अनेक पुस्तकें लिखीं और जहाँ-जहाँ 'मौज़ूअ' हदीसें आईं उनको स्पष्ट कर दिया, ताकि इस्लाम में कोई अपनी ओर से कुछ प्रवेश न कर सके। इसलिए ये हदीसें हदीस की किताबों में तो दाख़िल हो गईं, परन्तु विद्वानों ने इनको स्पष्ट कर दिया।

- **मुतवातिर :** यह हदीस की वह क़िस्म है जिसके बयान करने वाले इतने अधिक हों कि उनका झूठ बोलना असम्भव हो जाए। मुतवातिर हदीस के लिए दो शर्तों का पाया जाना आवश्यक है।

  1. इसके बयान करनेवाले सनद के हर भाग में इतने पाए जाएं कि इनका किसी झूठ पर सहमत हो जाना असम्भव हो जाए।

  2. मुतवातिर हदीस का पाँच इन्द्रियों में से किसी एक के द्वारा जानना अनिवार्य है।

- **इल्लत :** हदीसों पर रिसर्च करते समय जो सनद तथा मतन में त्रुटियाँ पाई जाती हैं उनको 'इल्लत' कहते हैं। जिसके कारण हदीस ज़ईफ़ हो जाती है। त्रुटियों के अनुसार हदीस में इल्लत घटती बढ़ती है, कभी यह इल्लत समाप्त भी हो जाती है, और कभी नहीं भी होती। इसको परखने के लिए बहुत अधिक हदीस विज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। इल्लत परखनेवाले प्रसिद्ध हदीस-विद्वानों में इमाम बुख़ारी, इमाम दारक़ुतनी, तथा इमाम बैहक़ी प्रमुख हैं।

- **महफ़ूज़ :** यह सहीह हदीस की क़िस्म है। यह वह हदीस है जो किसी कम आदिल रावी के विरुद्ध अधिक आदिल रावी के द्वारा बयान की जाती है। अधिक अदूलवाले रावी की हदीस को महफ़ूज़ कहते हैं और इस प्रकार की हदीस के अनुसार कर्म करना अनिवार्य है।

- **शाज़ :** वह हदीस जो किसी अधिक आदिल रावी के विरुद्ध, किसी कम अदूलवाले रावी के द्वारा बयान की गई हो शाज़ कहलाती है। इस पर अमल करना आवश्यक नहीं है।

- **मारूफ़ :** यह भी सहीह हदीस की एक क़िस्म है जिसका रावी 'आदिल' होता है परन्तु कोई 'ज़ईफ़' रावी उसके विपरीत हदीस बयान करे तो आदिल रावी की हदीस 'मारूफ़' कहलाएगी, जिसको स्वीकार करना अनिवार्य है, और 'ज़ईफ़' रावी की हदीस 'मुनकर' कहलाएगी जिस पर कर्म करना निषिद्ध है।

- **मुनकर :** यह ज़ईफ़ हदीस की वह क़िस्म है जिसका रावी 'ज़ईफ़' भी हो और किसी 'आदिल' रावी के विरोध में हदीस बयान करे।

- **मरफ़ूअ :** यह वह हदीस है जिसको नबी (ﷺ) से सम्बद्ध किया जाए। यह सहीह भी हो सकती है, और ज़ईफ़ भी। यदि उसकी सनद या मतन में कोई 'इल्लत' नहीं है तो सहीह होगी, और अगर कोई 'इल्लत' पाई गई तो ज़ईफ़ होगी।

- **मुनक़तअ :** यह हदीस की वह क़िस्म है जिसकी सनद में कहीं कोई रावी ऐसा मिल जाए जिसने अपने गुरु से हदीस न सुनी हो, तो उसको 'मुनक़तअ' कहते हैं। इसका अर्थ है कि सनद बीच से कट गई है। 'मुनक़तअ' हदीस भी ज़ईफ़ हदीस की क़िस्म में से है, क्योंकि हदीस के सहीह होने के लिए आवश्यक है कि वह मुत्तसिल हो अर्थात् कहीं से कटी न हो।

- **मौक़ूफ़ :** यह वास्तव में हदीस नहीं है। परन्तु हदीस की किताबों में पाई जाती है। 'मौक़ूफ़' का अर्थ है रोक देना, अर्थात् नबी (ﷺ) से सम्बद्ध करने से रोक कर किसी सहाबी से सम्बद्ध की जाती है। इसलिए 'मौक़ूफ़' हदीस ज़ईफ़ हदीसों की क़िस्मों में तो आती है परन्तु वह हदीस नहीं है।

- **मतन :** मतन से अभिप्राय वह हदीस है जो सनद के बाद बयान की जाती है। कुछ किताबें हदीस की ऐसी हैं जिनमें केवल मतन होता है, परन्तु ये किताबें हदीस की असल किताबें नहीं हैं, बल्कि लोगों की सुविधा के लिए असल से लिखी गई हैं। जैसे 'मिश्कात'।

- **सनद :** हदीस की किताबों में 'मतन' बयान करने से पहले रिवायत करनेवालों के सिलसिले को सनद कहते हैं। यह विज्ञान किसी और धर्म में नहीं पाया जाता है।

- **जामिअ :** हदीस की उस किताब को कहते हैं जिसमें अहकामं के साथ-साथ ईमान, फ़ितन, तफ़सीर इत्यादि भी बयान की जाएं जैसे: जामिअ सहीह बुख़ारी, जामिअ सहीह मुस्लिम।

- **सुनन :** हदीस की वह किताब जो अहकाम कर्मकाण्ड एवं धर्मादेश के आधार पर लिखी गई हो। जैसे सुनन अबू-दाऊद, सुनन नसई, सुनन तिर्मिज़ी, सुनन इब्ने-माजा इत्यादि।

- **मुस्नद :** उस किताब को कहते हैं जो सहाबा के आधार पर लिखी गई हो, जैसे 'मुस्नद अहमद'।

- **ताबई :** जो किसी सहाबी से मिला हो और उससे हदीसों की शिक्षा प्राप्त की हो उसे ताबई कहते हैं।

- **मुरसल :** वह हदीस जिसको ताबई बयान करे और अल्लाह के रसूल (ﷺ) से सम्बद्ध करे, जबकि वह नबी (ﷺ) से मिला ही न हो जैसे 'हसन बसरी' अगर कहें कि नबी (ﷺ) ने फ़रमाया: "......"इस तरह की हदीस को मुरसल कहा जाएगा। क्योंकि 'हसन बसरी' ताबई हैं और हदीस बयान करने में किसी सहाबी का ज़िक्र नहीं है जबकि इस हदीस को उन तक पहुँचाने में कोई न कोई सहाबी अवश्य होंगे।

- **शेख़ुल-इस्लाम :** यह हदीस के विद्वानों की वह उपाधि है जो बहुत कम लोगों को मिली है। क्योंकि यह उन विद्वानों के लिए प्रयोग की जाती है जो हदीस, फ़िक़ह तथा दूसरे विज्ञानों में बहुत आगे निकल गए हों। जैसे 'इब्ने-तैमिया'।
- **हाकिम :** यह हदीस के विद्वानों की उपाधि है, जो हदीसों के स्मरण करने के साथ-साथ सनद का भी विद्वान हो, और उसका ज्ञान बहुत फैला हुआ हो।
- **हाफ़िज़ :** हदीस के वे विद्वान जो हदीसें स्मरण कर लिया करते थे उनको हाफ़िज़ कहते हैं।

विषय-सूची

आ

इ

ई

उ

ऊ

ए

क

ख़

ग

घ

च

ज

ट

त

द

❮ध❯

❮न❯

❮प❯

❮फ❯

❮ब❯

❮भ❯

❮म❯

य

र

ल

ह

ज्ञ

अ

अल्लाह

अल्लाह अरबी भाषा का शब्द है। वह 'इलाह' से बना है जिसका अर्थ है 'उपास्य', 'पूज्य'। अल्लाह में विश्वास रखने का अर्थ है कि हम केवल उसी की उपासना करें; उसकी उपासना में किसी को साझी न बनाएँ। क्योंकि वास्तव में इस ब्रह्मांड का बनानेवाला केवल एक ही है जिसे हम अल्लाह कहते हैं। इसलिए हम किसी और की उपासना नहीं करते। इस्लाम धर्म की विशेषता यह है कि वह एक अल्लाह में आस्था रखने तथा उसी की उपासना करने का आदेश देता है–

«क्या अल्लाह के साथ कोई और प्रभु-पूज्य है ? उच्च है अल्लाह उस शिर्क से जो ये लोग करते हैं।» (क़ुरआन, सूरा–27, अन-नम्ल, आयत–63)

शिर्क अल्लाह के निकट वह सबसे बड़ा पाप है जिसको वह क्षमा नहीं करेगा –

«अल्लाह इसको क्षमा नहीं करेगा कि उसका साझी ठहराया जाए। किन्तु उससे नीचे दर्जे के अपराध को जिसके लिए चाहेगा क्षमा कर देगा।» (क़ुरआन, सूरा–4,अन-निसा, आयत–48)

क़ुरआन चूँकि अल्लाह की अन्तिम पुस्तक है इसलिए इस पुस्तक में अल्लाह ने अपने अस्तित्व तथा अपनी विशेषताओं (सिफ़ात) को खोल-खोल कर बयान कर दिया है और शिर्क के सारे द्वार बन्द कर दिए हैं। इसलिए आप क़ुरआन की जिस आयत पर भी ध्यान देंगे आप को एकमात्र अल्लाह के प्रभु-पूज्य होने का प्रमाण मिलेगा। क्योंकि अब मनुष्य अपने ज्ञान के उस स्तर पर पहुँच चुका है जहाँ उसको यह बात सरलतापूर्वक समझ में आ सकती है कि एक अल्लाह के अतिरिक्त कोई पूजने के योग्य नहीं है, लेकिन अगर मनुष्य फिर भी शिर्क करता है तो उसको घोर यातना का सामना करना पड़ेगा। इसलिए अगर कोई मुसलमान अब तक इस सत्य को नहीं समझ सका है तो एक प्रकार से वह अभी इस्लाम से बहुत दूर है।

असमा-ए-हुस्ना

अर्थात् अल्लाह के सुन्दर और शुभ नाम। क़ुरआन में है–

«अल्लाह के अच्छे-अच्छे नाम हैं तो तुम उसे उन्हीं नामों से पुकारो, और उन लोगों को छोड़ दो जो उसके नामों के विषय में कुटिलता ग्रहण करते हैं। जो कुछ वे करते हैं उसका फल वे जल्द पाएँगे।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–180)

ये 'अस्मा-ए-हुस्ना' दो विषयों में प्रयुक्त होते हैं।

प्रथम यह कि इनका प्रयोग करके अल्लाह से प्रार्थना की जाए। जैसे कोई यह प्रार्थना करे, "ऐ क्षमा करनेवाले! मुझे क्षमा कर दे। ऐ दया करनेवाले! मुझ पर दया कर दे, ऐ जीविका देनेवाले! मुझे जीविका दे।" अर्थात् इन नामों का प्रयोग करके प्रार्थना केवल अल्लाह से की जाए, किसी और से न की जाए; और न किसी और को इन नामों से पुकारें, और न ही किसी को ये नाम दें।

द्वितीय यह कि इन्हीं नामों के अनुसार अल्लाह की इबादत (उपासना) की जाए। जैसे उसी के सम्मुख हम इसलिए पश्चात्ताप करें क्योंकि वही बन्दों के पश्चात्ताप को स्वीकार कर सकता है। उसी के सम्मुख हम इसलिए झुकें क्योंकि वही महान है, उसकी महानता में कोई साझी नहीं है। इसी लिए, मुसलमान पाँच समय नमाज़ में उसी को सजदा करते हैं, क्योंकि उसका आदेश है –

«तुम न तो सूर्य को सजदा करो और न चंद्रमा को, बल्कि अल्लाह को सजदा करो जिसने उन्हें पैदा किया। यदि वास्तव में तुमको उसकी उपासना करनी है।» (क़ुरआन, सूरा–41, हा-मीम अस-सज्दा, आयत–37)

«और रात के कुछ हिस्से में भी उसे सजदा करो और लम्बी रात में उसकी महानता बयान करते रहो।» (क़ुरआन, सूरा–76, अद-दहर, आयत–26)

एक सहीह हदीस में आया है कि अल्लाह के निन्यानवे नाम हैं जो उनकी तस्बीह करेगा, स्वर्ग में जाएगा। (सहीह बुख़ारी, 6410 तथा सहीह मुस्लिम, 2677)

विद्वानों का विचार है कि इसका अर्थ यह नहीं है कि अल्लाह के केवल निन्यानवे ही नाम हैं, बल्कि जो निन्यानवे की 'तस्बीह' करेगा वह स्वर्ग में जाएगा। रहे अल्लाह के नाम तो वे इनसे कहीं अधिक हो सकते हैं। इसी लिए क़ुरआन में आया है –

«कह दीजिए, अल्लाह कहकर पुकारो अथवा रहमान कहकर। जिस नाम से भी पुकारो, उसके सब नाम अच्छे हैं।» (सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–110)

«अल्लाह के अच्छे-अच्छे नाम हैं, इसलिए तुम उन्हीं के द्वारा उसे पुकारो अर्थात् (प्रार्थना करो) और उन लोगों को छोड़ दो जो उसके नामों के विषय में कुटिलता ग्रहण करते हैं।» (सूरा-7, अल-आराफ़, आयत–180)

अर्थात् उसको ऐसे नाम लेकर न पुकारो जो उस महान सत्ता की शान के विरुद्ध हों, और न ही उसके नामों का मनमाना अर्थ निर्धारित करके उसे अपमानित कर दो। न ही उसके नामों जैसे नाम उसकी सृष्टि में किसी के रखो। क्योंकि ये सब वे बातें हैं जिनसे 'शिर्क' का द्वार खुल जाता है। और शिर्क को क़ुरआन में सबसे बड़ा ज़ुल्म कहा गया है। (क़ुरआन, सूरा–31, लुक़मान, आयत–13)

अगर हम पिछली क़ौमों के इतिहास का अध्ययन करें तो साफ़ पता चलता है कि उनमें शिर्क के पनपने का बड़ा कारण अल्लाह के नामों में कुटिलता और उनमें विकृति पैदा करना था। जैसे यहूदियों ने उसे 'यहोवा' का नाम दे दिया जिसका अर्थ केवल यहूदी जाति का पालनकर्ता है। इसी प्रकार ईसाइयों ने उसे 'फ़ादर' का नाम दे दिया जिसका पुत्र बनाना पड़ा। इसी प्रकार दूसरी क़ौमों ने अल्लाह के ऐसे नाम रख लिए जो उसकी सृष्टि से मिलते-जुलते थे, और फिर उस सृष्टि को ही अल्लाह बना लिया, जैसा कि भारतीय धर्मशास्त्रों में ईश्वर के लिए सविता शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ सूर्य भी होता है। इसलिए सूर्य को भी देवता बना लिया गया।

इसी प्रकार मक्का के विधर्मियों ने अल्लाह के नाम 'अज़ीज़' से 'उज़्ज़ा' नामक बुत बना लिया; इलाह से 'लात' नामक बुत बना लिया, और फिर उन्हीं की पूजा-पाठ करने लगे। इसी की ओर क़ुरआन संकेत करते हुए कहता है –

«उस जैसी कोई चीज़ नहीं, और वह सब कुछ सुनने और देखनेवाला है।» (सूरा–42, अश-शूरा, आयत–11)

अर्थात् वह निर्गुण और अचेतन नहीं है, बल्कि वह सर्वगुणसम्पन्न और चैतन्य है, परन्तु अपनी सृष्टि से भिन्न है। इसलिए उसके नामों को निर्धारित करने में हमें बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। इसका उत्तम नियम यह है कि क़ुरआन और सहीह हदीसों के द्वारा ही इन नामों को निर्धारित किया जाए। इस्लामी धर्मशास्त्रों में अल्लाह के जो विभिन्न नाम आए हैं, जिनका तिर्मिज़ी (3507) तथा इब्ने-माजा (3861) में वर्णन किया गया है। विद्वानों का विचार है कि ये नाम नबी (ﷺ) के बताए हुए नहीं हैं, बल्कि लोगों ने स्वयं अपनी ओर से एकत्र कर लिए हैं। इसलिए इनकी सनद सहीह नहीं है। अर्थात् नबी (ﷺ) ने इन निन्यानवे नामों को नहीं बताया बल्कि विद्वानों पर छोड़ दिया कि वे स्वयं क़ुरआन तथा सहीह हदीस की रौशनी में एकत्र कर लें। यहाँ उन नामों की सूची दी जा रही है जिनको विद्वानों ने एकत्र किया है –

न.	अल्लाह के शुभ नाम	न.	अल्लाह के शुभ नाम	न.	अल्लाह के शुभ नाम
1.	अल्लाह	34.	अल-मुतआल	67.	अल-मुसय्यिर
2.	अर-रहमान	35.	अल-वाहिद	68.	अल-क़ाबिज़
3.	अर-रहीम	36.	अल-क़हहार	69.	अल-बासित
4.	अल-मलिक	37.	अल-हक़	70.	अर-राज़िक़
5.	अल-क़ुद्दूस	38.	अल-मुबीन	71.	अल-क़ाहिर
6.	अस-सलाम	39.	अल-क़वी	72.	अद्-दय्यान
7.	अल-मोमिन	40.	अल-मतीन	73.	अश-शाकिर

8.	अल-मुहैमिन	41.	अल-अलिय्यु	74.	अल-मन्नान
9.	अल-अज़ीज़	42.	अल-अज़ीम	75.	अल-क़ादिर
10.	अल-जब्बार	43.	अश-शकूर	76.	अल-ख़ल्लाक़
11.	अल-मुतकब्बिर	44.	अल-हलीम	77.	अल-मालिक
12.	अल-ख़ालिक़	45.	अल-वासेअ़	78.	अर-रज़्ज़ाक़
13.	अल-बारी	46.	अल-अ़लीम	79.	अल-वकील
14.	अल-मुसव्विर	47.	अत-तव्वाब	80.	अर-रक़ीब
15.	अल-अव्वल	48.	अल-हकीम	81.	अल-मुहसिन
16.	अल-आख़िर	49.	अल-ग़नी	82.	अल-हसीब
17.	अज़-ज़ाहिर	50.	अल-करीम	83.	अश-शाफ़ी
18.	अल-बातिन	51.	अल-अहद	84.	अर-रफ़ीक़
19.	अस-समीअ़	52.	अस-समद	85.	अल-मुअ़-ती
20.	अल-बसीर	53.	अल-क़रीब	86.	अल-मुक़ीत
21.	अल-मौला	54.	अल-मुजीब	87.	अत-तय्यिब
22.	अन-नसीर	55.	अल-ग़फ़ूर	88.	अल-हकम
23.	अल-अफ़्व	56.	अल-वदूद	89.	अल-अकरम
24.	अल-क़दीर	57.	अल-वली	90.	अल-बर्र
25.	अल-लतीफ़	58.	अल-हमीद	91.	अल-ग़फ़्फ़ार
26.	अल-ख़बीर	59.	अल-हफ़ीज़	92.	अर-रऊफ़
27.	अल-वित्र	60.	अल-मजीद	93.	अल-वह्हाब
28.	अल-जमील	61.	अल-फ़त्ताह	94.	अल-जव्वाद
29.	अल-हय्यु	62.	अश-शहीद	95.	अस-सुब्बूह
30.	अल-हई	63.	अल-मुक़द्दम	96.	अल-वारिस
31.	अल-क़य्यूम	64.	अल-मुअख़्ख़र	97.	अर-रब
32.	अस-सत्तार	65.	अल-मलीक	98.	अल-आला
33.	अल-कबीर	66	अल-मुक़्तदिर	99.	अल-इलाह

ये निन्नयानवे नाम हैं इनके अतिरिक्त अल्लाह के और भी शुभ नाम हैं जो क़ुरआन और सहीह हदीसों में पाए जाते हैं। हदीस में कहा गया है कि जो अल्लाह के इन निन्नयानवे नामों का जाप करेगा, वह स्वर्गवासी होगा। जाप करने का अर्थ इनके अनुसार कर्म करना है न कि इनके विरुद्ध करना। जैसे वह 'इलाह' है तो केवल उसी की बंदगी करना; वह 'ग़फ़्फ़ार' है तो केवल उसी से क्षमा माँगना; वह 'अ़लीम' है तो केवल उसी को 'आ़लिमुलग़ैब' यानी परोक्ष-ज्ञाता मानना; वह 'मुजीब' है तो केवल उसी से 'दुआ़' माँगना कि वही दुआओं को स्वीकार करता है, कोई और मुजीब नहीं है; वह 'राज़िक़' है तो केवल उसी से 'रोज़ी' (जीविका) तलब करना, किसी पीर, फ़क़ीर, साधु-सन्त आदि के हाथ में जीविका नहीं है। इसलिए एक हदीस में आता है–

"जो तुम्हारे भाग्य में लिखा है वह मिलकर रहेगा, इसलिए तलब करने में सही मार्ग ग्रहण करो।"

सारांश यह कि अल्लाह के इन नामों के जाप करने का अर्थ है इनके अनुसार जीवन व्यतीत करना।

अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से पकड़ना

क़ुरआन में आया है –

«सब मिलकर अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से पकड़ो, और विभेद में न पड़ो।»
(सूरा–3, आले-इमरान, आयत–103)

यहाँ अल्लाह की रस्सी से तात्पर्य क़ुरआन तथा नबी (ﷺ) की शिक्षाएँ हैं। उनपर अमल करने से ही एक व्यक्ति सच्चा मुसलमान बन सकता है। क्योंकि इस्लाम धर्म के ये ही दो स्रोत हैं। जैसा कि हदीसों में नबी (ﷺ) का कथन आया है कि मैं तुम्हारे बीच दो चीज़ें छोड़कर जा रहा हूँ। एक अल्लाह की किताब, दूसरी अपनी सुन्नत। इनपर सच्चे दिल से अमल करनेवाला कभी भटक नहीं सकता। इसका प्रमाण यह है कि इसी आयत के अन्त में कहा गया है –

«अल्लाह की उस कृपा को याद करो जो उसने तुमपर की, तुम एक-दूसरे के शत्रु थे, तो उसने तुम्हारे दिलों को परस्पर एक-दूसरे से जोड़ दिया, जिसके कारण तुम उसकी कृपा से भाई-भाई बन गए। जबकि तुम आग के एक गढ़े के किनारे खड़े थे, तो अल्लाह ने तुम्हें उसमें गिरने से बचा लिया। इसी प्रकार अल्लाह तुम्हारे लिए अपनी आयतों को स्पष्ट करता है ताकि तुम मार्ग पा सको।»

अर्थात् अल्लाह की इसी रस्सी को मज़बूती से पकड़ने के कारण मदीना के दो वंश, 'औस' और 'खज़रज' जो एक-दूसरे के शत्रु थे, भाई-भाई बन गए। जब अल्लाह की यह रस्सी ऐसा चमत्कार दिखा चुकी है तो फिर मुसलमानों को चाहिए कि वे आपस में फूट न डालें, बल्कि क़ुरआन तथा हदीस को मज़बूती से पकड़ लें और अल्लाह की उन नेमतों को याद करें जो उसने उनको दी हैं।

अहलुल-बैत

अहलुल-बैत का अर्थ है घरवाले। क़ुरआन में आया है –

«अल्लाह तो बस यही चाहता है कि ऐ नबी के घर वालो! तुमसे गन्दगी को दूर रखे, और तुम्हें पूरी तरह पाक-साफ़ रखे।» (सूरा–33, अल-अहज़ाब, आयत–33)

इस आयत को ध्यान से पढ़ने और इससे पहले और इसके बाद आने वाली आयतों पर विचार करने से कुछ ऐसा लगता है कि इससे अभिप्रेत नबी (ﷺ) की पत्नियाँ हैं। क्योंकि वही तो घर की शोभा होती हैं। उन्हीं से किसी की मर्यादा बनती है तो किसी की बिगड़ती है। इसलिए अल्लाह नबी (ﷺ) की पत्नियों से कह रहा है कि तुमको इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि तुम किसकी पत्नी हो? और इस कारण तुम्हारा क्या कर्तव्य है ? क्योंकि अल्लाह चाहता है कि नबी (ﷺ) के घर से सदैव के लिए गन्दगी दूर कर दे। आइए क़ुरआन की आयतों के प्रकाश में इसे समझने की कोशिश करें –

«ऐ नबी, अपनी पत्नियों से कहो, ''यदि तुम सांसारिक जीवन और उसकी शोभा चाहती हो तो आओ मैं तुम्हें कुछ भेंट देकर भली रीति से विदा कर दूँ और यदि तुम अल्लाह, उसके रसूल, और आख़िरत का निवास चाहती हो तो विश्वास रखो अल्लाह ने तुम में से उत्तम कर्म करनेवालियों के लिए महान बदला तैयार कर रखा है। ऐ नबी की पत्नियो ! तुममें से जो भी प्रत्यक्ष अनुचित कर्म करेगी तो उसे दोहरी यातना दी जाएगी। और यह अल्लाह के लिए बहुत ही सरल है। और तुममें से जो अल्लाह और उसके रसूल का आज्ञापालन करेगी, और अनुकूल कर्म करेगी तो हम उसको दोहरा बदला देंगे, और हमने उसके लिए उत्तम जीविका तैयार कर रखी है। ऐ नबी की स्त्रियो ! तुम साधारण स्त्रियों के समान नहीं हो, यदि तुम अल्लाह का डर रखो। अतः तुम्हारी बातों में लोच न हो कि वह व्यक्ति जिसके दिल में कोई रोग हो कुविचार में पड़ जाए, बल्कि बात साफ़ और सीधी किया करो। और अपने घरों में टिककर रहो, और विगत अज्ञान-काल की-सी सज-धज न दिखाती फिरना। नमाज़ का आयोजन करो और ज़कात देती रहो, तथा अल्लाह एवं उसके रसूल का आज्ञापालन करो, अल्लाह तो बस यही चाहता है कि ऐ नबी के घरवालो, तुमसे अशुद्धता को दूर कर दे और तुम्हें पूरी तरह पवित्र कर दे।''» (सूरा–33, अल-अहज़ाब, आयत–28-33)

क़ुरआन की इन आयतों से सिद्ध होता है कि अहले-बैत (घरवालों) से तात्पर्य नबी (ﷺ) की पवित्र पत्नियाँ हैं, जो मुसलमानों की माता के समान हैं, जिनके विषय में किसी के लिए उचित नहीं कि कुविचार रखे। यही कारण है कि नबी (ﷺ) की मृत्यु के पश्चात् उनसे विवाह करना निषिद्ध कर दिया गया था।

क़ुरआन में इसी प्रकार इबराहीम (عليه السلام) की पत्नियों के लिए भी 'अहले-बैत' (घरवाले) शब्द का प्रयोग हुआ है।

«वे (फ़रिश्ते) बोले, "क्या तुम अल्लाह के आदेश पर आश्चर्य कर रही हो, ऐ अहले-बैत (घरवालो), तुम पर अल्लाह की कृपा और बरकतें हों, निस्सन्देह वह प्रशंसा और गौरववाला है।"» (सूरा–11, हूद, आयत–73)

यहाँ 'अहले-बैत' (घरवाले) हज़रत इबराहीम (عليه السلام) की पत्नी 'सारा' के लिए प्रयोग किया गया है। जब उनको फ़रिश्तों ने इसहाक़ (عليه السلام) की शुभ-सूचना दी तो वे आश्चर्य में पड़ गईं कि भला इस बुढ़ापे की आयु में उनके यहाँ कोई बच्चा कैसे पैदा होगा।

इससे पता चला कि 'अहले-बैत' में सर्वप्रथम नबी (ﷺ) की पवित्र पत्नियाँ हैं।

दूसरी श्रेणी में नबी (ﷺ) की संतान आती है, जैसा कि सहीह हदीसों से पता चलता है –

"हज़रत आइशा (رضي الله عنها) से उल्लिखित है कि एक बार नबी (ﷺ) बैठे थे और आपके शरीर पर ऊन की चादर थी। इतने में हसन-बिन अली आए तो आपने उनको अपनी चादर में छिपा लिया, फिर हुसैन-बिन अली आए तो उन को भी छिपा लिया, फिर आप की पुत्री फ़ातिमा आईं तो उनको भी छिपा लिया, फिर आपके दामाद अली आए तो उनको भी चादर के अन्दर ले लिया और फिर 'अहले-बैत' वाली आयत पढ़ी।" (सहीह मुस्लिम: फ़ज़ाइले-अहले-बैत)

इसी प्रकार मुस्नद अहमद और जामेअ तिर्मिज़ी में भी कुछ हदीसें आई हैं जिनसे पता चलता है कि नबी (ﷺ) की पुत्री फ़ातिमा, उनके पति अली, और उनकी संतान हसन तथा हुसैन अहले-बैत में से थे। एक हदीस में है कि जब उम्मे- सलमा, नबी (ﷺ) की पवित्र पत्नी, ने कहा, "क्या मैं भी अहले-बैत में हूँ?" तो आप (ﷺ) ने कहा, "तुम तो भलाई करनेवाली हो, तुम तो मेरी पत्नियों में हो।" अर्थात् तुम तो पहली श्रेणी में हो, क्योंकि तुम पत्नियों के लिए ही तो यह आयत उतरी है।

कुछ विद्वानों ने अहले-बैत से तात्पर्य केवल आप (ﷺ) की पत्नियाँ ही लिया है।

तीसरी श्रेणी में अहले-बैत से तात्पर्य वे सभी लोग हैं जिनके लिए दान लेना निषिद्ध है। उनमें अली, अक़ील, जाफ़र तथा अब्बास की संतानें आती हैं। जैसा कि सहीह मुस्लिम में ज़ैद-बिन-अरक़म से उल्लिखित है। परन्तु यह ज़ैद-बिन-अरक़म का स्वयं का स्पष्टीकरण है जो उन्होंने अहले-बैत के विषय में किया है। (सहीह मुस्लिम : फ़ज़ाइले-अली)

चौथी श्रेणी में वे लोग भी अहले-बैत में सम्मिलित हैं जिनसे नबी (ﷺ) का कोई नस्ली सम्बन्ध नहीं है, जैसे आप (ﷺ) ने सलमान फ़ारसी के विषय में कहा था, "वे हममें से हैं।" (इब्ने-जरीर तबरी, 22:7)

इसी प्रकार वासिला-बिन-अस्क़ाअ से कहा था, "तुम हम में से हो।"

सारांश यह कि अहले-बैत से तात्पर्य केवल अली, फ़ातिमा और इन दोनों की सन्तान लेना उचित नहीं है।

अलूवाह

अलूवाह लौह का बहुवचन है जिसका अर्थ है तख़्ती, जिस पर लिखा जाता है। क़ुरआन में अलवाह शब्द तीन विभिन्न विषयों में प्रयुक्त हुआ है—

1. उस नौका के विषय में जिसको नूह (ﷺ) ने तूफ़ान से बचने के लिए बनाया था, जिसके विषय में आया है कि वह तख़्तियों और लोहे की कीलों से बनाई गई थी । (सूरा–54, अल-क़मर, आयत–13)
2. उस स्थान के विषय में जहाँ क़ुरआन को सुरक्षित ढंग से रख दिया गया है अर्थात् लौहे-महफ़ूज़। (क़ुरआन, सूरा–85, अल-बुरूज, आयत–22) इसलिए संसार में रहनेवाले चाहे जितना जतन कर लें न तो वे क़ुरआन को मिटा सकते हैं और न उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन और काट-छाँट कर सकते हैं। यही कारण है कि आज भी संसार के कोने-कोने में जो क़ुरआन पाया जाता है, उसके शब्द वही हैं जो मुहम्मद (ﷺ)पर उतरे थे।

   यह लौहे-महफ़ूज कहाँ है ? इस विषय में क़ुरआन से पता चलता है कि यह अल्लाह के अर्श (सिंहासन) ही के निकट है, जहाँ कोई प्राणी नहीं पहुँच सकता।
3. उन तख़्तियों के विषय में जिनको अल्लाह ने मूसा (ﷺ) को प्रदान किया था—

«और हमने उसके लिए तख़्तियों पर उपदेश के रूप में हर चीज़ और उसका विस्तृत विवरण लिख दिया। अतः उनको पूरी मज़बूती से पकड़ लो।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–145)

जब मूसा (ﷺ) ये तख़्तियाँ लेकर पर्वत से अपनी क़ौम के पास आए ताकि उनको अल्लाह की दी हुई शिक्षाओं का पाठ पढ़ाएँ, तो क्या देखते हैं कि पूरी बनी-इसराईल क़ौम अपने ही हाथों बनाए हुए बछड़े की पूजा कर रही है, जबकि वे मूर्ति पूजा के विरुद्ध आदेश लेकर आए थे, (देखिए : बाइबल, निर्गमन, 32:15-20) इसलिए वे क्रोधित हो उठे—

«जब मूसा अत्यन्त क्रोधित और दुःखी होकर अपनी जाति की ओर पलटा तो उसने कहा, ''तुम लोगों ने मेरे पीछे बहुत बुरा किया। क्या तुम अपने रब के आदेश से पहले ही जल्दी कर बैठे?'' और उसने तख़्तियाँ एक ओर डाल दीं।» (क़ुरआन, सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–150)

अर्थात् क्रोध में आकर उन्होंने उन तख़्तियों को एक तरफ़ डाल दिया। अपने भाई हारून (عليه السلام) से पूछने लगे कि तुम लोगों ने मेरे बाद मूर्तिपूजा क्यों की ?

«जब मूसा का क्रोध शान्त हुआ तो उसने उन तख़्तियों को उठा लिया, जिनके लेख में उन लोगों के लिए मार्गदर्शन और दयालुता थी जो अपने रब से डरते हैं।» (क़ुरआन, सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–154)

क़ुरआन और बाइबल से पता चलता है कि इन तख़्तियों पर जो कुछ लिखा था वह अल्लाह ने स्वयं लिखकर दिया था।

बाइबल की किताब निर्गमन में है–

"तब प्रभु ने मूसा से कहा, पहाड़ पर मेरे पास चढ़, और वहाँ रह, और मैं तुझे पत्थर की पटियाएँ और अपनी लिखी हुई व्यवस्था तथा आज्ञा दूँगा कि तू उनको सिखाए।" (बाइबल, निर्गमन, 24:12)

क़ुरआन से यह तो पता नहीं चलता कि जब मूसा (عليه السلام) ने उन तख़्तियों को फेंक दिया तो वे टूट गईं, परन्तु बाइबल में है कि वे टूट गईं।

"फिर प्रभु ने मूसा से कहा, पहली तख़्तियों के समान पत्थर की दो और तख़्तियाँ गढ़ ले, तब जो वचन उन पहली तख़्तियों पर लिखे थे, जिन्हें तूने तोड़ डाला, वे ही वचन मैं उन तख़्तियों पर भी लिखूँगा।" (बाइबल, निर्गमन, 34:1)

"तब मूसा ने पहली तख़्तियों के समान दो और तख़्तियाँ गढ़ीं। वह सवेरे उठकर अपने हाथ में पत्थर की दोनों तख़्तियाँ लेकर प्रभु की आज्ञा के अनुसार सीनै पर्वत पर चढ़ गया।" (बाइबल, निर्गमन, 34:4)

क़ुरआन ने जो संकेत किया है कि मूसा (عليه السلام) ने क्रोध में आकर उन तख़्तियों को डाल दिया, तो इससे टूटने का भाव लिया जा सकता है। और जो यह कहा कि जब उसका क्रोध शान्त हुआ तो उसने उन तख़्तियों को उठा लिया, वे टूटी हुई भी हो सकती हैं। क्योंकि उन टूटी हुई तख़्तियों को जोड़कर लोगों को उनमें लिखी हुई शिक्षा से परिचित किया जा सकता है। और फिर किसी अवसर पर उन शिक्षाओं को किसी नई तख़्ती पर लिख दिया गया हो। इस बात को बाइबल लिखनेवालों ने किसी और तरह से लिख दिया।

अब इस प्रश्न पर विचार करते हैं कि उन तख़्तियों में क्या लिखा था ?

क़ुरआन ने बताया है कि उनमें हर प्रकार की शिक्षाएँ तथा प्रत्येक वस्तु का विवरण लिखा हुआ था। यहाँ हर प्रकार या प्रत्येक प्रकार का अर्थ है जिनकी उन्हें धर्म में आवश्यकता हो सकती थी। संसार की सारी बातें नहीं।

धर्म का आधार दो बातों पर है। एक आस्था, दूसरा कर्म। बाइबल से ज्ञात होता है कि उन तख़्तियों पर दस शिक्षाएँ लिखी हुई थीं (बाइबल, निर्गमन, 34:28) और ये दस शिक्षाएँ वास्तव में आस्था और कर्म के विषय में ही हैं। अब आइए इन दस शिक्षाओं पर विचार करें।

❁ आस्था

1. "तब परमेश्वर ने ये सब वचन कहे, 'मैं तेरा परमेश्वर यहोवा हूँ, जो तुझे दासत्व के घर अर्थात् मिस्र देश से निकाल लाया है'।" (बाइबल, निर्गमन, 20:1-2)
2. "तू मुझे छोड़कर दूसरों को परमेश्वर करके न मानना। तू अपने लिए कोई मूर्ति खोदकर न बनाना। न किसी की प्रतिमा बनाना, जो आकाश में या पृथ्वी पर, अथवा पृथ्वी के जल में है। तू उनको दण्डवत न करना, और न उनकी उपासना करना, क्योंकि मैं तेरा प्रभु परमेश्वर जलन रखने वाला परमेश्वर हूँ, और जो मुझसे बैर रखते हैं उनके बेटों, पोतों और परपोतों को भी पूर्वजों का दण्ड दिया करता हूँ, और जो मुझसे प्रेम रखते और मेरी आज्ञाओं को मानते हैं, उन हज़ारों पर करुणा किया करता हूँ। तू अपने परमेश्वर का नाम व्यर्थ न लेना, क्योंकि जो प्रभु का नाम व्यर्थ ले, वह उसको निर्दोष न ठहराएगा।" (बाइबल, निर्गमन, 20:3-7)

❁ कर्म

3. "तू विश्राम दिन को पवित्र मानने के लिए स्मरण रखना। छः दिन तो तू परिश्रम करके अपना सब काम-काज करना, परन्तु सातवाँ दिन तेरे प्रभु परमेश्वर के लिए विश्रामदिन है। उसमें न तो तू किसी प्रकार का काम-काज करना, और न तेरा बेटा, न तेरी बेटी, न तेरा दास, न तेरी दासी, न तेरे पशु, न कोई परदेशी जो तेरे फाटकों के भीतर हो। क्योंकि छः दिन में प्रभु ने आकाश और पृथ्वी और समुद्र, जो कुछ उनमें है, सबको बनाया और सातवें दिन विश्राम किया, इस कारण प्रभु ने विश्रामदिन को आशीष दी और उसको पवित्र ठहराया।" (बाइबल, निर्गमन, 20:8-11)
4. "तू अपने पिता और अपनी माता का आदर करना, जिससे जो देश तेरा प्रभु परमेश्वर तुझे दे रहा है, उसमें तू बहुत दिन तक रहने पाए।" (बाइबल, निर्गमन, 20:12)
5. "तू ख़ून न करना।
6. तू व्यभिचार न करना।
7. तू चोरी न करना।
8. तू किसी के विरुद्ध झूठी गवाही न देना।
9. तू किसी के घर का लालच न करना।

10.तू किसी की स्त्री का लालच न करना। और न किसी के दास-दासी अथवा बैल-गदहे का, और न किसी की किसी वस्तु का लालच करना।'' (बाइबल, निर्गमन, 20:13-17)

बाइबल में इन्हीं बातों को कहीं-कहीं और विस्तारपूर्वक बयान किया गया है। जैसे मूर्तिपूजा के विरोध में यह चेतावनी –

''जिस देश में तू जानेवाला है, उसके निवासियों से वाचा न बाँधना। कहीं ऐसा न हो कि वह तेरे लिए फंदा ठहरे। उनकी देवियों को गिरा देना, उनके पूजा के खम्भों को तोड़ डालना, उनकी अशेरा नामक मूर्तियों को काट डालना। क्योंकि तुम्हें किसी दूसरे को परमेश्वर करके दण्डवत् करने की आज्ञा नहीं, क्योंकि प्रभु जिसका नाम जलनशील है, वह जल उठनेवाला परमेश्वर है।'' (बाइबल, निर्गमन, 34:12-14)

इनसे भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि मूसा (ﷺ) को जो शिक्षा दी गई थी यह वही शिक्षा थी जो दूसरे नबियों को दी गई थी और अन्त में हज़रत मुहम्मद (ﷺ) को दी गई। अर्थात् एकेश्वरवाद की शिक्षा। और जिस प्रकार दूसरे नबियों ने मूर्तिपूजा से लोगों को रोका था, उसी प्रकार मूसा (عليه السلام) ने भी लोगों को रोका। इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि सारे नबियों की मूल शिक्षा एक ही थी। और वह एकेश्वरवाद की शिक्षा थी और विभेद जो हुआ है तो वह केवल उन आदेशों में जिनमें समय के साथ-साथ परिवर्तन होता रहा।

एक आवश्यक टिप्पणी : तौरात में बार-बार 'यहोवा' शब्द आता है। उसके विषय में यह बता देना आवश्यक है कि 'यहोवा' यहूदियों के यहाँ अल्लाह का शुभ नाम है। परन्तु यहूदी इस नाम को अपनी ज़बान से पुकारने को महापाप समझते हैं। इसलिए वे इसके स्थान पर 'अदोनाई' शब्द का प्रयोग करते हैं, जिसका अर्थ इब्रानी भाषा में मेरा रब (परमेश्वर) है। यहूदी शिक्षा के अनुसार वर्ष में केवल एक बार महा पुरोहित सुलैमान (عليه السلام) के हैकल में एक विशेष दिवस पर इस नाम का प्रयोग किया जा सकता है। इसलिए यूनानी भाषा में उन्होंने एक शब्द बनाया जिसको Tetragram कहते हैं (अर्थात् चार अक्षरों वाला शब्द)। इस शब्द को वे 'यहोवा' के स्थान पर प्रयोग करते हैं। क्योंकि 'यहोवा' इब्रानी भाषा में चार अक्षरों से बना है।

बाइबल की 'निर्गमन' नामक पुस्तक में है –

मूसा ने परमेश्वर से कहा, ''जब मैं इस्राईलियों के पास जाकर उनसे यह कहूँ कि तुम्हारे पितरों के परमेश्वर ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है, तब यदि वे मुझ से पूछें कि उसका क्या नाम है ? तब मैं उनको क्या बताऊँ ?'' परमेश्वर ने मूसा से कहा, ''मैं जो हूँ सो हूँ।'' फिर उसने कहा, ''तू इस्राइलियों से यह कहना कि जिसका नाम 'अह्‌यह' (मैं हूँ) है, उसी ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है।'' (बाइबल, निर्गमन, 3:13-14)

क़ुरआन यहूदियों की इसी शिक्षा की ओर संकेत करते हुए कहता है –

«कह दो, 'तुम (परमेश्वर को) अल्लाह के नाम से पुकारो या रहमान के नाम से, जिस नाम से भी पुकारो, उसके सब नाम अच्छे हैं।'» (सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–110)

«और अल्लाह के सब नाम अच्छे ही हैं। इसलिए तुम उन्हीं के द्वारा उसे पुकारो, और जो लोग उसके नामों में कुटिलता ग्रहण करते हैं उन्हें छोड़ दो, वे जो कुछ कर रहे हैं जल्द ही उसकी यातना पाएँगे।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–180)

अनसार

यह नासिर का बहुवचन है, जिसका अर्थ है सहायता करनेवाले।

मदीना के वासियों में अरब और यहूदी दोनों थे। अरब के दो क़बीले थे, एक 'औस' कहलाता था और दूसरा 'ख़ज़रज'। अनुमान किया जाता है कि दूसरी ईसवी शताब्दी में ये लोग यमन से निकलकर यहाँ आबाद हो गए थे और इन दोनों समुदायों के बीच आपस में लड़ाई-झगड़े चले आ रहे थे। इस्लाम ने इनके दिलों को जोड़कर भाई-भाई बना दिया। इसी की ओर संकेत करते हुए क़ुरआन कहता है –

«और सब मिलकर अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से पकड़ लो और आपस में विभेद में न पड़ो और अल्लाह की उस कृपा को याद करो जो उसने तुमपर की है, तुम एक-दूसरे के शत्रु थे, तो उसने तुम्हारे दिलों को परस्पर एक-दूसरे से जोड़ दिया, तो तुम उसकी कृपा से भाई-भाई हो गए। और तुम आग के एक गढ़े के बिल्कुल किनारे खड़े थे, तो अल्लाह ने तुम्हें उससे बचा लिया। इसी प्रकार अल्लाह तुम्हारे लिए अपनी 'आयतों' को स्पष्ट करता है, ताकि तुम हिदायत पा लो।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–103)

और यही 'औस' और 'ख़ज़रज' और वे यहूदी जो मुसलमान हुए बाद में अनसार कहलाए।

ईसा (عليه السلام) ने अपनी जाति से सहायता माँगी तो आपके हवारियों ने कहा –

«हम अल्लाह के सहायक हैं।» (क़ुरआन, सूरा–3, आले-इमरान, आयत–52)

अल्लाह ने मुसलमानों से कहा –

«ऐ ईमानवालो, तुम अल्लाह के सहायक बन जाओ, जिस प्रकार मरयम के पुत्र ईसा ने हवारियों (मित्रों) से कहा था, "कौन है जो अल्लाह के मार्ग में मेरा सहयोगी बने?" तो हवारियों ने कहा ? "हम अल्लाह के (मार्ग में) सहायक हैं।"» (क़ुरआन, सूरा–61, अस-सफ़्फ़, आयत–14)

फिर यह शब्द विशेष रूप से मदीनेवालों के लिए प्रयुक्त होने लगा, क्योंकि उन्होंने अपने मुहाजिर भाइयों की इस प्रकार सहायता की जिसका उदाहरण इतिहास में नहीं मिलता। यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

नबी (ﷺ) ने अब्दुर्रहमान-बिन- औफ़ (मुहाजिर) को साद-बिन-रबीअ़ (अनसारी) का भाई बना दिया। साद ने अब्दुर्रहमान से कहा, "देखो भाई, मेरे पास बहुत धन है, तुम उसमें से आधा ले लो। इसी प्रकार मेरी दो बीवियों में से जो तुम्हें पसन्द हो , मैं उसे तलाक़ दे दूँगा और इद्दत के पश्चात् तुम उससे निकाह कर लेना।" अब्दुर्रहमान ने कहा, "अल्लाह तुम्हारे धन और परिवार में बरकत दे। मुझे तो तुम केवल बाज़ार का मार्ग दिखा दो।" फिर वे व्यापार करने लगे और उसमें उन्हें बहुत लाभ हुआ। कुछ ही समय पश्चात् उन्होंने एक अनसारी स्त्री से निकाह भी कर लिया। (देखें, हदीस : बुख़ारी, 3780)

इसी कारण अल्लाह ने मुहाजिरों और अनसार दोनों को यह शुभ सूचना सुनाई –

«पहले ईमान लानेवाले मुहाजिरीन से भी और अनसार से भी, और उनसे भी जिन्होंने भली-भाँति उनकी पैरवी की, अल्लाह प्रसन्न हुआ, और वे अल्लाह से प्रसन्न हुए, अल्लाह ने उनके लिए ऐसी जन्नतें तैयार कर रखी हैं जिनके नीचे नहरें बह रही होंगी। वे उनमें सदैव रहेंगे, और यह बड़ी सफलता है।» (क़ुरआन, सूरा–9, अत-तौबा, आयत–100)

«अल्लाह नबी पर मेहरबान हो गया और मुहाजिरों तथा अनसार पर भी, जिन्होंने कठिन घड़ी में नबी का साथ दिया। यद्यपि उनमें से एक गरोह के दिल टेढ़ के कारण फिर जाने के निकट थे। फिर भी वह उन पर मेहरबान रहा। निस्सन्देह वह उन लोगों के लिए करुणामय और दयावान है।» (क़ुरआन, सूरा–9, अत-तौबा, आयत–117)

मुहाजिरों की प्रशंसा करने के पश्चात् अनसार की प्रशंसा इस प्रकार की जा रही है –

«और मुहाजिरों से पहले जो लोग अपने घरों में बसे हुए हैं और ईमान रखते हैं, अर्थात् मदीनेवाले, उन लोगों से प्रेम करते हैं जो हिजरत करके उनके पास आए हैं और जो कुछ उनको दे दिया गया, उसके लिए वे अपने हृदयों में तनिक भी खटक नहीं पाते, बल्कि उन्हें अपने ऊपर प्राथमिकता देते हैं चाहे वे स्वयं मोहताज ही क्यों न हों, और जिन लोगों को मन के लोभ से बचा लिया गया, वही सफलता पानेवाले हैं।» (क़ुरआन, सूरा–59, अल-हश्र, आयत–9)

नबी (ﷺ) ने भी अनसार की बड़ी प्रशंसा की है। एक सहीह हदीस में आता है कि नबी (ﷺ) ने फ़रमाया,

"अनसार जिस घाटी से जाएँगे, मैं भी उसी घाटी से जाऊँगा। अगर हिजरत न होती तो मैं भी अनसार में से होने को पसन्द करता।" (बुख़ारी, 3779)

एक बार अनसार भाइयों ने नबी (ﷺ) से निवेदन किया कि आप हमारे खजूर के बाग़ हमारे और मुहाजिर भाइयों के बीच बाँट दीजिए। नबी (ﷺ) ने फ़रमाया,

"नहीं, बल्कि तुम लोग ही बाग़ों की देख-भाल करो, परन्तु जो फल आए उसमें उनको सम्मिलित कर लो।" अनसार ने कहा, "हमने सुन लिया और आज्ञापालन किया।" (देखिए, बुख़ारी, 3782)

नबी (ﷺ) ने ऐसा इसलिए किया कि मुहाजिर भाइयों को खेती करनी नहीं आती थी। इसलिए अगर मदीना के बाग़ बाँट करके उनको दे दिए जाते तो उपज कम हो जाती। दूसरे यह कि मुहाजिर भाई व्यापार करना जानते थे। नबी (ﷺ) ने पसन्द फ़रमाया कि मदीना भी मक्का की तरह व्यापार का केन्द्र बने। इसी प्रकार नबी (ﷺ) ने एक और हदीस में फ़रमाया–

"अनसार से मोमिन (ईमानवाला) ही प्रेम करेगा। और उनसे मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) ही घृणा करेगा, तो जो उनसे प्यार करेगा अल्लाह उससे प्यार करेगा, और जो उनसे घृणा करेगा, अल्लाह उससे घृणा करेगा।" (बुख़ारी, 3783 तथा मुस्लिम, 75)

अनसार ने इस्लाम की सेवा और उसको संसार के कोने-कोने तक पहुँचाने की जो चेष्टा की उसको बयान करना कठिन है। इसलिए नबी (ﷺ) सदैव उनको प्रिय रखते थे। जब मक्का विजय हो गया तो अनसार सोचने लगे कि अब कहीं नबी हमें छोड़कर मक्का वापस न चले जाएँ। परन्तु आपने ऐसा नहीं किया, बल्कि जीवन की अन्तिम सांस तक अनसार के साथ रहे और उन्हीं के नगर मदीना में दफ़न हुए।

अनफ़ाल

यह 'नफ़्ल' का बहुवचन है, जिसका अर्थ है बढ़ोतरी और अधिकता। अगर कोई चीज़ किसी को उसके हक़ और अधिकार से बढ़ाकर दी जाए तो जितनी हक़ से बढ़ाकर दी गई वह 'नफ़्ल' है। इसी प्रकार अगर किसी व्यक्ति ने अनिवार्य कार्य से अधिक कार्य किया तो अनिवार्य से अधिक वह कार्य 'नफ़्ल' कहलाएगा।

इसी लिए पाँच समय की 'फ़र्ज़' नमाज़ों के अतिरिक्त जो नमाज़ें पढ़ी जाती हैं उनको भी नफ़्ल कहते हैं।

अल-अनफ़ाल क़ुरआन की आठवीं सूरा का नाम भी है, जो कि सन 2 हिजरी में बद्र के युद्ध के बाद अवतरित हुई। यह मुसलमानों और विधर्मियों के बीच पहला युद्ध था, जिसमें मुसलमानों को सफलता प्राप्त हुई और बहुत-सा माल मुसलमानों के हाथ आया जिसे माले-ग़नीमत कहते हैं। अब मुसलमान सवाल करने लगे कि युद्ध में प्राप्त इस माल (माले-ग़नीमत) को लेने का अधिकार किसको है? जिसने इकट्ठा किया उसका है या जो युद्ध के लिए विभिन्न कार्यों में लगे रहे उनका ? या यह हमारे लिए हराम (अवैध) है, जिस प्रकार हमसे पहली जातियों के लिए हराम था ? क्योंकि इस्लाम से पूर्व

काल में, जिसको अज्ञानकाल कहा जाता है, ग़नीमत के धन के लिए कोई विशेष नियम नहीं था। कभी ऐसा होता कि जिसके हाथ जो लगा वही उसका मालिक बन गया, कभी ऐसा हुआ कि ग़नीमत के सारे माल का हक़दार केवल सरदार होता था। कुछ जातियों या समुदायों में यह नियम था कि ग़नीमत के धन को इकट्ठा किया जाता और आकाश से बिजली आती और सबको जला देती। क्योंकि इस धन का प्रयोग हराम था। इसी लिए सहीह हदीसों में आया है कि नबी (ﷺ) ने फ़रमाया,

"ग़नीमत का माल मेरे लिए हलाल (वैध) किया गया है, मुझसे पहले किसी जाति में हलाल नहीं था।" (देखिए: बुख़ारी 438, मुस्लिम 521)

इसलिए मुसलमान युद्ध समाप्त होने के बाद यह जानना चाहते थे कि अब जो ग़नीमत का सामान इकट्ठा किया गया है, अगर हमारे लिए हलाल है तो उसे कैसे विभाजित किया जाए? इसका उत्तर सूरा अनफ़ाल में दिया गया –

«(ऐ नबी) लोग तुमसे अनफ़ाल (ग़नीमतों) के विषय में पूछ रहे हैं। कहो, 'अनफ़ाल' अल्लाह के लिए, और रसूल के लिए हैं। तुम लोग अल्लाह से डरो और आपस के संबंधों को ठीक रखो और अल्लाह और उसके रसूल का कहा मानो यदि तुम ईमानवाले हो।» (क़ुरआन, सूरा–8, अनफ़ाल, आयत–1)

फिर मुसलमानों को बहुत सारे उपदेश देने के पश्चात् आयत न. 41 में उस प्रश्न का उत्तर दिया जा रहा है जो आयत न. 1 में किया गया था और वह उत्तर यह है –

«जान लो कि 'ग़नीमत' में तुमको जो चीज़ मिली है, उसका पाँचवाँ भाग अल्लाह, उसके रसूल और नातेदारों, और अनाथों, निर्धनों तथा यात्रियों का है।»

इसका अर्थ यह हुआ कि युद्ध क्षेत्र में जो भी ग़नीमत का माल प्राप्त होगा उसको पाँच भागों में विभाजित किया जाएगा। चार भाग तो सैनिकों में बाँट दिए जाएँगे। और पाँचवाँ भाग सरकारी ख़ज़ाने में जमा किया जाएगा जिसको फिर पाँच भागों में विभाजित किया जाएगा। एक भाग अल्लाह और उसके रसूल का होगा, जिसको नबी (ﷺ) अपने ऊपर तथा सार्वजनिक सेवा में ख़र्च करेंगे। नबी (ﷺ) के बाद यह भाग ख़लीफ़ा को मिलेगा जो सार्वजनिक कामों में ख़र्च करेगा। दूसरा भाग नबी (ﷺ) के परिवार और निकटतम लोगों पर ख़र्च किया जाएगा, तीसरा भाग अनाथों पर, चौथा भाग निर्धनों पर और पाँचवाँ भाग यात्रियों पर ख़र्च किया जाएगा। या फिर इसको नबी (ﷺ) और आपके पश्चात् मुसलमानों का शासक आवश्यकतानुसार जहाँ उचित समझेगा ख़र्च करेगा।

क़ुरआन की सूरा-8, अनफ़ाल में युद्ध और शान्ति के बहुत सारे ऐसे नियम बताए गए हैं कि आज तक उनसे अच्छे नियम नहीं बनाए जा सके। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि इस सूरत का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाए, ताकि इसमें छिपे हुए रत्नों को उजागर किया जा सके।

अल-अहक़ाफ़

अहक़ाफ़ 'हिक़्फ़' का बहुवचन है, जिसका अर्थ है बालू के बड़े-बड़े टीले। क़ुरआन में 'अहक़ाफ़' नाम की एक सूरा है। इसमें कुल 35 आयतें हैं। इस सूरा की इक्कीसवीं आयत में 'अहक़ाफ़' का वर्णन है –

«याद करो आद के भाई (हूद) को जब उसने अपनी जातिवालों को अहक़ाफ़ में सचेत किया, जब कि उससे पहले तथा उसके पश्चात् भी सचेत करनेवाले गुज़र चुके हैं। वह यह कि अल्लाह के अतिरिक्त किसी और की इबादत (उपासना) न करो, मुझे तुम्हारे सम्बन्ध में एक बड़े दिन की यातना का भय है।» (सूरा–46, अल-अहक़ाफ़, आयत–21)

यहाँ 'अहक़ाफ़' से अभिप्राय वह बहुत बड़ा मरुस्थलीय स्थान है जो सऊदी अरब के दक्षिण में पाया जाता है। जिसको 'रुबअ ख़ाली' कहा जाता है। कभी यहाँ आद नाम की एक बहुत बड़ी जाति आबाद थी, जिसके कुछ चिह्न आज भी हज़रमौत नामक स्थान में पाए जाते हैं। इस जाति की ओर हूद (عليه السلام) को नबी बनाकर भेजा गया। परन्तु उन्होंने उनकी बात न मानी जिसके कारण एक बहुत भयंकर तूफ़ान के द्वारा उनको नष्ट कर दिया गया, जैसा कि क़ुरआन में आया है –

«आद (के वृत्तान्त) में भी (शिक्षाप्रद निशानियाँ) हैं जब हमने उनपर उजाड़ देनेवाली आँधी भेजी। वह जिस चीज़ से भी गुज़रती उसको चूरा-चूरा कर देती।» (सूरा–51, अज़-ज़ारियात, आयतें–41,42)

इन्हीं के विषय में एक और जगह क़ुरआन में आया है –

«आद ने झुठलाया, फिर कैसी रही मेरी यातना और मेरा डरावा, हमने उनपर निरन्तर तीव्र चलनेवाली हवा एक निरन्तर अशुभ दिन में भेजी, जो लोगों को उठा-उठाकर पटक देती थी जैसे कि वे जड़ से उखड़े हुए खजूर के पेड़ हों।» (सूरा–54, अल-क़मर, आयतें–18,20)

क़ुरआन में है कि यह भयंकर तूफ़ान सात रातें और आठ दिन चलता रहा, जिसके कारण सब कुछ नष्ट हो गया –

«तो क्या उनमें से कोई भी तुझे शेष दिखाई दे रहा है?» (सूरा–69, अल-हाक़्क़ा, आयत–8)

संक्षेप में यह कि सूरा अहक़ाफ़ में अल्लाह के आदेश का इनकार करनेवालों के परिणाम का वर्णन है और उदाहरण के लिए आद का वर्णन किया गया है जो अपने समय में बड़ी महान जाति थी परन्तु वह अल्लाह के आदेशों का इनकार करके संसार से मिट गई। यही परिणाम उन जातियों का भी होगा जो अल्लाह के आदेश का इनकार कर रही हैं क्योंकि अल्लाह की महान सत्ता के सामने सब निर्बल तथा तुच्छ हैं।

आद नामक जाति के विषय में कुछ और वर्णन 'हूद' शब्द में देखिए।

अलिफ़-लाम-मीम

क़ुरआन की बहुत-सी सूरतों के आरम्भ में इस प्रकार के अक्षर आए हैं, जिनको अरबी भाषा में 'हुरूफ़े-मुक़त्तआत' कहते हैं। इसका अर्थ है अलग-अलग अक्षर। विद्वानों में इसके भावार्थ को लेकर मतभेद पाया जाता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि ये उन सूरतों के नाम हैं जिनके आगे यह 'हुरूफ़े-मुक़त्तआत' आते हैं जैसे सूरा–20, ता-हा; सूरा–36 या-सीन; सूरा–38 सॉद; सूरा–50 क़ाफ़; परन्तु बाक़ी सूरतें जिनके शुरू में 'हुरूफ़े-मुक़त्तआत' हैं फिर भी वे सूरतें इन नामों से प्रसिद्ध नहीं हुईं, जैसे –

अलिफ़-लाम-मीम : सूरा–2, अल-बक़रा; सूरा–3, आले-इमरान; सूरा-29, अल-अनकबूत; सूरा-30, अर-रूम; सूरा-31, लुक़मान; सूरा-32, अस-सजदा। **अलिफ़-लाम-मीम-सॉद**: सूरा–7, अल-आराफ़। **अलिफ़-लाम-रा :** सूरा–10, यूनुस; सूरा–11, हूद; सूरा–12, यूसुफ़; सूरा–13, अर-रअ्द; सूरा–14, इबराहीम; सूरा–15, अल-हिज्र। **काफ़-हा-या-ऐन-सॉद :** सूरा–19, मरयम; **ता-सीन-मीम :** सूरा–26, अश-शुअरा; सूरा–27, अन-नम्ल; सूरा–28, अल-क़सस। **हा-मीम :** सूरा–40, मोमिन; सूरा–41, फ़ुस्सिलत; सूरा–43, अज़-ज़ुख़रुफ़; सूरा–44, अद-दुख़ान; सूरा–45, अल-जासिया; सूरा–46, अल-अहक़ाफ़। **हा-मीम-ऐन-सीन-क़ाफ़ :** सूरा–42, अश-शूरा। **नून :** सूरा–68, अल-क़लम।

कुछ विद्वानों का विचार है कि वास्तव में इन 'हुरूफ़े-मुक़त्तआत' के द्वारा अल्लाह अरबी भाषा के कवियों और साहित्यकारों को चैलेंज कर रहा है कि इन्हीं अक्षरों से युक्त, जिनको तुम भली-भाँति जानते हो, मैंने यह क़ुरआन भेजा है। अब अगर तुमको इस विषय में कोई शंका है तो लाओ इस जैसा क़ुरआन, अगर पूरा नहीं तो एक सूरा (अध्याय) ही लाकर दिखा दो, बल्कि उस जैसी एक आयत ही लाकर दिखाओ। यह क़ुरआन ही का चमत्कार है कि आज तक कोई इस चैलेंज का उत्तर नहीं दे सका।

कुछ विद्वानों का विचार है कि जिस प्रकार चीनी भाषा में चित्रों को जोड़कर विभिन्न प्रकार के अर्थ निकाले जाते हैं जिनको IDEOGRAM कहते हैं, इसी प्रकार इन अक्षरों के भी अर्थ हो सकते हैं, जिनको उन सूरतों में ढूँढना चाहिए जिनके आगे ये अक्षर आए हैं। इसका आधार उन्होंने यह बनाया है कि मिस्र की खुदाई में ऐसे अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिनमें चित्रों के द्वारा अक्षरों को प्रदर्शित किया गया है। जैसे नून (ن) से अभिप्राय मछली है, और सूरा–10 यूनुस, जो नून से आरम्भ होती है उसमें भी मछली का वर्णन आया है। इसी प्रकार ताहा (طه) का अर्थ है साँप, और सूरा–20 ता-हा में मूसा (ﷺ) के कथन में साँप का ज़िक्र आता है। इसी प्रकार के कुछ शोध-कार्य हिन्दुस्तान के विद्वानों, मौलाना हमीदुद्दीन फ़राही तथा मौलाना अबुल-जलाल नदवी, ने किए हैं। परन्तु अभी इस पर बहुत कुछ करना बाक़ी है। लेकिन इस प्रकार की तहक़ीक़ क़ुरआन समझने के लिये आवश्यक नहीं है।

कुछ विद्वानों का विचार है कि ये शब्दों के संक्षिप्त रूप हैं और अरबी भाषा में इस प्रकार के संक्षिप्त शब्द पाए जाते हैं।

कुछ विद्वानों का विचार है कि इसका वास्तविक ज्ञान तो केवल अल्लाह को है। वह हमारी परीक्षा लेना चाहता है कि हम उसपर ईमान लाते हैं या नहीं, क्योंकि इन 'हुरूफ़े-मुक़त्तआत' का अर्थ जानने या न जानने से क़ुरआन को समझने में कोई बाधा नहीं पड़ती।

यह तो निश्चित नहीं किया जा सकता कि इनमें से कौन-सी बात ज़्यादा सही है, परन्तु हमें इस बात को अवश्य मानना पड़ेगा कि यह वर्णन-शैली अरबों में प्रसिद्ध थी, इसी लिए हम देखते हैं कि क़ुरआन पर बहुत-से आक्षेप लगाए गए, परन्तु किसी ने इन 'हुरूफ़े-मुक़त्तआत' पर कभी कोई आक्षेप नहीं किया; जिसका अर्थ है कि वे इस वर्णन-शैली से भली-भाँति परिचित थे। वरना वे यह बात अवश्य कहते कि यह कैसी किताब है जिसकी सूरतों के नाम तक समझ में नहीं आ रहे हैं। जबकि क़ुरआन का दावा है कि यह 'किताबे-मुबीन' है। अर्थात् इस किताब की एक-एक बात स्पष्ट है।

अल-यसअ़ (عليه السلام)

पैग़म्बर अल-यसअ़ का वर्णन क़ुरआन में दो स्थानों पर आया है।

एक स्थान पर इनका वर्णन इस प्रकार हुआ है –

«इस्माईल, अल-यसअ़, यूनुस और लूत (सभी लोग उसी की संतान से थे) और उनमें से प्रत्येक को हमने संसारवालों के मुक़ाबले में बड़ाई प्रदान की।» (सूरा-6, अल-अनआ़म, आयत-86)

इससे पहले इबराहीम (عليه السلام) का वर्णन चल रहा था। उनकी संतान में इसहाक़, याक़ूब, ज़करिया, यह्या, ईसा, और इलयास (عليهم السلام) का वर्णन करने के पश्चात् इसमाईल, अल-यसअ़, यूनुस तथा लूत (عليهم السلام) का वर्णन किया गया। इससे प्रतीत होता है कि 'अल-यसअ़' नबी भी इबराहीम (عليه السلام) ही की संतान में से थे। इसलिए कुछ विद्वानों ने उनका वंश इस प्रकार बताया है : अल-यसअ़ पुत्र अस्वात, पुत्र दी, पुत्र शोलतम, पुत्र अफ्राईम, पुत्र यूसुफ़, पुत्र याक़ूब, पुत्र इसहाक़, पुत्र इबराहीम (عليهم السلام)।

दूसरे स्थान पर अल-यसअ़ (عليه السلام)का वर्णन क़ुरआन में इस प्रकार आया है –

«इसमाईल, अल-यसअ़ और ज़ुलकिफ़्ल को भी याद करो, ये सब नेक लोगों में से थे।» (सूरा–38, साद, आयत–48)

यहाँ भी इससे पहले इबराहीम (عليه السلام) का वर्णन हुआ है, जिसमें बताया गया है कि इबराहीम, इसहाक़, और याक़ूब (عليهم السلام) ये सब लोग चुने हुए लोगों में से थे। अब उनके पश्चात् इसमाईल, अल-यसअ़, और ज़ुलकिफ़्ल (عليهم السلام) का नाम आता है। अर्थात् ये सब लोग अल्लाह के चुने हुए लोगों में से थे।

हसन बसरी, जो एक बड़े विद्वान थे, का कहना है कि अल-यसअ़ (عليه السلام) इलयास (عليه السلام) के समय में थे और इलयास (عليه السلام) के पश्चात् अल-यसअ़ ही अल्लाह की ओर लोगों को बुलाते रहे। (देखिए इब्ने-कसीर, क़िससे-अंबिया पृ. 472)

अत: हो सकता है कि ये बाइबल के यसअ़ बिन शफ़त हों जो जार्डन के एक गाँव में पैदा हुए थे। इनके पिता बड़े धनी व्यक्ति थे। एक दिन अल-यसअ़ खेत जोत रहे थे कि उनके निकट से नबी इलयास (عليه السلام) का गुज़र हुआ और उन्होंने अपनी चादर उनके ऊपर डाल दी। अब अल-यसअ़ उनके पीछे हो गए, और नबी इलयास (عليه السلام)के साथ रहने लगे और उनके साथ ईश-धर्म इस्लाम का प्रचार करने लगे। इलयास (عليه السلام) की मृत्यु के पश्चात् आप बनी-इसराईल में काम करते रहे। यहाँ तक कि 878-838 ईसा पूर्व के निकट आपका भी देहान्त हो गया। बाइबल में आपके बहुत-से चमत्कारों का वर्णन आया है, जिसमें सबसे प्रसिद्ध शूनेमवासी महिला के पुत्र को जीवित करना है। (देखिए, 2 राजा 4:8-37) और कहते हैं कि जब अल-यसअ़ (عليه السلام) का देहान्त हो गया तो उनको एक क़ब्र में दफ़न कर दिया गया। फिर ऐसा हुआ कि एक वर्ष के बाद 'मोआब' के दल देश में आए। लोग किसी मनुष्य को मिट्टी दे रहे थे कि एक दल उन्हें दीख पड़ा, तब उन्होंने उस लोथ को 'एलीशा' (अल-यसअ़) की क़ब्र में डाल दिया और 'एलीशा' की हड्डियों के छूते ही वह जी उठा और अपने पावों के बल खड़ा हो गया। (देखिए: 2 राजा 13 : 20-21)

चूँकि क़ुरआन तथा सहीह हदीसों से इस चमत्कार की पुष्टि नहीं होती इसलिए हम इसके बारे में कुछ नहीं कह सकते हैं। क्योंकि एक सहीह हदीस में आया है कि अहले-किताब की बातों की न पुष्टि करो न इनकार।

असहाबुल-कहफ़

अर्थात् गुफा में जीवन व्यतीत करनेवाले।

ये कुछ नव युवक थे, जिन्होंने बादशाह के अत्याचार के कारण अपने निवास स्थान को छोड़कर किसी पहाड़ी गुफा में शरण ले ली थी। जहाँ एक अद्‌भुत चमत्कार प्रकट हुआ जिसकी कुछ बातों का अरबों को ज्ञान था, परन्तु वे चाहते थे कि क़ुरआन के द्वारा उनको शेष सही बातों का ज्ञान हो जाए। इसपर क़ुरआन की सूरा कहफ़ उतरी जिसमें उनके विषय में अल्लाह ने यह फ़रमाया –

«क्या तुम विचार करते हो कि गुफा और रक़ीमवाले हमारी अद्‌भुत निशानियों में से थे? जब उन नवयुवकों ने गुफा में जाकर शरण ली तो कहा, "ऐ प्रभु! हमें अपने यहाँ से दया प्रदान कर और हमारे लिए हमारे अपने मामले को ठीक कर दे।" तब गुफा में कई वर्षों के लिए हमने उनके कानों पर परदा डाल दिया। फिर हमने उन्हें भेजा ताकि इस बात का ज्ञान हो जाए कि दोनों दलों में से कौन ठीक प्रकार से अतीत की घटनाओं का ज्ञान रखता है।

हम तुम्हें ठीक-ठीक उनका वृत्तान्त सुनाते हैं। वे कुछ नव युवक थे जो अपने रब पर ईमान लाए थे और हमने उन्हें मार्गदर्शन में बढ़ोत्तरी प्रदान की।

और हमने उनके दिलों को सुदृढ़ कर दिया। जब वे उठे तो उन्होंने कहा, "हमारा रब तो वही है जो आकाशों और धरती का रब है। हम उससे इतर किसी अन्य पूज्य को कदापि न पुकारेंगे। यदि हमने ऐसा किया तब तो हमारी बात हक़ से बहुत हटी हुई होगी।

ये हमारी क़ौम के लोग हैं, जिन्होंने उससे इतर कुछ अन्य पूज्य-प्रभु बना लिए हैं। आख़िर ये उनके हक़ में कोई स्पष्ट प्रमाण क्यों नहीं लाते! भला उससे बढ़कर ज़ालिम कौन होगा जो झूठ घड़कर अल्लाह पर थोपे ?

और जबकि इनसे तुम अलग हो गए हो और उनसे भी जिनको अल्लाह के सिवा ये पूजते हैं, तो गुफा में चलकर शरण लो। तुम्हारा रब तुम्हारे लिए अपनी दयालुता का दामन फैला देगा और तुम्हारे लिए तुम्हारे अपने काम के सम्बन्ध में सुगमता का उपकरण उपलब्ध कराएगा।"

और तुम सूर्य को उसके उदित होते समय देखते तो दिखाई देता कि वह उनकी गुफा से दाहिनी ओर को बचकर निकल जाता है और जब अस्त होता है तो उनकी बाईं ओर कतराकर निकल जाता है। और वे हैं कि उस (गुफा) के एक विस्तृत स्थान में हैं। यह अल्लाह की निशानियों में से है। जिसे अल्लाह हिदायत दे (अर्थात सीधा मार्ग दिखाए) वही मार्ग पानेवाला है और जिसे वह भटकता छोड़ दे उसका तुम कोई सहायक मार्गदर्शक कदापि न पाओगे।

और तुम समझते कि वे जाग रहे हैं, हालाँकि वे सोए हुए होते। हम उन्हें दाएँ और बाएँ फेरते और उनका कुत्ता ड्योढ़ी पर अपनी दोनों भुजाएँ फैलाए हुए होता। यदि तुम उन्हें कहीं झाँक कर देखते तो उनके पास से उलटे पाँव भाग खड़े होते और तुममें उनका भय समा जाता।

और इसी तरह हमने उन्हें उठा खड़ा किया कि वे आपस में पूछताछ करें। उनमें से एक कहनेवाले ने कहा, "तुम कितना ठहरे रहे ?" वे बोले, "हम यही कोई एक दिन या एक दिन से भी कम ठहरे होंगे।" उन्होंने कहा, "जितना तुम यहाँ ठहरे हो उसे तुम्हारा रब ही भली-भाँति जानता है। अब अपने में से किसी को चाँदी का यह सिक्का देकर नगर की ओर भेजो। फिर वह देख ले कि उसमें सबसे अच्छा खाना किस जगह मिलता है। तो उसमें से वह तुम्हारे लिए कुछ खाने को ले आए और चाहिए कि वह नरमी और होशियारी से काम ले और किसी को तुम्हारी ख़बर न होने दे।

यदि वे कहीं तुम्हारी ख़बर पा जाएँगे तो पथराव करके तुम्हें मार डालेंगे या तुम्हें अपने पंथ में लौटा ले जाएँगे और तब तो तुम कभी भी सफल न हो सकोगे।"

इस तरह हमने लोगों को उनकी सूचना दे दी, ताकि वे जान लें कि अल्लाह का वादा सच्चा है और यह कि क़ियामत की घड़ी में कोई संदेह नहीं है। वह समय भी उल्लेखनीय है जब वे आपस में उनके मामले में छीन-झपट कर रहे थे। फिर उन्होंने कहा, "उन पर एक भवन बना दो। उनका रब उन्हें भली-भाँति जानता है।" और जो लोग उनके मामले में प्रभावी रहे उन्होंने कहा, "हम तो उनपर अवश्य एक उपासनागृह बनाएँगे।"

अब वे कहेंगे, "वे तीन थे और उनमें चौथा उनका कुत्ता था।" और वे यह भी कहेंगे, "वे पाँच थे और उनमें छठा उनका कुत्ता था।" यह बिना निशाना देखे पत्थर (अर्थात् अंधेरे में तीर) चलाना है। और वे यह भी कहेंगे, "वे सात थे और उनमें आठवाँ उनका कुत्ता था।" कह दो, "मेरा रब ही उनकी संख्या को ठीक-ठीक जानता है।" उनको तो थोड़े ही जानते हैं। तुम ज़ाहिरी बात के सिवा उनके सम्बन्ध में न झगड़ो और न उनमें से किसी से उनके विषय में कुछ पूछो।

और न किसी चीज़ के विषय में कभी यह कहो, "मैं कल इसे कर दूँगा।" बल्कि अल्लाह की इच्छा ही लागू होती है। और जब तुम भूल जाओ तो अपने रब को याद कर लो और कहो, "आशा है कि मेरा रब इससे भी क़रीब सही बात की ओर मार्गदर्शन कर दे।"

और वे अपनी गुफा में तीन सौ वर्ष रहे और नौ वर्ष उससे अधिक।

कह दो, "अल्लाह भली-भाँति जानता है जितना वे ठहरे।" आकाशों और धरती की छिपी बात का संबंध उसी से है। वह क्या ही देखनेवाला और सुननेवाला है! उससे इतर न तो उनका कोई संरक्षक है और न वह अपने प्रभुत्व और सत्ता में किसी को साझीदार बनाता है।

अपने रब की किताब, जो कुछ तुम्हारी ओर प्रकाशना (वह्य) हुई, पढ़ो। कोई नहीं जो उसके बोलों को बदलने वाला हो और न तुम उससे हटकर शरण लेने की जगह पाओगे।» (सूरा-18, अल-कह्फ़, आयतें 9-27)

कुरआन के इस संक्षिप्त विवरण से यह पता चलता है कि 'असहाबे कहफ़' नवयुवकों का एक समूह था। वे लोग अल्लाह पर ईमान रखते थे, परन्तु अपने शत्रुओं के भय से वे गुफा में चले गए, फिर अल्लाह ने एक चमत्कार दिखाया। वह यह कि वे तीन सौ नौ वर्ष तक उस गुफा में सोते रहे। इस प्रकार अल्लाह ने उन ईमानवालों की रक्षा की और उनके शत्रुओं को नष्ट कर दिया। इस क़िस्से को बयान करने से अल्लाह का उद्देश्य नबी (ﷺ) को यह इतमीनान दिलाया है कि ऐ नबी हम तुम्हारी और तुम पर ईमान लानेवालों की रक्षा इसी प्रकार करेंगे और तुम्हारे शत्रुओं को नष्ट कर देंगे। फिर हम देखते हैं कि अल्लाह का वचन पूरा हुआ। इस्लाम अरब से निकलकर संसार के कोने-कोने में फैल गया और उसके शत्रु नष्ट हो गए।

असहाबुल-कहफ़
का क्षेत्र

उम्मूरियह
नमकीन झील
क़ज़ल इरमाक़ नदी
सीवास
कैसरा
मलतियह
कोहिस्तान तूर्स
सैहान
जैहान
मरअश
कूनियह
तुर्की
इफ़सूस
तरसूस
अदाना
फ़ुरात नदी
अंतालिया
अन्ताकिया
हलब
किमी.
500
400
300
200
100
लाज़किया
हमात
आसी
साइप्रस
हमस
तराबुलस
बअलबक
शाम
बेरूत
दिमश्क़
रूम सागर
जार्डन नदी
हैफ़ा
अम्मान
अलक़ुद्स
ग़ज़्ज़ा
मृत सागर
करक
नील का डेलटा
स्कन्द्रिया
तानीस
फ़रमा
अरीश
जार्डन
नक़्ब
रक़ीम
पतरा
मआन
बाबिलून
कुलजुम
स्वेज़ खाड़ी
ऐला
अक़बा
फ़य्यूम
मिस्र
सीनअ
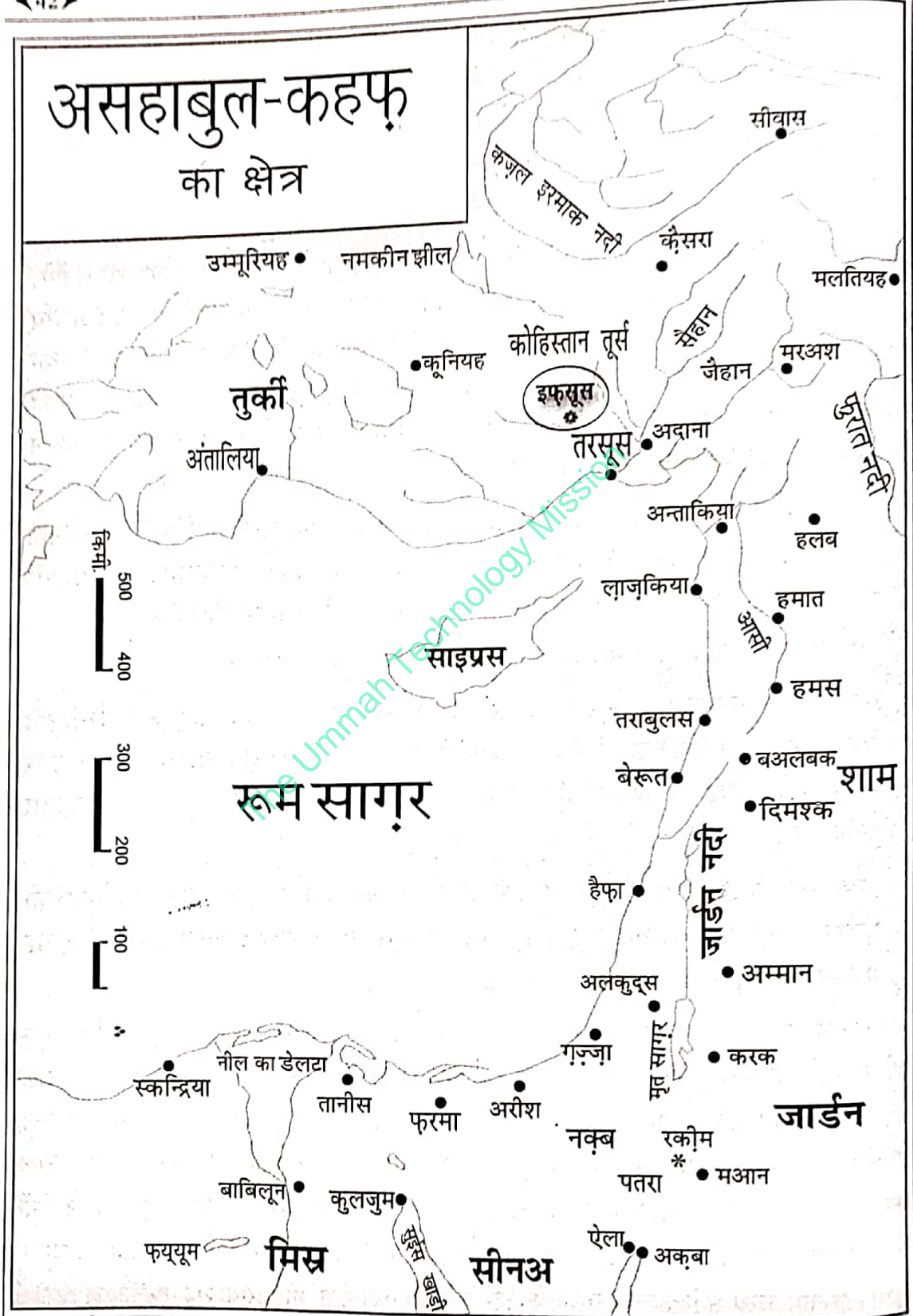
अब आइए हम इतिहास के पन्नों को उलट-पलटकर देखें कि ये असहाबे-कहफ़ कौन थे, उनके साथ किस स्थान पर यह घटना घटित हुई?

हमें ईसाइयों के इतिहास से पता चलता है कि पहली शताब्दी से लेकर चौथी शताब्दी तक ईसाइयों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कभी यहूदियों ने उन्हें कष्ट पहुँचाया और अनगिनत ईसाइयों की हत्या की और कभी स्वयं ईसाई आपस में लड़ते रहे। क्योंकि ईसा (عليه السلام) के धरती से उठ जाने के कुछ ही वर्षों बाद ईसाई दो गरोहों में बँट गए। एक का मत था कि आप अल्लाह के पुत्र हैं, आपका तत्व उलूहियत (ईश्वरत्व) से बना है। दूसरा आपको अल्लाह का रसूल तथा बन्दा मानता था और इस बात से इनकार करता था कि आपके अन्दर उलूहियत प्रवेश कर गई है। चूँकि पहला गरोह सदैव अधिक रहा, इसलिए दूसरे गिरोह को विभिन्न प्रकार से सताया गया। असहाबे-कहफ़ इस दूसरे गिरोह से संबंध रखते थे, क्योंकि अल्लाह ने उनके लिए 'मोमिन' (आस्थावान) शब्द का प्रयोग किया है।

प्रश्न उठता है कि अत्याचार करनेवाला बादशाह पहले गिरोह से संबंध रखता था या कोई मूर्तिपूजक था ? कुरआन से तो इनमें से कोई बात सिद्ध नहीं होती। परन्तु पुरातन प्रमाण जो हमें इतिहास से मिला है वह 'जेम्स सरोजी' की पुस्तक है, जो सुरयानी भाषा में लिखी गई। क्योंकि ईसा (عليه السلام) के आने से पहले ही इबरानी भाषा समाप्त हो गई थी, उसे केवल यहूदी विद्वान पढ़ा करते थे। शेष जनता 'सुरयानी' भाषा, जो 'इबरानी' की एक शाख़ है, का ही प्रयोग करती थी जो इबरानी की अपेक्षा सरल थी। 'जेम्स सरोजी' असहाबे-कहफ़ की मृत्यु के कुछ वर्ष पश्चात् अर्थात् सन् 452 ई. में पैदा हुआ। उसने यह पुस्तक लगभग 474 ई. में लिखी थी, जिसमें असहाबे-कहफ़ की पूरी कहानी बड़े विस्तारपूर्वक बयान की है। इससे पता चलता है कि जिस राजा के समय में यह घटना घटी उसका नाम डेसिस (DECIUS) था, जिसको अरबी इतिहासकारों ने दक़ियानूस नाम दिया है। उसने सन् 249 से 251 ईसवी तक रोम पर शासन किया। उसने ईसाइयों पर बड़ा अत्याचार किया। कहा जाता है कि उसने तीन लाख लोगों की हत्या की, जिसके कारण कुछ व्यक्ति एक गुफा में जा बैठे और उनको नींद आ गई। फिर ये उस समय नींद से उठे जब रोम में ईसाई धर्म फैल चुका था। वहाँ की दशा बिलकुल बदल चुकी थी, रोम का शासक द्वितीय थ्यूडोसीस (THEODOSIS) ईसाई धर्म ग्रहण कर चुका था। जब उनका साथी पुराना रुपया लेकर शहर में कुछ ख़रीदने गया तो उसको देखते ही लोग आश्चर्य में पड़ गए।

यह समाचार जंगल में आग की तरह सारे देश में फैल गया और लोग बड़ी संख्या में गुफा की ओर भागने लगे, ताकि उन लोगों को देखें। जब असहाबे-कहफ़ को सूचित किया गया कि वे लोग तो तीन सौ वर्ष तक सोते रहे हैं तब वे भी चकित हो उठे। उन्होंने आने वालों को सलाम किया और फिर सो गए। और फिर इसी हालत में उनका देहान्त हो गया।

याक़ूत हमवी ने अपनी किताब मोअजम बुल्दान (4:274) में लिखा है कि ख़लीफ़ा वासिक़ बिल्लाह (227-232 हिजरी) ने मुहम्मद-बिन-मूसा ख़वारिज़मी को असहाबे-कहफ़ की गुफा का

पता लगाने के लिए रोम की ओर भेजा (अर्थात् फ़िलस्तीन तथा सीरिया, क्योंकि यह उस समय रोम ही का भाग था) तो वह खोजते हुए एक गुफा तक पहुँचा, जिसके दहाने पर एक घर बना हुआ था, और एक व्यक्ति वहाँ बैठा था। वह उसे गुफा में ले गया। वहाँ उसने तेरह लाशें देखीं। उसने बताया कि सात तो असहाबे-कहफ़ हैं, शेष छः लोगों को पवित्रता के लिए रख दिया गया है। उनके मुँह खुले हुए थे। ऐसा लग रहा था कि वे सो रहे हैं। और फिर पता नहीं चला कि उनका क्या बना। इस कहानी को स्वीकार करने में कुछ कठिनाइयाँ हैं। एक तो यह कि उनके नींद से उठने की कथा थ्यूडोसीस के शासनकाल की बताई जाती है, जिसने सन 408 से लेकर 450 ईसवी तक शासन किया। इस प्रकार उनके गुफा में रहने का समय काल 196 वर्ष बनता है, जबकि क़ुरआन 309 वर्ष बताता है।

परन्तु क़ुरआन के कुछ विद्वानों का विचार है कि उनके सोने की अवधि 309 वर्ष नहीं थी, बल्कि यह अवधि उन ईसाइयों की है जिनका विचार था कि वे 309 वर्ष तक सोए रहे। इसी लिए क़ुरआन ने इसकी पुष्टि नहीं की, बल्कि यह कह दिया कि सही समयावधि का ज्ञान तो केवल अल्लाह को है। (देखिए तफ़सीर इब्ने-जरीर तबरी, 8:152)

द्वितीय यह कि क़ुरआन कहता है कि उनकी संख्या का ज्ञान केवल अल्लाह को है जबकि वे लोग सात बताते हैं।

तृतीय यह कि ये लोग उस नगर का नाम 'इफ़सस' बताते हैं, जहाँ यह घटना घटी। क़ुरआन से पता चलता है कि उसका नाम 'रक़ीम' है और इस नाम का एक शहर फ़िलस्तीन में पाया जाता था। यह नगर रेकेम के नाम से बाइबल में आया है, जो यरुशलम के पश्चिम में है (देखिए यहोशू, 18:27)। इन सब कारणों से हम इस घटना को असहाबे-कहफ़ की घटना नहीं मान सकते, हो सकता है उसी प्रकार की कोई दूसरी घटना घटी हो। क्योंकि प्रथम तीन शताब्दियों में जब उनपर अत्याचार किया जाता रहा, ईसाइयों की बहुत बड़ी संख्या ऐसी थी जो जंगलों और पहाड़ों की गुफाओं की ओर चली गई और वहाँ ईश्वर के ज्ञान-ध्यान में लग गई। क़ुरआन उनकी ओर संकेत करते हुए कहता है—

«संसार-त्याग (वैराग्य) की प्रथा उन्होंने स्वयं ही बना ली, जबकि हमने उनको इसका आदेश नहीं दिया था।» (सूरा–57, अल-हदीद, आयत–27)

असहाबुल-उख़दूद

इसका अर्थ है खाईवाले। इनका वर्णन सूरा बुरूज में आया है, जिसमें कहा गया है—

«नष्ट हों खाईवाले, ईंधन भरी आगवाले, जबकि वे लोग वहाँ बैठे होंगे और ईमानवालों के साथ जो कुछ करते रहे, उसे देखेंगे। उन्होंने उन (ईमानवालों) से इसलिए बदला लिया और शत्रुता की कि वे केवल एक अल्लाह पर ईमान लाए थे, जो प्रभुत्वशाली तथा

प्रशंसा का अधिकारी है। और जो आकाशों तथा धरती का स्वामी है। और अल्लाह हर चीज़ का साक्षी है।» (सूरा–85, बुरूज, आयत–4-9)

इन आयतों में एक ऐतिहासिक घटना की ओर संकेत किया गया है जिसका वर्णन इब्ने-इसहाक़ ने अपनी किताब 'किताबे-सियर' में किया है, जो इस प्रकार है: यमन के हिमयरी राजा 'ज़ूनवास' (DHUNAWAS) ने, जो यहूदी था, अपने पड़ोसी 'नजरानियों' पर आक्रमण कर दिया, जो ईसा (عليه السلام) के धर्म पर थे। उनको यहूदियत ग्रहण करने या मृत्यु को गले लगाने का आदेश दिया। उन्होंने यहूदियत ग्रहण करने से इनकार कर दिया। इसपर उसने एक बहुत बड़ा गढ़ा खुदवाया, और उसको भड़कती हुई आग से भर दिया और आदेश का उल्लंघन करनेवालों को उसमें डलवा दिया। कहा जाता है कि बीस हज़ार लोगों को उसने जलाकर मार डाला। उसने न केवल उनको मृत्युदण्ड दिया, बल्कि वह गढ़े के किनारे बैठकर ख़ुश होता। जब इसकी सूचना रोम के राजा को हुई तो उसने हब्शी राजा को, जो ईसाई था, यमन पर चढ़ाई का आदेश दिया। हब्शा के सत्तर हज़ार सैनिकों ने यमन पर आक्रमण कर दिया। ज़ूनवास मारा गया। उसकी सेना पराजित हो गई और यमन से यहूदी राज्य समाप्त हो गया। यह घटना लगभग 523 ईसवी में घटी थी।

"नजरान क्षेत्र का एक सुन्दर दृश्य जहां असहाब उख़दूद की घटना हुई"

इस घटना में एक आपत्ति यह सामने आती है कि यहूदी राजा ज़ूनवास ने नजरान पर इस कारण आक्रमण किया था कि उन लोगों ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था और राजा का आदेश था कि यहूदी धर्म स्वीकार करो, वरना तुम्हें हलाक कर दिया जाएगा। जबकि स्वयं इतिहास ही से पता चलता है कि नजरान के वासी मूर्तिपूजा करते थे। फिर ऐसी परिस्थिति में राजा ने उनको यहूदी धर्म ग्रहण करने का आदेश कैसे दिया, क्योंकि यहूदी धर्म तो केवल 'बनी-इसराईल' के लिए विशिष्ट है। उसमें कोई अन्य प्रवेश नहीं कर सकता। अगर कोई अन्य प्रवेश भी करे तो यहूदी उसे स्वीकार नहीं करेंगे। इसलिए अगर इस घटना को सत्य मान भी लिया जाए तो इसका कारण यह हो सकता है कि यहूदी राजा यह नहीं चाहता था कि उसके पड़ोस में कोई ईसाई राज्य स्थापित हो और वह हब्शा से मिलकर यहूदी राज्य के लिए समस्याएँ पैदा करे। इसलिए उसने 'नजरानवालों' से यह कहना चाहा होगा कि वे लोग दुबारा मूर्तिपूजा करने लगें ताकि उनका सम्बन्ध हब्शा राज्य से न होने पाए।
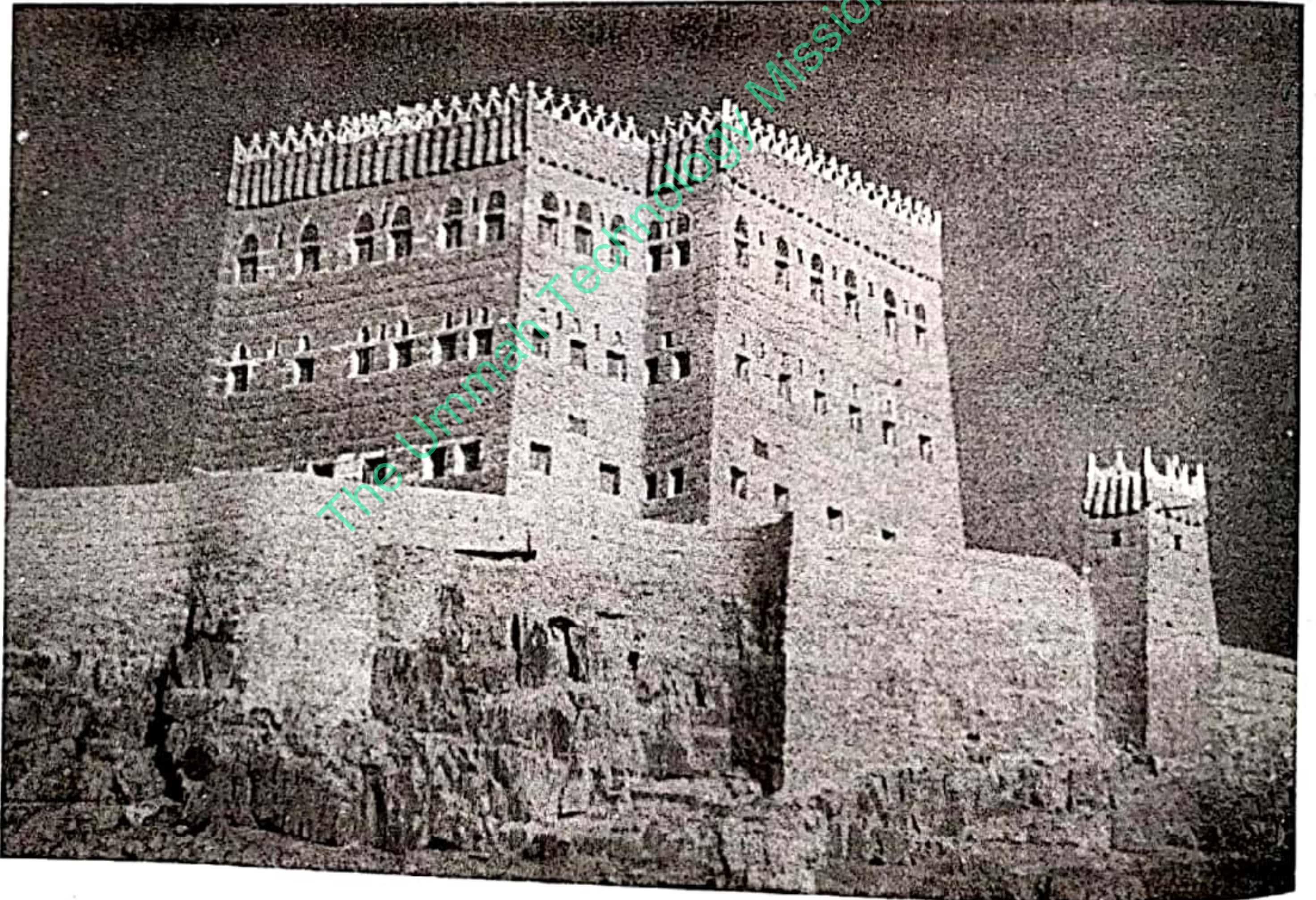
"नजरान में एक पुराने घर का नमूना"

इसलिए सही बात वही है जिसको मुस्लिम ने नबी (ﷺ) से रिवायत किया है। वह यह है कि नजरान के राजा के पास एक जादूगर रहता था, जब वह बूढ़ा हो गया तो उसने राजा से कहा, "मुझे कोई ऐसा होनहार बालक दे दे, जिसे मैं जादू सिखा सकूँ।" उसको एक ऐसा बालक दे दिया गया। परन्तु वह बालक जादूगर के पास आते-जाते मार्ग में एक पादरी से मिलता रहा, और उसके द्वारा उसने उसी का धर्म स्वीकार कर लिया। अल्लाह ने उसे कुछ चमत्कार प्रदान कर दिए, जैसे वह अंधों की

रौशनी वापस कर देता, कोढ़ी को स्वस्थ बना देता। जब जादूगर को यह मालूम हुआ कि बालक तो ऐकेश्वरवादी हो गया है तो जादूगर ने पहले तो पादरी की हत्या करा दी और फिर बालक की हत्या करवाने की कोशिश करने लगा, परन्तु वह उसमें असफल रहा। अब बालक ने स्वयं बताया कि अगर तुम मेरी हत्या करना चाहते हो तो एक दिन लोगों को इकट्ठा करो और यह कहकर तीर चलाओ कि इस बालक के प्रभु के नाम से। राजा ने ऐसा ही किया। जब लोगों ने यह देखा तो वे पुकार उठे, "हम इस बालक के प्रभु पर ईमान लाते हैं।" यह देखते ही राजा क्रोधित हो उठा, उसने कहा, "हम जिससे रोक रहे थे, वही हो गया।" उसने बड़े-बड़े गड्ढे खुदवाए और उसमें आग भड़काई, और जो लोग ईसाई धर्म छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुए, उनको उस गड्ढे में डालने का आदेश दे दिया। (देखिए हदीस : मुस्लिम, 3005) इस प्रकार लगभग बीस हज़ार लोगों को दहकती आग में डाल दिया गया। नजरान के इतिहास के अनुसार यह कारण अधिक सही लगता है, क्योंकि नजरान के रहनेवाले मुशरिक (बहुदेववादी) थे, जब वे ईमान लाए तो मुशरिक राजा ने उनके साथ यह बरताव किया। इसी की ओर क़ुरआन संकेत करता है–

«जब वे उस गड्ढे के पास बैठे हुए थे, और जो कुछ वह ईमानवालों के साथ कर रहे थे उसे देख रहे थे। उन ईमानवालों से उनकी शत्रुता का कारण केवल यह था कि वह उस अल्लाह पर ईमान लाए थे, जो प्रभुत्वशाली तथा प्रशंसा का तन्हा अधिकारी था।»
(सूरा–85, अल-बुरूज, आयतें–6-8)
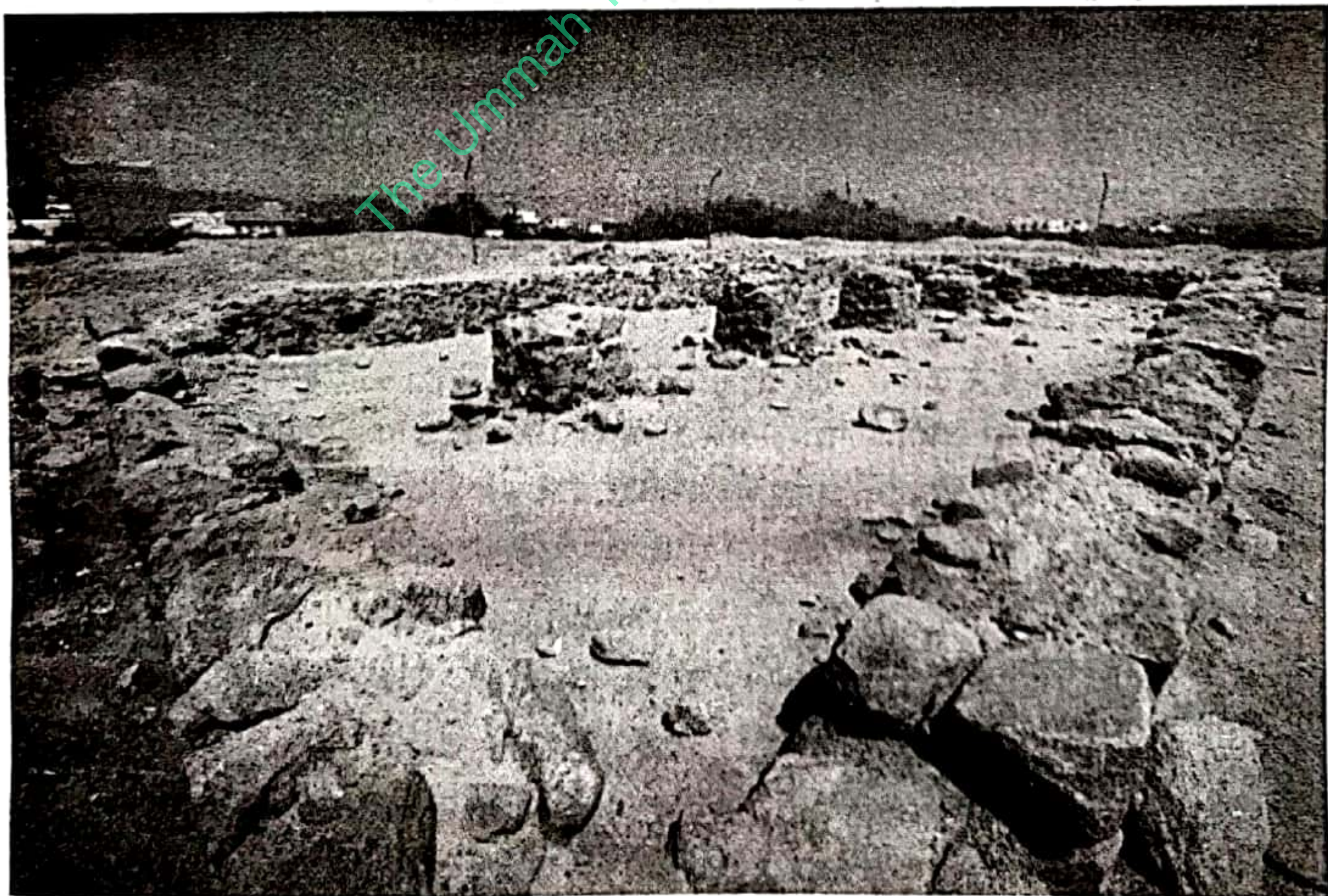
"पुराना दृश्य जहां असहाब उखदूद की घटना हुई"

बहरहाल कारण जो भी हो 'असहाबुल-उख़दूद' की घटना की पुष्टि छठी शताब्दी ईसवी के विद्वानों के लेखों और पुस्तकों से भी होती है। इनमें तीन पुस्तकें ऐसी हैं, जिनके लेखक समकालीन थे। 'प्रोकोप्यूस', 'कोसमास', तथा 'जोहान्स इफ़सोसी'। इसी प्रकार बाद के ईसाई इतिहासकारों ने भी अपने लेखों में नजरान की इस घटना को बड़े विस्तार के साथ बयान किया है। कुछ लोगों ने तो उस स्थान का भी पता लगा लिया है, जहाँ पर गड्ढे बनाए गए थे। और नजरान के लोग उन गड्ढों को आज भी जानते हैं।

क़ुरआन 'असहाबुल-उख़दूद' का वर्णन करके ईमान लानेवाले मुसलमानों को धीरज बंधा रहा है कि तुमसे पहले इस प्रकार की घटना हो चुकी है। इसलिए अगर मक्का के लोग तुम्हें कष्ट पहुँचा रहे हैं तो तुम सब्र से काम लो। एक दिन ऐसा आएगा जब तुम्हारा प्रभु इन मक्कावालों से बदला लेगा और तुम्हारा धर्म संसार में फैल जाएगा। मक्का के इस्लाम-विरोधी जो भी चाल चलेंगे उसका उलटा प्रभाव पड़ेगा, और फिर ऐसा ही हुआ। इस्लाम धर्म फैलता गया और मक्का के इस्लाम-विरोधी नष्ट हो गए और मक्का दारुल इस्लाम बन गया।

असहाबुल-क़रिया

असहाबुल-क़रिया का अर्थ है बस्तीवाले। इन बस्तीवालों का वर्णन क़ुरआन मजीद में इस प्रकार आया है –

«उदाहरण के लिए बस्तीवालों का क़िस्सा उनके सामने रखो, जब उनके पास रसूल आए, जबकि हमने उनके पास दो को भेजा, तो उन्होंने उनको झुठला दिया, जिसपर हमने उनकी सहायता के लिए तीसरा भेजा, तो उन तीनों ने कहा, "हम तुम्हारे पास रसूल बनाकर भेजे गए हैं।" उन लोगों ने कहा, "तुम तो हमारी ही तरह साधारण मनुष्य हो, और 'रहमान' ने कोई चीज़ (तुमपर) उतारी नहीं, तुम तो केवल झूठ बोलते हो।" उन्होंने कहा, "हमारा 'रब' जानता है कि हम तुम्हारी ओर भेजे गए हैं। और हमारा कर्त्तव्य तो केवल स्पष्ट रूप से पहुँचा देना है।" उन्होंने कहा, "हम तो तुम्हें अशुभ समझते हैं। यदि तुम न रुके तो तुमपर पथराव कर देंगे, और तुमको हमारी ओर से कड़ा कष्ट पहुँचेगा। उन्होंने कहा : तुम्हारा अशुभ तो तुम्हारे साथ ही लगा हुआ है। क्या ये बातें तुम इसलिए कर रहे हो कि तुमको चेतावनी दी गई ? सत्य तो यह है कि तुम सीमा का उल्लंघन करनेवाले हो।" इतने में नगर के दूरस्थ स्थान से भागता हुआ एक मनुष्य आया और बोला, "ऐ मेरी जाति के लोगो, इन रसूलों के मार्गदर्शन को अपनाओ, ऐसे लोगों का मार्गदर्शन अपनाओ जो तुमसे कोई बदला नहीं माँगते और वे सत्य मार्ग पर हैं।"» (सूरा–36, या-सीन, आयतें–13-21)

इन आयतों में किसी ऐसी बस्तीवालों का वर्णन आया है जिनको मक्का के रहनेवाले भली प्रकार जानते थे। इसलिए किसी ने नबी (ﷺ) से उनके विषय में कोई प्रश्न नहीं किया, और उनके विषय में कोई और जानकारी क़ुरआन तथा सहीह हदीसों में नहीं दी गई है।

अब यह प्रश्न उठता है कि वे कौन लोग थे, और उनकी बस्ती का क्या नाम था? इस विषय में क़ुरआन के व्याख्याकारों ने जो कुछ लिखा है। यहाँ उनका संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत है –

1. सबसे प्रसिद्ध व्याख्या जो इब्ने-अब्बास, काब अहबार तथा वहब-बिन-मुनब्बह ने की है, वह यह है कि उस बस्ती का नाम अन्ताकिया बताया गया है जो सीरिया और टर्की की सीमा के निकट है। और उन तीन नबियों के नाम सादिक़, सदूद तथा शलूम बताए हैं। इब्ने-इसहाक़ ने कहा है कि इसकी अस्नाद (प्रमाण) में निरन्तरता नहीं है। (अर्थात् इनक़िताअ है) और ऐसी अस्नाद को स्वीकार नहीं किया जा सकता। (देखिए: इब्ने-जरीर तबरी, 22:156)

2. कुछ का विचार है कि उन तीनों को हज़रत 'ईसा' (ﷺ) ने अन्ताकिया धर्म प्रचार के लिए भेजा था, एक का नाम 'शमऊन' दूसरे का 'यूहन्ना' और तीसरे का 'बोलिस' था।

यह बात इसलिए सही नहीं है कि अन्ताकिया में ईसाई धर्म-प्रचारक ईसा (ﷺ) के बाद पहुँचे थे। और जिनको अल्लाह ने रसूल नहीं बनाया और न रसूल ने अपना रसूल बनाया, वे रसूल कैसे कहे जा सकते हैं? यह बात क़ुरआन के बिलकुल विरुद्ध है। और इतिहास से यह भी सिद्ध नहीं होता कि अन्ताकिया पर कभी अल्लाह का भयंकर प्रकोप आया हो।

जबकि क़ुरआन कहता है –

«वह तो एक चिंघाड़ती हुई चीख़ थी, जिससे वे (पृथ्वी से) सदैव के लिए मिट गए।» (सूरा–36, या-सीन, आयत–29)

अर्थात् सब नष्ट हो गए, और कोई भी बाक़ी नहीं बचा।

3. कुछ लोगों का विचार है कि इन तीन रसूलों से तात्पर्य मूसा, ईसा, तथा मुहम्मद (ﷺ) हैं। ये तीनों ही अरबों की ओर भेजे गए, परन्तु जिस प्रकार उन्होंने मूसा तथा ईसा का इनकार किया, उसी प्रकार अब अरब के लोग मुहम्मद (ﷺ) का भी इनकार कर रहे हैं। अगर वे ऐसा ही करते रहे तो उनको एक चिंघाड़ के द्वारा नष्ट कर दिया जाएगा और उस व्यक्ति से तात्पर्य अबू-बक्र (رضي الله عنه) हैं, जो नगर के दूरस्थ से दौड़ता हुआ आया और बोला: ऐ मेरी जाति के लोगो! रसूलों का आज्ञापालन करो।

परन्तु यह व्याख्या क़ुरआन की आयत से किसी प्रकार मेल नहीं खाती। इसलिए सही बात यह है कि हम क़ुरआन के उद्देश्य को समझने की चेष्टा करें, यह बस्ती कहाँ थी, वे रसूल कौन थे? इसके विषय में जब तक हमें पूरे विश्वास के साथ ज्ञान न हो जाए हमें चाहिए कि हर प्रकार की अटकल से बचें। क़ुरआन तो उस बस्तीवालों की कथा सुनाकर मक्कावालों को इस्लाम की ओर बुला रहा है और उनके इनकार पर कठोर दंड की सूचना दे रहा है।

असहाबुल-फ़ील

अर्थ है हाथीवाले। हाथी को अरबी में 'फ़ील', कहते हैं। इसका वर्णन क़ुरआन में एक बार हुआ है और इसी नाम की एक सूरा उतरी है, जिसमें कुल पाँच आयतें हैं, जिनका अनुवाद यह है –

«क्या तुमने देखा नहीं कि तुम्हारे रब ने हाथीवालों के साथ क्या किया ? क्या उसने उनकी चाल को अकारथ नहीं कर दिया? और उनपर झुण्ड-के-झुण्ड पक्षी भेजे, जो उनपर कंकरीले पत्थर मार रहे थे। अन्ततः उन्हें ऐसा कर दिया, जैसे खाया हुआ भुस हो।» (सूरा–105, अल-फ़ील, आयतें–1-5)

हाथीवालों की कहानी (570-571 ईसवी) के लगभग की है, और यह वही वर्ष है जिसमें नबी मुहम्मद (ﷺ) का जन्म हुआ। अब संक्षेप में हाथीवालों की कहानी का वृत्तान्त प्रस्तुत है –

यमन के दो सरदार थे। एक का नाम अर्वात और दूसरे का अब्रहा था। यह अब्रहा इबराहीम की बिगड़ी हुई शक्ल है। ये दोनों सरदार किसी बात पर लड़ पड़े, जिनमें अर्वात मारा गया। यह ख़बर जब हब्शा के राजा नज्जाशी को पहुँची तो वह बहुत क्रोधित हुआ, और क़सम खाई कि वह अब्रहा को हलाक कर देगा। यह सुनते ही अब्रहा ने राजा को लिखा कि मैं यमन में एक ऐसा गिरजा बनाऊँगा जैसा आज तक किसी स्थान पर नहीं है, और अपने किए की क्षमा माँगी। राजा उसकी बातों से प्रसन्न हुआ। क्योंकि वह भी चाहता था कि अरब प्रायद्वीप में ईसाई धर्म का प्रचार हो। अब्रहा ने बहुत बड़ा गिरजा बनवाया और अरबवासियों में मुनादी करा दी कि अब वे इसकी यात्रा करें, और काबा की यात्रा करना बन्द कर दें जो मक्का में है। परन्तु उसे इसमें कामयाबी नहीं मिली। लोगों ने उसकी मुनादी पर ध्यान नहीं दिया। इसलिए उसने इरादा किया कि क्यों न काबा को ढा दिया जाए ताकि उसकी यात्रा बन्द हो जाए। इस काम के लिए उसने बहुत बड़ी सेना तैयार की और अपने साथ कुछ हाथियों को भी ले लिया ताकि अरब के लोग उनको देखते ही भयभीत हो जाएँ।

जब अब्रहा मक्का के निकट पहुँच गया और क़ुरैश ने अन्दाज़ा लगाया कि वे इस बड़ी सेना का मुक़ाबला नहीं कर सकते तो उन्होंने मक्का ख़ाली कर दिया और स्वयं पर्वतों की चोटियों पर चले गए। जाने से पहले उन्होंने काबा में जाकर यह दुआ की, "ऐ अल्लाह, अब तू ही अपने घर की रक्षा करना, क्योंकि हम अब्रहा की सेना का मुक़ाबला नहीं कर सकते।" और फिर वे पर्वतों की चोटियों पर चले गए ताकि देखें कि अब अबरहा की सेना के साथ क्या होता है ?

अब इसी की ओर क़ुरआन संकेत करते हुए बताता है –

«हम ने उन पर पक्षियों के झुण्ड-के-झुण्ड भेजे, जो पत्थर की कंकरियों से उनको मार रहे थे।»

असहाबुल-फ़ील

"क्या आप ने नहीं देखा कि आप के रब ने हाथी वालों के साथ क्या किया?" (फ़ील:१०५/१)

कुलजुम
ऐला
अक़बा
सीनअ
मद्यन
तबूक
ज़बा
मिस्र
ख़ैबर
नील नदी
यनबोअ
मदीना मुनव्वरा
हिजाज़
नज्द
नौबिया रेगिस्तान
जिद्दा
मक्का मुकर्रमा
सूडान
लाल सागर
असीर
नील नदी
नजरान
किमी.
सनआअ
यमन
इकसूम
असब
ताना झील
अदन खाड़ी
अर्ज़क़ नील नदी
सतह उंचाई हबशा
सूमालिया
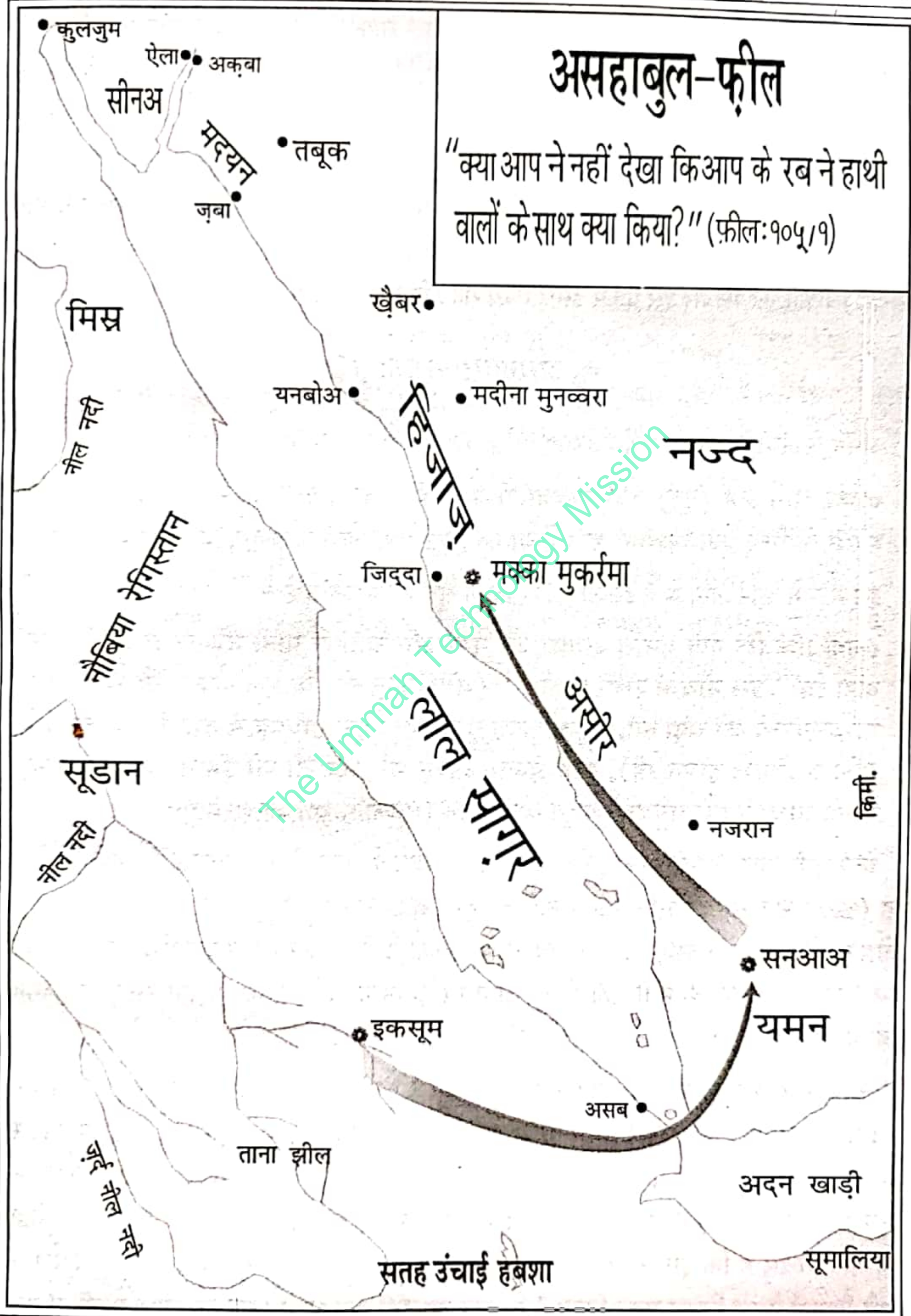
कहा जाता है कि पक्षियों का एक बहुत बड़ा झुण्ड लाल सागर से आया। प्रत्येक पक्षी की चोंच में एक और पंजों में दो कंकरियाँ थीं। कंकरी जिसको लगती, वह वहीं ढेर हो जाता। अल्लाह इस प्रकार मक्कावालों को यह याद दिला रहा है कि हमने तुम्हारी कैसे रक्षा की और आज तुम हो कि मेरे अन्तिम नबी (ﷺ) को झुठला रहे हो, अगर तुमने यह मार्ग नहीं छोड़ा तो तुमपर भी अल्लाह की यातना आ सकती है। उधर यमन की दशा यह हुई कि कुछ ही दिनों बाद ईसाई धर्म का ज़ोर टूटने लगा, सन् 575 ईसवी में उसपर ईरान का अधिकार हो गया और ईरानी शासन का अन्त उस समय हुआ जब 628 ईसवी में ईरानी गवर्नर ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। इस प्रकार ईसाई राज्य सदैव के लिए यमन से समाप्त हो गया।

असहाबुस-सफ़ीना

अर्थात् नाववाले। इनका वर्णन क़ुरआन में केवल एक बार आया है –

«फिर हमने उन्हें (नूह) तथा नाववालों को बचा लिया, और हमने इस घटना को सारे संसार के लिए एक निशानी बना दिया।» (सूरा–29, अल-अनकबूत, आयत–15)

इस नाव में कौन लोग थे? इसका कुछ विवरण सूरा हूद में आया है –

«यहाँ तक कि जब हमारा आदेश आ गया और स्रोत से पानी उबलने लगा तो हमने कहा कि "इस नाव में सभी प्रकार के (जीव-जन्तुओं) के एक-एक जोड़े और अपने परिवारवालों को चढ़ा लो, परन्तु उनको न चढ़ाना जिनके विषय में बात तय पा चुकी है (कि वे विनष्ट होकर रहें), इसी प्रकार उनको भी चढ़ा लो जो ईमान लाए।" किन्तु उसके साथ ईमान लानेवाले बहुत थोड़े थे।» (सूरा–11, हूद, आयत–40)

यहाँ सभी प्रकार के जीव-जन्तुओं का मतलब है जिनकी आपको आवश्यकता है। क्योंकि एक तो नूह (عليه السلام) सारे संसार के लिए नबी नहीं थे, दूसरे यह असम्भव है कि आप सारे जीव-जन्तुओं के जोड़े नाव में चढ़ा लें। इसी प्रकार यह विचार भी ग़लत है कि तूफ़ान सारे संसार में आया था, क्योंकि जब आप सारे संसार के नबी नहीं थे तो आप पर ईमान न लाने के कारण सारे संसार को क्योंकर डुबोया जा सकता है?

क़ुरआन ने बाइबल की इस ग़लती को ठीक किया है जिसमें कहा गया है कि इस तूफ़ान से पृथ्वी के सारे पर्वत डूब गए। इसी प्रकार पृथ्वी पर जीवन बितानेवाले सारे मनुष्य, पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े सब ही नष्ट हो गए। केवल वे लोग बचे जो नूह पर ईमान लाए। (देखिए: उत्पत्ति, 7:20-24) क़ुरआन में प्रत्यक्ष रूप से यह नहीं बताया गया है कि इस तूफ़ान से सारे व्यक्ति नष्ट हो गए। परन्तु कुछ विद्वानों का यही विचार है कि इस समय जो मनुष्य पाए जाते हैं वे नूह ही की संतान हैं, जिसके कारण कुछ दूसरे विद्वानों ने यह विचार प्रकट किया है कि जब नूह नबी बनाकर भेजे गए उस समय पृथ्वी पर मनुष्य

जाति केवल नूह की ही जाति थी। अभी मनुष्य पृथ्वी के दूसरे भागों में नहीं पहुँच पाए थे। ऐसी दशा में इस भयंकर तूफ़ान से नूह के परिवार और उनपर ईमान लानेवालों के अतिरिक्त सारे मनुष्य नष्ट हो गए।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या पृथ्वी के दूसरे भागों जैसे भारत, ऑस्ट्रेलिया आदि देशों के प्राचीन इतिहास में भी किसी तूफ़ान का वर्णन मिलता है? तो इसका उत्तर यह है कि ये लोग नूह के ही वंश के हैं, जो धीरे-धीरे पृथ्वी पर फैल गए, और आनेवाली नस्लों के लिए प्राचीन इतिहास को लिख लिया, क्योंकि इराक़ के दजला तथा फ़ुरात के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान पर इस भयंकर तूफ़ान के चिह्न नहीं मिलते।

«और फिर वह नाव 'जूदी' नामक पर्वत् पर ठहर गई।» (सूरा–11, हूद, आयत–44)

यह जूदी पर्वत कहाँ है ? क़ुरआन और सहीह हदीसों में कुछ नहीं बताया गया है। बाइबल में इसको 'अरारात' पर्वत कहा गया है। (उत्पत्ति 8:4) इसाई मसीही विद्वानों का विचार है कि यह पर्वत आरमीनिया में है, जो समुद्र से 16916 फ़िट ऊँचा है। (देखिए : क़ामूस, किताब मुक़द्दस, पृ. 42)

मुस्लिम विद्वानों का विचार भी इसी के सन्निकट है। वे कहते हैं कि अरब प्रायद्वीप तथा मूसिल, जो इराक़ का एक प्रसिद्ध शहर है, के बीच जूदी नामक पर्वत पाया जाता है और वहाँ के लोग आज भी इस पर्वत को जूदी ही कहते हैं। तौरात के कुछ व्याख्याकार, जो मसीह (ﷺ) के पूर्ववर्ती थे, इस पर्वत का नाम जूदी ही बताते हैं। (देखिए : तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-11, हूद, आयत-44, टि.46)

असहाबुस-सब्त

इसका अर्थ है शनिवार वाले। क़ुरआन मजीद में आया है –

«जिस प्रकार हमने असहाबुस-सब्त पर लानत की थी।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–47)

'सब्त' इबरानी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है आराम। सब्त, जिसको हिन्दी में शनिवार कहते हैं, सप्ताह का अन्तिम दिन है। यहूदी धर्मानुसार इस दिन ख़ुदा ने संसार की रचना करने के पश्चात् विश्राम किया।

बाइबल की 'उत्पत्ति' नामक पुस्तक में आया है –

"यूँ आकाश और पृथ्वी और उनकी सारी सेना का बनाना समाप्त हो गया। और परमेश्वर ने अपना काम, जिसे वह करता था, सातवें दिन समाप्त किया, और उसने अपने किए हुए सारे काम से सातवें दिन विश्राम किया और परमेश्वर ने सातवें दिन को आशीष दी और पवित्र ठहराया, क्योंकि उसमें उसने अपनी सृष्टि की रचना के सारे काम से विश्राम किया।" (उत्पत्ति 2:1-3)

इसी प्रकार 'निर्गमन' नामक पुस्तक में यूँ आया है –

"तू विश्राम-दिन को पवित्र मानने के लिए स्मरण रखना। छः दिन तो तू परिश्रम करके अपना सब काम-काज करना, परन्तु सातवें दिन तेरे परमेश्वर 'यहोवा' के लिए विश्राम-दिन है, उसमें न तो तू किसी भाँति का काम-काज करना, और न तेरा बेटा, न तेरी बेटी, न तेरा दास, न तेरी दासी, न तेरे पशु, न कोई परदेशी, जो तेरे फाटकों के भीतर हो। क्योंकि छः दिन में यहोवा ने आकाश और पृथ्वी, समुद्र और जो कुछ उनमें है, सब को बनाया, और सातवें दिन विश्राम किया। इस कारण यहोवा ने विश्राम-दिन को आशीष दी और उसको पवित्र ठहराया।" (बाइबल, पुस्तक निर्गमन, 20:8-11)

इन शिक्षाओं का विरोध करनेवालों के लिए बाइबल ने कठोर दंड का आदेश दिया है। एक लकड़ी चुननेवाले की हत्या पत्थर मारकर इसलिए कर दी गई कि उसने इस दिन का सम्मान नहीं किया था। बाइबल की 'गिनती' नामक पुस्तक में आया है– "जब इसराईली निर्जन स्थान में रहते थे उन दिनों एक मनुष्य विश्राम के दिन लकड़ी बीनता हुआ मिला। जिन लोगों को वह लकड़ी बीनता हुआ मिला, वे उसको मूसा, हारून और सारी मण्डली के पास ले गए। उन्होंने उसको हवालात में रखा, क्योंकि ऐसे मनुष्य के साथ क्या करना चाहिए वह प्रकट नहीं किया गया था। तब यहोवा ने मूसा से कहा, "वह मनुष्य निश्चय ही मार डाला जाए; सारी मण्डली के लोग छावनी के बाहर उसपर पथराव करें।" जैसी यहोवा ने मूसा को आज्ञा दी थी, उसी के अनुसार सारी मण्डली के लोगों ने उसको छावनी से बाहर ले जाकर उस पर पथराव किया और वह मर गया।" (गिनती, 15:32-36)

इसी प्रकार 'यिर्मयाह' नबी, जो लगभग 628-586 ईसा पूर्व थे, ने भी यहूदियों को धमकी दी कि अगर तुम लोग शनिवार को काम-काज करोगे और विश्राम नहीं करोगे तो मैं यरुशलम को आग लगा दूँगा।

"परन्तु यदि तुम मेरी सुनकर विश्राम के दिन को पवित्र न मानो और उस दिन यरुशलम के फाटकों से बोझ लिए हुए प्रवेश करते रहो, तो मैं यरुशलम के फाटकों में आग लगाऊँगा, और उससे यरुशलम के महल भी भस्म हो जाएँगे और वह आग फिर न बुझेगी।" (बाइबल : यिर्मयाह, 17:27)

इसी प्रकार 'यहेजकेल' नबी जो लगभग 595-536 ईसा पूर्व थे, उन्होंने भी यहूदियों को शनिवार को अपवित्र करने से डराया। (देखिए, बाइबल : यहेजकेल, 20:12-24)

परन्तु ऐसा लगता है कि यहूदी अपने नबियों की शिक्षाओं के विरुद्ध शनिवार को विश्राम करने पर किसी प्रकार तैयार नहीं हुए, बल्कि कुछ हीले-बहानों के द्वारा इस दिन विभिन्न प्रकार के काम करते रहे। इसके कारण अल्लाह ने उन्हें धिक्कारे हुए बन्दर बना दिया। क़ुरआन की सूरा–2, अल-बक़रा में संक्षेप में और सूरा–7, अल-आराफ़ में विस्तारपूर्वक इस प्रकार वर्णन हुआ है–

«और तुम उन लोगों के विषय में तो जानते ही हो, जिन्होंने शनिवार की मर्यादा का उल्लंघन किया था, तो हमने उनसे कह दिया : बन्दर हो जाओ धिक्कारे हुए!» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–65)

«और आप उनसे उस बस्ती के नागरिकों के विषय में पूछें जो समुद्र के तट पर थी, जबकि वे सब्त (शनिवार) की मर्यादा भंग करते थे। जब उनके शनिवार के दिन उनकी मछलियाँ पानी के ऊपर उभर कर उनके सामने आ जाती थीं। और जब उनके शनिवार का दिन नहीं होता था तो उनके समक्ष न आती थीं। इस प्रकार हम अवज्ञाकारी होने के कारण उनकी परीक्षा ले रहे थे।» (सूरा–7, आराफ़, आयत–163)

क़ुरआन और सहीह हदीसों में उस नगर का नाम नहीं आया है। परन्तु क़ुरआन की वर्णनशैली से स्पष्ट होता है कि इसका ज्ञान मदीना के यहूदियों को था, इसी लिए उनकी ओर से कोई प्रश्न नहीं उठाया गया। विद्वानों का विचार है कि यह नगर क़ुलज़ुम सागर के किनारे पर आबाद था। उनके बन्दर बनने का वर्णन बाइबल में नहीं आया है, जिससे अनुमान होता है कि यह घटना बाइबल की रचना के बाद घटी। लेकिन यहूदियों को इसका ज्ञान था।

क़ुरआन में है –

«फिर हमने इसे सामनेवालों और बाद वाले लोगों के लिए शिक्षा-सामग्री और डर रखनेवालों के लिए नसीहत बनाकर छोड़ा।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–66)

अर्थात् बन्दर बनाए जाने की घटना से अगर यहूदी परिचित नहीं होते तो यह घटना किस प्रकार उनके लिए सावधान रहने का कारण बनती। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उनको बन्दर के रूप में बदल दिया गया था। अगर केवल उनके हृदय बन्दरों जैसे हो जाते तो यह सावधान रहने तथा शिक्षा ग्रहण करने का कारण नहीं बनता।

यहाँ इस बात का भी खंडन करना अनिवार्य है कि इस समय जो बन्दर पाए जाते हैं वे बनी-इसराईल की जाति के नहीं हैं, जिनको बन्दर बना दिया गया था। एक सहीह हदीस में आया है –

"अल्लाह ऐसे लोगों का वंश नहीं चलाता जिनका रूप उसने किसी कारणवश (किसी अन्य प्राणी में) परिवर्तित कर दिया है।" (सहीह मुस्लिम, 2662)

असहाबुल-हिज्र

अर्थ है 'हिज्र' के निवासी। हिज्र एक नगर का नाम है, जो 'समूद' जाति का केन्द्र था। अब यह नगर तो विनष्ट हो चुका है, परन्तु उसी के निकट एक और नगर का पता चला है जिसको 'मदायन-सालेह' कहते हैं। वहाँ अब तक वह कुआँ पाया जाता है जिससे सालेह (عليه السلام) की ऊँटनी पानी पिया करती थी। परन्तु हिज्रवालों ने उसकी हत्या कर दी और सालेह की दावत को ठुकरा दिया जिसके कारण वे अल्लाह की यातना में पकड़ लिए गए।

«हिज्र के वासियों ने रसूलों को झुठलाया, जबकि हमने उनको अपनी आयतें प्रदान कीं परन्तु उन्होंने उनसे किनारा किया, और वे पहाड़ों को काट-काटकर घर बनाते थे। और अपनी जगह निश्चिन्त थे। फिर उन्हें प्रात:काल होते-होते एक भयानक आवाज़ ने आ लिया, तो वे जो कुछ कमाते थे उनके काम नहीं आया।» (सूरा–15, अल-हिज्र, आयतें–80-84)

इनका कुछ विवरण शब्द 'सालेह' तथा 'समूद' के अन्तर्गत भी देखा जा सकता है।

असहाबुर-रस्स

इसका अर्थ है कुएँवाले। 'रस्स' अरबी भाषा में कुएँ को कहते हैं। असहाबुर्रस्स का वर्णन क़ुरआन में दो स्थानों पर आया है, और कहीं भी इनका विस्तृत विवरण नहीं आया है। सहीह हदीसों में भी इनके विषय में कुछ नहीं बताया गया है। इसलिए इसके संबंध में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। इमाम तबरी ने इस संबंध में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं –

1. 'रस्स' कुएँ को कहते हैं। क़ुरआन में जिस जाति को असहाबुर्रस्स कहा गया है उस जाति ने अपने नबी को कुएँ में डाल दिया था। इसलिए उसे असहाबुर्रस्स कहा गया है।
2. 'रस्स' आज़रबेजान के निकटवर्ती क्षेत्र में स्थित एक घाटी का नाम है, जिसमें हज़ारों बस्तियाँ थीं। उन्होंने अपने नबी को झुठलाया, जिसके कारण अल्लाह ने उन्हें नष्ट कर दिया (हो सकता है इससे अभिष्ट 'रूस' हो)।
3. 'रस्स' का अर्थ गुफा भी होता है, इसलिए इसका अभिप्राय 'असहाबुल-उख़दूद' होगा।

यह तीसरा विचार इसलिए सही नहीं है कि क़ुरआन के वर्णन के अनुसार असहाबुर-रस्स हज़रत ईसा से पहले के लोग थे, जबकि 'असहाबुल-उख़दूद' दूसरी या तीसरी शताब्दी मसीह के लोग हैं। 'असहाबुर-रस्स' कोई भी हों क़ुरआन ने उनका वर्णन उन जातियों के साथ किया है, जिन्होंने अपने नबियों को झुठलाया जिसके कारण अल्लाह ने उन्हें नष्ट कर दिया –

«आद, समूद तथा असहाबुर-रस, और उनके बीच बहुत-से सम्प्रदायों को भी नष्ट कर दिया।» (सूरा–25, अल-फ़ुरक़ान, आयत–38)

नके बीच बहुत-से सम्प्रदायों के होने से साफ़ पता चलता है कि 'असहाबुर-रस्स' का ऐतिहासिक काल हज़रत ईसा से पूर्व होना चाहिए –

«इनसे पहले नूह की जाति, अर्रस्सवाले, समूद, आद, फ़िरऔन, लूत के भाई अल-ऐकावाले और तुब्बा के लोग भी झुठला चुके हैं।» (सूरा–50, क़ाफ़, आयत–12-14)

एक मिस्री विद्वान का विचार है कि 'रस्स' वास्तव में 'उर्स' है, जो 'क़फ़क़ाज़' में एक प्रसिद्ध बस्ती का नाम है। यहाँ 'ज़रदुश्त' नाम के एक नबी आए थे। उन्होंने अपनी जाति के लोगों को अल्लाह से डराया, परन्तु वे न माने, जिसके कारण अल्लाह ने उनको नष्ट कर दिया। वे वहाँ से निकलकर ईरान चले गए, और वहाँ उन्होंने अपना संदेश सुनाया। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'अवेस्ता' या उस्ता है जिसमें आज भी 'मुहम्मद' (ﷺ) के विषय में भविष्यवाणी पाई जाती है। 'इब्ने-कसीर' ने भी कुछ विद्वानों के विचार की चर्चा की है कि 'रस्स' 'आज़रबेजान' में एक कुआँ था। इसलिए उनको 'असहाबुर-रस्स' कहा गया है।

हम पूरे विश्वास के साथ यह नहीं कह सकते कि इससे कौन जाति मुराद है। और क़ुरआन का यह विषय भी नहीं है, वह तो केवल उनका वर्णन कर के बताना चाहता है कि जिस प्रकार ये जातियाँ नष्ट हो गईं, अगर तुम भी अपने नबी 'मुहम्मद' (ﷺ) को झुठलाओगे तो तुम्हें भी नष्ट कर दिया जाएगा।

और फिर ऐसा ही हुआ। मक्का के बड़े-बड़े सरदार मारे गए और केवल दस वर्षों में मक्का विजय हो गया और घर-घर में इस्लाम का झंडा लहराने लगा।

असहाबुल-ऐका

इस शब्द का अर्थ है जंगलवाले। मदयन और जंगल में रहनेवालों की ओर शुऐब (عليه السلام) को भेजा गया था। मदयन तो वह शहर है जो इबराहीम (عليه السلام) के पुत्र 'मिदयान' ने (जो उनकी पत्नी कतूरा से पैदा हुए, जिनको हिन्दी बाइबल में 'मदना' कहा गया है [देखिए: उत्पत्ति 25:3]) बसाया था और उन्हीं के नाम पर उस शहर का नाम मदयन पड़ा, जो तबूक के निकट कुलज़ुम के किनारे था। और उसी के दक्षिण में वह जंगल था जहाँ के लोगों को असहाबुल-ऐका कहा गया है। इस जंगल के संबंध में क़ुरआन उतरने के सौ वर्ष पूर्व एक यूनानी भूगोलविद् ने उल्लेख किया है। (सुलैमान नदवी, अर्ज़ुल-क़ुरआन : पृ. 268)

तफ़सीर की किताबों (क़ुरआन-भाष्यों) में भी इस जंगल का वर्णन हुआ है। इब्ने-अब्बास ने भी इस जंगल का वर्णन किया है।

यशायाह नबी ने भी इस जंगल का वर्णन इस प्रकार किया है –

"ऐ ददानी बटोहियो, तुमको अरब के जंगल में रात बितानी पड़ेगी।" (बाइबल-यशायाह, 21-13)

यशायाह नबी संसार वालों को बुख़्त नसर से डरा रहे हैं। उनमें वे अरब लोग भी हैं जिनकी ओर बुख़्त नसर आक्रमण करते हुए आनेवाला था। क्योंकि उन्होंने देखा कि 'ऐका' वाले अत्याचार करने लगे हैं। अल्लाह की उपासना को छोड़कर देवी-देवताओं को अपना पूज्य बनाने लगे हैं। इसलिए अब उनपर अल्लाह का अज़ाब आनेवाला है।

असहाबुल-ऐका के विषय में क़ुरआन में चार सूरतों में उल्लेख हुआ है–

«निश्चय ही घोर वनवाले (असहाबुल-ऐका) अत्याचारी थे। फिर हमने उनसे भी बदला लिया और ये दोनों (भू-भाग) खुले मार्ग पर स्थित हैं।» (सूरा–15, अल-हिज्र, आयत 78-79)

यहाँ दोनों भू-भाग से अभिप्राय है वनवाले, जो शुऐब (ﷺ) की जाति थी, और उनसे पूर्व उनकी निकटवर्ती लूत (ﷺ) की जाति। ये दोनों भू-भाग मक्का से फ़िलस्तीन तथा शाम (सीरिया) जाते हुए एक ही मार्ग पर पड़ते हैं। उन दोनों भू-भागों के वासियों ने नबियों को झुठलाया, उनपर अत्याचार किया तो अल्लाह ने उन दोनों जातियों को पकड़ लिया। क़ुरआन में एक स्थान पर वनवालों की चर्चा कुछ अधिक विस्तारपूर्वक हुई है –

«वनवालों ने रसूलों को झुठलाया, जब शुऐब ने उनसे कहा, "क्या तुम डर नहीं रखते? जबकि मैं तुम्हारे लिए एक अमानतदार (विश्वसनीय) रसूल बनाकर भेजा गया हूँ। अतः तुम अल्लाह से डरो, और मेरी आज्ञा का पालन करो। मैं इस काम पर तुमसे कोई बदला नहीं माँगता। मेरा बदला तो बस सारे संसार के 'रब' (प्रभु) के ज़िम्मे है (अर्थात् वही देगा)। नाप-तोल पूरी किया करो, उसमें घपला करनेवालों में सम्मिलित न हो। और ठीक तराज़ू से तौला करो। और लोगों को उनकी चीज़ों में घटाकर न दो और धरती में उपद्रव मचाते मत फिरो, और उस अल्लाह से डरो जिसने तुमको और पिछली नस्लों को पैदा किया।" उन्होंने कहा, "तुम तो उनमें से हो जिनपर जादू कर दिया गया है। तुम तो हमारे ही जैसे एक आदमी हो, हम तो तुम्हें झूठे लोगों में समझते हैं। यदि तुम सच्चे लोगों में से हो तो हम पर आकाश का कोई टुकड़ा गिरा दो। उसने कहा : जो कुछ तुम कर रहे हो उसे मेरा 'रब' भली-भाँति जानता है। उन्होंने उसे झुठला दिया तो छायावाले दिन की यातना ने उन्हें घेर लिया। निश्चय ही वह बड़े भारी दिन की यातना थी।» (सूरा–26, अश-शुअरा, आयत–176-189)

छायावाले दिन की यातना का अर्थ है कि पहले उनके ऊपर काले घनघोर बादल आए जिनको देखकर वे समझने लगे कि अब पानी की वर्षा होगी, परन्तु उनमें से आग की वर्षा होने लगी, और सब लोग उसमें जलकर राख हो गए।

सूरा सॉद में जंगलवालों का वर्णन भी उन लोगों में आया है जिन्होंने अपने नबियों को झुठलाया और फिर उनको अल्लाह के अज़ाब ने घेर लिया। उनमें नूह की जाति, आद की जाति, मेख़ोंवाले फ़िरऔन की जाति, समूद और लूत की जाति और फिर जंगलवाले हैं। क़ुरआन इन सब जातियों का वर्णन करने के पश्चात कहता है –

«इनमें से हर एक ने रसूलों को झुठलाया तो मेरी ओर से उनको दण्ड अवश्यम्भावी होकर रहा।» (सूरा–38, सॉद, आयत–14)

इसी प्रकार सूरा क़ाफ़ में जंगलवालों का वर्णन उन जातियों के साथ हुआ है जिन्होंने अपने रसूलों को ठुकराया, जैसे नूह की जाति, और रस्स की जाति, समूद की जाति आद की जाति, फ़िरऔन की जाति, लूत की जाति, जंगलवाले और तुब्बा की जाति।

«हर एक ने रसूलों को झुठलाया तो मेरी (यातना की) धमकी पूरी होकर रही।» (सूरा–50, क़ाफ़, आयत–14)

इन जंगलवालों को अल्लाह की यातना ने पकड़ लिया। उससे अगर कुछ बच गए तो छठी शताब्दी ईसा पूर्व बाबिल के राजा 'बुख़्त नसर' ने उन पर आक्रमण करके उन्हें तहस-नहस कर दिया जिसकी सूचना 'यशायाह' नबी ने दी थी।

असहाबुल-आराफ़

आराफ़ का अर्थ है ऊँचा स्थान, असहाबुल-आराफ़ यानी ऊँचे स्थान वाले। विद्वानों का विचार है कि स्वर्ग और नरक के बीच एक ऊँची दीवार होगी, जिसपर कुछ लोग बैठे होंगे। कदाचित् सूरा हदीद में इसी ओर यूँ संकेत किया गया है –

«उस दिन मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) पुरुष एवं मुनाफिक़ महिलाएँ ईमानवालों से कहेंगे, "हमारी प्रतीक्षा करो ताकि हम भी तुम्हारी दिव्य ज्योति से कुछ प्रकाश प्राप्त कर लें।" उत्तर में कहा जाएगा, "पीछे लौट जाओ तथा प्रकाश की खोज करो।" फिर उनके मध्य एक दीवार खड़ी कर दी जाएगी जिसमें द्वार भी होगा। उसके आन्तरिक भाग में (अल्लाह) की कृपा तथा बाह्य भाग में यातना होगी।» (सूरा–57, अल-हदीद, आयत–13)

अब प्रश्न उठता है कि असहाबुल-आराफ़ कौन लोग होंगे ? तो बहुत-से सहाबा का विचार है कि ये वे लोग होंगे जिनके पुण्य कर्म तथा अपुण्य कर्म बराबर होंगे। इसलिए न तो वे स्वर्ग में जा सकते हैं न नरक में। क़ुरआन कहता है –

«उन दोनों के बीच एक ओट होगी और 'आराफ़' पर कुछ लोग होंगे जो हर एक को उनके लक्षणों से पहचान रहे होंगे। और स्वर्गवासियों को पुकारकर कहेंगे, "तुमपर सलाम (शान्ति) हो।" वे अभी तक उसमें प्रवेश तो नहीं कर पाए होंगे, परन्तु उसकी आशा करते होंगे।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत 46)

«जब उनकी निगाहें नरकवासियों पर पड़ेंगी तो कहेंगे, "ऐ हमारे रब, हमें अत्याचारियों के साथ न करना।" और आराफ़वाले कुछ लोगों को, जिनको वे उनके लक्षण से पहचान रहे होंगे, पुकारकर कहेंगे, "तुम्हारे जत्थे तुम्हारे कुछ काम न आ सके, और न तुम्हारा अहंकार।" क्या ये वही लोग नहीं हैं जिनके बारे में शपथ खा रहे थे ? अल्लाह इनको

अपनी कृपा से कुछ भी नहीं देगा। (उनसे कहा जाएगा) कि स्वर्ग में प्रवेश कर जाओ, तुम्हें न तो कोई भय होगा, और न तुम दुःखी होगे।» (सूरा 7, अल-आराफ़, आयतें 47-49)

असहाबुल-जन्नत

असहाबुल-जन्नत का अर्थ है बाग़वाले। क़ुरआन में एक स्थान पर बाग़वालों का एक क़िस्सा बयान हुआ है। वह यह है –

«निश्चय ही हमने इन (मक्का- वालों) की उसी प्रकार परीक्षा ली, जिस प्रकार हमने बाग़वालों की परीक्षा ली थी। जबकि उन्होंने सौगंध खाई कि वे प्रातः काल होते ही उसके फल तोड़ लेंगे।» (सूरा–68, अल-क़लम, आयत–17)

ये बाग़वाले कौन थे। इनका वर्णन न तो क़ुरआन में कहीं आया है और न ही सहीह हदीसों में। परन्तु क़ुरआन ने जिस प्रकार यहाँ वर्णन किया है उससे ज्ञात होता है कि इन लोगों को मक्कावाले भली-भाँति जानते थे। तभी तो मक्कावालों की उनसे तुलना की जा रही है और कहा जा रहा है कि अल्लाह ने उनपर कितने परोपकार किए हैं। उनपर सबसे बड़ा परोपकार तो यह है कि उनमें एक ऐसा नबी भेजा गया है जो सारे संसार के लिए अन्तिम नबी है। उसके पश्चात् कोई नबी नहीं आएगा; इसलिए उन्हें चाहिए कि सबसे पहले वे उसपर ईमान लाएँ। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया, बल्कि उसको ठुकरा दिया। अब उन (मक्कावालों) की तुलना उन बाग़वालों से की जा रही है, जिनको वे भली-भाँति जानते थे कि उनके साथ क्या हुआ –

«जबकि उन्होंने क़सम खाई कि वे प्रातःकाल अवश्य उस (बाग़) के फल तोड़ लेंगे और वे इसमें किसी छूट की कोई गुंजाइश नहीं रख रहे थे (अर्थात् इंशाअल्लाह नहीं कह रहे थे)। अभी वे सो ही रहे थे कि तुम्हारे रब की ओर से उनपर एक आपदा आ पड़ी, वह यह कि बाग़ ऐसा हो गया जैसे कटी हुई खेती।» (सूरा–68, अल-क़लम, आयत-19)

यहाँ इस बात की भी शिक्षा दी जा रही है कि मुसलमानों को चाहिए कि वे जिस काम का भी इरादा करें उसमें इंशाअल्लाह (अर्थात् अगर अल्लाह ने चाहा) का अवश्य प्रयोग करें। जैसा कि एक दूसरी आयत में आया है –

«और किसी काम के लिए कदापि यह न कहना कि कल मैं इसे कर दूँगा, परन्तु अगर अल्लाह ऐसा चाहे।» (सूरा–18, अल-कहफ़, आयतें, 23,24)

अर्थात् इंशाअल्लाह कहा करो। कहते हैं कि उस समय के चलन के अनुसार बाग़ का स्वामी जब फल काटने जाता था तो निर्धनों को बुलाकर कुछ उनको भी दिया करता था। इसकी पुष्टि बाइबल में ईसा (عليه السلام) की शिक्षा से भी होती है।

क़ुरआन की उपर्युक्त आयत में बाग़ के जिन स्वामियों का वर्णन किया जा रहा है उन्होंने सोचा कि हमारा ख़र्च ही कठिनाई से चलता है, हम निर्धनों पर कैसे ख़र्च करें ? इसलिए उन्होंने निर्णय किया कि भोर होते ही हम बाग़ जाएँगे और उसके फल काटकर उठा लाएँगे, ताकि किसी निर्धन को इसका पता ही न चले। एक ओर वे लोग यह निर्णय कर रहे थे, दूसरी ओर अल्लाह भी निर्णय कर रहा था, इस घटना का वर्णन क़ुरआन में इस प्रकार किया गया है –

«तो वह (बाग़) ऐसा हो गया जैसे कटी हुई खेती, फिर प्रातः काल होते ही उन्होंने एक-दूसरे को पुकारा कि अपनी खेती पर सवेरे पहुँचो, यदि तुम्हें फल तोड़ना है। फिर वे चुपके-चुपके बातें करते हुए चल पड़े कि आज कोई निर्धन तुम्हारे पास न आने पाए। और गर्व के साथ प्रातः काल ही पहुँच गए, जैसे वे बड़े शक्तिवान हों, परन्तु जब उन्होंने बाग़ को देखा (जो वीरान हो चुका था) तो कहने लगे, "निस्संदेह हम रास्ता भटक गए हैं। नहीं-नहीं, बल्कि हम अल्लाह की रहमत से वंचित कर दिए गए हैं।" उनमें जो सबसे भला था, बोला, "क्या मैंने तुम्हें कहा नहीं था कि तुम अल्लाह की पवित्रता (तस्बीह) क्यों बयान नहीं करते ?" सब कहने लगे, "ऐ प्रभु तू पवित्र है। निस्संदेह हम ही अत्याचारी थे।" फिर वे एक-दूसरे को बुरा-भला कहने लगे। कहने लगे, "हाय अफ़सोस, निस्संदेह हम उद्दण्ड थे। हो सकता है कि हमारा प्रभु बदले में इससे अच्छा (बाग़) हमें प्रदान करे, हम अपने रब से आस लगाए हुए हैं।"» (सूरा–68, अल-क़लम, आयतें–20-32)

इब्ने-अब्बास का विचार है कि यह बाग़ यमन में था, जबकि दूसरे विद्वानों का विचार है कि यह हब्शा में था। बहरहाल यह बाग़ कहीं भी रहा हो, इस क़िस्से के द्वारा अल्लाह मक्का के इस्लाम विरोधियों को चेतावनी देता है कि अगर तुमने भी बाग़वालों की तरह नीति अपनाई तो तुम्हारा भी अंजाम वही होगा जो बाग़वालों का हुआ। तुम्हें भी नष्ट कर दिया जाएगा। क्योंकि अल्लाह सर्वशक्तिमान है। इसलिए तुमपर अनिवार्य है कि अल्लाह ने जो तुमपर उपकार किए हैं उसके बदले उसके भेजे हुए अन्तिम नबी पर ईमान लाओ, अगर तुमने ऐसा नहीं किया तो तुम्हारी धन-दौलत और औलाद तुम्हें अल्लाह के अज़ाब से नहीं बचा सकते –

«अज़ाब इसी प्रकार आता है। परन्तु परलोक का अज़ाब बहुत बड़ा है। काश उन्हें बुद्धि होती।» (सूरा–68, अल-क़लम, आयत–33)

क़ुरआन में इसके अतिरिक्त जहाँ भी असहाबुल-जन्नत आया है, उससे अभिप्राय स्वर्गवाले हैं, जैसे सूरा बक़रा (2:82), सूरा आराफ़ (7:42), सूरा यूनुस (10:26), सूरा हूद (11:23) इत्यादि। ये वे लोग हैं जो स्वर्ग में जाएँगे। असहाबुल-जन्नत का अर्थ है– स्वर्गवाले। इन्हीं का विलोम (उलटा)

असहाबुन्नार है, असहाबुन्नार का अर्थ है– नरकवाले (जो नरक में जाएँगे)। इसलिए कभी ऐसा भी होगा कि स्वर्गवाले नरकवालों को आवाज़ देकर कहेंगे –

«''हमने अपने रब के वचन को, जो उसने दिया था, सत्य पाया तो क्या तुमसे तुम्हारे रब ने जो वादा किया था तुमने भी उसे सच पाया ?'' वे कहेंगे, ''हाँ।'' इतने में एक पुकारनेवाला उनके बीच पुकारेगा, '' अल्लाह की फिटकार है अत्याचारियों पर।''» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–44)

असहाबुल-क़ुबूर

अर्थात क़ब्र में गड़े मुर्दे। क़ुरआन में यूँ तो ''अहले-किताब'' की तुलना काफ़िरों से अनेक स्थानों पर की गई है। परन्तु सूरा मुम्तहिना की अन्तिम आयत में एक विशेष अक़ीदे (विश्वास) की ओर संकेत किया गया है। वह है आख़िरत पर विश्वास। ''अहले-किताब'' यूँ तो आख़िरत पर विश्वास का दावा करते हैं, परन्तु उनके कर्मों से इसकी पुष्टि नहीं होती। उनके कर्म इस ओर संकेत करते हैं कि वे आख़िरत पर विश्वास नहीं रखते। ठीक वैसे ही जैसे काफ़िरों को दोबारा जी उठने पर विश्वास नहीं है। क़ुरआन में है-

«ईमान वालो, तुम उन लोगों को अपना मित्र न बनाओ, जिन पर अल्लाह का प्रकोप आ चुका है, जो आख़िरत से इस प्रकार निराश हो चुके हैं, जैसे क़ब्र वालों (के दोबारा जी उठने) से काफ़िर निराश हो चुके हैं।» (सूरा-60, अल-मुम्तहिना; आयत-13)

क़ब्र के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी के लिए देखें 'क़ब्र'

अरबी

अरबी भाषा विश्व की सभी भाषाओं में श्रेष्ठ एवं प्राचीनतम है। इसी भाषा में क़ुरआन अवतरित हुआ। इतिहासकारों का विचार है कि अरबी भाषा लगभग 2000 ईसा पूर्व भी बोली जाती थी। इबराहीम (عليه السلام) के पुत्र इसमाईल (عليه السلام) भी इसी भाषा का प्रयोग करते थे। क्योंकि उनकी ससुराल के लोगों की भाषा भी अरबी थी, जो यमन के 'जुर्हम' समुदाय से सम्बन्ध रखते थे।

अरब के प्राचीन समुदाय तस्म, जुदैस तथा प्रथम आद इत्यादि ने भी अरबी भाषा का ही प्रयोग किया था, इसलिए कुछ विद्वानों का मत है कि अरबी भाषा वास्तव में इब्रानी, आरामी, आशूरी तथा फिनीकी इत्यादि भाषाओं की माँ है। इसी लिए बहुत-से शब्द आज भी इन भाषाओं में और अरबी भाषा में एक-से पाए जाते हैं। लेकिन दूसरे विद्वान इन भाषाओं को आपस में बहन कहते हैं, क्योंकि ये भी उतनी ही प्राचीन हैं जितनी अरबी, परन्तु इनकी माँ के विषय में कोई बात विश्वास के साथ नहीं कह सकते कि वह कौन है ? कुछ पश्चिमी विद्वानों का विचार है कि इनकी माँ 'सामी' है और अरबी भाषा

'सामी' भाषाओं में सबसे अधिक निकट है, क्योंकि अरबी भाषा में बहुत-से शब्द तथा व्याकरण के नियम सामी भाषाओं के पाए जाते हैं।

क़ुरआन के अवतरण काल तक अरबी भाषा बहुत उन्नति कर गई थी। मक्का में 'उकाज़' नाम के एक बाज़ार में अरबी के महान कवि और भाषाविद् हर वर्ष इकट्ठा होते थे और अपनी-अपनी कविता सुनाते, परन्तु क़ुरआन की अरबी सुनकर ये कवि और भाषाविद् चकित रह जाते। क्योंकि उनका विचार था कि उनसे उत्तम अरबी कोई और बोल ही नहीं सकता। इसलिए जब क़ुरआन अत्यन्त मधुर एवं अति परिष्कृत भाषा में नबी (ﷺ) पर उतरने लगा, जो स्वयं लिखना-पढ़ना नहीं जानते थे तो ये भाषाविद् दंग रह गए, इसी की ओर क़ुरआन ने इन आयतों में संकेत किया है –

«हम जानते हैं कि वे यह कहेंगे कि उसे (नबी को) तो बस एक आदमी सिखाता-पढ़ाता है, हालाँकि जिसकी ओर वे संकेत करते हैं उसकी भाषा तो 'अजमी' (ग़ैर-अरबी) है, और क़ुरआन की भाषा अत्यन्त स्पष्ट (मधुर एवं परिष्कृत) अरबी भाषा है।» (सूरा–16, अन-नहल, आयत–103)

इसलिए क़ुरआन को यह घोषणा करनी पड़ी कि यह किसी मनुष्य की वाणी नहीं है, बल्कि यह तो अल्लाह की वाणी है –

«निश्चय ही यह (क़ुरआन) सारे संसार के रब की अवतरित की हुई चीज़ है। इसको स्पष्ट अरबी भाषा में लेकर तुम्हारे हृदय पर एक विश्वसनीय आत्मा उतरी है, ताकि तुम सावधान करनेवाले बनो। और निस्संदेह इसकी (सूचना तो) पहले उतारे गए ग्रन्थों में भी दी गई है।» (सूरा–26, अश-शुअरा, आयतें–192-196)

«हमने इस क़ुरआन में लोगों के लिए हर प्रकार की मिसालें दी हैं ताकि ये लोग विचार करें, और देखें कि यह क़ुरआन अरबी भाषा में है और इसमें कोई टेढ़ नहीं है, ताकि वे (अल्लाह से) डरते रहें।» (सूरा–39, अज़-ज़ुमर, आयतें–27-28)

इसी अरबी भाषा में नबी (ﷺ) ने लोगों को इस्लाम का संदेश पहुँचाया। आप (ﷺ) पढ़ना-लिखना नहीं जानते थे, फिर भी मधुर और उच्च श्रेणी की अरबी बोलते थे। बल्कि एक अवसर पर आप (ﷺ) ने फ़रमाया, "मैं सबसे अच्छी अरबी भाषा बोलनेवाला अरब हूँ।" क़ुरआन तथा हदीस की यही वह अरबी भाषा है जो आज भी जीवित है, और सारे अरब जगत में इसी भाषा का प्रयोग होता है।

अरबी भाषा की व्याकरण उस समय लिखी गई जब इस्लाम धर्म अरब देशों से निकलकर दूसरे देशों में फैलने लगा जहाँ के लोग अरबी भाषा नहीं जानते थे। इसलिए कहा जाता है कि 'अबुल-अस्वद दुवली' (मृत्यु 79 हिजरी) पहला व्यक्ति है जिसने इसका व्याकरण तैयार किया, उसके पश्चात् 'अब्दुल्लाह-बिन-इस्हाक़ हज़रमी' (मृत्यु 117 हि.), 'ईसा-बिन-उमर सक़फ़ी' (मृत्यु 149

हि.) और 'अबू अम्र-बिन-अला' (मृत्यु 154 हि.) ने व्याकरण की पुस्तकें लिखीं, और सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'सीबवैह' (मृत्यु 180 हि.) की थी जिसका नाम ही उसने 'अल-किताब' रखा।

इस समय अरबी भाषा को सरल बनाने और उन लोगों को सिखाने के लिए जिनकी भाषा अरबी नहीं है, बहुत-सी पुस्तकें लिखी गई हैं, इनमें कुछ प्रसिद्ध पुस्तकें ये हैं –

1. अली जारिम तथा मुस्तफ़ा अमीन की 'अन्नहवुलवाज़ेह।'
2. मुस्तफ़ा ग़लायनी की 'जामे-दुरूस अर्बीयह।'
3. भारत के प्रसिद्ध अरबी विद्वान डॉ. एफ़ अब्दुर्रहीम की 'दुरूसुललुग़तुल अर्बीयह।' जो सर्वप्रथम मदीना विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुई और अब तो भारत, पाकिस्तान, टर्की, इंगलैण्ड, कोरिया, रूस, अमरीका इत्यादि देशों से भी प्रकाशित हो चुकी है।

अरबी भाषा आसानी से सीखी जा सकती है। आज भारत, पाकिस्तान और दूसरे ग़ैर-अरब देशों में भी इस्लामी शिक्षा-केन्द्रों में यही अरबी भाषा पढ़ाई जाती है। और यह क़ुरआन ही का चमत्कार है कि आज भी अरबी भाषा उसी प्रकार सुरक्षित है जिस प्रकार आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व सुरक्षित थी। अन्य भाषाएँ तो हर दो-चार सौ वर्ष बाद बदलती रहती हैं, या फिर उनकी मृत्यु हो जाती है।

अबू-लहब

क़ुरआन में एक सूरत का नाम 'लहब' है। इसको सूरा 'तब्बत-यदा' भी कहते हैं।

«टूट गए अबू लहब के हाथ, और वह स्वयं भी विनष्ट हो गया! न उसका माल उसके काम आया और न वह कुछ जो उसने कमाया। वह भड़कती आग में प्रवेश करनेवाला है। और उसकी स्त्री भी, जो लकड़ियाँ उठानेवाली है। उसके गले में खजूर के रेशों की बटी हुई रस्सी पड़ी होगी।» (सूरा–111, अल-लहब, आयतें–1-5)

अबू-लहब का नाम अब्दुल उज़्ज़ा-बिन-अब्दुल मुत्तलिब था। यह नबी (ﷺ) का सगा चाचा था। मक्का में आप (ﷺ) का और इसका घर मिला हुआ था। चाहिए तो यह था कि अपने अनाथ भतीजे की देख-भाल करता, क्योंकि पिता के देहान्त के पश्चात् चाचा ही उसका स्थान लेता है। परन्तु यह व्यक्ति अपने भतीजे मुहम्मद (ﷺ) का कट्टर शत्रु बन गया, और आप (ﷺ) के लाए हुए धर्म का कट्टर विरोधी हो गया। आप (ﷺ) को विभिन्न प्रकार से सताने लगा। जहाँ-जहाँ आप धर्म प्रचार के लिए जाते यह भी आपके पीछे-पीछे जाता और लोगों से कहता, "यह झूठा है। इसकी बात मत मानो।" जब अल्लाह ने मुहम्मद (ﷺ) को आदेश दिया कि पहले अपने निकट संबंधियों को अल्लाह से डराओ, तो आप (ﷺ) ने एक दिन अरब की परम्परा के अनुसार 'सफ़ा' नामी पहाड़ी पर चढ़कर पुकारा, "या सबाहा अर्थात् लोगो शत्रु से डरो।" यह सुनकर लोग इकट्ठा हो गए तो आप (ﷺ) ने

क़ुरैश के लोगों को पुकारकर कहा, "लोगो, अगर मैं यह कहूँ कि इस पहाड़ी के पीछे शत्रु छिपा हुआ है जो तुमपर आक्रमण करनेवाला है, तो क्या तुम मेरी बात का यक़ीन कर लोगे?" लोगों ने कहा, "अवश्य मानेंगे, क्योंकि आप ने कभी असत्य नहीं कहा।" तब आप (ﷺ) ने कहा, "मैं तुम्हें अल्लाह की यातना से डराता हूँ अगर तुम ईमान नहीं लाए।"

इसपर और लोग तो चुप रहे, परन्तु अबू लहब क्रोधित होकर चिल्लाने लगा और कहा, "तेरा नाश हो, क्या तुमने हमको इसी लिए यहाँ इकट्ठा किया है।" (सहीह बुख़ारी, 4971 तथा मुस्लिम, 208)

एक सहीह हदीस में यह भी आया है कि उसने एक पत्थर उठाया ताकि अल्लाह के रसूल (ﷺ) पर ख़ींच मारे।

एक हदीस में यह भी आया है कि उसने एक दिन नबी (ﷺ) से पूछा, "अगर मैं तुम्हारा धर्म ग्रहण कर लूँ तो मुझे क्या मिलेगा?" आप (ﷺ) ने फ़रमाया, "जो दूसरे ईमान लानेवालों को मिलेगा।" उसने कहा, "क्या मेरे लिए कोई श्रेष्ठता नहीं होगी?" आप (ﷺ) ने फ़रमाया, "आप और क्या चाहते हैं?" इसपर वह क्रोधित होकर बोल उठा, "तेरे धर्म का नाश हो, जिसमें मैं और दूसरे लोग समान हों।"

इस पर अल्लाह ने सूरा 'लहब' उतारी। अबू लहब की शत्रुता यहाँ तक बढ़ गई थी कि उसने अपने दोनों पुत्रों उतैबा और उत्बा को जो नबी (ﷺ) के दामाद थे, आदेश दिया कि तुम दोनों मुहम्मद (ﷺ) की बेटियों को तलाक़ दे दो। उन दोनों ने तलाक़ दे दी, और 'उतैबा' तो आप (ﷺ) का पक्का शत्रु भी बन गया। एक बार उसने आप (ﷺ) पर थूकने की चेष्टा की, परन्तु अल्लाह ने आप (ﷺ) को बचा लिया। जिसपर नबी (ﷺ) ने उसको बद्- दुआ दी कि अल्लाह तेरे सर पर कोई फाड़ खानेवाला सवार कर दे। अल्लाह ने आप (ﷺ) की दुआ क़बूल फ़रमाई। और शाम (सीरिया) की यात्रा में एक शेर ने उसको फाड़ खाया।

अबू-लहब के सम्बन्ध में अल्लाह का यह कहना कि उसका धन और जो कुछ उसने कमाया था काम नहीं आया, पूर्णतः सत्य सिद्ध हुआ। इस आयत को उतरे सात-आठ वर्ष ही हुए होंगे जब 'बद्र' के मैदान में मक्का के इस्लाम विरोधियों की हार हुई और कुछ ही दिनों बाद अबू लहब भी बीमार हुआ। उसे चेचक हो गई। उसी में उसका देहान्त हो गया। तीन-चार दिनों तक उसकी लाश सड़ती-गलती रही, उसकी संतान में से कोई भी उसे दफ़न करने के लिए तैयार नहीं हुआ। तब कुछ हब्शी ग़ुलामों को पैसा देकर एक गढ़े में डलवा दिया गया और ऊपर से पत्थर तथा मिट्टी डालकर गढ़ा बन्द कर दिया गया। उसके दूसरे पुत्र उत्बा, मुतअब, तथा पुत्री 'दुर्रा' मुसलमान हो गए और मदीना आकर नबी (ﷺ) के हाथ पर बैअ़त कर ली। अबू लहब की स्त्री का विवरण जानने के लिए देखिए 'हम्मालतल-हतब।'

अय्यूब (عليه السلام)

अय्यूब (عليه السلام) एक नबी थे। इनकी ओर अल्लाह ने वह्य की थी। क़ुरआन में एक स्थान पर कहा गया है –

«हमने तुम्हारी ओर उसी प्रकार 'वह्य' की जिस प्रकार नूह और उसके बाद के नबियों की ओर वह्य की। और हमने इबराहीम, इसमाईल, इसहाक़ और याक़ूब और उसकी संतान और ईसा और अय्यूब और यूनुस और हारून और सुलैमान की ओर भी वह्य की। और हमने दाऊद को ज़बूर प्रदान की।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–163)

इससे यह भी मालूम होता है कि अय्यूब (عليه السلام) इबराहीम (عليه السلام) के बाद आए। कुछ विद्वानों का विचार है कि उनके पिता का नाम 'अमूस' था, जो ईसू-बिन-इसहाक़-बिन-इबराहीम के वंश से थे। और उनकी पत्नी 'रहमा' हज़रत यूसुफ़ की पोती और इफ़राईम-बिन-यूसुफ़ की पुत्री थी। यहूद की किताब 'पुराने नियम' (Old Testament) में उनके नाम से पूरी एक किताब है, जिसके कुल बयालीस भाग हैं, जिससे पता चलता है कि आप 'अवस' के रहनेवाले थे, जो दमिश्क़ के निकट है। और कुछ लोगों का विचार है कि 'अवस' वही नगर है जिसको 'हर्रान' कहते हैं, जो दमिश्क़ के उत्तर में स्थित है। वे बड़ी दौलत के मालिक थे। उनके कुल सात पुत्र और तीन पुत्रियाँ थीं। फिर ऐसा हुआ कि वे कष्टों में घिर गए, उनकी सारी दौलत जाती रही, बच्चों का देहान्त हो गया, उनको एक ऐसा रोग लग गया था कि जिसके कारण सब लोगों ने उनका साथ छोड़ दिया। केवल उनकी पत्नी उनके पास रह गई। परन्तु वे बड़े साहस के साथ सब्र करते रहे और अल्लाह से दुआ की जिसे अल्लाह ने क़ुरआन में इस प्रकार बयान किया है –

«हमारे बन्दे अय्यूब को भी याद करो, जब उसने अपने रब को पुकारा कि शैतान ने मुझे दुःख और पीड़ा पहुँचा रखी है।» (सूरा–38, सॉद, आयत–41)

यहाँ यह कहा गया है कि शैतान ने मुझे पीड़ा पहुँचाई, जबकि इस्लामी शिक्षा के अनुसार सुख और दुःख देनेवाला केवल अल्लाह है। हो सकता है अय्यूब (عليه السلام) ने दुःख और पीड़ा को अल्लाह की तरफ़ सम्बद्ध करने के बजाए शैतान की तरफ़ इसलिए सम्बद्ध किया हो कि उसी के भ्रम के कारण उनको यह दिन देखने पड़े। या अल्लाह की ओर सम्बद्ध करने को उन्होंने उसके सम्मान के विरुद्ध समझा हो। एक दूसरी आयत में इस दुःख को शैतान की ओर सम्बद्ध नहीं किया गया है –

«याद करो जब अय्यूब ने अपने रब को पुकारा कि मुझे बहुत कष्ट पहुँचा है, और तू सबसे बढ़कर दयावान है।» (सूरा–21, अल-अंबिया, आयत–83)

अल्लाह अय्यूब (عليه السلام) के धैर्य का वर्णन करके ईमानवालों को बताना चाहता है कि तुमसे पहले नबियों और रसूलों को भी बहुत कष्ट उठाना पड़ा है, परन्तु उन्होंने धैर्य से काम लिया। और अल्लाह

के धर्म को नहीं छोड़ा, बल्कि जो कुछ उनको पीड़ा पहुँच रही थी, उस पर प्रसन्नता के साथ सब्र किया और अल्लाह ही से प्रार्थना करते रहे कि हमारी पीड़ा समाप्त कर दे। अय्यूब (ﷺ) के साथ भी ऐसा ही हुआ, उन्होंने भी अल्लाह से ही प्रार्थना की। अल्लाह ने उनकी सुन ली और उनको आदेश दिया –

«अपना पाँव धरती पर मार, यह नहाने और पीने के लिए ठण्डा पानी है।» (सूरा–38, सॉद, आयत–42)

अर्थात् इस स्रोत से जो पानी निकलेगा जब तुम उसमें नहाओगे तो बाहर की बीमारी और पियोगे तो अन्दर की बीमारी सब दूर हो जाएगी।

यही नहीं बल्कि –

«और हमने उसे उसके परिजन दिए, बल्कि उतना ही और उसको अपनी विशेष कृपा से दिया। इसमें बुद्धिमानों के लिए शिक्षा है।» (सूरा–38, सॉद, आयत–43)

अर्थात् उसके परिवार को उससे दुगना कर दिया जितना वह पीड़ा के समय में था और नष्ट हो गया था। कहा जाता है कि अल्लाह ने उनकी पत्नी को जवान कर दिया जिससे सात बेटे और तीन बेटियाँ पैदा हुईं। (दे. बाइबल, अय्यूब, 42:13)

इस प्रकार उनकी संतान दोबारा आबाद हो गई, बल्कि दुगनी हो गई। उनके साथ केवल उनकी पत्नी रह गई थी जो उनकी पूरी सेवा करती थी। लेकिन किसी अवसर पर आप उससे क्रुद्ध हो गए और यह क़सम खा ली कि जब मैं स्वस्थ हो जाऊँगा तो तुम्हें सौ कोड़े मारूँगा। अय्यूब (ﷺ) को अल्लाह ने आदेश दिया –

«अपने हाथ में तिनकों का एक मुट्ठा ले और उसको मार दे और अपनी क़सम न तोड़। निश्चय ही हमने उसे धैर्यवान पाया, क्या ही अच्छा बन्दा! निस्संदेह वह अपने रब की ओर बड़ा ध्यान देनेवाला था।» (सूरा–38, सॉद, आयत–44)

इस प्रकार अल्लाह ने उनकी क़सम की लाज रखी और उनकी नेक पत्नी को भी कष्ट से बचा लिया।

इन आयतों से विद्वानों ने बहुत-से इस्लामी नियम निकाले हैं, जिनके वर्णन का यहाँ अवसर नहीं है।

इस प्रकार अल्लाह ने अपने भक्त अय्यूब को अपनी विशेष कृपा से यह आज्ञा दी कि ऐसी पत्नी को, जो तुम्हारी सेवा करती रही हो अगर सौ कोड़े मारने की तुमने क़सम खा ही ली है तो उसको सौ तिनकोंवाली झाड़ू से एक बार मार दो। तुम्हारी क़सम पूरी हो जाएगी।
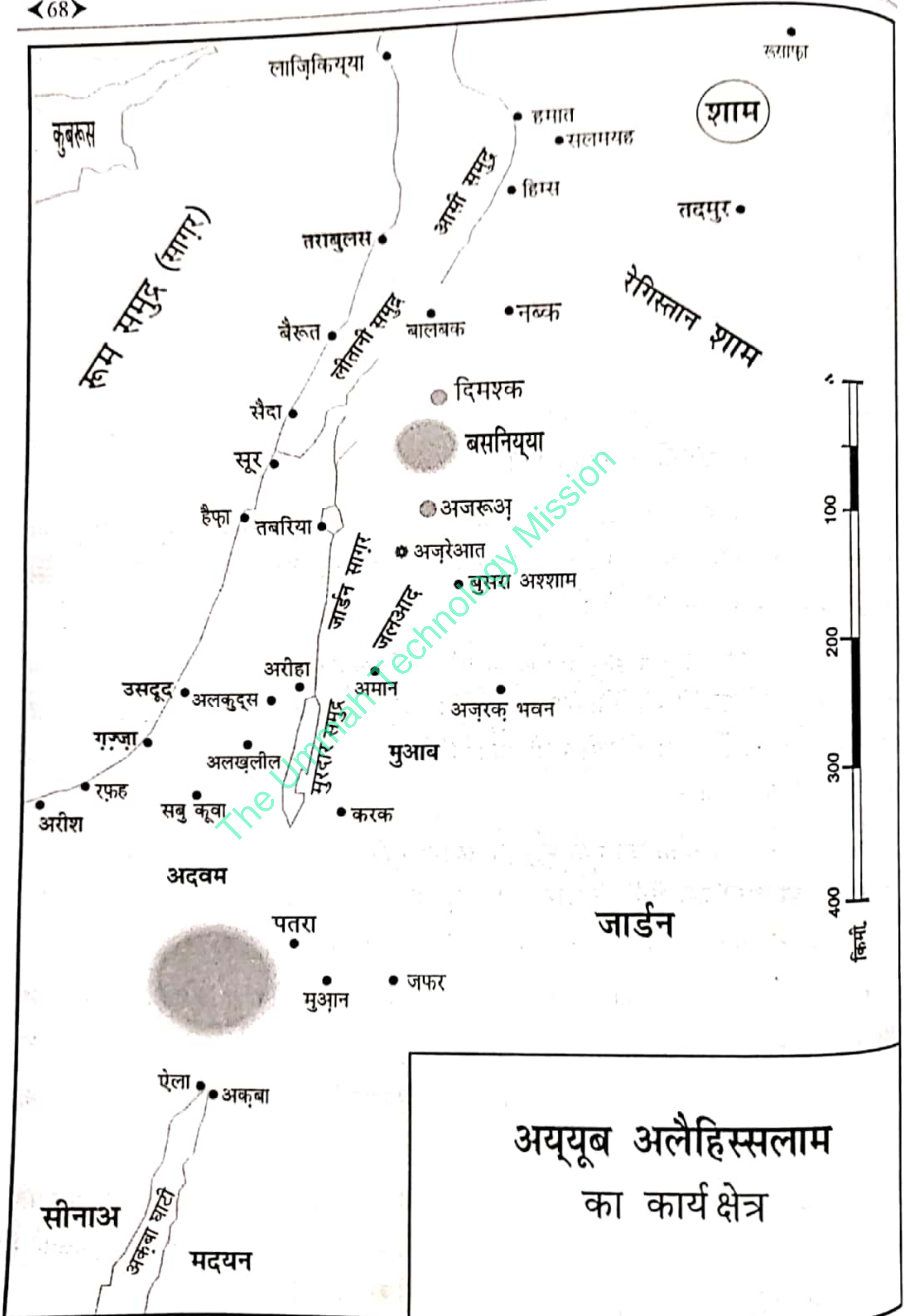
अय्यूब (عليه السلام) का जो जीवन-चरित्र क़ुरआन में मिलता है, उससे पता चलता है कि दुर्घटना के समय वे पूरे शरीर तथा आत्मा के साथ अल्लाह की ओर ध्यान लगाए रहते थे और उसी से प्रार्थना करते थे कि उनका कष्ट दूर हो जाए। और वास्तव में यही तौहीद है, क्योंकि तौहीद पर विश्वास करनेवाला कभी किसी देवी-देवता या किसी जिन्न या शैतान पर भरोसा नहीं करता और न उनको ऐसे समय में पुकारता है, जैसा कि मक्का के विधर्मी किया करते थे। इसलिए उनकी जीवनी से हमें यह शिक्षा मिलती है कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई भी हमारा सहायक नहीं जो कष्ट के समय हमारी सहायता कर सके। और यही तौहीद है जिसकी दावत लेकर सारे नबी (عليهم السلام) पधारे।

उनका 140 वर्ष की आयु में देहान्त हुआ और तीन पीढ़ियों तक अपना वंश देखा। वह कुआँ जिससे आप नहाते थे, आज भी शाम में 'नवा' नामी एक गाँव में पाया जाता है जिसे लोग अय्यूब का कुआँ कहते हैं और यहीं उनका मक़बरा भी है। इनके विषय में कुछ और जानकारी यहूद की 'पुराने नियम' की किताब 'अय्यूब' में पाई जाती है जिससे मालूम होता है कि शैतान ने उनको बहुत बहकाने की कोशिश की, परन्तु वे अपने विश्वास (तौहीद) पर जमे रहे। यह किताब उनकी संक्षिप्त जीवनी, तथा उनके मित्र तेमानी एलिपज़, शूही बिलदद और सोपर के साथ प्रश्नोत्तर पर आधारित है जो काव्य-शैली में है।

इस किताब में कहीं भी मूसा तथा बनी-इसराईल का वर्णन नहीं आया है। इसलिए संभावना यही है कि उनका जीवन-काल इबराहीम (عليه السلام) के बाद और मूसा से पहले था।

अल-आमा

अल-आमा क़ुरआन की एक सूरा का नाम है जिसका अर्थ है नेत्रहीन। इस सूरा का एक दूसरा नाम अ-ब-स भी है। इस सूरा में एक नेत्रहीन मनुष्य का वर्णन हुआ है जो मक्का का रहनेवाला था। नबी (ﷺ) ने जब लोगों को अल्लाह का सन्देश पहुँचाना शुरू किया, उसी समय उन्होंने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया था। ऐसा भी हो सकता है कि अभी पूरी तरह वे इस्लाम में प्रविष्ट न हुए हों, इसलिए वे आप (ﷺ) की सेवा में उपस्थित हुए हों ताकि आप (ﷺ) से इस्लाम धर्म के विषय में कुछ और जानकारी प्राप्त कर लें। क़ुरआन में तो उनका नाम नहीं बताया गया, परन्तु सहीह हदीसों में उनका नाम अब्दुल्लाह बताया गया है और उनका उपनाम 'इब्ने-उम्मे-मक्तूम' था।

हुआ यह कि एक बार नबी (ﷺ) के पास मक्का के कुछ सरदार बैठे हुए थे, जिनको आप (ﷺ) इस्लाम धर्म के विषय में कुछ बता रहे थे। इतने में इब्ने-उम्मे-मक्तूम, जो अन्धे थे, आप (ﷺ) के पास इस्लाम ही के विषय में कुछ पूछने के लिए आए। नबी (ﷺ) को उनका इस प्रकार आना कुछ पसन्द नहीं आया। इसलिए नहीं कि आप (ﷺ) को निर्बल और विवश लोगों से सहानुभूति नहीं थी,

बल्कि इसलिए कि मक्का के सरदार कहीं यह कहकर उठ खड़े न हों कि हम उस सभा में कैसे बैठ सकते हैं जिसमें इस प्रकार के निर्धन और निर्बल लोग आते हों, क्योंकि वे अपने आपको श्रेष्ठ गिना करते थे। नबी (ﷺ) की इच्छा थी कि अगर ये लोग इस्लाम धर्म स्वीकार कर लें तो इस्लाम धर्म का प्रचार-प्रसार सरल हो जाएगा। इस कारण 'इब्ने-उम्मे-मक्तूम' का इस सभा में उपस्थित होना आप (ﷺ) को पसंद नहीं आया। विस्तार के लिए देखिए : तिर्मिज़ी (5:432) तथा इब्ने-हिब्बान (2:293, 535)। इसकी अस्नाद सहीह हैं। नबी (ﷺ) का यह व्यवहार अल्लाह को पसन्द नहीं आया, और सूरा 'अ-ब-स' उतारकर नबी (ﷺ) पर रोष प्रकट किया। 'अ-ब-स' का अर्थ है—त्योरी चढ़ाना।

«उसने त्योरी चढ़ाई और मुँह फेर लिया, इस कारण कि उसके पास एक अन्धा (नेत्रहीन) आ गया। और तुझे क्या मालूम शायद वह स्वयं को सँवारता- निखारता हो या उपदेश प्राप्त करता हो तो नसीहत उसके लिए लाभदायक हो। रहा वह व्यक्ति जो बे परवाह हो गया है, आप उसके पीछे पड़े हैं। यद्यपि उसके न सुधरने से आपपर कोई दोष नहीं है। रहा वह व्यक्ति जो स्वयं आपके पास दौड़ता हुआ आया और वह (अल्लाह से) डरता भी है तो आप उससे बेपरवाई बरतते हैं। यह बात उचित नहीं, यह (क़ुरआन) तो एक उपदेश है, जो चाहे इससे शिक्षा ग्रहण करे।» (सूरा-80, अ-ब-स, आयत–1-12)

कहते हैं कि क़ुरआन की इन आयतों को पढ़कर बहुत सारे लोगों ने इसलिए इस्लाम ग्रहण कर लिया कि उनको यह विश्वास हो गया कि क़ुरआन अल्लाह की भेजी हुई पुस्तक है।

अहलुल-किताब

अहलुल-किताब वे लोग कहलाते हैं जिनके पास क़ुरआन के अतिरिक्त ईश्वर की ओर से कोई दूसरी किताब मौजूद हो। क़ुरआन जिस समय नबी (ﷺ) पर उतर रहा था उस समय अरब भू-भाग में दो प्रकार की जातियाँ थीं, एक वे जिनके पास अल्लाह की ओर से उतरी हुई कोई पुस्तक नहीं थी। इन जातियों के लोगों को क़ुरआन ने कहीं विधर्मी (काफ़िर) कहकर संबोधित किया है तो कहीं मुशरिक (बहुदेववादी) कहकर, कहीं मजूस कहकर, तो कहीं साबिई कहकर। दूसरी वे जातियाँ थीं जिनके पास अल्लाह की भेजी हुई किताबें थीं, चाहे उनमें उन जातियों ने कितने ही उलट-फेर कर दिए हों। इन जातियों को क़ुरआन ने अहलुल-किताब (अहले-किताब) कहकर संबोधित किया है। इन दूसरी प्रकार की जातियों में केवल दो जातियाँ थीं—एक यहूदी, दूसरी ईसाई (नसारा)। इनके विषय में विस्तार के लिए देखिए 'यहूदी' तथा 'नसरानी'।

इन दोनों जातियों के विषय में क़ुरआन तथा सहीह हदीसों में कुछ विशेष शिक्षाएँ दी गई हैं, उनमें से कुछ का वर्णन यहाँ किया जा रहा है :

1. अहले-किताब की धारणा :

चूँकि दोनों जातियाँ तौहीद (एकेश्वरवाद) पर विश्वास रखने का दावा करती थीं, इसलिए इनको तौहीद के सही मार्ग को अपनाने की ओर बुलाया गया है –

«कहो : ऐ अहले-किताब (किताब वालो), उस बात की ओर आओ जो हमारे-तुम्हारे बीच समान रूप से सिद्ध है। यह कि हम अल्लाह के अतिरिक्त किसी की उपासना (इबादत) न करें और न उसके साथ किसी को साझी ठहराएँ और न परस्पर हम में से कोई एक-दूसरे को अल्लाह के अतिरिक्त रब (स्वामी) बनाए। फिर यदि वे इससे मुँह मोड़ें तो कह दो : साक्षी रहना कि हम तो मुस्लिम हैं।» (क़ुरआन, सूरा–3, आले-इमरान, आयत–64)

अहले-किताब को तौहीद की ओर इसलिए बुलाया गया था कि वे अपने पास अल्लाह की किताब होने के बावजूद शिर्क करने लगे थे, जो उनके लिए किसी भी दृष्टि से उचित नहीं था।

«यहूदी कहते हैं, "उज़ैर अल्लाह का बेटा है" और ईसाई कहते हैं, "मसीह अल्लाह का बेटा है।" ये उनके अपने मुँह की बातें हैं। ये उन काफ़िरों की-सी बातें कर रहे हैं जो इनसे पहले थे। अल्लाह की मार इनपर! ये कहाँ भटके फिर रहे हैं।» (क़ुरआन, सूरा–9 अत-तौबा, आयत–30)

उज़ैर (EZRA) वही हैं जिनको यहूदी अपने धर्म का पुनरोद्धारक मानते हैं। यहूदियों की धर्मगाथानुसार जब बाबिल (Babilon) के राजा 'बुख़्त नसर' ने 'बैतुल-मक़दिस' को नष्ट कर दिया और 'तौरात' को जला डाला और हज़ारों यहूदियों को क़ैदी बनाकर अपने देश ले गया तो नई पीढ़ी न केवल अपने धर्म से अनभिज्ञ हो गई, बल्कि अपनी भाषा (इबरानी, HEBREW) तक भूल गई। इसी उज़ैर नामक विद्वान ने फिर से धर्म की पुनर्स्थापना की, जिसके कारण यहूदी उनका आदर करने लगे। बल्कि उनमें से कुछ गरोह ऐसे भी थे जिन्होंने उनको अल्लाह का बेटा बना डाला।

इसी प्रकार जब ईसाइयों ने देखा कि ईसा (عليه السلام) तो बिना बाप के पैदा हो गए, तो उन्होंने उनको अल्लाह का बेटा बना दिया और उनकी मूर्ति बनाकर पूजा करने लगे। जबकि ईसा (عليه السلام) ने कभी इसकी शिक्षा नहीं दी। ईसाइयों के पास अपनी कुधारणा का कोई उत्तर न रहे, इसलिए प्रलय के दिन अल्लाह ईसा (عليه السلام) से पूछेगा –

«"ऐ मरयम के बेटे ईसा! क्या तूने लोगों से कहा था कि अल्लाह के अतिरिक्त दो पूज्य, मुझे और मेरी माँ को, बना लो।" वह कहेगा, "तू बड़ा महिमावाला है, मुझसे यह नहीं हो सकता कि मैं ऐसी बात कहूँ जिसका मुझे कोई हक़ नहीं है। यदि मैं यह कहता तो तुझे भली-भाँति मालूम होता।"» (क़ुरआन, सूरा–5, अल-माइदा, आयत–116)

अर्थात ईसा (ﷺ) इस बात से साफ़ इनकार कर देंगे कि मैंने कभी अल्लाह के अतिरिक्त किसी और की उपासना का आदेश दिया था।

2. अहले-किताब का भोजन :

अहले-किताब का भोजन मुसलमानों के लिए शुद्ध बताया गया है। उसमें मांस भी सम्मिलित है, अगर वह हराम (अवैध) पशु का न हो –

«आज सभी अच्छी स्वच्छ चीज़ें तुम्हारे लिए हलाल कर दी गई हैं तथा अहले-किताब का भोजन भी तुम्हारे लिए हलाल कर दिया गया है।» (क़ुरआन, सूरा–5, अल-माइदा, आयत–5)

3. अहले-किताब की स्त्रियों से मुसलमानों का विवाह करना वैध बताया गया है :

«ईमानवाली शरीफ़ और स्वतंत्र नारियाँ भी और वे शरीफ़ और स्वतंत्र स्त्रियाँ भी, जो तुमसे पहले के किताबवालों में से हों, तुम्हारे लिए वैध हैं, जब कि तुम उनका हक़ (महर) देकर उन्हें निकाह में लाओ। यह काम स्वच्छंद कामतृप्ति के लिए न हो और न चोरी-छिपे याराना करने के लिए।» (क़ुरआन, सूरा–5, अल-माइदा, आयत–5)

4. अहले-किताब में कुछ ऐसे भी हैं जो भले काम करते हैं :

«ये सब एक जैसे नहीं हैं, बल्कि अहले-किताब में कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो सीधे मार्ग पर हैं और रात की घड़ियों में अल्लाह की आयतें (पवित्र क़ुरआन के वाक्यांश) पढ़ते हैं और उसके सामने सजदा करते (माथा टेकते) हैं। ये लोग अल्लाह और प्रलय दिवस पर ईमान रखते हैं और भलाइयों का आदेश देते हैं और बुराइयों से रोकते हैं, और नेक कामों में अग्रसर रहते हैं और ये अच्छे लोगों में से हैं।» (क़ुरआन, सूरा–3, आले-इमरान, आयतें–113-114)

5. अहले-किताब में कुछ अमानतदार भी हैं :

«अहले-किताब में ऐसे लोग भी हैं कि यदि उनके सामने धन-दौलत का एक ढेर भी अमानत (धरोहर) रख दिया जाए, तो वे उसे तुम्हें लौटा देंगे और उनमें कुछ ऐसे भी हैं कि यदि तुम उनको एक दीनार का भी अमानतदार बना दो, तो जब तक उनके सिर पर सवार न हो जाओ, वे तुम्हें वापस नहीं करेंगे। यह इसलिए कि वे कहते हैं : उन लोगों के विषय में, जो किताबवाले नहीं हैं, हमारी कोई पकड़ नहीं। और वे जानते-बूझते अल्लाह पर झूठ गढ़ते हैं।» (क़ुरआन, सूरा–3, आले-इमरान, आयत–75)

यहूदियों का विचार है कि उनके अतिरिक्त जो भी हैं वे उम्मी हैं, जिसका अर्थ है तुच्छ लोग अर्थात जो इबरानी नहीं हैं[1] उनके साथ पशुओं जैसा व्यवहार किया जा सकता है। उनके पास जो कुछ है यहूदियों के लिए हलाल है। वे जिस प्रकार चाहें उसे ले सकते हैं, चाहे उसके लिए उन्हें झूठ ही क्यों न बोलना पड़े। इसी लिए जब बनी-इसराईल मिस्र छोड़ रहे थे तो उनके पास मिस्रियों की जो भी अमानत थी, उनको वापस नहीं किया, जबकि हज़रत मूसा (ﷺ) ने ऐसी कोई शिक्षा नहीं दी थी।

इस्लामी इतिहास में नबी (ﷺ) का यह वृत्तान्त बड़े गर्व के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है कि जब आप (ﷺ) ने मक्का के विधर्मियों के अत्याचार और उत्पीड़न के कारण मक्का से मदीना हिजरत करने का फ़ैसला किया तो हज़रत अली (ﷺ) को अपने बिस्तर पर सुला दिया और यह कहा कि मेरे पास जिन लोगों की अमानतें रखी हुई हैं, तुम उनको वापस कर देने के बाद मदीना आ जाना।

6. अहले-किताब में कुछ ऐसे भी थे जो नबी (ﷺ) पर ईमान लाए :

«और निस्संदेह अहले-किताब में कुछ ऐसे लोग भी हैं जो अल्लाह पर ईमान लाते हैं और उसपर भी ईमान लाते हैं जो तुमपर उतारी गई है, और उसपर भी जो स्वयं उनकी ओर उतारी गई। ये अल्लाह से डरनेवाले हैं। और अल्लाह की आयतों का थोड़े मूल्य पर सौदा नहीं करते। उनके लिए उनके 'रब' के पास उनका प्रतिदान है। निस्संदेह अल्लाह शीघ्र ही हिसाब लेनेवाला है।» (क़ुरआन, सूरा–3, आले-इमरान, आयत–199)

अनार

इसको अरबी भाषा में 'रुम्मान' कहते हैं। जन्नत में बहुत-सी नेमते होंगी उनमें से अनार भी है। इसका वर्णन क़ुरआन में भी मिलता है–

«इनमें मेवे और खजूर और अनार हैं।» (सूरा–55, अर-रहमान, आयत–68)

---

[1]. देखिए: क़ामूस किताब मुक़द्दस (पृ. 117) यशायाह (49:6) रोमियों (2:14) में 'उम्म' का अर्थ अन्य जाति बताया गया है अर्थात् जो 'इबरानी' नहीं हैं। इसलिए जिन लोगों ने सूरतुल-जुमुआ की आयत–2 का अध्ययन किया है, वे जानते हैं कि गुमराह लोगों ने अल्लाह के अन्तिम रसूल को झुठलाया था –

«वही (अल्लाह) है जिसने उम्मियों में से एक रसूल उठाया, जो उन्हें उसकी आयतें सुनाता है, उन्हें निखारता है और उन्हें किताब और हिक्मत (तत्त्वदर्शिता) की शिक्षा देता है, यद्यपि इससे पहले वे खुली हुई गुमराही में पड़े हुए थे।» (क़ुरआन, सूरा–62, अल-जुमुआ, आयत–2)

इस आयत का एक अनुवाद, «वही है जिसने अशिक्षित लोगों में से एक नबी भेजा» और दूसरा अनुवाद यह किया गया है «वही है जिसने उम्मियों (ग़ैर-इबरानी लोगों) में उन्हीं में से एक नबी भेजा।» यही कारण है कि यहूदी जो स्वयं एक अंतिम नबी की खोज में मदीना में आबाद हो गए थे, जब उन्होंने देखा कि यह नबी तो ग़ैर-इबरानी है तो उस नबी का इनकार कर दिया। जबकि वे भली-भाँति आप (ﷺ) को उन चिह्नों से पहचान गए थे, जिनका वर्णन तौरात में था।

इस प्रकार अल्लाह ने इस संसार में इनसानों के लिए जीविका के जो साधन और सामग्रियाँ प्रदान की हैं, उनमें से अनार भी एक है। (देखिए: क़ुरआन, सूरा-6, अल-अनआम, आयत-99 तथा 141)

अज़ाब

यह शब्द क़ुरआन में बार-बार आया है। जिसका भावार्थ है : अल्लाह की तरफ़ से यातना, जो ईमान न लाने वालों को दी जाएगी। चाहे वह संसार में दी जाए जैसे मक्का के बड़े-बड़े सरदारों को बद्र के युद्ध में दी गई और चाहे वह मरने के बाद दी जाए। क्योंकि अल्लाह तथा उसके रसूल पर ईमान न लाना सबसे बड़ा अत्याचार है। ऐसा व्यक्ति वास्तव में अल्लाह की सत्ता का इनकार कर रहा है। जिसने उसे पैदा किया उसकी जीविका का प्रबन्ध किया, उसके लिए सूर्य-चन्द्र बनाए, एक नियुक्त समय तक पृथ्वी पर जीवन व्यतीत करने का अवसर दिया इत्यादि। फिर ऐसे व्यक्ति के लिए अल्लाह के पास कोई इनआम नहीं है, बल्कि उसके कर्मों के कारण उसके पास दुखदाई अज़ाब है।

क़ुरआन मजीद इस समय धरती पर वह अकेला धर्मग्रन्थ है जिसमें मरने के बाद अज़ाब का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है, जबकि दूसरे धर्म ग्रन्थों में इसकी ओर संकेत तो मिलता है परन्तु विवरण नहीं। यह क़ुरआन की विशेषताओं में से एक है कि इसमें ईमान के विषय पर विस्तार पूर्वक वर्णन मिलता है, ताकि सुनने वाले को कोई सन्देह न रह जाए, और यही शिक्षा सारे नबियों की थी, परन्तु उनके अनुयायियों ने उसमें हेर फेर कर दिया।

और ये लोग जिनको अज़ाब दिया जाएगा दो प्रकार के होंगे।

एक वे लोग जिन्होंने अल्लाह, उसके रसूल, तथा उसकी शिक्षाओं को ठुकराया होगा, चाहे वह एक हो या जन समूह। इनमें नबियों की उन जातियों का वर्णन क़ुरआन में बार-बार आता है जिन्होंने अपने नबियों को ठुकरा दिया तो उन पर अल्लाह का अज़ाब आ गया। उदाहरण के लिए देखिए नूह (عليه السلام), सालेह (عليه السلام), हूद (عليه السلام) आदि की क़ौमें। इनको सांसारिक अज़ाब भी दिया गया, और फिर ये लोग आख़िरत के अज़ाब से भी बच नहीं सकेंगे जो दुनिया के अज़ाब से भी अधिक कठोर होगा।

दूसरे वे लोग भी अज़ाब के पात्र होंगे जो नबियों पर तो ईमान लाए परन्तु किसी पर अत्याचार किया, किसी का धन खा लिया। अर्थात अल्लाह के बन्दों के हक़ मारे और संसार में उनसे क्षमा नहीं माँगी तो क़ियामत के दिन इनको भी उस अत्याचार के बदले में अज़ाब झेलना पड़ेगा, और फिर उनको जन्नत में प्रवेश करा दिया जाएगा।

क़ुरआन ने अज़ाब के विषय में कुछ सिद्धान्त बताए हैं उनमें से कुछ ये हैं।

1. **किसी जाति पर उस समय तक अज़ाब नहीं आएगा जब तक कोई चेतावनी करने वाला रसूल न भेजा जाए और लोग उसकी शिक्षा ठुकरा न दें।** (दखें सूरा-17, इस्रा, आयत-15)

केवल नबी (ﷺ) के लिए यह विशेषता बताई गई कि–

«अल्लाह ऐसा नहीं कि आप उनके बीच मौजूद हो और वह उन्हें यातना देने लग जाए, और न अल्लाह ऐसा है कि वे क्षमा-याचना कर रहे हों और वह उन्हें यातना में ग्रस्त कर दे।» (कुरआन, सूरा-8, अनफ़ाल, आयत-33)

जबकि आपकी जाति ने यह कहा भी

«ऐ अल्लाह यदि यही (धर्म) तेरे यहाँ से सत्य हो तो हम पर आकाश से पत्थर बरसा दे, या हमें किसी दुख देने वाले अज़ाब में डाल दे।» (सूरा-8, अनफ़ाल, आयत -32)

लेकिन चूँकि आप सारे संसार के लिए रहमत बना कर भेजे गए थे इसलिए अल्लाह ने आपकी जाति को अज़ाब से बचा लिया जबकि जिबरील ने कहा भी था कि अगर आप हुक्म करें तो मक्का के इस्लाम-विरोधियों को दो पर्वतों के बीच कुचल दिया जाए। आपने कहा, "नहीं, इनकी संतान से ऐसे लोग पैदा होंगे जो इस्लाम का प्रचार करेंगे।" और फिर ऐसा ही हुआ।

2. अज़ाब से पहले अन्तिम बार चेतावनी दी जाती है, और सदाचारी लोगों से बस्ती ख़ाली करा ली जाती है।
3. जब अज़ाब आ जाता है तो तौबा स्वीकार नहीं होती।
4. संसार का अज़ाब जैसा भी हो प्रलय का अज़ाब और भी कठिन होगा। (देखें सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-85 तथा सूरा-13, अर-रअ्द, आयत-34)
5. इस्लाम-विरोधियों और मुशरिकों के अतिरिक्त वे लोग भी संसार के अज़ाब में घिर जाते हैं जिनकी जाति में ज़िना, व्यभिचार, निर्लज्जता, मदिरापान इत्यादि जेसी बुराइयाँ फैल जाती हैं और अल्लाह के नियमों का मज़ाक़ उड़ाया जाता है। ये लोग कभी ज़लज़ला, कभी सैलाब, कभी तूफ़ान आदि में घिर जाते हैं और फिर पृथ्वी से सदैव के लिए मिटा दिए जाते हैं।

ये कुछ नियम हैं जिनके अनुसार अज़ाब आता रहता है।

अल-अस्र

यह क़ुरआन की एक सूरा का नाम है। जिसका शाब्दिक अर्थ है 'ढलता समय'। इस सूरा में कुल तीन आयतें हैं। इस सूरा का अनुवाद इस प्रकार है–

«ढलते समय की क़सम, मनुष्य घाटे में है। सिवाय उन लोगों के जो ईमान लाए और अच्छे कर्म किए और एक-दूसरे को सत्य का उपदेश देते रहे, और धैर्य की ताकीद करते रहे।» (सूरा–103, अल-अस्र, आयत–1-3)

यह सूरा मक्की है और इस्लाम के आरंभिक काल में उतरी। इसमें उन लोगों को उपदेश दिया जा रहा है जो लोगों को अल्लाह के संदेश अर्थात क़ुरआन की ओर बुलाते हैं कि तुम जो काम करने जा रहे हो। उसमें धैर्य की बड़ी आवश्यकता है क्योंकि ऐसे लोग बड़े घाटे में हैं जो ईमान नहीं लाते और अनुकूल कर्म नहीं करते। जब तुम उनको सत्य-धर्म का उपदेश दोगे तो वे आसानी से सत्य को नहीं अपनाएंगे। इसलिए धैर्य से काम लो, ताकि लोग तुम्हारी बातें सुनकर ईमान लाएँ और अच्छे कर्म करें। इसी प्रकार वे घाटे से बच सकते है।

अस्र उस नमाज़ (सलात) का नाम भी है जो ज़ुहर और मग़रिब के बीच पढ़ी जाती है। सहीह हदीसों में इस नमाज़ की बड़ी महत्त्वता आई है।

अब्दुल्लाह-बिन-उमर से रिवायत (उल्लिखित) है कि नबी (ﷺ) ने कहा,

"जिसकी अस्र की नमाज़ छूट गई वह ऐसा है जैसे उसका धन और परिवार कम हो गया।"

(देखिए: बुख़ारी, 552, मुस्लिम, 200)

इसी प्रकार बुरैदा से उल्लिखित है कि नबी (ﷺ) ने फ़रमाया,

"जिसने अस्र की नमाज़ छोड़ दी, उसके कर्म नष्ट हो गए।" (देखिए: बुख़ारी, 553)

अस्बात

यह सिब्त का बहुवचन है। इसका अर्थ है वंश। क़ुरआन में 'याक़ूब' (عليه السلام) की संतान को अस्बात कहा गया है जैसे –

«कह दो हम ईमान लाए, अल्लाह पर और उसपर जो हमारी ओर उतारी गई और उस चीज़ पर जो इबराहीम, इसमाईल, इसहाक़, याक़ूब और उनकी सन्तान की ओर उतारी गई।» (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–136)

इसी प्रकार देखिए: सूरा–3, आले-इमरान, आयत–84 और सूरा–4, अन-निसा, आयत–163। फिर इसका प्रयोग यहूदियों के एक गोत्र के अर्थ में होने लगा, जिस प्रकार अरबों के लिए क़बीला शब्द का प्रयोग होता है। क़ुरआन ने सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–159-160 में इसी ओर संकेत किया है –

«मूसा की जाति में एक समुदाय ऐसा है जो सत्य-मार्ग दिखाता है और उसी के अनुसार न्याय करता है। और हमने उन्हें बारह अस्बात (गोत्रों) में बाँटकर उनके कई गरोह बना दिए थे।»

बाइबल में भी याक़ूब (عليه السلام) की संतान को अस्बात कहा गया है –

1. अशीर, 2. बिन्यमीन, 3. याद, 4. दान, 5. राओबीन, 6. जबोलोन, 7. शमऊन, 8. नफ़्ताली, 9. यसाकर और 10. यहूज़ा। ये दसों तो याक़ूब (عليه السلام) की संतान थे। बाक़ी दो लावी और यूसुफ़ के

स्थान पर यूसुफ़ की संतान 'अफ़राइम' और 'मन्सी' को नियुक्त किया गया। और 'लावी' की संतान को हैकल (उपासना-गृह) का पुजारी बनाया गया। ये बारह अस्बात सुलैमान (ﷺ) के समय तक मिल-जुलकर रहते रहे। हर 'सिब्त' का एक सरदार होता था, लेकिन सुलैमान (ﷺ) के देहान्त के बाद ये सब आपस में लड़ गए और बनी-इसराईल का राज्य दो भागों में विभाजित हो गया। बनी-इसराईल के बारह अस्बात की तरह ईसा (ﷺ) ने भी अपने आदेशों एवं उपदेशों को बनी-इसराईल तक पहुँचाने के लिए बारह दूत नियुक्त किए। यह इस बात का प्रमाण है कि ईसा (ﷺ) की दावत केवल यहूदियों के लिए थी न कि सारे संसार के लिए।

अतिथि

देखें आतिथ्य।

अर्श

क़ुरआन में अर्श दो अर्थों में प्रयोग हुआ है–

प्रथम : घर की छत। जैसे अल्लाह का यह कहना–

«उस जैसे व्यक्ति को नहीं देखा जिसका एक ऐसी बस्ती से गुज़र हुआ जो अपनी छतों के बल गिरी हुई पड़ी थी। उसने कहा, "अल्लाह कैसे इसको विनष्ट हो जाने के पश्चात् जीवित करेगा?" तो अल्लाह ने उसे सौ वर्ष की मृत्यु दे दी, फिर उसे उठा खड़ा किया। कहा, "तू कितनी अवधि तक इस अवस्था में रहा?" उसने कहा, "एक दिन या एक दिन का कुछ भाग।" कहा, "बल्कि तू सौ वर्ष तक इस अवस्था में रहा है। अब अपने खाने और अपने पीने की वस्तुओं को देख कि उनपर सालों गुज़र जाने का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। और अपने गधे को देखो। (यह हमने इसलिए किया ताकि तुम्हें विश्वास हो) ताकि हम तुम्हें लोगों के लिए एक निशानी बना दें। और हड्डियों को देखो कि हम किस प्रकार उनका ढाँचा खड़ा करते हैं, फिर उनपर मांस चढ़ाते हैं। इस प्रकार जब उसके सामने बात खुलकर आ गई, तो वह पुकार उठा, "मैं जानता हूँ कि अल्लाह को हर चीज़ की सामर्थ्य प्राप्त है।"» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–259)

कुछ विद्वानों का विचार है कि इस आयत में 'हिज़कियाल' नबी की ओर संकेत किया गया है।

द्वितीय : इसका दूसरा अर्थ राजसिंहासन है। जैसे पवित्र क़ुरआन में एक परिंदा हुदहुद हज़रत सुलैमान (ﷺ) को सूचना देते हुए कहता है–

«मैंने देखा कि एक स्त्री उनपर शासन कर रही है। और उसे हर प्रकार की वस्तुएँ प्रदान की गई हैं और उसका एक बड़ा सिंहासन है।» (सूरा-27, अन-नम्ल, आयत–23)

अल्लाह का अर्श भी इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जैसे क़ुरआन में एक स्थान पर आया है–

«अल्लाह के अतिरिक्त कोई पूज्य नहीं और वह महान सिंहासन का स्वामी है।» (सूरा–27, अन-नम्ल, आयत–26)

सिंहासन के स्वामी होने का अर्थ है कि उसको अल्लाह ने उत्पन्न किया है और वह एक वस्तु है जैसे कोई भी वस्तु होती है। तभी तो फ़रिश्ते उसको उठाए रहते हैं–

«जो सिंहासन को उठाए हुए हैं तथा उसके आस-पास जो (फ़रिश्ते) अपने रब की प्रशंसा के साथ तसबीह करते हैं तथा उसपर ईमान लाते हैं, और ईमान लानेवालों के लिए क्षमा की प्रार्थना करते हैं कि ऐ हमारे रब, तूने अपनी दयालुता तथा ज्ञान से हर चीज़ को घेर रखा है, तो जिन लोगों ने तौबा की और तेरे मार्ग पर चले, उन्हें क्षमा कर दे और भड़कती हुई आग से सुरक्षित रख।» (क़ुरआन, सूरा–40, अल-मोमिन, आयत–7)

«उसके किनारों पर फ़रिश्ते होंगे तथा उस दिन तुम्हारे रब के सिंहासन को आठ फ़रिश्ते अपने ऊपर उठाए होंगे।» (क़ुरआन, सूरा-69, अल-हाक़्क़ा, आयत-17)

ये फ़रिश्ते जो अल्लाह के अर्श को उठाए होंगे, उनके विषय में आया है कि वे बहुत बलवान होंगे। उनके कान और कन्धे के बीच की जो दूरी होगी, वह सात सौ वर्ष की यात्रा के बराबर होगी। (देखिए: अबू दाऊद, 4727)

अल्लाह का अर्श (सिंहासन) सबसे ऊँची और महान सृष्टि है। सारा ब्रह्माण्ड उसके नीचे ऐसे है जैसे रेगिस्तान में एक छोटा-सा गढ़ा। बुख़ारी की एक हदीस में भी इसी ओर संकेत किया गया है –

"अगर तुम अल्लाह से कुछ माँगो तो फ़िरदौस नामी स्वर्ग माँगो, क्योंकि यह स्वर्ग का सबसे ऊँचा और उत्तम भाग है। और उसके साथ अल्लाह का अर्श है और वहीं से जन्नत की नहरें निकलती हैं।" (हदीस : बुख़ारी, 7423)

क़ुरआन की एक दूसरी आयत में आया है–

«वही है जिसने छह दिनों में आकाशों और धरती को पैदा किया। उस समय उसका अर्श पानी पर था।» (सूरा–11, हूद, आयत–7)

इन आयतों से स्पष्ट होता है कि अर्श कोई वस्तु है, जिसको अल्लाह ने पैदा किया है और फिर वह उसपर विराजमान है। इस विषय में हमारा ज्ञान बहुत कम है, क्योंकि हमारा मस्तिष्क सीमित है और अल्लाह का ज्ञान असीमित। अब सीमित, असीमित को अपनी परिधि में कैसे ले सकता है। इसलिए हम ग़ैब (परोक्ष) पर ईमान रखते हुए क़ुरआन की इन आयतों और इन जैसी दूसरी आयतों तथा सहीह हदिसों में जो कुछ अर्श के विषय में आया है, उसपर ईमान रखते हैं। और हर प्रकार की अनुचित कल्पना से बचते हैं। यही वह सही नीति है, जो सहाबा और अन्य इस्लामी विद्वानों की रही है।

❮ अरफ़ात ❯

यह एक मैदान का नाम है जो मक्का के पूर्व में लगभग 22 किलोमीटर की दूरी पर पड़ता है। इसका वर्णन क़ुरआन में केवल एक स्थान पर आया है –

«जब अरफ़ात से चलो तो मशअरे-हराम के पास अल्लाह को याद करो, जैसा कि उसने तुम्हें बताया है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–198)

यह वही अरफ़ात है जहाँ हज करनेवालों को सुबह से शाम तक ठहरना पड़ता है। यहाँ ज़ुहर और अस्र की नमाज़ एक साथ पढ़ी जाती है। यहाँ का ठहरना हज का एक प्रमुख स्तम्भ है, जिसके बिना हज नहीं होता। इसी लिए एक सहीह हदीस में आया है –

"हज तो अरफ़ात है।"

'अरफ़ात' 'अरफ़ा' से बना है, जिसका अर्थ है–जानना या पहचानना। इब्ने-अब्बास (رضي الله عنه) की एक हदीस में आया है कि जिबरील (عليه السلام) ने इबराहीम (عليه السلام) को इसी मैदान में हज के नियम सिखाए थे, इसलिए इसका नाम 'अरफ़ा' हो गया।
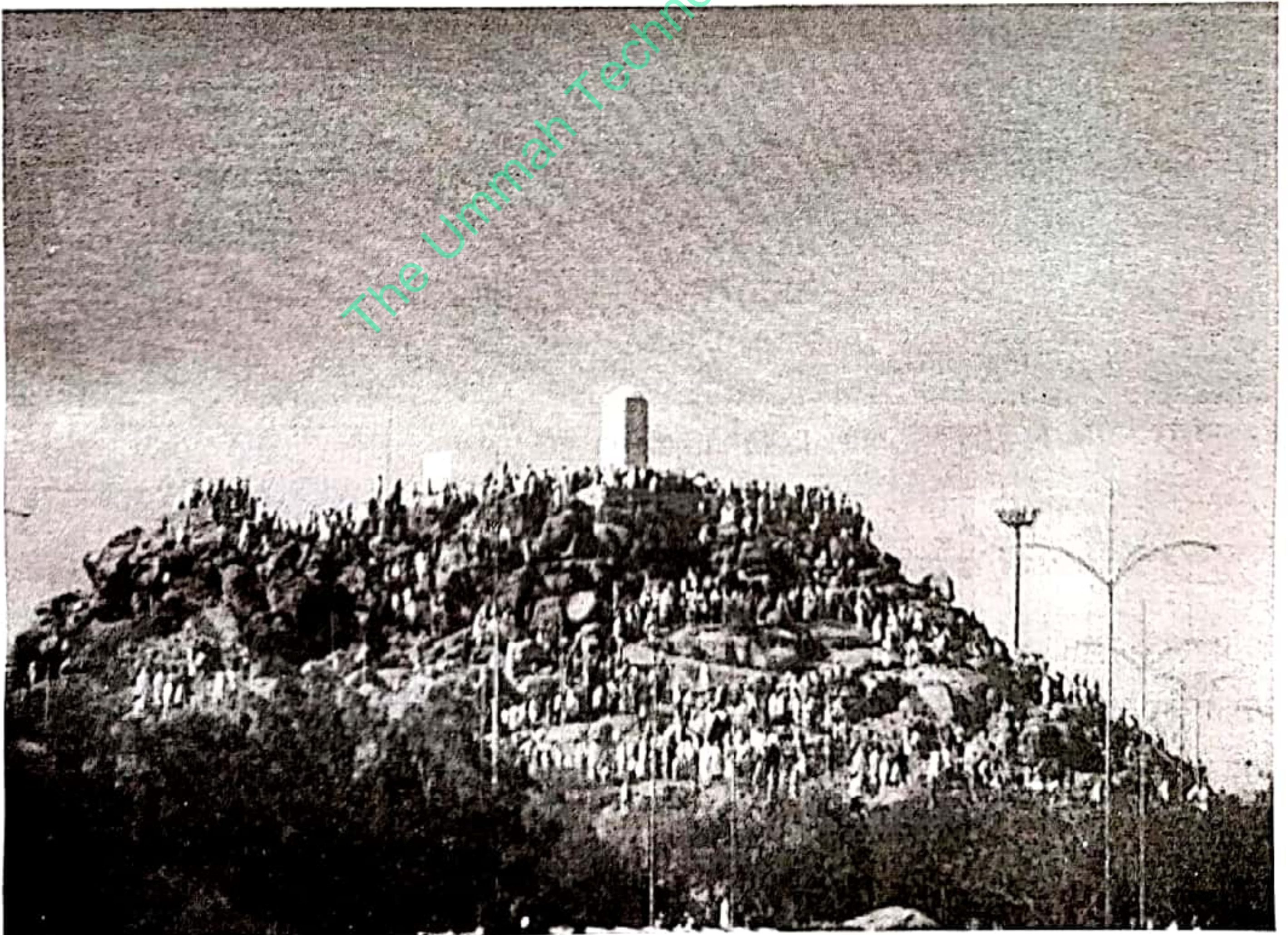
"अरफ़ात में 'जबले रहमत' का एक दृश्य"

इसी अरफ़ात के मैदान में वह छोटा पर्वत है जिसको 'जबले-रहमत' कहते हैं। इसी की घाटी में नबी (ﷺ) ने हज के अवसर पर वह सुप्रसिद्ध भाषण दिया जो मानव-अधिकार का पहला विश्व-व्यापी घोषणा-पत्र माना जाता है। और उसके बाद आप अपने ख़ेमे में आए। उस ख़ेमे की जगह आज मस्जिद बनी हुई है जिसको मस्जिदे-नमिरा कहते हैं। उस मस्जिद को सऊदी अरब सरकार ने काफ़ी रक़म ख़र्च करके दोबारा बनवाया है। इसमें दरवाज़ों की संख्या 64 है और अब उसमें साढ़े तीन लाख लोग एक साथ नमाज़ पढ़ सकते हैं, जिनके लिए एक हज़ार बैतुलख़ला (शौचालय) और पन्द्रह हज़ार वुज़ूगाह बनाई गई हैं।
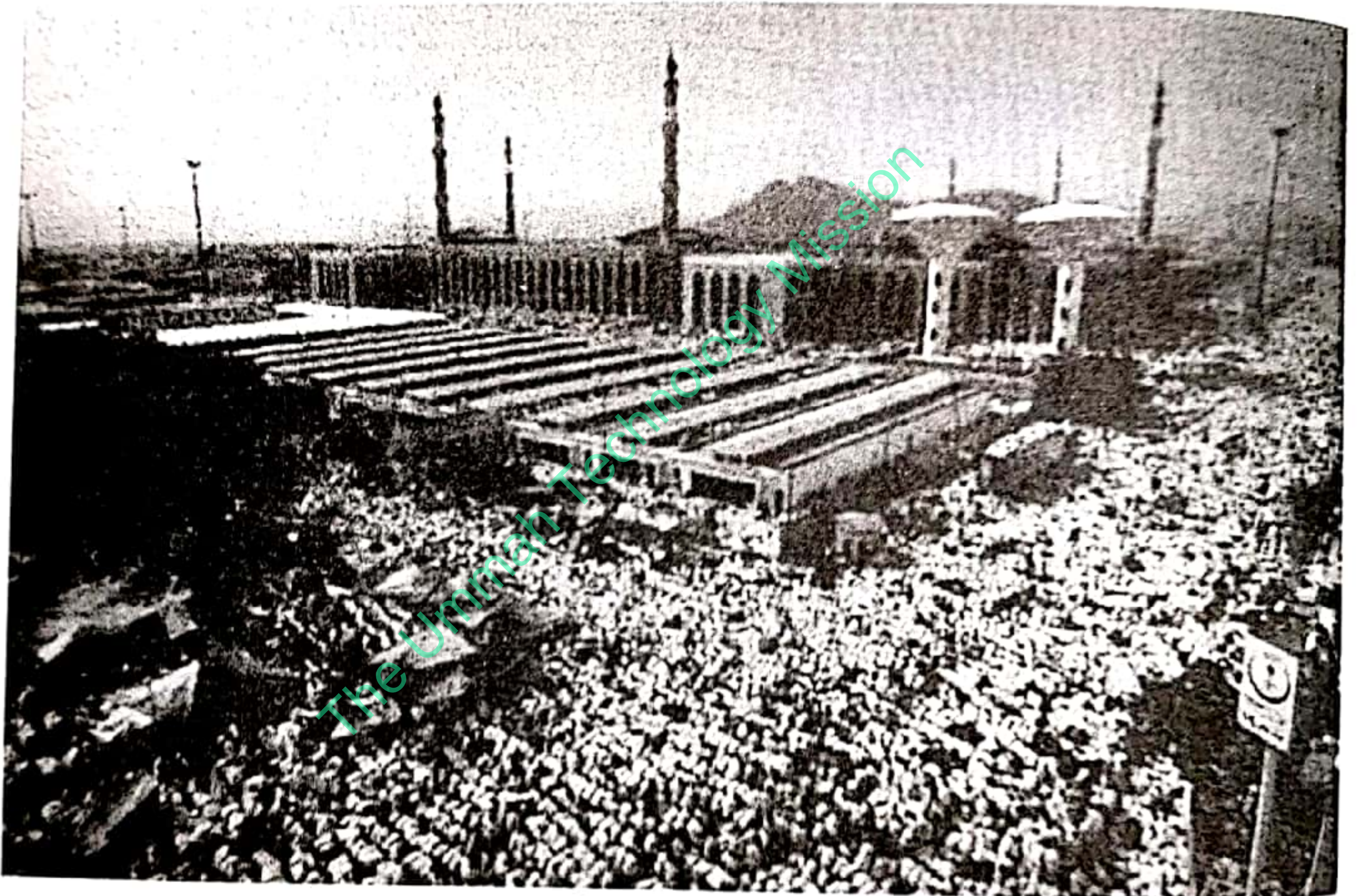
"मस्जिदे नमिरा का एक दृश्य"

अदन

अदन का शाब्दिक अर्थ है—सदा, नित्य, हमेशा। यह शब्द क़ुरआन में केवल स्वर्ग की विशेषता बताने के लिए प्रयुक्त हुआ है कि स्वर्ग शाश्वत है, सदा-सर्वदा रहनेवाला है। जो उसमें जाएगा वह वहाँ से कभी नहीं निकलेगा, जैसा कि क़ुरआन की सूरा तौबा में आया है—

«ईमान लानेवाले पुरुषों और ईमान लानेवाली स्त्रियों से अल्लाह ने ऐसी जन्नतों का वादा किया है जिनके नीचे नहरें बह रही होंगी, जिनमें वे सदैव रहेंगे। इन शाश्वत जन्नतों में उत्तम प्रकार के घर होंगे।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयत–72)

और अर्श उठानेवाले फ़रिश्ते अल्लाह से कहेंगे –

«ऐ हमारे रब! उन्हें सदैव रहनेवाली जन्नतों में दाख़िल कर जिनका तूने उनसे वादा किया है।» (सूरा–40, अल-मोमिन, आयत–8)

और अधिक जानकारी के लिए देखिए क़ुरआन सूरा–16, अन-नह्ल, आयत–31; सूरा–18, अल-कहफ़, आयत–31; सूरा–20, ता-हा, आयत– 76 इत्यादि।

अल-आराब

इस शब्द का अर्थ है रेगिस्तान में रहनेवाले बद्दू या वे लोग जिनका कोई घर-बार नहीं होता, बल्कि वे अपने ऊँट और बकरियों को लेकर इधर-उधर घूमते-फिरते हैं। ये लोग जहाँ पानी मिल जाता है वहीं ख़ेमा लगाकर रहने लगते हैं। इसलिए इनके स्वभाव कठोर हो जाते हैं। ज्ञान की कमी के कारण ये लोग कभी-कभी अल्लाह की बनाई हुई सीमा का भी उल्लंघन कर जाते हैं। क़ुरआन ने विभिन्न प्रकार से इनके स्वभाव का चित्रण किया है –

«बद्दू कहते हैं कि हम ईमान लाए। कह दो, "तुम ईमान नहीं लाए बल्कि यूँ कहो कि हम इस्लाम लाए, और ईमान तो अभी तुम्हारे दिलों में दाख़िल ही नहीं हुआ।"» (सूरा–49, अल-हुजुरात, आयत–14)

अर्थात् मुसलमानों को देखकर वे कहते थे कि हम भी ईमान लाए, परन्तु ईमान अभी उनके दिलों में अच्छी तरह दाख़िल नहीं हुआ था, बल्कि वे ज़ाहिरी इस्लाम का दावा करते थे, इसलिए यहाँ उनके ईमान को नकारा जा रहा है।

«ये बद्दू इनकार (कुफ़्र) और कपटाचार (निफ़ाक़) में बहुत-ही बढ़े हुए हैं और इसी के ज़्यादा योग्य हैं कि उसकी सीमाओं से अनभिज्ञ रहें, जिसे अल्लाह ने अपने रसूल पर उतारा है।» (क़ुरआन, सूरा–9, अत-तौबा, आयत–97)

«तुम्हारे आस-पास के बद्दुओं में और मदीनावालों में कुछ ऐसे कपटाचारी (मुनाफ़िक़) हैं, जो कपटनीति (निफ़ाक़) पर जमे हुए हैं, उनको तुम नहीं जानते, हम उन्हें भली-भाँति जानते हैं। जल्द ही हम उन्हें दोहरी यातना देंगे। फिर वे एक बड़ी यातना की ओर फेर दिए जाएँगे।» (क़ुरआन, सूरा–9, अत-तौबा, आयत–101)

«ऐ नबी! जो बद्दू पीछे रह गए थे, वे अब तुमसे कहेंगे, "हमारे धनों और बाल-बच्चों ने हमें व्यस्त कर रखा था। आप हमारे लिए (अल्लाह से) क्षमा की प्रार्थना करें।" वे लोग अपनी ज़बानों से ऐसी बातें करते हैं, जो उनके दिलों में नहीं होती हैं।» (क़ुरआन, सूरा–48, अल-फ़त्ह, आयत–11)

इस आयत में नबी (ﷺ) के उस उमरे की ओर संकेत किया गया है जिसकी घोषणा आप (ﷺ) ने मक्का-विजय से पूर्व कर दी थी, इसलिए इन बद्दुओं का विचार था कि मक्कावाले, जो मुसलमानों के ख़ून के प्यासे थे, इन सबकी हत्या न कर दें। इसलिए ऐसे समय मक्का जाना स्वयं को विनष्ट करना है। इसलिए ये लोग आप (ﷺ) के साथ नहीं गए। (देखें : हुदैबिया) लेकिन इन्हीं बद्दुओं में से कुछ ऐसे भी थे जो पक्के मुसलमान थे –

«बद्दुओं में ऐसे भी लोग हैं, जो अल्लाह और अन्तिम दिन पर ईमान रखते हैं और जो कुछ ख़र्च करते हैं उसे अल्लाह के यहाँ निकटताओं और रसूल की दुआओं (आशीर्वाद) को प्राप्त करने का साधन बनाते हैं। हाँ, अवश्य ही यह उनके लिए साधन है। बहुत जल्द अल्लाह उनको अपनी रहमत में दाख़िल करेगा, निश्चय ही अल्लाह बड़ा क्षमाशील और दया करनेवाला है।» (क़ुरआन, सूरा–9, तौबा, आयत–99)

अत्याचार

क़ुरआन और सहीह हदीसों में अत्याचार की घोर निन्दा की गई है। अत्याचारियों को चेतावनी दी गई है कि

«उनको जल्द ही मालूम हो जाएगा कि वे किस जगह पलटते हैं।» (क़ुरआन, सूरा–26, अश्-शुअरा, आयत–227)

«जिन लोगों ने अत्याचार किया यदि उनके पास वह सब कुछ होता जो धरती में है और उतना ही उस के साथ और भी, तो वे क़ियामत के दिन बुरी यातना से बचने के लिए दे डालते, और उनके सामने अल्लाह की ओर से वह कुछ आएगा, जिसका उन्हें गुमान भी न था।» (क़ुरआन, सूरा–39 अज़्-ज़ुमर, आयत–47)

सहीह हदीसों में कहा गया है कि:

"संसार में अत्याचार करने वाला क़ियामत के दिन घोर अंधेरे में होगा, अल्लाह की पकड़ से बचने के लिए उसे प्रकाश की कोई किरण दिखाई नहीं देगी।" (देखिए बुख़ारी, 2447; मुस्लिम, 2579)

क़ुरआन में अत्याचार को एक और अर्थ में भी प्रयोग किया गया है। और वह यह कि किसी वस्तु को उसके वास्तविक स्थान से हटाकर किसी दूसरे स्थान पर रख देना। अदाहरण के लिए यहाँ कुछ का वर्णन किया जा रहा है –

1. अल्लाह इस पूरी सृष्टि का रचियता है, वही पालनहार है, वही राज़िक़ (जीविका देनेवाला), वही मार्ग-दर्शक है अर्थात वह सर्वगुणसम्पन्न और सर्वशक्तिमान है। इस नाते वही उपास्य भी है। अब यदि कोई व्यक्ति उस एक वास्तविक उपास्य अल्लाह के स्थान पर किसी दूसरे को उपास्य समझता

है या किसी और की उपासना करता है तो यह अल्लाह के निकट सबसे बड़ा अत्याचार है। अतः कुरआन में है –

«निश्चय ही शिर्क (बहुदेव-वाद) बहुत बड़ा अत्याचार है।» (सूरा–31, लुक़मान, आयत–13)

2. नियमों को तोड़ना भी अत्याचार कहलाता है। बने हुए नियम को तोड़कर व्यक्ति स्वयं पर अत्याचार करता है। इसी लिए क़ुरआन में कहा गया है कि अल्लाह के बनाए हुए नियम को तोड़नेवाला स्वयं अपने ऊपर अत्याचार कर रहा है, क्योंकि वह अल्लाह का तो कुछ बिगाड़ नहीं सकता। (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–231; सूरा–65, अत-तलाक़, आयत–1)
3. अल्लाह कभी किसी पर अत्याचार नहीं करता परन्तु लोग स्वयं अपने ऊपर अत्याचार करते हैं।

क्योंकि अल्लाह जिसको भी कोई सज़ा देता है वह उसके बुरे कर्मों के बदले में ही देता है – (देखिए: क़ुरआन, सूरा–11, हूद, आयत–101; सूरा–16, अन-नहल, आयत–118; सूरा–43, अज़-ज़ुख़रुफ़, आयत–76)

4. प्रलय के दिन किसी पर अत्याचार नहीं किया जाएगा –

«हम प्रलय के दिन न्याय का तराज़ू रखेंगे। ताकि किसी व्यक्ति पर तनिक भी अत्याचार न किया जाए, और अगर उसने राई के दाने के बराबर भी कुछ किया होगा तो हम उसे हाज़िर कर देंगे, और हम हिसाब करने के लिए काफ़ी हैं।» (क़ुरआन, सूरा–21, अल-अंबिया, आयत–47)

5. क़ुरआन मजीद में जिन बड़े अत्याचारियों का वर्णन किया गया है वे इस प्रकार हैं –

(i) बहुदेववादी

(ii) मस्जिदों में उपासना से रोकनेवाले। (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–114)

(iii) अल्लाह की ओर से आई हुई गवाही को छिपानेवाले। (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–140)

(iv) अल्लाह पर झूठ गढ़नेवाले। (क़ुरआन, सूरा–6, अल-अनआम, आयत–21)

(v) अल्लाह की आयतों को झुठलानेवाले। (क़ुरआन, सूरा–6, अल-अनआम, आयत–157)

अत्याचार करनेवाले यदि प्रायश्चित (तौबा) कर लें तो अल्लाह उनको क्षमा कर सकता है –

«फिर जो कोई अत्याचार करने के पश्चात् पलट आए और अपने को सुधार ले, तो निश्चय ही अल्लाह उस पर कृपा करेगा।» (क़ुरआन, सूरा–5, अल-माइदा, आयत–39 तथा सूरा–3, आले-इमरान, आयत–135)

यहाँ प्रायश्चित करने का अर्थ है कि अगर किसी ने किसी का धन लेकर उस पर अत्याचार किया, तो उसका धन वापस करे। किसी ने किसी पर दण्ड के द्वारा अत्याचार किया, तो उससे दण्ड माफ़ कराए और फिर अल्लाह के सम्मुख अपने अत्याचार पर सच्चे दिल से तौबा करे कि वह दोबारा किसी पर अत्याचार नहीं करेगा। फिर अल्लाह उस पर कृपा करेगा और उसके प्रायश्चित को स्वीकार करेगा।

इसी को ''तौबा नसूह'' कहा गया है।

अज़ान

अज़ान शब्द का अर्थ है पुकारना। क़ुरआन में आया है कि अल्लाह ने इबराहीम (ﷺ) को आदेश दिया कि लोगों को हज के लिए पुकारो :

«लोगों को हज के लिए पुकारो, वे तुम्हारी ओर पैदल, तथा दुबले ऊँटों पर सवार होकर विभिन्न मार्गों से चले आएँगे।» (सूरा–22, अल-हज्ज, आयत–27)

पहले-पहल मुसलमान मदीने में नमाज़ को निश्चित समय पर अदा करने की सूचना देने के लिए कोई उचित व्यवस्था नहीं रखते थे तो वे आपस में कहने लगे, क्यों न हम ईसाइयों की तरह नमाज़ की सूचना देने के लिए घंटी बजाएँ, तो किसी ने कहा, क्यों न यहूदियों की तरह शंख बजाएँ। हज़रत उमर (ﷺ) ने यह राय दी कि सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि नमाज़ की सूचना देने के लिए किसी को कहा जाए कि जाओ 'नमाज़-नमाज़' पुकारो, इस बात को नबी (ﷺ) ने पसन्द फ़रमाया और बिलाल (ﷺ) को आदेश दिया कि जाओ ऐसा करो। (बुख़ारी 604, मुस्लिम 377)

परन्तु अभी भी सोच में पड़े रहे, इतने में एक दिन अब्दुल्लाह-बिन-ज़ैद-बिन-अब्द रब्ही सेवा में उपस्थित हुए और आप (ﷺ) से अर्ज़ किया, ''ऐ अल्लाह के रसूल, मैं अर्द्धजाग्रतावस्था में था तो देखता क्या हूँ कि एक व्यक्ति आया और उसने मेरे सामने अज़ान दी।'' उमर (ﷺ) ने कहा, ''मैंने भी बीस दिन पहले ऐसा ही देखा था।'' इसपर नबी (ﷺ) ने बिलाल (ﷺ) को आदेश दिया कि वे अज़ान दें। क्योंकि उनका स्वर बड़ा मधुर और ऊँचा था। और उस दिन से आज तक नमाज़ की सूचना के लिए मस्जिदों में अज़ान दी जाती है, जिसमें अल्लाह की महानता और नबी (ﷺ) के रसूल होने की गवाही दी जाती है और नमाज़ के लिए बुलाया जाता है। यहाँ अज़ान के बोल और अनुवाद प्रस्तुत है –

اَللهُ أَكْبَرُ اَللهُ أَكْبَرُ

अल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर

अल्लाह सबसे बड़ा है, अल्लाह सबसे बड़ा है (दो बार)।

أَشْهَدُ أَن لَّا إِلٰهَ إِلَّا اللهُ.

अश्हदु अल-ला इला-ह इल्लल्लाह

मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई पूज्य नहीं (दो बार)।

أَشْهَدُ أَنَّ مُحَمَّدًا رَّسُوْلُ اللهِ.

अश्हदु अन-न मुहम्मदर-रसूलुल्लाह

मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं (दो बार)।

حَيَّ عَلَى الصَّلَاةِ.

हइ-य अलस्सलाह

आओ नमाज़ की ओर (दो बार)।

حَيَّ عَلَى الْفَلَاحِ.

हइ-य अलल् फ़लाह

आओ सफलता की ओर (दो बार)।

اَللهُ أَكْبَرُ اَللهُ أَكْبَرُ.

अल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर

अल्लाह सबसे बड़ा है, अल्लाह सबसे बड़ा है।

لَا إِلٰهَ إِلَّا اللهُ.

अल्लाह के अतिरिक्त कोई पूज्य नहीं।

अज़ान की आवाज़ सुननेवाले प्रत्येक मुसलमान पर अनिवार्य है कि अज़ान का जवाब दे और वह यह कि वह भी उसी प्रकार अज़ान के बोलों को धीरे-धीरे दोहराए और जब *'हय-य अलस-सलाह, हय-य अलस-सलाह'*, और *'हय-य अलल फ़लाह, हय-य अलल फ़लाह'* पर मुअज़्ज़िन (अज़ान देनेवाला) पहुँचे तो उसके उत्तर में यह कहे –

'लाहौ-ल वला कुव्व-त इल्ला बिल्लाह'

अर्थात् नमाज़ पढ़ने और सफलता की ओर आने की हमारे अन्दर शक्ति नहीं है, परन्तु यदि अल्लाह चाहे।

इसमें मनुष्य एक प्रकार से अल्लाह के मुक़ाबले में अपनी विवशता को प्रकट करता है।

अज़ान का असल जवाब तो यही है कि हम अज़ान की आवाज़ सुनते ही नमाज़ के लिए चल पड़ें। मगर अल्लाह के रसूल ने उसके अलफ़ाज़ दुहराने के लिए भी फ़रमाया है।

इसके बाद एक विशेष दुआ पढ़ी जाती है जिसका वर्णन सहीह हदीसों में आया है। उसके पढ़ने से नबी (ﷺ) की शफ़ाअत, अल्लाह ने चाहा तो, प्रलय के दिन प्राप्त होगी।

सहीह हदीसों में आया है कि मुअज़्ज़िन की गर्दन प्रलय के दिन सबसे ऊँची होगी। (मुस्लिम, 387)

इसी प्रकार एक दूसरी हसन हदीस में आया है कि प्रलय के दिन मुअज़्ज़िन के लिए, जहाँ तक उसकी आवाज़ पहुँचेगी, सब गवाही देंगे। (अबू दाऊद, 515)

अज़ीज़े-मिस्र

अज़ीज़े-मिस्र का अर्थ है मिस्र का शासक या थानेदार। अज़ीज़ तो अल्लाह के नामों में से एक नाम है, परन्तु क़ुरआन में यह शब्द अल्लाह के बजाए दो स्थानों पर मिस्र के शासक या थानेदार और दो स्थानों पर 'यूसुफ़' नबी के लिए प्रयुक्त हुआ है, जिसका वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

पहला स्थान –

«नगर की स्त्रियाँ कहने लगीं कि अज़ीज़ की स्त्री अपने नवयुवक दास पर डोरे डालना चाहती है।» (सूरा–12, यूसुफ़, आयत–30)

दूसरा स्थान –

«अज़ीज़ की स्त्री ने कहा : अब सच्ची बात खुल गई है। वह मैं ही थी जिसने उसे फुसलाना चाहा था, और निस्सन्देह वह सच्चों में से है।» (सूरा–12, यूसुफ़, आयत–51)

इन दोनों स्थानों पर विचार करने से पता चलता है कि 'अज़ीज़' किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं, बल्कि राज दरबार में कोई पद था जिसको हम शासक, दारोग़ा या थानेदार कह सकते हैं, या आज की भाषा में प्रधानमंत्री भी कह सकते हैं। क़ुरआन में तीसरे और चौथे स्थान पर यही शब्द 'अज़ीज़' यूसुफ़ नबी के लिए प्रयुक्त हुआ है। मिस्र का यह 'अज़ीज़' कौन था, इसके लिए देखिए 'यूसुफ़'। वैसे बाइबल में मिस्र के उस हाकिम का नाम 'पोतीपर' बताया गया है। (उत्पत्ति, 39:1) परन्तु उसकी पत्नी का नाम बाइबल में नहीं बताया गया है। कुछ मुस्लिम भाष्यकारों ने उसका नाम 'ज़ुलैख़ा' बताया है, लेकिन यह नाम प्रमाणित नहीं है।

अब्दुल्लाह-बिन-उबई

इसका नाम क़ुरआन में प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं अया है, परन्तु सूरा–24, अन-नूर, आयत–11 में जिस व्यक्ति का वर्णन हुआ है वह यही 'अब्दुल्लाह-बिन-उबई' है।

«जो लोग यह झूठा कलंक गढ़ लाए हैं, वह तुममें से ही एक टोली है, उसे अपने लिए बुरा न समझो, बल्कि वह भी तुम्हारे लिए अच्छा ही है। उनमें से प्रत्येक के लिए उतना ही हिस्सा है जितना पाप उसने कमाया है, और उनमें से जिस व्यक्ति ने इस कलंक का बड़ा भाग अपने सिर लिया उसके लिए बड़ी यातना है। (क़ुरआन, सूरा–24, अन-नूर, आयत–11)

इस आयत में जिस व्यक्ति के बारे में कलंक का बड़ा भाग अपने सिर लेने की बात कही गई है, वह यही अब्दुल्लाह -बिन-उबई है जो मुनाफ़िक़ों का सरदार था। इस्लाम और नबी (ﷺ) को क्षति पहुँचाने में सदैव आगे रहता था। उसको 'बनी मुस्तलिक़' के युद्ध के समय एक अवसर मिल गया और उससे लाभ उठाते हुए उसने मुसलमानों में फ़ितना फैलाने के उद्देश्य से हज़रत आइशा (رضي الله عنها), जो नबी (ﷺ) की धर्मपत्नी थीं, पर कलंक लगाने की चेष्टा की, जिससे कुछ कमज़ोर ईमान के मुसलमान भी प्रभावित हो गए। इस कलंक का विवरण इस प्रकार है–

''नबी (ﷺ) जब कहीं सफ़र पर जाते तो क़ुरआ (परची) डालकर यह फ़ैसला करते कि अपनी पत्नियों में से किसे साथ ले जाएँ। बनी मुस्तलिक़ की मुहिम के अवसर पर परची हज़रत आइशा (رضي الله عنها) के नाम निकली। आप इस सफ़र में नबी (ﷺ) के साथ गईं। यह सफ़र उस समय किया गया था जबकि परदे से सम्बन्धित आदेश आ चुका था। इस लड़ाई से लौटते समय जब नबी (ﷺ) और आप (ﷺ) के साथी मदीना के निकट पहुँचे तो आप (ﷺ) ने रात में एक जगह पड़ाव किया। अभी कुछ रात बाक़ी थी कि कूच की तैयारियाँ होने लगीं। हज़रत आइशा (رضي الله عنها) उठकर ज़रूरत से बाहर गईं। जब लौटकर पड़ाव के निकट पहुँचीं तो मालूम हुआ कि गले का हार कहीं रास्ते में टूटकर गिर गया है। हार की तलाश में उनको देर हो गई। इतने में क़ाफ़िला कूच कर गया। कूच के समय वे ऊँट के कजावे में बैठ जाती थीं और चार आदमी उसे उठाकर ऊँट पर रख दिया करते थे। वे बीमार होने की वजह से काफ़ी कमज़ोर हो गई थीं इसलिए लोगों ने समझा कि वे कजावे में बैठ चुकी हैं। उन्होंने उसे उठाकर ऊँट पर रख दिया। जब वे वापस हुईं और देखा कि लोग जा चुके हैं, तो चादर ओढ़कर वहीं लेट गईं और सोचा कि आगे चलकर जब मालूम हो जाएगा कि मैं पीछे रह गई हूँ तो लोग स्वयं ढूँढने के लिए आएँगे। इतने में उनको नींद आ गई। सवेरे के समय सफ़वान-बिन-मुअत्तल सुलमी उस जगह से गुज़रे, जहाँ आप सो रही थीं। उन्होंने उनको पहचान लिया, इसलिए कि परदे का हुक्म आने से पूर्व वे उनको देख चुके थे। आइशा (رضي الله عنها) ने उन्हें देखकर तुरन्त अपने मुँह पर चादर डाल ली। उन्होंने अपना ऊँट उनके निकट बिठा दिया और स्वयं अलग हटकर खड़े हो गए। वे ऊँट पर सवार

हो गईं और वे ऊँट की नकेल पकड़कर चल पड़े। यहाँ तक कि दोपहर के क़रीब क़ाफ़िले का साथ पकड़ लिया जबकि वह एक जगह पहुँचकर अभी ठहरा ही था। इसी पर तोहमत लगानेवालों ने आइशा (رضي الله عنها) पर तोहमत लगाई और इसमें सबसे बढ़कर जिसने हिस्सा लिया वह अब्दुल्लाह-बिन-उबई था। परन्तु हज़रत आइशा (رضي الله عنها) को इसकी कुछ भी ख़बर न हो सकी कि लोग उनके बारे में क्या कह रहे हैं।

मदीना पहुँचने के बाद वे बीमार हो गईं और लगभग एक महीने तक बीमार रहीं। नगर में उनके बारे में ख़बरें उड़ रही थीं; नबी (ﷺ.) के कानों तक बात पहुँच चुकी थी, परन्तु आइशा (رضي الله عنها) इससे बिलकुल बेख़बर रहीं। यह वे अवश्य सोचती थीं कि नबी (ﷺ) की वह कृपा-दृष्टि मुझपर क्यों न रही जो पहले बीमारी के समय में रहा करती थी? फिर वे नबी (ﷺ) से आज्ञा लेकर अपनी माता के घर चली गईं।

एक रात जब आइशा (رضي الله عنها) ज़रूरत से बाहर गईं तो उनके साथ मिसतह-बिन-उसामा की माँ भी थीं। रास्ते में उन्हें ठोकर लगी तो उनके मुँह से निकला, 'बरबाद हो मिसतह'। आइशा (رضي الله عنها) ने कहा, ''आप ऐसे व्यक्ति को कोसती हैं जो 'बद्र' की लड़ाई में सम्मिलित हुआ है।'' उन्होंने कहा, ''क्या सुना नहीं कि उसने क्या कहा है?'' फिर उन्होंने सारा क़िस्सा सुनाया। आइशा (رضي الله عنها) को सुनकर बहुत दुःख हुआ; रात भर रोती रहीं।

नबी (ﷺ) ने हज़रत अली (رضي الله عنه) और उसामा बिन ज़ैद को बुलाया और उनसे इसके बारे में राय ली। उसामा-बिन-ज़ैद (رضي الله عنه) ने कहा, ''ऐ अल्लाह के रसूल! भलाई के सिवा हमने और कोई चीज़ आप की पत्नी में नहीं पाई।'' अली (رضي الله عنه) ने कहा, ''ऐ अल्लाह के रसूल! अल्लाह ने आपपर तंगी नहीं की है, स्त्रियाँ और बहुत हैं। और जाँच करनी चाहें तो आप अपनी लौंडी को बुलाकर पूछें वह सच-सच बयान कर देगी।'' नबी (ﷺ) ने लौंडी से पूछा तो उसने कहा, ''क़सम है उसकी जिसने आपको सत्य के साथ भेजा है, मैंने उनमें कोई ऐसी बात नहीं देखी कि उनपर दोष लगाऊँ। बस इतनी ख़राबी है कि मैं आटा गूँधकर किसी काम को जाती हूँ और कह जाती हूँ कि आटे को देखिएगा, परन्तु वे सो जाती हैं और बकरी आकर आटा खा जाती है।'' उसी दिन नबी (ﷺ) ने भाषण दिया और मुसलमानों के सामने अपना दुःख प्रकट किया।

इस तोहमत की अफ़वाहें लगभग एक महीने तक नगर में उड़ती रहीं। नबी (ﷺ) अत्यन्त दुःखी रहे। आइशा (رضي الله عنها) रोती रहीं। आइशा (رضي الله عنها) के माता-पिता अलग दुःखी थे। एक दिन नबी (ﷺ) आपके पास आए और सलाम करके बैठ गए। फिर कहा, ''आइशा! मुझे तुम्हारे बारे में ऐसी ख़बरें पहुँची हैं, यदि तुम निर्दोष हो तो आशा है कि अल्लाह तुम्हारे निर्दोष होने को ज़ाहिर कर देगा और यदि तुमसे गुनाह हुआ हो तो अल्लाह से तौबा करो और क्षमा माँगो। बन्दा जब अपने गुनाह को

स्वीकार करके तौबा कर लेता है तो अल्लाह उसे क्षमा कर देता है।'' यह सुनकर आइशा (رضي الله عنها) के आँसू शुष्क हो गए। उन्होंने अपने पिता से कहा कि वे नबी (ﷺ) की बात का उत्तर दें। उन्होंने कहा कि मेरी समझ में कुछ नहीं आता कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) से क्या कहूँ। फिर आइशा (رضي الله عنها) ने अपनी माता से कहा कि वे उत्तर दें। उन्होंने भी यही कहा कि समझ में कुछ नहीं आता क्या कहूँ। फिर आइशा (رضي الله عنها) ने कहा कि आप लोगों के कानों में एक बात पड़ गई है और वह दिलों में बैठ चुकी है, यदि मैं कहूँ कि मैं बेगुनाह हूँ तो आप लोग नहीं मानेंगे और यदि मैं एक ऐसी बात का इक़रार कर लूँ जो नहीं की तो आप लोग मान लेंगे। तो अल्लाह की क़सम! ऐसी हालत में मैं वही बात कहती हूँ जो यूसुफ़ (عليه السلام) के पिता ने कही थी कि 'फ़-सबरुन जमील' (अब तो धैर्य से काम लेना ही बेहतर है।) यह कहकर आइशा (رضي الله عنها) लेट गईं और दूसरी ओर करवट ले ली। हज़रत आइशा उस समय अपने दिल में कह रही थीं कि अल्लाह जानता है कि मैं निर्दोष हूँ, वह अवश्य हक़ बात को खोल देगा। आइशा (رضي الله عنها) का बयान है कि मैं इसकी तो कल्पना नहीं कर सकती थी कि मेरे हक़ में क़ुरआन की आयतें उतरेंगी जो क़ियामत तक पढ़ी जाएँगी। मैं समझती थी कि नबी (ﷺ) कोई स्वप्न देखेंगे जिसमें अल्लाह मेरे निर्दोष होने को ज़ाहिर कर देगा।

नबी (ﷺ) अभी वहीं थे कि आप (ﷺ) पर 'वह्य' उतरनी शुरू हो गई। ऐसे अवसर पर जाड़े के मौसम में भी आप (ﷺ) के चेहरे से पसीने की बूँदें टपकने लगती थीं। सब चुप हो गए कि देखिए अल्लाह क्या भेद खोलता है। आइशा (رضي الله عنها) निश्चिंत थीं। 'वह्य' उतरने के समय नबी (ﷺ) की जो हालत हो जाती थी जब वह हालत दूर हुई तो आप (ﷺ) अत्यन्त प्रसन्न थे। आप (ﷺ) ने कहा, ''ऐ आइशा! प्रसन्न हो जाओ, अल्लाह ने तुम्हारे बेगुनाह होने को ज़ाहिर कर दिया।'' फिर आप (ﷺ) ने सूरा-24, अन-नूर की 10 आयतें सुनाईं जो उस समय आप (ﷺ) पर उतरी थीं। हज़रत आइशा (رضي الله عنها) की माता ने आइशा (رضي الله عنها) से कहा, ''उठो और अल्लाह के रसूल (ﷺ) को धन्यवाद दो।'' आइशा (رضي الله عنها) ने कहा, ''मैं न उन्हें धन्यवाद दूँगी और न आप दोनों को, बल्कि अल्लाह का शुक्र अदा करती हूँ कि उसने वह्य के द्वारा मेरा निर्दोष होना स्पष्ट कर दिया।''» (सहीह बुख़ारी, 4750)

इस अवसर पर निम्नलिखित आयतें अवतरित हुईं—

«जो लोग यह झूठा कलंक (तोहमत) गढ़ लाए हैं यह तुममें से ही एक टोली है। इसे अपने हक़ में बुरा न समझो; बल्कि यह तुम्हारे हक़ में अच्छा ही है। उनमें से प्रत्येक व्यक्ति के लिए वही है जो कुछ उसने गुनाह कमाया; और उनमें से जिस व्यक्ति ने इस (झूठे कलंक) के बड़े हिस्से का ज़िम्मा अपने सिर लिया, उसके लिए बड़ी यातना है। जिस समय तुम लोगों ने उसे सुना था, तो क्यों न ईमानवाले पुरुषों, और ईमानवाली स्त्रियों ने अपने बारे में अच्छा गुमान करके कह दिया, ''यह तो एक खुली हुई झूठी

तोहमत है?'' वे इस (आरोप) पर चार गवाह क्यों नहीं लाए? तो जब वे गवाह नहीं लाए तो अल्लाह की दृष्टि में वही झूठे हैं। और यदि तुम लोगों पर दुनिया और आख़िरत में अल्लाह का अनुग्रह और उसकी दयालुता न होती तो जिस चर्चा में तुम पड़ गए उसके बदले में तुम्हें एक बड़ी यातना आ लेती। (सोचो तो) जब तुम उस (झूठ) को अपनी ज़बानों पर लेते जा रहे थे, और तुम अपने मुँह से वह कुछ कहे जा रहे थे जिसके बारे में तुम्हें कोई ज्ञान न था, तुम उसे एक साधारण बात समझ रहे थे, हालाँकि अल्लाह की दृष्टि में वह बहुत बड़ी बात थी। और जब तुमने उसे सुना था, क्यों न कह दिया, ''हमें उचित नहीं कि ऐसी बात ज़बान से निकालें। तू महिमावान् है (हे अल्लाह!), यह तो एक बहुत बड़ा झूठा कलंक है।'' अल्लाह तुम्हें नसीहत करता है कि फिर कभी ऐसा काम न करना, यदि तुम ईमानवाले हो। और अल्लाह आयतों को तुम्हारे लिए स्पष्ट रूप से बयान करता है। और अल्लाह जाननेवाला और तत्त्वदर्शी है। जो लोग चाहते हैं कि ईमान लानेवालों में अश्लीलता फैले, उनके लिए दुनिया और आख़िरत में दुखदायिनी यातना है। अल्लाह जानता है और तुम नहीं जानते। और यदि अल्लाह का अनुग्रह और उसकी दयालुता तुम पर न होती, (तो क्या कुछ न होता) और यह कि अल्लाह करुणामय और दया करनेवाला है। ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! शैतान के क़दमों का अनुसरण न करो । और जो कोई शैतान के क़दमों का अनुसरण करेगा, तो वह तो उसे अश्लीलता और बुराई ही का आदेश देगा। और यदि अल्लाह का अनुग्रह और उसकी दयालुता तुमपर न होती तो तुम में से कोई एक भी कभी पाक न होता। परन्तु अल्लाह जिसे चाहता है पाक करता है। और अल्लाह सुनने और जाननेवाला है।» (क़ुरआन, सूरा–24, अन-नूर, आयतें–11-21)

और यही मुनाफ़िक़ों का सरदार अब्दुल्लाह-बिन-उबई है, जिसने बनू-मुस्तलिक़ की मुहिम के अवसर पर यह बात कही थी –

«कहते हैं, ''यदि हम मदीना वापस पहुँच गए तो जो अधिक सम्मानवाला है अधिक अपमानवाले को मदीना से निकाल बाहर करेगा।» (क़ुरआन, सूरा–63, अल-मुनाफ़िक़ून, आयत 8)

उसके बेटे अब्दुल्लाह-बिन- अब्दुल्लाह-बिन-उबई इस क़िस्से से पहले ही मुसलमान हो गए थे। इस मौक़े पर उन्होंने अपने मुनाफ़िक़ बाप को क़त्ल करने की नबी (ﷺ) से आज्ञा माँगी। परन्तु आप (ﷺ) ने ऐसा करने से मना कर दिया। कुछ ही दिनों बाद उसका देहान्त हो गया। उसके बेटे ने नबी (ﷺ) से आपका जुब्बा माँगा ताकि उसमें लपेटकर अपने बाप को दफ़न कर दें। आप (ﷺ) ने अपना जुब्बा दे दिया। फिर बेटे ने आप (ﷺ) से प्रार्थना की कि आप नमाज़े-जनाज़ा भी पढ़ा दें। आप (ﷺ) चूँकि 'रहमतुल-लिल-आलमीन' (अर्थात् सारे संसार के लिए दयानिधि) बनाकर भेजे गए थे,

इसलिए आप (ﷺ) ने उस मुनाफ़िक़ की नमाज़े-जनाज़ा भी पढ़ा दी, जो आप (ﷺ) को तथा मुसलमानों को सदैव दुख पहुँचाया करता था। इसी अवसर पर क़ुरआन मजीद की यह आयत उतरी–

«(ऐ नबी !) इनमें से जो कोई मर जाए तुम कभी उसकी नमाज़े-जनाज़ा न पढ़ाना और न उसकी क़ब्र पर खड़े होना। निस्सन्देह इन्होंने अल्लाह और उसके रसूल के साथ कुफ़्र किया और मरे भी तो अवज्ञाकारी बनकर।» (क़ुरआन, सूरा–9, अत-तौबा, आयत–84)

अबू-बक्र-सिद्दीक़ (رضي الله عنه)

अबू-बक्र-सिद्दीक़ (رضي الله عنه) नबी (ﷺ) के प्रतिष्ठित सहाबी थे। उनका नाम क़ुरआन में प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं आया है, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से सूरा–9, अत-तौबा में 'दो में दूसरे' व्यक्ति अबू-बक्र सिद्दीक़ ही हैं।

«अगर तुम लोग रसूल की सहायता नहीं करते तो न सही, अल्लाह ने तो उसकी सहायता उस समय की, जब इस्लाम विरोधियों ने उसे घर से निकाल दिया था, और वह 'दो में दूसरा' था, वे गुफा में छिपे हुए थे। जब वह अपने साथी से कह रहा था, "चिन्तित न हो, अल्लाह हमारे साथ है।" तो अल्लाह ने उस पर अपनी ओर से शान्ति उतारी।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयत–40)

क़ुरआन के सभी भाष्यकार इस बात पर सहमत हैं कि यहाँ दो में दूसरा और साथी से अभिप्रेत अबू-बक्र-सिद्दीक़ (رضي الله عنه) हैं। 'दो में दूसरे' के लिए क़ुरआन में अरबी शब्द सानियसनैन इस्तेमाल हुआ है, इसलिए आपको विशेष रूप से सानियसनैन कहा जाता है। क्योंकि हिजरत करते समय आप (ﷺ) के साथ केवल वही थे और नबी (ﷺ) को पता था कि मक्का के इस्लाम-विरोधी हमारा पीछा करेंगे। इसलिए दोनों ने 'सौर' नामक एक गुफा में शरण ले ली और तीन दिन तक उसी गुफा में छिपे रहे। इस्लाम-विरोधी आप दोनों को ढूँढते-ढूँढते उस गुफा के दहाने (द्वार) पर पहुँच गए। अबू बक्र (رضي الله عنه) डर गए कि कहीं उन्होंने हमें देख लिया तो फिर क्या होगा? परन्तु नबी (ﷺ) तनिक भी न डरे, क्योंकि आप (ﷺ) अल्लाह के हुक्म से ही तो निकले थे। उस समय नबी (ﷺ) ने अबू बक्र (رضي الله عنه) को सांत्वना दी कि चिन्तित न हों, अल्लाह हमारे साथ है। फिर अल्लाह ने दिल से भय दूर करने के लिए आप (ﷺ) पर शान्ति उतारी।

सूरा–9, अत-तौबा की चालीसवीं आयत इसी घटना की ओर संकेत करती है। वास्तव में अबू-बक्र (رضي الله عنه) इस्लामी इतिहास में 'दो में से एक' बने। नबी (ﷺ) ने अपने जीवन में ही उनको अपना ख़लीफ़ा बनाने का संकेत दे दिया था, फिर मुसलमानों ने आप (ﷺ) के बाद उनके हाथ पर बैअ़त कर ली। इस प्रकार वे मुसलमानों के पहले ख़लीफ़ा हुए। वे नबी (ﷺ) से दो वर्ष छोटे थे। और उनका देहान्त भी ठीक नबी (ﷺ) के देहान्त के दो वर्ष बाद हुआ। इस प्रकार उनकी आयु मृत्यु के समय नबी (ﷺ) की आयु के बराबर थी। उनको नबी (ﷺ) के पास ही दफ़न किया गया।

अबाबील

आम तौर पर समझा जाता है कि अबाबील किसी पक्षी का नाम है जबकि वास्तव में 'अबाबील' किसी पक्षी का नाम नहीं है, बल्कि पक्षियों के झुंड को अबाबील कहा जाता है। क़ुरआन में पक्षियों की उस दशा का वर्णन किया गया है जिन्होंने 'अबरहा' की सेना पर, जो काबा को नष्ट-भ्रष्ट करने आया था, कंकरियाँ बरसाईं। वे कंकरियाँ जिसको लगतीं, उसके शरीर के आर-पार चली जातीं और वह तुरन्त ही मर जाता, या फिर ऐसे रोग में ग्रस्त हो जाता जिसमें शरीर सड़ जाता।

अदरक

देखें ज़ंजबील

अनाथ

अनाथ उस बालक को कहा जाता है जिसके पिता का देहांत हो गया हो। अनाथों की बहुत सी सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएं होती हैं। इन समस्याओं का इस्लाम ने बहुत ही उत्तम तरीक़े से समाधान किया है।

❋ **अनाथ की दो ही दशाएं होंगी–**

पहली दशा : जिसके पिता का देहान्त हो गया हो और वह अपने पीछे बहुत सारा धन छोड़ गया हो। ऐसी दशा में उसके धन की देख-भाल करने के लिए किसी को नियुक्त किया जाएगा। उसपर अनिवार्य होगा कि वह अनाथ के धन को बढ़ाने का यत्न करे और इस देख-भाल के बदले उसके लिए जो उचित राशि या धन निर्धारित किया जाए उससे अधिक न ले–

«अनाथ के धन के निकट भी न जाओ परन्तु उचित ढंग से, यहाँ तक कि वह युवावस्था को पहुँच जाए।» (क़ुरआन, सूरा–6, अल-अनआम, आयत–152 तथा सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–34)

अर्थात् जब तक वह अनाथ युवावस्था को नहीं पहुँच जाता, उस समय तक उसके धन की देख-भाल करो। उस पूंजी को उचित स्थान पर लगाओ, ताकि उसमें लाभ हो। अनाथ के धन को अपने धन के साथ मिला कर भी व्यापार किया जा सकता है।

जिसको अनाथ का संरक्षक बनाया गया हो उसपर अनिवार्य है कि अनाथ की भलाई के बारे में हर समय सोचता रहे। अगर वह समझता है कि अनाथ के धन को अलग व्यापार में लगाने से उत्तम यह है कि अपने व्यापार में सम्मिलित कर ले तो ऐसा करना निषिद्ध नहीं है–

«वे तुमसे अनाथों के बारे में पूछते हैं। कहो कि जिसमें उनका हित हो वही उत्तम है। और यदि तुम उन्हें अपने साथ मिला लो तो वे तुम्हारे भाई हैं। और अल्लाह बिगाड़ चाहनेवालों को हित चाहनेवालों से अलग पहचानता है। और अल्लाह चाहता तो तुम्हें कठिनाई में डाल देता। निस्सन्देह अल्लाह प्रभुत्वशाली और तत्त्वदर्शी है।» (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–220)

यहाँ अपने साथ मिलाने का अर्थ उनके माल को अपने माल के साथ मिलाकर व्यापार करना है, परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इसका उद्देश्य अनाथ के माल में बढ़ौतरी हो न कि हानि। इसी लिए कहा गया कि अल्लाह बिगाड़ चाहनेवालों से हित चाहनेवालों को अलग पहचानता है। संरक्षक अगर धनवान है तो उसको चाहिए कि अनाथ के माल से कुछ न ले, और अगर वह स्वयं निर्धन है तो उचित ढंग से नियमानुसार कुछ ले ले –

«और अनाथों को जाँचते रहो, यहाँ तक कि जब वे विवाह की अवस्था को पहुंच जाएं तो फिर यदि तुम उनमें देखो कि सूझ-बूझ आ गई है तो उन्हें उनका धन वापस कर दो। और इस भय से कि बड़े हो जाएँगे, उनके माल को ज़रूरत से अधिक और जल्दी-जल्दी न खा जाओ। और जो धनवान है उसे चाहिए कि उनके माल से बचे, और जो निर्धन है वह उचित ढंग से नियमानुसार खा ले। फिर जब उनका माल उनको सौंपो तो साक्षी बना लो, और अल्लाह हिसाब लेने के लिए काफ़ी है।» (क़ुरआन, सूरा–4, अन-निसा, आयतें–5,6)

अर्थात् अनाथों के धन को छल-कपट के साथ खानेवालों का अल्लाह कड़ा हिसाब लेगा। इसी लिए कहा गया है कि उनके धन के निकट भी न जाओ। और अनाथों के धन को खा जानेवालों के लिए अल्लाह की ओर से कठिन यातना है–

«जो लोग अनर्थ अत्याचार से अनाथों का धन खाते हैं वे अपने पेट में आग भरते हैं, और वे नरक में जाएँगे।» (क़ुरआन, सूरा–4, अन-निसा, आयत–10)

और जब अनाथ युवावस्था को पहुँच जाए तो उसका धन उसके हवाले कर दिया जाए और उसमें किसी प्रकार का हेर-फेर न किया जाए–

«अनाथों को उनका धन दे दो, और बुरी चीज़ को (जो तुम्हारी हो) अच्छी चीज़ (जो उनकी हो) से न बदलो। और उनके माल को अपने माल के साथ मिलाकर न खाओ। निस्सन्देह यह महापाप है।» (क़ुरआन, सूरा–4, अन-निसा, आयत–2)

❋ अनाथ लड़कियों से विवाह

अनाथ लड़कियों से विवाह किया जा सकता है। बल्कि कई अवस्थाओं में तो उनसे विवाह करना उचित है। परन्तु इस बात का आवश्यक रूप से ध्यान रखना चाहिए कि उनके साथ न्याय किया जा

सकता है या नहीं? अगर यह भय हो कि न्याय नहीं किया जा सकेगा तो उनसे कदापि विवाह न करना चाहिए। होता यह है कि कुछ लोग यह सोचकर कि यह अनाथ कन्या है, उससे विवाह कर लेते हैं। परन्तु उसके साथ न्याय नहीं करते, उसके अनाथ होने का लाभ उठाते हैं, या उसके धन के लालच में विवाह कर लेते हैं। ऐसे लोगों से कहा गया है–

«यदि तुम्हें आशंका हो कि अनाथ लड़कियों से विवाह करके तुम न्याय न कर सकोगे तो दूसरी स्त्रियों में से जो तुम्हें अच्छी लगें उनसे विवाह कर लो।» (क़ुरआन, सूरा–4, अन-निसा, आयत–3)

अनाथ की दूसरी दशा : दूसरी दशा के अन्तर्गत ऐसे अनाथ आते हैं, जिनके पिता ने जीविका के लिए कुछ नहीं छोड़ा, तो ऐसे अनाथ बच्चों की देख-भाल करने का दायित्व पूरे समाज पर आता है। पवित्र क़ुरआन में इस सम्बन्ध में स्पष्ट निर्देश मौजूद हैं। एक बार सहाबा ने नबी (ﷺ) से पूछा, "हम फ़ालतू माल कहाँ ख़र्च करें?" इस पर यह आयत उतरी –

«वे पूछते हैं कि (फ़ालतू धन) किस प्रकार ख़र्च करें? कह दो कि जो माल भी तुम ख़र्च करो तो माता-पिता, अनाथों, निर्धनों तथा मुसाफ़िरों पर ख़र्च करो। और जो भलाई तुम करते हो अल्लाह उसे भली-भाँति जानता है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–215)

सदाचारी लोगों के जो विशेष गुण बताए गए हैं, उनमें से एक यह है–

«वे मोहताज, अनाथ और क़ैदी को खाना उसकी चाहत रखते हुए खिलाते हैं।» (क़ुरआन, सूरा–76, अद्-दह्र, आयत–8)

मक्का के उन इस्लाम-विरोधियों की निन्दा की गई है, जो क़ियामत के दिन को झुठलाते और अनाथों को धक्के देते हैं–

«यह वही है जो अनाथ को धक्के देता है। और निर्धन को खाना खिलाने का प्रलोभ नहीं देता।» (क़ुरआन, सूरा–107, अल-माऊन, आयतें 2-3)

नबी (ﷺ) स्वयं अनाथ थे, परन्तु अल्लाह ने आप पर दया की। इसलिए आप (ﷺ) को हुक्म दिया जा रहा है कि आप अनाथों के साथ अच्छा व्यवहार करें –

«तो जो अनाथ है उसपर कठोरता न करना और माँगनेवाले को न झिड़कना।» (क़ुरआन, सूरा–93, अज़-ज़ुहा, आयतें–9-10)

इसलिए नबी (ﷺ) अनाथों और माँगनेवालों के साथ बहुत अच्छा बर्ताव करते थे और हर समय कोई न कोई अनाथ आप (ﷺ) के घर में पलता रहता था। जहाँ तक माँगनेवालों का मामला है तो

अनस (ﷺ), आप (ﷺ) के सेवक, का कथन है कि आप (ﷺ) ने किसी माँगनेवाले को कभी देने से मना नहीं किया। इसी प्रकार आप (ﷺ) ने अनाथों की सेवा करनेवाले को शुभ सूचना भी दी–

"मैं और अनाथ को पालनेवाला जन्नत में इस प्रकार होंगे।" और यह कहते हुए आपने अपनी दो उँगलियों की ओर संकेत किया। (सहीह बुख़ारी, 6005)

एक दूसरी हदीस में आया है–

"अनाथ की देख-भाल करनेवाला, चाहे वह उसका क़रीबी हो या किसी और का, और मैं जन्नत में इस प्रकार होंगे।" और आप (ﷺ) ने अपनी दो उँगलियों की ओर संकेत किया। (सहीह मुस्लिम, 2983)

अर्थात् वह अनाथ उसके परिवार का हो या किसी और परिवार का, उसका पालना पुण्य कर्मों में से एक है। एक हदीस में आता है कि एक व्यक्ति ने अपने कठोर दिल होने की शिकायत की तो आप (ﷺ) ने फ़रमाया–

"अनाथ के सर पर हाथ फेरो, और निर्धनों को भोजन कराओ।" (मुस्नद अहमद, 7576)

अर्थात् किसी अनाथ को पाल लो। इसका एक अर्थ यह भी निकलता है कि अनाथ की माँ से विवाह कर लो, ताकि वह अनाथ तुम्हारे साए में पल-बढ़ सके। इससे तुम्हारा दिल नर्म पड़ जाएगा और उसकी कठोरता समाप्त हो जाएगी।

इस प्रकार इस्लाम ने अनाथ की समस्या के साथ, विधवा – समस्या का भी उत्तम हल पेश किया है।

अगर कोई यह सब न कर सके तो अनाथालय में पलनेवाले बच्चों की सहायता करे। परन्तु इसके लिए आवश्यक है कि पहले प्रबंध-समिति के लोगों की अच्छी तरह से जाँच कर ले और जब यह विश्वास हो जाए कि उनका उद्देश्य अनाथों की सेवा है, व्यापार करना नहीं तो उनकी सहायता की जाए और यह भी एक प्रकार से अनाथ का पालन-पोषण करने के समान है।

अंजीर

अंजीर, जिसको अरबी में 'तीन' कहते हैं, एक प्रकार का वृक्ष होता है, जो अधिकतर शाम (सीरिया) तथा फ़िलस्तीन में पाया जाता है। इसकी ऊँचाई पाँच मीटर से लेकर दस मीटर तक होती है और इसकी डालियाँ पृथ्वी से ही फैलने लगती हैं। कहा जाता है कि यह ऐसा वृक्ष है जिसका फल पत्तों से पहले निकल आता है। अंजीर को ताज़ा तथा सुखाकर, दोनों प्रकार से खाया जाता है। हकीम लोग इसके द्वारा विभिन्न रोगों का इलाज करते हैं, विशेषकर यह पेट की बीमारियों में बहुत लाभदायक है।

बाइबल के अनुसार यशायाह नबी ने हिजकिय्याह के फोड़ों का इसी के द्वारा इलाज किया था। (देखिए : 2 राजा, 20:7)

अल्लाह अंजीर की इन्हीं विशेषताओं के कारण इसकी क़सम खाकर कहता है–

«क़सम है अंजीर और ज़ैतून और तूरे-सीनीन की, और इस शांतिपूर्ण नगर (मक्का) की, निस्संदेह हमने मनुष्य को सर्वोत्तम संरचना के साथ पैदा किया।» (क़ुरआन, सूरा–95, अत-तीन, आयतें-1-4)

आ
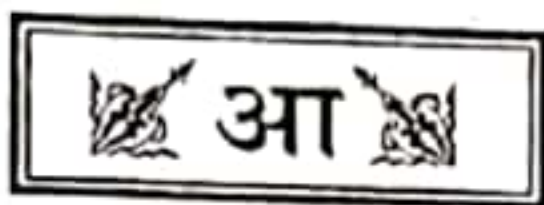
आकाश

आकाश, जिसको हम प्रत्येक पल देखते रहते हैं, अल्लाह की महान सत्ता का जीता-जागता प्रमाण है। परन्तु बहुत कम लोग ऐसे हैं जो इस फैली हुई महान सृष्टि से शिक्षा ग्रहण करते हैं। क़ुरआन विभिन्न शैलियों में आकाश का वर्णन करके यह सिद्ध करता है कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई नहीं जो इसकी रचना करे और फिर हमारे ऊपर बग़ैर किसी स्तम्भ के खड़ा कर दे–

«उसने आकाशों को स्तम्भों के बिना बनाया, जैसा कि तुम देखते हो।» (सूरा-31, लुक़मान, आयत-10)

और फिर आकाश एक नहीं बल्कि पूरे सात हैं–

«जिसने ऊपर-तले सात आकाश बनाए। तू रहमान की रचना में कोई त्रुटि नहीं देखेगा।» (सूरा-67, अल-मुल्क, आयत-3)

«क्या तूने नहीं देखा कि अल्लाह ने किस प्रकार से सात आकाश ऊपर-तले बनाए।» (सूरा-71, नूह, आयत-15)

और अल्लाह ने अपनी शक्ति बयान करते हुए बताया कि क़ियामत के दिन ये विशाल आकाश उसकी मुट्ठी में लिपटे हुए होंगे।

«और क़ियामत के दिन ये विशाल आकाश उसके दाहिने हाथ में लिपटे होंगे।» (सूरा 39, अज़-ज़ुमर, आयत-67)

मेराज की रात अल्लाह ने नबी (ﷺ) को इन आकाशों की यात्रा कराई। मेराज का वर्णन सूरा 'इसरा' में हुआ है।

❁ क़ुरआन में आकाश का उदाहरण

पथभ्रष्टों का आकाश पर चढ़ने का उदाहरण–

«अल्लाह जिसे सीधे रास्ते पर लाना चाहता है उसका सीना इस्लाम के लिए खोल देता है। और जिसे पथभ्रष्ट करना चाहता है उसके सीने को तंग और भिंचा हुआ बना देता है, मानो वह आकाश में (बड़ी कठिनाइयों से) चढ़ रहा है।» (सूरा-6, अल-अनआम, आयत 125)

उत्तम बात का उदाहरण जिसकी शाखाएँ आकाश तक पहुँची हुई हैं :

«क्या तुम देखते नहीं कि अल्लाह ने शुभ बात की कैसी उपमा दी है। वह एक शुभ वृक्ष के सदृश है जिसकी जड़ गहरी (अर्थात् पृथ्वी में) जमी हुई है और उसकी शाखाएँ आकाश तक फैली हुई हैं।» (सूरा-14, इबराहीम, आयत 24)

❀ मुशरिक की उपमा –

«जो कोई अल्लाह के साथ शिर्क करे तो मानो वह आकाश से गिर पड़ा, फिर चाहे उसे पक्षी उचक ले जाएँ या वायु उसे दूरवर्ती स्थान पर फेंक दे।» (क़ुरआन, सूरा–22, अल-हज, आयत-31)

सातों आकाश अल्लाह की महिमा का गान करते हैं–

«सातों आकाश, और धरती, और जो कुछ उनके बीच है सब उसकी तस्बीह (महिमागान) करते हैं और ऐसी कोई चीज़ नहीं जो उसका गुणगान न करती हो। परन्तु तुम उनकी तस्बीह को समझते नहीं।» (क़ुरआन, सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत-44)

आकाश में रहने वाले अल्लाह को सजदा करते है –

«क्या तुमने देखा नहीं कि अल्लाह ही को सजदा करते हैं जो कोई भी आकाशों में है, और जो धरती में हैं, सूर्य-चन्द्रमा, तारे, पर्वत, वृक्ष, पशु और बहुत-से मनुष्य? और बहुत ऐसे भी हैं; जिन पर यातना का औचित्य सिद्ध हो चुका है।» (क़ुरआन, सूरा–22, अल-हज, आयत-18)

«वास्तव में आकाशों और धरती में बड़ी निशानियाँ हैं ईमानवालों के लिए।» (क़ुरआन, सूरा–45, अल-जासिया, आयत-3)

आद

आद एक बहुत बड़ी जाति थी, जिसका निवास स्थान 'उमान' तथा 'हज़र मौत' के बीच था इसका कुछ भाग सऊदी अरब के दक्षिणी भाग 'रूबअ खाली' में था, जिसको अहक़ाफ़ कहते थे। इसकी ओर एक नबी भेजे गए जिनका नाम 'हूद' था। परन्तु इस जाति ने नबी का इनकार किया, जिसके कारण इस जाति को एक भयंकर तूफ़ान ने, जो सात रात और आठ दिन तक चलता रहा, नष्ट कर दिया।

'आद' इस वंश के मुखिया का नाम है। परन्तु हमें ठीक-ठीक इस जाति का इतिहास नहीं मालूम है। क़ुरआन से पता चलता है कि यह एक महान जाति थी, जिसको अरब के लोग भली-भाँति जानते थे, इनका जो परिणाम हुआ उसको भी वे सुनते आए थे, इसलिए क़ुरआन ने जब उनका बार-बार वर्णन किया तो किसी को ज़्यादा जानने की आवश्यकता नहीं हुई। उनके नबी 'हूद' की क़ब्र तो आज भी 'मुकल्ला' नगर से लगभग 125 किलोमीटर की दूरी पर हज़रमौत में है, जहाँ हर वर्ष मेला लगता है। इससे यह बात मालूम होती है कि यहाँ के लोगों में यह बात मशहूर है कि यही वह स्थान है जहाँ 'आद' नामी जाति रहा करती थी। और अधिक जानकारी के लिए देखिए : 'हूद' तथा 'अल-अहक़ाफ़'।

आदम (ﷺ)

आदम इबरानी शब्द है, जिसका अर्थ है गेहूँ के रंगवाला।

हज़रत आदम (ﷺ) मनुष्य जाति के पिता हैं, जिनको अल्लाह ने मिट्टी से पैदा किया और उनमें अपनी आत्मा फूँकी। फ़रिश्तों को हुक्म दिया कि आदम को सजदा करें। सबने सजदा किया, लेकिन शैतानों के सरदार इबलीस ने सजदा करने से इनकार कर दिया। (क़ुरआन, सूरा–15, अल-हिज्र, आयत 28-31 और सूरा–38, सॉद, आयत 72-74) जब अल्लाह ने कारण पूछा तो इबलीस ने कहा–

«मैं इससे उत्तम हूँ। क्योंकि तूने मुझे अग्नि से पैदा किया और इसको मिट्टी से।» (क़ुरआन, सूरा–7, अल-आराफ़, आयत 12)

अल्लाह को इबलीस की यह गुस्ताख़ी पसन्द नहीं आई और उसको जन्नत से निकाल दिया।»

जब अल्लाह धरती पर आदम को प्राणी वर्ग का ख़लीफ़ा बना रहा था तो फ़रिश्तों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि हम तो दिन-रात तेरी उपासना कर रहे हैं, फिर आदम को पैदा करने की क्या आवश्यकता है। अल्लाह ने कहा –

«जो मैं कर रहा हूँ मुझे पता है तुमको इसका ज्ञान नहीं है।» (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–31)

«फिर अल्लाह ने आदम को चीज़ों के नाम सिखा दिए फिर जब फ़रिश्तों से पूछा तो वे जवाब न दे सके। और आदम ने सब बता दिए।» (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयतें 31-33)

फिर आदम ही से आपकी पत्नी हव्वा को पैदा किया –

«ऐ लोगो! अपने रब से डरो जिसने तुम्हें एक ही जीव से पैदा किया और उसी से उसका जोड़ा पैदा किया और उन दोनों से बहुत-से पुरुषों और स्त्रियों को फैला दिया।» (क़ुरआन, सूरा–4, निसा, आयत–1)

तौरात में है कि हव्वा को आदम के पहलू से पैदा किया गया।

हव्वा को आदम से पैदा करने में कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए, क्योंकि अल्लाह जब स्वयं आदम को मिट्टी से पैदा कर सकता है तो हव्वा को आदम से पैदा करने में क्या आश्चर्य है? फिर आदम और हव्वा को अल्लाह ने स्वर्ग में रखा और उनसे कहा कि जो चाहो खाओ-पियो, परन्तु परीक्षा लेने के लिए कहा कि इस पेड़ का फल मत खाना। लेकिन शैतान उन दोनों को बहकाकर उस पेड़ के पास ले गया और क़समें खाकर उनसे कहने लगा कि तुम्हारे रब ने इसका फल खाने से इसलिए रोका है कि कहीं तुम फ़रिश्ते न बन जाओ। या सदा के लिए स्वर्ग के न बन जाओ। बस उन दोनों ने

उस पेड़ का फल खा लिया, तब उनको अल्लाह ने हुक्म दिया कि पृथ्वी पर उतर जाओ और एक समय तक तुम्हें वहीं रहना पड़ेगा। जब आदम को अहसास हुआ कि वे शैतान के बहकावे में आ गए हैं, तो उन्होंने अल्लाह से तौबा की। (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयतें 35-36)

इस प्रकार आदम और हव्वा दोनों ही पृथ्वी पर रहने लगे। और दोनों से उनके दो पुत्र पैदा हुए। एक का नाम क़ाईन (क़ाबील) और दूसरे का नाम हाबील था। क़ाईन का अर्थ होता है लोहार और हाबील का अर्थ होता है पुत्र। आदम (ﷺ) एक पुत्र का दूसरे पुत्र की जोड़वा बहन से विवाह कर देते थे। फिर क़ाबील ने अपने भाई हाबील की हत्या कर दी। क़ुरआन में आया है –

«(ऐ नबी) इन लोगों को आदम के दो पुत्रों के सच्चे हालात पढ़कर सुनाओ कि जब दोनों ने (अल्लाह के लिए) भेंट चढ़ाई। फिर उनमें से एक की क़बूल हुई और दूसरे की क़बूल नहीं हुई तो कहने लगा, ''मैं अवश्य तेरी हत्या करूँगा।'' दूसरे ने जवाब दिया, ''अल्लाह तो केवल मुत्तक़ी (परहेज़गार) लोगों की ही भेंट क़बूल करता है।''» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–27)

तौरात से पता चलता है कि हाबील भेड़-बकरियाँ चराता था इसलिए उसने पहलोठी के बच्चों की भेंट चढ़ाई और क़ाबील गृहस्थ था इसलिए उसने फलों की भेंट चढ़ाई जिसको अल्लाह ने क़बूल नहीं किया जिसके कारण वह क्रुद्ध हो गया उसने अपने भाई हाबील की हत्या कर दी। उत्पत्ति (4:2-9)। हत्या करने के पश्चात क़ाबील की समझ में नहीं आ रहा था कि भाई की लाश को क्या करे ? क़ुरआन में बताया गया है –

«उसके बाद अल्लाह ने एक कौआ भेजा। वह पृथ्वी को कुरेदने लगा ताकि उसे दिखाए कि वह अपने भाई के शव को कैसे छिपाए। वह कहने लगा ! हाय क्या मैं इस कौवे के बराबर भी (बुद्धिमान) नहीं कि अपने भाई के शव को छिपा लेता। बस तो वह पछतानेवालों में से हो गया।» (क़ुरआन, सूरा–5, अल-माइदा, आयत–31)

इस प्रकार मनुष्य ने मरी हुई वस्तु को पृथ्वी में दफ़न करना सीखा।

सहीह बुख़ारी में अब्दुल्लाह-बिन- मसऊद हदीस बयान करते हैं कि नबी (ﷺ) ने फ़रमाया : *''जब भी कोई हत्या होती है तो आदम के पहले पुत्र को उस हत्या का कुछ गुनाह मिलता है, क्योंकि यह पहला मनुष्य है जिसने हत्या करने का रिवाज दिया।''* (सहीह बुख़ारी : किताबुल-अंबिया 33-35)

हाबील की हत्या के पश्चात् आदम और हव्वा से 'शीत' पैदा हुआ जिसका अर्थ है बदल; अर्थात शीत 'हाबील' का बदल था जिसको उसके भाई 'क़ाबील' ने क़त्ल कर दिया था और फिर इन दोनों अर्थात् 'क़ाबील' और 'शीत' से मनुष्य की संतान बनी। (उत्पत्ति 4:25, 5:3)

मुहम्मद-बिन-इसहाक़ और अन्य इतिहासकारों ने लिखा है कि आदम के कुल बीस पुत्र और बीस पुत्रियाँ पैदा हुईं। कुछ कहते हैं कि साठ पुत्र और साठ पुत्रियाँ। फिर इनसे मनुष्यों की संतान बनी। तौरात में है कि शीत के जन्म के पश्चात आदम आठ सौ वर्ष तक जीवित रहे। जब शीत पैदा हुआ उस समय आदम की आयु 130 वर्ष थी। फिर उनसे पुत्र और पुत्रियाँ पैदा हुईं। और आदम की आयु मृत्यु के समय नौ सौ तीस वर्ष थी। (उत्पत्ति 5:1-5)

कुछ हदीसों में आदम की आयु एक हज़ार वर्ष बताई गई है। अगर इसे सही मान लें तो हो सकता है सत्तर वर्ष जन्नत में निवास करने का हो। आदम ने अपनी मृत्यु से पूर्व 'शीत' को अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया, जिनको अल्लाह ने उनके बाद नबी बनाया था और उनपर कोई पुस्तक भी उतारी थी। परन्तु इस संबंध में हमारे पास कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं है। कुछ विद्वानों का विचार है कि आदम को हिन्दुस्तान में उतारा गया और कुछ का विचार है कि मक्का में, मगर इनमें से किसी बात के लिए हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है। इसी प्रकार इनकी क़ब्र जो हिन्दुस्तान में पायी जाती है कोई प्रमाण नहीं है।

यह पहले मनुष्य तथा पहले नबी की संक्षिप्त जीवनी है। उनकी मृत्यु के एक वर्ष बाद उनकी पत्नी हव्वा का भी देहान्त हो गया।

आज़र

आज़र हज़रत इबराहीम (عليه السلام) के पिता का नाम है। इसका वर्णन क़ुरआन में केवल एक बार हुआ है –

«याद करो जब इबराहीम ने अपने बाप 'आज़र' से कहा था, "क्या तू मूर्तियों को इलाह (पूज्य) बनाता है ? मैं तो देखता हूँ कि तू और तेरी जाति के सभी लोग खुली गुमराही में पड़े हुए हैं।"» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–74)

तौरात में इबराहीम के पिता का नाम 'तारे' आया है। अब या तो हम यह कहें कि तौरात के लिखनेवाले से ग़लती हो गई है, या यह कहें कि 'आज़र' तारे का लक़ब (उपाधि) होगा। इसके अतिरिक्त जो भी कहा जाए सब ग़लत है।

'आज़र' 'उर' का रहनेवाला एक व्यापारी था। उस समय इराक़ में बड़े ज़ोर-शोर से लोग देवी-देवताओं की पूजा करते थे, विशेष कर चाँद की। देवी-देवताओं को स्वयं अपने हाथों से बनाते थे और फिर उनकी पूजा करते थे। उनको इतनी बात भी समझ में नहीं आती थी कि जिनको उन्होंने अपने हाथों से बनाया है वे उन्हें क्या लाभ पहुँचा सकते हैं। आज़र के तीन पुत्र हुए। 'हारान', 'इबराहीम' और 'नाहोर'। हारान से 'लूत' पैदा हुए, जिनका वर्णन बाद में आएगा। 'हारान' का 'उर' में ही देहान्त हो गया। इबराहीम के छोटे भाई नाहोर के बारह पुत्र पैदा हुए और ये सब लोग 'उर' ही में रह

गए। मगर 'आज़र' इबराहीम और हारान के पुत्र 'लूत' को लेकर शाम के शहर 'हारान' चला गया। और वहीं उसका देहान्त हो गया। (देखें बाइबल : उत्पत्ति, 11:27)

इससे पता चलता है कि हज़रत इबराहीम और उनके पिता 'आज़र' में जो वार्तालाप हुआ था वह 'हारान' में हुआ होगा, क्योंकि तैरात में आया है –

"अपने पिता के घर को छोड़कर उस देश में चला जा जो मैं तुझे दिखाऊँगा मैं तुझे एक बड़ी जाति बनाऊँगा। और बरकत दूँगा।" (बाइबल : उत्पत्ति, 12:1-2)

तौरात से पता चलता है कि जब इबराहीम के पिता की उम्र दो सौ पाँच वर्ष हो गई तो उसका 'हारान' ही में देहान्त हो गया, लेकिन वह मूर्तिपूजा से विरक्त नहीं हुआ। हज़रत इबराहीम (ﷺ) का विचार था कि वह मूर्तिपूजा से रुक जाएगा और उसके लिए अल्लाह से प्रार्थना करेंगे कि उसकी ग़लतियाँ क्षमा कर दे, परन्तु जब पता चला कि वह मूर्तिपूजा से नहीं रुकेगा तो इबराहीम ने उसे त्याग दिया।

क़ुरआन में है –

«इबराहीम ने अपने पिता के लिए जो क्षमा की प्रार्थना की थी, वह तो केवल एक वादे के कारण की थी जो वादा उसने उससे किया था। फिर जब उसपर यह बात खुल गई कि वह तो अल्लाह का शत्रु है तो वह उससे विरक्त हो गया। निस्सन्देह इबराहीम बड़े ही कोमल हृदयवाला, अत्यन्त सहनशील था।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयत–114)

क़ुरआन में एक दूसरे स्थान पर आया है –

«तुम्हारे लिए इबराहीम और उन लोगों में जो उसके साथ थे एक उत्तम आदर्श मौजूद है, जबकि उन्होंने अपनी जातिवालों से कह दिया, "हम तुमसे और अल्लाह के सिवा जिन्हें भी तुम पूजते हो उनसे विरक्त हैं, हम तुम्हारे बुतों को नहीं मानते। और हमारे और तुम्हारे बीच सदैव के लिए वैर और विद्वेष प्रकट हो चुका, जब तक अकेले अल्लाह पर तुम ईमान न लाओ।" हाँ, इबराहीम ने अपने पिता से अवश्य कहा था कि मैं तुम्हारे लिए क्षमा की प्रार्थना करूँगा यद्यपि अल्लाह के मुक़ाबले में आपके लिए मैं किसी चीज़ पर अधिकार नहीं रखता। ऐ हमारे रब, हमने तुझी पर भरोसा किया और तेरी ही ओर रुजू हुए और तेरी ही ओर अन्त में लौटना है।» (सूरा–60, अल-मुम्तहिना, आयत–4)

हज़रत इबराहीम (ﷺ) का जीवन-चरित्र हमारे लिए एक उत्तम नमूना है। उन्होंने मूर्तिपूजा करनेवाले पिता को भी अल्लाह के मार्ग में त्याग दिया, क्योंकि 'शिर्क' करनेवाला अल्लाह का शत्रु और विद्रोही है और अल्लाह ने शिर्क को बहुत बड़ा अत्याचार बताया है। (क़ुरआन, सूरा–31, लुक़मान, आयत–13)

आख़िरत

मनुष्य का जीवन दो भागों में बंटा हुआ है। एक वह भाग जिसका सम्बन्ध संसार से है और जो पैदा होते ही प्रारम्भ हो जाता है और मृत्यु तक चलता रहता है। यह भाग एक प्रकार की खेती है जिसमें हम अच्छा या बुरा बीज बोते हैं। इस भाग में हमको कुछ अधिकार दिए गए हैं, हम उन अधिकारों का कैसे प्रयोग करें, इसमें हमारी परीक्षा है।

हमारे जीवन का दूसरा भाग आख़िरत कहलाता है जो मरने के बाद प्रारम्भ होता है और फिर कभी समाप्त नहीं होता। यह भाग केवल खेती काटने और उसके प्रयोग से सम्बन्ध रखता है। हमने जो कुछ प्रथम भाग में किया है, उसका फल हमें इस भाग में प्राप्त होता है।

क़ुरआन सबसे पहले तो हमे इस भाग पर ईमान लाने का हुक्म देता है –

«अलिफ़-लाम-मीम! यह किताब वही है जिसमें कोई संदेह नहीं। मार्गदर्शन है डर रखनेवालों के लिए। जो अनदेखे (ग़ैब) पर ईमान लाते हैं, और नमाज़ क़ायम करते हैं, और जो कुछ हमने उनको दिया है उसमें से ख़र्च करते हैं; और जो लोग तुम पर उतारी गई किताब पर ईमान रखते हैं और उस पर जो तुमसे पहले उतारी गई है और आख़िरत पर विश्वास करते हैं।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयतें–1-4)

आख़िरत का यह विश्वास इस्लाम के मूल सिद्धान्तों में से एक है। उसपर विश्वास किए बिना कोई व्यक्ति मुसलमान नहीं हो सकता। क़ुरआन की शिक्षा के अनुसार मनुष्य को चाहिए कि इस संसार से अधिक वह आख़िरत की चिन्ता करे, क्योंकि यह संसार तो बहुत जल्द नष्ट हो जाएगा, परन्तु आख़िरत कभी नष्ट नहीं होगी –

«ऐ लोगो! यह सांसारिक जीवन तो बस अस्थायी उपभोग है। निश्चय ही स्थायी रूप से ठहरने का घर तो आख़िरत ही है।» (सूरा–40, अल-मोमिन, आयत–39)

इसलिए क़ुरआन की शिक्षा है कि आख़िरत की अधिक चिन्ता करो –

«(ऐ नबी) कह दो दुनिया की पूँजी बहुत-थोड़ी है, जबकि आख़िरत उस व्यक्ति के लिए अधिक अच्छी है, जो अल्लाह का डर रखता हो।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–77)

«सांसारिक जीवन तो एक खेल और तमाशे के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, जबकि आख़िरत का घर उन लोगों के लिए अच्छा है जो अल्लाह से डरते हैं। तो क्या तुम बुद्धि से काम नहीं लेते?» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–32)

«ऐ ईमान लानेवालो! तुम्हें क्या हो गया है कि जब तुमसे कहा जाता है कि अल्लाह के मार्ग में निकलो तो तुम धरती पकड़ कर बैठ गए। क्या तुम आख़िरत की अपेक्षा

सांसारिक जीवन पर राज़ी हो गए? तो सांसारिक जीवन की सुख-सामग्री आख़िरत की अपेक्षा बहुत थोड़ी है।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयत–38)

«लोग सांसारिक जीवन पर प्रसन्न हो रहे हैं, जबकि सांसारिक जीवन आख़िरत की अपेक्षा अल्प सुख-सामग्री है।» (सूरा–13, अर-रअ्द, आयत–26)

«यह सांसारिक जीवन तो केवल खेल-तमाशा है। और आख़िरत का घर ही वास्तव में सदा रहनेवाला है, क्या ही अच्छा होता कि ये लोग जानते।» (सूरा–29, अल-अनकबूत, आयत–64)

इसलिए इस संसार को सब कुछ समझनेवाले और आख़िरत पर ईमान न लानेवालों की क़ुरआन घोर निन्दा करता है।

«निश्चय ही जो लोग आख़िरत पर विश्वास नहीं करते, उनके लिए हमने उनके कर्मों को शोभायमान बना दिया है। अत: वे भटकते फिरते हैं।» (सूरा–27, अन-नम्ल, आयत–4)

«जिन लोगों ने इनकार किया और हमारी आयतों और आख़िरत की मुलाक़ात को झुठलाया, वे यातना में डाले जाएँगे।» (सूरा–30, अर्-रूम, आयत–16)

इसलिए हमें हुक्म दिया गया है कि जहाँ हम सांसारिक जीवन के लिए भलाई की याचना करें, वहाँ आख़िरत के लिए भी भलाई माँगें, क्योंकि सदा रहने वाला लोक तो वही है।

«लोगों में से कुछ ऐसे हैं जो कहते कि ''हमारे रब! हमें दुनिया में ही दे दे।'' ऐसी हालत में आख़िरत में उनका कोई हिस्सा नहीं। और उनमें कोई ऐसा है जो कहता है कि ''हमारे रब! हमें प्रदान कर दुनिया में भी अच्छी दशा और आख़िरत में भी अच्छी दशा और हमें आग (जहन्नम) की यातना से बचा ले।''» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयतें–200-201)

«हमारे लिए इस संसार में भी भलाई लिख दे और आख़िरत में भी। हम तेरी ही ओर उन्मुख हुए।» (क़ुरआन, सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–156)

आतिथ्य

आतिथ्य का इस्लाम में बड़ा महत्व है। क़ुरआन में इबराहीम (عليه السلام) के प्रतिष्ठित अतिथियों का वर्णन इस प्रकार आया है –

«क्या इबराहीम के प्रतिष्ठित अतिथियों का वृत्तान्त तुम तक पहुँचा? जब वे उसके पास आए तो कहा, ''सलाम है तुम पर'' उसने भी कहा, ''सलाम है आप लोगों पर भी!'' (और जी में कहा,) ''ये तो अपरिचित लोग हैं।'' फिर वह चुपके से अपने घरवालों के पास गया

और एक मोटा-ताज़ा बछड़ा (भुना हुआ) ले आया और उसे उनके आगे रख दिया। कहा, "आप लोग खाते क्यों नहीं"?» (क़ुरआन, सूरा–51, अज़-ज़ारियात, आयतें–24-27)

ये अतिथि वास्तव में फ़रिश्ते थे, जो इबराहीम (عليه السلام) को यह शुभ सूचना देने आए थे कि आप के यहाँ एक बच्चा पैदा होनेवाला है। इबराहीम (عليه السلام) का भुने हुए बछड़े के द्वारा अपने अतिथियों का स्वागत करना अतिथियों के महत्त्व को प्रकट करता है।

नबी मुहम्मद (ﷺ) ने भी अतिथि के महत्त्व का विभिन्न प्रकार से वर्णन किया है। एक सहीह हदीस में आया है –

"*जो अल्लाह और प्रलय के दिन पर विश्वास करता हो, वह अपने अतिथि का आदर करे।*" (सहीह बुख़ारी, 5185 तथा सहीह मुस्लिम, 74)

लेकिन इसी के साथ अतिथि के भी कुछ कर्तव्य बताए गए हैं। इनमें से एक यह है कि तीन दिन से अधिक किसी के यहाँ न रुके। हदीस में कहा गया है कि एक दिन तथा एक रात अतिथि का ख़ूब सम्मान किया जाए। उसके पश्चात् दो दिनों तक जो कुछ हो सके खिलाया जाए। तीन दिन के बाद भी अगर अतिथि मौजूद रहे, तो जिस प्रकार आप उस पर दान-पुण्य कर रहे हैं, उसी प्रकार अतिथि का भी कर्तव्य है कि तीन दिन से अधिक अतिथि के रूप में न ठहरे। (अबू दाऊद, 3748)

इसी प्रकार एक दूसरी हदीस में आया है –

"*आतिथ्य तीन दिन है, उसके बाद सदक़ा (दान) है।*" (अबू दाऊद : 3749)

आयत

आयत का शाब्दिक अर्थ है– चिह्न, निशानी, संकेत इत्यादि। क़ुरआन में आयत शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में हुआ है–

पहला अर्थ : क़ुरआन में यह शब्द वाक्य के अर्थ में प्रयोग हुआ है, जिनसे मिलकर 'सूरा' बनती है। जैसे हम कहते हैं कि क़ुरआन की सबसे बड़ी सूरा अल-बक़रा में कुल 286 आयतें हैं। इसी प्रकार क़ुरआन की सबसे छोटी सूरा, जिसमें केवल तीन आयते हैं, सूरा अल-अस्र है।

आयत का यह प्रयोग सर्वप्रथम क़ुरआन ने किया, क्योंकि क़ुरआन के हर वाक्य में बहुत सारी निशानियाँ हैं। जैसे सूरा बक़रा में आया है–

«ये अल्लाह की आयतें हैं जो हम तुम्हें सच्चाई के साथ सुना रहे हैं, और (ऐ मुहम्मद) निस्सन्देह तुम अल्लाह के रसूलों में से हो।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–252)

क़ुरआन की ये आयतें वास्तव में नबी (ﷺ) को अल्लाह की ओर से दिया गया वह चमत्कार है जो प्रलय दिवस तक रहनेवाला है।

दूसरा अर्थ : आयत का दूसरा अर्थ चमत्कार भी है। यह वह चमत्कार है जो नबियों को दिया गया, जैसे मूसा (عليه السلام) का चमत्कार–

«कहा, "डाल दे उसे (लाठी को) ऐ मूसा!" अत: उसने उसे डाल दिया तो सहसा क्या देखते हैं कि वह एक साँप है, जो दौड़ रहा है। कहा, "पकड़ ले इसे और डर मत। हम उसे अभी उसकी पहली दशा में लौटा देंगे। और अपना हाथ अपने बग़ल में दबा, वह बिना किसी दोष के चमकता हुआ निकलेगा; यह दूसरी आयत (चमत्कार) के रूप में।"» (क़ुरआन, सूरा–20, ता-हा, आयतें–19-22)

अर्थात् पहली आयत (चमत्कार) तो यह थी कि लाठी साँप बन गई, और दूसरी आयत (चमत्कार) यह थी कि आपका हाथ चन्द्रमा की भाँति चमक उठा।

तीसरा अर्थ : क़ुरआन में इस शब्द को चिह्न के अर्थ में प्रयोग किया गया है। अल्लाह ने क़ुरआन में विभिन्न स्थानों पर विधर्मियों को इस संसार में फैले हुए चिह्नों के बारे में बताकर सावधान किया है कि इनके होते हुए तुम अल्लाह की सत्ता का कैसे इनकार करते हो।

इसी प्रकार अल्लाह ने मरयम के पुत्र ईसा और उसकी माता को आयत (निशानी) बनाया। (क़ुरआन, सूरा–23, अल-मोमिनून, आयत–50)

«वह तुम्हें अपनी आयतें दिखाता है, फिर तुम अल्लाह की कौन-कौन-सी आयतों का इनकार करोगे? क्या ये लोग धरती में चलते-फिरते नहीं? ताकि देखें उन लोगों का कैसा परिणाम हुआ जो इनसे पहले थे।» (क़ुरआन, सूरा–40, मोमिन, आयत–81-82)

«निश्चय ही रात और दिन के उलट-फेर में, और हर उस चीज़ में जिनको अल्लाह ने आकाशों और पृथ्वी में पैदा किया है, डरने वालों के लिए आयतें हैं।» (क़ुरआन, सूरा–10, यूनुस, आयत–6)

इस प्रकार अल्लाह उन मूर्खों को जो उसकी सत्ता का इनकार करते हैं और बहुदेववादियों को चेतावनी दे रहा है कि इन आयतों को देखकर अपनी दशा बदल लो अन्यथा बहुत घाटे में रहोगे।

आसिया

फ़िरऔन की पत्नी एक सच्चरित्र तथा सदात्मा स्त्री थीं। इनका नाम क़ुरआन में तो नहीं आया है, परन्तु सहीह हदीसों में बताया गया है कि इनका नाम आसिया था। (बुख़ारी : 3411 तथा मुस्लिम : 2431)

परन्तु क़ुरआन ने इनको एक उत्तम स्त्री का उदाहरण बनाकर पेश किया है–

«अल्लाह ईमान लानेवालों के लिए फ़िरऔन की पत्नी को उदाहरण बनाकर पेश करता है, जब उसने कहा, "ऐ मेरे रब! मेरे लिए अपने पास जन्नत में एक घर बना दे और मुझे फ़िरऔन और उसके कर्म से छुटकारा दे और अत्याचारी लोगों से छुटकारा दे।"» (सूरा–66, अत-तहरीम, आयत–11)

'फ़िरऔन' जैसे अत्याचारी राजा की पत्नी के जीवन को आदर्श बनाकर प्रस्तुत किया जा रहा है, ताकि मुसलमान स्त्रियाँ भली-भाँति समझ लें कि सच्चे ईमान के बिना उनका कोई स्थान नहीं है, चाहे वे किसी की भी पत्नी हों।

'आसिया' फ़िरऔन की वही पत्नी हैं, जिन्होंने मूसा (ﷺ) को पालने का आग्रह किया था। उन्हीं के आग्रह पर मूसा (ﷺ) को दरिया से उठाकर फ़िरऔन के राजमहल में लाया गया था। इसका वर्णन सूरा–28, अल-क़सस, आयत–9 में आया है। (अधिक विवरण के लिए देखिए 'मूसा')

लेकिन 'तौरात' किताब निर्गमन, 2:4-10 में कहा गया है कि फ़िरऔन की बेटी उसे उठाकर लाई। हो सकता है कि दरिया से लेकर आनेवाली 'फ़िरऔन' की बेटी रही हो। क्योंकि क़ुरआन ने भी दरिया से निकालकर लानेवाले को 'फ़िरऔन' के घरवालों में से ही बताया है, और घरवालों में बेटी भी हो सकती है। फिर जब वे राजमहल में आ गए तो फ़िरऔन की पत्नी ने कहा कि इसकी हत्या न करो, इसको हम अपना पुत्र बना लेंगे। क़ुरआन की सूरा 'क़सस' की इन आयतों को ध्यान पूर्वक पढ़ें–

«अन्त में फ़िरऔन के घरवालों ने उसे (दरिया से) निकाल लिया, ताकि वह उनका शत्रु और (उनके लिए) दुःख (का कारण) बने। निश्चय ही फ़िरऔन और हामान और उनके दल से बड़ी चूक हुई। फ़िरऔन की स्त्री ने (उससे) कहा, ''यह मेरे और तुम्हारे लिए आँखों की ठंडक है। इसे क़त्ल न करो। कदाचित् हमारे काम आए, या हम इसे अपना बेटा ही बना लें।'' और उन्हें (परिणाम की) ख़बर न थी। और मूसा की माँ का हृदय अधीर हो गया, वह उसका भेद खोल देती यदि हम उसके दिल को मज़बूत न कर देते, ताकि वह 'ईमान' रखने वालों में से हो। उसने उसकी बहिन से कहा, ''उसके पीछे-पीछे जा।'' तो वह उसे दूर-ही-दूर से देखती रही, और उन्हें ख़बर न हो सकी। हमने उस (बच्चे) पर पहले ही से दूध पिलाने वालियों (के स्तनों) को हराम कर रखा था, तो उस (लड़की) ने कहा, ''क्या मैं तुम्हें ऐसे घरवालों का पता बताऊँ जो तुम्हारे लिए इसके पालन-पोषण का ज़िम्मा लें और जो इसके हितैषी हों?'' इस प्रकार हम उस (बच्चे) को उसकी माता के पास पलटा लाए, ताकि उसकी आँखें ठण्डी हों और वह दुःखी न हो, और ताकि वह जान ले कि अल्लाह का वादा सच्चा है। परन्तु अधिकतर लोग नहीं जानते।» (क़ुरआन, सूरा–28, अल-क़सस, आयतें–8-13)

अब 'तौरात' का यह कहना कि 'फ़िरऔन' की बेटी ने उसको अपना बेटा बनाया, यह बात सही इसलिए नहीं मालूम होती है कि यह काम बेटियों का नहीं, बल्कि पत्नियों का है। जैसा कि क़ुरआनी आयतों से सिद्ध होता है। एक बात यहाँ यह भी जानने की है कि तौरात में मूसा के जन्म के विषय में बहुत संक्षेप में बताया गया है। जबकि क़ुरआन में बहुत विस्तारपूर्वक इसका वर्णन आया है, इसलिए ऐसा लगता है कि तौरात लिखनेवालों ने अपनी ओर से संक्षेप कर दिया है, जिसके कारण उनसे इस प्रकार की त्रुटियाँ हो गई हैं।

आले-इमरान

अर्थात् इमरान की औलाद। आले-इमरान क़ुरआन की तीसरी सूरा का नाम है। इसकी तैंतीसवीं आयत में 'आले-इमरान' शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिसका अनुवाद यह है –

«निस्सन्देह हमने आदम, नूह, इबराहीम की सन्तान और इमरान की संतान को संसार के लोगों में चुन लिया।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–33)

बनी-इसराईल के इतिहास में इमरान नाम के दो व्यक्ति हुए हैं– एक हज़रत मूसा तथा हज़रत हारून के पिता, जिनका वर्णन निर्गमन (6:20) में आया है। उनको 'अम्राम' कहते हैं। दूसरे 'मरयम' के पिता, जिनको क़ुरआन में 'इमरान' कहा गया है। (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–35 तथा सूरा–22, अल-हज्ज, आयत–27) अब अगर 'बाइबल' में 'मरयम' के पिता का नाम नहीं आया है तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। बाइबल में स्वयं ईसा (عليه السلام) की जीवनी बहुत संक्षेप में बताई गई है। यह तो अल्लाह की अन्तिम पुस्तक क़ुरआन है, जिसमें ईसा (عليه السلام) को अल्लाह का सच्चा बन्दा बताया गया है।

अब प्रश्न उठता है कि सूरा आले-इमरान में जिस 'इमरान' का वर्णन आया है, वे कौन हैं? मूसा (عليه السلام) तथा हारून (عليه السلام) के पिता या मरयम के पिता? क़ुरआन की सूरा–3, आले-इमरान, आयत–35 से तो यही मालूम होता है कि ये मरयम के पिता हैं, क्योंकि अल्लाह ने ईसा (عليه السلام) को भी संसार के लोगों के लिए चुन लिया था और उनको भी बनी-इसराईल के लिए नबी बनाकर भेजा था। वे अल्लाह के बेटे नहीं थे, बल्कि ये सारे लोग एक-दूसरे की संतान थे, जैसा कि सूरा–3, आले-इमरान की आयत–34 में आया है।

और फिर उसी आयत में यह भी आया है कि ''अल्लाह सुननेवाला और जाननेवाला है।'' अर्थात अगर तुमने किसी को नबी और रसूल से हटकर कुछ और बना दिया, तो याद रखो अल्लाह सब कुछ सुनता और जानता है। और वह तुम्हारे कर्मों के विषय में तुमसे अवश्य पूछ-गछ करेगा।

आरोप

देखें 'क़ज़फ़'।

इ

इलयास (عليه السلام)

इनका वर्णन कुरआन में दो स्थानों पर आया है –

«इलयास भी निश्चय ही रसूलों में से था। जब उसने अपनी जातिवालों से कहा, ''क्या तुम (अल्लाह का) डर नहीं रखते ? क्या तुम 'बअ्ल' को पुकारते हो (अर्थात् पूजते हो) और सर्वोत्तम स्रष्टा को छोड़ते हो, (जब कि) अल्लाह तुम्हारा भी रब है और तुम्हारे पूर्वजों का भी।'' परन्तु उन्होंने उसे झुठला दिया। वे लोग निश्चय ही (यातना में) प्रविष्ट किए जाएँगे। सिवाय अल्लाह के उन बन्दों के जिनको उसने चुन लिया और हमने पीछे आनेवाली नस्लों में उसका अच्छा ज़िक्र छोड़ा कि ''सलाम है इलयास पर!'' निस्संदेह हम उत्तमकारों को ऐसा ही बदला देते हैं। निश्चय ही वह हमारे मोमिन बन्दों में से था।» (सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयतें–123-132)

दूसरे स्थान पर इस प्रकार आया है –

«ज़करीया और यह्या और ईसा और इलयास को भी (मार्ग दिखाया)। ये सब अच्छे लोगों में से थे।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–85)

किसी सहीह हदीस में इलयास (عليه السلام) के विषय में कुछ नहीं मिलता, इसलिए हम इनके जीवन-चरित्र के बारे में कुछ नहीं कह सकते। इतिहास की पुस्तकों में जो कुछ इनके विषय में आया हुआ है उसके बारे में हम निश्चित तौर पर नहीं बता सकते की कितना सत्य और कितना असत्य है। इसलिए अब जो कुछ इनके बारे में बताया जा सकता है वह यह कि इनके विषय में हम यक़ीन से नहीं कह सकते कि वे सारी बातें सच ही होंगी।

सूरा अनआम की आयत से तो पता चलता है कि इलयास बनी-इसराईल की संतान में से थे, क्योंकि इससे पहले की आयत में इसहाक़ और याक़ूब का ज़िक्र है। फिर उनकी संतान से दाऊद, सुलैमान, अय्यूब, यूसुफ़ और मूसा और हारून का ज़िक्र है। और फिर ज़करिया, यह्या, ईसा, और इलयास का ज़िक्र आया है।

इसी प्रकार सूरा साफ़्फ़ात में भी इलयास (عليه السلام) का ज़िक्र मूसा और हारून के पश्चात् हुआ है। इसलिए कुछ विद्वानों का विचार है कि आप हारून के वंश में से थे। और आप वही एलिय्याह हैं जिनका वर्णन तौरात में आया है। आपने बनी-इसराईल को बअ्ल नामक देवता की पूजा से रोका, जिसका, मन्दिर दमिश्क़ शहर के पूर्व में था और उसी 'बअ्ल' के नाम से आज एक शहर बन गया है

जिसको 'बअ्लबक' कहते हैं। मगर आपकी जाति ने आपको और आपके संदेश को ठुकरा दिया। बल्कि आपकी हत्या करने पर उतर आई। और आप एक पहाड़ पर जाकर छिप गए। आपने अल्लाह से दुआ की कि बनी इसराइल में सूखा पड़ जाए (बाइबल, 1 राजा 17: 1-2)। तीन वर्ष पश्चात् आप दोबारा बादशाह के पास पहुँचे, जिसका नाम अहाब था, और बअ्ल के पुजारियों को जमा करने के लिए कहा। फिर आपने उनको क़त्ल करा दिया और अल्लाह से दुआ की। तब सूखा समाप्त हुआ और बारिश आई। यह देखकर बहुत सारे लोग आपपर ईमान ले आए फिर आप जंगलों में चले गए। आपके बाद यशायाह को नबी बनाया गया, जिनका वर्णन आगे आएगा।

इलयास और अल-यसअ का स्थान
बालबक (लिबनान)
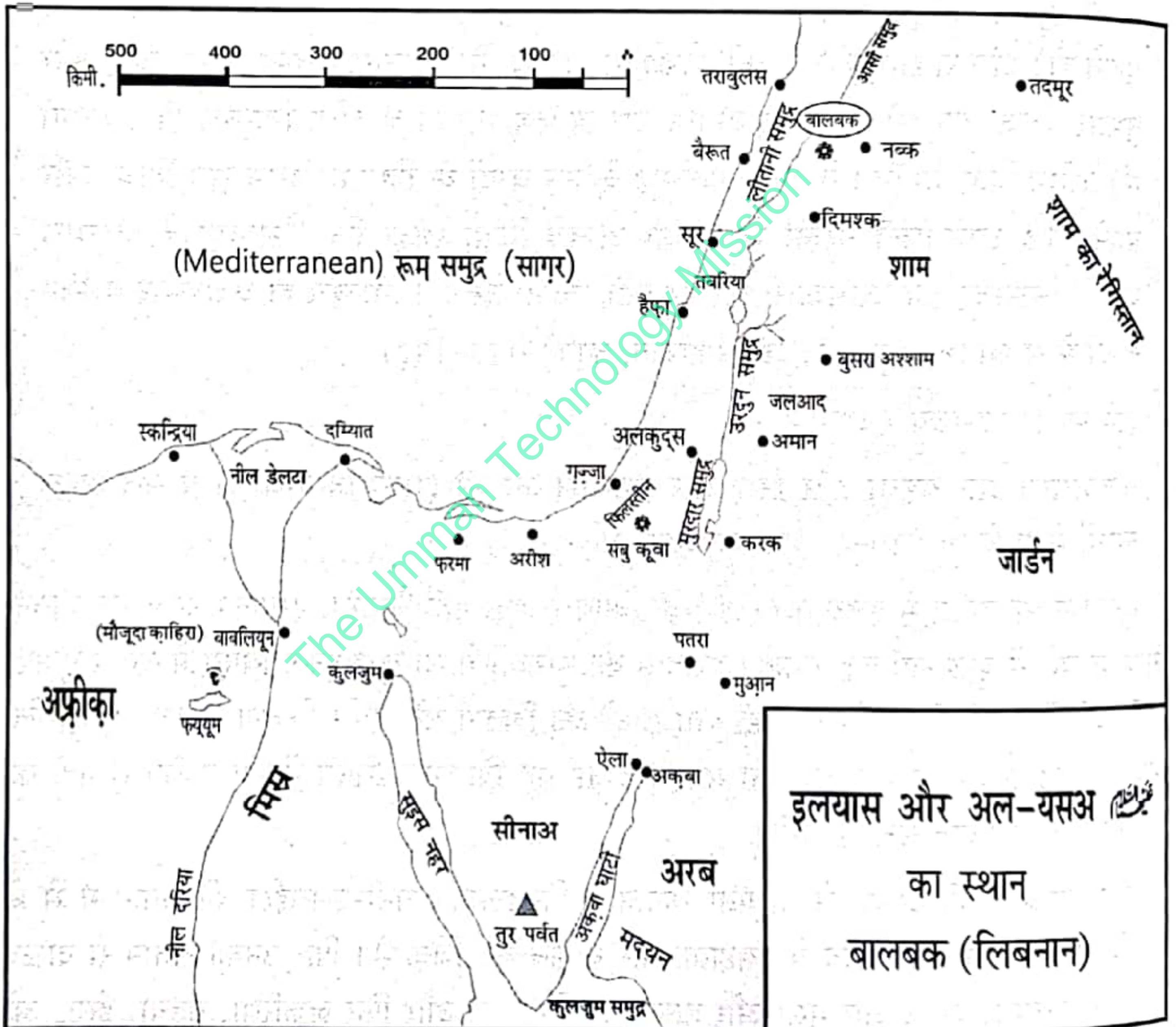
ऐसा लगता है कि यहूदियों ने इलयास (عليه السلام) के विषय में बहुत सारी ऐसी बुरी व ग़लत बातें फैला दी थीं, जिनका उनके जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं था। इसलिए क़ुरआन ने यह बताकर कि इलयास (عليه السلام) भी एक अच्छे और सच्चे नबी थे, उनका तोड़ किया। परन्तु मुसलमानों ने भी अपने इतिहास में उनमें से कुछ बातों को सम्मिलित कर लिया। अब हमें चाहिए कि इन ग़लत बातों को उनसे सम्बद्ध न करें।

इलयास (عليه السلام) के विषय में जो कुछ कहा जा सकता है वह यह कि वे जार्डन के पश्चिम में जुलैद नामक पहाड़ की घाटी में तशीनी नामक बस्ती में पैदा हुए। वे भेड़-बकरियाँ चराते और उनके बालों का कपड़ा पहनते, अधिकतर समय जंगलों में अल्लाह के ज्ञान-ध्यान में व्यतीत करते। फिर अल्लाह ने उनको नबी बनाया और 'अहाब' बादशाह के पास वे अल्लाह का संदेश लेकर गए जो 'बअ्ल' का पुजारी बन गया था। उसके पश्चात् उनके साथ वह कुछ हुआ जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

इदरीस (عليه السلام)

इनका वर्णन क़ुरआन में दो स्थानों पर हुआ है। प्रथमत: सूरा मरयम में –

«और किताब में इदरीस का ज़िक्र करो। नि:सन्देह वह बड़ा सच्चा नबी था। और उसे हमने एक उच्च स्थान पर उठा लिया।» (सूरा–19, मरयम, आयतें–56-57)

द्वितीय सूरा अंबिया में –

«इसमाईल और इदरीस और ज़ुलकिफ़्ल (को भी याद करो) ये सब सब्र करनेवाले थे। और इन्हें हमने अपनी दयालुता में प्रविष्ट किया। निस्संदेह ये अच्छे लोगों में से थे।» (सूरा–21, अल-अंबिया, आयतें–85-86)

सहीह हदीस में इतना आया है कि जब नबी (ﷺ) मेराज पर गए थे (अर्थात् आकाश की यात्रा की) तो चौथे आकाश पर हज़रत इदरीस से मुलाक़ात हुई थी, जैसा कि सहीह बुख़ारी तथा सहीह मुस्लिम में आया है। इसके अतिरिक्त हम कुछ नहीं जानते कि ये कौन थे, और कब संसार में आए। जो बात हमें क़ुरआन से मालूम होती है वह यह है कि ये नबी अरबों में मशहूर थे। लोग इनसे भली-भाँति परिचित थे। इसी लिए इनके विषय में किसी ने कोई प्रश्न नहीं किया, लेकिन 'बनी इसराईल' ने दूसरे नबियों की तरह इदरीस के विषय में भी बहुत सारी ग़लत बातें फैला दी थीं। क़ुरआन ने उन ग़लत बातों का खंडन किया और यह भी कहा कि वे तो एक सच्चे नबी थे, जिनको हमने बड़ा उच्च स्थान दिया था।

कुछ विद्वानों का विचार है ये वही हनूक हैं जिनका ज़िक्र तौरात में इस प्रकार आया है –

"हनूक अल्लाह के साथ चलता रहा और फिर खो गया। क्योंकि अल्लाह ने उसे उठा लिया।" (उत्पत्ति 5:24)

हनूक आदम की सातवीं नस्ल में से थे। अल्लाह ही को पुकारते थे और उसी की इबादत करते थे और उन्हीं की नस्ल से नूह पैदा हुए।

इदरीस अलैहिस्सलाम का क्षेत्र
बाबिल से मिस्र की ओर हिजरत
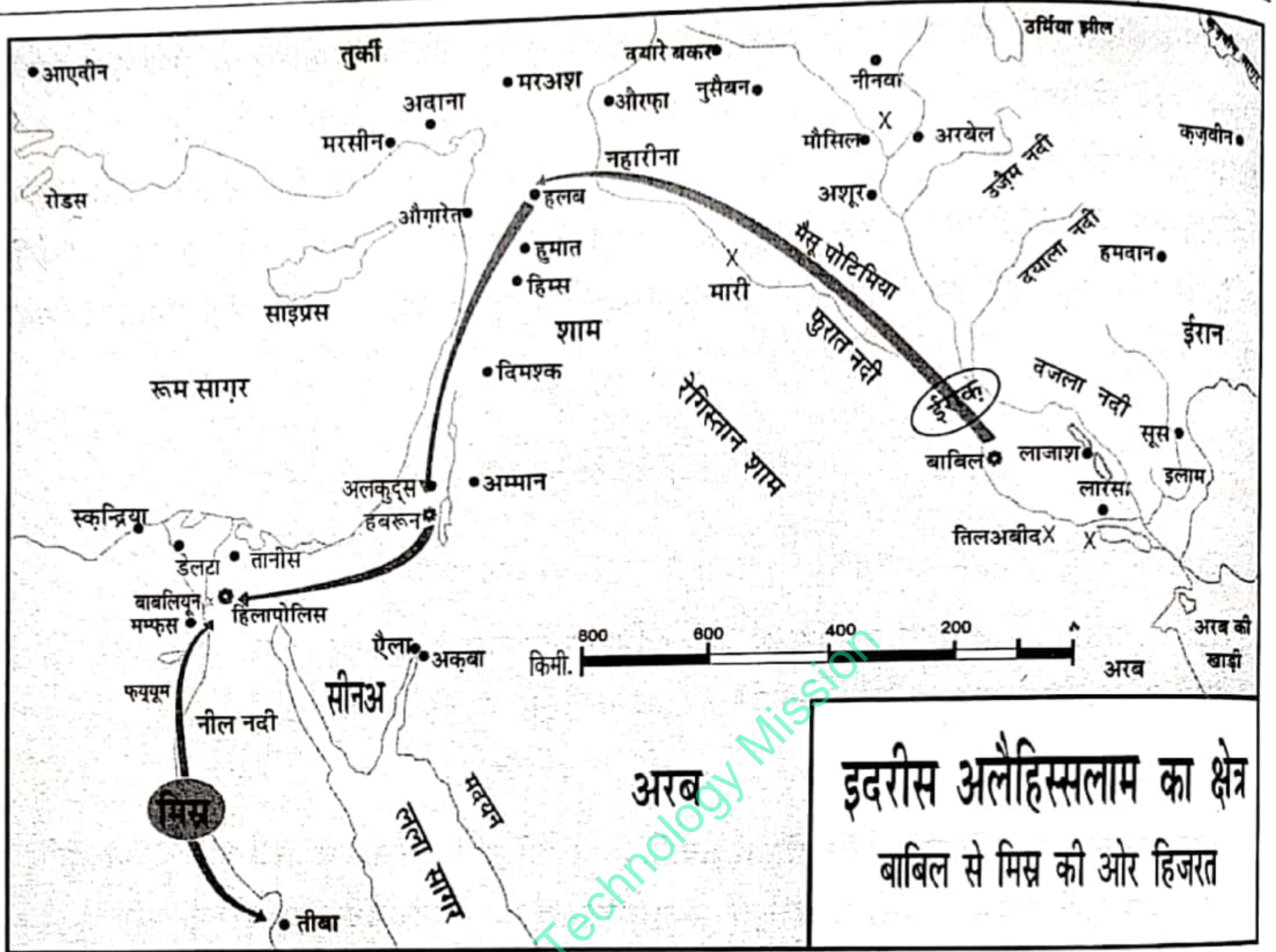
इब्रानी भाषा में हनूक का अर्थ है 'पढ़नेवाला'। इदरीस का अर्थ भी अरबी भाषा में पढ़ने के हैं। कहा जाता है कि इदरीस वही हनूक हैं। परन्तु ये सब काल्पनिक बातें हैं। क़ुरआन ने इदरीस (عليه السلام) का विस्तृत वर्णन नहीं किया है, इसलिए हम विश्वास से कुछ नहीं कह सकते। क़ुरआन ने जिस बात की पुष्टि की है वह केवल इतनी है कि इदरीस भी एक सच्चे नबी थे। लोगों ने उनसे जो ग़लत बातें जोड़ दी थीं, क़ुरआन ने उनका खंडन कर दिया है। और यह बताया है कि वे भी इसमाईल (عليه السلام) की तरह सब्र करनेवाले थे और उनकी इसी चारित्रिक विशेषता में हमारे लिए शिक्षा है।

इफ़ाज़ा

यह उस तवाफ़ (परिक्रमा) का नाम है जिसे हाजी अरफ़ात से वापसी के बाद करता है, जिसको हज का एक स्तम्भ कहा जाता है। इस तवाफ़ के न करनेवाले का हज नहीं होगा।

क़ुरआन में एक स्थान पर इसी तवाफ़ की ओर संकेत करते हुए कहा गया—

«फिर वे अपना मैल-कुचैल दूर करें, और अपनी मन्नतों को पूरी करें, तथा अल्लाह के प्राचीन घर का तवाफ़ करें।» (सूरा–22, अल-हज, आयत–29)

इसके संबंध में अधिक जानकारी के लिए देखिए 'हज'।

इंजील

यह यूनानी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है 'सुसमाचार'। अल्लाह ने आकाश से जो धर्मशास्त्र उतारे हैं उनमें से एक इंजील भी है –

«उसने सत्य के साथ तुमपर यह किताब (क़ुरआन) उतारी, जो अपने से पूर्वकालीन धर्मशास्त्रों की पुष्टि करती है। और उसने 'तौरात' और 'इंजील' उतारी।» (क़ुरआन, सूरा–3, आले-इमरान, आयत–3)

इसकी पुष्टि बाइबल से भी होती है। मरक़ुस की पुस्तक में है –

"यीशु गलील प्रदेश में आए और परमेश्वर के राज्य के सुसमाचार का प्रचार किया। और कहा कि समय पूरा हो गया है और परमेश्वर का राज्य निकट आ गया है। मन फिराओ और 'इंजील' (सुसमाचार) पर ईमान लाओ।" (मरक़ुस, 1:14-15)

हज़रत यीशु के पश्चात् उनके शिष्य भी इस इंजील की दावत देते थे। पौलुस कहता है –

"मैं इंजील सुनाने से नहीं लजाता।" (रोमियो, 1:16)

एक स्थान पर तो पौलुस ईसाइयों की निन्दा करते हुए कहता है –

"मुझे आश्चर्य होता है कि जिसने तुम्हें मसीह के अनुग्रह में बुलाया, उससे तुम इतनी जल्दी फिर गए और अन्य प्रकार की इंजील की ओर झुकने लगे।" (गलातियो, 1:16)

इस इंजील में, क़ुरआन के अनुसार, लोगों के लिए मार्गदर्शन था –

«तथा हमने उन्हें 'इंजील' प्रदान की, जिसमें मार्गदर्शन और प्रकाश था।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–46)

परन्तु वह इंजील कहाँ गई? इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता, ऐसा लगता है कि ईसा (عليه السلام) के पृथ्वी से उठाए जाने के पश्चात् उसको भी उठा लिया गया। आज जो बाइबल में चार इंजीलें पाई जाती हैं। वे हज़रत ईसा पर उतारी जानेवाली इंजील नहीं हो सकतीं। हाँ, हम उनको ईसा की जीवनी मान सकते हैं, जैसा कि 'क़ामूस किताब मुक़द्दस' का रचयिता कहता है –

"ये इंजीलें यीशू के शिष्यों की लिखी हुई हैं, जिनमें यीशु की जीवनी बयान की गई है।" (देखिए शब्द 'इंजील' पृ. 121)

एक दूसरे स्थान पर कहता है –

"इन इंजीलों में विशेषकर यीशु की मृत्यु तथा क़ब्र से उठाए जाने का वर्णन किया गया है।" (देखिए शब्द 'इंजील' पृ. 120)

इससे भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि कदापि वह इंजील नहीं हैं जिसको अल्लाह ने ईसा (ﷺ) पर उतारा था, और जिसका प्रचार स्वयं ईसा और उनके शिष्य किया करते थे। अब यह प्रश्न उठता है कि वह इंजील गई कहाँ ? अब यह काम मसीही तथा मुस्लिम विद्वानों का है कि उसको तलाश करें।

इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि इस समय जो चार इंजीलें बाइबल में दाख़िल हैं- मत्ती, मरक़ुस, लूक़ा और यूहन्ना – उनमें कहीं-कहीं ईसा के भाषण के कुछ भाग पाए जाते हैं। इसी प्रकार मुहम्मद (ﷺ) के आने की भविष्यवाणी भी पाई जाती है।

बहुत-से ईसाई विद्वान भी इन इंजीलों को ईशवाणी (वह्य) नहीं मानते। रहा उनके रचयिता का सवाल तो इनके विषय में भी हमारे पास बहुत कम जानकारी है। उन्होंने किस भाषा में लिखा और फिर उनका अनुवाद किसने किया, इन सब बातों का आज तक निर्धारण नहीं हो सका है। रहा क़ुरआन का यह आदेश –

«इंजीलवालों को चाहिए कि उसके अनुसार निर्णय करें जो अल्लाह ने उतारा है। और जो उसके अनुसार न्याय नहीं करेगा जो अल्लाह ने उतारा है, तो ऐसे ही लोग अवज्ञाकारी हैं।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–47)

इसका उद्देश्य आजकल के ईसाई नहीं, बल्कि वे हैं जिनपर इंजील उतारी गई थी, परन्तु उन्होंने उसके अनुसार न्याय नहीं किया, बल्कि तौहीद (एकेश्वरवाद) के स्थान पर शिर्क (बहुदेववाद) अपना लिया और ईसा को अल्लाह का पुत्र बना लिया और अगर इससे आजकल के ईसाई अभीष्ट हैं तो सबसे पहले ईसा (ﷺ) की उस भविष्यवाणी को मानें जिसमें उन्होंने एक नबी के आने की सूचना दी है, जिसका नाम मुहम्मद (ﷺ) है।

इस्रा

नबियों के जीवन में कभी-कभी ऐसा अवसर भी आता है जब अल्लाह उनको अपने ब्रह्मांड के कुछ गुप्त रहस्यों से अवगत कराना चाहता है। जिसके कारण नबी के आत्म-विश्वास और उनपर जिसका उत्तरदायित्व डाला गया है वे उसको भली-भाँति पूरा करने की चेष्टा करने लगते हैं। इन्हीं रहस्यों में एक 'इस्रा' तथा 'मेराज' भी है। 'इस्रा' का वर्णन तो स्वयं क़ुरआन में आया है। परन्तु 'मेराज' का वर्णन क़ुरआन में नहीं, बल्कि बहुत सारी 'मु-त-वातिर' हदीसों में आया है जिनका उल्लेख तीस से अधिक सहाबा ने किया है। 'इस्रा' का अर्थ है रात में यात्रा करना, जिसका संकेत 'सूरतुल-इस्रा', में जिसको 'सूरा बनी-इसराईल' भी कहते हैं, आया है –

«पवित्र है वह जो अपने बन्दे को मस्जिदे-हराम से मस्जिदे-अक़्सा तक रातों-रात ले गया, जिसके हर ओर हमने बरकतें रखी हैं। ताकि हम उसे अपनी कुछ निशानियाँ दिखाएँ। निस्संदेह वह सुनने और देखनेवाला है।» (सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–1)

इस्रा के पश्चात् नबी (ﷺ) को सातों आकाश की यात्रा कराई गई, जिसमें आप (ﷺ) ने विभिन्न प्रकार के चमत्कार देखे, जिनका कुछ वर्णन सूरा अन-नज्म में आया है। क़ुरआन में इसके अतिरिक्त इस विषय में कुछ और नहीं आया है। परन्तु आप (ﷺ) के जीवन पर जो पुस्तकें लिखी गई हैं उनसे पता चलता है कि 'इस्रा' की यह अद्भुत घटना मक्का से हिजरत से एक वर्ष पूर्व घटी।

आप (ﷺ) अभी-अभी ताइफ़ वालों को इस्लाम का संदेश सुनाकर आए थे, जिन्होंने आप (ﷺ) के संदेश को अस्वीकार कर दिया और आप (ﷺ) को पत्थर भी मारे, जिसके कारण आप (ﷺ) के पाँव से रक्त बहने लगा। ऐसी दशा में आप बड़े दुखी थे कि 'इस्रा' की घटना घटी, जिसके द्वारा अल्लाह ने आप (ﷺ) के दुःख को दूर करना चाहा तथा आप (ﷺ) को अपना अद्भुत चिह्न भी दिखाना चाहा, ताकि आप (ﷺ) निराश न हों और संयम के साथ अपना काम करते रहें। अब आइए देखें कि इस यात्रा में आप (ﷺ) ने क्या देखा :

1. आप (ﷺ) अपने घर 'मस्जिदे- हराम' (काबा) के निकट विश्राम कर रहे थे कि जिबरील (عليه السلام) आए। उन्होंने आप (ﷺ) को उठाया और आप (ﷺ) के सीने को चाक किया। उसमें से आप (ﷺ) का हृदय निकाला, उसको ज़मज़म के पवित्र पानी से धोया, फिर उसको सोने के बर्तन में, जिसमें ज्ञान और बोध भरा हुआ था, लेकर आए और अपने स्थान पर लगा दिया। हृदय निकालने की यह घटना उस समय भी हुई थी जब आप (ﷺ) बालक थे।

2. फिर वे एक सवारी लेकर आए जिसको बुराक़ कहते हैं। उसका रंग सफ़ेद था, जो गधे से कुछ बड़ा और ख़च्चर से कुछ छोटा था। जिसकी गति इतनी तीव्र थी कि जहाँ तक आँख देख सकती थी उसका पाँव वहाँ पड़ता था।

3. कुछ ही क्षणों में आप (ﷺ) 'बैतुल्लाह' से 'बैतुल-मक़दिस' पहुँच गए जिसकी दूरी उस समय सफ़र करनेवालों के अनुसार चालीस दिन की थी। वहाँ आप (ﷺ) ने नबियों को नमाज़ पढ़ाई।

4. इसके बाद जिबरील (عليه السلام) दो प्याले लेकर आए, एक में दूध और दूसरे में मदिरा (शराब) थी। आप ने दूधवाला प्याला ले लिया, इसपर जिबरील (عليه السلام) ने कहा, "आपने स्वाभाविक वस्तु को पसन्द किया। अगर आप मदिरावाला प्याला लेते तो आपके अनुयायी भटक जाते।" (सहीह बुख़ारी, 4709)

5. उसके बाद 'जिबरील' आप (ﷺ) को लेकर आकाश की ओर चले। पहले आकाश पर आदम, दूसरे पर ईसा तथा यहया, तीसरे पर यूसुफ़, चौथे पर इदरीस, पाँचवें पर हारून, छठे पर मूसा और सातवें पर इबराहीम से भेंट हुई तथा परिचय हुआ। सब ने आपका स्वागत किया।

6. आप इस यात्रा में 'सिदरतुल-मुन्तहा' तक पहुँच गए, जहाँ कोई प्राणी नहीं पहुँच सकता। वहाँ आप (ﷺ) ने फ़रिश्तों के क़लम चलने की आवाज़ सुनी, जो संसार का भाग्य लिखने में व्यस्त थे।

7. आप (ﷺ) और आप (ﷺ) के अनुयायियों पर एक दिन और एक रात में पचास नमाज़ें अनिवार्य ठहराई गईं जो आप (ﷺ) की विनती पर पाँच रह गईं, परन्तु उनका पुण्य (सवाब) पचास के बराबर कर दिया गया।
8. आप (ﷺ) से प्रश्न किया गया कि क्या आपने इस यात्रा में अल्लाह को भी देखा। आप (ﷺ) ने उत्तर दिया, "वह तो एक प्रकाश है, उसे कैसे देखा जा सकता है।" (सहीह मुस्लिम, 178)
9. आप (ﷺ) ने इस यात्रा में जिबरील (عليه السلام) को अपने असली रूप में देखा जिनके कोई छः सौ पंख थे और जिन्होंने पूरे ब्रह्मांड को ढाँप लिया था।
10. इस यात्रा में आप (ﷺ) ने अल्लाह की महान निशानियाँ देखीं। (क़ुरआन, सूरा–53, अन-नज्म, आयत–18)

उन निशानियों में से कुछ ये हैं –

- वहाँ एक ऐसी नदी देखी जिसके किनारे पर एक भवन बना हुआ था। उस भवन के ईंट-पत्थर हीरे-जवाहिर के थे। आप (ﷺ) ने जिबरील (عليه السلام) से उसके विषय में पूछा तो उन्होंने कहा, "यह कौसर नदी है। और वह भवन जिसे आपने देखा है उसको आपके रब ने आपके लिए बनाया है।"
- आप ने वहाँ 'बैतुल-मामूर' को देखा, जिसमें हर दिन सत्तर हज़ार फ़रिश्ते नमाज़ पढ़ते हैं, जो उसमें से निकलने के बाद दुबारा नहीं आते, (अर्थात् फिर दूसरे सत्तर हज़ार आते हैं)। (सहीह बुख़ारी, 3207)
- वहाँ चार नदियाँ देखीं, दो स्वर्ग में बह रही थीं और दो संसार में, जिनको नील और फ़ुरात कहते हैं।
- वहाँ कुछ ऐसे लोगों को भी देखा जो अपना मुख अपने नाख़ुनों से नोंच रहे थे। आप (ﷺ) ने जिबरील से पूछा, "ये कौन लोग हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "ये वे लोग हैं जो दूसरों की चुग़ली किया करते थे।" (अबू दाऊद, 5:194)
- आप (ﷺ) ने वहाँ स्वर्ग तथा नरक भी देखे, उनमें रहनेवालों और भविष्य में जानेवालों को भी देखा।

अर्थात् अल्लाह ने अपने नबी को 'इसरा' तथा 'मेराज' की यात्रा कराकर यह बताना चाहा कि वह बहुत महान है। वह जो चाहे कर सकता है। परन्तु यह बात वे लोग नहीं समझ सकते जो ईमानवाले नहीं हैं। इसलिए जब नबी (ﷺ) ने अपनी यात्रा का वर्णन मक्कावालों के सामने किया तो वे आप (ﷺ) का मज़ाक़ उड़ाने लगे। जैसा कि सहीह बुख़ारी में वर्णित है। (सहीह बुख़ारी, 4710)

इस पर अल्लाह ने 'बैतुल-मक़दिस' को आप (ﷺ) के सामने कर दिया और आप (ﷺ) उसके विषय में सब कुछ बताने लगे जैसे आप (ﷺ) उसको देख रहे हों।

यही वह कठिन घड़ी थी जब मक्का के इस्लाम-विरोधियों ने अबू-बक्र (ﷺ) को शर्मिन्दा करने के लिए कहा, "क्या तुम ने अपने मित्र के विषय में सुना है जो कहता है कि एक रात में वह 'बैतुल-मक़दिस' जाकर आ गया?" अबू-बक्र (ﷺ) ने कहा, "अगर वे ऐसा कहते हैं तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? हम तो इस बात पर विश्वास करते हैं कि आकाश से उनपर वह्य आती है। अगर वे 'बैतुल-मक़दिस' एक रात्रि में जाने-आने की बात करते हैं तो हमें पूरा विश्वास है कि ऐसा ही हुआ होगा।" यह सुनकर मक्का के इस्लाम-विरोधी चकित रह गए, जिसके पश्चात् नबी (ﷺ) ने अबू-बक्र (ﷺ) को 'सिद्दीक़' की उपाधि प्रदान की, जिसका अर्थ है 'पुष्टि करनेवाला'।

अगर आज भी कोई व्यक्ति इन बातों पर संदेह करे तो हम यही कहेंगे कि वह अल्लाह की महान सत्ता को नहीं समझता। सब से पहले हम उसे नबी (ﷺ) के सत्य होने का संदेश देंगे, जब वह आप (ﷺ) को नबी मान लेगा, फिर आप (ﷺ) की किसी बात पर संदेह नहीं करेगा। रहे वे लोग जो आपको नबी ही नहीं मानते तो हम उनसे निवेदन करेंगे कि वे इस्लाम धर्म का अध्ययन करें।

कुछ लोगों का इसमें मतभेद है कि यह यात्रा केवल आत्मा की थी या आत्मा तथा शरीर दोनों की थी। क़ुरआन की वर्णन-शैली से यही पता चलता है कि आप (ﷺ) की यह यात्रा शरीर तथा आत्मा दोनों के साथ थी। अल्लाह का यह कहना –

«पवित्र है वह जो अपने बन्दे को मस्जिदे-हराम से मस्जिद-अक़सा तक रातों-रात ले गया।» (क़ुरआन, सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–1)

अंदाज़ से यह ज़ाहिर है कि यह किसी महान घटना की ओर संकेत है। अब अगर यह यात्रा केवल आत्मा की होती, या स्वप्न में होती तो इसमें कौन-सी अचम्भे की बात थी। इस प्रकार के स्वप्न तो कोई भी देख सकता है। और फिर मक्का के इस्लाम-विरोधियों को इससे इनकार करने की क्या आवश्यकता थी? अल्लाह का यह कहना –

«जो दृश्य हमने तुम्हें दिखाया, उसे तो बस हमने लोगों के लिए परीक्षा बना दिया।» (क़ुरआन, सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–60)

इससे भी सिद्ध होता है कि यह स्वप्न नहीं, बल्कि यह सशरीर यात्रा थी। क्योंकि अगर यह केवल एक स्वप्न था तो इसमें लोगों के लिए क्या परीक्षा थी स्वप्न तो हम एक से एक आश्चर्यजनक देखते रहते हैं। यहाँ क़ुरआन ने शब्द 'रूया' का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ स्वप्न भी होता है, परन्तु जब उसके साथ परीक्षा का प्रयोग कर दिया तो फिर यह प्रत्यक्ष देखने के भाव में बदल गया।

इस शब्द से ही कुछ विद्वानों को धोखा हो गया है कि यह पूरी यात्रा एक स्वप्न थी, परन्तु जब 'सूरतुल-इस्रा' की प्रारम्भिक आयतों को इस साठवीं आयत के साथ मिलाकर विचार करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि यह आत्मा और शरीर दोनों की यात्रा थी। आप (ﷺ) ने सब कुछ अपने नेत्रों से देखा।

यह सब कुछ हम इसलिए संभव मानते हैं कि यह यात्रा आप (ﷺ) को अल्लाह ने कराई, जो महान है, जिसकी सत्ता संसार के कण-कण में जारी है, जिसने आदम को मिट्टी से बनाया, इबराहीम को आग से जीवित निकाला, मूसा के लिए समुद्र को दो भागों में बाँट दिया, ईसा को असंख्य चमत्कार प्रदान किए, तो क्या वह अल्लाह मुहम्मद (ﷺ) को यह यात्रा नहीं करा सकता ?

यहाँ यह बात भी जान लेना आवश्यक है कि 'इसूरा' तथा 'मेराज' का अनुभव आप उस समय तक नहीं कर सकते जब तक आपको अल्लाह की महान सत्ता पर पूर्ण विश्वास न हो। विचार कीजिए कि अब तक सबसे अधिक रफ़्तार में सफ़र करनेवाली जिस चीज़ का पता चला है वह प्रकाश है, जो एक सेकंड में एक लाख छियासी हज़ार मील सफ़र कर सकता है, और हमारे सौर परिवार से बाहर जो निकटतम सितारा है उसको अल्फ़ा संटारी (Alpha Centauri) कहते हैं। वहाँ तक पहुँचने के लिए हमें 424 प्रकाश वर्ष चाहिएं, जबकि अभी हम पहले आकाश में ही हैं, और नबी (ﷺ) 'इसूरा' तथा 'मेराज' में सातवें आकाश तक पहुँच गए थे। जहाँ 'बैतुल-मामूर' है। उसके आगे कोई नहीं जा सकता। अब अल्लाह की सत्ता देखिए जो कहता है–

«**और हमारा हुक्म तो आँख के झपकने की तरह होता है।**» (क़ुरआन, सूरा– 54, अल-क़मर, आयत 50)

अर्थात जैसे आँख झपकने में कुछ देर नहीं होती उसी प्रकार अल्लाह के हुक्म को कार्य रूप में आने में देर नहीं लगती। बल्कि किसी भी काम के लिए अल्लाह का केवल आदेश "कुन" (हो जा) होता है तो वह हो जाता है। (क़ुरआन, सूरा– 2, अल-बक़रा, आयत 44)

इस प्रकार पलक झपकते आप (ﷺ) पहले आकाश पर पहुँचे। दुबारा पलक झपकते-झपकते तीसरे आकाश पर पहुँचे, यहाँ तक कि आप 'सिदरतुल-मुन्तहा' तक पहुँच गए। यहाँ प्रकाश की रफ़्तार भी माँद पड़ गई बल्कि रफ़्तार का एक दूसरा पैमाना प्रयोग किया गया, और वह है अल्लाह का 'कुन' कहना। इससे पता चला कि नबी (ﷺ) की 'इसूरा' यात्रा अल्लाह के शब्द (कुन) कहने से हुई थी। जिसके सामने सांसारिक नियम, समय, तथा दूर-दूर की मसाफ़तें सब समाप्त हो जाती हैं। परन्तु ये बातें वही लोग समझ सकते हैं जो बुद्धिमान हैं।

इस्लाम

इस्लाम का अर्थ है शान्ति। अतः इस्लाम धर्म का अर्थ हुआ – शान्ति प्रदान करनेवाला धर्म। इसी से 'सिल्म' बना है। क़ुरआन में आया है कि –

«**यदि वे लोग शान्ति की ओर झुकें तो तुम भी उनकी ओर झुक जाओ और अल्लाह पर भरोसा रखो। निस्संदेह वह सुननेवाला और जाननेवाला है।**» (सूरा–8, अल-अनफ़ाल, आयत–61)

अर्थात् अगर युद्ध हो रहा हो और शत्रु शान्ति-संधि का सन्देश भेजे तो भी शान्ति स्वीकार करनी चाहिए। इस प्रकार इस्लाम स्वीकार करने का अर्थ है अपने आपको अल्लाह के आदेश के सामने झुका देना–

«यदि उन्होंने इस्लाम स्वीकार किया तो उन्होंने मार्ग पा लिया और यदि वे इससे मुँह मोड़ें तो तुम पर केवल (सन्देश) पहुँचा देने की ज़िम्मेदारी है और अल्लाह अपने बन्दों को देखनेवाला है।» (क़ुरआन, सूरा–3, आले-इमरान, आयत–20)

फिर यह कोई नया धर्म नहीं है, बल्कि यह तो सारे नबियों का धर्म रहा है–

«निस्संदेह हमने तौरात उतारी, जिसमें मार्गदर्शन तथा प्रकाश है। इस्लाम लानेवाले नबी यहूदियों, धर्माधिकारियों तथा धर्म ज्ञानी लोगों के बीच उसी के अनुसार न्याय किया करते थे।» (क़ुरआन, सूरा–5, अल-माइदा, आयत–44)

«इबराहीम न यहूदी था और न ईसाई, बल्कि वह तो सबसे कटकर रहनेवाला मुस्लिम था और वह मुशरिकों में से नहीं था।» (क़ुरआन, सूरा–3, आले-इमरान, आयत–67)

हज़रत यूसुफ़ (ﷺ) ने अल्लाह से यह प्रार्थना की–

«आकाशों और धरती को पैदा करनेवाले! तू ही दुनिया और आख़िरत में मेरा संरक्षक मित्र है। मुझे इस दशा में उठा कि मैं मुस्लिम (आज्ञाकारी) हूँ और मुझे अच्छे लोगों के साथ मिला।» (क़ुरआन, सूरा–12, यूसुफ़, आयत–101)

«जबकि मैंने हवारियों (ईसा के अनुयाइयों) के दिल में डाला कि मुझपर और मेरे रसूल पर ईमान लाओ। उन्होंने कहा, ''हम ईमान लाए, गवाह रहो कि हम मुस्लिम हैं।''» (क़ुरआन, सूरा–5, अल-माइदा, आयत–111)

«(सुलैमान) ने कहा, ''ऐ सरदारो, तुममें कौन उसका (सबा की रानी) का सिंहासन मेरे पास उसके मुस्लिम होने से पहले लेकर आता है।''» (क़ुरआन, सूरा–27, अन-नम्ल, आयत–38)

इन आयतों से पता चलता है कि नबी (ﷺ) जो धर्म लेकर आए, जिसको 'इस्लाम' कहते हैं, सभी नबियों का धर्म है। यह कोई नया धर्म नहीं है–

«कह दो, ''मैं कोई नया रसूल नहीं हूँ और न मैं यह जानता हूँ कि मेरे साथ और तुम्हारे साथ क्या किया जाएगा? मैं तो बस उसी पर चलता हूँ जो मेरी ओर वह्य की जाती है, और मैं तो बस एक साफ़-साफ़ सचेत करनेवाला हूँ।''» (क़ुरआन, सूरा–46, अल-अहक़ाफ़, आयत–9)

«इसलिए अल्लाह के निकट धर्म तो केवल इस्लाम है।» (क़ुरआन, सूरा–3, आले-इमरान, आयत–19)

«जो इस्लाम से हटकर कोई और धर्म चाहेगा तो उसे कभी स्वीकार नहीं किया जाएगा और वह आख़िरत में हानि उठानेवाला होगा।» (क़ुरआन, सूरा–3, आले-इमरान, आयत–85)

इस प्रकार देखा जाए तो पता चलता है कि इस्लाम वह धर्म है, जिसको अल्लाह ने अपने अन्तिम रसूल और नबी मुहम्मद (ﷺ) पर उतारा और इसके द्वारा उसने दूतत्त्व के सिलसिले को सदैव के लिए समाप्त कर दिया। अब इस्लाम ही वह धर्म है जिसके अतिरिक्त अल्लाह किसी और धर्म को स्वीकार नहीं करेगा। इस धर्म को उसने बड़ा सरल बनाया है। इसमें किसी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं है। उसने इसको ग्रहण करनेवालों पर कोई ऐसा बोझ नहीं डाला, जिसकी वे शक्ति न रखते हों। इस धर्म का आधार तौहीद (एकेश्वरवाद) है। इसकी पहचान सत्यता है, न्याय इसका प्रमुख अंग है और इसका निचोड़ एक-दूसरे पर दया करना है। यह ऐसा धर्म है जो हर लाभदायक और भले कामों का आदेश देता है और हानिकारक तथा बुरे कर्मों को वर्जित करता है। यह एक ऐसा धर्म है जिसके द्वारा अल्लाह अपने बन्दों के विश्वास तथा आचरण को ठीक करता है और सांसारिक तथा पारलौकिक जीवन को सँवारता है। इसके द्वारा अल्लाह टूटे हृदयों को जोड़ता है तथा इनसानों को सत्य मार्ग दिखाता है। यह एक ऐसा धर्म है जिसमें सारे आदेश स्पष्ट हैं चाहे वे विश्वास सम्बन्धी हों या कर्म व आचार सम्बन्धी हों या व्यवहार सम्बन्धी।

अर्थात् इस्लाम का सार रूप यह है –

1. मनुष्यों को अपने 'रब' (पालन-कर्त्ता) तथा स्रष्टा के नामों, गुणों तथा कर्मों से परिचित कराना।
2. बन्दों को केवल अल्लाह की उपासना का निमंत्रण देना और यह स्पष्ट करना कि उसका कोई साझी नहीं। उसके बताए हुए कर्मों को ग्रहण करना और जिन कर्मों से उसने रोका हो, उनसे रुक जाना।
3. मृत्यु के पश्चात् आनेवाले जीवन के बारे में बताना और यह बताना कि प्रलय दिवस को उनके साथ क्या होनेवाला है तथा उठाए जाने के पश्चात् प्रलय दिवस में उनका स्थान क्या होगा, स्वर्ग होगा या नरक?

संक्षेप में इस्लाम केआधार-स्तंभ का वर्णन किया जा रहा है –

1. ईमान अर्थात विश्वास

इसके छह भाग हैं:

(i) अल्लाह पर ईमान

अल्लाह पर विश्वास का अर्थ है –

(क) अल्लाह सबका रब (पालनकर्त्ता) है अर्थात् वही रब है, वही सृष्टि का रचयिता है, वही हमारा स्वामी है, वही सारे ब्रहमांड को चला रहा है, वही सर्वाधिकारी है।

(ख) केवल वही उपासना के योग्य है। उसको छोड़कर जिनकी भी पूजा की जाती है वे सब मिथ्या हैं।

(ग) उसके सभी नाम श्रेष्ठ तथा उत्तम हैं। वह उन सारे गुणों से सम्पन्न है जिसका विवरण क़ुरआन और हदीस में आया है। इस्लाम ने जहाँ एकेश्वरवाद का संदेश दिया है, वहीं अनेकेश्वरवाद की घोर निन्दा की है। और वे लोग जो एक अल्लाह को छोड़कर किसी और की उपासना करते हैं उनको नरक की यातना की सूचना दी है–

«निश्चय ही उन लोगों ने कुफ़्र किया, जिन्होंने कहा, ''मरयम का पुत्र मसीह ही अल्लाह है।'' जबकि मसीह ने (स्वयं) कहा था, ''ऐ इसराईल की सन्तान, उस अल्लाह की इबादत करो जो मेरा और तुम्हारा 'रब' है। क्योंकि जो अल्लाह के साथ किसी को साझी ठहराएगा अल्लाह ने उसपर स्वर्ग को हराम (निषिद्ध) कर दिया है और उसका ठिकाना नरक (जहन्नम) है। और अत्याचारियों (शिर्क करनेवालों) का कोई सहायक नहीं होगा।''» (क़ुरआन, सूरा–5, अल-माइदा, आयत–72)

इसलिए इस्लाम का प्रथम स्तंभ तौहीद (एकेश्वरवाद) है।

इस्लाम का दूसरा स्तंभ सलात है, जिसको हम नमाज़ कहते हैं। नमाज़ वास्तव में इसी तौहीद को बार-बार याद दिलाती है और चेतावनी देती है कि सावधान, जीवन के किसी क्षण में तौहीद को छोड़कर शिर्क न कर बैठना, क्योंकि शैतान हमारे पीछे उसी समय से लगा हुआ है जबसे उसको तथा आदम को जन्नत से निकाला गया था। क़ुरआन में है –

«कहो, ''निकल जा यहाँ (स्वर्ग) से, निश्चय ही तू धुतकारा हुआ है। और निश्चय ही तुझपर बदला दिए जाने के दिन (प्रलय) तक मेरी ओर से फिटकार है।'' कहने लगा, ''मेरे रब, मुझे उस दिन तक अवसर प्रदान कर जिस दिन लोग पुनः उठाए जाएँगे।'' कहा, ''जा तुझे अवसर दिया जाता है। उस दिन तक के लिए जिसका समय निश्चित है।'' उसने कहा, ''मेरे रब, जैसा तूने मुझे भटकाया है उसी तरह मैं भी उनके लिए धरती में मनोहरता का आयोजन करके उन सबको भटकाऊँगा। सिवाए उनके जो तेरे चुने हुए बन्दे होंगे।''» (सूरा–15, अल-हिज्र, आयतें 34-40)

इसका प्रमाण प्रस्तुत करने के बाद उसपर आवश्यक हो जाएगा कि वह हर प्रकार की उपासनाएँ केवल अल्लाह के लिए विशिष्ट कर ले, जैसे प्रार्थना, सहायता, चिन्तन, समाधि, आसन इत्यादि। और इनमें किसी को साझी न ठहराए, चाहे वे फ़रिश्ते हों या पवित्र आत्माएँ, मनुष्य के भेस में हों या किसी और भेस में–

«प्रभुवर, हम तेरी ही बन्दगी करते हैं, और तुझी से सहायता चाहते हैं।» (क़ुरआन, सूरा–1, अल-फ़ातिहा, आयत–4)

«कह दो कि अल्लाह के अतिरिक्त जिनको भी तुम कार्यसाधक समझ बैठे हो उन्हें पुकार देखो, वे न तुमसे कोई कष्ट दूर करने का अधिकार रखते हैं और न उसे बदलने का।» (क़ुरआन, सूरा–17, अल-इस्रा, आयत–56)

(ii) फ़रिश्तों पर ईमान

यह ईश्वर की वह मख़लूक़ (सृष्टि) है जिसको उसने केवल अपनी उपासना के लिए ही पैदा किया है। ये फ़रिश्ते हर समय उसकी उपासना करते रहते हैं। उसकी आज्ञा का पालन करते रहते हैं। अल्लाह ने उनको विभिन्न कामों पर लगाया है, जैसे –

अल्लाह ने नबियों तक अपना संदेश पहुँचाने के काम पर जिबरील (عليه السلام) को लगाया। वर्षा बरसाने का काम मीकाईल (عليه السلام) को दिया गया है। 'इसराफ़ील' (عليه السلام) क़ियामत के दिन 'सूर' (नरसिंघा) फूँकने का काम सौंपा गया है। एक मृत्यु के फ़रिश्ते हैं, जिनको मौत के समय रूह निकालने पर लगाया गया है। कुछ लोग इनका नाम 'इज़्राईल' बताते हैं, जिसकी पुष्टि क़ुरआन तथा सहीह हदीसों से नहीं होती। अर्थात् ये फ़रिश्ते अल्लाह के बताए हुए कामों पर लगे हुए हैं। उनमें से किसी को कोई और अधिकार नहीं है।

(iii) अल्लाह की भेजी हुई पुस्तकों पर ईमान

अल्लाह ने सम्पूर्ण मानव जाति के मार्गदर्शन के लिए अपने नबियों पर पुस्तकें उतारी हैं, उनमें से अन्तिम पुस्तक क़ुरआन है, जो क़ियामत तक के इनसानों के लिए मार्गदर्शन है। जो पुस्तकें क़ुरआन से पहले अवतरित हुईं उनमें से कुछ का विवरण क़ुरआन में मिलता है, ये हैं –

- तौरात, जो मूसा (عليه السلام) पर उतरी। इस पुस्तक में इसराईल की संतान का मार्गदर्शन किया गया था।
- इंजील, जो ईसा (عليه السلام) पर उतरी।
- ज़बूर, दाऊद (عليه السلام) को दी गई।
- इबराहीम (عليه السلام) के सहीफ़े।

(iv) नबियों पर ईमान

अल्लाह ने संसार में बहुत से नबी भेजे। सबसे पहले नबी आदम (عليه السلام.) थे और अन्तिम मुहम्मद (ﷺ)। ये नबी हमारी तरह मख़लूक़ (सृष्ट प्राणी) पैदा किए गए थे, उनमें किसी प्रकार का स्रष्टा-गुण नहीं पाया जाता था, वे सब अल्लाह के सदाचारी बन्दे थे। अल्लाह ने उनको अपना 'नबी' बनाकर उनपर बड़ा उपकार किया था। अन्तिम नबी हज़रत मुहम्मद (ﷺ) के पश्चात् इस श्रृंखला का अन्त कर दिया गया। अब क़ियामत तक कोई नबी नहीं आएगा, इसलिए आप (ﷺ) का लाया हुआ इस्लाम धर्म सारे मनुष्यों के लिए है।

(v) प्रलय दिवस पर ईमान

प्रलय-दिवस पर ईमान का अर्थ है कि एक दिन यह दुनिया समाप्त हो जाएगी, फिर ईश्वर सारे इनसानों को उठाएगा और लोगों के कर्मों के अनुसार न्यायपूर्वक फ़ैसला करेगा। तत्पश्चात् स्वर्ग या नरक में भेज देगा। सत्कर्मी के लिए स्वर्ग और दुष्कर्मी के लिए सदैव के लिए नरक होगा।

(vi) भाग्य पर ईमान

जिसका अर्थ है कि अल्लाह ने इस संसार को ज्ञान के द्वारा पैदा किया। इसलिए यहाँ जो कुछ भी हो रहा है उसको इसका ज्ञान है। वह सब कुछ उसके पास लिखा हुआ है। यहाँ जो कुछ हो रहा है उसी की इच्छा से हो रहा है।

द्वितीय : इस्लाम के स्तंभ

इस्लाम के कुल पाँच स्तंभ हैं, जिनको अपनाए बिना कोई व्यक्ति सच्चा मुसलमान नहीं बन सकता, और वे ये हैं—

(i) कलिमा शहादत : *ला-इला-ह इल्लल्लाह, मुहम्मदुर्रसूलुल्लह* अर्थात् इस बात की गवाही देना कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई भी पूजने योग्य नहीं और मुहम्मद (ﷺ) उसके भेजे हुए रसूल हैं। अभिप्राय यह है कि अल्लाह ही हमारा पालनकर्त्ता है इसलिए केवल वही उपासना के योग्य है। उसके अतिरिक्त जिसकी भी पूजा की जाए असत्य है। और मुहम्मदुर-रसूलुल्लाह का अर्थ है कि हम मुहम्मद (ﷺ) की बताई हुई बातों पर विश्वास करें। जिसका उन्होंने आदेश दिया है उसका पालन करें और जिससे उन्होंने रोका है उससे रुक जाएँ और अल्लाह की उपासना का वही नियम अपनाएँ जिसका उन्होंने आदेश दिया है।

(ii) सलात (नमाज़) : अल्लाह ने हम पर अनगिनत उपकार किए हैं। इन उपकारों के बदले अल्लाह का हम पर हक़ है कि हम उसकी उपासना करें। अल्लाह ने हमपर यह भी उपकार किया है कि अपनी पूजा और उपासना का तरीक़ा भी अपने नबी के द्वारा बता दिया है। अल्लाह का आदेश है—

«नमाज़, ईमान लानेवालों पर वक़्त की पाबन्दी के साथ फ़र्ज़ कर दी गई है।» (क़ुरआन, सूरा–4, अन-निसा, आयत–103)

इस प्रकार दिन में पाँच बार नमाज़ अदा करना हमारे ऊपर अनिवार्य है, क्योंकि यह अल्लाह का आदेश है। नमाज़ अल्लाह और बन्दे के सम्बन्ध को आपस में जोड़ने का उत्तम साधन है। क्योंकि इसके द्वारा बन्दा अल्लाह को पुकारता है, उससे मुनाजात (प्रार्थना एवं दुआ) करता है। जब एक मुसलमान नमाज़ इस प्रकार अदा करेगा तो नमाज़ उसको हर प्रकार की बुराइयों से रोकेगी। इसलिए चौबीस घंटों (दिन-रात) में पाँच बार नमाज़ पढ़ना अनिवार्य किया गया। सहीह हदीसों में आया है कि नमाज़ न पढ़नेवाला कुफ़्र करने का दोषी हो जाएगा।

एक दूसरी हदीस में आया है कि इस्लाम और कुफ़्र के बीच जो अन्तर है, वह नमाज़ है। अधिक जानकारी के लिए देखिए 'सलात'।

(i) **ज़कात :** यह एक प्रकार का धार्मिक दान है जो हर उस मुसलमान पर प्रत्येक वर्ष अदा करना अनिवार्य है जिसपर 'ज़कात' फ़र्ज़ हो जाए। ज़कात को ज़रूरतमन्द लोगों और उन मदों में ख़र्च किया जाता है जिनका उल्लेख क़ुरआन में हुआ है। इस प्रकार धनवान अपने धन को शुद्ध करते हैं। उनमें मुहताजों और ज़रूरतमन्दों के लिए सहानुभूति पैदा होती है और मुस्लिम समाज के सारे व्यक्ति आपस में भाई-भाई दिखाई देने लगते हैं। न तो धनवाले दरिद्रों से घृणा करते हैं, न दरिद्र धनवालों से ईर्ष्या।

एक सहीह हदीस में आया है, "ज़कात धन वालों से लिया जाएगा और निर्धनों में बाँट दिया जाएगा।" सोने और चाँदी में 2.5% तथा अनाज में जिसको वर्षा द्वारा उगाया गया हो 10% और जिसको सिंचाई से उगाया गया हो उसमें 5% ज़कात निकालने का आदेश है। अधिक जानकारी के लिए देखिए 'ज़कात'।

(ii) **रोज़ा :** इस्लाम का चौथा स्तंभ रोज़ा (व्रत) है, जिसको अरबी में सौम कहते हैं। रमज़ान के महीने में एक माह के रोज़े प्रत्येक मुसलमान स्त्री-पुरुष पर अनिवार्य हैं। यह रोज़ा भोर से आरम्भ होता है और सूर्यास्त होने तक रहता है। इस बीच हर प्रकार का खाना-पीना तथा सहवास करना वर्जित है। इसके द्वारा आत्मा की शुद्धि होती है तथा पाप दूर होते हैं। स्वर्ग में श्रेणी ऊँची होती है। इस रोज़े के और बहुत से लाभ हैं। अधिक जानकारी के लिए देखिए : रोज़ा

(iii) **हज :** हज का अर्थ है वह धार्मिक यात्रा जो मक्का की ओर की जाती है। यह प्रत्येक उस मुसलमान (स्त्री-पुरुष) पर, जो मक्का की यात्रा कर सकता हो, जीवन में एक बार अनिवार्य है। जहाँ काबा का तवाफ़ और फिर अरफ़ात की यात्रा की जाती है तथा प्रभात काल से सूर्यास्त तक उपासना की जाती है और फिर दस ज़िलहिज्जा को मिना में क़ुरबानी की जाती है। अर्थात् सब मिलकर एक 'रब' की उपासना करते हैं, एक प्रकार का वस्त्र धारण करते हैं। वह एक ऐसा दृश्य होता है जहाँ धनवान तथा निर्धन, गोरे तथा काले सब एक समान होते हैं। मिना में तीन दिन रुककर जमरात (जो कि शैतान का प्रतीक है) को कंकरी मारना सम्मिलित है। अधिक जानकारी के लिए देखिए : हज।

तृतीय : इस्लाम की सामाजिक शिक्षाएँ

इस्लाम ने मनुष्य के व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन दोनों को एक विशेष व्यवस्था का पाबन्द बना दिया है जिसके द्वारा वह लोक तथा परलोक में सफलता पा सकता है। निकाह (शादी-ब्याह) को जाइज़ (उचित) बताया, और ज़िना (व्यभिचार) को हराम (वर्जित) ठहराया। इसी प्रकार उसने हर बुराई से रोका और हर भलाई का आदेश दिया। इसके पश्चात् भी अगर कोई बुराई से नहीं रुकता है,

बल्कि दूसरों पर अत्याचार करता है तो उसके लिए कड़ा दंड निर्धारित किया। जैसे व्यभिचार करना, मद्यपान, यतीमों तथा कमज़ोरों पर ज़ुल्म इत्यादि। इसी प्रकार किसी की हत्या करना, चोरी करना, किसी पर झूठा आरोप लगाना, किसी को बिना कारण मारना आदि पर भी इस्लाम कड़ा दंड निर्धारित करता है। फिर जो दंड उसने निर्धारित किए हैं वे अपराध या दोष के अनुकूल हैं। इसी प्रकार इस्लाम ने प्रजा तथा शासक के सम्बन्ध को भी प्रकट किया। प्रजा को आदेश दिया कि वह शासक की आज्ञा का पालन करें और उनके विरुद्ध कोई काम न करें (अगर उनका आदेश अल्लाह के आदेश के विपरीत नहीं है), क्योंकि शासक के विरुद्ध चलने से संसार में बिगाड़ पैदा होगा।

हम संक्षेप में कह सकते हैं कि इस्लाम ने अल्लाह और बन्दे के सम्बन्ध को उचित रूप से उजागर किया है। इसी प्रकार मनुष्य का सम्बन्ध अपने समाज से उचित प्रकार से जोड़ा है। भलाई का कोई भी ऐसा काम नहीं है जिसका इस्लाम ने आदेश न दिया हो और कोई बुराई ऐसी नहीं है जिससे इस्लाम ने रोका न हो, और यही एक सत्य और पूर्ण धर्म की पहचान है। लेकिन क्या किया जाए बहुत सारे लोग इन बातों को नहीं जानते जिसके कारण वे इस्लाम पर नित्य नए-नए आरोप लगाते रहते हैं।

इसराईल

यह हज़रत याक़ूब (عليه السلام) की उपाधि है। यह शब्द इबरानी भाषा का है। इबरानी में इसराईल उस व्यक्ति को कहते हैं जो अल्लाह के साथ मिलकर धर्मयुद्ध करे। इसका विवरण बाइबल में भी आया है। (देखिए : बाइबल-उत्पत्ति, 34:7) इसराईल का एक दूसरा अर्थ अब्दुल्लाह भी है। यह शब्द दो शब्दों से मिल कर बना है। एक इसरा, जिसका अर्थ है अल्लाह। दूसरा ईल, जिसका अर्थ है बन्दा। बाइबल ही में बनी-इसराईल को इसराईल भी कहा गया है। (देखिए : बाइबल-निर्गमन, 32:4) मिस्र में कुछ ऐसे शिलालेख मिले हैं जो मिन्फ़ताह के समय के हैं, जो 1234-1227 ईसा पूर्व, मिस्र का फ़िरऔन अर्थात् शासक था, उसमें भी बनी-इसराईल को इसराईल कहा गया है। (देखिए : क़ामूस किताब मुक़द्दस, पृ. 69) इससे स्पष्ट होता है कि इसराईल याक़ूब (عليه السلام) की उपाधि भी है और बनी इसराइल का नाम भी।

क़ुरआन में इसराईल का उल्लेख हुआ है। क़ुरआन में इसराईल का नाम केवल एक बार आया है –

«खाने की सारी चीज़ें इसराईल की संतान के लिए वैध थीं, सिवाय उन चीज़ों के जिनको इसराईल ने तौरात उतारे जाने से पूर्व स्वयं अपने लिए अवैध कर लिया था। कहो, यदि तुम सच्चे हो तो तौरात लाओ और उसे पढ़ो।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–93)

इस आयत के उतरने का कारण यह है कि यहूदियों ने मुसलमानों से विरोध प्रकट किया कि तुम लोग अपने आपको इबराहीम के धर्म पर होने का दावा करते हो परन्तु ऊँट का मांस खाते हो, जो

इबराहीम (ﷺ) और याक़ूब (ﷺ) के यहाँ हराम (अवैध) था। क़ुरआन ने उत्तर दिया कि हर खानेवाली वस्तु बनी- इसराईल के लिए हलाल (वैध) थी। परन्तु याक़ूब ने किसी रोग के कारण अपने ऊपर ऊँट का मांस हराम (अवैध) कर लिया था।

तिर्मिज़ी और मुस्नद अहमद में आया है कि उन्होंने ऊँट का मांस और उसका दूध अपने ऊपर अवैध कर लिया था, तत्पश्चात् इसराईल की संतान ने उसको सदैव के लिए अवैध कर लिया, जबकि अभी तौरात उतरी भी नहीं थी। इसी लिए क़ुरआन ने उनको चैलेंज किया. कि अगर तुम अपने दावे में सच्चे हो तो लाओ तौरात और दिखाओ कि इबराहीम ने ऊँट का मांस कहाँ हराम (अवैध) किया है? रह गया लैव्यवस्था और व्यवस्थाविवरण में यह जो आया है : "फिर ख़ुदावन्द ने मूसा और हारून से कहा : तुम बनी-इसराईल से कहो कि जितने पशु पृथ्वी पर हैं उन सब पशुओं में से जिनको तुम खा सकते हो वे ये हैं – पशुओं में से जिनके पाँव अलग हों और चिरे हुए हों और जुगाली करते हों। तुम उनको खा सकते हो। मगर जो जुगाली करते हैं या जिनके पाँव अलग हैं उनमें से तुम इन पशुओं को न खाना : अर्थात् ऊँट, जो जुगाली तो करता है परन्तु इसका खुर चिरा हुआ नहीं होता है, इसलिए यह तुम्हारे लिए अशुद्ध ठहरा है इसी प्रकार शापान और ख़रगोश, जो जुगाली तो करते हैं परन्तु उनके खुर चिरे हुए नहीं होते, और सूअर कि उसके खुर तो चिरे हुए होते हैं, परन्तु वह जुगाली नहीं करता।" (देखिए : लैव्यवस्था 11:1-8, तथा व्यवस्थाविवरण, 14:7-8)

तो ऐसा उनके लिए दंड के तौर पर किया गया है जिसका विवरण क़ुरआन में यूँ आया है –

«यहूदियों के अत्याचार के कारण हमने बहुत-सी अच्छी पाक चीज़ें उनपर हराम कर दीं जो उनके लिए हलाल थीं।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–160)

«और उन लोगों पर, जो यहूदी हैं, हमने प्रत्येक नाख़ुनवाला पशु हराम कर दिया और गाय तथा बकरी की चर्बी हराम कर दी, सिवाए उसके जो उनकी पीठों या आँतों से लगी हुई हो। या हड्डी से मिली हो। ऐसा हमने उनकी सरकशी के कारण किया और निस्संदेह हम सच्चे हैं।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–146)

इससे पता चला कि ये सारी वस्तुएँ बनी-इसराईल के लिए भी हलाल थीं, जैसा कि मुसलमानों के लिए हलाल हैं। यही इबराहीम तथा याक़ूब का भी धर्म था; बल्कि क़ुरआन तो नबी मुहम्मद (ﷺ) की प्रशंसा करते हुए बताता है कि जब वे (अर्थात् मुहम्मद ﷺ) आएँगे तो बनी-इसराईल ने जो शुद्ध एवं पाक वस्तुएँ हराम कर दी थीं, उनको दोबारा हलाल कर देंगे; और जो बोझ उन्होंने अपने ऊपर डाल लिया था उससे उनको मुक्त कर देंगे। (क़ुरआन, सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–157)

और फिर यही हुआ कि आज संसार की एक तिहाई से अधिक जनसंख्या उन बेड़ियों से मुक्त हो चुकी है और धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों लोग इस्लाम धर्म को ग्रहण करते जाएँगे ये ज़ंजीरें टूटती चली जाएँगी।

इबराहीम (عليه السلام)

इबराहीम (عليه السلام) अल्लाह के महान पैग़म्बर थे। क़ुरआन में जिन रसूलों का वर्णन विस्तारपूर्वक आया है, उनमें इबराहीम मुख्य हैं। हज़रत इबराहीम (عليه السلام) और अन्तिम नबी हज़रत मुहम्मद (ﷺ) में काफ़ी समानता पाई जाती है। एक तो यह कि दोनों की जातियाँ मूर्ति-पूजा में पड़ गई थीं, जिसका दोनों ने समान रूप से घोर विरोध किया। दूसरे यह कि दोनों ने इस मार्ग में काफ़ी कष्ट सहे, यहाँ तक कि दोनों को ही अपना वतन त्यागना पड़ा। दूसरी ओर हम देखते हैं कि इबराहीम (عليه السلام) के वंश में बहुत सारे नबी आए। अन्तिम नबी हज़रत मुहम्मद (ﷺ) भी उन्हीं के वंश से थे।

क़ुरआन में उनके विषय में उल्लेख हुआ है। इबराहीम (عليه السلام) सबसे पहले अपने पिता को अल्लाह की उपासना करने की दावत देते हैं; और दूसरी ओर मूर्ति-पूजा की घोर निन्दा करते हैं –

«इस किताब में इबराहीम की शुभचर्चा करो। निस्संदेह वह एक सत्यवान नबी था। जब उसने अपने पिता से कहा, ''ऐ मेरे बाप, आप ऐसी वस्तुओं की पूजा क्यों कर रहे हैं जो न सुनें और न देखें। और न आपके कुछ काम आएँ। ऐ मेरे बाप, मेरे पास ऐसा ज्ञान आया है जो आपके पास नहीं आया। अतः आप मेरा अनुकरण कीजिए, मैं आपको सीधा मार्ग दिखाऊँगा। ऐ मेरे बाप, शैतान की पूजा मत कीजिए, शैतान तो रहमान (कृपाशाली अल्लाह) का अवज्ञाकारी है। ऐ मेरे बाप, मैं डरता हूँ कि कहीं आपको रहमान का अज़ाब न पकड़ ले और आप शैतान के साथी बनकर रह जाएँ।'' उसने कहा, ''ऐ इबराहीम! क्या तू मेरे उपास्यों से फिर गया है? यदि तू इससे न रुका तो मैं तुझपर पथराव कर दूँगा। तू मुझसे कुछ समय के लिए अलग हो जा।'' (इबराहीम ने) कहा, ''सलाम है आपको। मैं अपने रब से आपके लिए क्षमा की प्रार्थना करूँगा। निस्सन्देह वह मुझपर बहुत मेहरबान है। मैं आप लोगों को और उनको जिन्हें आप अल्लाह के अतिरिक्त पुकारते हैं, छोड़ता हूँ; और मैं अपने 'रब' को पुकारूँगा। आशा है कि मैं अपने 'रब' को पुकारकर अभागा नहीं रहूँगा।'' तो जब वह उन लोगों से और उनसे, जिन्हें वे अल्लाह के अतिरिक्त पूजते थे, अलग हो गया तो हमने उसे इसहाक़ और याक़ूब (जैसे पुत्र) प्रदान किए। और हर एक को हमने नबी बनाया। और उनको अपनी दयालुता से (बहुत कुछ) प्रदान किया। और उन्हें एक सच्ची एवं उच्च ख्याति प्रदान की।» (क़ुरआन, सूरा–19, मरयम, आयतें–41-50)

इबराहीम (عليه السلام) के पिता का नाम क़ुरआन में केवल एक स्थान पर आया है –

«और याद करो जब इबराहीम ने अपने पिता आज़र से कहा था, ''क्या तू मूर्तियों को इलाह (उपास्य) बना बैठा है? मैं तो देखता हूँ कि तू और तेरी जाति खुली गुमराही में

पड़े हुए हैं।'' और इसी तरह हमने इबराहीम को आकाशों और धरती के राज्य का अवलोकन कराया, ताकि वह विश्वास करनेवालों में हो जाए» (सूरा–6, अल-अनआम, आयतें–74-75)

हज़रत इबराहीम (ﷺ) ने अल्लाह की बनाई हुई निशानियों को देखकर अल्लाह को पहचान लिया। क्योंकि उन्होंने इन निशानियों को खुले दिल और दिमाग़ से देखा। आँखें बन्द करके अपनी जाति की तरह नहीं देखा। क़ुरआन में है –

«जब उसपर रात्रि छा गई तो उसने एक तारा देखा। उसने कहा, ''यह मेरा रब है।'' परन्तु जब वह डूब गया तो बोला, ''डूब जानेवाले से मैं प्रेम नहीं करता (अर्थात् उसको अल्लाह नहीं मानता)।'' फिर जब उसने चमकता हुआ चाँद देखा तो कहा, ''यह मेरा रब है।'' परन्तु जब वह भी डूब गया तो कहा, ''यदि मेरा रब मुझे मार्ग न दिखाए तो मैं भटके हुए लोगों में से हो जाऊँगा।'' फिर जब उसने चमकता हुआ सूर्य देखा तो कहने लगा, ''यह मेरा रब है। यह सबसे बड़ा है।'' फिर जब वह डूब गया तो कहा, ''ऐ मेरी जाति, मैं उनसे विरक्त हूँ जिन्हें तुम अल्लाह के साथ शरीक (सहभागी) ठहराते हो। मैंने तो हर ओर से कटकर अपना ध्यान उसकी ओर कर लिया है, जिसने आकाशों और धरती को पैदा किया। और मैं शिर्क करनेवालों में से नहीं हूँ।''» (सूरा–6, अल-अनआम, आयतें–77-79)

इबराहीम (ﷺ) के साथ उनकी जाति, जो मूर्तिपूजा करती थी, झगड़ पड़ी, क्योंकि उन्होंने अल्लाह के अतिरिक्त हर शक्ति का इनकार कर दिया और इस बात की दावत देने लगे कि पूज्य तो केवल अल्लाह ही है। क़ुरआन में है –

«उसकी जाति उससे झगड़ने लगी। उसने कहा, ''क्या तुम मुझसे अल्लाह के बारे में झगड़ते हो। उसने तो मुझे (सीधा) मार्ग दिखाया। और जिन्हें तुम उसका शरीक ठहराते हो मैं उनसे नहीं डरता। हाँ यदि मेरा 'रब' कुछ चाहे तो दूसरी बात है। मेरा 'रब' हर चीज़ का ज्ञान रखता है। फिर क्या तुम विचार नहीं करते।''» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–80)

इबराहीम (ﷺ) को अल्लाह ने ऐसी सूझ-बूझ दी थी कि वे अपनी जाति को भली-भाँति समझा सकते थे कि तुम लोग जो यह मूर्तिपूजा कर रहे हो, ग़लत है; क्योंकि ये मूर्तियाँ तुम्हें किसी प्रकार का लाभ नहीं पहुँचा सकतीं, बल्कि ये तो अपना भी बचाव नहीं कर सकतीं। क़ुरआन में है –

«हमने इबराहीम को पहले ही सूझ-बूझ प्रदान कर दी। और हम उसे भली-भाँति जानते थे। याद करो जब उसने अपनी जातिवालों और अपने पिता से कहा, ''ये मूर्तियाँ कैसी हैं जिनके साथ तुम चिपके बैठे हो?'' उन्होंने कहा, ''हमने अपने पूर्वजों को इनकी पूजा करते पाया है।'' उसने कहा, ''तुम और तुम्हारे पूर्वज भी स्पष्ट पथ-

भ्रष्टता में पड़े रहे।'' उन्होंने कहा, ''क्या तू हमारे पास सच्ची बात लेकर आया है या तू हँसी-खेल करनेवालों में है?'' उसने कहा, ''नहीं, बल्कि वास्तव में तुम्हारा रब आकाशों और धरती का रब है जिसने उन्हें पैदा किया और मैं इस बात का गवाह हूँ। और अल्लाह की क़सम जब तुम पीठ फेरकर चले जाओगे तो मैं तुम्हारी मूर्तियों के साथ एक चाल चलूँगा। अतएव उसने उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर दिया। लेकिन उनमें से बड़े को छोड़ दिया, ताकि वे उसकी तरफ़ पलटें। वे कहने लगे, ''हमारे देवताओं के साथ यह किसने किया? निश्चय ही वह कोई ज़ालिम है।'' लोगों ने कहा : हमने एक नव युवक को, जिसे इबराहीम कहा जाता है इनकी चर्चा करते सुना है।'' उन्होंने कहा, ''तो उसे ले आओ लोगों के सामने, ताकि वे देखें।'' उन्होंने कहा, ''ऐ इबराहीम, क्या तुमने हमारे देवताओं के साथ यह कर्म किया है?'' उस (इबराहीम) ने कहा, ''यह काम इस बड़े बुत ने किया होगा, यदि यह बोलता हो तो इससे पूछ लो।'' वे अपनी अन्तरात्मा की ओर पलटे और कहने लगे, ''वास्तव में ज़ालिम तो तुम्ही लोग हो।''» (क़ुरआन, सूरा–21, अल-अंबिया, आयत–51-64)

"फिलस्तीन में मस्जिदे इब्राहीम عليه السلام"

जब इबराहीम (عليه السلام) ने देखा कि उनकी जाति किसी प्रकार बुतों की पूजा नहीं छोड़ रही है तो अन्त में उन्होंने यह भी कह दिया –

«धिक्कार है तुमपर और उनपर जिनको तुम अल्लाह के अतिरिक्त पूजते हो, क्या तुम बुद्धि से काम नहीं लेते?» (क़ुरआन, सूरा–21, अल-अंबिया, आयत–67)

यह कहना था कि ज़ालिमों ने इबराहीम (عليه السلام) को आग में डाल दिया। मगर अल्लाह की कृपा से उनको आग ने कोई नुक़सान नहीं पहुँचाया, बल्कि वे कुशलतापूर्वक उससे बाहर आ गए। क़ुरआन में है-

«उन्होंने कहा, "डाल दो इसको आग में और अपने देवी-देवताओं के सहायक बन जाओ, अगर तुम्हें कुछ अच्छा करना है।" हमने कहा, "ऐ आग, ठंडी हो जा और इबराहीम के लिए सलामती बन जा।"» (क़ुरआन, सूरा–21, अल-अंम्बिया, आयतें–68-69)

उनको आग जला नहीं सकी बल्कि अल्लाह के हुक्म से ठंडी हो गई। इसी प्रकार क़ुरआन ने एक बादशाह के साथ इबराहीम (عليه السلام) की वार्तालाप का वर्णन किया है –

«क्या तुमने उसको नहीं देखा, जो इबराहीम से उसके रब के विषय में झगड़ पड़ा, क्योंकि अल्लाह ने उसे राज्य दे रखा था। जब इबराहीम ने कहा, "मेरा रब तो वह है जो जिलाता और मारता है।" वह कहने लगा, "मैं भी जिलाता और मारता हूँ।" इबराहीम ने कहा, "अल्लाह सूर्य को पूरब से निकालता है, तू उसे पश्चिम से निकाल। बस इस पर वह इनकारी हैरान रह गया। अल्लाह ज़ालिम लोगों को सीधा मार्ग नहीं दिखाता।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–258)

इस प्रकार क़ुरआन ने इबराहीम (عليه السلام) का वर्णन पूरी तफ़सील से किया है, क्योंकि यही कुछ उनके वंश के अन्तिम नबी मुहम्मद (ﷺ) के साथ होनेवाला था। इसलिए इबराहीम (عليه السلام) के वृत्तान्त में नबी मुहम्मद (ﷺ) से सम्बन्धित बहुत कुछ सामग्री मिलती है क्योंकि आप (ﷺ) की जाति भी मूर्तिपूजा में उसी प्रकार लगी हुई थी जिस प्रकार इबराहीम (عليه السلام) की जाति लगी हुई थी।

अब आइए इतिहास की रौशनी में भी इबराहीम (عليه السلام) के विषय में कुछ चर्चा करें। सबसे प्राचीन पुस्तक इस विषय में तौरात है। इससे पता चलता है कि इबराहीम (عليه السلام) इराक़ के शहर 'उर' में पैदा हुए। कुछ विद्वानों का विचार है कि इबराहीम (عليه السلام) 'उर' में नहीं, बल्कि शहर 'कोशा' में पैदा हुए। और ये दोनों शहर इराक़ ही में हैं। इसी प्रकार जो नई खोज हुई है उसकी रौशनी में कह सकते हैं कि इनकी पैदाइश उन्नीस सौ ईसा पूर्व हुई। अर्थात् आज से लगभग चार हज़ार वर्ष पूर्व वे पैदा हुए। उनकी जाति मूर्ति-पूजा और नक्षत्र-पूजा में लग गई थी। विशेषकर वह चाँद की पूजा करती थी जिसको नानार कहते थे। वे मानते थे कि चाँद (नानार) की एक पत्नी भी है जिसका नाम नन्जाल है। इबराहीम (عليه السلام) ने अपनी जाति को मूर्तिपूजा से मना किया और एक ईश्वर की उपासना की दावत दी। उस समय का बादशाह, जिसका नाम क़ुरआन और सहीह हदीस में नहीं आया है, नाराज़ हो गया और उनको आग में डाल दिया। लेकिन ईश्वर की कृपा से वे आग से सही-सलामत बाहर निकल आए।

लेकिन अब उनके लिए शहर उर में रहना दूभर हो गया। इसलिए वे अपनी पत्नी 'सारा' को, जो उनके ही चचा की पुत्री थीं, लेकर हारान, जो दमिश्क़ के निकट है, चले गए। वहाँ के लोग भी मूर्तिपूजा करते थे। लेकिन इनकी दावत से वहाँ का बादशाह मुसलमान अर्थात् ऐकेश्वरवादी हो गया। वहाँ उन्होंने अपने भतीजे 'लूत' को, जिनको भी अल्लाह ने नबी बना दिया था, छोड़ा और स्वयं अपनी पत्नी के संग फ़िलस्तीन चले गए। और वहाँ शहर 'शकम' में, जिसको आज 'नाबलुस' कहते हैं, निवास किया। बहुत दिनों तक वहाँ अल्लाह की तरफ़ लोगों को बुलाते रहे। और जब वहाँ सूखा पड़ गया तो वे अपनी पत्नी के साथ मिस्र चले गए। वहाँ का बादशाह बड़ा ज़ालिम था। वह ख़ूबसूरत महिलाओं को लोगों से छीन लेता था। सहीह बुख़ारी किताबुल-अंबिया (3358) में है कि उसने सारा का हरण कर लिया और अपने महल में ले गया। परन्तु जब उनके पास आया तो उसका हाथ रुक गया और उसमें हरकत बन्द हो गई। वह बहुत परेशान हुआ और सारा से प्रार्थना करने लगा कि आप ईश्वर से दुआ करें। सारा ने ऐसा ही किया। परन्तु वह ज़ालिम फिर पकड़ने के लिए बढ़ा, मगर फिर उसका हाथ रुक गया और हरकत बन्द हो गई। इस प्रकार तीन बार किया, अन्त में उसने सारा के साथ हाजरा को उनकी सेविका बनाकर भेज दिया। ये वास्तव में क़िब्ती राजा की बेटी थीं, जैसा कि 'इब्ने-हजर' ने लिखा है। बल्कि 'दबी शलूम' जो तौरात का भाष्यकार है, लिखता है कि, 'हाजरा मिस्र के राजा की बेटी थीं।' (देखें, अर्ज़ुल-क़ुरआन, पेज-280) इससे इस बात का खण्डन होता है कि हाजरा लौंडी थीं, जैसा कि यहूदी शास्त्रों में पाया जाता है।

और फिर उस समय की रीति के अनुसार इबराहीम (ﷺ) ने उनसे विवाह किया जिनसे इसमाईल पैदा हुए।

तौरात की किताब उत्पत्ति में है –

"और इबराहीम से हाजरा के एक पुत्र पैदा हुआ। और इबराहीम ने अपने बेटे का नाम, जो हाजरा से पैदा हुआ 'इसमाईल' रखा। और जब इबराहीम से हाजरा के इसमाईल पैदा हुआ तब इबराहीम छियासी वर्ष का था।" (16:15-16)

और ये वही इसमाईल हैं जो अबू अरब अर्थात अरबों के पितामह कहलाए, और इन्हीं की संतान से एक बहुत बड़ा वंश अरब में फैल गया। इन्हीं की सन्तति में अल्लाह के अन्तिम नबी मुहम्मद (ﷺ) पैदा हुए। इसमाईल (ﷺ) के चौदह वर्ष बाद इसहाक़, इबराहीम (ﷺ) की पत्नी सारा, से पैदा हुए। और उनकी सन्तान से बनी-इसराईल पैदा हुए जिसमें बहुत सारे नबी हुए। यहूदी इसलिए भी मुहम्मद (ﷺ) के शत्रु बन गए कि आप इसमाईल की संतान में से थे। और यहूदी उस नबी का इन्तिज़ार कर रहे थे जो इसहाक़ की संतान में से हो।

बाइबल में है कि इसमाईल की पैदाइश से सारा को बड़ा दुःख हुआ कि उसकी सौतन के यहाँ बेटा पैदा हुआ।

इब्राहीम अलैहिस्सलाम का कार्यक्षेत्र

कूसा से उर, हर्रान, फ़िलस्तीन
फ़िलस्तीन से मिस्र पहुंचना, वापसी
इब्राहीम, इस्माईल, हाजरा का सफ़र मक्का
इब्राहीम की मक्का से अल-ख़लील वापसी
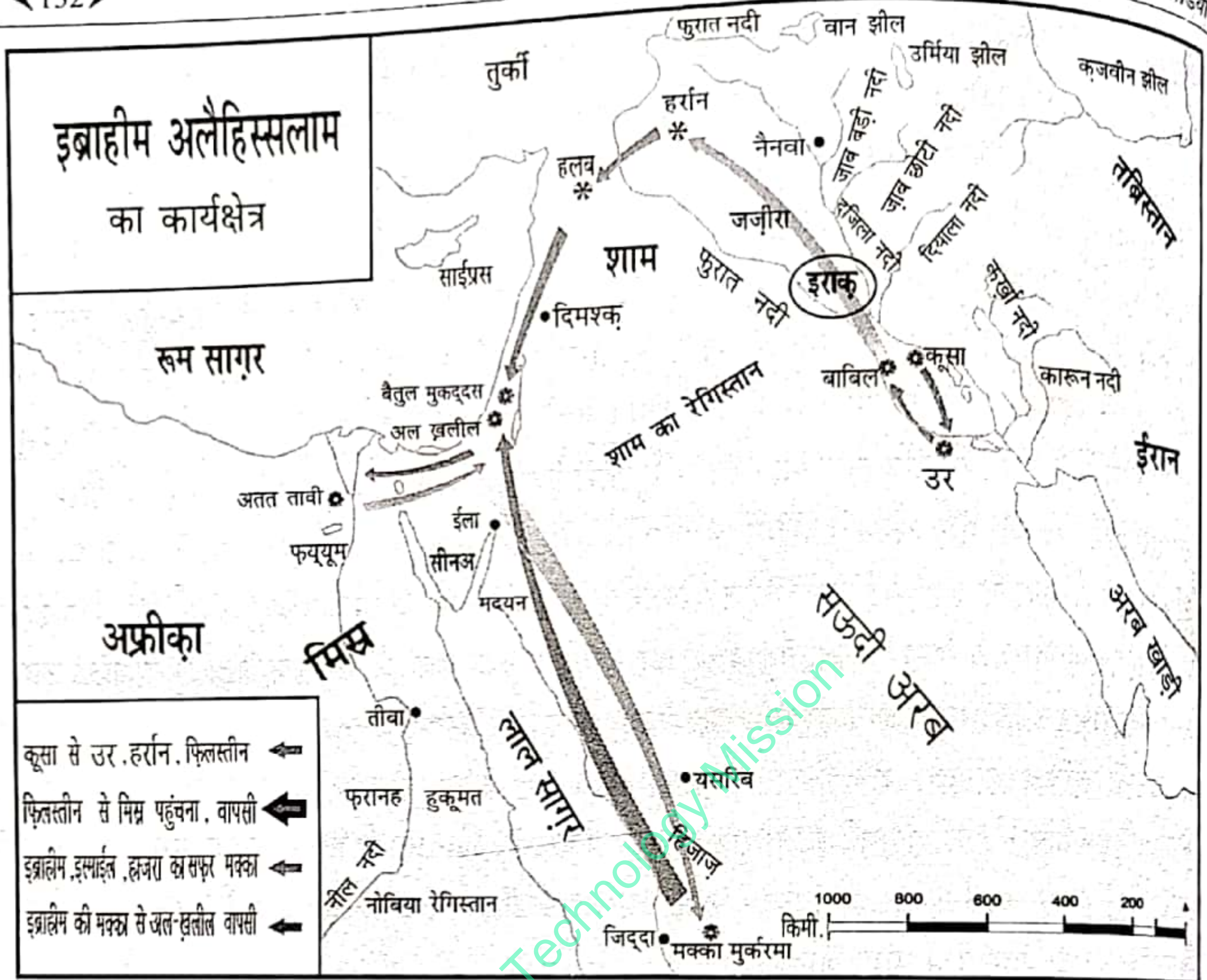
इसलिए सारा के कहने पर इबराहीम (ﷺ) अपने पुत्र इसमाईल और उनकी माँ हाजरा को लेकर फ़िलस्तीन से निकल खड़े हुए। (उत्पत्ति, 21:9-13)। इसके बाद तौरात यह नहीं बताती कि इबराहीम (ﷺ) हाजरा और उनके पुत्र को लेकर मक्का गए। हाँ, एक शब्द तौरात में आया है कि वे इसहाक़ को लेकर 'मोरिय्या' चले गए। (उत्पत्ति, 22:2)

शायद 'मोरिय्या' असल 'मरवा' पहाड़ है जो मक्का में है। चूँकि तौरात में बहुत सारी तबदीलियाँ हो गई हैं इसलिए यहाँ भी इसमाईल के स्थान पर इसहाक़ आ गया है। तौरात के विषय में विस्तृत जानकारी शब्द 'तौरात' में देखिए। किताब उत्पत्ति ही में एक स्थान पर है –

> "और ईश्वर उस बालक के साथ था। वह बड़ा हुआ और जंगलों और पहाड़ों में रहने लगा और तीर चलानेवाला बना। वह फ़ारान के पहाड़ों में रहता था और उसकी माँ ने उसके लिए मिस्र से एक स्त्री मंगवाई।" (उत्पत्ति, 21:20-21)

यहूदी और ईसाई विद्वान फ़ारान रेगिस्तान सीना को बताते हैं, परन्तु वे नहीं जानते कि मक्का का एक नाम फ़ारान भी है। और मक्का के एक पहाड़ को भी फ़ारान कहते हैं। इससे पता चला कि इबराहीम (ﷺ) अपने पुत्र इसमाईल को लेकर मक्का आए और उन्हें वहाँ छोड़ दिया इस विषय में क़ुरआन कहता है –

«ऐ रब ! मैंने एक ऐसी घाटी में जहाँ कृषि-योग्य भूमि नहीं अपनी सन्तान को तेरे प्रतिष्ठित घर (काबा) के निकट बसा दिया है। ताकि वे नमाज़ क़ायम करें। अतः तू लोगों के दिलों को उनकी ओर झुका दे और उन्हें फलों और पैदावार की आजीविका प्रदान कर, ताकि वे कृतज्ञ बनें।» (सूरा–14, इबराहीम, आयत–37)

सहीह बुख़ारी में है कि इबराहीम (ﷺ) हाजरा और उनके पुत्र इसमाईल को छोड़ कर जाने लगे, जबकि उस समय उस स्थान पर कोई मनुष्य नहीं था। हाजरा उनके पीछे-पीछे आने लगीं और पूछा कि हमें इस चटियल मैदान में छोड़कर आप कहाँ जा रहे हैं, यहाँ तो कोई मनुष्य भी नहीं है। परन्तु इबराहीम (ﷺ) ने उनकी ओर ज़रा भी नहीं देखा, वे आगे बढ़ते रहे। तब हाजरा ने पूछा, "क्या आपके 'रब' ने ऐसा करने का हुक्म दिया है ?" इबराहीम (ﷺ) ने कहा, "हाँ।" तब हाजरा ने कहा, "फिर तो हमारा 'रब' हमें नष्ट नहीं करेगा।" और आप अपने पुत्र इसमाईल के पास वापस आ गईं। (बुख़ारी : किताबुल-अंबिया, 3364)

फिर दोबारा हज़रत इबराहीम (ﷺ) उस समय मक्का वापस आए जब इसमाईल बड़े हो गए। आप दोनों ने मिलकर अल्लाह के पवित्र घर (काबा) को बनाया। क़ुरआन में है –

«जब इबराहीम और इसमाईल काबा की नींव उठा रहे थे। (और दुआ कर रहे थे) ऐ रब इसे हमारी ओर से स्वीकार कर ले। बेशक तू ही सुनने और जाननेवाला है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–127)

सहीह बुख़ारी में इसका वर्णन इस प्रकार है कि इसमाईल (ﷺ) पत्थर लाकर देते थे और इबराहीम (ﷺ) दीवार बना रहे थे। जब काबा की दीवार ऊँची हो गई तो इसमाईल (ﷺ) एक पत्थर लेकर आए, इबराहीम उसपर खड़े होकर दीवार उठाने लगे और उनके पैर का उसपर निशान बन गया। यह पत्थर आज भी काबा में रखा हुआ है जिसको मक़ामे-इबराहीम कहते हैं।

इसी की ओर क़ुरआन संकेत करते हुए कहता है –

«हमने इस घर (काबा) को लोगों के लिए केन्द्र और शान्ति की जगह बनाया और हुक्म दिया कि मक़ामे- इबराहीम को नमाज़ की जगह बनाओ।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–125)

और एक दूसरे स्थान पर यूँ आया है –

«लोगों के लिए जो घर (इबादत के लिए) सबसे पहले बनाया गया वह यही है जो मक्का में है। बरकतवाला और दुनियावालों को राह दिखानेवाला। इसमें खुली हुई निशानियाँ हैं। इसमें मक़ामे-इबराहीम है। और जो इस घर में प्रवेश कर गया वह शान्ति में रहेगा।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयतें–96-97)
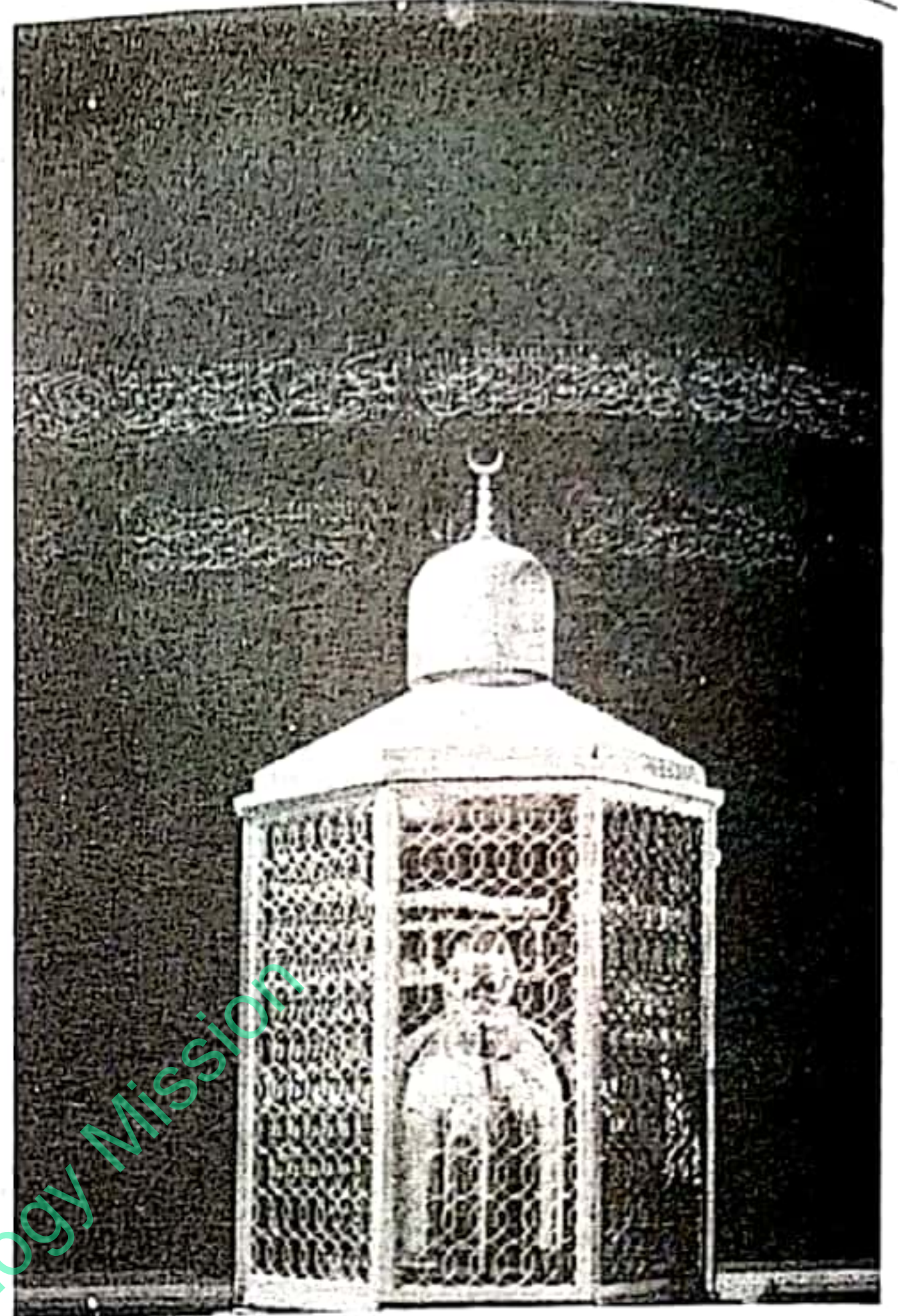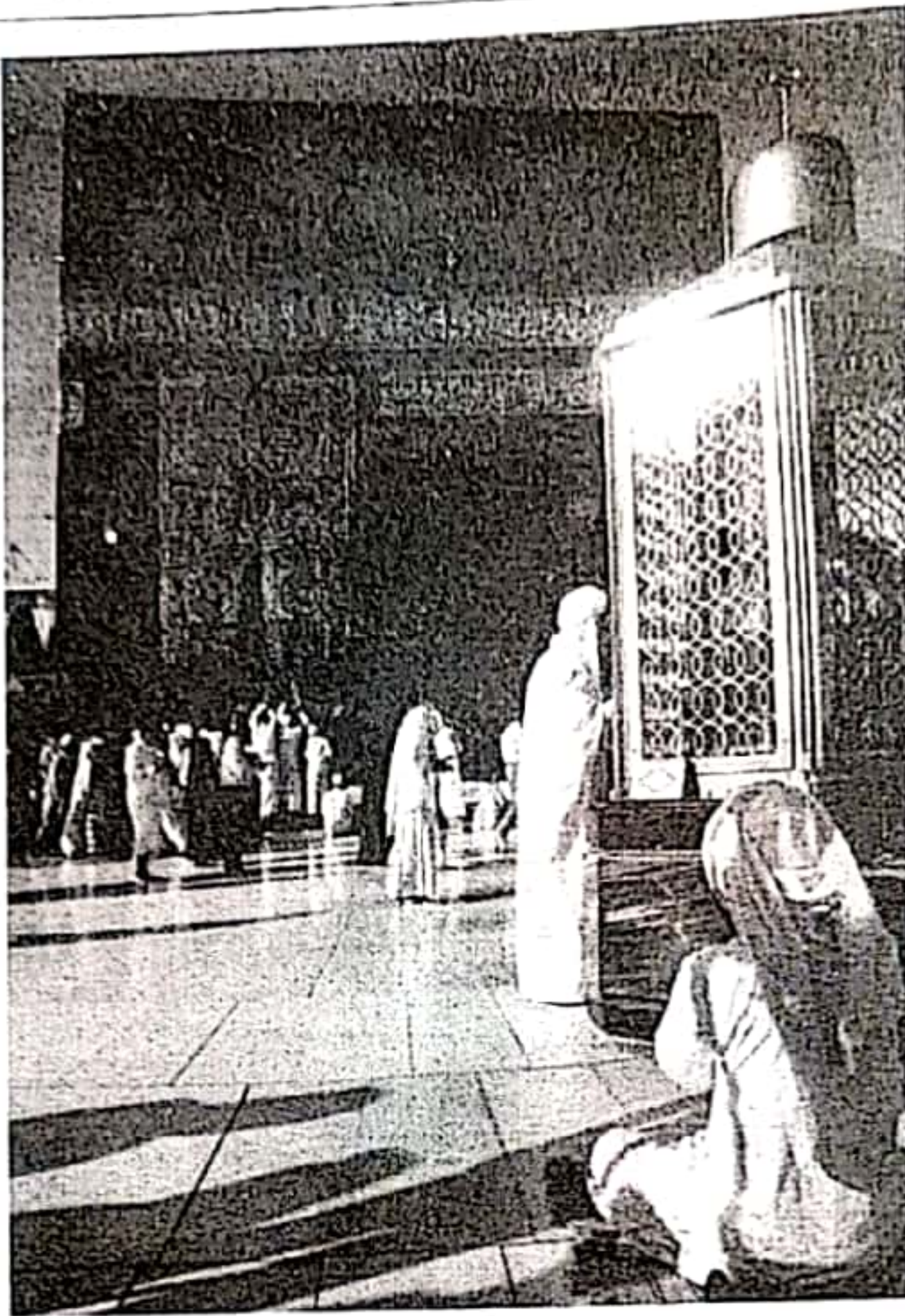
"मुक़ामे इब्राहीम (عليه السلام)"

अल्लाह ने इबराहीम (عليه السلام) की एक और परीक्षा ली। वह यह कि उनको फिर अल्लाह का हुक्म हुआ कि अपने एकलौते पुत्र इसमाईल को अल्लाह की राह में क़ुरबान कर दो। क़ुरआन में इसका वर्णन इस प्रकार हुआ है –

«ऐ रब, मुझे नेकों में से एक पुत्र दे। फिर हमने उनको एक बड़े सहनशील लड़के की ख़ुशख़बरी दी। फिर जब लड़का (इसमाईल) उनके साथ चलने-फिरने लगा तो इबराहीम ने कहा, "ऐ पुत्र, मैं स्वप्न में देखता हूँ कि मैं तुझको क़ुरबान कर रहा हूँ। फिर तू देख तेरा क्या विचार है।" पुत्र ने कहा, "ऐ मेरे बाप, जो आपको हुक्म हुआ है आप वह कर गुज़रें। अल्लाह ने चाहा तो मुझे सहन करनेवाला पाएँगे। फिर जब दोनों (बाप और बेटे) ने अल्लाह का हुक्म माना और उसने बेटे को माथे के बल गिराया (ताकि क़ुरबान करे) तो हमने उसे पुकारा कि ऐ इबराहीम, तूने स्वप्न को सच कर दिखाया, (देखो) नेक लोगों को हम ऐसा ही बदला देते हैं। बेशक यह तुम्हारे लिए खुली परीक्षा थी।» (सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयतें–100-106)

इबराहीम (عليه السلام) अपने पुत्र को क़ुरबान इसलिए करने के लिए तैयार हो गए कि उन्होंने एक स्वप्न देखा था, जिसमें उन्होंने देखा था कि वे अपने बेटे को क़ुरबान कर रहे हैं। क्योंकि नबी और रसूल कभी झूठा स्वप्न नहीं देखते। इसलिए यह इस बात का संकेत था कि वे अपने पुत्र को अल्लाह के

लिए क़ुरबान कर दें। इस क़ुरबानी के द्वारा इबराहीम (ﷺ) को एक ऐसी परीक्षा में डाला गया कि सोचकर ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उनसे कहा गया कि अपने एकलौते बेटे इसमाईल को अल्लाह के मार्ग में कुरबान कर दो। इबराहीम तुरन्त तैयार हो गए और उनके पुत्र ने भी कोई रुकावट नहीं डाली। जब अल्लाह ने देख लिया कि इबराहीम इस परीक्षा में सफल हैं तो बेटे के बदले पृथ्वी पर एक भेड़ क़ुरबान किया हुआ मिला और अल्लाह ने इसमाईल को बचा लिया। मुसलमान इबराहीम की याद में बक़रईद में क़ुरबानी करते हैं।

यहाँ एक बात और स्पष्ट करना ज़रूरी है कि तैरात में जहाँ बेटे की क़ुरबानी का वर्णन हुआ है वहाँ इसहाक़ का नाम आया है। जो इस तरह है –

"इन बातों के बाद यह हुआ कि अल्लाह ने इबराहीम की परीक्षा ली और उससे कहा, "ऐ इबराहीम!" उसने कहा, "मैं हाज़िर हूँ।" तब उसने कहा, "तू अपने पुत्र इसहाक़ को जो तेरा इकलौता है और जिसे तू प्यार करता है साथ लेकर मोरिय्या के देश में जा और वहाँ उसे पहाड़ों में से पहाड़ पर जो तुझे बताऊँगा क़ुरबानी के तौर पर चढ़ा।" (उत्पत्ति, 22:1-2)

इसमें बिलकुल स्पष्ट हो रहा है कि तौरात लिखनेवालों ने यहाँ इसहाक़ अपनी ओर से बढ़ाया है। क्योंकि इकलौते पुत्र जिनको इबराहीम ने प्यार किया, वे तो इसमाईल थे और इसहाक़ चौदह वर्ष बाद में पैदा हुए तो वे इकलौते कैसे हुए ? इससे पता चलता है कि क़ुरबानी की घटना इसहाक़ के पैदा होने से पहले की है।

इससे यह भी पता चलता है कि इबराहीम (ﷺ) दो बार मक्का आए, बल्कि कुछ किताबों में तो यह भी आया है कि वे हर माह अपनी पत्नी हाजरा और पुत्र इसमाईल को देखने बुराक़ पर बैठकर मक्का आया करते थे जैसा की फ़ाकिही, एक प्रसिद्ध इतिहासकार जिसका देहान्त 280 हिजरी में हुआ, ने अपनी किताब 'तारीख़े-मक्का' में वर्णन किया है। जिसकी अस्नाद हसन हैं। (देखिए : फ़तहुल-बारी, 6:404)

फिर इबराहीम (ﷺ) की पत्नी सारा का देहान्त हो गया और उन्होंने उनको 'हबरून' नामक स्थान पर मकफ़ीला के ग़ार में, जिसको उन्होंने 'हत्ति' से ख़रीदा था, दफ़न कर दिया। उसके पश्चात् उन्होंने 'कतूरा' नामक औरत से विवाह किया, जिससे आपके छः पुत्र हुए। (देखिए, उत्पत्ति 25:1-5) और एक सौ पचहत्तर वर्ष की उम्र में इबराहीम (ﷺ) का भी देहान्त हो गया और बैतुल-मक़दिस में उनको दफ़न कर दिया गया।

तौरात में है कि जब इबराहीम एक सौ पचहत्तर (175) वर्ष का हुआ और उसका देहान्त हो गया, तो उसके पुत्र इसहाक़ और इसमाईल ने उसे मकफ़ीला के ग़ार में, जो हबरून में है, दफ़न किया। (उत्पत्ति 25:8-9) और हबरून बैतुल- मक़दिस का ही एक शहर है, जहाँ आज भी इबराहीम (ﷺ) और उनके परिवार की क़ब्र बताई जाती है। मगर विद्वानों का विचार है कि इस समय केवल नबी (ﷺ)

की क़ब्र को विश्वास के साथ कह सकते हैं कि वह मदीना में है और किसी नबी की क़ब्र को विश्वास से नहीं कह सकते कि यह फलाँ नबी की क़ब्र है। इबराहीम (ﷺ) की क़ब्र के विषय में मतभेद है मगर सही यही है कि यह उन्हीं की क़ब्र है। (देखिए: फ़तावा शैख़ुल-इस्लाम, 27:445)

इसमाईल (ﷺ)

इसमाईल का अर्थ है 'अल्लाह ने सुन लिया'। इसमाईल इबराहीम (ﷺ) के बड़े पुत्र थे। जब इबराहीम (ﷺ) छियासी वर्ष के हो गए, किन्तु उनके यहाँ कोई सन्तान नहीं हुई तो उन्होंने अल्लाह से दुआ (प्रार्थना) की, जिसको अल्लाह ने सुन लिया और उनको एक पुत्र दिया, इसी कारण उन्होंने अपने इस पुत्र का नाम इसमाईल रखा। ऐसा माना जाता है कि इसमाईल का जन्म 2248 ईसा पूर्व हबरून नामक शहर के निकट हुआ था। इसमाईल के चौदह-पन्द्रह वर्ष पश्चात् इबराहीम (ﷺ) का दूसरा पुत्र हुआ, उसका नाम इसहाक़ रखा, जिसपर इबराहीम (ﷺ) अल्लाह की प्रशंसा करते हुए कहते हैं–

«सारी प्रशंसा उस एक अल्लाह की है, जिसने मुझे बड़ी आयु में इसमाईल और इसहाक़ दिए। निस्सन्देह मेरा रब दुआ का सुननेवाला है।» (क़ुरआन, सूरा–14, इबराहीम, आयत–39)

एक दूसरे स्थान पर इनका वर्णन यूँ आया है –

«''ऐ मेरे रब! मुझे कोई नेक सन्तान प्रदान कर।'' तो हमने उसे एक सहनशील पुत्र की शुभ सूचना दी।» (क़ुरआन, सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयतें–100-102)

ये सहनशील पुत्र इसमाईल ही थे। क़ुरआन में बताया गया है कि इबराहीम (ﷺ) को बहुत-सी आज़माइशों से गुज़रना पड़ा। इबराहीम (ﷺ) एक बार अपनी पत्नी हाजरा और उनके पुत्र इसमाईल को लेकर हबरून से निकल पड़े और उन दोनों को अरब के रेगिस्तानी इलाक़े मक्का में छोड़कर जाने लगे। हाजरा ने पूछा, ''ऐ इबराहीम! तुम हमें यहाँ छोड़कर कहाँ जा रहे हो?'' परन्तु उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। फिर हाजरा ने पूछा, ''क्या अल्लाह का यही हुक्म है।'' तब उन्होंने 'हाँ' में जवाब दिया। इसपर हाजरा ने कहा, ''फिर तो हमारा रब हमें नष्ट नहीं करेगा।''

यहाँ से वापस चलते समय इब्राहीम (ﷺ) ने कहा–

«हमारे रब! मैंने अपनी संतान के कुछ लोगों को एक ऐसी घाटी में बसाया है, जो खेती के योग्य नहीं है, तेरे पवित्र घर (काबा) के पास। हमारे रब! ताकि वे नमाज़ क़ायम करें, तो तू लोगों के दिलों को उनकी ओर झुका दे और उनको रोज़ी प्रदान कर, ताकि वे कृतज्ञता दिखलाएँ।» (क़ुरआन, सूरा–14, इबराहीम, आयत–37)

फिर एक समय वह भी आया जब हाजरा के पास जो मशक में पानी था समाप्त हो गया और उनका नन्हा बालक पानी के लिए तड़पने लगा। माँ से यह देखा नहीं गया और वह उठ खड़ी हुईं, ताकि पता लगाए कि यहाँ आस-पास में पानी का कोई स्रोत है या नहीं। सबसे निकट पहाड़ी सफ़ा थी। वे उसपर चढ़ गईं, मगर वहाँ न तो कोई मनुष्य दिखाई दिया और न ही पानी का कोई स्रोत मिला। फिर नीचे वादी में उतर गईं और भागती हुई दूसरी पहाड़ी, जिसका नाम मरवा है, पर चढ़ गईं, ताकि पानी का कोई स्रोत मिले। इस प्रकार उन्होंने सफ़ा और मरवा के सात चक्कर लगाए, परन्तु उन्हें पानी का कोई स्रोत दिखाई नहीं दिया। (उनके इन सात चक्करों के लगाने की याद में मुसलमान हज या उमरा करते समय सफ़ा और मरवा के सात चक्कर लगाते हैं।) फिर जब वे मरवा के निकट पहुँचीं तो उन्होंने एक आवाज़ सुनी जो किसी फ़रिश्ते की थी। उसने अपने पाँवों तथा परों से ज़मीन खोदी जिससे वहाँ पानी निकल आया, जिसको 'ज़मज़म' कहते हैं। आज तक यह पानी उसी स्थान पर निकलता चला जा रहा है। और इतना निकलता है कि बीस लाख हाजी उसे पीते हैं, इस्तेमाल करते हैं और अपने देशों को भी ले जाते हैं, मगर वह समाप्त नहीं होता। संसार चकित है कि इस रेगिस्तान में यह स्रोत कहाँ से आ रहा है।

इस प्रकार हाजरा और उनका पुत्र इसमाईल मक्का में काबा के निकट रहने लगे। फिर जुरहम नामी यमन का कबीला, इधर निकल आया। जब देखा कि इस घाटी में पानी पाया जाता है तो उन्होंने इसमाईल की माँ हाजरा से वहाँ रहने की इच्छा प्रकट की, जिसको हाजरा ने मान लिया। जब इसमाईल जवान हो गए तो जुरहम ही के क़बीले की एक कन्या से विवाह कर लिया। फिर इसमाईल की माँ हाजरा का देहान्त हो गया। उनको मक्का ही में दफ़न कर दिया गया। कुछ लोगों का विचार है कि उनको और उनके बेटे इसमाईल को काबा में हिज्र के मक़ाम पर दफ़न किया गया है। परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं है। एक बार इबराहीम मक्का आए, मगर इसमाईल (عليه السلام) घर पर नहीं थे। उन्होंने उनकी पत्नी से पूछा, "तुम लोग कैसे हो?" उसने कहा, "बहुत तकलीफ़ में हैं।" इबराहीम (عليه السلام) ने कहा, "जब इसमाईल आए तो उसको मेरा सलाम कहना और यह भी कह देना कि अपने दरवाज़े की चौखट बदल दे।" इसमाईल को उनकी पत्नी ने जब यह बात बताई तो वे समझ गए कि वे मेरे पिता इबराहीम थे और दरवाज़े की चौखट बदलने से उनका अभिप्राय यह था कि मैं अपनी पत्नी को तलाक़ दे दूँ। इसमाईल (عليه السلام) ने अपनी पत्नी को तलाक़ दे दी और 'जुरहम' ही की एक दूसरी स्त्री से विवाह कर लिया। कुछ समय पश्चात् इबराहीम (عليه السلام) दोबारा मक्का आए और इसमाईल की पत्नी से पूछा, "तुम लोग कैसे हो?" उसने जवाब दिया, "हम बड़े आराम से हैं, सारी प्रशंसाएँ अल्लाह के लिए हैं। उन्होंने पूछा, "तुम लोग क्या खाते हो?" जवाब दिया, "मांस।" पूछा, "क्या पीते हो?" जवाब दिया, "पानी।" इबराहीम ने मांस और पानी की दुआ की। यही कारण है कि मक्का में बसनेवाले प्रत्येक मनुष्य को मांस और पानी अवश्य मिलता है।

फिर इबराहीम ने कहा, "जब तुम्हारा पति आए तो उसको मेरा सलाम कहना और यह भी कह देना कि अपने दरवाज़े की चौखट को बाक़ी रखे।" इसमाईल के आने पर उनकी पत्नी ने यह बात उनसे बताई तो उन्होंने कहा, "वे मेरे पिता थे, और चौखट तुम हो। उन्होंने मुझे हुक्म दिया है कि मैं तुम्हें अपने पास रखूँ।" फिर इबराहीम व इसमाईल ने मिलकर अल्लाह का घर बनाया। (देखिए: सहीह बुख़ारी, किताबुल अंबिया: 3364)

इससे पता चलता है कि इसमाईल की दोनों पत्नियाँ जुरह्म क़बीले की थीं और बाइबल का यह कहना कि हाजरा ने इसमाईल के लिए मिस्र से स्त्री मंगाई थी सत्य नहीं लगता, और वह इसलिए भी कि तबरी इत्यादि इतिहासकारों ने इसमाईल के जो बारह पुत्र बताए हैं उनकी माँ सैयदह मज़ाज़-बिन-अम्र की पुत्री थीं, जो जुरहम वंश से थीं। अरब इसमाईल के पुत्र नाबत तथा क़ैदर के वंश से हैं। नबी मुहम्मद (ﷺ) इसमाईल ही की संतान में से थे। तभी तो उनको उम्मी कहा गया है—अर्थात् आप बनी-इसराईल में से नहीं थे। और यहूदी अपने अतिरिक्त सभी जातियों को उम्मी कहा करते थे। (देखिए: तारीख़ तबरी, 2:314)

अल्लाह ने इसमाईल (عليه السلام) को भी नबी बनाया। (क़ुरआन, सूरा–19, मरयम, आयत–54)

उनको अमालीक़ और यमनवालों की ओर भेजा। अमालीक़ का निवास स्थान हिजाज़ से लेकर सीना और शाम तक फैला हुआ था।

यह भी कोई अरबी क़बीला था, परन्तु इसके मूल का सही पता नहीं चल सका।

बाइबल में है–

"ईसू के पुत्र अलीक़ाज़ की पत्नी तमना से अमालीक़ पैदा हुए।" (उत्पत्ति, 36:12)

कहते हैं कि जब इसमाईल एक सौ सैंतालीस वर्ष के हुए तो उनका देहान्त हो गया और मक्का ही में अपनी माता हाजरा के निकट दफ़न कर दिए गए। यह कहना कि दोनों काबा शरीफ़ में हिजर के पास दफ़न हैं, किसी सहीह हदीस से सिद्ध नहीं होता। यह बात केवल इतिहासकारों, जैसे तबरी तथा इब्ने-कसीर इत्यादि ने लिखी है।

इसहाक़ (عليه السلام)

इसहाक़ (عليه السلام) इबराहीम (عليه السلام) के दूसरे पुत्र थे। क़ुरआन के अनुसार इनकी पैदाइश की अल्लाह ने शुभ सूचना इस प्रकार दी –

«(इबराहीम को) हमने उसे इसहाक़ और इसहाक़ के बाद याक़ूब की शुभ सूचना दी। उसकी पत्नी बोली, "हाय मेरा अभाग्य! क्या मेरे सन्तान होगी, जबकि मैं बूढ़ी हो चुकी हूँ और मेरे पति भी बूढ़े हैं? यह तो बड़े आश्चर्य की बात है।" वे (अल्लाह के

फ़रिश्ते) बोले, ''क्या अल्लाह के आदेश पर आश्चर्य करती हो? ऐ इबराहीम के घरवालो, तुमपर तो अल्लाह की दयालुता और उसकी बरकतें हैं। निस्सन्देह वह प्रशंसा का अधिकारी और गौरववाला है।''» (सूरा–11, हूद, आयतें–71-73)

इबराहीम (عليه السلام) की दूसरी पत्नी सारा को इसलिए आश्चर्य हुआ कि वे बांझ थीं और उनकी आयु नव्वे वर्ष तथा उनके पति की आयु सौ वर्ष हो चुकी थी। इसलिए जब उनको संतान होने की शुभ-सूचना दी गई तो वे आश्चर्य में पड़ गईं। एक और बात यह भी है कि इस आयु में सन्तान पैदा करने से महिलाओं को एक प्रकार से शर्म आती है कि दूसरी महिलाएँ क्या कहेंगी! इस कारण वे अपना गाल पीटने लगीं।

इसहाक़ (عليه السلام) को भी अल्लाह ने नुबुवत प्रदान की। क़ुरआन में इसको इस प्रकार बयान किया गया है —

«हमने उसे इसहाक़ की शुभसूचना दी कि वह नबी और नेक लोगों में से होगा।» (सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयत 112)

इसहाक़ अलैहिस्सलाम का क्षेत्र
(अल-ख़लील से फ़द्दान आराम तक की यात्रा)
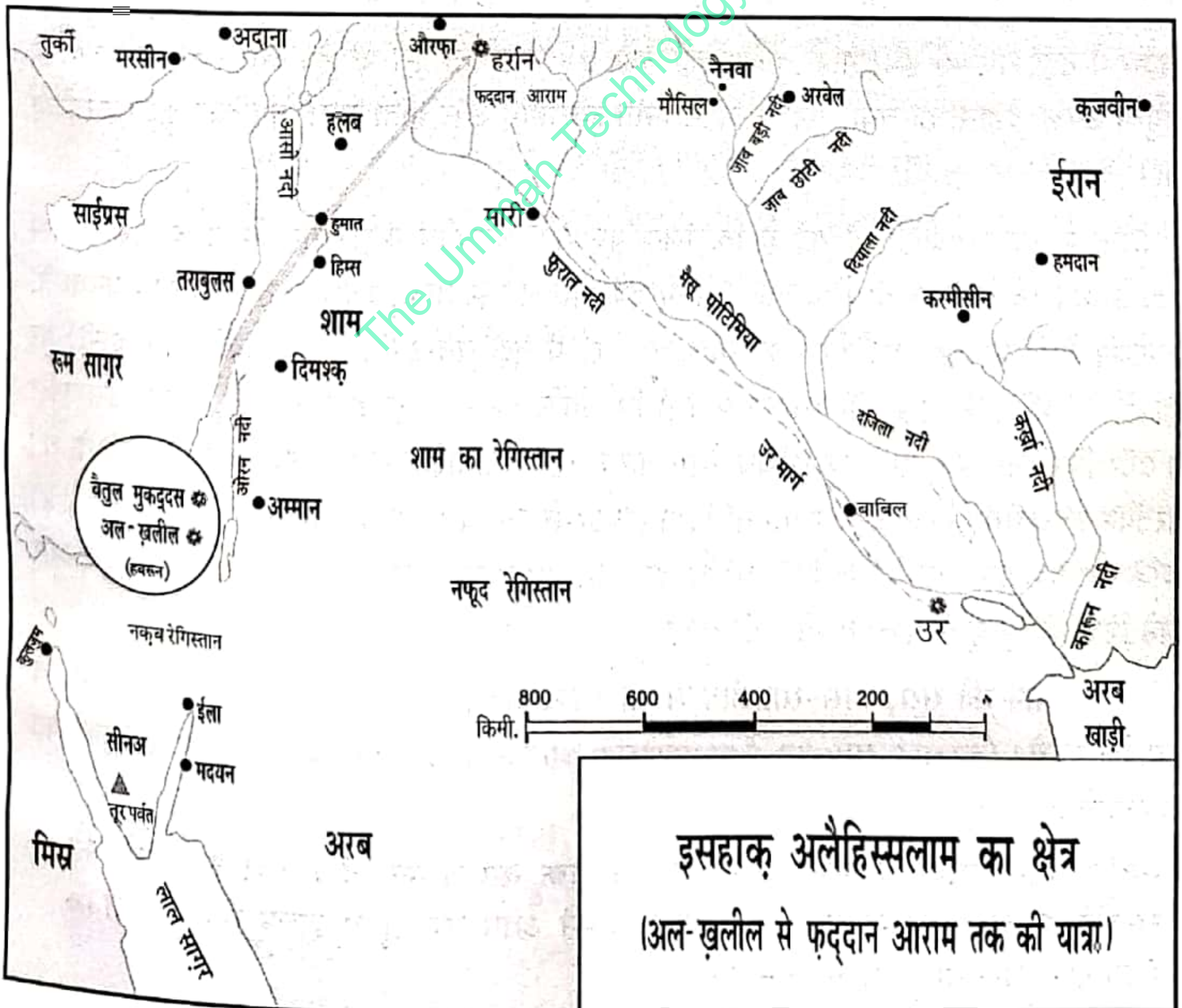
जब इसहाक़ (عليه السلام) सैंतीस वर्ष के हुए तो उनकी माता सारा का देहान्त हो गया। उनको इबराहीम (عليه السلام) ने 'मकफ़ेला' वाली भूमि की गुफा में दफ़न कर दिया (देखें उत्पत्ति, 23:19)। यह हबरून में है। अब इसको अल-ख़लील के नाम से जाना जाता है। यह स्थान बैतुल-मक़दिस से 19 तथा बैतुल-लहम से 13 मील दूर है।

इसहाक़ (عليه السلام) सन् 2235 ईसा पूर्व हबरून (Hebron) नामक शहर में पैदा हुए। जब वे चालीस वर्ष के हो गए, तब इबराहीम (عليه السلام) ने अपनी जाति हारान से उनके लिए एक पत्नी मंगवाई। (उत्पत्ति, 24:4) विवाह के बीस वर्ष पश्चात् उनके यहाँ जुड़वाँ बालक पैदा हुए। एक का नाम 'एसाव' और दूसरे का 'याक़ूब' रखा गया। (उत्पत्ति, 25:21-26) और जब आपकी आयु पचहत्तर वर्ष की हो गई तो उनके पिता इबराहीम (عليه السلام) का देहान्त हो गया। उन्होंने इबराहीम को अपनी माता 'सारा' के निकट दफ़न कर दिया। जब देश में सूखा पड़ा तो वे शहर गरार चले गए। वहाँ के बादशाह अबीमेलेक ने उनको बहुत-से ऊँट और बकरियाँ दीं। उन्होंने उसके लिए दुआ की।

इसहाक़ (عليه السلام) के दूसरे पुत्र याक़ूब (عليه السلام) को इसराईल भी कहते हैं और उनकी सन्तान से जो जाति फैली उसे 'बनी-इसराईल' कहते हैं। फिर शहर गरार से निकलकर वे अपनी संतान के संग बीर सबआ में ठहर गए जो हबरून से दक्षिण की ओर 28 मील की दूरी पर है। और वहीं 180 वर्ष की आयु में उनका देहान्त हो गया, उनको अपने पिता इबराहीम और माता सारा के निकट दफ़न कर दिया गया।

तौरात में यह तबदीली हो गई है कि जिस पुत्र को इबराहीम ने क़ुरबान किया था उसका नाम इसहाक़ था। स्वयं तौरात ही में है कि "अपने इकलौते बेटे इसहाक़, जिसको तू बेहद प्यार करता है, को लेकर मोरिय्या देश जा और एक पहाड़ पर, जो मैं तुझे बताऊँगा, उसे होमबलि (क़ुरबानी) पर चढ़ा।" (उत्पत्ति, 22:2) और सबको पता है कि उनके इकलौते पुत्र इसहाक़ नहीं, बल्कि इसमाईल थे। और फिर जिस पुत्र को आप अधिक प्यार करते थे, वे इसमाईल ही थे। क्योंकि वे पहलौठी के थे। और फिर इबराहीम के रब ने वचन भी तो दिया कि इससे एक बड़ी जाति बनाऊँगा। (उत्पत्ति, 21:18) जबकि इसहाक़ इकलौते पुत्र नहीं थे, बल्कि इकलौते इसमाईल थे जो इसहाक़ से पहले पैदा हुए और अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् भी जीवित रहे।

फिर क़ुरआन की सूरा, अस-साफ़्फ़ात से भी स्पष्ट होता है कि जिनको क़ुरबान किया गया, वे इसमाईल ही थे। (क़ुरआन, सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयत– 101-111) और फिर क़ुरआन दोनों का वर्णन करते हुए कहता है –

«और हमने उसको (इसमाईल) और इसहाक़ को बरकत दी। और उन दोनों की सन्तति में कोई उत्तमकार है और कोई अपने आप पर खुला ज़ुल्म करने वाला।» (सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयत–113)

इसमाईल (عليه السلام) से अरब जाति पैदा हुई और इसहाक़ से बनी-इसराईल, जो इनके पुत्र याक़ूब की ओर मनसूब की जाती है। और फिर याक़ूब से बारह पुत्र पैदा हुए जिनके नाम ये हैं –

(1) रूबेन (2) शिमौन (3) लेवी (4) यहूदा (5) इस्साकर (6) जुबलून (लिया से) (7) यूसुफ़ (8) बिनयामीन (राहेल से) (9) दान (10) नप्ताली (राहेल की दासी बिल्हा से) (11) गाद (12) आशेर (लिया की दासी बिल्हा से) (देखिए: उत्पत्ति, 25:13-14)

फिर इनसे बनी-इसराईल के बारह क़बीले बने, जिनका वर्णन तौरात में बार बार आता है।

इबलीस

यह शैतान का उपनाम है, जो यूनानी शब्द 'दियाबूलीस' से बना है, जिसका अर्थ है – शत्रु, शैतान तथा चुग़ली करनेवाला। इसी लिए 'दियाबूलीस' को बाइबल के अरबी अनुवाद में 'इब्लीस' कहा गया है। और कुछ स्थानों पर 'शैतान' कहा गया है। (देखिए: क़ामूस किताब मुक़द्दस, पृ. 15) कुछ विद्वानों का विचार है कि इबलीस शब्द 'बलस' से बना है, जिसका अर्थ है – निराश होना। क्योंकि क़ुरआन में शब्द 'बलस' एक से अधिक स्थान पर इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। (देखें: क़ुरआन, सूरा–30, अर-रूम, आयत–12; सूरा–6, अल-अनआम, आयत–44) लेकिन अरबी भाषा के प्रसिद्ध विद्वान 'जवालीक़ी' ने इसका खंडन किया है। उनका कहना है कि अगर यह अरबी भाषा का शब्द होता तो अरबी नियम के अनुसार ऐराब (मात्राएँ) ग्रहण करता जैसे किसी व्यक्ति का नाम 'इख़्रीत' तथा 'इज़्फ़ील' रखना हो तो ऐराब अरबी के अनुसार लगाए जाते हैं। (देखिए: 'अल-मुअर्रब', पृ. 122, न. क्रम-26) उसको इबलीस की संज्ञा कब मिली? इसका उत्तर यह है कि अगर हम इस संज्ञा को यूनानी मान लें तो हो सकता है कि यह संज्ञा पुरानी हो, परन्तु अगर अरबी भाषा का शब्द मानें और उसे बलस से बना हुआ स्वीकार करें, तो यह मानना पड़ेगा कि यह संज्ञा उसको उस समय मिली जब उसने आदम को सजदा करने से इन्कार कर दिया, क्योंकि उसके बाद ही तो वह अल्लाह की कृपा से दूर किया गया। इसकी पुष्टि इब्ने-अब्बास के इस कथन से होती है कि उसका वास्तविक नाम 'अज़ाज़ील' था, सजदे से इनकार के पश्चात् उसे 'इबलीस' कहा जाने लगा। इसका इब्ने-जरीर तबरी इत्यादि ने क़ुरआन की अपनी व्याख्या में वर्णन किया है।

सबसे पहले इबलीस का वर्णन क़ुरआन में इस प्रकार आया है –

«याद करो जब हमने 'फ़रिश्तों' से कहा, "आदम के आगे झुक जाओ, तो 'इब्लीस' के अतिरिक्त सब झुक गए। उसने इनकार कर दिया और घमण्डी हो गया जिसके कारण वह विधर्मी हो रहा।» (सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-34)

इस आयत के अनुवाद में कुछ लोगों से ग़लती हो गई है। उन्होंने «كَانَ مِنَ الْكَافِرِيْنَ» का अनुवाद **«वह इस्लाम विरोधियों में से था»** कर दिया, लेकिन यहाँ «كَانَ مِنَ الْكَافِرِيْنَ» का अर्थ है «صَارَ مِنَ الْكَافِرِيْنَ» अर्थात् जिसके कारण वह विधर्मी बन गया। क़ुरआन में इस प्रकार की और भी आयतें हैं जिनका अर्थ वही है जैसा हमने बताया है। उदाहरण के लिए देखिए सूरा–29, अनकबूत, आयत–32।

«हम उसे और उसके घरवालों को बचा लेंगे, सिवाए उसकी बीवी के जो पीछे रह जानेवालों में हो गई।»

इसी प्रकार सूरा–56, अल-वाक़िया, आयत–6 में है –

«फिर वे ग़ुबार बनकर उड़नेवाले हो जाएँगे।»

इसी प्रकार सूरा–11, हूद, आयत–43 में है –

«उसने कहा, "मैं किसी पहाड़ की शरण ले लेता हूँ, वह मुझे पानी से बचा लेगा।" (नूह ने) कहा, "आज अल्लाह के आदेश (फ़ैसले) से कोई बचानेवाला नहीं, परन्तु उसको जिसपर वह दया करे। इतने में लहर दोनों के बीच आ गई और वह भी डूबने वालों में हो गया।»

(كَانَ مِن المغرقِين) अर्थात् (صَارَ مِن المغرقِين) इन सभी स्थानों पर (كَانَ) (صَار) के अर्थ में प्रयोग हुआ है।

इबलीस को क्यों घमंड हुआ ? इसका वर्णन क़ुरआन में इस प्रकार आया है –

«उसने कहा, "मैं उससे उत्तम हूँ, तूने मुझे अग्नि से पैदा किया और उसे मिट्टी से।"» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–12)

और सूरा हिज्र में है –

«उसने कहा, "मैं उस मनुष्य को सजदा नहीं करूँगा जिसको तूने सड़ी-गली मिट्टी से पैदा किया।"» (सूरा–15, अल-हिज्र, आयत–33)

अब हम निम्नलिखित बातों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालेंगे –

1. अल्लाह के उपदेशों के संबोधित प्राणी वर्ग।
2. इबलीस का वंश।
3. क्या फ़रिश्तों का आदम को सजदा करना तौहीद (एकेश्वरवाद) के विरुद्ध है ?
4. आदम को सजदा करने का आदेश कब दिया गया ?
5. संसार में इबलीस का क्या काम है ?

संसार में अल्लाह ने जिन प्राणी वर्गों को सम्बोधित किया है वे तीन प्रकार के हैं –

(i) फ़रिश्ते, (ii) जिन्न तथा (iii) मनुष्य।

फ़रिश्ते अल्लाह की वह मख़लूक़ हैं जो अपने आप में कोई इख़्तियार नहीं रखते। जिस काम पर उनको लगा दिया उससे इनकार नहीं कर सकते। रात दिन उसी की इबादत और फ़रमाँबरदारी में लगे रहते हैं। इनके विषय में क़ुरआन में आया है –

«ऐ ईमान लानेवालो! अपने आपको और अपने घरवालों को उस आग से बचाओ जिसका ईंधन मनुष्य और पत्थर हैं, जिसपर कठोर स्वभाव के बलशाली 'फ़रिश्ते' नियुक्त हैं। वे अल्लाह की अवज्ञा नहीं करते, बल्कि उन्हें जो आदेश दिया जाता है वही करते हैं।» (सूरा–66, अत-तहरीम, आयत–6)

अब रह गए जिन्न तथा मनुष्य, तो अल्लाह ने इन दोनों को यह स्वतंत्रता दी है कि वे जिस बात को चाहें मानें और जिसको चाहें, इनकार कर दें। इस प्रकार ये दोनों प्राणी वर्ग इस संसार में परीक्षा दे रहे हैं। इसी लिए अल्लाह की आज्ञा का पालन करनेवालों के लिए स्वर्ग और अवज्ञा करनेवालों के लिए नरक है।

«निश्चय ही हमने बहुत-से जिन्नों और मनुष्यों को नरक ही के लिए पैदा किया है।» (क़ुरआन, सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–179)

अर्थात जिन्होंने अल्लाह की सत्ता का इनकार किया था, या उसके साथ किसी और को उसका साझी बनाया उनके लिए नरक है और जिन्होंने उसका इक़रार किया और उसके साथ किसी को साझी नहीं बनाया उनके लिए जन्नत बनाई।

इन दोनों प्राणी वर्गों में से जो अल्लाह के आदेश का इनकार करे उसको शैतान कहा जाता है और 'इबलीस' उसी शैतान का उपनाम है। इससे पता चला कि जिन्नों के उस व्यक्ति को, जिसने आदम के सामने सिर झुकाने से इनकार कर दिया उसको 'इब्लीस' कहा जाने लगा, क्योंकि क़ुरआन में स्पष्ट रूप से बता दिया गया है कि 'इबलीस' जिन्नों में से था –

«याद करो जब हमने फ़रिश्तों से कहा, ''आदम के सामने झुक जाओ।'' तो 'इबलीस' के अतिरिक्त सब झुक गए। वह जिन्नों में से था।» (सूरा–18, अल-कहफ़, आयत–50)

उसने अल्लाह के आदेश का इनकार इसलिए किया कि उसको यह घमंड हो गया था कि वह आदम से उत्तम है –

«(अल्लाह ने) कहा, ''तुझे किस चीज़ ने सजदा करने से रोका, जबकि मैंने तुझे हुक्म दिया था।'' बोला, ''मैं उससे उत्तम हूँ, तूने मुझे आग से पैदा किया है और उसे मिट्टी से।''» (क़ुरआन, सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–12 तथा सूरा–38, सॉद, आयत–76)

लेकिन यहाँ प्रश्न उठता है कि अल्लाह ने आदम के सामने झुकने का आदेश तो फ़रिश्तों को दिया था, जैसा कि सूरा-2 अल-बक़रा, आयत–34 में आया है, तो अगर इबलीस ने झुकने से इनकार कर दिया, तो वह कैसे नाफ़रमान बन गया।

इसका उत्तर यह है कि वास्तव में फ़रिश्तों तथा जिन्नों दोनों को झुकने का आदेश दिया गया था, ताकि मनुष्य वर्ग की बड़ाई और श्रेष्ठता दोनों वर्गों पर जताई जा सके, लेकिन अल्लाह ने केवल फ़रिश्तों को इसलिए संबोधित किया कि वे श्रेष्ठ वर्ग के थे। और जब आदम के समक्ष उनको झुकने का आदेश दिया गया तो जिन्न स्वयं इस आदेश में सम्मिलित हो गए। इसको अरबी भाषा में 'तग़लीब' कहते हैं। क़ुरआन जब पुरुष वर्ग को संबोधित करता है तो स्त्री वर्ग भी उसमें सम्मिलित हो जाता हैं। इसी प्रकार अल्लाह जब नबी को संबोधित करता है तो पूरा मानव-समाज उसमें सम्मिलित हो जाता है।

सूरा अल-आराफ़ में तो यह संकेत भी आया है –

«(अल्लाह ने) कहा, ''तुझे किस चीज़ ने सजदे से रोका ? जबकि मैंने तुझे हुक्म दिया था।'' बोला, ''मैं उससे उत्तम हूँ, तूने मुझे आग से पैदा किया और उसे मिट्टी से।''» (क़ुरआन, सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–12)

इससे मालूम हुआ कि जिन्नों को भी सजदे का हुक्म था, चाहे तग़लीब के तौर पर या प्रत्यक्ष रूप से। क़ुरआन में शब्द 'सजदा' आया है जिसका अर्थ है सिर को झुकाना, आधे शरीर को झुकाना तथा सर को पृथ्वी पर रखना, जिस प्रकार नमाज़ में रखा जाता है। तो यहाँ सजदे से अभिप्राय इन तीनों अर्थों में से कोई भी हो सकता है। उद्देश्य आदम का सम्मान करना है। जो काम भी अल्लाह की आज्ञा के अनुसार किया जाएगा वह शिर्क नहीं कहलाएगा। परन्तु अब इस्लाम ने इस प्रकार सम्मान करने को वर्जित कर दिया है। अब 'सजदा' किसी प्रकार का हो वह केवल अल्लाह के लिए है। रहा किसी का सम्मान करना तो उसके और बहुत सारे तरीक़े हैं।

अब एक प्रश्न यह कि आदम के सजदे का आदेश कब दिया गया था ? तो इसका उत्तर क़ुरआन में आया है –

«याद करो जब तुम्हारे रब ने फ़रिश्तों से कहा, ''मैं सड़े हुए गारे की खनखनाती हुई मिट्टी से एक मनुष्य बनानेवाला हूँ, तो जब मैं उसे ठीक-ठाक कर लूँ और उसमें अपनी रूह (आत्मा) फूँक दूँ, तो तुम उसके आगे सजदे में गिर जाना।» (सूरा–15, अल-हिज्र, आयतें–28,29)

इससे पता चलता है कि यह आदेश अल्लाह ने आदम को पैदा करने से पहले ही दिया था, और सूरा अल-बक़रा की आयत में जो यह आया है –

«और याद करो जब हमने फ़रिश्तों से कहा, ''आदम के आगे झुक जाओ तो 'इबलीस' के अतिरिक्त सब झुक गए» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–34)

इसका एक अर्थ तो यह है कि जब अल्लाह ने आदम को बनाकर खड़ा किया तो सारे फ़रिश्ते झुक गए क्योंकि उनको इसका पहले ही आदेश मिल चुका था। और दूसरा यह भी हो सकता है कि आदम को बनाने के बाद अल्लाह ने दोबारा सजदे का आदेश दिया हो।

इस प्रकार दोनों आयतों में किसी प्रकार का विरोधाभास नहीं है।

जब 'इबलीस' ने आदम को सजदा करने से इनकार कर दिया तो अल्लाह ने आज्ञा का उल्लंघन करने के कारण उसको अपनी कृपा से दूर कर दिया और फ़रमाया –

«"अच्छा तू निकल जा यहाँ से, क्योंकि तुझ पर फिटकार है। निश्चय ही बदले के दिन तक तुझपर धिक्कार है।" उसने कहा, "मेरे रब, फिर तू मुझे उस दिन तक के लिए मोहलत दे जबकि सब उठाए जाएंगे।" कहा, "अच्छा, तुझे मोहलत है उस दिन तक के लिए जिसका समय निश्चित एवं ज्ञात है।" उसने कहा, "मेरे रब, जिस प्रकार तूने मुझे सीधे मार्ग से विचलित कर दिया, अत: मैं भी धरती में उनके लिए मनमोहकता पैदा करूँगा और उन सबको बहकाकर रहूँगा, सिवाय उनके जो तेरे चुने हुए बन्दे होंगे।" कहा, "यही एक सीधा मार्ग है जो मुझ तक पहुँचता है। निस्संदेह मेरे बन्दों पर तो तेरा कुछ ज़ोर न चलेगा, सिवाय उन बहके हुए लोगों के जो तेरे पीछे हो लें। निश्चय ही नरक उन सबके वादे का स्थान है।"» (क़ुरआन, सूरा–15, अल-हिज्र, आयतें–34-43, सूरा–38, साद, आयतें–77-85)

इसी प्रकार एक काम इबलीस ने और किया। वह यह कि आदम और उनकी पत्नी को स्वर्ग से निकालने में सफल रहा। क़ुरआन में इसका वर्णन इस प्रकार आया है –

«याद करो जब हमने फ़रिश्तों से कहा, "आदम को सजदा करो।" तो उन्होंने सजदा किया सिवाय 'इबलीस' के, वह इनकार कर बैठा। इस पर हमने कहा, "ऐ आदम, निश्चय ही यह तुम्हारा और तुम्हारी पत्नी का शत्रु है, तो कहीं यह तुम दोनों को स्वर्ग से निकलवा न दे। फिर तो तुम्हारे लिए यह बड़ा दुर्भाग्य होगा। तुम्हारे लिए तो यहाँ (स्वर्ग में) ऐसा है कि तुम्हें यहाँ न प्यास लगेगी और न तकलीफ़ होगी।" परन्तु शैतान (इबलीस) ने उन्हें बहकाया, कहने लगा, "ऐ आदम! क्या मैं तुम्हें अमर वृक्ष का पता न बता दूँ और उस राज्य का, जिसका कभी अन्त न हो?" तब उन दोनों ने उस वृक्ष से खा लिया, जिसके परिणामस्वरूप उनकी शर्मगाहें उनके आगे खुल गईं और दोनों अपने ऊपर जन्नत के पत्ते डालने लगे। और आदम ने अपने रब की अवज्ञा की, जिसके कारण वह मार्ग से भटक गया। फिर उसके रब ने उसे चुन लिया, और उसके पश्चात्ताप को स्वीकार किया और उसे मार्ग दिखाया। कहा, "तुम दोनों यहाँ से उतर

जाओ। तुम्हारे कुछ लोग कुछ के शत्रु होंगे। अब यदि मेरी ओर से तुम्हें मार्ग-दर्शन पहुँचे, तो जो कोई मेरे मार्गदर्शन का पालन करेगा, वह न भटकेगा, और न ही वह दुर्भाग्य में ग्रस्त होगा।» (सूरा–20, ता-हा, आयतें–116-123)

अब संसार में इबलीस का बड़ा काम यह है कि वह आदम की संतान को भटकाए, जिस प्रकार उसने आदम को भटकाया था। उसके पास भटकाने के विभिन्न मार्ग हैं। देखिए : 'शैतान'।

इनसान

क़ुरआन वह अन्तिम ईश ग्रंथ है जिसमें इनसान अथवा मनुष्य की रचना का बड़े ही स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है। वेदों, बाइबल तथा दूसरे ग्रंथों में इस विषय पर कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती।

अगर हम क़ुरआन की आयतों पर विचार करें तो मनुष्य का व्यक्तित्व कुछ इस प्रकार से प्रकट होता है –

1. **«निस्संदेह अल्लाह के यहाँ ईसा का उदाहरण आदम का-सा है, जिसे उसने मिट्टी से बनाया। फिर उसे कहा : हो जा! तो वह हो गया।»** (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–59)
2. **«जिस (अल्लाह) ने जो चीज़ बनाई ख़ूब ही बनाई और मनुष्य की रचना का आरम्भ गारे से किया।»** (सूरा–32, अस-सजदा, आयत–7)
3. **«हमने उन (इनसानों) को लेसदार गारे से पैदा किया।»** (सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयत–11)
4. **«मनुष्य को ठीकरे जैसी खनकती मिट्टी से पैदा किया।»** (सूरा–55, अर-रहमान, आयत–14)
5. **«निस्संदेह हमने मनुष्य को खनखनाती हुई मिट्टी से पैदा किया।»** (सूरा–15, अल-हिज्र, आयत–26)
6. **«याद करो जब तेरे रब ने फ़रिश्तों से कहा : मैं सड़े हुऐ गारे की खनखनाती हुई मिट्टी से एक मनुष्य पैदा करनेवाला हूँ।»** (सूरा–15, अल-हिज्र, आयत–28)
7. **«उस (इबलीस) ने कहा : मैं ऐसा नहीं हूँ कि ऐसे मनुष्य को सजदा करूँ जिसको तूने सड़े हुए गारे की खनखनाती हुई मिट्टी से पैदा किया।»** (सूरा–15, अल-हिज्र, आयत–33)

इन आयतों से पता चलता है कि अल्लाह ने मनुष्य को मिट्टी से पैदा किया, जिसकी विशेषता यह थी कि वह लेसदार थी, जब सूखी तो खनखनाती हुई हो गई। फिर अल्लाह ने स्वयं ही उसे ठीक-ठाक किया।

«याद करो जब तेरे रब ने फ़रिश्तों से कहा : निश्चय ही मैं मिट्टी से एक मनुष्य बनानेवाला हूँ। फिर जब मैं उसको ठीक-ठाक कर दूँ और उसमें अपनी रूह फूँक दूँ तो तुम उसके आगे सजदे में गिर पड़ना।» (सूरा–38, सॉद, आयतें–71,72)

अल्लाह ने इस मिट्टी के पुतले को ऐसा ठीक-ठाक किया कि वह उसकी सारी सृष्टि में उत्तम बन गया।

«निस्संदेह हमने मनुष्य को सर्वोत्तम संरचना के साथ पैदा किया।» (सूरा–95, अत-तीन, आयत–4)

और फिर उसी से उसका जोड़ा बनाया (क़ुरआन, सूरा–4, अन-निसा, आयत–1) और इस जोड़े से बहुत-से स्त्री-पुरुष पैदा किए। क़ुरआन मजीद में है –

«(अल्लाह ने) जो वस्तु भी बनाई बहुत ही सुन्दर बनाई और मनुष्य की रचना का आरम्भ गारे से किया। फिर उसका वंश निचुड़े हुए तुच्छ पानी से चलाया।» (सूरा–32, अस-सजदा, आयतें–7-8)

अब ऐसा तुच्छ मनुष्य देखिए फिर किस प्रकार घमंड करता दिखाई देता है।

1. **«उसने मनुष्य को एक बूँद (वीर्य) से पैदा किया। फिर क्या देखते हैं कि वह स्पष्ट झगड़ालू बन गया !»** (क़ुरआन, सूरा–16, अन-नह्ल, आयत–4)
2. **«क्या मनुष्य ने देखा नहीं कि हमने उसे एक बूँद (वीर्य) से पैदा किया। फिर क्या देखते हैं कि वह स्पष्ट झगड़ालू बन गया !»** (क़ुरआन, सूरा–36, या-सीन, आयत–77)

अर्थात् जब उसको अपने पैदा करनेवाले की ओर बुलाया जाता है तो भिन्न-भिन्न प्रकार से उसका इनकार करता है। उसके भेजे हुए दूतों को झुठलाता है और उसके भेजे हुए मार्गदर्शन को ठुकराता है। जबकि क़ुरआन कहता है –

«हमने आदम की संतान को बड़ी श्रेष्ठता प्रदान की और उसे जल और थल में सवारी दी (अर्थात् ज्ञान प्रदान किया कि सवारी बनाए) तथा उन्हें पवित्र वस्तुओं से जीविका प्रदान की तथा अपने बहुत-से प्राणियों पर उन्हें श्रेष्टता प्रदान की।» (सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–70)

यह श्रेष्ठता इनसानों को इसलिए प्रदान की गई थी कि वे अल्लाह के भेजे हुए धर्म का पालन करें। परन्तु इनसानों ने उससे मुँह मोड़ लिया। क़ुरआन में है –

«उस व्यक्ति से बढ़कर अत्याचारी कौन होगा जिसे उसके प्रभु की आयतों द्वारा शिक्षा दी गई, परन्तु उसने उससे मुँह मोड़ लिया ?» (सूरा–18, अल-कह्फ़, आयत–57)

«ऐ मनुष्य! तुझे अपने दयालु प्रभु से किस चीज़ ने बहकाया है?» (सूरा–82, अल-इन्फ़ितार, आयत–6)

क़ुरआन की सबसे छोटी सूरा 'अल-अस्र' है। इसमें केवल तीन आयतें हैं। इस सूरा में इनसान की वास्तविकता को बड़े ही सुन्दर ढंग से बयान किया गया है –

«समय की सौगन्ध, वास्तव में समस्त मनुष्य सर्वथा घाटे में हैं। केवल उनके अतिरिक्त जो ईमान लाए, पुण्य कर्म किए, आपस में सत्य की ताकीद करते रहे तथा एक-दूसरे को धैर्य रखने का उपदेश देते रहे।» (सूरा–103, अल-अस्र, आयतें–1-3)

इन आयतों में अल्लाह ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि इनसान की सफलता के लिए अब केवल एक ही मार्ग रह गया है। जिसकी चार विशेषताएँ हैं : 1. विश्वास 2. अच्छे कर्म 3. सत्य की ताकीद 4. धैर्य रखने का उपदेश।

इसी लिए इमाम शाफ़ई (رحمہ اللہ) का विचार है कि अगर अल्लाह केवल इस सूरा ही को उतार देता तो इनसान के कल्याण के लिए यही सूरा काफ़ी होती।

क़ुरआन की शिक्षाओं की एक विशेषता यह भी है कि एक ओर तो वे इनसानों की कमज़ोरियों को बयान करती हैं तो दूसरी ओर यह भी बता देती हैं कि इन कमज़ोरियों से वे लोग मुक्त हैं जो ईमान लाएँ और अच्छे कर्म करें।

लेकिन फिर यही इनसान इतना सब कुछ करने के बावजूद अत्याचारी और सरकश बन जाता है। अल्लाह के बताए हुए नियम पर अमल नहीं करता, बल्कि अपने मन में आई हुई बातों को मानता है, और संसार में फ़साद फैलाता है।

सत्य और असत्य, अच्छाई और बुराई इतनी स्पष्ट कर देने के बाद भी मनुष्य अल्लाह के बताए हुए सत्यमार्ग को न अपनाकर स्वयं अपने ऊपर और पूरे संसार पर अत्याचार करता है, धरती पर फ़साद फैलाता है और इतना बड़ा बन जाता है कि यह तक भूल जाता है कि उसकी इस दुनिया में क्या हैसियत है। क़ुरआन उसे अपनी हैसियत याद दिलाते हुए कहता है –

«हमने मनुष्य को सड़े हुए गारे की खनखनाती हुई मिट्टी से पैदा किया।» (सूरा–15, अल-हिज्र, आयत–26)

«उसने मनुष्य को एक बूँद (वीर्य) से पैदा किया। फिर क्या देखते हैं कि वह खुला झगड़ालू बन गया।» (सूरा–16, अन-नह्ल, आयत–4)

«क्या मनुष्य इस बात को याद नहीं करता कि हमने उसे पैदा किया, जबकि वह इससे पहले कुछ भी नहीं था?» (सूरा–19, मरयम, आयत–67)

«निश्चय ही हमने मनुष्य को मिट्टी के सत से बनाया। फिर उसको एक सुरक्षित स्थान पर वीर्य के रूप में रखा। फिर उस वीर्य को लोथड़े का रूप दिया। फिर उस लोथड़े को मांस की बोटी का रूप दिया। फिर बोटी की हड्डियाँ बनाईं। फिर उन हड्डियों पर मांस चढ़ाया। फिर उसे एक दूसरा ही सृजन रूप देकर खड़ा किया। तो बहुत बरकतवाला है अल्लाह, सबसे उत्तम सृष्टिकर्त्ता।» (सूरा–23, अल-मोमिनून, आयतें–12-14)

«जिसने हर वस्तु को अच्छा बनाया। और मनुष्य को गारे से पैदा किया। फिर उसका वंश एक निचुड़े हुए तुच्छ पानी से चलाया। फिर उसको दुरुस्त किया और उसमें अपनी तरफ़ से रूह (आत्मा) फूँकी और तुम्हें कान और आँखें और दिल दिए। तुम लोग कम ही कृतज्ञता दिखलाते हो।» (सूरा–32, अस-सजदा, आयतें–7-9)

«क्या मनुष्य ने देखा नहीं कि हमने उसे वीर्य से पैदा किया। फिर क्या देखते हैं कि वह खुला झगड़ालू बन गया। और उसने हमपर फब्ती कसी और अपनी पैदाइश को भूल गया। कहने लगा, "कौन इन हड्डियों में जान डालेगा, जब ये गल गई होंगी।" कहो, "इनमें वही जान डालेगा जिसने इन्हें पहली बार पैदा किया। और वह पैदा करने का हर काम जानता है।"» (सूरा–36, या-सीन, आयतें–77-79)

इनसान की पैदाइश और उसकी हिदायत के उसूल बयान करने के लिए अल्लाह ने इकतीस आयत की एक पूरी सूरा उतारी है, जिसको सूरा 'इनसान' कहते हैं, कुछ लोग इसको सूरा 'दह्र' भी कहते है। नीचे इस सूरा की कुछ आयतों का अनुवाद दिया जा रहा है –

«क्या मनुष्य पर कोई ऐसा समय भी आया है जब वह कुछ भी (चर्चा के योग्य) नहीं था, हमने मनुष्य को मिले-जुले वीर्य से पैदा किया, उसे उलटते-पुलटते रहे फिर हमने उसको सुननेवाला और देखनेवाला बनाया। और हमने उसे मार्ग दिखाया, अब या तो कृतज्ञ हो या कृतघ्न।» (सूरा–76, दहर, आयतें–1-3)

«निस्संदेह ये लोग जल्द मिलने-वाली वस्तु को प्रिय रखते हैं। और उस मुश्किल दिन (आख़िरत) को छोड़ बैठे हैं। हमने उनको पैदा किया और उनके जोड़-जोड़ को मज़बूत बनाया। और हम जब चाहें तो उनके बदले उन्हीं जैसे लोग ला बिठाएँ। यह (क़ुरआन) एक शिक्षा है। फिर जो कोई चाहे अपने 'रब' (पालनेवाले) की तरफ़ पहुँचने का मार्ग अपनाए।» (सूरा–76, दह्र, आयतें–27-29)

अल्लाह ने मनुष्य को किस प्रकार पैदा किया, उसके जीवित रहने के लिए कैसी-कैसी सामग्री बनाई, आकाश से पानी बरसाया, पृथ्वी से ग़ल्ले उगाए ताकि मनुष्य अपने इस सांसारिक जीवन को कुशलतापूर्वक बिताए। इसके बदले में अल्लाह ने उससे केवल एक अपेक्षा की, वह यह कि केवल

उसी की उपासना की जाए। किसी को उसके साथ शरीक न किया जाए। उसकी बनाई हुई पृथ्वी पर उसका क़ानून चलाया जाए और संसार को फ़साद से दूर रखा जाए। मगर अफ़सोस कि मनुष्य यह सब कुछ भूल बैठा है और उसने अपने आपको ज़मीन पर दमनकारी बना रखा है। देखिए, इस विषय में क़ुरआन क्या कहता है –

«सूरज और चाँद को तुम्हारी सेवा में लगाया कि निरन्तर चक्कर लगा रहे हैं और रात और दिन को तुम्हारी सेवा में लगाया। और तुम्हें वह सब कुछ दिया जो तुमने उससे माँगा। यदि तुम अल्लाह की नेमतों को गिनना चाहो तो उन्हें पूरा गिन नहीं सकते। वास्तव में मनुष्य बड़ा अन्यायी और कृतघ्न है।» (सूरा–14, इबराहीम, आयतें–33,34)

«जब समुद्र में तुमपर कोई तकलीफ़ पहुँचती है, तो उस (एक अल्लाह) के अतिरिक्त जिन्हें तुम पुकारते हो गुम हो जाते हैं। परन्तु जब वह तुम्हें बचाकर थल पर पहुँचा देता है, तो तुम उससे मुँह मोड़ लेते हो। मनुष्य बड़ा ही कृतघ्न है।» (सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–67)

«जब हम मनुष्य को नेमत देते हैं तो वह कतराता है और अपना पहलू बचाता है। और जब उसे तकलीफ़ पहुँचती है तो निराश हो जाता है।» (सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–83)

«हमने इस क़ुरआन में लोगों के लिए हर एक मिसाल तरह-तरह से बयान की, परन्तु मनुष्य सबसे बढ़कर झगड़ालू है।» (सूरा–18, अल-कहफ़, आयत–54)

«मनुष्य (आश्चर्य) से कहता है, "क्या जब मैं मर जाऊँगा तो फिर जीवित करके निकाला जाऊँगा।" क्या मनुष्य याद नहीं करता कि हम उसे इससे पहले भी पैदा कर चुके हैं, जबकि वह कुछ भी न था ? और तेरे रब की क़सम ! हम उन्हें और शैतानों को जमा करेंगे। फिर इन सबको जहन्नम के चारों ओर हाज़िर करेंगे, इस हाल में कि वे घुटनों के बल गिरे होंगे।» (सूरा–19, मरयम, आयतें–66-68)

«ऐ इनसान! किस चीज़ ने तुझे अपने उदार रब के बारे में धोखे में डाल रखा है जिसने तुझे पैदा किया। फिर ठीक-ठीक बनाया, फिर जिस प्रकार के रूप में चाहा तेरी रचना की। मगर (अफ़सोस!) तुम लोग बदले के दिन को झुठलाते हो। हालाँकि तुमपर निगरानी करनेवाले नियुक्त हैं, प्रतिष्ठावान हैं (तुम्हारी बातों और कर्मों को) लिखनेवाले। जो तुम करते हो वे उसे जानते हैं। बेशक नेक लोग आनन्द (जन्नत) में होंगे। और बुरे लोग भड़कती आग (जहन्नम) में। उसमें क़ियामत के दिन प्रवेश करेंगे। और उससे वे बच रहनेवाले नहीं। और तुम्हें क्या मालूम कि बदले का दिन कैसा है, फिर तुम्हें क्या मालूम कि बदले का दिन कैसा है, जिस दिन कोई जीव किसी जीव के लिए कुछ न कर सकेगा। और अधिकार उस दिन अल्लाह ही का होगा।» (सूरा–82, अल-इनफ़ितार, आयतें–6-19)

अर्थात उस दिन कोई देवी-देवता, मनुष्य, फ़रिश्ते, नबी, वली किसी का कोई भला नहीं कर सकेंगे। हर व्यक्ति अपने हिसाब-किताब में लगा होगा। कोई किसी का बोझ उठाने के लिए तैयार नहीं होगा। इसी को सूरा अन-नज्म में यूँ कहा गया –

«वह यह कि कोई (व्यक्ति) किसी दूसरे के गुनाह का बोझ नहीं उठाएगा। और यह कि इनसान को वही कुछ मिलता है, जिसकी वह चेष्टा करता है।» (सूरा–53, अन-नज्म, आयतें–38,39)

फिर क़ुरआन उस मनुष्य का वर्णन करता है जो सफल हुआ –

«ढलते समय की क़सम! मनुष्य तो वास्तव में घाटे में है। सिवाय उन लोगों के जो ईमान लाए (इस्लाम पर) और अच्छे कर्म किए (इस्लाम के बताए हुए) और एक-दूसरे को सत्य की ताकीद की और एक दूसरे को सब्र की ताकीद करते रहे।» (सूरा–103, अल-अस्र, आयतें–1-3)

अर्थात् सत्य बात कहने में बहुत सारी कठिनाइयाँ आएँगी। मगर सफल मनुष्य वह है जो उनको झेल ले और सत्य पर अटल रहे और लोगों को उसकी तरफ़ बुलाए। इस मार्ग पर चलने में जो मुश्किल आए उसपर सब्र करे, तो यही सफल मनुष्य है।

इबादत

इबादत का अर्थ है बन्दगी करना, प्रार्थना करना, भक्ति, विनम्रता से किसी के आगे अपने आप को झुका देना इत्यादि।

इस्लाम की विशेषताओं में से एक विशेषता यह भी है कि वह केवल एक अल्लाह की बन्दगी एवं उपासना की आज्ञा देता है। यही शिक्षा इस्लाम से पहले आनेवाले सभी नबियों की थी। परन्तु उनके अनुयायियों ने उसे बदल दिया, बल्कि उन नबियों का अपनी जाति से यही एक झगड़ा था कि वे लोग अल्लाह को छोड़कर दूसरे बहुत-से देवी-देवताओं की इबादत करते थे; या अल्लाह की इबादत में दूसरों को शरीक करते थे, ताकि वे अल्लाह के यहाँ उनकी सिफ़ारिश कर सकें। क़ुरआन तथा पिछली आसमानी पुस्तकों में इसका खंडन किया गया है। जिन-जिन की ये लोग पूजा करते थे, वे आख़िरत में साफ़ कह देंगे कि हमारा इनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। अपने उपासकों से असम्बद्धता का एलान करेंगे। क़ुरआन ने ईसा (अलैहिस्सलाम) की इबादत करनेवालों का बहुत ही सुन्दर शैली में वर्णन किया है –

«याद करो जब अल्लाह कहेगा, ''ऐ मरयम के पुत्र ईसा! क्या तुमने लोगों से कहा था कि अल्लाह के अतिरिक्त दो और इलाह (पूज्य), मुझे और मेरी माँ को, बना लो?'' वह कहेगा, ''तू महिमावान है। मुझसे यह नहीं हो सकता कि ऐसी बात कहूँ जिसका

मुझे कोई हक़ नहीं है, यदि मैंने यह कहा होता तो तुझे मालूम ही होता। तू जानता है जो कुछ मेरे मन में है और मैं नहीं जानता जो कुछ तेरे मन में है। निस्संदेह तू छिपी बातों को जाननेवाला है। मैंने इनसे उसके सिवा कुछ नहीं कहा जिसका तूने मुझे आदेश दिया था। यह कि "अल्लाह की इबादत करो, जो मेरा भी रब है और तुम्हारा भी। मैं जब तक उनमें था, उनकी ख़बर रखता था, परन्तु जब तूने मुझे (दुनिया से) उठा लिया, तो तू ही उनका निरीक्षक था। और तू हर चीज़ का साक्षी है। यदि तू उन्हें यातना में ग्रस्त करे तो वे तेरे ही बन्दे हैं और यदि तू उन्हें क्षमा कर दे तो तू प्रभुत्वशाली तथा तत्त्वदर्शी है।"» (सूरा–5, अल-माइदा, आयतें–116-118)

इसी प्रकार क़ुरआन ने एकेश्वरवादी इबराहीम (ﷺ) और उनके बहुदेववादी पिता के बीच हुई बातचीत को प्रस्तुत किया है, जिसमें इबराहीम (ﷺ) ने अपने पिता को बुतों की पूजा छोड़कर केवल अल्लाह की इबादत करने को कहा है –

«इस 'किताब' में इबराहीम का ज़िक्र (शुभचर्चा) करो। निस्सन्देह वह एक सत्यवान नबी था। जब उसने अपने बाप से कहा, " ऐ मेरे बाप! आप क्यों उस चीज़ को पूजते हैं जो न सुने और न देखे और न आपके किसी काम आए? ऐ मेरे बाप! मेरे पास ऐसा ज्ञान आया है जो आपके पास नहीं आया। अत: आप मेरे पीछे चलिए, मैं आपको सीधा मार्ग दिखाऊँगा। ऐ मेरे बाप! शैतान की बन्दगी न कीजिए। शैतान तो 'रहमान' (कृपाशील ईश्वर) का अवज्ञाकारी है। ऐ मेरे बाप! मैं डरता हूँ कि कहीं आपको 'रहमान' की यातना न आ पकड़े और आप शैतान के साथी होकर रहें।"

उसने कहा, "ऐ इबराहीम! क्या तू मेरे इलाहों (पूज्य देवताओं) से फिर गया है? यदि तू बाज़ न आया तो मैं तुझ पर पथराव कर दूँगा। तू मुझसे दीर्घ काल के लिए अलग हो जा।"

(इबराहीम ने) कहा, "सलाम है आप को! मैं अपने रब से आपके लिए क्षमा की प्रार्थना करूँगा। निस्सन्देह वह मुझपर बहुत मेहरबान है।

मैं आप लोगों को छोड़ता हूँ और उन्हें भी जिन्हें आप लोग अल्लाह के सिवा पुकारते हैं, और मैं अपने रब को पुकारूँगा। आशा है कि मैं अपने 'रब' को पुकारकर बेनसीब नहीं रहूँगा।" जब वह, उन लोगों से और जिन्हें वे अल्लाह के सिवा पूजते थे उनसे, अलग हो गया तो हमने उसे इसहाक़ और याक़ूब (जैसे बेटे) प्रदान किए। और हर एक को हमने 'नबी' बनाया।

और उन्हें अपनी दयालुता से हिस्सा दिया और उन्हें एक सच्ची ख्याति प्रदान की।» (सूरा–19, मरयम, आयतें–41-50)

यह तो इबादत का वह अर्थ है जिससे अधिकतर लोग अवगत हैं, और इस्लाम धर्म की मुख्य विशेषताओं में से एक है जिसमें कोई धर्म इसकी बराबरी नहीं कर सकता। परन्तु इस्लाम ने इबादत को बहुत ही व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया है। इसके अनुसार इबादत का अर्थ होता है कि पूरा जीवन अल्लाह के बताए हुए नियमानुसार बिताया जाए। जिस चीज़ को अल्लाह ने हलाल (वैध) ठहराया है, उसे वैध माना जाए और जिस चीज़ को उसने हराम (वर्जित) ठहराया है, उसे हराम माना जाए और उसकी ख़ुदाई में किसी को उसका साझी न बनाया जाए। इसकी पुष्टि एक हसन हदीस से होती है—

अदी-बिन-हातिम नबी (ﷺ) के पास आए। उनके गले में सलीब (क्रूस) लटक रही थी, तो आप (ﷺ) ने कहा, "अदी, अपने गले से इस बुत को निकाल दो।"

अदी कहते हैं कि मैंने नबी (ﷺ) को क़ुरआन की सूरा–9, अत-तौबा की आयत–31 पढ़ते सुना, जिसमें कहा गया –

«उन्होंने अल्लाह को छोड़कर अपने धर्म-ज्ञानियों तथा संसार-त्यागियों को अपना रब बना लिया।»

आप (ﷺ) ने कहा:

"वे उनकी इबादत तो नहीं करते थे, परन्तु अगर वे कोई चीज़ हलाल ठहराते तो उसे वे लोग हलाल ठहरा लेते और कोई चीज़ हराम ठहराते तो वे लोग भी उसे हराम ठहरा लेते" अर्थात् यही इबादत है। (हदीस : तिर्मिज़ी, 3095)

हुज़ैफ़ा-बिन-यमान (ؓ) तथा इब्ने-अब्बास (ؓ) आदि सहाबियों का कथन है कि धर्म-ज्ञानियों तथा संन्यासियों का हलाल (अवैध) और हराम (अवैध) में अनुकरण करना वास्तव में अल्लाह की इबादत करना है।

इससे सिद्ध हुआ कि इस्लाम धर्म की शिक्षाओं को दिल से स्वीकार करना तथा उनका पालन करना इबादत है, और इस्लाम को छोड़कर किसी और के बताए हुए मार्ग पर चलना वास्तव में शिर्क (बहुदेववाद) है, जो बड़ा अत्याचार और महापाप है।

इद्दत

'इद्दत' का शाब्दिक अर्थ तो गिनती है, परन्तु तीन स्थानों पर क़ुरआन ने इद्दत को इस अर्थ में प्रयुक्त किया है कि जब कोई स्त्री अपने पति से अलग हो जाए तो उसपर अनिवार्य है कि कुछ दिन तक वह इद्दत में रहे। अर्थात् इस बीच वह दूसरा निकाह न करे, ताकि विश्वास के साथ यह पता चल जाए कि वह गर्भवती नहीं है। ये इद्दतें विभिन्न दशाओं में भिन्न-भिन्न होती हैं। इनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है–

अगर कोई व्यक्ति किसी स्त्री को तलाक़ दे तो उसका उचित समय वह है जब वह माहवारी (मासिक धर्म) से पाक-साफ़ हो जाए, जैसा कि सूरा तलाक़ में आया है–

«ऐ नबी! जब तुम लोग स्त्रियों को तलाक़ दो तो उन्हें तलाक़ उनकी इद्दत में दो, और इद्दत का पूरा ध्यान रखो।» (सूरा–65, अत-तलाक़, आयत–1)

तलाक़शुदा स्त्रियों की इद्दत तीन बार पाक-साफ़ होना है, जैसा कि सूरा अल-बक़रा में आया है–

«तलाक़ पानेवाली स्त्रियाँ तीन बार माहवारी से पाक होने तक अपने आपको प्रतीक्षा में रखें, और उनके लिए किसी प्रकार यह बात सही नहीं कि अल्लाह ने उनके गर्भाशयों में जो कुछ पैदा किया है उसे छिपाएं अगर वे अल्लाह तथा अन्तिम दिन पर ईमान रखती हैं।» (सूरा-2, अल-बक़रा, आयत–228)

इस बीच तलाक़ पाई स्त्रियाँ अपने पति ही के घर में रहेंगी, ताकि अगर उनके पति तलाक़ से रुजूअ करना चाहें तो रुजूअ कर लें। और वे फिर पति-पत्नी की तरह जीवन व्यतीत करने लगें।

वे स्त्रियाँ, जिनकी माहवारी बन्द हो चुकी हो, उनकी इद्दत तीन मास है।

वे स्त्रियाँ, जो अभी बुलूग़त (युवावस्था) को न पहुँची हों अर्थात् रजस्वला न हुई हों, उनकी इद्दत भी तीन मास है। जैसा कि सूरा अत-तलाक़ में आया है–

«तुम्हारी स्त्रियों में से जो बड़ी आयु हो जाने के कारण माहवारी से निराश हो गई हों उनके सम्बन्ध में यदि तुम्हें दुविधा है तो (तुम्हें ज्ञात हो कि) उनकी इद्दत तीन मास है। इसी प्रकार उनकी भी जिन्हें अभी माहवारी नहीं आई।» (सूरा–65, अत-तलाक़, आयत–4)

अगर किसी गर्भवती स्त्री को तलाक़ हुई हो तो उसकी इद्दत बच्चा जनने तक है। अर्थात् बच्चा पैदा होते ही उसकी इद्दत पूरी हो जाती है, जैसा कि सूरा तलाक़ में आया है–

«जो गर्भवती स्त्रियाँ हैं उनकी इद्दत बच्चा जनने तक है।» (सूरा–65, अत-तलाक़, आयत-4)

अगर किसी ऐसी स्त्री को तलाक़ हुई हो जिसके साथ शारीरिक सम्बन्ध न बनाया गया हो तो उसके लिए कोई इद्दत नहीं है, जैसा कि सूरा अल-अहज़ाब में आया है–

«ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, जब तुम ईमानवाली स्त्रियों से विवाह करो और फिर उन्हें हाथ लगाने से पहले तलाक़ दे दो, तो तुम्हारी तरफ़ से उनपर कोई इद्दत लाज़िम नहीं है, जिसकी पूरी होने की अपेक्षा तुम उनसे करो।» (सूरा–33, अल-अहज़ाब, आयत–49)

अगर किसी स्त्री के पति का देहान्त हो जाए तो उसकी इद्दत चार मास दस दिन है। जैसा कि सूरा-2, अल-बक़रा में आया है–

«तुममें से जिन लोगों का देहान्त हो जाए और अपने पीछे पत्नियाँ छोड़ें, तो वे स्त्रियाँ अपने आपको चार मास दस दिन प्रतीक्षा में रखें।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत 234)

और अगर पत्नी गर्भवती हो तो उसकी इद्दत बच्चा पैदा होने तक है जैसा कि सहीह हदीस में आया है कि एक औरत जिसका नाम सुबैया असलमिया था, उसके पति का देहान्त हो गया और दो-तीन दिनों बाद उसके यहाँ बच्चा पैदा हुआ। उसने यह बात नबी (ﷺ) को बताई, तो आप (ﷺ) ने उसे दूसरा विवाह करने की अनुमति दे दी। (बुख़ारी, 5320)

यहाँ इद्दत बिताने की जिन दशाओं का वर्णन हुआ है, उन दशाओं में यथाविधि इद्दत पूरी होने के बाद ही स्त्रियाँ दूसरी शादी कर सकती हैं। इद्दत की अवधि में स्त्रियों को पति के घर से निकाला नहीं जा सकता है, बल्कि इस बीच पति की ओर से उनको रोटी, कपड़ा और मकान की सुविधा उपलब्ध कराना अनिवार्य है।

इद्दत पूरी करने के बाद वे स्त्रियाँ अपनी विरासत लेकर अपने माता-पिता के घर चली जाएँगी। और फिर अगर चाहें तो दोबारा विवाह कर लें ताकि नए जीवन की शुरूआत कर सकें। इस प्रकार एक स्त्री चाहे तलाक़शुदा हो अथवा विधवा, इस्लामी समाज में अपने पूरे अधिकार के साथ नए रूप से जीवन व्यतीत कर सकती है, क्योंकि अब उस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं, जैसा कि दूसरे धर्मों या समाजों में उन पर लगाया जाता है।

इरम

'आद' नामक जाति इरम के नाम से भी मशहूर है, जो पर्वतों में बड़े-बड़े स्तम्भ बनाकर अपने घर बनाती थी, जिसका पूरा वर्णन आद शब्द में यथास्थान देखा जा सकता है। क़ुरआन में एक स्थान पर इरम के विषय में बताया गया है–

«इरम जाति जो स्तम्भों से जानी जाती है।» (सूरा–89, अल-फ़ज्र, आयत–7)

यह इरम क्या है ? कुछ विद्वानों का विचार है कि उनमें से किसी व्यक्ति का नाम इरम था और उसी के नाम पर उसकी पूरी जाति को इरम कहा जाने लगा। कुछ दूसरे विद्वानों का विचार है कि यह संकेत है पर्वतों में घर बनाकर रहने वालों की ओर, जिसको इबरानी भाषा में रशम कहते हैं, जिसका अर्थ है चिह्न। यह उसी आद जाति की ओर संकेत करता है जो पहाड़ों में अपना घर बनाकर रहा करते थे, जिसको आज मदायन सालेह कहते हैं। इनके घरों पर आज भी आरामी तथा समूदी भाषा में कतबे (शिलालेख) पाए जाते हैं।

इशा

इशा उस नमाज़ को कहते हैं जो रात में पढ़ी जाती है। क़ुरआन में इशा की नमाज़ का वर्णन इस प्रकार आया है–

«ऐ ईमान लानेवालो, जो तुम्हारी मिल्कियत में हों और तुममें से जो अभी युवावस्था को न पहुँचे हों, उनको चाहिए कि तीन समयों में तुमसे अनुमति लेकर तुम्हारे पास

आया करें : फ़ज्र की नमाज़ से पहले, और दोपहर को जब तुम (आराम के लिए) अपने कपड़े उतारकर रख देते हो, और इशा की नमाज़ के बाद। ये तीन समय तुम्हारे लिऐ परदे के हैं।» (सूरा–24, अन-नूर, आयत–58)

इस आयत से स्पष्ट होता है कि इशा की नमाज़ रात्रि की अन्तिम नमाज़ है, जिसके बाद सोने का आदेश है।

इशा की नमाज़ अल्लाह और बन्दे के बीच सम्बन्ध जोड़ने का उत्तम ज़रीआ है, ताकि दिन भर काम करने के पश्चात् रात्रि को सोने से पहले बन्दा अल्लाह को याद कर ले, और उसकी ओर अपना ध्यान लगाकर सो जाए। इसी कारण सहीह हदीसों में आया है कि नबी (ﷺ) इशा की नमाज़ देर से पढ़ना पसन्द करते थे, ताकि उसके पश्चात् सो जाएँ और सांसारिक बातों की आवश्यकता न रहे, फिर तहज्जुद की नमाज़ के लिए उठ सकें। (सहीह बुख़ारी, 547, सहीह मुस्लिम, 647)

परन्तु अगर कोई समस्या पैदा हो जाती थी तो आप (ﷺ) रात में जागकर उसको सुलझाने का प्रयास करते थे। (तिर्मिज़ी, 169)

इशा की नमाज़ का समय उस समय से प्रारम्भ होता है, जब तीसरी तारीख़ का चाँद डूबने लगे, और इसका अन्तिम समय आधी रात तक है। परन्तु अगर किसी कारण कोई इस समय तक न पढ़ सका हो तो उसके लिए उचित है कि फ़ज्र की नमाज़ से पहले पढ़ ले, जैसा कि सहीह हदीस में आया है–

"एक नमाज़ का समय उस समय तक रहता है जब तक दूसरी नमाज़ का समय न आ जाए।"

जैसे इशा की नमाज़ का समय उस समय तक रहता है जब तक कि फ़ज्र की नमाज़ का समय न आ जाए। परन्तु अधिकतर विद्वान समय होते ही नमाज़ अदा कर लेने को प्राथमिकता देते हैं यदि किसी कारणवश देर हो जाए तो अलग बात है।

इशा की नमाज़ की महत्तवता– सहीह हदीसों में इशा की नमाज़ की बड़ी महत्तवता बताई गई है, जैसे एक हदीस में आया है–

"मुनाफ़िक़ों के लिए इशा और फ़ज्र की नमाज़ बड़ी भारी पड़ती है, अगर उनको पता चल जाए कि इन नमाज़ों का कितना पुण्य है तो पैरों को घसीटते हुए आएँ।" (बुख़ारी, 657 तथा मुस्लिम, 651)

इसी प्रकार एक दूसरी हदीस में आया है–

"जिसने इशा की नमाज़ जमाअत से पढ़ी उसने मानो आधी रात तक नमाज़ पढ़ी और जिसने इशा की नमाज़ जमाअत के साथ और फ़ज्र की नमाज़ भी जमाअत के साथ पढ़ी तो वह मानो पूरी रात ही नमाज़ पढ़ता रहा।" (मुस्लिम, 656)

इमरान

कुरआन में इमरान का उल्लेख तीन बार हुआ है–

1. **«अल्लाह ने आदम, नूह, इबराहीम की संतान तथा इमरान की संतान को सारे संसार में रहनेवालों में से चुन लिया।»** (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–33)
2. **«जब इमरान की पत्नी ने कहा, मेरे रब! जो (बच्चा) मेरे गर्भ में है, मैं उसे तेरे लिए मनौती मानकर स्वतंत्र करती हूँ। अतः तू उसे मेरी ओर से स्वीकार कर। निस्सन्देह तू सब कुछ सुनता और जानता है।»** (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–35)
3. **«इमरान की पुत्री मरयम को याद करो जिसने अपनी मर्यादा की रक्षा की थी। फिर हमने उसके भीतर अपनी रूह फूँक दी। उसने अपने 'रब' के बोलों तथा किताबों की पुष्टि की, और वह बन्दगी करनेवालों में से थी।»** (सूरा–66, अत-तहरीम, आयत–12)

आख़िर की जिन दो आयतों में इमरान का वर्णन आया है, वे मरयम के पिता हैं। परन्तु पहली आयत में जिस इमरान का उल्लेख आया है, वे मरयम के पिता भी हो सकते हैं (और यही अधिकतर भाष्यकारों का विचार है), और मूसा तथा हारून के पिता भी हो सकते हैं। क्योंकि 'बाइबल' से पता चलता है कि मूसा तथा हारून के पिता का नाम भी 'इमरान' था। इसलिए उनके वंश को इस प्रकार बताया गया है –

याक़ूब
↓
लावी
↓
क़हात
↓
इमरान
↓
मरयम   हारून   मूसा

(बाइबल, इतिहास, 6:1-3)
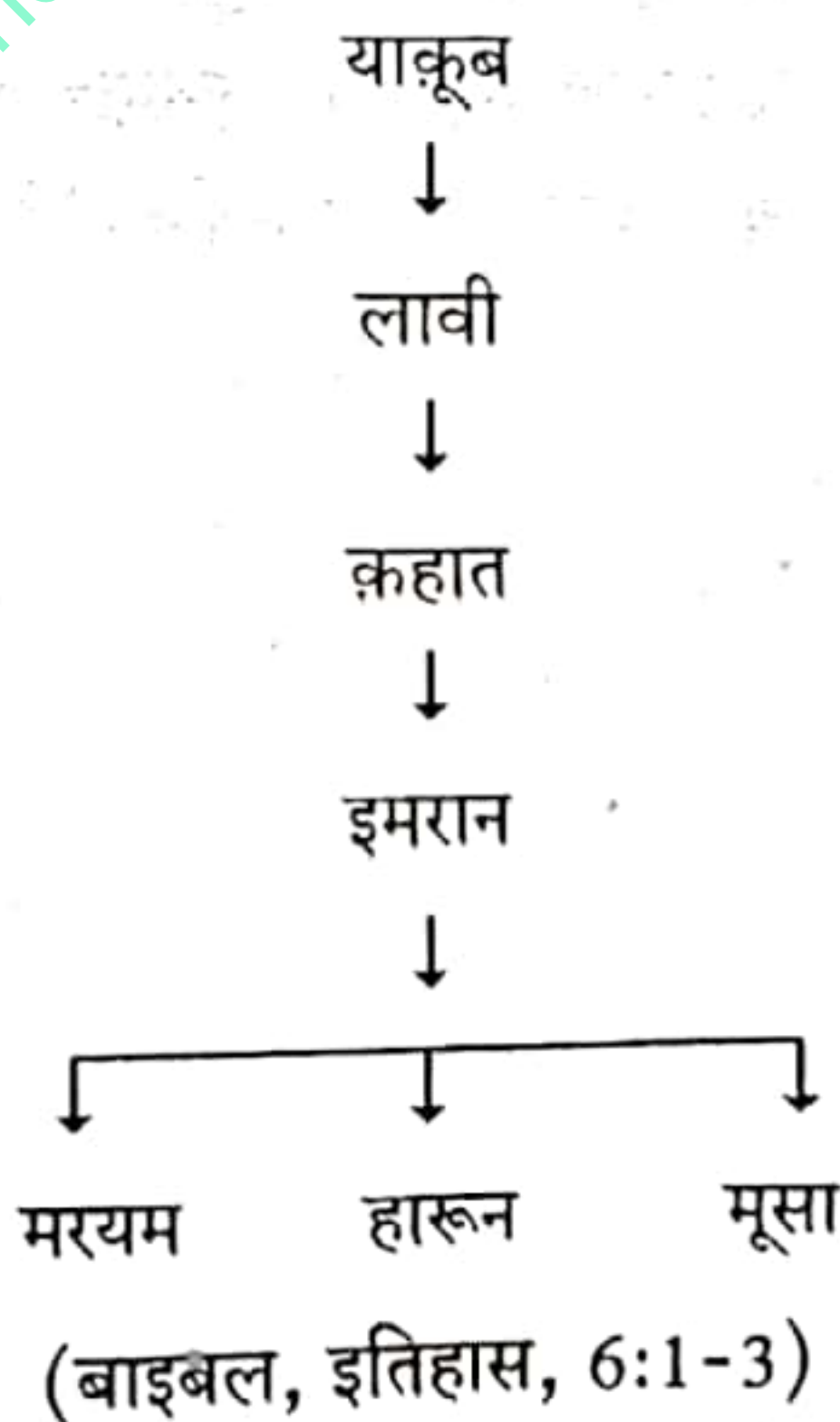
परन्तु पहला विचार ज़्यादा सहीह मालूम होता है, क्योंकि मूसा स्वयं इबराहीम के वंश से थे और बनी-इसराईल के सारे नबी इबराहीम (ﷺ) के वंश से आए और बनी-इसराईल के अन्तिम नबी ईसा (ﷺ) थे, जिनके नाना का नाम इमरान था। अल्लाह ने ईसा तथा उनकी माँ को सारे संसार में से चुन लिया था।

और फिर इबराहीम (ﷺ) के पुत्र इसमाईल (ﷺ) के वंश से अन्तिम नबी मुहम्मद (ﷺ) आए। और दोनों को अल्लाह ने विशेष रूप से अपना संदेश पहुँचाने के लिए चुन लिया।

इंशाअल्लाह

मुसलमानों को आदेश दिया गया है कि यदि उनको कोई काम भविष्य में करना हो, चाहे वह निकट भविष्य हो या दूर भविष्य, तो 'इंशाअल्लाह' अवश्य कहना चाहिए जिसका अर्थ है, 'अगर अल्लाह की इच्छा हुई।' अथवा 'यदि ईश्वर ने चाहा'। क़ुरआन में है—

«किसी काम को करने के लिए कदापि यह न कहो कि 'मैं कल इसे कर दूँगा।' बल्कि अल्लाह की इच्छा ही लागू होती है।» (सूरा–18, अल-कहफ़, आयतें–23-24)

कल से तात्पर्य भविष्य है, चाहे निकटवर्ती समय हो या दूरवर्ती। कोई यदि 'इंशाअल्ला' कहना भूल जाए तो जब भी याद आए कह ले—

«जब तुम भूल जाओ, तो अपने रब को याद कर लो।» (सूरा–18, अल-कहफ़, आयत–24)

यह इसलिए कि अल्लाह सर्व-शक्तिमान है और मनुष्य निर्बल है। इसलिए जो कुछ कोई मनुष्य चाहे वह उस समय तक उसे नहीं कर सकता जब तक अल्लाह की इच्छा न हो। इस लिए हमें शिक्षा दी गई है कि कोई भी काम जो भविष्य में करना हो उसके लिए 'इंशाअल्लाह' कह लेना चाहिए।

ई
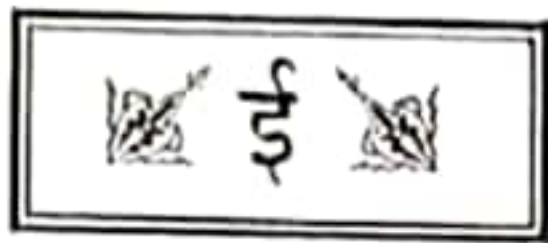
ईमान

ईमान का अर्थ है विश्वास और आस्था। इस विश्वास और आस्था के लिए तीन बातें अनिवार्य हैं –

प्रथम : जिस बात पर विश्वास किया जाए उसको ज़बान से दुहराया भी जाए।

द्वितीय : जिस आस्था को ज़बान से व्यक्त किया जाए उसे दिल से भी माना जाए। केवल ज़बान से कह देने से विश्वास नहीं किया जा सकता।

तृतीय : जिस आस्था को ज़बान से व्यक्त किया हो और दिल से भी माना हो उसी आस्था के अनुसार जीवन व्यतीत किया जाए।

चूँकि ईमान इस्लाम की जड़ और बुनियाद की हैसियत रखता है इसलिए इसका बड़ा महत्व है। इस्लाम में इसे प्रधानता प्राप्त है, क्योंकि इसके बिना कोई व्यक्ति मुसलमान नहीं हो सकता। इसलिए संक्षेप में ईमान के स्तम्भों का वर्णन किया जा रहा है, जिनकी संख्या छह है –

❁ ईमान का प्रथम स्तम्भ

अल्लाह पर ईमान लाना ईमान का प्रथम स्तम्भ है। अल्लाह पर ईमान यूँ तो सारे धर्मों में पाया जाता है, बल्कि यूनान के वे दार्शनिक भी, जो किसी धर्म पर विश्वास नहीं करते थे अल्लाह पर ईमान रखते थे। इसी प्रकार वे प्राचीन जातियाँ भी जिन तक ज्ञान का प्रकाश नहीं पहुँचा था, अल्लाह पर विश्वास रखती थीं चाहे वे सिंध की घाटियों में हों या मिस्र के रेगिस्तानों में, परन्तु इस्लाम जिस अल्लाह पर विश्वास का आदेश देता है उसके तीन महत्त्वपूर्ण गुण हैं, जिनसे अधिकतर जातियाँ भटक गई थीं।

प्रथम गुण : यह कि अल्लाह इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति करनेवाला है, अर्थात् यह ब्रह्माण्ड स्वयं उत्पन्न नहीं हो गया, और न ही किसी आकस्मिक घटना के द्वारा वुजूद में आया, बल्कि अल्लाह ने इसे एक विशेष योजनानुसार पैदा किया, और हर चीज़ को सही अनुपात के साथ बनाया। क़ुरआन ने विभिन्न स्थानों पर इस विषय पर भरपूर रौशनी डाली है –

«वास्तव में तुम्हारा पालनहार अल्लाह ही है, जिसने आकाशों और पृथ्वी को छह दिनों में पैदा किया, फिर वह अपने राजसिंहासन पर विराजमान हुआ। जो रात को दिन पर ढाँक देता है और फिर दिन रात के पीछे दौड़ा चला आता है। जिसने सूर्य, चन्द्रमा और

तारे पैदा किए। सब उसके आदेश के अधीन हैं।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–54, तथा सूरा–10, यूनुस, आयत–3; सूरा–11, हूद, आयत–7; सूरा–25, अल-फ़ुरक़ान आयत–59 और सूरा–57, अल-हदीद, आयत–4)

द्वितीय गुण : यह कि जिस अल्लाह ने इस ब्रह्माण्ड को बनाया, वही इसे चला भी रहा है। इसकी देख-भाल भी कर रहा है। पैदा करने के बाद एक क्षण के लिए भी ग़ाफ़िल नहीं हुआ –

«वह कार्य की व्यवस्था करता है आकाश से धरती तक–फिर सारे मामले उसी की तरफ़ लौटते हैं—एक दिन में, जिसकी माप तुम्हारी गणना के अनुसार एक हज़ार वर्ष है।» (क़ुरआन, सूरा–32, अस-सजदा, आयत–5)

«उनसे पूछो, ''कौन तुमको आकाश और धरती से जीविका देता है? सुनने और देखने की शक्तियाँ किसके अधिकार में हैं? कौन निर्जीव में से सजीव को, और सजीव में से निर्जीव को निकालता है? और कौन यह सारा इन्तिज़ाम चला रहा है?'' वे अवश्य कहेंगे, ''अल्लाह''। कहो, ''फिर उससे क्यों नहीं डरते।''» (क़ुरआन, सूरा–10, यूनुस, आयत–31)

तृतीय गुण : यह कि जब उसी ने हमको और इस ब्रह्माण्ड को पैदा किया, और वही चला रहा है और वही सबको आवश्यकता के अनुसार जीविका भी दे रहा है, तो फिर वही पूज्य भी है। इसमें उसका कोई साझी कैसे हो सकता है? क़ुरआन और नबी (ﷺ) ने इस विषय को विभिन्न रूपों में इस प्रकार प्रकट कर दिया है कि अब उसके बाद किसी और की शिक्षा तथा नसीहत की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि एकेश्वरवाद इस्लाम का मूल विषय है और यही सारे नबियों की दावत है कि अल्लाह को छोड़कर किसी और की उपासना न की जाए, जो कुछ माँगना है उसी से माँगा जाए।

❁ ईमान का दूसरा स्तम्भ

फ़रिश्तों पर विश्वास करना, जैसा कि क़ुरआन की विभिन्न आयतों में आया है –

«रसूल उस चीज़ पर ईमान लाया, जो उसके पालनहार की ओर से उसपर उतारी गई। और प्रत्येक ईमानवाला भी ईमान लाया अल्लाह पर, उसके फ़रिश्तों पर, उसकी किताबों पर और उसके रसूलों पर।» (सूरा–2 अल-बक़रा, आयत–285)

सूरा निसा में है –

«जिस व्यक्ति ने अल्लाह का, उसके फ़रिश्तों का, उसकी किताबों का, उसके रसूलों का तथा क़ियामत के दिन का इनकार किया वह भटककर बहुत दूर जा गिरा।» (सूरा-4,अन-निसा, आयत-136)

अल्लाह ने इन फ़रिश्तों को भिन्न-भिन्न कामों पर लगा रखा है और वे वही करते हैं जिनका उनको आदेश दिया जाता है।

«ऐ ईमानवालो, अपने आपको और अपनी संतान को उस आग से बचाओ जिसका ईंधन मनुष्य और पत्थर होंगे, जिसपर कठोर और प्रबल फ़रिश्ते नियुक्त किए गए हैं। उनको जिसका हुक्म दिया जाता है, उसमें अल्लाह की अवज्ञा नहीं करते और करते वही हैं जिसका उनको हुक्म दिया जाए।» (सूरा–66, अत-तहरीम, आयत–6)

फ़रिश्ते अल्लाह की आज्ञानुसार आकाशों और पृथ्वी का इन्तिज़ाम चलाते हैं, इसी की ओर सूरा नाज़िआत में संकेत किया गया है –

«डूबकर कठोरता से खींचने वालों की सौगन्ध। बंधन खोलकर छुड़ानेवालों की सौगन्ध। तथा तैरते फिरनेवालों की सौगन्ध। फिर दौड़कर आगे बढ़नेवालों की सौगन्ध। फिर व्यवस्था चलानेवालों की सौगन्ध।» (सूरा–79, अन-नाज़िआत, आयत–5)

इन पाँच आयतों में फ़रिश्तों के कुछ कामों का वर्णन है, जिनकी क़सम खाकर अल्लाह बताना चाहता है कि क़ियामत अवश्य आएगी और उस दिन सत्य के इनकारियों की क्या दशा होगी ?

यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि व्यवस्था तो अल्लाह चला रहा है, फिर फ़रिश्तों के व्यवस्था चलाने का क्या अर्थ है ? इसका उत्तर यह है कि वास्तविक व्यवस्था चलानेवाला तो अल्लाह ही है, परन्तु उसी की आज्ञानुसार फ़रिश्ते अपने-अपने कर्तव्यों को पूरा कर रहे हैं और जो कुछ अल्लाह की ओर से फ़रमान जारी होता है, फ़रिश्ते तुरन्त पूरा करने में लग जाते हैं, ज़र्रा बराबर भी सरकशी नहीं करते। यहीं आकर कुछ जातियाँ भटक गईं और वे फ़रिश्तों की पूजा करने लगीं, ताकि वे उनके लिए अल्लाह से सिफ़ारिश कर दें। क़ुरआन इसका खंडन करते हुए कहता है –

«वे लोग अल्लाह के सिवा ऐसी चीज़ों की पूजा करते हैं जो न उन्हें हानि पहुँचा सकती हैं, और न कुछ फ़ायदा पहुँचा सकती है। और ये कहते हैं, ''ये अल्लाह के यहाँ हमारे सिफ़ारिशी हैं।'' कह दो, ''क्या तुम अल्लाह को उस बात का समाचार दे रहे हो जिसका अस्तित्व न आकाशों में है और न धरती में! महिमावान है वह और उसकी उच्चता के प्रतिकूल है वह शिर्क, जो वे कर रहे हैं।» (सूरा–10, यूनुस, आयत–18)

इबादत तो हर हाल में अल्लाह ही की करनी है, जो सबका स्वामी और पालनहार है, उसके साथ कोई शरीक नहीं है। जहाँ तक फ़रिश्तों की बात है, तो सभी फ़रिश्ते दिन-रात अल्लाह की आज्ञा का पालन कर रहे हैं। जिबरील, मीकाईल इसराफ़ील इत्यादि मुख्य फ़रिश्ते हैं, जो अपने-अपने कामों में हर समय लगे हुए हैं।

✻ ईमान का तीसरा स्तम्भ

अल्लाह की किताबों पर ईमान अर्थात् अल्लाह ने अपने नबियों पर जो किताबें उतारी हैं उनपर संक्षिप्त तथा विस्तृत ईमान।

संक्षिप्त ईमान यह कि अल्लाह ने अपने रसूलों पर किताबें उतारीं ताकि लोग इनके द्वारा प्रकाश प्राप्त करें और सत्य मार्ग को अपनाएँ, और विस्तारपूर्वक ईमान यह कि जिन किताबों का वर्णन क़ुरआन में आया है उनपर ईमान लाएँ कि वे किताबें वास्तव में अल्लाह की ओर से अवतरित हुई हैं। इन किताबों में से कुछ का वर्णन क़ुरआन मजीद में आया है इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

1. **तौरात :** यह किताब अल्लाह ने मूसा (عليه السلام) को प्रदान की जिसमें मार्गदर्शन और प्रकाश है –

   «निस्संदेह हमने तौरात उतारी, जिसमें मार्गदर्शन और प्रकाश है। अल्लाह के आज्ञाकारी नबी यहूदियों का न्याय इसी के अनुसार किया करते थे। और अल्लाहवाले तथा धार्मिक विद्वान भी ऐसा ही करते थे, क्योंकि उन्हें अल्लाह की इस किताब की सुरक्षा का आदेश दिया गया था।» (क़ुरआन, सूरा–5, अल-माइदा, आयत–44)

   तौरात के विषय में अधिक जानकारी के लिए देखिए 'तौरात'।

2. **इंजील :** यह वह धर्मशास्त्र है जिसे अल्लाह ने ईसा (عليه السلام) को प्रदान किया था। इसमें भी मार्गदर्शन तथा प्रकाश था, और 'तौरात' की पुष्टि करता था। (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–46)

   विस्तृत जानकारी के लिए देखें इंजील

3. **जबूर :** यह वह किताब है जो अल्लाह ने अपने नबी दाऊद (عليه السلام) को प्रदान की थी। (सूरा–4, अन-निसा, आयत–63) अधिक जानकारी के लिए देखें ज़बूर

4. **इबराहीम तथा मूसा के सहीफ़े (धर्म ग्रन्थ) :** इबराहीम (عليه السلام) तथा मूसा (عليه السلام) को सहीफ़े भी दिए गए थे जिनका वर्णन क़ुरआन में इस प्रकार किया गया है–

   «क्या उसको उन बातों की ख़बर नहीं पहुँची जो मूसा की किताबों में है और इबराहीम की किताबों में भी, जिसने अल्लाह के आज्ञापालन का हक़ अदा कर दिया ? यह कि कोई किसी दूसरे का बोझ नहीं उठाएगा और यह कि मनुष्य को वही मिलता है जिसकी वह चेष्टा करता है। और यह कि उसकी चेष्टा जल्द ही देखी जाएगी। फिर उसका पूरा-पूरा बदला दिया जाएगा। और यह कि तुम्हें अपने 'रब' के पास ही जाना है। और यह कि वही हँसाता और रुलाता है। और यह कि वही मारता और जिलाता है। और यह कि उसी ने दोनों जोड़े, स्त्री तथा पुरुष, बनाए।» (सूरा–53, अन-नज्म, आयतें–36-45)

सूरा अल-आला में आया है –

«परन्तु तुम तो सांसारिक जीवन ही को प्राथमिकता देते हो, जबकि आख़िरत का जीवन कहीं अधिक उत्तम और स्थायी है। निस्संदेह यह बात पहले के धर्मग्रन्थों में भी है, इबराहीम तथा मूसा के धर्मग्रंथों में।» (सूरा–87, अल-आला, आयतें–16-19)

5. **अल्लाह की अन्तिम पुस्तक क़ुरआन** : यह पिछली सभी किताबों की पुष्टि करती है और उन किताबों में जो परिवर्तन कर दिए गए हैं, उनका संशोधित रूप प्रस्तुत करती है और सुदृढ़ तथा अटल तर्कों एवं प्रमाणों के साथ यह बताती है कि इस अन्तिम पुस्तक के आने के बाद पिछली सारी पुस्तकें निरस्त हो गईं, क्योंकि क़ुरआन उन प्राचीन ग्रंथों का अन्तिम, विशुद्ध परिष्कृत, परिवर्द्धित और सर्वोत्तम संस्करण है। इसमें एक बिन्दु तक का परिवर्तन नहीं हुआ है और ईश्वर की इच्छा से क़ियामत तक यह क़ुरआन इसी रूप में रहेगा। इसी लिए इसके होते हुए किसी और धार्मिक ग्रंथ की आवश्यकता नहीं है।

यह है अल्लाह की किताबों पर व्यापक एवं विस्तार-पूर्वक ईमान का अर्थ। इसी में वे पुस्तकें भी हैं, जिनका वर्णन क़ुरआन में नहीं आया है, और वे नबियों को दी गई थीं, परन्तु हम किसी भी पुस्तक को अपनी ओर से अल्लाह की पुस्तक होने की घोषणा नहीं कर सकते, क्योंकि इसका सही ज्ञान केवल अल्लाह ही को है।

❋ ईमान का चौथा स्तम्भ

रसूलों पर ईमान : इसका अर्थ है कि यह विश्वास किया जाए कि मनुष्यों की हिदायत के लिए अल्लाह ने विभिन्न भागों में रसूल भेजे, जिन्होंने अल्लाह की आज्ञानुसार मनुष्यों को दो प्रकार की शिक्षाएँ दीं।

एक यह कि अल्लाह के सभी रसूलों ने अपनी जातियों को तौहीद (एकेश्वरवाद) की शिक्षा दी। अब अगर किसी रसूल की शिक्षा में इसके विरुद्ध कोई बात मिलती है तो इसे तहरीफ़ या परिर्वतन कहा जाएगा और अगर किसी की शिक्षा में एकेश्वरवाद के स्थान पर मूर्तिपूजा और एक अल्लाह के स्थान पर बहुत-से मनगढ़न्त पूज्यों की पूजा और अनेकेश्वरवाद की शिक्षा मिलती है या एकेश्वरवाद की शिक्षा के विपरीत बात मिलती है या अल्लाह के विषय में उसकी शिक्षा है ही नहीं तो उसको नबी या रसूल नहीं माना जा सकता। यह एक ऐसी कसौटी है जिसपर प्रत्येक धर्मप्रचारक ऋषि-मुनि आदि को परखा जाता है।

नबियों की दूसरी शिक्षा समाज में फैली हुई बुराइयों की निन्दा करना और लोगों को सदाचार ग्रहण करने की शिक्षा देना है। और अपने माननेवालों के लिए ईश्वरीय जीवन-व्यवस्था को लागू करना है। जिन प्रसिद्ध नबियों का क़ुरआन में वर्णन आया है उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं : इबराहीम, इस्माईल, इसहाक़, याक़ूब (عليهم السلام) और उनकी संतान में आनेवाले नबी। इसी प्रकार मूसा तथा ईसा (عليهم السلام)। (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–136)

इन्हीं नबियों में दाऊद, सुलैमान, अय्यूब, यूसुफ़, हारून, ज़करिया, यह्या, इलयास, यसअ, यूनुस, लूत (عليهم السلام) इत्यादि हैं। उपर्युक्त नबियों पर और उन नबियों पर जिनका वर्णन क़ुरआन में विभिन्न स्थानों पर आया है जिनकी संख्या लगभग 25 है और उन नबियों पर जिनका वर्णन क़ुरआन में नहीं आया है, ईमान लाना अनिवार्य है। इनमें से किसी नबी का इनकार करना सब नबियों का इनकार करने के बराबर है। क़ुरआन में इसकी घोर निन्दा की गई है –

«जो अल्लाह और उसके रसूलों के साथ कुफ़्र करते हैं और अल्लाह तथा उसके रसूलों के बीच विच्छेद करना चाहते हैं, और कहते हैं, ''हम किसी को मानते हैं और किसी को नहीं मानते, और चाहते हैं कि इसके बीच का कोई रास्ता अपनाएँ, यही लोग पक्के विधर्मी हैं और इस्लाम विरोधियों के लिए हमने अपमानजनक यातना तैयार कर रखी है।» (सूरा–4, अन-निसा, आयतें–150-151)

इन नबियों में से अन्तिम नबी मुहम्मद (ﷺ) हैं, जो सारे इनसानों के लिए नबी बनाकर भेजे गए हैं। (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–158)

अब आप (ﷺ) के बाद कोई नबी नहीं आएगा क्योंकि आपको अल्लाह ने 'ख़ातिमुन्नबिय्यीन' (नबियों के समापक) बना कर भेजा है। (सूरा–33, अल-अहज़ाब, आयत–40)

आपके द्वारा इस्लाम धर्म को पूर्ण कर दिया गया, लोगों को धर्म समझने और जानने के लिए दो ऐसे साधन दे दिए जिनके होते हुए अब किसी अन्य साधन की आवश्यकता नहीं रहती। वे दो साधन ये हैं: क़ुरआन और हदीस।

❁ ईमान का पाँचवाँ स्तम्भ

अन्तिम दिन पर ईमान : यह ईमान का पाँचवा स्तम्भ है। इसका सामान्य अर्थ है कि इस जीवन के आगे एक और जीवन है जो मृत्यु के पश्चात् आरम्भ होगा, और इस शरीर के साथ क़ियामत के दिन सबको उनकी क़ब्रों से उठाया जाएगा–

«जिस दिन ये क़ब्रों से तेज़ी में निकलेंगे, जैसे वे किसी स्थान पर तीव्र गति से जा रहे हों।» (क़ुरआन, सूरा–70, अल-मआरिज, आयत-43)

और फिर सबका हिसाब लिया जाएगा। ईमानवाले और सुकर्मी स्वर्ग में जाएँगे। कुफ़्र करनेवाले और कुकर्मी नरक में जाएँगे। और फिर एक नया जीवन शुरू होगा, जो सदैव रहेगा। उस दिन कहा जाएगा, ''ऐ स्वर्गवालो ! तुम सदैव इसमें रहोगे और अब तुम्हें मृत्यु नहीं आएगी। और ऐ नरकवालो ! तुम सदैव इसमें रहोगे तुम्हें मृत्यु नहीं आएगी।'' उसके बाद नबी (ﷺ) ने यह आयत पढ़ी–

«उन्हें पश्चात्ताप के दिन से डराओ जब फ़ैसला कर दिया जाएगा। और उनका हाल यह है कि वे अचेतनावस्था में पड़े हुए हैं, और ईमान नहीं लाते हैं।» (क़ुरआन, सूरा–मरयम, आयत-39)

इस्लाम-विरोधियों को यह संदेह था कि क्या मरने के बाद दुबारा उठाया जाएगा! जैसा कि क़ुरआन में आया है –

«कहते थे, "क्या जब हम मर जाएँगे और मिट्टी और हड्डियाँ होकर रह जाएँगे तो क्या हम फिर (जीवित कर) उठाए जाएँगे? क्या हमारे पूर्वज भी?" कह दो, "हाँ, अगले और पिछले सभी लोग इकट्ठा किए जाएँगे, एक विशेष समय पर, जिसका दिन निश्चित है।"» (सूरा–56, अल-वाक़िया, आयतें–47-50)

क़ुरआन में एक और जगह कहा गया है –

«क़ाफ़। गवाह है क़ुरआन मजीद! — बल्कि उन्हें तो इस बात पर आश्चर्य हुआ कि उनके पास उन्हीं में से एक सावधान करनेवाला आ गया। फिर इनकार करनेवाले कहने लगे, "यह तो आश्चर्य की बात है। क्या जब हम मर जाएँगे और मिट्टी हो जाएँगे (तो फिर हम जीवित होकर पलटेंगे)? यह पलटना तो बहुत दूर की बात है!" हम जानते हैं धरती उनमें जो कुछ कमी करती है, और हमारे पास सुरक्षित रखनेवाली एक किताब भी है।» (सूरा–50, क़ाफ़, आयतें–1-4)

क़ुरआन की मूल शिक्षाओं में से अन्तिम दिन पर ईमान भी है, क्योंकि इस संसार में जो कुछ किया जाता है उसका एक दिन अवश्य हिसाब देना है ताकि अत्याचारी को उसके अत्याचार का बदला दिया जा सके और सदाचारी को उसके सदाचार का। अगर ऐसा न हो तो फिर अच्छाई और बुराई का कोई अर्थ नहीं रहता, क्योंकि इस संसार में कभी किसी को पूर्ण न्याय नहीं मिल सकता है। इसलिए अन्तिम दिन (आख़िरत) होना अनिवार्य है।

❀ ईमान का छटा स्तम्भ

भाग्य पर विश्वास : भाग्य पर विश्वास वास्तव में अल्लाह के इस ब्रहमाण्ड का रचयिता होने पर विश्वास का एक भाग है। जैसा कि क़ुरआन में आया है –

«हमने हर चीज़ को एक विशेष अनुमान से रचा।» (सूरा–54, अल-क़मर आयत–49)

भाग्य पर विश्वास करने के लिए अनिवार्य है कि इन चार बातों पर विश्वास किया जाए –

1. जो हो चुका या जो अभी नहीं हुआ बल्कि भविष्य में होनेवाला है, अल्लाह को सबका ज्ञान है –

«निस्संदेह अल्लाह हर चीज़ का जाननेवाला है।» (क़ुरआन, सूरा–29, अल-अनकबूत, आयत-62)

«ताकि तुम जान लो कि अल्लाह को हर चीज़ पर सामर्थ्य प्राप्त है और यह कि अल्लाह अपने ज्ञान से हर चीज़ को घेरे हुए है। (अर्थात् कोई वस्तु उसके ज्ञान से बाहर नहीं है।» (क़ुरआन, सूरा–65, अत-तलाक़, आयत–12)

2. यह ईमान रखना कि अल्लाह ने सारी चीज़ों की 'तक़दीर' को 'लौहे-महफ़ूज़' (परिरक्षक) में लिख रखा है –

«तो इस्लाम-विरोधियों ने कहा, "यह तो बड़े आश्चर्य की बात है, भला जब हम मर जाएँगे और मिट्टी हो जाएँगे (तो फिर हम जीवित होकर पलटेंगे) यह तो पलटकर आना बुद्धि से परे की बात है।" हम जानते हैं जो कुछ धरती इनके शरीर में से खाती है। और हमारे पास एक परिरक्षक पुस्तक है।» (क़ुरआन, सूरा–50, क़ाफ़, आयतें–2-4)

इसी प्रकार सूरा या-सीन में आया है–

«हर चीज़ को हमने एक स्पष्ट किताब (लौहे-महफ़ूज़) में अंकित कर रखा है।» (क़ुरआन, सूरा–36, या. सीन., आयत–12)

और सूरा अल-हज में आया है –

«क्या तुम नहीं जानते कि अल्लाह जानता है जो कुछ आकाशों और धरती में है? निश्चय ही यह एक किताब (लौहे-महफ़ूज़) में है। निस्संदेह यह अल्लाह के लिए आसान है।» (क़ुरआन, सूरा–22, अल-हज, आयत–70)

और सूरा अल-अनआम में इस प्रकार आया है –

«धरती में चलनेवाला कोई भी जीवधारी और अपने दो परों से उड़नेवाला कोई भी पक्षी हो, इन सबके तुम्हारे जैसे ही गरोह हैं। हमने किताब (लौहे-महफ़ूज़) में कोई चीज़ लिखने से छोड़ी नहीं है, फिर वे अपने रब की ओर इकट्ठा किए जाएँगे।» (क़ुरआन, सूरा–6, अल-अनआम, आयत–38)

एक सहीह हदीस में आया है –

"*अल्लाह ने आकाशों और पृथ्वी को बनाने से पचास हज़ार वर्ष पूर्व हर प्राणी-वर्ग का भाग्य (तक़दीर) लिख दिया था और उसका अर्श पानी पर था।*" (सहीह मुस्लिम : 2653)

3. इस बात पर विश्वास कि संसार में अल्लाह जो चाहता है वही होता है, और जो नहीं चाहता वह नहीं होता –

«तुम कुछ भी नहीं चाह सकते परन्तु वही जो सारे संसार का 'रब' अल्लाह चाहे।» (क़ुरआन, सूरा–81, अत-तकवीर, आयत–29)

क्योंकि –

«अल्लाह जो कुछ चाहता है करता है।» (क़ुरआन, सूरा–22, अल-हज, आयत–18)

4. इस चीज़ पर ईमान कि अल्लाह ही समस्त सृष्टि का पैदा करनेवाला है –

«अल्लाह हर चीज़ का पैदा करनेवाला है और वही हर चीज़ का निरीक्षक है।» (क़ुरआन, सूरा–39, अज़-ज़ुमर, आयत–62)

«क्या तुम उनको पूजते हो, जिन्हें स्वयं तराशते हो, जबकि अल्लाह ने तुम्हें भी पैदा किया है और उनको भी जिन्हें तुम बनाते हो।» (क़ुरआन, सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयत–96)

भाग्य के चार प्रकार

क़ुरआन तथा हदीस की रौशनी में भाग्य को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है :

1. **सामान्य भाग्य :** जो सारी सृष्टि के लिए है, जिसको अल्लाह ने आकाशों और पृथ्वी के बनाने से पचास हज़ार वर्ष पूर्व ही लौहे-महफ़ूज़ में लिख दिया था।
2. **आयु-भाग्य :** गर्भस्थ बच्चे में जान डालने से लेकर उसकी मृत्यु तक जो कुछ उसके साथ होना है उसको लौहे-महफ़ूज़ में लिख दिया जाता है।
3. **वर्षीय भाग्य :** जो प्रत्येक वर्ष रमज़ान के महीने में ''लैलतुल-क़द्र'' में लिखा जाता है।
4. **दैनिक भाग्य :** अर्थात् प्रत्येक दिन जो कुछ होता है उसके भाग्य का लिखा जाना।

प्रत्येक प्राणी सर्वशक्तिमान द्वारा निर्धारित भाग्य के अनुसार जीवन यापन कर रहा है। वह किसी को रोगी बना रहा है तो किसी को चंगा; किसी को धनी बना रहा है तो किसी को निर्धन; किसी को रंक से राजा बना रहा है तो किसी को राजा से रंक। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में होनेवाले हर प्रकार के परिवर्तन उसी के आदेश तथा इच्छा से हो रहे हैं तथा रात-दिन का कोई क्षण ऐसा नहीं जो उसकी क्रियाशीलता से शून्य हो।

भाग्य पर ईमान लानेवाले के लिए ज़रूरी है कि वह अच्छे कामों को अल्लाह से सहायता माँगते हुए करे और बुरे कामों से अपने आपको रोके और अल्लाह से यह भी प्रार्थना करता रहे कि अच्छे कामों की ओर उसका मार्गदर्शन करे और बुरे कामों से बचाए, क्योंकि स्वयं उसको तो पता नहीं है कि लौहे-महफ़ूज़ में क्या लिखा हुआ है? इसलिए अपने लिखे पर धैर्य से काम ले और यह विश्वास रखे कि यह जो कुछ हो रहा है अल्लाह ही की ओर से है। इसलिए हर हाल में अपने आपको प्रसन्न रखे, उसी पर भरोसा करे, उसी से माँगे, और यह जान ले कि जो कुछ मिल गया उससे अधिक नहीं मिल सकता था और जो उसे मिलने से रह गया वह उसे मिल नहीं सकता था। भाग्य पर विश्वास वास्तव में अल्लाह के पालनहार एवं सर्वशक्तिमान होने पर ईमान है। इसलिए उसके निर्णय पर प्रसन्न रहना वास्तव में भाग्य पर विश्वास का आधार है।

सारांश यह कि भाग्य पर ईमान का अर्थ है कि हम इस बात पर ईमान रखें कि संसार में जो कुछ हो रहा है, वह अल्लाह की बनाई तक़दीर से ही हो रहा है। परन्तु हम कर्म को उसके करनेवाले की ओर सम्बद्ध करेंगे। इसलिए अच्छा करनेवाले को अच्छा कहेंगे, बुरा करनेवाले को बुरा। इसी प्रकार चोरी करनेवाले को दण्ड दिया जाएगा, क्योंकि अल्लाह ने उसे अधिकार दिया है कि वह अच्छे या बुरे कामों में से जिसपर चाहे अमल करे।

ईसा (عليه السلام)

ईसा (عليه السلام) महान पैग़म्बरों में से एक थे। ईसा (عليه السلام) बनी-इसराईल वंश के अन्तिम नबी थे। इतिहास गवाह है कि ईसा (عليه السلام) और पैग़म्बर मुहम्मद (ﷺ) के बीच, जिसकी समयावधि लगभग 570 वर्ष बनती है, कोई नबी नहीं आया।

ईसा (عليه السلام) के जीवन को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. उनका जन्म,
2. नबी होने की शुभ सूचना,
3. संसार से उनकी विदाई।

ईसा (عليه السلام) का जन्म एक बड़ा चमत्कार है। क्योंकि आप अल्लाह के एक शब्द 'कुन' (हो जा) से पैदा हुए और स्वयं इस बात का एलान किया कि मैं अल्लाह का बन्दा हूँ। उसके अतिरिक्त कोई उपास्य नहीं। क़ुरआन में इस घटना को बहुत विस्तार के साथ बयान किया गया है–

«याद करो जब फ़रिश्तों ने कहा : ऐ मरयम! अल्लाह अपनी ओर से तुझे अपने कलिमे की शुभ सूचना देता है। जिसका नाम मसीह, मरयम का पुत्र ईसा, होगा। वह संसार तथा परलोक में प्रतिष्ठित होगा, और (अल्लाह के) समीपवर्ती लोगों में से होगा।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–45)

यह कलिमा अल्लाह का शब्द 'कुन' (हो जा) कहना है, जिसके द्वारा कुछ भी हो जाता है। अल्लाह के लिए किसी भी प्रकार के असबाब (कारण) की आवश्यकता नहीं है।

जब जिबरील (عليه السلام) यह शुभ सूचना लेकर मरयम के पास गए तो वे घबरा गईं–

«इस किताब में मरयम की शुभ चर्चा करो। जब वह अपने लोगों से अलग हो गई, और पूर्व की ओर एक स्थान पर चली गई, और फिर उनसे परदा कर लिया। तब हमने उसके पास अपनी 'रूह' (अर्थात् जिबरील) को भेजा तो उसने उसके सामने एक पूरे मनुष्य का रूप धारण कर लिया। मरयम बोली, ''यदि तू अल्लाह का डर रखनेवाला है तो मैं तुझसे अल्लाह की पनाह माँगती हूँ।'' उसने कहा, ''मैं तो तेरे रब की ओर से भेजा हुआ हूँ, ताकि तुझे नेकी और भलाई में बढ़ा हुआ बालक दूँ।'' उसने कहा, ''मेरे यहाँ बालक कैसे जन्म लेगा, जबकि मुझे किसी मनुष्य ने छुआ तक नहीं, और न मैं कोई बदचलन हूँ।'' उसने कहा, ''ऐसा ही होगा, तेरे रब ने कहा है कि यह मेरे लिए सरल है।''» (क़ुरआन, सूरा–19, मरयम, आयत–16-21)

"फिलस्तीन का शहर बैत लहम"

"ईसा अलैहिस्सलाम का जन्म स्थान" (फ़िलस्तीन, नासिरा)

लोगों की ओर से मरयम पर आरोप और बालक का उत्तर –

«फिर वह उसको लिए हुए अपनी जातिवालों में आई, वे कहने लगे, "ऐ मरयम तूने तो बड़ा बुरा काम कर डाला। ऐ हारून की बहिन! न तेरा पिता कोई बुरा आदमी था, और न तेरी माता ही बदचलन थी।" तब उसने उस बालक की ओर संकेत किया। वे कहने लगे, "हम उससे कैसे बात करें जो अभी तक पालने में पड़ा हुआ एक नन्हा बच्चा है।" वह बोल उठा, "मैं अल्लाह का बन्दा हूँ। उसने मुझे किताब प्रदान की और मुझे नबी बनाया। और मुझे बरकतवाला बनाया, जहाँ भी मैं रहूँ। और मुझे नमाज़ और ज़कात की ताकीद की जब तक मैं जीवित रहूँ। और मुझे अपनी माता के साथ उत्तम व्यवहार करनेवाला बनाया, और मुझे अत्याचारी तथा बदनसीब नहीं बनाया, और सलाम है मुझपर जिस दिन मैं पैदा हुआ, और जिस दिन मेरा देहान्त होगा, और जिस दिन मैं जीवित करके उठाया जाऊँगा।" यह है वह सच्ची बात 'ईसा' मरयम के पुत्र के विषय में, जिसके बारे में वे झगड़ रहे हैं।» (क़ुरआन, सूरा–19, मरयम, आयतें-27-34)

ईसा (ﷺ) के बचपन के दिनों के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए बाइबल के अतिरिक्त हमारे पास कोई और साधन नहीं है। ईसा (ﷺ) के सम्बन्ध में बाइबल से पता चलता है कि मरयम अपने होनेवाले पति यूसुफ़ के साथ बालक को लेकर मिस्र चली गईं, क्योंकि रूमी राजा 'हेरोदेस' उनकी हत्या का षड्यंत्र रचने लगा था। वे मिस्र में कितने वर्ष रहे इस विषय में कोई ठोस ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलते, सिवाय इसके कि यदि हेरोदेस की मृत्यु-तिथि 4 ईसा पूर्व मान ली जाए, और ईसा की जन्म-तिथि 5 ईसा पूर्व मान ली जाए तो पता चलता है कि वे मिस्र में बहुत थोड़े दिन ही रह सके। रही ईसवी तारीख़ तो इसमें पाँच साल की ग़लती हो गई है जैसा कि स्वयं इसाई विद्वानों ने उल्लेख किया है। इसका विवरण मैंने अपनी पुस्तक 'यहूदिया तथा मसीहिया' में दिया है। वे हेरोदेस के देहान्त के बाद यरूशलम वापस आ गए, और नासिरा नगर में रहने लगे, जिसके कारण उनको नासिरी कहा जाता है, और इसी शब्द से नसारा बना, जिसका प्रयोग क़ुरआन में बार-बार किया गया है।

फिर यूसुफ़ का देहान्त हो जाता है, इसलिए वे अपनी और अपनी माता की जीविका के लिए बढ़ई का काम करने लगते हैं। वे शेष समय तनाख के अध्ययन में बिताते हैं, जो यहूदियों का धर्मशास्त्र है और मूसा (ﷺ) की तौरात बनी-इसराईल के नबियों की किताब तथा उनके इतिहास पर आधारित है। इसको आज Old Testament पुराना नियम के नाम से जाना जाता है।

बारह वर्ष की अवस्था से लेकर तीस वर्ष की अवस्था तक ईसा (ﷺ) के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती।

यूँ तो आपने अपने नबी होने की भविष्यवाणी बचपन में कर दी थी, जैसा कि वर्णन में कहा गया है। परन्तु जब आप तीस वर्ष के हुए तो उन्होंने नुबुव्वत का काम प्रारम्भ कर दिया। अर्थात अल्लाह का संदेश लोगों तक पहुंचाने लगे। इसी के साथ उनके द्वारा चमत्कार प्रकट होने लगते हैं–

«मरयम के पुत्र ईसा को खुली-खुली निशानियाँ प्रदान कीं, और 'रूहुलक़ुदुस' (जिबरील) के द्वारा उसकी सहायता की।» (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–87)

⁂ उनके चमत्कार :

यूँ तो बाइबल में उनके चमत्कार असंख्य बताए गए हैं। परन्तु क़ुरआन में उनके सात चमत्कारों का वर्णन आता है–

1. उनका पालने में बोलना। (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–110)
2. मिट्टी का पक्षी बनाकर उसमें आत्मा डालना, जो अल्लाह के आदेश से पक्षी बनकर उड़ने लगता है। (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–49)
3. जन्म से अंधे को स्वस्थ कर देना। (क़ुरआन, सूरा–3, आले-इमरान, आयत–49)
4. कोढ़ी को स्वस्थ कर देना। (क़ुरआन, सूरा–3, आले-इमरान, आयत–49)
5. मृतक को जीवित कर देना। (क़ुरआन, सूरा–3, आले-इमरान, आयत–49)
6. जो भोजन किया।
7. और जो घरों में सामान एकत्रित किया उसको बता देना। (क़ुरआन, सूरा–3, आले-इमरान, आयत–49)

इन चमत्कारों के द्वारा ईसा (عليه السلام) ने अपने संदेश का प्रचार प्रारम्भ किया।

बाइबल में आया है–

"ईसा सारे गिरजाघरों में घूमते-फिरते हुए उनके अराधनालयों (Sunagogues) में उपदेश करता, और राज्य का सुसमाचार प्रचार करता, और लोगों की हर प्रकार की बीमारी और दुर्बलता को दूर करता रहा।" (इंजील, मत्ती, 4:23)

ईसा (عليه السلام) बनी-इसराईल के लिए नबी बनाकर भेजे गए थे–

«जब मरयम के पुत्र ईसा ने कहा, "ऐ बनी-इसराईल! मुझे अल्लाह ने अपना रसूल बनाकर तुम्हारे पास भेजा है। और जो किताब मुझसे पहले आ चुकी है अर्थात् तौरात, मैं उसी का संदेश देता हूँ।» (क़ुरआन, सूरा–61, अस-सफ़्फ़, आयत–6)

«....'ईसा' बनी-इसराईल के लिए रसूल बनाकर भेजे गए।» (क़ुरआन, सूरा–3, आले-इमरान, आयत–49)

और इससे पहलेवाली आयत में बताया गया है–

«वह किताब, हिकमत, तौरात और इंजील की शिक्षा देगा।» (क़ुरआन, सूरा–3, आले-इमरान, आयत–48)

ईसा (ﷺ) तौरात ही की शिक्षा देंगे किसी और नियम की नहीं क्योंकि वही बनी-इसराईल के लिए जीवन बिताने का नियम है, और हिकमत के शास्त्र इंजील के द्वारा तौरात की हिकमतों को उजागर करेंगे। इससे साफ़ मालूम होता है कि ईसा (ﷺ) का संदेश सारे मनुष्यों के लिए नहीं है, बल्कि वह केवल बनी-इसराईल के लिए था।

मत्ती ने अपनी इंजील में 'कनानी स्त्री' की घटना का वर्णन किया है, जो ईसा (ﷺ) के पास आई और अपनी बेटी को दुष्टात्मा से बचाने के लिए प्रार्थना करने लगी, तो उन्होंने कहा–

"इसराईल के घराने की खोई हुई भेड़ों को छोड़ मैं किसी के पास नहीं भेजा गया।" (मत्ती, 15:24)

अर्थात् तुम इसराईली नहीं हो इसलिए मैं तुम्हारा इलाज नहीं कर सकता।

नबी मुहम्मद (ﷺ) के विषय में भविष्यवाणी : जिस नबी का संदेश सारे मनुष्यों के लिए है, उसके विषय में इंजील में जो भविष्यवाणी की गई थी उसको क़ुरआन ने इस प्रकार बयान किया है–

«एक रसूल की शुभ सूचना देता हूँ जो मेरे बाद आएगा जिसका नाम अहमद होगा।» (सूरा–61, अस-सफ़्फ़, आयत–6)

यहूदियों का दोनों की नुबूवत का इनकार : यहूदियों ने जहाँ अपने नबी ईसा (ﷺ) का इनकार कर दिया वहीं उन्होंने मुहम्मद (ﷺ) की नुबूवत का भी इनकार कर दिया। सामान्य रूप से देखा जाए तो दोनों के इनकार का कारण एक ही है। वह यह कि दोनों नबियों ने यहूदियों को उनके बुरे कर्मों पर टोका। दोनों ने अल्लाह की किताब पर सही अमल न करने पर उनकी कड़ी आलोचना की, बल्कि उनके विद्वानों ने उसमें जो परिवर्तन कर दिया था उसकी भी निन्दा की। सबसे बढ़कर यह कि दोनों ने उन्हें तौहीद की ओर बुलाया, जो सारे नबियों का संदेश था–

«निश्चय ही उन लोगों ने कुफ़्र किया जिन्होंने कहा, "अल्लाह तो मरयम का पुत्र मसीह ही है।" हालाँकि मसीह ने कहा था, "ऐ बनी-इसराईल! अल्लाह की इबादत करो, जो मेरा भी रब है, और तुम्हारा भी रब है। जो कोई अल्लाह के साथ किसी को शरीक करेगा, उसपर अल्लाह ने जन्नत हराम कर दी है, और उसका ठिकाना जहन्नम (आग) है और अत्याचारियों का कोई सहायक नहीं है।"» (क़ुरआन, सूरा–5, अल-माइदा, आयत–72)

यहूदियों का विचार था कि आनेवाला मसीह कोई राजा होगा, जो उनको दूसरों के अत्याचारों से मुक्ति दिलाएगा। परन्तु जब वह एक निर्धन घर में पैदा हुआ, स्वयं अपनी जीविका प्राप्त करने के लिए

बढ़ई का काम करने लगा और उनकी ग़लतियों पर टोकने लगा तो उन्होंने उसे ठुकरा दिया। और वे विभिन्न प्रकार से उसे सताने लगे, यहाँ तक कि वह यरूशलम के नष्ट होने की प्रार्थना करने लगा। बाइबल से इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं –

ईसा मसीह ने कहा, ''जब तुम यरूशलम को सेनाओं से घिरा हुआ देखो तो जान लेना कि उसका विनाश निकट है।'' (बाइबल, लूक़ा, 21:20)

''ऐ यरूशलम, ऐ यरूशलम! तू नबियों का क़ातिल है। जो तेरे पास भेजे जाते हैं, उन्हें तू पत्थरों से मार डालता है। कितनी बार मैंने चाहा कि जैसे मुर्ग़ी अपने बच्चों को अपने पंखों के नीचे इकट्ठा करती है, वैसे ही मैं तेरे बच्चों को इकट्ठा कर लूँ, परन्तु तूने न चाहा।'' (बाइबल, मत्ती, 23:37)

यहूदियों का एक सम्प्रदाय, जिसको फ़रीसी कहते हैं और उसका प्रादुर्भाव लगभग 135-105 ईसा पूर्व में हुआ, ईसा (عليه السلام) का कट्टर शत्रु था। यहाँ तक कि स्वयं ईसा (عليه السلام) ने इन कठोर शब्दों में उसकी निन्दा की–

''ऐ पाखंडी शास्त्रियो और 'फ़रीसियो', तुमपर हाय! तुम मनुष्यों के विरोध में स्वर्ग के राज्य का द्वार बन्द करते हो।''

''ऐ पाखंडी शास्त्रियो और फ़रीसियो, तुमपर हाय! तुम एक जन को अपने मत में लाने के लिए समुद्रों को लांघते और पृथ्वी की ख़ाक छानते हो।''

''ऐ अन्धे, अगुओ! तुमपर हाय!''

''ऐ पाखंडी, शास्त्रियो और फ़रीसियो, तुमपर हाय! तुम कटोरे और थाली को ऊपर-ऊपर से तो माँजते हो, परन्तु वे भीतर से लोभ और असंयम से भरे हैं।''

''ऐ पाखंडी शास्त्रियो और फ़रीसियो, तुमपर हाय। तुम चूना-पुती हुई क़ब्रों के समान हो, जो ऊपर से तो सुन्दर दिखाई देती हैं, परन्तु वे भीतर मुर्दों की हड्डियों और सब प्रकार की गन्दगियों से भरी हैं।''

''ऐ सांपों, ऐ करैतों के बच्चो! तुम नरक के दंड से कैसे बच सकोगे?'' (मत्ती, 23:13-33)

अधिक जानकारी के लिए देखिए : मत्ती, 5:20; 16:6, 11, 12; 23:1-39

और इन्हीं फ़रीसियों ने घिनावने षड्यंत्र के द्वारा रोमनी सम्राट से ईसा (عليه السلام) के लिए सलीब का हुक्म जारी कराया।

ईसा (عليه السلام) का इस संसार से अन्त : फ़रीसियों के उसी दल ने, जो ईसा (عليه السلام) का कट्टर शत्रु था, किसी प्रकार रूमी राजा को इस बात पर राज़ी कर लिया कि यह व्यक्ति जहाँ हमारे धर्म के विरुद्ध

है, वहीं देश के लिए भी बहुत बड़ा ख़तरा है, जिसके कारण राजा ने सलीब का हुक्म दे दिया। रूमी सेना ईसा (ﷺ) को तलाश करने लगी, लेकिन अल्लाह ने ईसा (ﷺ) का रूप 'यहूज़ाइस्ख़रयूती' नामक व्यक्ति में डाल दिया, क्योंकि इसी दुष्ट ने रूमी सेनाओं को ईसा (ﷺ) का पता बताया था। वह कहता रहा, "मैं ईसा नहीं हूँ।" परन्तु सैनिकों ने उसकी एक न सुनी, और उसको सलीब पर लटका दिया। (इंजील बरनाबास भाग 215 तथा 216)

क़ुरआन ने प्रत्यक्ष रूप से इस बात का वर्णन कर दिया है कि न तो वे लोग ईसा को क़त्ल कर सके, और न ही उनको सलीब दे सके –

«न तो उन्होंने उसे क़त्ल किया और न उसे सूली पर चढ़ाया, बल्कि मामला उनके लिए संदिग्ध हो गया।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–157)

हमारा विश्वास है कि ईसा (ﷺ) आकाश पर जीवित उठा लिए गए, और अब दोबारा क़ियामत से पहले पृथ्वी पर आएँगे और 'क्रास' तोड़ेंगे। क्योंकि 'क्रॉस' को सजदा करना, या उसका सम्मान करना, उनकी शिक्षा के विरुद्ध है। उनकी शिक्षा तो केवल एक अल्लाह की उपासना करने की थी–

«मसीह ने कहा, "ऐ बनी-इसराईल उस अल्लाह की इबादत करो जो मेरा और तुम्हारा रब है, जिसने शिर्क किया अल्लाह ने उसपर जन्नत हराम कर दी है और उसका ठिकाना जहन्नम है।» (क़ुरआन, सूरा–5, अल-माइदा, आयत–72)

इसी प्रकार ईसा (ﷺ) सूअर को क़त्ल करेंगे जैसा कि सहीह हदीसों में आया है। (बुख़ारी, 3448 तथा मुस्लिम, 155)

क्योंकि सूअर एक अपवित्र पशु है, जिसका खाना जिस प्रकार क़ुरआन ने हराम किया है उसी प्रकार 'तौरात' में भी हराम था।

"जो सुन्दर स्त्री विवेक नहीं रखती वह थूथुन में सोने की नथ पहने हुए सुअर के समान है।" (बाइबल, नीतिवचन, 11:22)

यहाँ पर इस विशेष स्त्री की तुलना सूअर से की गई है क्योंकि सूअर एक अशुद्ध और अपवित्र पशु है। तौरात की किताब 'लैव्यवस्था' के भाग (11) में शुद्ध और अशुद्ध पशुओं का वर्णन वाक्य नम्बर (7-8) में स्पष्ट रूप से आया है।

"सूअर जो चिरे अर्थात् फटे खुर का होता है, परन्तु जुगाली नहीं करता, इसलिए वह तुम्हारे लिए अशुद्ध है, इसके माँस में से कुछ न खाना, और इसकी लोथ को छूना भी नहीं, यह तुम्हारे लिए अशुद्ध है।"

स्वयं मत्ती ने भी अपनी इंजील में सूअर को अपवित्र बताया है। (मत्ती, 7:6)

लेकिन 'पौलुस' ने ईसा (عليه السلام) द्वारा लाए गए ईश्वरीय धर्म में बहुत सारे परिवर्तन किए। उनमें एक यह भी था कि सूअर का मांस हलाल है। क्योंकि जो मजूसी ईसाई धर्म ग्रहण कर रहे थे और सूअर का मांस खाते थे, वे इसको छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे तो 'पौलुस' ने उनके लिए इसका खाना जायज़ कर दिया और फिर ईसाई जगत में इसके खाने की रीति चल पड़ी, इसलिए ईसा (عليه السلام) सूअर को क़त्ल करके अपने मूल धर्म की पुनरावृत्ति करेंगे। दज्जाल भी आप ही के हाथों क़त्ल किया जाएगा। (देखिए: मेरी अरबी पुस्तक 'यहूदिया तथा मसीहीया', पृष्ठ. 355)

ईसा (عليه السلام) के परलोक सिधारने के पश्चात् उनके अनुयायियों ने उन्हें पूज्य बना लिया–

«निश्चय ही उन्होंने कुफ़्र किया जिन्होंने कहा, ''अल्लाह तीन में का एक है।'' जबकि उस अकेले के अतिरिक्त कोई पूज्य नहीं। जो कुछ वे कहते हैं, अगर उससे न रुके तो उन्हें दुखद यातना पहुँच कर रहेगी।» (क़ुरआन, सूरा–5, अल-माइदा, आयत–73)

«निश्चय ही उन लोगों ने कुफ़्र किया जिन्होंने कहा, ''अल्लाह तो वही मरयम का पुत्र मसीह है।'' कहो, ''क्या अल्लाह के आगे किसी का कुछ बस चल सकता है, यदि वह मरयम के पुत्र मसीह और उसकी माँ को, और समस्त धरती पर रहनेवालों को विनष्ट करना चाहे''!» (क़ुरआन, सूरा–5, अल-माइदा, आयत–17)

ईसा (ﷺ) के अनुयायीगण उन्हें पूज्य-प्रभु मानकर उनकी जो पूजा-अर्चना कर रहे हैं ईसा (ﷺ) पूर्णरूपेण उससे अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लेंगे। ईसा (ﷺ) का संदेश दूसरे नबियों के समान तौहीद (एकेश्वरवाद) का संदेश था। उन्होंने किसी को कभी भी अपनी तथा अपनी माता की इबादत की ओर नहीं बुलाया।

इस बात का क़ुरआन ने बड़े सुन्दर शब्दों में इस प्रकार वर्णन किया है–

«याद करो जब अल्लाह कहेगा, ''ऐ मरयम के बेटे ईसा! क्या तुमने लोगों से कहा था कि अल्लाह के अतिरिक्त दो और पूज्य, मुझे और मेरी माँ, को बना लो?'' वह **कहेगा, ''महिमावान है तू! मुझसे यह नहीं हो सकता कि मैं वह बात कहूँ, जिसका मुझे कोई हक़ नहीं है। यदि मैंने यह कहा होता तो तुझे मालूम ही होता। तू जानता है, जो कुछ मेरे मन में है। परन्तु मैं नहीं जानता जो कुछ तेरे मन में है। निश्चय ही, तू ही छिपी बातों का भली-भाँति जाननेवाला है। मैंने उनसे उसके सिवा और कुछ नहीं कहा, जिसका तूने मुझे आदेश दिया था, यह कि 'अल्लाह की बन्दगी करो, जो मेरा भी रब है और तुम्हारा भी रब है।' और जब तक मैं उनमें रहा उनकी ख़बर रखता था, फिर जब तूने मुझे उठा लिया तो फिर तू ही उनका निरीक्षक था। और तू हर चीज़ का साक्षी है। यदि तू उन्हें यातना दे तो वे तेरे बन्दे ही हैं और यदि तू उन्हें क्षमा कर दे, तो निस्संदेह तू अत्यन्त प्रभुत्वशाली, तत्त्वदर्शी है।''** **अल्लाह कहेगा, ''यह वह दिन है कि सच्चों को उनकी सच्चाई लाभ पहुँचाएगी। उनके लिए ऐसे बाग़ हैं, जिनके नीचे नहरें बह रही होंगी, उनमें वे सदैव रहेंगे। अल्लाह उनसे राज़ी हुआ और वे उससे राज़ी हुए। यही सबसे बड़ी सफलता है।'' आकाशों और धरती और जो कुछ उनके बीच है, सबपर अल्लाह ही की बादशाही है और उसे हर चीज़ की सामर्थ्य प्राप्त है।»** (क़ुरआन, सूरा–5, अल-माइदा, आयतें–116-120)

ईर्ष्या

ईर्ष्या दिलों में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की बुरी भावना को कहते हैं जो दूसरों को दी गई नेमतों को देखकर उत्पन्न होती है। सबसे पहला ईर्ष्यालु इबलीस था। वह आदम (ﷺ) को दी गई श्रेष्ठता को देखकर मन-ही-मन जलने लगा। उसने आदम (ﷺ) को सजदा करने से इनकार कर दिया और उसी ने सर्वप्रथम अल्लाह के आदेशों का उल्लंघन किया।

नबी (ﷺ) को अल्लाह ने बहुत सारी श्रेष्ठताएँ प्रदान की थीं, जिनके कारण विधर्मी और अहले-किताब उनसे ईर्ष्या करने लगे। इसी ईर्ष्या के कारण मक्का के एक सरदार 'वलीद-बिन-मुग़ीरा' ने कहा था कि क्या मुहम्मद पर वह्य अवतरित हो रही है? क्या मक्का तथा ताइफ़ के सरदार इस क़ाबिल नहीं थे कि उनमें से किसी पर वह्य उतरती ? पवित्र क़ुरआन में इसी ओर संकेत किया गया है–

«वे कहते हैं कि "यह क़ुरआन इन दो नगरों (मक्का तथा ताइफ़) में से किसी बड़े आदमी पर क्यों नहीं अवतरित किया गया?" क्या ये लोग तुम्हारे रब की दयालुता को बाँटते हैं? सांसारिक जीवन में उनके जीवन-यापन के साधन हमने उनके बीच बाँटे हैं। और हमने उनमें से कुछ लोगों को दूसरे कुछ लोगों से श्रेणियों की दृष्टि से उच्च रखा है, ताकि उनमें से वे एक-दूसरे से काम लें। और तुम्हारे रब की दयालुता उससे कहीं उत्तम है जिसे वे समेट रहे हैं।» (सूरा–43, अज़-ज़ुख़रुफ़, आयतें–31-32)

यहाँ क़ुरआन में 'रहमत' (दयालुता) शब्द का प्रयोग हुआ है, जो नबी (ﷺ) को प्रदान की गई थी। इसी ईर्ष्या के कारण अहले-किताब आप (ﷺ) को ईमान से हटाना चाहते थे –

«अहले-किताब में से बहुतेरे अपने दिलों में ईर्ष्या के कारण यह चाहते हैं कि किसी प्रकार तुम्हें भी ईमान से हटाकर विधर्मी बना दें जबकि सच्चाई स्पष्ट रूप से उनके सामने आ चुकी है। इसलिए तुम क्षमा से काम लो, और इन बातों को जाने दो, यहाँ तक कि अल्लाह निर्णय कर दे। निस्सन्देह अल्लाह को हर चीज़ पर सामर्थ्य प्राप्त है।» (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–109)

इसलिए अल्लाह ने नबी (ﷺ) को पहले ही यह चेतावनी दे दी थी कि लोग तुमसे ईर्ष्या करेंगे –

«कहो मैं शरण लेता हूँ प्रात:काल के 'रब' की, जो कुछ उसने पैदा किया उसकी बुराई से। और अन्धकार की बुराई से, जब उसका अंधेरा छा जाए और गाँठ लगाकर उनमें फूँकनेवालियों की बुराई से, और ईर्ष्या करनेवाले की बुराई से जब वह ईर्ष्या करे।» (क़ुरआन, सूरा–113, अल-फ़लक़, आयतें 1-5)

सहीह हदीसों में भी ईर्ष्या की बुराई से बचने को कहा गया है, क्योंकि इसके द्वारा दिलों में रोग पैदा हो जाता है–

"आपस में घृणा, ईर्ष्या तथा किसी के विरुद्ध षड़यंत्र न करो, बल्कि आपस में भाई-भाई बनकर रहो।"

एक दूसरी हदीस में आया है–

"किसी मोमिन के दिल में ईमान और ईर्ष्या इकट्ठे नहीं हो सकते।" (सहीह इब्ने-हिब्बान, 4587)

ईर्ष्या का अर्थ है किसी को अल्लाह के द्वारा दी गई नेमत के समाप्त हो जाने की इच्छा करना। यह बात अल्लाह पर ईमान लाने के विरुद्ध है, क्योंकि नेमत का देनेवाला, और उसको छीननेवाला केवल

अल्लाह है। इसलिए इस प्रकार की इच्छा वही कर सकता है जिसके दिल में अभी तक सहीह अर्थ में अल्लाह पर पक्का ईमान नहीं है।

ईर्ष्या ही से मिलता-जुलता एक और भाव पाया जाता है जिसको अरबी में 'ग़िब्ता' कहा जाता है, जिसको आप 'रश्क' या प्रतिस्पर्धा कह सकते हैं। इसमें किसी की नेमत के समाप्त होने की इच्छा नहीं की जाती, बल्कि उस जैसी नेमत को प्राप्त करने की इच्छा की जाती है। जैसे किसी महान विद्वान को देखकर कोई इच्छा करे कि मैं भी उस जैसा विद्वान बन जाऊँ, तो इस प्रकार की इच्छा करना वर्जित नहीं है, बल्कि उचित है। विशेष कर उत्तम कामों में—

«**अभिलाषा करनेवालों को इसकी अभिलाषा करनी चाहिए।**» (क़ुरआन, सूरा–83, अल-मुतफ़्फ़िफ़ीन, आयत–26)

एक सहीह हदीस में आता है—

"*दो चीज़ों में ईर्ष्या की जा सकती है। एक यह कि अल्लाह ने किसी को धन दिया हो और वह उसको सत्यमार्ग में ख़र्च करता चला जा रहा है, दूसरे यह कि अल्लाह ने किसी को ज्ञान दिया, तो वह उसके द्वारा न्याय कर रहा है और दूसरों को सिखा रहा है।*" (सहीह बुख़ारी, 73 एवं सहीह मुस्लिम, 816)

यहाँ हदीस में 'हसद' शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अनुवाद 'ईर्ष्या' किया गया है। परन्तु उससे अभिप्राय 'रश्क' है, क्योंकि उसकी नेमत को समाप्त करने की इच्छा नहीं की गई है।

उ
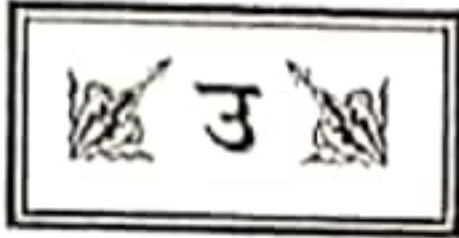
उर्जून

उर्जून का अर्थ है खजूर की टहनी। क़ुरआन में एक स्थान पर चन्द्रमा के लिए यह बताया गया है कि अल्लाह ने उसकी मंज़िलें निर्धारित कर दी हैं, और इन मंज़िलों पर चलते-चलते एक समय ऐसा भी आता है कि जब वह खजूर की पुरानी सूखी हुई टहनी की तरह हो जाता है। (क़ुरआन, सूरा–36, या.सीन, आयत–39)

वास्तव में अल्लाह अपनी सामर्थ्य प्रकट करना चाहता है कि यहाँ जो कुछ हो रहा है उसी की इच्छा के अनुसार हो रहा है। क्योंकि इससे पहली आयत में सूर्य का वर्णन आया है जो अपने केन्द्र पर घूम रहा है। इन आयतों में उन लोगों को चेतावनी दी गई है जो अल्लाह को छोड़ कर सूर्य तथा चंद्रमा को अपना पूज्य बना बैठे हैं। जबकि ये तो वास्तव में हमारी तरह अल्लाह की भौतिक वस्तुएँ हैं। ये किसी भी तरह पूजनीय नहीं हो सकते। क़ुरआन ने बड़े अद्‌भुत ढंग से इबराहीम (ﷺ) के इस कथन का उल्लेख किया है–

«इसी प्रकार हम इबराहीम को आकाशों और धरती के राज्य का अवलोकन कराते थे ताकि वह विश्वास रखनेवालों में से हो जाए।

जब रात उसपर छा गई तो उसने एक तारा देखा। उसने कहा, ''यह मेरा रब है।'' परन्तु जब वह डूब गया तो बोला, ''डूब जानेवालों से मुझे प्रेम नहीं।''

फिर जब उसने चाँद चमकता देखा तो कहा, ''यह मेरा रब है।'' परन्तु जब वह डूब गया तो कहा, ''यदि मेरा रब मुझे मार्ग न दिखाए तो मैं भटके हुए लोगों में से हो जाऊँगा।''

फिर जब सूरज को चमकते हुए देखा तो कहने लगा, ''यह मेरा रब है। यह सबसे बड़ा है!'' फिर जब वह भी डूब गया तो कहा, ''ऐ मेरी जाति के लोगो, मैं उनसे विरक्त हूँ जिन्हें तुम (अल्लाह का) सहभागी ठहराते हो। मैंने तो हर ओर से कटकर अपना मुख उसकी ओर कर लिया है जिसने आकाशों और धरती को पैदा किया, और मैं शिर्क करनेवालों में से नहीं हूँ।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयतें–76-80)

उम्मुल-क़ुरा

यह मक्का का उपनाम है, जिसका अर्थ है मूल नगर, केन्द्रीय बस्ती इत्यादि। क्योंकि अरबी भाषा में हर चीज़ के केन्द्र को उम्म कहा जाता है। जैसे उम्मुल-किताब, (लौहे-महफ़ूज़) जो सारी आसमानी किताबों का केन्द्र है। इसी प्रकार सूरा फ़ातिहा को उम्मुल-किताब कहा जाता है, क्योंकि वह पूरे क़ुरआन का केन्द्र या सारांश है।

क़ुरआन में दो स्थानों पर 'उम्मुल-क़ुरा' शब्द आया है। और दोनों स्थानों पर उससे मुराद मक्का है। प्रथम सूरा अल-अनआम में–

«यह किताब है जिसे हमने उतारा है; बरकतवाली है; यह अपने से पूर्व के धर्मग्रन्थों की पुष्टि करती है, ताकि तुम उम्मुल-क़ुरा (केन्द्रीय बस्ती अर्थात् मक्का) तथा उसके आस पास के नगरों में रहनेवालों को सचेत करो।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–92)

दूसरे सूरा अश-शूरा में–

«इसी प्रकार हम ने तुम्हारी ओर अरबी क़ुरआन की प्रकाशना की है, ताकि तुम उम्मुल-क़ुरा (बस्तियों के केन्द्र मक्का) तथा उसके निकट रहनेवालों को सचेत करो।» (सूरा–42, अश-शूरा, आयत–7)

उम्मुल-क़ुरा वालों को सम्बोधित करके वास्तव में अल्लाह ने समस्त-मानव जाति को सम्बोधित किया है, जैसा कि सूरा अल-आराफ़ में आया है–

«आप कह दीजिए कि ऐ लोगो! मैं तुम सभी की ओर उस अल्लाह का भेजा हुआ हूँ, जो आकाशों और धरती का स्वामी है। उसके सिवा कोई पूज्य (इलाह) नहीं है। वही जीवन प्रदान करता है और वही मृत्यु देता है।» (सूरा–7, अल-आराफ़, 158)

सूरा अल-अनआम में है–

«यह क़ुरआन मेरी ओर वहय किया गया, ताकि मैं इसके द्वारा, तुम्हें और जिस किसी को यह पहुँचे, सबको सचेत कर दूँ।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–19)

और सूरा अल-फ़ुरक़ान में है–

«अत्यन्त बरकतवाला है वह, जिसने अपने बन्दे (भक्त) पर फ़ुरक़ान उतारा ताकि वह सारे संसार के लिए सचेत करनेवाला बन जाए।» (सूरा–25, अल-फ़ुरक़ान, आयत–1)

इस आयत में क़ुरआन को फ़ुरक़ान कहा गया है, क्योंकि वह सत्य तथा असत्य के मध्य अन्तर करनेवाला है।

एक सहीह हदीस में आया है कि मुझसे पहले अंबिया अपनी जाति के लिए भेजे जाते थे। परन्तु मुझे सभी मनुष्यों के लिए भेजा गया है।

उमरा

हज की तरह उमरा भी एक इबादत है, जो मक्का जाकर की जाती है।

«हज और उमरा को अल्लाह के लिए पूरा करो।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–196)

इस आयत की रौशनी में कुछ विद्वान उमरे को भी हज की तरह जीवन में एक बार अनिवार्य कहते हैं। परन्तु अधिकतर विद्वान इसे अनिवार्य नहीं ठहराते।

यह इबादत पूरे वर्ष किसी समय भी की जा सकती है। इसका सामान्य नियम यह है कि कोई व्यक्ति उमरे की नीयत से घर से निकले और मीक़ात से एहराम बाँधे फिर अल्लाह के घर, काबा का सात बार तवाफ़ करे। मक़ामे-इबराहीम पर, जहाँ स्थान मिल जाए, दो रकअत नमाज़ पढ़े। फिर सफ़ा तथा मरवा के बीच सात फेरे लगाए। उसके पश्चात् अपने सिर के बाल चाहे उस्तरे से साफ़ कराए (जो अधिक उत्तम है) जिसको हलक़ कहते हैं या क़ैंची से काटकर छोटा करा ले, जिसे क़स्र कहते हैं। (औरतें सिर के बाल नहीं मुंडवाएंगी बल्कि चोटी के थोड़े से बाल काट लेंगी।) इसके बाद स्नान कर ले और अपना सामान्य वस्त्र पहन ले। इस प्रकार उसका उमरा पूरा हो गया।

उमरे की दशा में वे सब चीज़ें हराम (वर्जित) हैं, जो हज की दशा में हराम (वर्जित) होती हैं, इसके लिए विस्तृत वर्णन 'हज' में देखें।

❀ रमज़ान का उमरा:

रमज़ान में उमरे की बड़ी महत्ता है। एक सहीह हदीस में आया है कि रमज़ान में उमरे का प्रतिफल हज के बराबर होता है।

उज़्ज़ा

क़ुरआन की सूरा 53 अन-नज्म में जिन तीन बुतों के नाम आए हैं, उनमें एक उज़्ज़ा भी है। उज़्ज़ा शब्द अज़ीज़ से बना है जो कि ईश्वर का एक गुण है। उज़्ज़ा क़बीला बनू-ग़तफ़ान का बुत था, मक्का और ताइफ़ के बीच नख़ला नामक घाटी में एक वृक्ष के नीचे रखा हुआ था, उसके पीछे एक घाटी थी जिसमें बलि दिए जानेवाले पशुओं का रक्त गिराया जाता था। फिर धीरे-धीरे इसकी पूजा यमन में भी प्रचलित हो गई। एक बार हीरा के बादशाह मुंज़िर ने चार सौ युद्ध सामग्रियाँ उज़्ज़ा को भेंट चढ़ाईं। धीरे-धीरे क़ुरैश भी इसकी बन्दगी करने लगे, यहाँ तक कि काबा का तवाफ़ करते हुए भी इसको पुकारते थे, बल्कि इसकी पूजा पर गर्व करते थे।

तभी तो अबू-सुफ़ियान, मक्का का मुखिया, उहुद के युद्ध में यह ललकारते हुए आया कि, "हमारी देवी उज़्ज़ा हमारी सहायता करेगी और ऐ मुसलमानो! तुम्हारा कोई उज़्ज़ा नहीं।" इसपर नबी (ﷺ) ने मुसलमानों से कहा,

"कहो, हमारा संरक्षक अल्लाह है, तुम्हारा कोई संरक्षक नहीं।" (सहीह बुख़ारी, 5393)

उहुद

यह मदीना में एक पर्वत का नाम है। इसकी घाटी में एक भीषण युद्ध हुआ था, वह युद्ध जंगे-उहुद के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध का कारण यह था कि जब मक्का के विधर्मी बद्र के युद्ध में पराजित हो गए तो उन्होंने उसका बदला लेने के लिए मक्का और उसके आस-पास के लोगों को इकट्ठा किया, और तीन हज़ार की सेना लेकर, जिसमें दो सौ घुड़सवार थे (इब्ने-हिशाम :3:62), सन तीन हिजरी में मदीना पर आक्रमण की तैयारी करने लगे। नबी (ﷺ) को इस बात का पता चला तो आप (ﷺ) ने मुसलमानों से विचार-विमर्श किया कि हम मदीना में रहकर अपनी रक्षा करें या मदीना से बाहर निकलकर शत्रु का मुक़ाबला करें? अधिकतर मुसलमानों ने मदीना से बाहर निकलकर युद्ध करने का सुझाव दिया। नबी (ﷺ) मुसलमानों के सुझाव को मानते हुए घर के अन्दर गए और अपने सैनिक वस्त्र पहनकर बाहर निकले, जबकि आप (ﷺ) की इच्छा थी कि मदीना में रहकर ही अपनी सुरक्षा की जाए, परन्तु आप (ﷺ) ने मुसलमानों के सुझाव को मान लिया। यह आप (ﷺ) के स्वभाव के उत्तम होने का परिचायक है। कुछ सहाबा (رضي الله عنه), जिनमें आप (ﷺ) के चचा हम्ज़ा (رضي الله عنه) भी थे, ने आग्रह किया कि आप अपने ही विचार पर क़ायम रहें। परन्तु आप (ﷺ) ने कहा, "जब नबी एक बार युद्ध-वस्त्र धारण कर लेते हैं तो युद्ध समाप्त होने तक उसे नहीं उतारते।" (तबरी, 7:372)
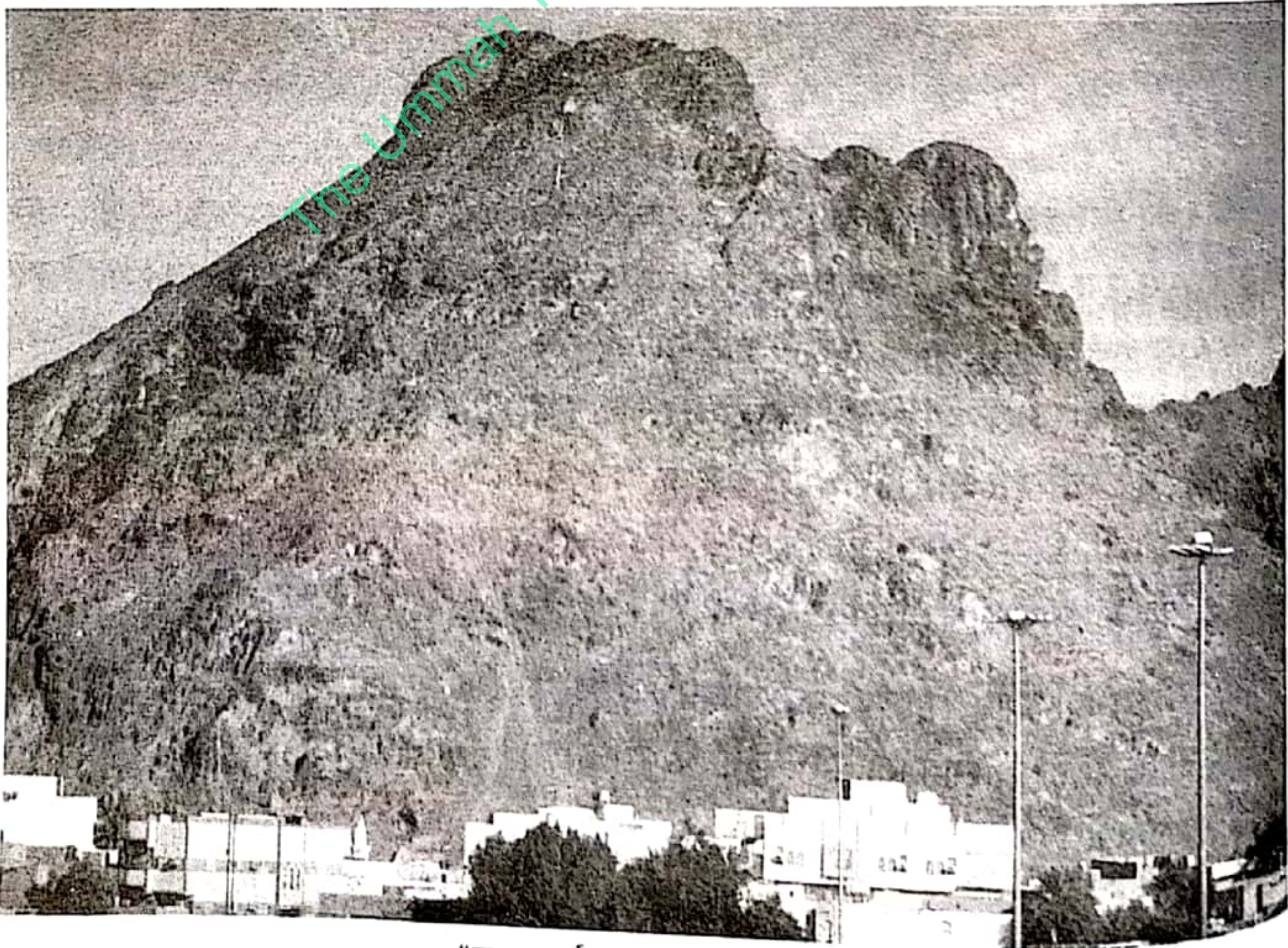
"उहुद पर्वत का सुन्दर दृश्य"

इस प्रकार एक हज़ार की सेना लेकर नबी (ﷺ) मदीना से उहुद की ओर निकले। परन्तु रास्ते में मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) का सरदार अब्दुल्लाह- बिन-उबई तिहाई सेना लेकर मदीना वापस आ गया। इस दशा में मुसलमान सैनिकों में निराशा पैदा हो गई, यहाँ तक कि कुछ सच्चे मुसलमान भी वापसी की सोचने लगे। परन्तु फिर वे दूसरों के साथ आगे बढ़ते रहे, यहाँ तक कि उहुद नामक पहाड़ी की घाटी में मक्का के इस्लाम-विरोधियों से उनकी मुठभेड़ हो गई।

मुसलमानों की सेना उस स्थान पर थी जहाँ से उहुद की पहाड़ी उनके पीछे थी ओर मदीना उनके सामने। नबी (ﷺ) ने पचास आदमियों की एक टोली को उहुद की पहाड़ी के सामने के एक पहाड़ पर खड़ा कर दिया, ताकि शत्रु पहाड़ के पीछे से मुसलमानों पर आक्रमण न कर सकें और उनको आदेश दिया कि वे उस स्थान से कदापि न हटें, चाहे मुसलमानों की विजय ही क्यों न हो जाए। इस पहाड़ी को अब जबले-रुमात कहते हैं, जिसका अर्थ है धनुर्धर सैनिक पहाड़।

युद्ध प्रारम्भ हो गया। दुश्मनों की हार और मुसलमानों की विजय हुई। बाइस दुश्मन मारे गए। जब पहाड़ पर तैनात तीरंदाज़ों ने देखा कि अब तो मुसलमान विजयी हो चुके हैं और दुश्मनों का छोड़ा हुआ सामान इकठ्ठा कर रहे हैं, तो वे भी पहाड़ से उतरकर सामान इकठ्ठा करने लगे। जबकि उनके नायक अब्दुल्लाह-बिन-ज़ुबैर ने बहुत समझाया कि यहाँ से मत हटो, क्योंकि नबी (ﷺ) का यही आदेश है। परन्तु वे न माने और कहने लगे, "अब तो हम युद्ध जीत चुके हैं।"

नबी (ﷺ) का अन्देशा सच निकला। ख़ालिद-बिन-वलीद, जो अभी तक मुसलमान नहीं हुए थे, सेना की एक टोली लेकर उहुद के पीछे से चक्कर काटते हुए आए और उन मुसलमानों पर आक्रमण कर दिया, जो सामान इकठ्ठा करने में लगे हुए थे। जबले-रुमात पर तैनात मुजाहिदीन मैदान में चले गए थे। केवल दो चार ही शेष रह गए थे जो कि इस आक्रमण को नहीं रोक सके।

अब हालत यह थी कि शत्रु पीछे से आक्रमण कर रहा था और मुसलमान पहाड़ की घाटी में फँसे हुए थे। वे अपना बचाव नहीं कर सके। सत्तर सहाबा शहीद हुए। शहीद होनेवालों में नबी (ﷺ) के चचा हम्ज़ा भी थे। स्वयं नबी (ﷺ) को भी चोट आई। आप (ﷺ) के कुछ दाँत भी शहीद हुए।

अल्लाह की ओर से सहायता यह हुई कि दुश्मन युद्ध जीतने के पश्चात् भी मक्का की ओर वापस चले गए, मदीना में दाख़िल होने का साहस नहीं कर सके और मदीना, जो इस्लाम का केन्द्र था, तबाह होने से बच गया।

क़ुरआन में उहुद के नाम से इस युद्ध का वर्णन नहीं है बल्कि सूरा आले-इमरान की ये आयतें इसी युद्ध के विषय में उतरी थीं–
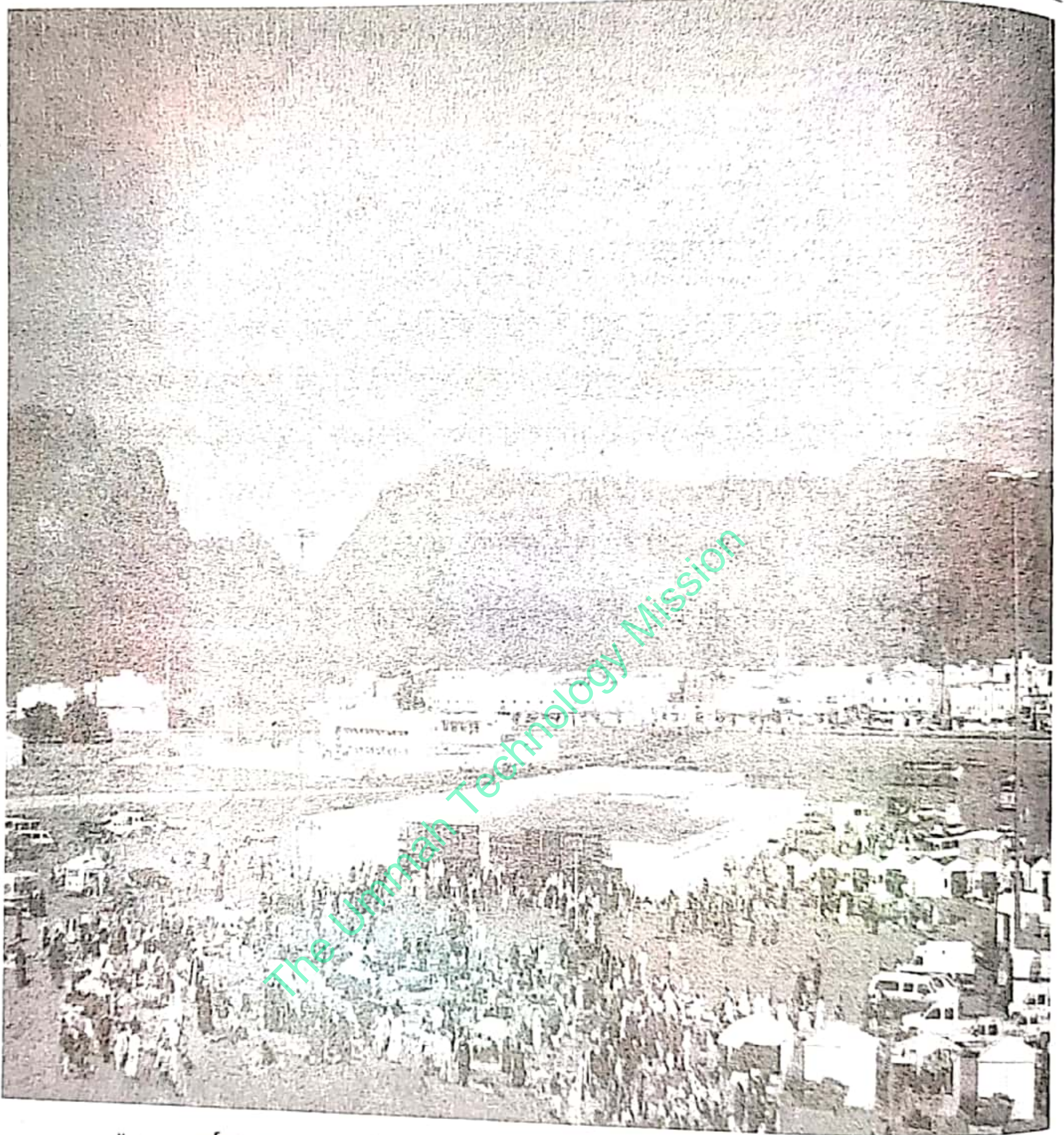
"उहुद पर्वत का एक और दृश्य जिसमें शहीदों की कब्रें दिखाई दे रही हैं"

«ऐ नबी, उस समय को याद करो जब तुम सवेरे अपने घर से निकलकर ईमान लानेवालों को युद्ध के लिए मोर्चों पर नियुक्त कर रहे थे और अल्लाह सुनता और जानता है।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–121)

यहाँ जिस युद्ध का वर्णन है वह उहुद का ही युद्ध है।

«याद करो जब तुम में से दो गरोहों ने साहस छोड़ देना चाहा, जबकि अल्लाह उनका संरक्षक था, ईमानवालों को चाहिए कि वे केवल अल्लाह पर ही भरोसा करें।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–122)

ये दो गरोह, जैसा कि सहीह बुख़ारी (4558) तथा सहीह मुस्लिम (1949) में है, बनू-हारिसा और बनू-सल्मा थे, जो अब्दुल्लाह-बिन-उबई-बिन-सलूल के अलग होने से साहस छोड़ बैठे थे।

«बद्र (के युद्ध) में अल्लाह ने तुम्हारी सहायता की जबकि तुम बहुत निर्बल थे, तो अल्लाह का डर रखो ताकि तुम कृतज्ञता दिखा सको।» (क़ुरआन, सूरा–3, आले-इमरान, आयत–123)

बद्र का यह युद्ध सन दो हिजरी 11 मार्च सन 624 ईसवी को हुआ, जिसमें मुसलमान विजयी हुए। मक्का के इस्लाम -विरोधियों ने इसी का बदला लेने के लिए ठीक एक वर्ष बाद मदीना पर चढ़ाई कर दी, जिसको जंगे-उहुद कहते हैं।

«याद करो जब तुम ईमानवालों से कह रहे थे, ''क्या तुम्हारे लिए यह काफ़ी नहीं कि तुम्हारा रब तीन हज़ार फ़रिश्ते उतारकर तुम्हारी सहायता करे।'' हाँ यदि तुमने धैर्य से काम लिया और अल्लाह से डरते रहे फिर शत्रु तुमपर चढ़ आएँ तो उसी क्षण तुम्हारा रब पाँच हज़ार विध्वंसकारी फ़रिश्ते उतारकर तुम्हारी सहायता करेगा। अल्लाह ने इसे तुम्हारे लिए केवल शुभ सूचना बनाया, ताकि इससे तुम्हारे हृदयों को संतोष हो जाए। सहायता तो केवल अल्लाह ही की ओर से आती है, जो प्रभुत्त्वशाली और तत्त्वदर्शी है।» (क़ुरआन, सूरा–3, आले-इमरान, आयतें–124-126)

यह तीन हज़ार और पाँच हज़ार फ़रिश्तों के द्वारा अल्लाह ने उहुद में मुसलमानों की सहायता जो नहीं की तो इसका कारण यह नहीं है कि उन्होंने उसके नबी का आज्ञापालन नहीं किया और धैर्य से काम नहीं लिया। बल्कि इसका मूल कारण यह था कि धन के लालच में आकर मुसलमान मैदान में दुश्मनों का छोड़ा हुआ सामान इकट्ठा करने में लग गए थे। क़ुरआन इस अवसर पर उनको यह चेतावनी दे रहा है कि अगर तुमने ऐसा न किया होता तो अल्लाह तुम्हारी तीन हज़ार क्या, बल्कि पाँच हज़ार फ़रिश्तों से सहायता करता और फिर इस सहायता का तरीक़ा यह बताया कि ये फ़रिश्ते युद्ध न करते, बल्कि केवल तुम्हारे हृदयों को मज़बूत करते और दुश्मनों को भयभीत करते। जिसके कारण तुम युद्ध जीत जाते।

«अल्लाह ने ऐसा इसलिए किया ताकि इस्लाम्-विरोधियों के एक भाग को काट दे, या उन्हें बुरी तरह परास्त और रुसवा कर दे कि वे असफल होकर लौट जाएँ।»

और फिर ऐसा ही हुआ। एक तो यह कि मुसलमान युद्ध जीत चुके थे और उन्होंने इस्लाम-विरोधियों के एक गरोह को क़त्ल कर दिया था। दूसरे, यह कि विधर्मी रुसवा हो कर वापस चले गए,

क्योंकि वे तो मदीना को नष्ट करने और इस्लाम को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए आए थे, परन्तु वे ऐसा न कर सके। हालांकि उस समय मदीना सैनिकों से ख़ाली था। फिर भी वे मदीना में प्रवेश करने का साहस न कर सके। अर्थात् वे जिस उद्देश्य से आए थे, उसमें असफल रहे।

इससे पहले बताया जा चुका है कि नबी (ﷺ) के कुछ दाँत शहीद हो गए थे। आप (ﷺ) के चहरे से ख़ून बह रहा था। उस दशा में आपने यह दुआ फ़रमाई–

"वह जाति कैसे सफलता पा सकती है, जिसने अपने नबी को घायल कर दिया।" (सहीह मुस्लिम 1791)

इस पर अल्लाह ने यह आयत उतारी–

«तुम्हें इस विषय में कोई अधिकार नहीं, चाहे वह उन्हें क्षमा करे, या उन्हें यातना दे। निस्संदेह वे अत्याचारी हैं। ज़मीन और आसमानों में जो कुछ है सबका मालिक अल्लाह ही है। वह जिसको चाहे बख़्श दे और जिसको चाहे अज़ाब दे, वह माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।» (क़ुरआन, सूरा 3, आले-इमरान आयतें–128-129)

और फिर अल्लाह की यह बात सत्य निकली, क्योंकि यही मक्का के इस्लाम-विरोधी बाद में मुसलमान हुए और इस्लाम के संरक्षक बने। उनके द्वारा इस्लाम संसार के दूसरे भागों में फैला। उन्हीं ख़ालिद- बिन-वलीद से जिन्होंने उहुद पहाड़ की दूसरी ओर से आकर मुसलमानों पर आक्रमण किया था, (मुसलमान होने के बाद) अल्लाह ने ऐसे-ऐसे कारनामे अंजाम दिलाए जिनसे आज भी संसार के बड़े-बड़े सेनापति चकित हैं।

उम्मी

सूरा आराफ़ की दो आयतों में नबी (ﷺ) को उम्मी कहा गया है–

«आख़िरत में तो ईश्वर की दयालुता के पात्र केवल वही लोग होंगे जो उस रसूल, उम्मी नबी का अनुसरण करते हैं जिसे वे अपने यहाँ तौरात और इंजील में लिखा हुआ पाते हैं। जो उन्हें नेक बातों का हुक्म देता और बुरी बातों से रोकता है। उनके लिए उत्तम चीज़ें वैध और निकृष्ट चीज़ें अवैध ठहराता है। और उतारता है उनपर से उनका बोझ और खोलता है उन बन्धनों को जिनमें वे जकड़े हुए थे। तो जो लोग उसपर ईमान लाए और उसकी हिमायत की और उसकी मदद की और उस प्रकाश का अनुसरण किया जो उसके साथ उतारा गया है, ऐसे ही लोग सफलता प्राप्त करने वाले हैं। (ऐ मुहम्मद!) कहो, "ऐ लोगो! निश्चय ही मैं तुम सबकी ओर उस अल्लाह का

रसूल हूँ जो आकाशों और धरती के राज्य का मालिक है। उसके सिवा कोई इलाह (पूज्य) नहीं है। वही जिलाता और मारता है, तो अल्लाह और उसके रसूल, उम्मी नबी पर ईमान लाओ जो अल्लाह और उसकी बातों पर ईमान रखता है, और उसके अनुयायी बनो, कदाचित् तुम मार्ग पा लो।» (क़ुरआन, सूरा–7, अल-आराफ़, आयतें-157-158)

अधिकतर भाष्यकारों ने उम्मी का अर्थ अनपढ़ बताया है,जिसको ग़लत तो नहीं कहा जा सकता परन्तु यह जान लेना आवश्यक है कि यह इसका वास्तविक अर्थ नहीं है। क्योंकि यह इबरानी शब्द goyim का अनुवाद है। जिसका बहुवचन उमम है। यहूदी अपने अतिरिक्त सभी मनुष्यों को उमम कहते थे। उनके धर्मशास्त्रों में इन उमम के लिए किसी प्रकार का अधिकार नहीं था, बल्कि वे पशुओं के समान थे। इसलिए अगर उनसे कोई चीज़ उधार ले लेते या कुछ छीन लेते, तो वापस करना महापाप समझते थे। क़ुरआन ने उनके इस बर्ताव की घोर निन्दा की है–

«किताबवालों में ऐसे लोग भी हैं, कि यदि उनके पास धन-दौलत का एक ढेर भी अमानत रख दो, तो वे (माँगते ही) उसे तुम्हें अदा कर देंगे। और उनमें वे भी हैं कि यदि तुम एक दीनार भी उनकी अमानत में रख दो, तो जब तक कि उनके सिर पर सवार न रहो, वे कभी अदा नहीं कर सकते। यह इसलिए कि वे कहते हैं कि इन उम्मियों के बारे में हम पर कोई आरोप नहीं। और जानते-बूझते अल्लाह के ज़िम्मे डालकर झूठ बोलते हैं, जबकि वे जानते हैं।

हाँ, जो लोग उसकी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे और (अल्लाह का) डर रखेंगे, तो अल्लाह डर रखनेवालों से प्रेम करता है।» (सूरा 3, आले-इमरान, आयतें 75-76)

क़ुरआन के मतानुसार तो सारे मनुष्य अल्लाह की सृष्टि (मख़्लूक़) हैं। उनमें श्रेष्ठ वह है जो अल्लाह के आदेशों का अधिक पालन करता है–

«ऐ लोगो! हमने तुम्हें एक पुरुष तथा एक स्त्री से पैदा किया। तुम्हें बिरादरियों और क़बीलों का रूप दिया, ताकि तुम एक-दूसरे को पहचान सको। वास्तव में अल्लाह के यहाँ सबसे अधिक प्रतिष्ठित वह है, जो तुममें सबसे अधिक अल्लाह का डर रखता है, (अर्थात्, उसका आज्ञापालन करता है)। निश्चय ही अल्लाह सब कुछ जाननेवाला और ख़बर रखनेवाला है।» (सूरा–49, अल-हुजुरात, आयत–13)

यहूदियों का एक विचार यह भी था कि नबी और रसूल केवल बनी-इसराईल ही में आएँगे किसी और जाति में, विशेष कर अरब जाति में जो इसमाईल के वंश से थे, कोई नबी नहीं आ सकता।

अल्लाह उनके इस विचार का खंडन करते हुए कहता है कि हमने एक उम्मी को नबी बनाकर भेजा है। अर्थात् जो बनी-इसराईल में से नहीं है।

क़ुरआन में एक स्थान पर स्पष्ट रूप में बताया गया है–

«वही है जिसने उम्मी लोगों के बीच उन्हीं में से एक रसूल उठाया, जो उनको उसकी आयतें सुनाता है, और उनको सदाचारी बनाता है और उन्हें किताब तथा हिकमत (तत्वदर्शिता) की शिक्षा देता है। जबकि वे पहले खुली हुई गुमराही में थे।» (क़ुरआन, सूरा–62, अल-जुमआ, आयत–2)

यहाँ न केवल नबी (ﷺ) को उम्मी कहा गया है, बल्कि पूरी अरब जाति को उम्मी कहा गया है।

हिन्दी बाइबल में उनको अन्य जाति कहा गया है। (देखिए : यशायाह, 49-6)

इससे सिद्ध हुआ कि उम्मी का अर्थ अनपढ़ नहीं, बल्कि यहूदियों के अतिरिक्त अन्य जाति है। अब चूँकि यहूदी अपने आपको ईश्वरीय ग्रन्थ के अनुयायी मानते थे और जिनके पास ये किताबें नहीं थीं, उनको उम्मी कहते थे, इसलिए इसका दूसरा अर्थ अनपढ़ बन गया जैसा कि सूरा बक़रा की एक आयत में इसी की ओर संकेत किया गया है–

«इनमें कुछ अनपढ़ हैं, जो (अल्लाह की) किताब का तो ज्ञान नहीं रखते, बस अपनी निराधार आशाओं और कामनाओं को लिए बैठे हैं और केवल अटकल पर चले जा रहे हैं।» (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–78)

इस आयत में उम्मिय्यून शब्द जो उम्मी का बहुवचन है, अनपढ़ के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और इससे अभिप्राय वे अनपढ़ यहूदी हैं जो कामनाओं के सहारे जीवन व्यतीत करते थे जैसे कि हम तो अल्लाह के चहेते हैं, अगर नरक में भी जाएँगे तो केवल कुछ दिनों के लिए। फिर हमारे पूर्वज हमें छुटकारा दिला देंगे, इत्यादि।

उफ़्फ़

'उफ़्फ़' अरबी भाषा में नापसन्द करने, किसी दर्द या रंज व ग़म प्रकट करने के लिए बोला जाता है। यह शब्द क़ुरआन में माता-पिता के सन्दर्भ में प्रयुक्त हुआ है –

«यदि उन (माता-पिता) में से कोई एक या दोनों तुम्हारे सामने बुढ़ापे को पहुँच जाएँ तो उन्हें 'उफ़्फ़' तक न कहो और न उन्हें झिड़को, बल्कि उनसे आदर के साथ बात करो।» (सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–23)

इस आयत में इस घृणा सूचक शब्द के प्रयोग से रोककर इस बात की चेतावनी दी गई है कि जब संतान को इस तरह के अपशब्दों के प्रयोग की अनुमति नहीं है तो फिर उनको किसी और प्रकार का कष्ट पहुँचाना किस प्रकार उचित हो सकता है। इन्हीं बातों से अनुमान लगाया जा सकता है कि जिस क़ुरआन ने माता-पिता के आदर पर इतना अधिक ज़ोर दिया है वह क़ुरआन कितने उत्तम और श्रेष्ठ आदर्श की ओर बुला रहा है।

उज़ैर

'उज़ैर' नाम के एक व्यक्ति का वर्णन क़ुरआन में एक बार आया है, जिसको यहूदी अल्लाह का बेटा कहते थे–

«यहूदियों ने कहा, ''उज़ैर अल्लाह का बेटा है।'' और ईसाइयों ने कहा, ''मसीह अल्लाह का बेटा है।'' यह उनके मुख से निकली हुई (बेकार) बातें हैं। उनसे पहले के विधर्मी भी इसी प्रकार की बातें किया करते थे। इनपर अल्लाह की फिटकार हो, ये कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हैं।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयत–30)

अर्थात् यहूदियों के 'उज़ैर' को अल्लाह का बेटा कहने में, तथा ईसाइयों के मसीह (عليه السلام) को अल्लाह का बेटा कहने में बड़ा गहरा सम्बन्ध है।

हुआ यह कि सुलैमान (عليه السلام) के बाद यहूदियों में मूर्ति-पूजा फैल गई। इसी बीच बाबुल के राजा 'बुख़्तनसर' ने फ़िलिस्तीन पर आक्रमण कर दिया, जिसके परिणाम स्वरूप बैतुल-मक़दिस नष्ट हो गया। उसमें रखी हुई तौरात की सारी कापियाँ जला दी गईं, और हज़ारों यहूदियों को पकड़कर 'बाबुल' लाया गया। सत्तर वर्ष तक ये लोग यहीं क़ैदी बनकर रहे, यहाँ तक कि पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व उनको छुटकारा मिला। 'उज़ैर' नाम के एक व्यक्ति ने यह घोषणा की कि मैंने दोबारा 'तौरात' तैयार कर ली है और उसका पठन-पाठन करने लगा। यहूदी उसके पास इकट्ठा हो गए और उसको उन्होंने समझ लिया कि मूसा (عليه السلام) के बाद हमारा सबसे बड़ा नेता यही है जिसने हमारी मुक़द्दस किताब को दोबारा लिख दिया। उसने दूसरा काम यह किया कि जिन यहूदियों ने ग़ैर-यहूदी स्त्रियों से विवाह किया था, उनकी स्त्रियों को सन्तान के साथ यहूदियत से अलग कर दिया, ताकि यहूदी सन्तान में ग़ैर-यहूदी रक्त प्रवेश न कर पाए। उसके इन्हीं कार्यों को देखकर कुछ लोग उसको अल्लाह का अवतार तथा उसका पुत्र कहने लगे, और इन्हीं यहूदियों को देखकर ईसाई भी मसीह (عليه السلام) को अल्लाह का बेटा कहने लगे।

'उज़ैर' को अल्लाह का बेटा कहनेवाले यहूदी मदीना में भी पाए जाते थे। इसलिए जब क़ुरआन की यह आयत उतरी तो उन्होंने इसपर कोई आपत्ति नहीं की, बल्कि कहने लगे कि हम उस धर्म को कैसे

ग्रहण करें जो 'उज़ैर' को अल्लाह का बेटा नहीं मानता, जबकि हम तो प्राचीन काल से ही इस अवधारणा पर विश्वास करते चले आ रहे हैं कि 'उज़ैर' अल्लाह के बेटे हैं, जिन्होंने खोई हुई तौरात को दोबारा लिखा। अगर वे ऐसा न करते तो यहूदी धर्म पृथ्वी से मिट जाता और ऐसा करनेवाला कोई साधारण व्यक्ति नहीं बल्कि अल्लाह का अवतार या उसका बेटा ही हो सकता है।

अगर आज के यहूदी 'उज़ैर' को अल्लाह का बेटा नहीं मानते तो क़ुरआन की इस आयत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, क्योंकि क़ुरआन तो अपने समय के यहूदियों की दशा बता रहा है, जैसे बहुत सारे 'ईसाई' मसीह (عليه السلام) को अल्लाह का बेटा नहीं मानते। जैसा कि तीसरी शताब्दी मसीह. (عليه السلام) में मिस्री पादरी 'अरयानोस' के माननेवाले कहते थे, और आज भी कहीं-कहीं ऐसे लोग पाए जाते हैं, जो मसीह (عليه السلام) को अल्लाह का पुत्र नहीं मानते। 'उज़ैर' पर अधिक जानकारी के लिए मेरी अरबी पुस्तक 'यहूदिया तथा मसीहिया' देखी जा सकती है।

ऊ

ऊँट

क़ुरआन में ऊँट के लिए तीन शब्दों का प्रयोग हुआ है : (1) जमल (2) नाक़ा (3) इबिल

1. **जमल :** यह पुल्लिंग के लिए प्रयोग होता है –

«निस्सन्देह जिन्होंने हमारी आयतों को झुठलाया, और उनके मुक़ाबले में अकड़ दिखाई, उनके लिए आकाश के द्वार नहीं खोले जाएँगे, तथा उनका स्वर्ग में प्रवेश उतना ही असंभव है जितना कि ऊँट का सूई के नाके में से गुज़रना।» (सूरा–7, अल-आराफ़ , आयत–40)

अर्थात् यहाँ इस्लाम का इनकार करनेवालों को चेतावनी दी जा रही है कि जब तक वे अल्लाह पर ईमान नहीं लाएँगे, और उसकी भेजी हुई पुस्तक को नहीं मानेंगे, वे स्वर्ग में प्रवेश नहीं कर सकते जिस प्रकार ऊँट सूई के नाके में प्रवेश नहीं कर सकता।

2. **नाक़ा :** यह स्त्रीलिंग के लिए प्रयोग होता है। जिसका अर्थ है : ऊँटनी। क़ुरआन में यह शब्द सात बार आया है। परन्तु एक ही क़िस्से की ओर संकेत करता है जो नबी सालेह (عليه السلام) की जाति के साथ पेश आया। अल्लाह ने एक ऊँटनी निशानी के लिए सालेह (عليه السلام) के साथ भेजी, सालेह (عليه السلام) ने अपनी जाति 'समूद' से कहा–

«मेरी जातिवालो! अल्लाह की 'इबादत' करो। उसके सिवा तुम्हारा कोई 'इलाह' (पूज्य) नहीं। तुम्हारे पास तुम्हारे 'रब' की ओर से एक खुली दलील आ चुकी है। यह अल्लाह की ऊँटनी, तुम्हारे लिए एक निशानी है; तो इसे छोड़ दो कि अल्लाह की धरती में खाए, और तकलीफ़ देने के लिए इसे हाथ न लगाना नहीं तो एक दुःख देनेवाली यातना तुम्हें आ लेगी।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–73)

«(सालेह ने) कहा, ''यह एक ऊँटनी है। पानी पीने की एक बारी इसकी है, और एक निश्चित दिन की बारी पानी लेने की तुम्हारे लिए है। तकलीफ़ देने के लिए इसे हाथ न लगाना नहीं तो एक बड़े दिन की यातना तुम्हें आ लेगी।'' परन्तु उन्होंने उसकी कूचें काटकर मार डाला, फिर पछताते रह गए।» (सूरा–26, अश-शुअरा, आयतें–155-157)

«और हमें निशानियाँ भेजने से इसके सिवा और किसी चीज़ ने नहीं रोका कि पहलों ने उन्हें झुठलाया है। और 'समूद' को हमने ऊँटनी दी–एक खुली निशानी–परन्तु उन्होंने उस पर ज़ुल्म किया। और हम निशानियाँ लोगों को डराने ही के लिए भेजते हैं।» (सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–59)

«और ऐ मेरी जातिवालो! यह अल्लाह की ऊँटनी तुम्हारे लिए एक निशानी है, इसे छोड़ दो कि अल्लाह की धरती में (जहाँ चाहे) खाए, और तकलीफ़ देने के लिए इसे हाथ न लगाना नहीं तो तात्कालिक यातना तुम्हें आ लेगी। परन्तु उन्होंने उसकी कूचें काटकर उसको मार डाला, तो उसने कहा, "बस तीन दिन और आनन्द ले लो! यह ऐसा वादा है जिसमें कुछ भी झूठ नहीं।" फिर जब हमारा आदेश आ गया तो हमने अपनी दयालुता से सालेह को और उन लोगों को जो उसके साथ 'ईमान' लाए थे, बचा लिया और उस दिन की रुसवाई से उन्हें बचाए रखा। निस्सन्देह तेरा 'रब' ही बलवान् और अपार शक्ति का मालिक है।» (सूरा–11, हूद, आयतें–64-66)

«तो उनसे अल्लाह के 'रसूल' ने कहा, "ख़बरदार अल्लाह की ऊँटनी और उसके पानी पीने की बारी से!" परन्तु उन्होंने उसे झुठलाया, और उस (ऊँटनी) को उसकी कूचें काटकर मार डाला, तो उनके 'रब' ने उनके गुनाह के कारण उनपर तबाही डाली और उस (बस्ती) को बराबर कर दिया। और उसे कोई डर नहीं कि इसके पीछे क्या होगा।» (सूरा-91 अश-शम्स, आयतें 13-15)

यह वह अंजाम है जो सालेह (عليه السلام) की जाति समूद का हुआ कि उन्होंने अल्लाह की भेजी हुई निशानी को न केवल झुठलाया, बल्कि ऊँटनी की हत्या भी कर दी। फिर वे अल्लाह की पकड़ में आ गए। इन आयतों में जहाँ क़ुरआन पिछली आसमानी किताबों की पुष्टि करता है, वहीं उनमें अपनी ओर से घड़ी हुई बातों का खंडन भी करता है, जैसे यहूदियों ने तौरात में अपनी ओर से बढ़ा लिया कि अल्लाह अपने कामों पर पछताता है। (उत्पत्ति : 6:4-6, 8:12)

परन्तु क़ुरआन इसका खंडन करते हुए कहता है कि अल्लाह जो कुछ करता है अपनी हिकमत और दयालुता के अन्तर्गत करता है, इसलिए वह अपने किए पर न कभी पछताता है न लज्जित होता है, और न किसी से भयभीत होता है।

3. इबिल : यह शब्द पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। यह शब्द क़ुरआन में दो स्थानों पर आया है।

(i) एक सूरा अनआम में जहाँ सवारी या बोझ ढोनेवाले पशुओं का वर्णन आया है और इसी प्रकार वह पशु जिनका खाना हलाल है। (क़ुरआन, सूरा–6, अनआम, आयतें–143-145)

(ii) दूसरा स्थान वह है जहाँ पृथ्वी और आकाश की बहुत-सी वस्तुओं का वर्णन इसलिए किया गया है कि मनुष्य इनपर ध्यान दे, और विचार करे कि इनको किसने पैदा किया है और इनकी दशा पर विचार करे कि ये कैसे पैदा की गई हैं? उनमें एक ऊँट भी है। तो आख़िरत (प्रलय दिवस) पर विश्वास करना कुछ भी कठिन नहीं होगा। (क़ुरआन, सूरा 88, अल-ग़ाशिया, आयत-17)

ए
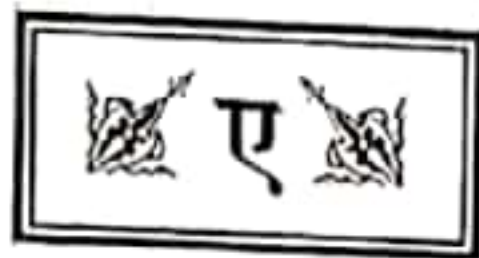
एहसान

क़ुरआन में 'एहसान' शब्द का प्रयोग बार-बार हुआ है जिसका अनुवाद आप 'भलाई' और 'उत्तम कार्य' भी कर सकते हैं। 'एहसान' कभी तो दूसरों के लिए होता है और कभी स्वयं अपने लिए करना पड़ता है।

पहली दशा में कभी तो 'एहसान' बिना किसी बदले के अपनी ओर से होता है। जैसे–

«निस्सन्देह अल्लाह न्याय, एहसान (भलाई) तथा नातेदारों को उनका हक़ देने का हुक्म देता है।» (सूरा–16, अन-नह्ल, आयत–90)

और कभी किसी बदले की दशा में 'एहसान' का हुक्म देता है। जैसे–

«एहसान का बदला एहसान के सिवा और क्या हो सकता है?» (सूरा–55, अर्रहमान, आयत–60)

'एहसान' स्वयं अपने लिए भी किया जाता है। इसका वर्णन एक सहीह हदीस में आता है जिसमें नबी (ﷺ) ने फ़रमाया है–

"एहसान यह है कि तुम अल्लाह की इबादत (बन्दगी) यह समझकर करो कि तुम उसको देख रहे हो, अगर तुम ऐसा नहीं कर सकते तो यह समझकर करो कि वह तुमको देख रहा है।" (सहीह बुख़ारी, 50 तथा सहीह मुस्लिम, 8)

अर्थात् अल्लाह और बन्दे का सम्बन्ध इस प्रकार हो कि दोनों एक-दूसरे को अनुभव कर रहे हों, या कम से कम यह तो अनिवार्य है कि बन्दा यह अनुभव करे कि अल्लाह तो उसे देख रहा है। उसके प्रत्येक कर्त्तव्य का उसको ज्ञान हो रहा है, और सब कुछ उसके कर्म-पत्र में लिखा जा रहा है, जिसका एक दिन उसको हिसाब देना पड़ेगा। अब जो व्यक्ति अपने जीवन को 'एहसान' की इस श्रेणी में व्यतीत करेगा वह भला किसी पर कैसे अत्याचार कर सकता है? इसलिए यह कहना ग़लत नहीं होगा कि 'एहसान' की इस श्रेणी को छोड़ने के कारण ही लोग आज विभिन्न प्रकार की बुराइयों में पड़ गए हैं।

एतिकाफ़

यह एक विशेष प्रकार की इबादत है, जो एकान्त में की जाती है, इसलिए इसको एकान्तवास भी कहा जा सकता है। इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य कुछ दिनों के लिए सांसारिक जीवन से दूर होकर अल्लाह के ध्यान में लग जाए, ताकि अपनी आत्मा का सुधार कर सके। यह इबादत विशेष कर रमज़ान के आख़िरी दस दिनों में की जाती है, जैसा कि नबी (ﷺ) की जीवनी से पता चलता है।

क़ुरआन में इसकी ओर इस प्रकार संकेत किया गया है –

«और स्त्रियों से उस समय सम्भोग न करो जब तुम मस्जिदों में एतिकाफ़ की दशा में हो।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–187)

इस आयत, और नबी (ﷺ) की शिक्षाओं से एतिकाफ़ के विषय में हमें जो कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ वह यह है –

1. एतिकाफ़ की दशा में पत्नी से संभोग नहीं करना चाहिए।
2. यह कि एतिकाफ़ मस्जिद में करना चाहिए, और वह भी जामा मस्जिद में, जहाँ जुमे की नमाज़ पढ़ने के लिए बाहर जाने की आवश्यकता न पड़े।
3. स्त्रियाँ भी एतिकाफ़ कर सकती हैं। जैसा कि नबी (ﷺ) की पत्नियाँ किया करती थीं। परन्तु यह आवश्यक है कि मस्जिद में रहते हुए उनकी सुरक्षा और खाने-पीने का प्रबंध हो, अगर ऐसा न हो सके तो उनको एतिकाफ़ नहीं करना चाहिए।
4. घर में एतिकाफ़ करने का कोई प्रमाण हमें नहीं मिलता।
5. एतिकाफ़ अगर रमज़ान के दिनों में किया जा रहा हो तो रोज़ा (व्रत) रखना अनिवार्य है, और अगर किसी और माह में किया जाए तो रोज़ा रखना अनिवार्य नहीं।
6. एतिकाफ़ करनेवाला किसी कारण अगर एतिकाफ़ छोड़कर बाहर निकले, तो फिर से एतिकाफ़ करना आवश्यक नहीं है, परन्तु अगर एतिकाफ़ मन्नत का है तो दोबारा करना पड़ेगा।
7. एतिकाफ़ करनेवाले के लिए यह अनिवार्य है कि वह केवल अपनी कुछ विशेष आवश्यकताओं के अतिरिक्त मस्जिद से बाहर न निकले।
8. एतिकाफ़ करनेवाले को चाहिए कि अपना समय नमाज़ पढ़ने, क़ुरआन पढ़ने, और अल्लाह के ध्यान में बिताए, और लोगों से अनावश्यक बातों से बचे।
9. अगर अपनी आवश्यकता के कारण मस्जिद से बाहर निकले और रास्ते में कोई मिल जाए तो सलाम करे, और उसका हाल-समाचार पूछकर आगे बढ़ जाए।
10. ऐसी जामा मस्जिद में एतिकाफ़ करना बेहतर है, जिसमें बैतुल-ख़ला (शौचालय) तथा पानी का प्रबंध हो, अगर इन चीज़ों का प्रबंध न हो तो एतिकाफ़ करनेवाला इस ज़रूरत की पूर्ति के लिए घर या जंगल में भी जा सकता है।
11. एतिकाफ़ फ़र्ज़ तो नहीं है, लेकिन हर जामा मस्जिद में इसका प्रबंध करना चाहिए सबसे ज़्यादा लोग 'बैतुल्लाह' मक्का में एतिकाफ़ करते हैं। 'बैतुल्लाह' की समिति के एक एलान के अनुसार, सन् 2005 ई. में बैतुल्लाह में एतिकाफ़ करनेवालों की संख्या पचास हज़ार थी, उनमें लगभग बीस हज़ार स्त्रियाँ थीं।
12. अगर किसी स्त्री को एतिकाफ़ के बीच मासिक धर्म आ जाए तो वह एतिकाफ़ छोड़कर मस्जिद से निकल जाए और घर चली जाए।

क
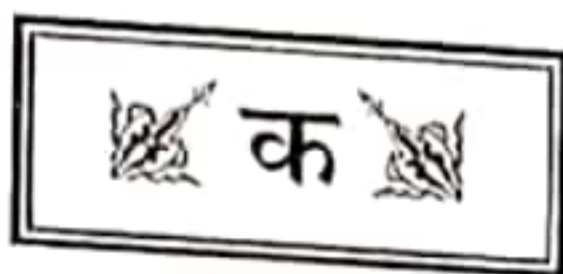
क़ुरआन

यह अन्तिम ईश-ग्रन्थ है, जो अन्तिम नबी मुहम्मद (ﷺ) पर तेईस वर्षों के अन्तराल में उतरा। सबसे पहले तो यह नबी (ﷺ) के हृदय पर नक़्श (अंकित) हो जाता था, फिर आप (ﷺ) के बताने पर आपके साथी (सहाबा) याद कर लेते थे, और नबी (ﷺ) ही की आज्ञा से इसको विभिन्न वस्तुओं पर लिख लिया जाता था। फिर जब अबू बक्र (رضي الله عنه) ख़लीफ़ा बनाए गए तो उन्होंने विभिन्न चीज़ों पर लिखे हुए क़ुरआन के अंशों को इकट्ठा करवाया और एक ग्रन्थ के रूप में जमा कर दिया। फिर जब उस्मान ख़लीफ़ा बने तो उन्होंने इसी ग्रन्थ की बहुत-सी प्रतियाँ बनवाईं और उन्हें पूरी इस्लामी दुनिया में भिजवा दिया। और आज तक उसी प्रति के अनुसार क़ुरआन प्रकाशित होता है। इस प्रकार अल्लाह तआला ने क़ियामत तक के लिए इसे परिवर्तित होने से बचा लिया और इसकी सुरक्षा की ज़िम्मेदारी लेते हुए फ़रमाया –

«निस्सन्देह क़ुरआन हमने ही उतारा है और निस्सन्देह हम ही उसके रक्षक हैं।» (क़ुरआन, सूरा–15, अल-हिज्र, आयत–9)

क़ुरआन अब संसार में एकमात्र ईश्वरीय ग्रन्थ है, जो अब तक सुरक्षित है और क़ियामत तक सुरक्षित रहेगा। इससे पूर्व जो ग्रन्थ उतरे थे, उनमें बहुत कुछ फेर-बदल हो चुके हैं।

क़ुरआन जब पहले-पहल लिखा गया तो उसमें मात्राएँ (आराब) नहीं थीं। क्योंकि अरबी भाषियों को इसकी ज़रूरत नहीं थी। लेकिन जब इस्लाम अरब से निकलकर अजम तक फैल गया और अजमियों को मात्राओं के बिना क़ुरआन पढ़ने में कठिनाई होने लगी तो उस समय के ख़लीफ़ा अब्दुल-मलिक-बिन मरवान(जो सन 65 हिजरी में ख़लीफ़ा बने) ने एक भाषा विद अबुल-असवद दुवली (जिनका देहान्त सन 69 हिजरी में हुआ) को आदेश दिया कि वे क़ुरआन में मात्राएँ लगा दें ताकि पढ़ने में ग़लतियाँ न हों। इस प्रकार अल्लाह ने क़ुरआन को ग़लत पढ़ने से भी बचा लिया। फिर जब प्रिंटिंग प्रेस आ गई तो क़ुरआन संसार के कोने-कोने से प्रकाशित होने लगा। इस समय क़ुरआन का सबसे बड़ा प्रिंटिंग प्रेस मदीना (सऊदी अरब) में है। उसका नाम 'शाह फ़हद क़ुरआन प्रेस संस्थान' है, जिसकी स्थापना 30 अक्तूबर, 1984 में हुई, जहाँ से सन 2000 ई. तक क़ुरआन की डेढ़ करोड़ से भी अधिक प्रतियाँ प्रकाशित हो चुकी थीं। इसी प्रकार उस संस्थान से सन 1999 ई. तक निम्नलिखित 29 भाषाओं में क़ुरआन का अनुवाद प्रकाशित हो चुका था –

उर्दू, स्पेनिश, अलबीनी, इंडोनेशियाई, अंग्रेज़ी, अन्को, उरामी, इगेरिया, बराहोइया, पश्तो, बंगाली, बर्गी, बुस्ती, तमिल, थाइलैंड, तुर्की, ज़ूलो, सोमाली, चीनी, फ़ारसी, फ्रांसीसी, क़ाज़ाक़ी, कश्मीरी, कोरी, मक्दूनी, मलेबारी, होसा, पूरबा और यूनानी।

किसी धार्मिक ग्रन्थ के विषय में कोई राय बनाने तथा उसे स्वीकार करने से पहले यह देखना चाहिए कि वह स्वयं अपने विषय में क्या कहता है। क़ुरआन अपने विषय में कहता है –

1. यह अल्लाह की ओर से उतारा गया है –

«(ऐ नबी कहो) यह क़ुरआन मेरी ओर 'वह्य' किया गया है, ताकि मैं इसके द्वारा तुम्हें और जिस तक यह पहुँचे सबको सचेत करूँ।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–19)

«(ऐ नबी) हम ही ने अत्यंत व्यवस्थित ढंग से तुमपर क़ुरआन उतारा।» (सूरा–76, अद्-दहर, आयत–23)

"क़ुरआन करीम की खताती का एक नमूना"

«क्या इन लोगों के लिए यह काफ़ी नहीं है कि हमने तुमपर किताब उतारी, जो इन्हें पढ़कर सुनाई जाती है। निश्चय ही इसमें ईमानवालों के लिए दयालुता तथा अनुस्मृति है।» (सूरा–29, अल-अनकबूत, आयत–51)

«यह किताब हमने तुम्हारी ओर सत्य के साथ उतारी है, अतः तुम अल्लाह ही की इबादत (उपासना) करो, धर्म को उसके लिए विशुद्ध करते हुए।» (अर्थात् उपासना में उसके साथ किसी को साझी न बनाओ।) (सूरा–39, अज़-ज़ुमर, आयत–2)

«इस क़ुरआन की तुम्हारी ओर प्रकाशना करके, इसके द्वारा हम तुम्हें एक बहुत ही अच्छा बयान सुनाते हैं, यद्यपि इससे पहले तुम बेख़बर थे।» (सूरा–12, यूसुफ़, आयत–3)

«हमने तुम्हें बार-बार दोहरानेवाली सात आयतें तथा यह क़ुरआन दिया।» (सूरा–15, अल-हिज्र, आयत–87)

«तुमको क़ुरआन, जो तत्त्वदर्शी तथा ज्ञानवाला है, अल्लाह की ओर से दिया जा रहा है।» (सूरा–27, अन-नम्ल, आयत–6)

इससे पता चलता है कि क़ुरआन अल्लाह की किताब है। इस समय संसार में क़ुरआन के अतिरिक्त कोई अन्य ग्रन्थ नहीं है जो स्पष्ट रूप से अल्लाह की किताब होने का दावा कर सके, बल्कि अल्लाह ने तो नबी (ﷺ) को भी चेतावनी दी है कि अगर तुमने अपनी ओर से कोई बात क़ुरआन से संबद्ध करके कहने की कोशिश की होती तो हम तुम्हारा हाथ पकड़ लेते, और तुम्हारी गर्दन की रग काट देते। (सूरा–69, अल-हाक़्क़ा, आयत–45)

इससे मालूम हुआ कि पूरा क़ुरआन अल्लाह की ही ओर से है। इसलिए एक स्थान पर तो क़ुरआन ने यह दावा भी किया कि नबी (ﷺ) जो कुछ कहते हैं वह वह्य के द्वारा ही कहते हैं। (क़ुरआन, सूरा–53, अन-नज्म, आयत–3)

✾ क़ुरआन एक चमत्कार

2. क़ुरआन एक ऐसा चमत्कारपूर्ण ग्रंथ है कि समस्त मनुष्य मिलकर भी वैसा ग्रन्थ नहीं ला सकते–

«कह दो : यदि मनुष्य और जिन्न इसके लिए इकट्ठा हो जाएँ कि इस क़ुरआन जैसी कोई चीज़ लाएँ तो वे इस जैसी कोई चीज़ न ला सकेंगे। चाहे वे परस्पर एक दूसरे के सहायक ही क्यों न बन जाएँ।» (सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–88)

क़ुरआन ने यह चैलेंज उन लोगों को किया था जो अपने आपको अरबी भाषा का महान विद्वान समझते थे। उनके मुक़ाबले में नबी (ﷺ) अनपढ़ थे। फिर भी वे कहते थे कि यह सब मुहम्मद अपनी ओर से लाते हैं। इसपर क़ुरआन में यह चैलेंज किया गया कि तुम और 'जिन्न' मिलकर भी क्या ऐसा क़ुरआन ला सकते हो? उत्तर यही रहा कि नहीं ला सकते।
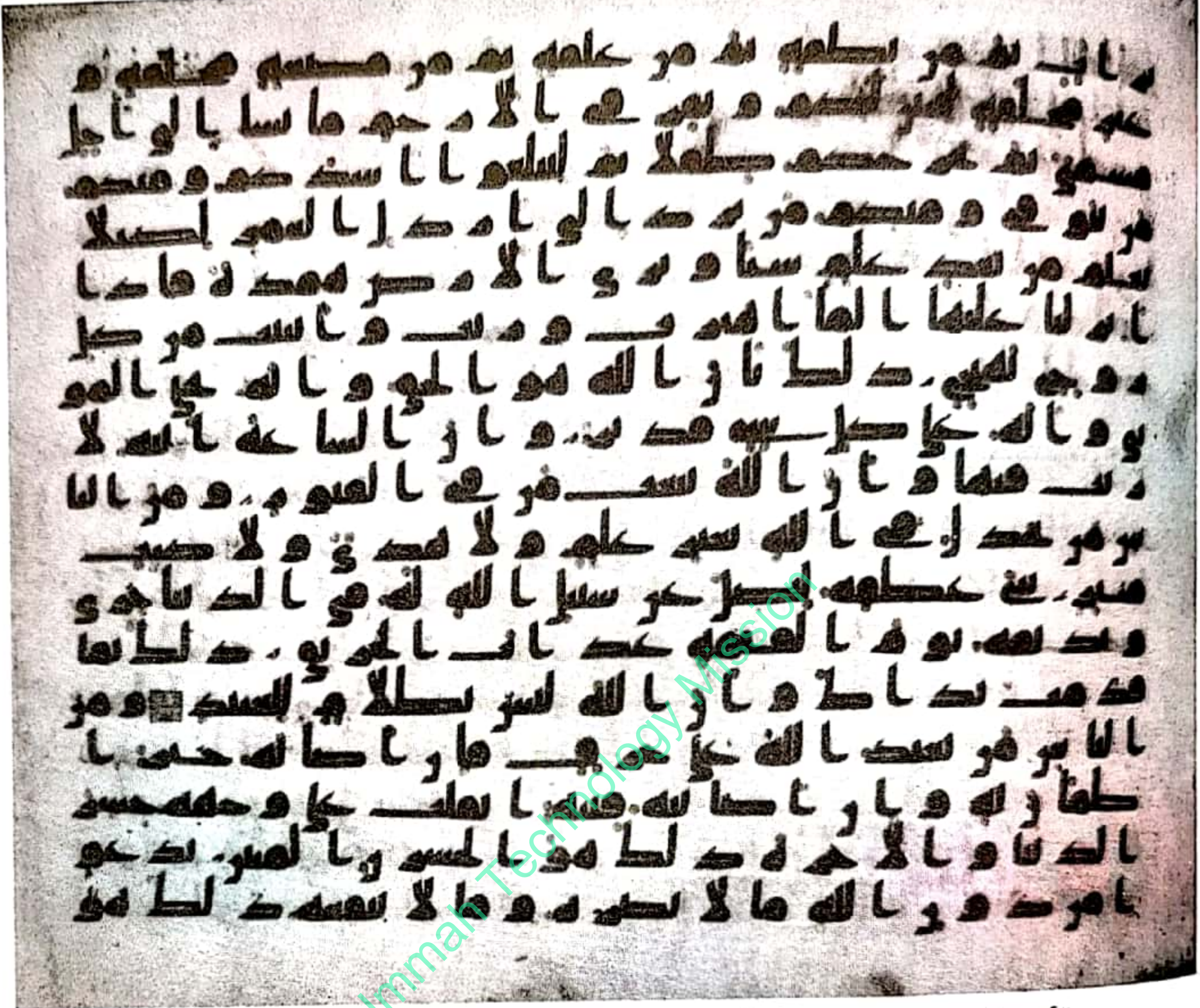
"क़ुरआन मजीद की पुरानी ख़त्ताती जो बग़ैर नुक़्ता के लिखी गई"

फिर क़ुरआन ने केवल दस सूरतें लाने के लिए चैलेंज किया –

«क्या वे कहते हैं, ''उसने इसे स्वयं गढ़ लिया है।'' कह दो, ''अच्छा तुम इस जैसी गढ़ी हुई दस सूरतें ले आओ, और अल्लाह के अतिरिक्त जिस किसी को चाहो बुला लो, यदि तुम सच्चे हो।''» (सूरा–11, हूद, आयत–13)

जब वे दस सूरतें लाने में भी असफल रहे तो फिर क़ुरआन ने केवल एक सूरा लाने का चैलेंज किया –

«यदि तुम उस चीज़ के विषय में, जो हमने अपने बन्दे पर उतारी है, संदेह में हो तो उस जैसी एक 'सूरा' लाकर दिखा दो, और अल्लाह के अतिरिक्त तुम जिसे चाहो अपनी सहायता के लिए बुला लो, यदि तुम सच्चे हो।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–23)

लेकिन वे इस चैलेंज का भी जवाब न दे सके। इससे क़ुरआन का महा चमत्कार होना और अल्लाह की ओर से 'वह्य' होना भी, सिद्ध हो गया।

❋ कुरआन की विशेषता

3. कुरआन में शिफ़ा (आरोग्य) और रहमत (दयालुता) है –

«हम जो कुरआन में उतारते हैं इसमें ईमान लानेवालों के लिए शिफ़ा (आरोग्य) और दयालुता है, और अत्याचारियों के लिए उसमें घाटा ही घाटा है।» (सूरा–17, बनी इसराईल, आयत–82)

अर्थात् कुरआन हर प्रकार के मानसिक तथा शारीरिक रोगों से मुक्ति प्रदान करता है। इसलिए आवश्यक है कि उस पर ईमान लाया जाए, हृदय में उसे बसाया जाए, उसके अनुसार जीवन व्यतीत किया जाए। जो लोग उसपर ईमान नहीं लाते, बल्कि उसके ईश्वरीय होने को झुठलाते हैं ऐसे लोगों के लिए घाटा ही घाटा है, न तो वे संसार में उससे कोई लाभ उठा सकेंगे, न प्रलय के दिन। इस प्रकार इसके द्वारा वे न तो अपने हृदय का रोग दूर कर सकेंगे और न शरीर का। कुरआन में आया है –

«और जब कोई सूरा उतारी जाती है तो कुछ लोग यह पूछते हैं कि इस सूरा ने तुममें से किसके ईमान को बढ़ाया? तो जो लोग ईमान लाए इस सूरा ने उनके ईमान को बढ़ाया है और वे प्रसन्न हो उठे, और जिनके हृदयों में रोग है इस सूरा ने उनके रोग को और बढ़ा दिया और वह कुफ़्र की अवस्था में ही मर गए।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयतें–124-125)

❋ कुरआन की भाषा

4. कुरआन को अल्लाह ने अरबी भाषा में उतारा, क्योंकि यह जिसपर उतारा गया था वे अरबी भाषी थे। उनके प्रथम संबोधित भी अरबी भाषी लोग ही थे। इसलिए किसी और भाषा में यह उतरता तो उन लोगों को इसे समझने और स्वीकार करने में बड़ी कठिनाई होती –

«और इसी प्रकार (ऐ नबी!) हमने तुम्हारी ओर अरबी में कुरआन 'वह्य' किया।» (सूरा–42, अश-शूरा, आयत–7)

«यदि हम इसे ग़ैर-अरबी कुरआन बनाते तो वे लोग कहते, ''इसकी आयतें क्यों नहीं (हमारी भाषा में) खोल-खोल कर बयान की गईं? यह क्या कि वाणी तो ग़ैर अरबी है और व्यक्ति अरबी?''» (सूरा–41, हा-मीम अस-सजदा, आयत–44)

«यह वह पुस्तक है जिसकी आयतें खोल-खोल कर बयान हुई हैं, अरबी कुरआन के रूप में उन लोगों के लिए जो जानना चाहें।» (सूरा–41, हा-मीम अस-सजदा, आयत–3)

यहाँ यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि आप (ﷺ) से पहले जितने भी नबी आये उनको उन्हीं की भाषा में किताब दी गयी। इसलिए नबी मुहम्मद (ﷺ) को अरबी में कुरआन देना इसी नियम की कड़ी है।

❀ क़ुरआन की महानता

5. क़ुरआन इस पृथ्वी पर अल्लाह का कलाम (वाणी) है, जिसमें उसने पृथ्वी पर रहनेवाले मनुष्यों की ज़िम्मेदारियों तथा अधिकारों को खोल-खोलकर बयान किया है, ताकि वे लोक और परलोक दोनों में सफल रहें, परन्तु देखने में यही आया है कि वे इन सब बातों से निश्चिन्त पड़े हुए हैं, जबकि क़ुरआन की महानता और गरिमा यह है कि अगर पर्वत जैसी महान वस्तु में भी प्राण होते और उसको क़ुरआन दिया जाता तो वह काँपने लगता –

«अगर हम क़ुरआन को किसी पहाड़ पर उतारते तो तुम उसको देखते कि वह अल्लाह के भय से फटा जा रहा है। और ये बातें हम लोगों के लिए इसलिए बयान करते हैं ताकि वे विचार करें।» (सूरा–59, अल-हश्र, आयत–21)

ऐसे महान क़ुरआन का मनुष्यों ने आदर नहीं किया, इसलिए प्रलय दिवस को नबी (ﷺ) यह शिकायत करेंगे –

«रसूल कहेगा, "ऐ रब! निश्चय ही मेरी जातिवालों ने इस क़ुरआन को छोड़ रखा था।"» (सूरा–25, अल-फ़ुरक़ान, आयत–30)

❀ क़ुरआन सबके लिए

6. क़ुरआन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसकी शिक्षाएँ संसार में रहनेवाले सारे मनुष्यों के लिए हैं। इसी लिए क़ुरआन बार-बार यह कहकर सम्बोधित करता है, 'ऐ लोगो' 'ऐ मनुष्यो' –

«ऐ लोगो, अपने उस 'रब' की बन्दगी करो जिसने तुम्हें और तुमसे पहले के लोगों को पैदा किया, ताकि तुम उसकी यातना से बच सको।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–21)

«ऐ मनुष्य! किस चीज़ ने तुझे अपने उदार 'रब' के बारे में धोखे में डाल रखा है?» (सूरा–82, इनफ़ितार, आयत–6)

इस समय संसार में यह एकमात्र धर्मग्रंथ है, जो पूरी मानव-जाति को सम्बोधित करता है कि वह इसकी शिक्षाओं को अपनाए और उनपर चले। इसलिए यह कहना ग़लत है कि यह किसी जाति विशेष की धार्मिक पुस्तक है। यह तो हर उस व्यक्ति की धार्मिक पुस्तक है जो इसे अपना ले।

क़ुरआन में बड़े ही स्पष्ट रूप से अल्लाह ने बताया है –

«(ऐ मुहम्मद) हमने तो तुम्हें सारे ही मनुष्यों के लिए शुभ-सूचना देनेवाला तथा सचेत करनेवाला बनाकर भेजा है, परन्तु अधिकतर लोग जानते नहीं।» (सूरा–34, सबा, आयत–28)

पवित्र क़ुरआन शुभसूचना देनेवाला उनके लिए है, जो इसके आदेशों का पालन करते हैं और सचेत करनेवाला उनके लिए है जो इसे ठुकरा दें। यह कहना ठीक नहीं कि क़ुरआन में जो कुछ आया है उससे मेरा क्या सम्बन्ध? ये वे लोग हैं जो क़ुरआन की वास्तविकता को समझते नहीं, बस इनके लिए परलोक में यातना ही यातना है। और ग्रहण करनेवालों के लिए स्वर्ग और उसकी नेमतें।

❀ क़ुरआन पाठ

7. क़ुरआन एक ऐसा धर्मग्रन्थ है कि इसे जितनी बार भी पढ़ा जाए उसमें हर बार नवीनता की अनुभूति होती है और ऐसा प्रतीत होता है कि यह अभी-अभी उतरा है। इसकी विषय-सामग्री इतनी शिक्षाप्रद और हृदयस्पर्शी होती है कि इसको पढ़ने से नेत्र भीग जाते हैं। हृदय को शान्ति प्राप्त होती है और सारी इन्द्रियाँ शान्त और संतुष्ट हो जाती हैं –

«अल्लाह ने सर्वोत्तम बात उतारी है, एक ऐसा ग्रन्थ जिसके सभी भाग परस्पर एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, और जिन्हें बार-बार दोहराया गया है, उससे उनके रोंगटे खड़े हो जाते हैं, जो अल्लाह से डरते हैं। फिर उनके शरीर और हृदय नर्म पड़कर अल्लाह का स्मरण करने लगते हैं। यह अल्लाह का मार्गदर्शन है। जिससे वह सीधे मार्ग पर ले आता है, जिसे चाहता है। और जिसे अल्लाह ही पथ भ्रष्ट कर दे उसके लिए कोई मार्ग दिखानेवाला नहीं है।» (क़ुरआन, सूरा–39, अज़-ज़ुमर, आयत–23)

क़ुरआन की इन विशेषताओं को जान लेने के बाद, संक्षेप में क़ुरआन-भाष्य पर विचार कर लेना भी उचित होगा। क़ुरआन को समझने के दो विशेष साधन हैं –

प्रथम साधन : स्वयं क़ुरआन,

द्वितीय साधन : क़ुरआन के अतिरिक्त अन्य साधन जैसे क़ुरआन- भाष्य, हदीस आदि।

प्रथम साधन : क़ुरआन एक बात को विभिन्न प्रकार से बयान करता है। इसलिए अगर आप क़ुरआन के सम्बन्ध में सम्पूर्ण ज्ञान चाहते हैं तो सबसे पहले यह करें कि क़ुरआन से सम्बन्धित सारी आयतों को इकट्ठा कर लें, और फिर उनको विषय के अनुसार क्रमबद्ध कर लें। इस प्रकार क़ुरआन का मौलिक सिद्धान्त स्पष्ट हो जाएगा और यह भी स्पष्ट हो जाएगा कि क़ुरआन क्या है और यह क्या चाहता है? क़ुरआन ने स्वयं उसकी ओर विभिन्न आयतों में संकेत किया है।

एक बार फिर हम यहाँ सूरा–39 अज़-ज़ुमर की 23वीं आयत पर नज़र डालते हैं –

«अल्लाह ने सर्वोत्तम बात उतारी है, एक ऐसी किताब जिसके सभी भाग परस्पर मिलते-जुलते हैं और बार-बार दोहराए गए हैं।»

दूसरी जगह कहा गया है –

«हमने इस क़ुरआन में लोगों के लिए हर एक उदाहरण को विभिन्न प्रकार से बयान कर दिया है, परन्तु अधिकतर लोगों ने इसका इनकार कर दिया।» (सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–89)

विस्तृत विवरण के लिए सूरा–18, अल-कहफ़, आयत–54; सूरा–20, ता-हा, आयत–113; सूरा–6, अल-अनआम, आयत–46 देखी जा सकती हैं।

उदाहरण के लिए देखिए कि तौबा करने के लिए किस प्रकार क़ुरआन ने मार्गदर्शन किया है –

«फिर आदम ने अपने रब से कुछ शब्द पा लिये तो उसने उसका पश्चात्ताप स्वीकार कर लिया।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–37)

तौबा करने के लिए ये शब्द क्या थे, देखिए क़ुरआन ने इनको एक जगह इस प्रकार स्पष्ट किया–

«दोनों बोले : हमारे 'रब' हमने अपने ऊपर अत्याचार किया, यदि तूने हमें क्षमा न किया और हमपर दया न की तो निश्चय ही हम घाटा उठानेवालों में से हो जाएँगे।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–23)

इसी प्रकार रसूलों की कहानियाँ तथा विभिन्न जातियों का वृत्तान्त, उनका इतिहास क़ुरआन ने भिन्न-भिन्न स्थानों पर बयान किया है, ताकि लोग उनसे शिक्षा ग्रहण करें।

नबियों से सम्बन्धित आयतों को एक स्थान पर इकट्ठा करें तो उनसे नबियों के विषय में बहुत कुछ जानकारी मिल जाएगी। क़ुरआन द्वारा क़ुरआन की व्याख्या करने के लिए महान विद्वान शैख़ मुहम्मद अमीन शन्केती (देहान्त 1339 हिजरी) ने 'अज़वाउल बयान' नाम की एक तफ़सीर लिखी है, जो आठ खंडों में है, और इस समय अरबी तफ़सीरों में सबसे अधिक प्रसिद्ध है जो सऊदी अरब के दारुल फ़तवा से प्रकाशित हुई है।

क़ुरआन को सही और पूर्ण रूप से समझने के लिए अरबी भाषा का ज्ञान ज़रूरी है। वैसे अरबी भाषा के विद्वानों ने विभिन्न भाषाओं में क़ुरआन अनुवाद तथा भाष्य लिखे हैं उनसे भी फ़ायदा उठाया जा सकता है।

द्वितीय साधन : क़ुरआन को समझने और उसकी व्याख्या करने का द्वितीय साधन हज़रत मुहम्मद (ﷺ) की सहीह हदीस (कथन) तथा आपका व्यवहार है, क्योंकि क़ुरआन को आप (ﷺ) से अधिक कोई और नहीं समझ सकता। क्योंकि उन्हीं पर तो क़ुरआन उतारा गया था। इसलिए प्रत्येक कर्म, जो मुहम्मद (ﷺ) ने किया और जो कुछ कहा वही क़ुरआन की सही व्याख्या है। स्वयं क़ुरआन में इस ओर संकेत किया गया है –

«हमने इस किताब को तुम्हारी ओर सत्यता के साथ उतारा है, ताकि तुम लोगों के बीच अल्लाह के बताए हुए संविधान के अनुसार निर्णय करो, और तुम विश्वासघात करनेवालों की ओर से झगड़नेवाले न बनो।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–105)

दूसरी जगह क़ुरआन में है –

«हमने तुमपर 'ज़िक्र' (क़ुरआन) उतारा है, ताकि तुम लोगों के समक्ष खोल-खोलकर बयान कर दो, जो उनकी ओर उतारा गया है। संभव है वे सोच-विचार करें।» (सूरा–16, अन-नह्ल, आयत–44)

और फ़रमाया –

«हमने यह किताब तुमपर इसी लिए अवतरित की है कि जिसमें वे विभेद कर रहे हैं, उसे तुम उनपर स्पष्ट कर दो और यह मार्गदर्शन और दयालुता है उन लोगों के लिए जो ईमान लाएँ।» (सूरा–16, अन-नह्ल, आयत–64)

इसी प्रकार एक सहीह हदीस में यह आया है कि मुहम्मद (ﷺ) ने कहा–

"मुझे क़ुरआन दिया गया, और उसके साथ उसी की तरह सुनन।" (अबू दाऊद, 4604, तथा मुस्नद अहमद, 17174)

इसीलिए हदीस के संग्रहकर्त्ताओं ने हदीस-ग्रंथों में प्रायः 'तफ़सीर' शीर्षक से भी एक अध्याय रखा है, अर्थात् 'सुनन' जो क़ुरआन की व्याख्या हैं। इसलिए क़ुरआन की प्रत्येक व्याख्या जो सहीह 'सुनन' से टकराएगी वह अनुचित होगी।

कुछ लोगों का विचार है कि कभी-कभी सहीह 'सुनन' क़ुरआन की अपनी व्याख्या से टकरा जाती है। परन्तु यह बात बिलकुल ग़लत है क्योंकि सहीह हदीस का अर्थ ही यह है कि वह क़ुरआन के विरुद्ध नहीं है।

क़ुरआन की व्याख्या करते हुए हमें स्वयं क़ुरआन या हदीस में कोई विवरण न मिले तो फिर हमें सहाबा (नबी ﷺ के साथियों) के कथन और विचार से सहायता लेनी चाहिए, क्योंकि क़ुरआन का अवतरण उन्हीं के सामने हुआ और वे क़ुरआन और हदीसों को बहुत अच्छी तरह समझते थे। उनके विचार को क़ुरआन की व्याख्या करते समय अधिक महत्त्व देना चाहिए, विशेषकर चारों ख़लीफ़ाओं — अबू बक्र, उमर, उस्मान तथा अली (رضي الله عنهم) — के विचार को। उनके पश्चात् इस्लामी धर्मशास्त्र के विद्वानों अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद, अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास आदि के विचारों को।

अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद का एक बहुत प्रसिद्ध कथन है –

"मैं उस अल्लाह की शपथ खाकर कहता हूँ, जिसके अतिरिक्त कोई और उपास्य नहीं है कि क़ुरआन में कोई ऐसी आयत नहीं है जिसके विषय में मुझे यह ज्ञान न हो कि यह किसके बारे में उतरी और कहाँ उतरी। अगर मुझे यह ज्ञान हो जाए कि किसी के पास क़ुरआन के विषय में मुझसे अधिक ज्ञान है तो मैं उसकी ओर अपनी सवारी को फेर दूँगा।"

एक सहीह हदीस में है कि अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास के लिए नबी (ﷺ) ने यह दुआ फ़रमाई–

"ऐ अल्लाह इसको दीन में समझ-बूझ दे, और इसे क़ुरआन की व्याख्या सिखा।"

इसलिए उनको 'तरजुमानुल क़ुरआन' (क़ुरआन के महान विद्वान) कहा गया है।

क़ुरआन की व्याख्या करते हुए अगर हमें कोई विवरण क़ुरआन, हदीस या किसी सहाबी की व्याख्या में न मिले तो फिर 'ताबई' के विचार को देखना चाहिए (ताबई उसको कहते हैं, जिसने सहाबी से ज्ञान सीखा हो), क्योंकि उन्होंने क़ुरआन की व्याख्या सहाबा (ﷺ) से ली है। इन 'ताबइयों' में मुजाहिद, सईद-बिन-ज़ुबैर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

❃ कुरआन की शिक्षाओं का संक्षिप्त वर्गीकरण

कुरआन ज्ञान का महासागर है। इसमें कितने हीरे-जवाहरात पाए जाते हैं, इसको निश्चित करना असम्भव है–

«कहो : यदि समुद्र मेरे रब की बातों के लिखने के लिए रौशनाई हो जाए, इससे पहले कि मेरे रब की बातें समाप्त हों, समुद्र समाप्त हो जाएगा। यद्यपि हम उसके सदृश एक और भी समुद्र उसके साथ ला मिलाएँ। (अर्थात् दूसरा समुद्र भी समाप्त हो जाएगा।)»
(सूरा–18, अल-कह्फ़, आयत–109)

जीवन का ऐसा कौन-सा क्षेत्र है, जिसके विषय में क़ुरआन में शिक्षाएँ न पाई जाती हों। भूतकाल में विद्वानों ने इन शिक्षाओं को विभिन्न भागों में इकट्ठा करने का प्रयत्न किया। मेरे विचार में क़ुरआन के विभिन्न विषयों को पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है, परन्तु फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि सारे विषय इन भागों में आ गए हैं–

1. अल्लाह के एकत्व का वर्णन : चाहे रचना-कार्य हो, या इबादत, हर काम में आपको केवल एक ही अल्लाह दिखाई देगा और बार-बार उसका यह चैलेंज सामने आएगा कि अगर उसके अतिरिक्त कोई और है तो उसको लाओ और देखो क्या वह एक मक्खी को ही पैदा कर सकता है। यहाँ तक कि सारे देवी-देवता इकट्ठा हो जाएं तब भी वे ऐसा नहीं कर सकते, बल्कि अगर मक्खी कोई चीज़ लेकर उड़ जाए तो ये उसको छीन भी नहीं सकते। क़ुरआन् की यह विशेषता सारे धर्म ग्रंथों में उसको श्रेष्ठता प्रदान कर देती है, क्योंकि क़ुरआन के अतिरिक्त संसार में एक भी धर्म ग्रंथ नहीं है, जो अल्लाह तआला के एकत्व और उसकी बड़ाई तथा महानता को इतने विस्तृत एवं स्पष्ट रूप से बयान करे, मामला चाहे सारे संसार की पैदाइश का हो या उस एक ईश्वर की बन्दगी का।
2. उन जातियों का वर्णन जो पथ-भ्रष्ट हो गईं और फिर अल्लाह की यातना ने उनको घेर लिया।
3. उन जातियों के साथ वार्तालाप जो क़ुरआन उतरते समय पाई जाती थीं। जैसे यहूदी, ईसाई, मुशरिक, मजूसी इत्यादि।

4. कर्मों का वर्णन : इस्लाम में कर्मों को बड़ा महत्त्व प्राप्त है। क़ुरआन ने ईमान के साथ पुण्य कर्मों का बार बार वर्णन किया है। इसलिए विद्वानों का विचार है कि पुण्य कर्म ईमान का अनिवार्य अंग हैं। कर्म के द्वारा ही मनुष्य के भाग्य का निर्णय होता है। परन्तु इस पुण्य कर्म के साथ ईमान अनिवार्य है। बग़ैर ईमान के पुण्य कर्म का अल्लाह की दृष्टि में कोई ख़ास महत्त्व नहीं है।

मनुष्य के कर्मों को पाँच वर्गों में बाँटा जा सकता है–

(i) **अनिवार्य :** इसको इस्लामी परिभाषा में 'फ़र्ज़' कहते हैं। इसके करने से पुण्य (सवाब) मिलता है और न करने से यातना भोगनी पड़ेगी।

(ii) **मुस्तहब :** इसके करने से पुण्य (सवाब) मिलेगा और न करने पर यातना नहीं होगी।

(iii) **हराम :** इसको करने से यातना भोगनी पड़ेगी।

(iv) **मकरूह :** इसको न करना उत्तम है, परन्तु करने से यातना नहीं मिलेगी।

(v) **मबाह :** इसको करना और न करना दोनों बराबर हैं।

5. पारलौकिक जीवन का वर्णन क़ियामत का आना, मनुष्य द्वारा सर्वशक्तिमान ईश्वर को अपना हिसाब-किताब देना और फिर कर्मानुसार जन्नत या जहन्नम में सदैव के लिए रहना। यह क़ुरआन की विशिष्ट शिक्षा है। इसका वर्णन आपको पवित्र क़ुरआन में बार-बार मिलेगा, जो किसी दूसरे धर्मग्रन्थ में प्राय: नहीं पाया जाता, किसी-किसी में यदि पाया भी जाता है, तो अत्यन्त विकृत रूप में।

❃ क़ुरआन की व्याख्याएँ :

क़ुरआन की व्याख्याओं को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं।

प्रथम : 'तफ़सीर बिल्मासूर' – अर्थात् वह व्याख्या जो क़ुरआन, हदीस तथा सहाबा के कथन के प्रकाश में की गई हो। जिसका विवरण अभी ऊपर गुज़रा है।

'तफ़सीर बिल्मासूर' के प्रसिद्ध भाष्य ये हैं –

1. इब्ने-जरीर तबरी (224-310 हिजरी) उसका पहला संस्करण 6 खण्डों में है। दूसरे संस्करण के लिए अन्वेषणा अहमद शाकिर और महमूद शाकिर ने की है। यह संस्करण 16 खण्डों में प्रकाशित किया गया है। अब नई रिसर्च के पश्चात डॉ. अब्दुल्लाह तुर्की ने 26 खण्डों में प्रकाशित किया है।
2. इब्ने-कसीर (700-774 हिजरी) 'तफ़सीर बिल्मासूर' में यह सबसे अधिक प्रसिद्ध है। यह तफ़सीर आठ खण्डों में है। अब तक इसके बहुत-से संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

3. विद्वान शेख़ मुहम्मद-बिन-अली शौकानी ने, जो सन हिजरी (1173) में पैदा हुए और सन् हिजरी (1250) में उनका देहान्त हुआ, इन्होंने एक सौ से अधिक पुस्तकों की रचना की जिनमें तफ़सीर 'फ़तहुल -कदीर', और हदीस की व्याख्या 'नैलुल-औतार' अधिक प्रसिद्ध हैं।

'तफ़सीर बिल्मासूर' के ये प्रसिद्ध भाष्य हैं।

द्वितीय : 'तफ़सीर बिर्राय' (अर्थात् वे व्याख्याएँ जो अपने विचारों से की गई हैं) यहाँ यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि 'तफ़सीर बिर्राय' का यह अर्थ नहीं है कि मनुष्य क़ुरआन में विचार न करे। क्योंकि स्वयं क़ुरआन हमको विचार का निमंत्रण देता है –

«यह एक किताब है, जिसको हमने तुम्हारी ओर उतारी है बरकतवाली, ताकि लोग इसकी आयतों पर सोच विचार करें, और बुद्धिमान उपदेश ग्रहण करें।» (सूरा–38, सॉद, आयत–29)

«तो क्या ये लोग क़ुरआन में विचार नहीं करते, या उनके दिलों पर ताले पड़े हुए हैं ?» (सूरा–47, मुहम्मद, आयत–29)

'तफ़सीर बिर्राय' का सही अर्थ यह है कि व्याख्याकार अपने लिए पहले से कोई विचारधारा निश्चित कर ले, फिर क़ुरआन को अपनी विचारधारा के अनुसार ढालने का प्रयत्न करे। इसी लिए एक हदीस में 'तफ़सीर बिर्राय' की निन्दा की गई है। जैसे –

"जिसने भी क़ुरआन में ज्ञान के बिना अपने विचार को प्रकट किया उसका ठिकाना आग है।"

'तफ़सीर बिर्राय' की कुछ प्रसिद्ध व्याख्याएँ :

1. 'कश्शाफ़' इसका रचयिता महमूद-बिन-उमर ज़मख़शरी है जिसका उपनाम 'जारुल्लाह' है। यह सन् 467 हिजरी में पैदा हुआ, और सन् 538 हिजरी में इसका देहान्त हुआ यह अपने समय का प्रसिद्ध मुअतज़ली था, और मुअतज़लियों की याचना पर ही उसने यह व्याख्या लिखी। जिसने प्रत्यक्ष रूप से 'तफ़सीर बिर्राय' को अपनाया, इस लिए उसने बहुत ही कम स्थानों पर हदीस का प्रयोग किया है।
2. 'मफ़ातिहुलग़ैब' इसके रचयिता राज़ी (544-606 हिजरी) हैं। इसके विषय में यह कह देना काफ़ी होगा कि इसमें तफ़सीर के अतिरिक्त सब कुछ है। इसलिए विद्वानों ने इसका स्वागत नहीं किया। हाँ, राज़ी ने इस बात का ध्यान अवश्य रखा है कि जहाँ-जहाँ ज़मख़शरी ने अपनी व्याख्या में 'एतिज़ाल' का वर्णन किया है उसके खंडन का प्रयत्न किया है। परन्तु उसने भी 'तफ़सीर बिर्राय' ही के सिद्धान्त को अपनाया है।

क़ुरआन की व्याख्या में एक तीसरा मत क़ुरआन की वैज्ञानिक तफ़सीर है। इसका आरम्भ अट्ठारहवीं शताब्दी ईसवी में हुआ। जब युरोप साइंस में बड़ी शीघ्रता के साथ उन्नति करने लगा तो कुछ मुस्लिम विद्वान साइंस के प्रमुख रहस्यों को क़ुरआन में ढूँढने का प्रयत्न करने लगे, इसमें सबसे प्रसिद्ध व्याख्या एक

मिस्री विद्वान शेख़ तन्तावी जोहरी की है जो 1870 ईसवी में पैदा हुए और 'अल-जवाहिर फ़ी तफ़सीर क़ुरआन' नामी व्याख्या लिखी जो 26 भागों में प्रकाशित हुई। इनके विचार में क़ुरआन की लगभग 750 आयतें ऐसी हैं जिनका सम्बन्ध विज्ञान तथा खगोलशास्त्र से है। परन्तु मुसलमानों ने इन आयतों के इस पहलू की ओर ध्यान नहीं दिया, इसलिए उन्होंने इस कमी को पूरा करने के लिए इस भाष्य (तफ़सीर) की रचना की। परन्तु उन्होंने जो कुछ लिखा है उससे पूर्णतः सहमत होना संभव नहीं है।

ये क़ुरआन की कुछ प्रसिद्ध व्याख्याएँ हैं, अन्यथा क़ुरआन पर अब तक जो काम हुआ है उसका पूर्ण विवरण करना असम्भव है। क़ुरआन के अनुवाद अब तक एक सौ से अधिक भाषाओं में हो चुका है। स्वयं अरबी भाषा में इसकी व्याख्याओं की संख्या लगभग 6124 तक पहुँचती है जिनका विवरण किंग फ़हद क़ुरआन प्रकाशालय से छपे हुए 'क़ुरआन की तफ़सीरों की सूची' में देखा जा सकता है।

क़ुरआन में सद्व्यवहार की शिक्षाएं

क़ुरआन सद्व्यवहार तथा सदाचार का इन्साइक्लोपीडिया है, जिनको कुछ पृष्ठों में समाहित करना असम्भव है। इसलिए यहाँ कुछ का वर्णन किया जा रहा है।

❀ प्रेम और दयालुता –

«यह भी उसकी निशानियों में से है कि उसने तुम्हारी ही सहजाति से तुम्हारे लिए जोड़े पैदा किए, ताकि तुम उनके पास शान्ति प्राप्त करो और उसने तुम्हारे बीच प्रेम और दयालुता पैदा की और निश्चय ही इसमें बहुत-सी निशानियाँ उन लोगों के लिए हैं, जो सोच-विचार करते हैं।» (सूरा–30, अर-रूम, आयत–21)

❀ एक-दूसरे का सहयोग करना –

«ऐसा न हो कि एक गिरोह की शत्रुता, जिसने तुम्हें मस्जिदे-हराम से रोक दिया था, तुम्हें इस बात पर उभार दे कि तुम ज़्यादती करने लगो। पुण्य कर्मों तथा ईश-भय के काम में तुम एक-दूसरे का सहयोग करो और अपुण्य कर्मों और एक-दूसरे पर अत्याचार करने पर सहयोग मत करो। अल्लाह का भय रखो, निश्चय ही अल्लाह बड़ा कठोर दण्ड देनेवाला है।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–2)

❀ न्याय करने का आदेश –

«निश्चय ही अल्लाह न्याय करने, भलाई करने, तथा नातेदारों को (उनका हक़) देने का आदेश देता है और अश्लीलता, बुराई तथा सरकशी से रोकता है। वह तुम्हें नसीहत करता है, ताकि तुम ध्यान दो।» (सूरा–16, अन-नह्ल, आयत–90)

❁ लोगों से भली बात करना –

अल्लाह ने बनी-इसराईल से जो वचन लिया था, उसमें भली बात करना भी शामिल था, परन्तु उन्होंने इसको भंग कर दिया –

«याद करो जब इसराईल की सन्तान से हमने वचन लिया था कि अल्लाह के अतिरिक्त किसी और की बन्दगी न करना, और माँ-बाप के साथ, नातेदारों के साथ, अनाथों तथा निर्धनों के साथ अच्छा व्यवहार करना और यह कि लोगों से भली बात करना और नमाज़ का आयोजन करना और ज़कात देना। तो तुममें थोड़े-से (लोग) ही इन बातों पर स्थिर रहे और अधिकतर लोग इनसे फिर गए।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–83)

❁ बुराई का सुधार भलाई से करना –

एक मुसलमान को अत्यन्त सहनशील तथा कोमल स्वभाव होना चाहिए, जो बुराई का जवाब बुराई से नहीं, बल्कि भलाई से दे। इसी की ओर क़ुरआन संकेत करता है –

«अच्छे आचरण और बुरे आचरण समान नहीं होते। इसलिए बुरे आचरण को अच्छे आचरण से दूर करो। फिर क्या देखोगे कि वही व्यक्ति, तुम्हारे और जिसके बीच वैर था, जैसे वह कोई घनिष्ट मित्र हो। और यह बात केवल उन लोगों को प्राप्त होती है जिन्होंने धैर्य से काम लिया। और उन लोगों को प्राप्त होती है जो बड़े भाग्यवान होते हैं। और यदि शैतान के उकसाने से कभी तुम्हारे अन्दर उकसाहट पैदा हो तो अल्लाह की पनाह माँगो। निस्सन्देह वह सुनने और जाननेवाला है।» (सूरा–41, हा-मीम अस-सजदा, आयतें–34-36)

❁ ठीक और सीधी बात करना –

«ऐ इमानवालो! अल्लाह से डरते रहो, और बात कहो तो ठीक और सीधी कहो। वह तुम्हारे कर्मों को सँवार देगा और तुम्हारे गुनाहों को क्षमा कर देगा और जिसने अल्लाह और उसके रसूल का आज्ञापालन किया, उसने बड़ी सफलता प्राप्त कर ली।» (सूरा–33, अल-अहज़ाब, आयतें–70-71)

❁ सफलता प्राप्त करनेवाले मोमिनों के लक्षण –

«सफल हो गए ईमानवाले :

– जो अपनी नमाज़ों में नम्रता अपनाते हैं।

– और जो व्यर्थ बातों से बचनेवाले हैं।

– और जो ज़कात अदा करते हैं।

– और जो अपनी शर्मगाहों (गुप्तांगों) की रक्षा करते हैं। सिवाय अपनी पत्नियों के और लौंडियों के, जो उनके अधिकार में हों। इस दशा में वे निन्दनीय नहीं हैं। परन्तु जो कोई इसके अतिरिक्त कुछ और चाहे तो ऐसे ही लोग सीमा से आगे बढ़नेवाले हैं।

– और जो अपनी अमानतों और अपनी प्रतिज्ञा का ध्यान रखते हैं।

– और जो अपनी नमाज़ों को सही समय पर अदा करते हैं।

यही लोग वारिस होंगे, जो विरासत में फ़िरदौस पाएँगे। वे उसमें सदैव रहेंगे।» (सूरा–23, अल-मोमिनून, आयतें–1-11)

❈ क़र्ज़ लेनेवाला अगर तंगी में पड़ जाए तो उसको कुछ अवसर देना –

«यदि क़र्ज़ लेनेवाला तंगी में पड़ जाए, तो उसका हाथ खुलने तक उसे समय दो। और अगर दान कर दो तो यह तुम्हारे लिए अधिक अच्छा होगा, अगर तुम जानते।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–280)

अर्थात् क़र्ज़ लेनेवाला निश्चित समय पर क़र्ज़ न लौटा सके तो उसको कुछ और समय दे दो और अगर तुम अनुभव कर लो कि अब वह क़र्ज़ वापस नहीं कर सकता, तो क्षमा कर दो। जो बहुत बड़ा पुण्य कर्म है। इस बात को जानना चाहिए।

❈ मतभेद की दशा में अल्लाह तथा उसके रसूल की ओर रुजू करना –

«ऐ ईमानवालो! अल्लाह की आज्ञा का पालन करो, और रसूल का कहना मानो, और उसका भी कहना मानो जो तुम्हारा अधिकारी हो। फिर यदि तुम्हारे बीच कोई मतभेद हो जाए तो अल्लाह और उसके रसूल की ओर पलटो।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–59)

अर्थात् कैसी भी समस्या हो, उसको हल करने के लिए अल्लाह की किताब क़ुरआन, और नबी (ﷺ) की सुन्नत की ओर रुजू करना चाहिए, क्योंकि मुसलमानों के मार्गदर्शन के यही दो स्रोत हैं।

❈ मजलिस में कुशादगी पैदा करना –

«ऐ ईमानवालो, जब तुमसे कहा जाए, ''मजलिसों में जगह कुशादा कर दो।'' तो कुशादा कर दो। अल्लाह तुम्हारे लिए कुशादगी पैदा कर देगा। और जब तुमसे कहा जाए, ''उठ जाओ।'' तो उठ जाया करो। तुममें से जो ईमान लाए और उन्हें ज्ञान प्रदान किया गया, अल्लाह उनके दर्जों को उच्चता प्रदान करेगा। जो तुम करते हो, अल्लाह उसकी पूरी ख़बर रखता है। (सूरा–58, अल-मुजादला, आयत–11)

मजलिस में कुशादगी का अर्थ है कि इस प्रकार बैठा जाए कि दूसरों को भी स्थान मिल जाए।

✽ नीची निगाहें रखना –

«ईमानवालों से कहो, "वे अपनी निगाहें नीची रखें और अपनी शर्मगाहों की रक्षा करें।" यह उनके लिए बहुत पवित्रता की बात है। निस्सन्देह अल्लाह उनके कर्मों से परिचित है। (और इसी प्रकार) ईमानवाली स्त्रियों से कहो, "वे अपनी निगाहें नीची रखें और अपनी शर्मगाहों की रक्षा करें।"» (सूरा–24, अन-नूर, आयतें–30,31)

✽ भली बात कहना उस दान से उत्तम है जिसके पीछे दुख हो –

«भली बात कहना, और क्षमा से काम लेना उस सदक़े से उत्तम है जिसके पीछे दुख देने की बात हो। और अल्लाह निस्पृह और सहनशील है।» (सूरा-2, अल-बक़रा, आयत 263)

अर्थात किसी को दान तथा सदक़ा देकर इसका एहसान जताना दुख पहुँचाने के समान है। इससे उत्तम तो यही था कि केवल भली और अच्छी-अच्छी बातें कर ली जातीं।

✽ फ़क़ीर (मोहताज) की बनियाज़ी –

«यह उन फ़क़ीरों (मोहताजों) के लिए है जो अल्लाह की राह में घिरे हुए हैं। (जीविका के लिए) धरती में दौड़-भाग नहीं कर सकते। उनके स्वाभिमान के कारण अनभिज्ञ लोग उनको धनवान समझते हैं। तुम उनके लक्षणों से उन्हें पहचान सकते हो। वे लोगों से चिमट-चिमटकर नहीं माँगते। और जो धन भी तुम ख़र्च करोगे तो निस्सन्देह अल्लाह उसका जाननेवाला है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–273)

नबी (ﷺ) फ़क़ीरी में भी लोगों से बेनियाज़ी की दुआ करते थे –

"*ऐ अल्लाह अपने अतिरिक्त किसी और का मोहताज न बना।*" (देखिए: तिरमिज़ी 3563 तथा हाकिम 1:538)

✽ धैर्य के द्वारा सफलता प्राप्त करना –

«धैर्य और नमाज़ से सहायता लो, निस्सन्देह नमाज़ है तो बहुत कठिन, परन्तु उन लोगों के लिए नहीं जिनके दिल अल्लाह से भयभीत हैं।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–45)

«ऐ ईमानवालो! धैर्य और नमाज़ से सहायता लो। निस्सन्देह अल्लाह धैर्यवानों के साथ है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–153)

«निस्सन्देह हम तुम्हारी परीक्षा लेंगे कुछ भय से, कुछ भूख से, कुछ जान-माल और पैदावार की कमी से। (ऐसी दशा में) धैर्यवानों को शुभ-सूचना दे दो। ये वे लोग हैं

कि जब इन्हें कोई कष्ट पहुँचता है तो कहते हैं, ''इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन (अर्थात्: निस्सन्देह हम अल्लाह ही के लिए हैं, और हम उसी की ओर लौटनेवाले हैं)।'' यही लोग हैं जिनके लिए उनके रब की विशेष कृपाएँ हैं और दयालुता भी। और यही लोग सीधे मार्ग पर चलनेवाले हैं।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयतें–155-157)

«ऐ ईमानवालो! धैर्य से काम लो, और बढ़-चढ़ कर धैर्य दिखाओ और (मोर्चों पर) जुटे और डटे रहो। और अल्लाह से डरते रहो, ताकि तुम सफल हो जाओ।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–200)

❁ अमानतों को उनके मालिकों के हवाले करना –

«अल्लाह तुम्हें हुक्म देता है कि अमानतें उनके मालिकों के हवाले कर दो। और जब लोगों के बीच निर्णय करो तो न्यायपूर्वक निर्णय किया करो। अल्लाह तुम्हें कितना उत्तम उपदेश देता है। निस्सन्देह अल्लाह सुननेवाला, और देखनेवाला है।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–58)

❁ न्याय का मार्ग अपनाना –

«अल्लाह तुम्हें इससे नहीं रोकता कि तुम उन लोगों के साथ अच्छा व्यवहार करो, और उनके साथ इनसाफ़ करो जिन्होंने तुमसे धर्म के कारण युद्ध नहीं किया और न तुम्हें तुम्हारे घरों से निकाला। निस्सन्देह अल्लाह न्याय करनेवालों से प्रेम करता है। अल्लाह तुम्हें उन लोगों से मित्रता करने से रोकता है, जिन्होंने तुमसे धर्म के मामले में युद्ध किया और तुम्हें तुम्हारे घरों से निकाला, और तुम्हारे निकाले जाने में सहायता की, इससे कि तुम उन्हें अपना बनाओ। और जो कोई उन्हें अपना बनाए तो ऐसे लोग अत्याचारी हैं।» (सूरा–60, अल-मुम्तहिना, आयतें-8,9)

«ऐ ईमानवालो! इनसाफ़ की गवाही देते हुए अल्लाह के मार्ग पर शक्ति के साथ डटे रहो। कहीं ऐसा न हो कि किसी गिरोह की दुश्मनी तुमको इस बात पर उभारे कि तुम इन्साफ़ करना छोड़ दो। इन्साफ़ करो, यह तक़वा (ईश-परायणता) से निकटतम है। अल्लाह से डरते रहो, निस्सन्देह तुम जो कुछ करते हो, अल्लाह उससे परिचित है।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–8)

❁ प्रत्येक व्यक्ति को वही मिलेगा जो उसने किया –

«और यह कि मनुष्य के लिए बस वही है जिसके लिए उसने प्रयास किया।» (सूरा–53, अन-नज्म, आयत–39)

❊ पापी अपने पाप का स्वयं उत्तरदायी है –

«जो कोई पाप करेगा, वह अपने लिए करेगा, और अल्लाह सब कुछ जाननेवाला और तत्वदर्शी है।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–111)

«यह कि प्रत्येक व्यक्ति जो कुछ करता है उसका फल वही भोगेगा, कोई बोझ उठानेवाला किसी दूसरे का बोझ नहीं उठाएगा।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–164)

«यह कि कोई बोझ उठानेवाला किसी दूसरे का बोझ नहीं उठाएगा।» (सूरा–53, अन-नज्म, आयत–38)

❊ प्रतिज्ञा पूरी करना –

«प्रतिज्ञा पूरी करो, निश्चय ही प्रतिज्ञा के विषय में पूछा जाएगा।» (सूरा–17, बनी इसराईल, आयत–34)

❊ अच्छे और बुरे कर्म का फल स्वयं चखना पड़ेगा–

«जिस किसी ने अच्छा कर्म किया तो अपने ही लिए किया, और जिस किसी ने बुरा कर्म किया तो उसका वबाल भी उसी पर पड़ेगा। वास्तव में तुम्हारा रब अपने बन्दों पर तनिक भी अत्याचार नहीं करता।» (सूरा–41, हा-मीम अस-सजदा, आयत–46)

❊ धैर्य ग्रहण करना बदला लेने से उत्तम है–

«यदि बदला लो भी तो बिल्कुल उतना ही जितना दुख तुम्हें पहुँचाया गया हो, तथा यदि धैर्य रखो तो निस्संदेह धैर्यवानों के लिए यही उत्तम है।» (सूरा–16, अन-नह्ल, आयत–126)

❊ अल्लाह के मार्ग में ख़र्च करनेवाले लोग–

«जो लोग अल्लाह के मार्ग में ख़र्च करते हैं, उनकी उपमा ऐसी है, जैसे एक दाना हो, जिससे सात बालें निकलें, और प्रत्येक बाल में सौ दाने हों। अल्लाह जिसे चाहता है बढ़ोतरी प्रदान करता है और अल्लाह असीमित ज्ञानवाला है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–261)

❊ अच्छी बात की उपमा अच्छे वृक्ष की है–

«क्या तुम देखते नहीं कि अल्लाह ने शुभ बात की कैसी उपमा दी है? वह एक शुभ वृक्ष के सदृश है, जिसकी जड़ें गहरी जमी हुई हैं। और उसकी डालियाँ आकाश तक

पहुँची हुई हैं। और अपने रब की आज्ञा से वह (वृक्ष) हर समय अपना फल दे रहा है। अल्लाह ये उदाहरण इसलिए बयान करता है ताकि वे ध्यान दें। और अशुभ और अशुद्ध बात की उपमा एक अशुभ वृक्ष की है, जो भूमि के ऊपर से ही उखाड़ फेंका गया। उसके लिए कुछ भी स्थिरता नहीं है।» (सूरा–14, इबराहीम, आयतें–24-26)

❁ अल्लाह अच्छाई का हुक्म देता है और बुराई से रोकता है–

«निस्संदेह अल्लाह न्याय का, भलाई का और नातेदारों को (उनके हक़) देने का हुक्म देता है। और अश्लीलता, बुराई तथा सरकशी से रोकता है। वह तुम्हें इन बातों का उपदेश देता है, ताकि तुम ध्यान दो।» (सूरा–16, अन-नह्ल, आयत–90)

❁ माता-पिता के साथ अच्छा व्यवहार करना–

«हमने मनुष्य को उसके अपने माता-पिता के विषय में सद्व्यवहार का आदेश दिया। उसकी माँ ने निर्बल हो-होकर अपने पेट में रखा, और दो वर्ष तक दूध पिलाती रही। मेरे प्रति कृतज्ञ हो, और अपने माता-पिता के प्रति भी। अतः मेरी ही ओर पलट कर आना है, किन्तु यदि वे तुझपर दबाव डालें कि तू किसी को मेरे साथ साझी ठहराए जिसका तुझे ज्ञान नहीं तो उनकी बात न मानना और संसारिक जीवन में उनके साथ सद्व्यवहार करना।» (सूरा–31, लुक़मान, आयतें–14,15)

इस आयत में इस्लाम के एक बहुत उच्च सिद्धान्त की ओर संकेत किया गया है। वह यह कि अल्लाह के साथ किसी को साझी ठहराने के विषय में किसी प्रकार की कोई छूट नहीं है। यहाँ तक कि अगर माता-पिता भी अगर शिर्क करने का आदेश दें तो उनके आदेश को ठुकरा दिया जाएगा। परन्तु संसारिक जीवन में उनके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जिस प्रकार एक मुसलमान अपने मुसलमान माता-पिता के साथ करता है। उनकी सेवा तन-मन-धन से करनी चाहिए, क्योंकि वे संसार में हमारे आने का कारण बने हैं। हमारे पालन-पोषण में उन्होंने जो कष्ट उठाया है, उसका तक़ाज़ा है कि हम भी उनकी सेवा में कोई कमी न करें। इस्लाम की इस शिक्षा को स्वर्ण अक्षरों में लिखा जा सकता है कि एक मुसलमान पुत्र को अपने ग़ैर मुस्लिम माता-पिता की सेवा करने का वैसे ही आदेश है जैसे मुसलमान माता-पिता की ।

❁ अनाथ के धन के निकट भी न फटकना–

«अनाथ के धन के निकट भी न फटको सिवाय इसके जो उसके लिए उत्तम हो। यहाँ तक कि वह अपनी युवावस्था को पहुँच जाए।» (सूरा–17, बनी इसराईल, आयत–34)

अर्थात अनाथ के धन को उस व्यापार में लगाओ जो लाभदायक हो, और जब वह अपनी युवावस्था को पहुँच जाए तो उसको सौंप दो।

❀ नाप-तौल में कमी करनेवालों की निन्दा–

«नष्ट हों! नाप-तौल में कमी करनेवाले, जो नाप कर लोगों से पूरा-पूरा लेते हैं, और जब उन्हें नाप या तौलकर देते हैं, तो घटाकर देते हैं। क्या ये लोग नहीं समझते कि इन्हें जी उठना है। एक बड़े दिन के अवसर पर जिस दिन लोग सारे संसार के रब के सामने खड़े होंगे।» (सूरा–83, मुतफ़्फ़िफ़ीन, आयतें–1-6)

इसलिए मुसलमानों को आदेश दिया जा रहा है–

«जब नापकर दो तो नाप को पूरा भरा करो, और जब तौलकर दो तो ठीक तराज़ू से तौलो। यही उत्तम है और इसका परिणाम भी अच्छा है।» (सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–35)

शुऐब (عليه السلام) ने भी अपनी जाति को नाप-तौल में कमी करने से मना किया था–

«ऐ मेरी जातिवालो! नाप और तौल न्याय के साथ पूरी-पूरी किया करो, और लोगों को उनकी चीज़ों में घाटा न दो। और धरती में फ़साद फैलाते न फिरो। अल्लाह की दी हुई बचत ही तुम्हारे लिए उत्तम है, अगर तुम ईमानवाले हो। और मैं तुमपर रखवाला नहीं हूँ।» (सूरा–11, हूद, आयतें–85,86)

❀ लोगों से मुँह न मोड़ना–

«लोगों के सामने अपना मुँह टेढ़ा न कर, और न धरती पर अकड़ कर चल। निस्सन्देह अल्लाह किसी अहंकारी तथा डींगें मारनेवाले को पसन्द नहीं करता, अपनी चाल सीधी रख, और अपनी आवाज़ धीमी रख। निश्चय ही सबसे बुरी आवाज़ गधों की आवाज़ है।» (सूरा–31, लुक़मान, आयतों–18,19)

❀ किसी के घर में अनुमति के बिना प्रवेश न करना–

«ऐ ईमानवालो! अपने घरों के अतिरिक्त दूसरों के घरों में उस समय तक प्रवेश न करो जब तक उनसे अनुमति न ले लो और उन घरों में रहनेवालों को सलाम न कर लो। यह तुम्हारे लिए अच्छा है। कदाचित् तुम याद रखो।» (सूरा–24, अन-नूर, आयत–27)

और अगर किसी कारण घरवाले उस समय स्वागत करने के लिए तैयार न हों तो वापस आ जाना चाहिए–

«यदि तुमसे कहा जाए कि लौट जाओ, तो लौट जाओ। यह तुम्हारे लिए अधिक उत्तम है। और अल्लाह जानता है जो कुछ तुम करते हो।» (सूरा–24, अन-नूर, आयत–28)

❋ किसी की नाहक़ हत्या करना सारे मानवों की हत्या करने के समान है–

सर्वप्रथम नाहक़ हत्या करनेवाला आदम का पुत्र क़ाबील था, जिसने अपने भाई हाबील की हत्या कर डाली। इसकी ओर क़ुरआन संकेत करते हुए कहता है कि किसी एक व्यक्ति की नाहक़ हत्या सम्पूर्ण मानवता की हत्या के समान है–

«इन्हें आदम के दो बेटों का हाल हक़ के साथ सुना दो, जबकि दोनों ने क़ुरबानी की, तो उनमें से एक की क़बूल हुई और दूसरे की क़बूल न हुई। उसने कहा, ''मैं तुझे क़त्ल कर डालूँगा।'' कहा, ''अल्लाह तो उन्हीं की (क़ुरबानी) क़बूल करता है जो (उसका) डर रखते हैं। यदि तू मुझे क़त्ल करने को मेरी ओर अपना हाथ बढ़ाएगा तो मैं तुझे क़त्ल करने को तेरी ओर अपना हाथ बढ़ानेवाला नहीं हूँ। मैं तो अल्लाह से, जो सारे संसार का रब है, डरता हूँ। मैं तो चाहता हूँ कि मेरा गुनाह और अपना गुनाह तू ही अपने सिर ले ले। फिर आग (जहन्नम) वालों में से हो जाए। और यही ज़ालिमों का कर्म फल है।'' उसके जी ने उसे अपने भाई की हत्या पर आमादा कर दिया, तो उसने उसकी हत्या कर डाली और घाटा उठानेवालों में से हो गया। तब अल्लाह ने एक कौआ भेजा जो भूमि कुरेदने लगा, ताकि उसे दिखा दे कि वह अपने भाई के शव को कैसे छिपाए। कहने लगा, ''अफ़सोस मुझपर! क्या मैं इस काक जैसा भी न हो सका कि अपने भाई का शव तो छिपा देता?'' फिर वह लज्जित हुआ। इस लिए हमने इसराईल की सन्तान के लिए लिख दिया था, ''जिसने किसी व्यक्ति को किसी के ख़ून का बदला लेने या ज़मीन में फ़साद फैलाने के सिवा किसी और कारण से क़त्ल किया तो मानो उसने समस्त मनुष्यों की हत्या कर डाली, और जिसने उसे जीवन प्रदान किया, उसने मानो समस्त मनुष्यों को जीवन प्रदान किया।'' और उनके पास हमारे रसूल स्पष्ट प्रमाण ले कर आए फिर भी उनमें अधिकतर लोग इस धरती में ज़्यादती करनेवाले ही हैं। जो लोग अल्लाह और उसके रसूल से लड़ते हैं और धरती में बिगाड़ पैदा करने के लिए दौड़-धूप करते हैं उनकी सज़ा यही है कि बुरी तरह क़त्ल किए जाएँ या सूली पर चढ़ाए जाएँ, या उनके हाथ और उनके पाँव विपरीत दिशाओं से काट डाले जाएँ। या उनको देश निकाला दे दिया जाए। यह रुसवाई तो उनके लिए दुनिया में है और आख़िरत में उनके लिए बड़ी यातना है।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयतें–27-33)

❋ हर प्रकार की अश्लीलता को अल्लाह ने हराम ठहरा दिया है–

«कह दो : मेरे रब ने अश्लील कर्म, चाहे खुले हों, या छिपे हों, पाप, सरकशी, और नाहक़ ज़्यादती सबको हराम कर दिया है। और यह बात कि तुम अल्लाह के साथ किसी को साझी बनाओ, जिसके लिए उसने कोई सनद नहीं उतारी, और यह कि

अल्लाह के सम्बन्ध में कोई ऐसी बात कहो, जिसके विषय में तुम्हें कोई ज्ञान नहीं। (ये सब हराम हैं।)» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–33)

❁ आत्महत्या निषिद्ध है–

«ऐ ईमानवालो! परस्पर एक-दूसरे के धन को अवैध रूप से न खाओ– सिवाए इसके कि तुम्हारी आपस की रज़ामंदी से कोई सौदा हो जाए–और आत्महत्या न करो। निस्संदेह अल्लाह तुमपर दयावान है।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–29)

❁ किसी को बुरे नाम से पुकारना पाप है–

«अपनों पर ताने न कसो, और न आपस में एक-दूसरे को बुरे नाम दो। ईमान के बाद बुरा नाम रखना पाप है। और जो कोई इससे न रुके वह अत्याचारी है।» (सूरा–49, अल-हुजुरात, आयत–11)

❁ अल्लाह घमंड करनेवाले को पसन्द नहीं करता–

«निस्सन्देह अल्लाह किसी ऐसे व्यक्ति को पसन्द नहीं करता जो इतरानेवाला और डींग मारनेवाला हो।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–36)

«लोगों के सामने अपना मुँह टेढ़ा न कर, और न धरती में अकड़कर चल। निस्सन्देह अल्लाह किसी इतरानेवाले और डींग मारनेवाले को पसन्द नहीं करता।» (सूरा–31, लुक़मान, आयत–18)

❁ किसी को सबके सामने बुरा कहना अनुचित है–

«अल्लाह इस बात को पसन्द नहीं करता कि किसी को सबके सामने बुरा कहा जाए, सिवाय इसके कि किसी पर अत्याचार किया गया हो। अल्लाह सुनने और जाननेवाला है।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–148)

❁ ऐसी बातें मत कहो, जिनको तुम स्वयं नहीं करते–

«ऐ ईमानवालो! तुम ऐसी बात क्यों कहते हो जो करते नहीं? अल्लाह को यह बात बहुत अप्रिय है कि तुम ऐसी बात कहो जो करो नहीं।» (सूरा–61, अस-सफ़्फ़, आयतें-2,3)

❁ कंजूसी करने की निन्दा–

«वे जो स्वयं कंजूसी करते हैं और लोगों को कंजूसी पर उकसाते हैं, और अल्लाह ने अपनी कृपा से जो कुछ उन्हें दे रखा है उसे छिपाते हैं, तो हमने ऐसे अकृतज्ञों के लिए अपमानजनक यातना तैयार कर रखी है।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–37)

«जो लोग उस धन में, जिसको अल्लाह ने अपनी कृपा से उनको दिया है कंजूसी करते हैं, यह न समझें कि यह कंजूसी उनके लिए उत्तम है, बल्कि यह तो उनके लिए बुरी है, क़ियामत के दिन उनको कंजूसी का तौक़ पहनाया जाएगा, अल्लाह ही के लिए आकाशों और धरती की मीरास है, और जो कुछ भी तुम करते हो, अल्लाह उसकी ख़बर रखता है।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–180)

❁ ख़र्च के मामले में मध्यमार्ग अपनाना–

«अपना हाथ न तो अपनी गरदन से बाँध रखो (कि किसी को कुछ भी न दो) और न उसे बिलकुल खुला छोड़ दो कि निन्दित और निस्सहाय होकर बैठ रहो।» (सूरा–17, बनी-इसराइल, आयत–29)

अर्थात दान के मामले में मध्यमार्ग अपनाओ दान और सहायता करने में न तो इतनी कंजूसी से काम लो कि किसी को कुछ भी न दो, न इतनी छूट से काम लो कि कुछ लोगों में लुटा दो, और फिर अपने किए पर पश्चात्ताप करते रहो।

❁ अपव्यय ओर फ़िज़ूलख़र्ची की निन्दा–

«ऐ आदम की संतान! इबादत के प्रत्येक अवसर पर उत्तम पोशाक ग्रहण करो और खाओ और पियो। परन्तु इसराफ़ (अपव्यय) न करो। निस्सन्देह अल्लाह इसराफ़ करनेवालों को पसन्द नहीं करता।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–31)

❁ किसी ख़बर और दोषारोपण की छानबीन करना–

«ऐ ईमानवालो! यदि तुम्हारे पास कोई दुराचारी (अवज्ञाकारी) कोई ख़बर लेकर आए, तो उसकी छान-बीन कर लिया करो, ऐसा न हो कि तुम किसी गिरोह को अनजाने में तकलीफ़ और नुक़सान पहुँचा बैठो। फिर तुम अपने किए पर पछताओ।» (सूरा–49, अल-हुजुरात, आयत–6)

«जो व्यक्ति कोई ग़लती या गुनाह कर बैठे, फिर उसे किसी निर्दोष व्यक्ति पर थोप दे, तो उसने झूठे आरोप और खुले गुनाह का बोझ अपने ऊपर ले लिया।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–112)

❁ हमारे अपने करतूतों के कारण ही जल-थल में उपद्रव फैल गया है–

«जल-थल में लोगों के कुकर्मों के कारण उपद्रव फैल गया, इस लिए कि उन्हें उनके कुछ करतूतों का फल चखाए। सम्भव है कि वे रुक जाएँ।» (सूरा–30, अर-रूम, आयत–41)

✽ दरिद्रता के भय से औलाद की हत्या करना पाप है–

«दरिद्रता के भय से अपनी औलाद की हत्या न करो। हम उन्हें भी जीविका देते हैं, और तुम्हें भी। वास्तव में उनकी हत्या करना महापाप है।» (सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–31)

✽ ज़िना के निकट भी न फटको–

«ज़िना (व्यभिचार) के निकट भी न फटको, वह एक अश्लील कर्म और बुरा मार्ग है।» (सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–32)

ज़िना के निकट फटकने का अर्थ है कि ग़ैर-महरम स्त्रियों से सम्पर्क न बढ़ाया जाए। तनहाई में उनसे न मिला जाए, क्योंकि शैतान के बहकावे में आकर अपनी इन्द्रियों को वश में रखना असम्भव हो जाएगा और जिसका अन्त ज़िना (व्यभिचार) पर होगा।

✽ किसी का धन बिना उसकी सहमति के खाना निषिद्ध है–

«ऐ ईमानवालो! आपस में एक-दूसरे के धन को ग़लत तरीक़े से न खाओ। सिवाय इसके कि तुम्हारी आपस की सहमति से कोई सौदा हो जाए।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–29)

✽ चापलूसी करनेवालों की निन्दा–

«वे लोग जो अपने करतूतों पर प्रसन्न होते हैं, और चाहते हैं कि जो उन्होंने नहीं किया उसपर भी उनकी प्रशंसा की जाए। आप उन्हें यातना से मुक्त न समझें उनके लिए तो दुखदाई यातना है।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–188)

✽ कामनाओं पर पूर्ण अधिकार रखना–

«उसकी कामना न करो, जिसमें अल्लाह ने तुममें किसी को किसी से अधिक दिया है। पुरुषों ने जो कुछ कमाया है उसके अनुसार उनका भाग है, और स्त्रियों ने जो कुछ कमाया है, उसके अनुसार उनका भाग है। अल्लाह से उसका फ़ज़्ल (अनुग्रह) माँगो। निस्सन्देह अल्लाह को हर चीज़ का ज्ञान है।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–32)

✽ यह संसार कामवासनाओं का स्थान है–

«कामवासनाओं के प्रति प्रेम लोगों के लिए शोभायमान बना दिया गया है, जिनमें स्त्रियाँ, पुत्र, सोने-चाँदी के ढेर और निशान लगे (चुने हुए) घोड़े, चौपाए, और खेती-

बाड़ी हैं। यह सब सांसारिक जीवन की सामग्री है। परन्तु लौटने का अच्छा ठिकाना तो अल्लाह ही के पास है।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–14)

अर्थात् यह सांसारिक सामग्री आवश्यकतानुसार अवश्य प्रयोग करो, परन्तु यह जान लो कि वास्तविक ठिकाना, जो सदैव रहनेवाला है, वह अल्लाह के पास है जहाँ सबको पलट कर जाना है।

केवल अल्लाह पर ईमान ही मनुष्य को वैध रूप से काम-वासनाओं की पूर्ति का उचित एवं मार्ग बताता है। ईमान न तो मनुष्य को उच्छृंखल रूप से भोग-विलास के गढ़े में गिरने देता है और न ही संन्यास आश्रम अपनाकर पूर्ण रूपेण इन्द्रिय दमन करने को मजबूर करता है।

❀ यह सांसारिक जीवन तो केवल खेल तमाशा है। वास्तविक जीवन तो आख़िरत का है –

«यह सांसारिक जीवन तो एक खेल और तमाशे के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। और आख़िरत का घर उन लोगों के लिए अच्छा है जो डरनेवाले हैं। क्या तुम समझते नहीं हो?» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–32)

«यह सांसारिक जीवन तो केवल एक मनबहलावा और खेल है। और आख़िरत का घर ही वास्तव में जीवनमय है। क्या अच्छा होता यदि ये लोग जानते।» (सूरा–29, अल-अनकबूत, आयत–64)

सद्व्यवहार की ये कुछ शिक्षाएं हैं। यद्यपि पूरा क़ुरआन ही सद्व्यवहार की शिक्षाओं से भरा हुआ है। एक सहीह हदीस में आता है कि एक बार आइशा (رضي الله عنها) से नबी (ﷺ) के आचरण के बारे में प्रश्न किया गया तो आपने कहा, "आप (ﷺ) का आचरण क़ुरआन है।" इससे पता चलता है कि क़ुरआन सद्व्यवहार की केवल शिक्षा ही नहीं देता बल्कि मुहम्मद (ﷺ) को एक आदर्श के रूप में भी प्रस्तुत करता है।

किताब

इसका साधारण अर्थ पुस्तक है परन्तु क़ुरआन में यह शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है उनमें से कुछ अर्थ ये हैं –

1. **धर्मशास्त्र :** जैसे क़ुरआन को अल-किताब कहा गया है, जैसा कि सूरा–2, अल-बक़रा की पहली आयत ही में कहा गया है –

«यह पुस्तक (किताब) है, जिसमें कोई सन्देह नहीं है। उन लोगों के लिए मार्गदर्शन है, जो अल्लाह से डरते हैं।»

अर्थात् इस क़ुरआन के अल्लाह की ओर से होने में कोई संदेह नहीं है।

«वही (अर्थात् अल्लाह) तो है जिसने तुमपर किताब उतारी।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–7)

इसी प्रकार क़ुरआन से पहले जो किताबें उतारी गईं उनको भी किताब कहा गया है।

तौरात के विषय में क़ुरआन में आया है –

«याद करो जब हमने मूसा को किताब तथा कसौटी दी, ताकि तुम लोग हिदायत प्राप्त कर सको।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–53)

इसी प्रकार क़ुरआन में इंजील को भी किताब कहा गया है –

«वह (बच्चा अर्थात् ईसा) बोल उठा : मैं अल्लाह का बन्दा हूँ। उसने मुझे किताब प्रदान की और नबी बनाया।» (सूरा–19, मरयम, आयत–30)

2. **लौहे-महफ़ूज़ :** वह स्थान जहाँ प्रत्येक जीव का भाग्य सुरक्षित है तथा जो कुछ घटित हो रहा है, उसका रिकार्ड रखा हुआ है।

उसको भी क़ुरआन में 'अल-किताब' कहा गया है –

«धरती में चलनेवाला कोई भी जीवधारी हो, और अपने दो परों से उड़नेवाला कोई भी पक्षी हो, इन सबके तुम्हारे जैसे ही गिरोह हैं। हमने किताब (लौहे-महफ़ूज़) में लिखने से कोई चीज़ छोड़ी नहीं है।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–38)

«कण भर भी कोई चीज़, या उससे भी छोटी या बड़ी चीज़ धरती और आकाशों में ऐसी नहीं है जो तेरे रब से छिपी हो, वह सब कुछ एक स्पष्ट किताब (लौहे-महफ़ूज़) में है।» (सूरा–10, यूनुस, आयत–61)

«धरती में चलनेवाला कोई ऐसा जीवधारी नहीं है जिसकी जीविका अल्लाह के ज़िम्मे न हो और जिसके रहने का स्थान, और जिसके सौंपे जाने का स्थान वह न जानता हो। यह सब कुछ एक स्पष्ट किताब (लौहे-महफ़ूज़) में लिखा हुआ है।» (सूरा–11, हूद, आयत–6)

«आकाश और धरती में कोई छिपी चीज़ ऐसी नहीं है जो एक स्पष्ट किताब में लिखी हुई न हो।» (सूरा–27, अन-नम्ल, आयत–75)

3. **कर्मपत्र :** प्रत्येक व्यक्ति को उसका कर्मपत्र दिया जाएगा। इसके लिए भी क़ुरआन में किताब शब्द का प्रयोग हुआ है –

«निस्संदेह कुकर्मियों की किताब (कर्मपत्र) सिज्जीन में है। तुम्हें क्या पता 'सिज्जीन' क्या है? यह तो एक लिखी हुई किताब है।» (सूरा–83, अल-मुतफ़्फ़िफ़ीन, आयतें–7-9)

अर्थात् सिज्जीन, जो कुकर्मियों की कारागार है, में वह किताब रखी होगी जिसमें उनके कुकर्मों का वर्णन किया गया होगा। एक स्थान पर कहा गया –

«रहा वह जिसे उसकी किताब (कर्मपत्र) उसके बाएँ हाथ में दी गई, वह कहेगा, "हाय, क्या अच्छा होता कि मुझे मेरी किताब (कर्मपत्र) न दी जाती।» (सूरा–69, अल-हाक़्क़ा, आयत–25)

सुकर्मी व्यक्ति कहेगा –

«तो जिसे उसकी किताब (कर्मपत्र) उसके दाहिने हाथ में दी गई, तो वह लोगों से कहेगा, "लो मेरी किताब (कर्मपत्र) पढ़ो।" (सूरा–69, अल-हक़्क़ा, आयत–19)

4. **साधारण पत्र :** जैसा कि सुलैमान (ﷺ) ने हुदहुद से कहा था कि मेरा यह पत्र लेकर सबा की रानी के पास जा –

«मेरी इस किताब (पत्र) के साथ जा, और उसे उनकी ओर डाल दे, (अर्थात सबा की रानी के दरबार में) फिर उनके पास से पलट आ, देख कि वे क्या उत्तर देते हैं।

सबा की रानी ने कहा, "ऐ सरदारो! मेरी ओर एक प्रतिष्ठित किताब (पत्र) भेजी गई है। वह सुलैमान की ओर से है और वह अल्लाह के नाम से प्रारम्भ की गई है, जो अत्यन्त कृपाशील और दयावान है।"» (सूरा–27, अन-नम्ल, आयतें–28-30)

5. **निर्णय :** क़ुरआन में कहा गया है –

«यदि अल्लाह का लिखा (अर्थात् किताब) पहले से मौजूद न होता, तो जो कुछ नीति तुमने अपनाई है, उसपर तुम्हें कोई बड़ी यातना आ लेती।» (सूरा–8, अल-अनफ़ाल, आयत–68)

इस आयत में बद्र के युद्ध की ओर संकेत किया गया है, जब मुसलमान विजयी हुए और दुश्मनों को युद्ध-दंड लेकर छोड़ने लगे, जबकि चाहिए तो यह था कि पहले उनकी शक्ति तोड़ी जाती, ताकि वे मुसलमानों पर कभी आक्रमण करने के योग्य न रहते, परन्तु युद्ध-दंड लेकर उनको छोड़ने की अनुमति थी, इसलिए उनके इस कर्म को अल्लाह ने माफ़ कर दिया, जैसा कि इससे अगली आयत में बताया गया है। इस आयत में 'किताब' से तात्पर्य अल्लाह का वह निर्णय है जो उसने पहले दे दिया था।

कुर्सी

कुर्सी का वर्णन क़ुरआन में दो स्थानों पर आया है।

प्रथम : अल्लाह के विषय में –

«अल्लाह के सिवा कोई पूज्य-प्रभु नहीं, वह जीवन्त-सत्ता है, सबको संभालने और क़ायम रखनेवाला है। उसे न ऊँघ लगती है, न निद्रा। उसके अधीन धरती और आकाश की सभी चीज़ें हैं। कौन है, जो उसकी अनुमति के बिना उसके सामने सिफ़ारिश कर सके। वह जानता है जो कुछ उनके सामने है और जो कुछ उनके पीछे; और वे उसके ज्ञान में से किसी चीज़ का घेरा नहीं कर सकते, परन्तु वह जितना चाहे। उसकी कुर्सी की परिधि ने धरती और आकाश को घेर रखा है। वह अल्लाह उनकी सुरक्षा से न तो थकता है और न ऊबता है। वह तो बहुत उच्च और महान है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–255)

इस आयत को 'आयतुल-कुर्सी' कहते हैं। सहीह हदीस में इसे बहुत महत्त्वपूर्ण बताया गया है और कई बार इसकी महत्ता बयान की गई है। जैसा कि सहीह मुस्लिम में आया है कि नबी (ﷺ) ने उबई-बिन-काब से पूछा,

"ऐ अबू मुंज़िर क्या तुम्हें मालूम है कि अल्लाह की पुस्तक में महान आयत कौन-सी है?" उन्होंने कहा, "अल्लाह और उसके रसूल को इसका अधिक ज्ञान है।" फिर आप (ﷺ) ने उनसे यही बात पूछी तो उन्होंने आयतुल-कुर्सी का नाम लिया। इसपर आप (ﷺ) ने उनके सीने पर हाथ रखकर कहा, "ऐ अबू मुंज़िर, अल्लाह तेरे ज्ञान को मुबारक करे।" (मुस्लिम, 810)

आयतुल-कुर्सी की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में यह हदीस भी आई है कि अगर कोई व्यक्ति इसको सोने से पहले पढ़ ले तो उसके साथ एक संरक्षक रहेगा और भोर होने तक शैतान उसके निकट नहीं फटकेगा। (बुख़ारी, 2311)

एक प्रश्न यह उठता है कि यह कुर्सी क्या है? क्या यह वही अर्श है जिसका वर्णन क़ुरआन में बार-बार आया है? इस विषय में विद्वानों का विचार है कि यह अर्श के अतिरिक्त कोई और चीज़ है, जिसका पूरा-पूरा ज्ञान हमारे पास नहीं है।

द्वितीय : दूसरा स्थान जहाँ कुर्सी का प्रयोग हुआ है सूरा सॉद की आयत 34 है; जिसमें सुलैमान (عليه السلام) की कुर्सी का वर्णन किया गया है, जिसपर बैठ कर वे राज-काज चलाते थे, उस स्थान पर आया है –

«निश्चय ही हमने सुलैमान को परीक्षा में डाला और हमने उसकी कुर्सी पर एक धड़ डाल दिया। फिर वह रुजू हुआ।» (सूरा–38, सॉद, आयत–34)

यह परीक्षा क्या थी? कुर्सी पर किसका धड़ डाला गया था? इन बातों का कोई विवरण क़ुरआन तथा सहीह हदीसों में नहीं मिलता। (विस्तृत विवरण के लिए देखिए : सुलैमान)

क़ारून

इसके विषय में क़ुरआन में है –

«निस्सन्देह क़ारून मूसा की जाति में से था, फिर उसने उनपर अत्याचार किया और हमने उसे इतने ख़ज़ाने दे रखे थे कि उनकी केवल कुँजियाँ उठाने में पूरा एक शक्तिशाली जत्था थक जाता था। जब उससे उसकी जातिवालों ने कहा, "फूल न जा, निश्चय ही अल्लाह फूलनेवालों को पसन्द नहीं करता। और जो कुछ अल्लाह ने तुझे दिया है उसके द्वारा आख़िरत का घर बनाने का उपाय कर और संसार में से अपना भाग लेना मत भूल। उपकार कर जिस प्रकार अल्लाह ने तुझपर उपकार किया। और धरती में बिगाड़ का इच्छुक न बन। निस्सन्देह अल्लाह बिगाड़ पैदा करनेवालों को पसन्द नहीं करता।" उसने कहा, "यह तो मुझे अपने ज्ञान के बल पर दिया गया है।" क्या इसको ज्ञान नहीं कि अल्लाह उससे पहले कितने वंशों (नस्लों) को नष्ट कर चुका है, जबकि वे शक्ति में इससे अधिक प्रबल थे, और उनका जत्था भी उससे बड़ा था, और अपराधियों से तो (उनकी तबाही के समय) उनके अपराध के विषय में पूछा नहीं जाता (अर्थात् पूछने से पूर्व ही वे नष्ट कर दिए जाएँगे)। फिर वह अपनी जातिवालों के सामने बड़े ठाठ-बाट से निकला। सांसारिक जीवन चाहनेवाले कहने लगे, "क्या ही अच्छा होता कि जैसा क़ारून को दिया गया है हमारे पास भी होता। वह तो बड़ा भाग्यवान है।" परन्तु जिन्हें ज्ञान दिया गया था, वे कहने लगे, "अफ़सोस तुमपर! अल्लाह का प्रतिदान उसके लिए उत्तम है जो उसपर विश्वास करे और अनुकूल कर्म करे और यह बात धैर्यवानों ही को प्राप्त हो सकती है।" फिर हमने उसे और उसके घर को धरती में धँसा दिया, फिर उसका कोई समुदाय अल्लाह के मुक़ाबले में उसकी सहायता न कर सका, और न वह स्वयं अपना बचाव कर सका।» (सूरा–28, अल-क़सस, आयतें–76-81)

एक सहीह हदीस में आया है कि नबी ﷺ) ने फ़रमाया –

"तुमसे पूर्व एक व्यक्ति जो चादर में लिपटकर बड़े घमंड के साथ धरती पर चलता था अन्ततः वह धरती में धँसा दिया गया। अब वह प्रलय-दिवस तक उसमें धँसता चला जाएगा।" (बुख़ारी, 5789 तथा मुस्लिम, 2088)

क़ुरआन में एक दूसरे स्थान पर आया है –

«मूसा क़ारून, फ़िरऔन और हामान की ओर प्रत्यक्ष प्रमाण लेकर आए। परन्तु उन्होंने धरती में घमंड किया, जबकि वे अल्लाह से बचकर निकल नहीं सकते थे। तो हर एक को हमने उसके पापों के कारण पकड़ लिया। उनमें से किसी पर हमने पत्थर बरसाए

और किसी को एक प्रचण्ड धमाके ने आ लिया और उनमें से किसी को डुबो दिया। अल्लाह ऐसा नहीं कि किसी पर अत्याचार करे, परन्तु वे स्वयं अपने आपपर अत्याचार करते थे।» (सूरा–29, अल-अनकबूत, आयतें–39-40)

एक हदीस में आया है कि नबी (ﷺ) ने फ़रमाया –

"जो व्यक्ति नमाज़ पढ़ेगा प्रलय-दिवस को उसके लिए प्रकाश, युक्ति, तथा मुक्ति होगी। और जो नहीं पढ़ेगा उसके लिए न तो प्रकाश होगा, न युक्ति, न मुक्ति और वह प्रलय दिवस को क़ारून, फ़िरऔन, हामान तथा उबई-बिन-काब के साथ होगा।" (मुस्नद अहमद, 2:169 तथा दारमी, 2:301)

जब मूसा (عليه السلام) ने अल्लाह का संदेश सुनाना शुरू किया तो क़ारून ने कुछ लोगों को मिलाकर एक संगठन बना लिया, और मूसा (عليه السلام) के विरुद्ध खड़ा हो गया और बनी-इसराईल को आपका शत्रु बनाने लगा। परन्तु अल्लाह ने उसे और उसके साथियों को सदैव के लिए एक शिक्षाप्रद चिह्न बना दिया।

यह क़ारून बाइबल का 'कोरह' है जिसका वर्णन 'गिनती' में आया है, जिसका सारांश यह है–

क़ारून, मूसा (عليه السلام) के चचा का पुत्र था। उसका पिता 'यिसहार' और दादा 'कहात' था और मूसा के पिता 'इमरान' और दादा 'कहात'। मूसा तथा उनके भाई हारून से उसे ईर्ष्या हो गई थी कि ये दोनों बनी-इसराईल के सरदार और नेता कैसे बन गए हैं जबकि धन उसके पास अधिक है। और वह घमंडी हो गया। इसलिए ढाई सौ व्यक्तियों को लेकर मूसा के पास पहुँचा और कहने लगा, "बनी-इसराईल के सारे लोग सदात्मा और पवित्र हैं। तुम दोनों अपने आपको क्यों पवित्र समझते हो और तुम्हें किसने सरदार बनाया है?" मूसा (عليه السلام) ने अल्लाह की ओर से संकेत पाकर कहा, "तुम सब लोग कल मेरे पास आना।" जब दूसरे दिन सब लोग आ गए तो मूसा (عليه السلام) ने बनी-इसराईल के दूसरे लोगों से कहा कि सब लोग दूर हो जाएँ। क़ारून के साथ आए लोग अपने ख़ेमे के बाहर खड़े होकर मूसा (عليه السلام) और क़ारून को जाते हुए देख रहे थे कि धरती फटी और क़ारून अपने घरवालों के साथ उसमें धँस गया। और ढाई सौ लोग, जो उसके साथ आए थे, उनको अग्नि ने भस्म कर दिया। (गिनती, 16:1-35)

इस प्रकार अगर देखा जाए तो यह व्यक्ति अपनी जाति का द्रोही बन गया था, क्योंकि इसने फ़िरऔन के साथ मिलकर मूसा (عليه السلام) का विरोध किया था जो बनी-इसराईल को फ़िरऔन के अत्याचार से मुक्ति दिलाना चाहते थे। लेकिन उसको अहंकार इस बात का था कि मैं तो धन में मूसा और हारून से अधिक हूँ। फिर इन दोनों को क्यों बनी-इसराईल का सरदार माना जा रहा है, इसलिए वह अपनी जाति से अलग हो गया। क़ुरआन में दूसरे स्थानों पर इसका जो विवरण आया है उससे पता चलता है कि लूत की जाति पर पत्थर बरसाए गए, आद, समूद पर प्रचंड धमाके हुए, क़ारून को धरती

में धँसा दिया गया, फ़िरऔन और हामान को डुबो दिया गया। इन क़िस्सों के द्वारा मक्का के लोगों को चेतावनी दी जा रही है कि जिस प्रकार पहली जातियों को अल्लाह ने विभिन्न प्रकार से नष्ट कर दिया, अगर तुम नबी मुहम्मद (ﷺ) की लाई हुई शिक्षा को ठुकराओगे तो तुम्हारा भी अन्त उसी प्रकार होगा जिस प्रकार पहली जातियों का हुआ, क्योंकि वे भी अपने धन के घमण्ड में नबी की शिक्षा को ठुकरा रहे थे।

क़िसास

क़िसास का शाब्दिक अर्थ है 'बदला लेना'। और ये दो प्रकार के हैं।

(1) हत्यारे से हत्या का बदला लेना, अर्थात् अगर कोई व्यक्ति किसी की हत्या कर दे तो इस्लामी नियमानुसार न्यायालय उसको मृत्यु-दंड दे सकता है, ताकि फिर किसी निर्दोष का रक्त न बहे।

चूँकि इस्लाम से पूर्व इस विषय में कोई विशेष नियम नहीं था, इसी लिए कभी-कभी शक्तिशाली समुदाय के लोग शक्तिहीन और निर्बल समुदायों पर जिस प्रकार चाहते अत्याचार करते थे, यहाँ तक कि वे केवल हत्यारे ही का वध नहीं करते थे बल्कि पूरे समुदाय की हत्या कर डालते थे, और वर्षों तक युद्ध चलता रहता था जैसा कि आज भी कुछ देशों में होता है।

इसलिए इस विषय में अल्लाह ने नियम बना दिया। क़ुरआन में है–

«ऐ ईमान लानेवालो! मारे जानेवालों के विषय में क़िसास (हत्यादण्ड) तुमपर अनिवार्य किया गया है, स्वतंत्र-स्वतंत्र बराबर हैं और ग़ुलाम-ग़ुलाम बराबर हैं और औरत-औरत बराबर हैं। फिर यदि किसी को उसके भाई की ओर से कुछ छूट मिल जाए, तो सामान्य रीति का पालन करना चाहिए और भले तरीक़े से उसे अदा करना चाहिए। यह तुम्हारे रब की ओर से एक छूट और दयालुता है। और जो इसके बाद भी ज़्यादती करे तो उसके लिए दुखद यातना है। ऐ बुद्धि और समझवालो! तुम्हारे लिए क़िसास (हत्यादण्ड) में जीवन है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयतें–178-179)

इन दो आयतों में क़ुरआन ने क़िसास के विषय में बहुत कुछ बता दिया है, जिससे निम्नलिखित नियम निकलते हैं –

(क) अल्लाह ने वास्तव में क़िसास का नियम लोगों की जीवन-रक्षा के लिए निर्धारित किया है, क्योंकि एक व्यक्ति के क़िसास से हज़ारों व्यक्तियों का जीवन सुरक्षित हो जाता है।

(ख) अगर हत्या किए गए व्यक्ति के वारिस (उत्तराधिकारी) हत्या के बदले दियत (ख़ून बहा) लेना चाहें तो उनको इसकी आज्ञा है, जैसा कि सहीह हदीस में आता है। मुहम्मद (ﷺ) ने कहा–

"जिस किसी का क़त्ल किया गया तो उसके वारिस अगर चाहें तो क़ातिल को क़त्ल कर दें या, उसके बदले दियत ले लें या क्षमा कर दें।" (बुख़ारी, 4290, तथा सहीह मुस्लिम, 1354)

आयत में 'सामान्य नियम का पालन करना' इसी की ओर संकेत करता है अर्थात् जब दियत ले ली या क्षमा कर दिया तो फिर क़त्ल करने से रुक जाओ, और अगर ऐसा नहीं करोगे तो फिर यह तुम्हारी ओर से अत्याचार समझा जाएगा।

अपने हक़ को छोड़ देने और क्षमा करने की क़ुरआन में प्रशंसा की गई है –

«क्षमा कर देना ईशपरायणता के अधिक निकट है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–237)

यहाँ यह भी जान लेना चाहिए कि हत्याएं दो प्रकार की होती हैं जिनका वर्णन क़ुरआन तथा सहीह हदीसों में आया है –

(अ) भूल-चूक से हत्या करना :

अर्थात् हत्या करने का इरादा नहीं था, लेकिन हत्या हो गई। जैसे कोई शिकारी किसी शिकार पर बन्दूक़ चलाए, लेकिन ग़लती से किसी किसान की हत्या हो जाए, या किसी ने शिकार पर गोली चलाई, लेकिन वह शिकार नहीं, बल्कि आदमी था, या इसी प्रकार किसी छोटे बच्चे, या पागल से किसी की हत्या हो जाए आदि। तो ऐसी हत्याएँ जो जान-बूझकर न की गई हों इस्लामी नियम में 'क़त्ले-ख़ता' (भूल-चूक से हत्या) कहलाती हैं। और इसका कफ़्फ़ारा यह है कि –

(i) हत्यारा एक ईमानवाले ग़ुलाम को स्वतंत्र करे और अगर ऐसा न कर सकता हो तो दो माह लगातार रोज़े रखे, और अपने इस पाप की अल्लाह से क्षमा माँगता रहे।

(ii) हत्या किए गए व्यक्ति के नातेदारों को 'दियत' (रक्त-दण्ड) देनी होगी, जिसका परिमाण हदीसों में सौ ऊँट बताया गया है या उनके मूल्य के बराबर सोना-चाँदी या मुद्रा।

क़ुरआन में आया है –

«किसी ईमानवाले का यह काम नहीं कि वह किसी ईमानवाले की हत्या करे, भूल-चूक की बात और है। और यदि कोई व्यक्ति ग़लती से किसी ईमानवाले की हत्या कर दे, तो एक मोमिन ग़ुलाम को आज़ाद करना होगा और अर्थदण्ड उस (मारे गए व्यक्ति) के घरवालों को सौंपा जाए। यह और बात है कि वे अपनी ख़ुशी से छोड़ दें। और यदि वह उन लोगों में से हो, जो तुम्हारे शत्रु हों और वह (मारा जानेवाला) स्वयं मोमिन रहा हो तो एक मोमिन को ग़ुलामी से आज़ाद करना होगा और यदि वह उन लोगों में से हो कि तुम्हारे और उनके बीच कोई संधि और समझौता हो, तो अर्थदण्ड उसके घरवालों को सौंपा जाए और एक मोमिन को ग़ुलामी से आज़ाद करना होगा। लेकिन जो ग़ुलाम न पाए तो वह निरन्तर दो माह के रोज़े रखे। अल्लाह की ओर से निश्चित किया हुआ

उसकी तरफ़ पलट आने का तरीक़ा है। अल्लाह तो सब कुछ जाननेवाला, तत्वदर्शी है।»
(सूरा–4, अन-निसा, आयत–92)

(ब) जान-बूझकर हत्या करना :

यदि कोई व्यक्ति जान-बूझकर किसी व्यक्ति की हत्या कर देता है (और अदालत में यह हत्या का अपराध सिद्ध हो जाता है) तो इस्लामी विधान के अनुसार न्यायालय के द्वारा उसे मौत की सज़ा सुनाई जाएगी। इस्लामी पारिभाषिक शब्दावली में इसे क़िसास कहा गया है। जैसा कि क़ुरआन में है–

«मारे जानेवालों के विषय में तुमपर हत्यादंड (क़िसास) अनिवार्य किया गया।»
(सूरा–2, अल-बक़रा, आयतें–178)

इससे ज्ञात होता है कि इस्लाम इनसानी जान को बड़ा महत्त्व देता है। उसे किसी भी स्थिति में नष्ट नहीं होने देना चाहता। यदि कोई व्यक्ति किसी जान को अकारण नष्ट करता है तो उसने महापाप किया। क़ुरआन में तो इनसानी जान की महत्ता को बताते हुए यहाँ तक कह दिया गया है कि यदि किसी व्यक्ति ने किसी व्यक्ति की अकारण हत्या कर दी तो मानो उसने पूरी मानवता की हत्या कर दी। (देखें-सूरा–5, अल-माइदा, आयत–32)

फिर यदि कोई व्यक्ति जान-बूझकर किसी मोमिन की हत्या कर देता है तो उसे दो प्रकार के दण्ड मिलेंगे। पहला दण्ड तो उसे इस्लामी विधान के अनुसार न्यायालय के द्वारा दिया जाएगा। जैसा कि सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–178 में बयान किया गया है। और दूसरा दण्ड उसे आख़िरत में मिलेगा जैसा कि क़ुरआन में कहा गया है–

«जो व्यक्ति जान-बूझकर किसी मोमिन की हत्या करे, तो उसका बदला जहन्नम है, जिसमें वह सदा रहेगा; उसपर अल्लाह का प्रकोप और उसकी फिटकार है और उसके लिए अल्लाह ने बड़ी यातना तैयार कर रखी है।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–93)

इससे ज्ञात हुआ कि यूँ तो किसी भी इनसान की जान लेना महापाप है जिसकी सज़ा यह है कि हत्यारे को भी क़त्ल किया जाए। परन्तु किसी मोमिन को क़त्ल करना उससे भी बड़ा पाप है जिसकी सज़ा सिर्फ़ दुनिया ही में नहीं बल्कि परलोक में भी दी जाएगी।

जान-बूझकर की गई हत्या के सम्बन्ध में इस्लाम में एक और प्रावधान रखा गया है और वह यह कि मृतक के वारिस यदि चाहें तो हत्यारे से हत्या का अर्थ-दण्ड लेकर उसे क्षमा कर सकते हैं।

हदीसों में एक अन्य प्रकार की हत्या का भी वर्णन आता है जिसको 'शिबूह अमद' कहते हैं। इसका अर्थ है जान-बूझ कर की गई हत्या के समान हत्या, जैसे कोई किसी को छड़ी से मारे और उसकी मृत्यु हो जाए। अब चूँकि छड़ी से मारने से मृत्यु नहीं होती और न मारनेवाले ने हत्या के इरादे से छड़ी मारी थी। इसी प्रकार किसी ने किसी को एक थप्पड़ मारा और वह मर गया। इसी प्रकार छत पर

बैठे किसी व्यक्ति को डरा दिया और वह घबराकर नीचे गिर गया और उसकी मृत्यु हो गई। इन सारी दशाओं को 'शिब्ह अमद' कहते है, क्योंकि न तो मारनेवाले ने हत्या का इरादा किया और न ही कोई ऐसी वस्तु का प्रयोग किया जिससे मृत्यु हो जाती है। इसपर भी वही नियम लागू होगा जो भूल-चूक से किसी की हत्या कर देने का है। यहाँ यह बात भी स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है कि जो इस्लामी नियम बताए गए हैं, इनके लिए ज़रूरी है कि न्यायालय ही इनका निर्णय करे और वही दण्ड भी दे। किसी व्यक्ति के लिए उचित नहीं कि वह स्वयं निर्णय करे और दण्ड दे।

(2) किसी से ज़ख़्म का बदला लेना। चाहे वह चोट की शक्ल में हो, या किसी अंग के काटने की शक्ल में या किसी अंग के लाभ से महरूमी की दशा में हो, जैसे बोलने की शक्ति, सूँघने की शक्ति, बच्चा पैदा करने की शक्ति इत्यादि। इन सभी दशाओं में क़िसास लिया जा सकता है परन्तु किसी अंग के लाभ से महरूमी की दशा में क़िसास नहीं लिया जा सकता। क्योंकि क़िसास में बराबरी अनिवार्य है। उससे अधिक अत्याचार होगा। परन्तु अन्तिम दशा में बराबरी करना असम्भव है। इसलिए न्यायालय द्वारा निर्णय किया जाएगा कि वह ऐसी दशा में क्या निर्णय करता है। यहाँ बहुत ही संक्षेप में इन बातों का उल्लेख किया गया है जबकि क़िसास इस्लामी न्याय का बहुत ही महत्वपूर्ण विभाग है। इसके द्वारा लोगों का जीवन, धन तथा मर्यादा सुरक्षित रह सकती है।

क़िबला

इसका अर्थ है उपासना की दिशा। इसलिए क़िबला से तात्पर्य काबा है। दुनिया भर के मुसलमान काबा की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ते हैं। नबी (ﷺ) की जीवन-चर्या से पता चलता है कि जब आप (ﷺ) मक्का में थे तो उस समय नमाज़ पढ़ने के लिए काबा तथा 'बैतुल-मक़दिस' दोनों को क़िबला बनाया करते थे। आप 'यमानी कोने' और 'हजरे-असवद' वाले कोने के बीच में खड़े होते थे। इस प्रकार काबा तथा बैतुल मक़दिस दोनों आप (ﷺ) के सामने होते थे, क्योंकि बैतुल-मक़दिस मक्का के उत्तर में पड़ता है। परन्तु जब आप (ﷺ) हिजरत करके मदीना आ गए तो आप (ﷺ) के लिए यह सम्भव न रहा कि दोनों की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ें। इसलिए अल्लाह की आज्ञा से बैतुल-मक़दिस की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ने लगे। आप (ﷺ) सोलह या सत्रह मास तक इसी प्रकार नमाज़ पढ़ते रहे। नमाज़ के बाद अपना मुँह आकाश की ओर करके यह प्रार्थना करते कि "ऐ अल्लाह, मुझे काबा की ओर मुँह करने की आज्ञा दे दे।" (बुख़ारी, 4486 तथा मुस्लिम, 525)

फिर एक दिन यह आदेश आ गया कि अपना मुँह काबे की ओर फेर लो और जहाँ कहीं भी हो नमाज़ में अपना मुँह काबे ही की तरफ़ किया करो। हदीस और नबी (ﷺ) की जीवनियों में इस घटना का वर्णन इस प्रकार आया है कि स्वयं नबी (ﷺ.) 'ज़ुहर' की नमाज़ पढ़ रहे थे कि क़ुरआन की यह आयत आप (ﷺ) पर अवतरित हुई –

«अपने मुँह को 'मस्जिदे-हराम' की ओर फेर लो।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–144)

आप (ﷺ) ने नमाज़ ही की दशा में बैतुल-मक़दिस, जो मदीना के उत्तर में है, की ओर से मुँह मोड़कर 'मस्जिदे-हराम' (काबा) की ओर कर लिया, जो मदीना के दक्षिण में है। इसी प्रकार जब यह सूचना बनू-सलमा नामक क़बीले को पहुँची जो 'बैतुल-मक़दिस' की ओर नमाज़ पढ़ रहे थे तो नमाज़ ही की दशा में 'मस्जिदे-हराम' की ओर मुँह कर लिया। वहाँ आज एक बहुत ही सुन्दर और विशाल मस्जिद बनी हुई है, जिसको 'मस्जिदे-क़िब्लतैन' कहते हैं अर्थात् दो किबलों की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ी जानेवाली मस्जिद। 'क़ुबा' के विषय में भी कुछ ऐसी ही रिवायत है कि वहाँ भी लोगों ने नमाज़ की दशा में क़िबला बदल लिया। यह वास्तव में उनकी परीक्षा थी, जैसा कि क़ुरआन में आया है –

«इसी प्रकार हमने तुम्हें बीच का एक उत्तम समुदाय बनाया है, ताकि तुम सारे मनुष्यों पर साक्षी बन जाओ और रसूल तुम पर साक्षी हो जाएँ। और जिस (क़िबले) पर तुम पहले से थे उसे तो हमने केवल इसलिए बनाया था कि हम जान लें कि कौन रसूल के सच्चे अनुयायी हैं और कौन हैं उनमें से जो अपनी एड़ियों के बल पलट जाते हैं।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–143)

अब काबे की ओर मुँह करके न केवल नमाज़ पढ़ी जाती है, बल्कि मरने के पश्चात् क़ब्र में भी मृतक को क़िबले की ओर मुँह करके लिटाया जाता है। क़ुरबानी करते हुए भी जानवर का मुँह क़िबले की ओर किया जाता है। क़िबले का सम्मान करना प्रत्येक मुसलमान के लिए अनिवार्य है। किसी मुसलमान के लिए उचित नहीं कि वह क़िबले की ओर मुंह करके शौच करे। इसी लिए मुसलमानों के घरों में शौचालय क़िबले की ओर नहीं होता। किसी मुसलमान के लिए जाइज़ नहीं की वह काबे के अतिरिक्त किसी दूसरी ओर मुँह करके नमाज़ पढ़े, अगर कोई ऐसा करता है तो उसकी नमाज़ अल्लाह के यहाँ स्वीकार नहीं की जाएगी।

इस विवरण के पश्चात् अब क़ुरआन की उन आयतों का अध्ययन कीजिए जो क़िबले के विषय में उतरी हैं –

«अब मूर्ख लोग कहेंगे, "उन्हें (मुसलमानों को) उनके उस क़िंबले (उपासना-दिशा) की ओर से, जिसपर वे थे, किस चीज़ ने फेर दिया?" (ऐ नबी) कह दीजिए, "पूर्व और पश्चिम का स्वामी तो अल्लाह ही है। वह जिसे चाहता है सीधा मार्ग दिखा देता है।"» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–142)

क़ुरआन ने पहले यहूदियों और ईसाइयों के इस आक्षेप का उल्लेख किया कि वे लोग क़िबला बदलने के बाद यह कहेंगे, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, कि आप (ﷺ) मदीना में सोलह-सत्रह मास तक बैतुल-मक़दिस की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ते रहे जो यहूदी, ईसाई तथा मुसलमान तीनों का पवित्र स्थान है, जिसका निर्माण दाऊद (अलैहि॰) और उनके पुत्र सुलैमान (अलैहि॰) के हाथों हुआ,

जबकि नबी (ﷺ) क़िबला ए-इबराहीमी अर्थात् काबे की ओर मुँह करने के इच्छुक थे। जैसा कि क़ुरआन में आया है –

«हम आकाश में तुम्हारे मुँह की गर्दिश देख रहे हैं, हम अवश्य ही तुम्हें उसी क़िबले का अधिकारी बना देंगे जिसे तुम पसन्द करते हो अतः अब आप 'मस्जिदे-हराम' (काबा) की ओर अपना रुख़ करो और जहाँ कहीं भी हो अपना मुँह उसी की ओर करो। जिन लोगों को किताब दी गई वे इस बात को भली-भाँति जानते हैं कि यही उनके 'रब' की ओर से सत्य है, और जो कुछ वे कर रहे हैं, अल्लाह उससे बेख़बर नहीं है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–144)

इन आयतों में सच्चाई को स्पष्ट कर दिया गया कि उनकी किताबों में इबराहीम (عليه السلام) ने जिस नबी के आने की भविष्यवाणी की है वे यही नबी मुहम्मद (ﷺ) हैं और 'बैतुल्लाह' (काबा) उसी इबराहीम (عليه السلام) की निशानियों में से एक है जिसे उन्होंने अपने पुत्र इसमाईल के साथ मिलकर बनाया था। और उसी नबी की प्रतीक्षा करते हुए यहूदी अरब देशों में आकर बस गए थे। लेकिन जब वह नबी आ गया तो, अहले-किताब ने यह कहकर उसका इनकार कर दिया कि वह तो बनी इसमाईल में आया है। जबकि वे भली-भाँति उसको जानते-पहचानते थे बस उनको जान लेना चाहिए कि अल्लाह उनकी करतूतों से बेख़बर नहीं है।

उपर्युक्त आयतों से यह भी स्पष्ट होता है कि नबी (ﷺ) की इच्छा यही थी कि 'काबा' को अल्लाह मुसलमानों का क़िबला बना दे, क्योंकि यह इबराहीम (عليه السلام) की निशानी है और इस्लाम वास्तव में उन्हीं के धर्म का विस्तार है। आश्चर्य तो यह है कि इस बात को अहले-किताब (अर्थात् यहूदी और ईसाई) भी जानते थे, परन्तु उन्होंने 'काबा' को छोड़कर 'बैतुल-मक़दिस' को अपना क़िबला बना लिया था, और जब नबी मुहम्मद (ﷺ) ने अल्लाह के आदेश से दोबारा 'काबा' को क़िबला बनाया तो वे आप (ﷺ) के कट्टर विरोधी बन गए और अपने विरोध में इतने आगे निकल गए कि अब वे किसी प्रमाण को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। इसी ओर क़ुरआन संकेत करते हुए कहता है –

«तुम 'किताबवालों' के पास कोई भी निशानी ले आओ, फिर भी वे आपके क़िबले का अनुसरण नहीं करेंगे और न आप उनके क़िबले का अनुसरण करनेवाले हैं और न वे एक-दूसरे के क़िबले का अनुसरण करनेवाले हैं।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–145)

जब यह बात है तो फिर नबी के लिए यह उचित नहीं कि उनकी प्रसन्नता के लिए उनकी इच्छाओं का अनुकरण करे, जबकि उसको अल्लाह 'वह्य' द्वारा हर प्रकार का ज्ञान प्रदान कर रहा है। क़ुरआन में है –

«यदि आप उस ज्ञान के पश्चात्, जो आपके पास आ चुका है, उनकी इच्छाओं पर चलेंगे तो निस्संदेह आप भी अत्याचारियों में हो जाएँगे।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–145)

अर्थात् जिस प्रकार किताबवाले ज्ञान होने के बावजूद भी आपके क़िबले का अनुसरण नहीं कर रहे हैं, जिसके कारण वे अत्याचारियों में हो गए, उसी प्रकार ऐ मुहम्मद! अगर आपने भी ज्ञान आ जाने के बाद उनकी इच्छाओं का अनुसरण किया तो आप भी अत्याचारियों में हो जाएँगे। क़ुरआन में कहा गया है–

«इसलिए अब आप जहाँ भी हों अपना मुँह (नमाज़) में 'मस्जिदे-हराम' की ओर कर लें क्योंकि आपके 'रब' की ओर से यही सत्य है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–149)

इसलिए अब किसी मुसलमान की नमाज़ उस समय तक सही नहीं होगी जब तक वह 'काबे' की ओर मुँह करके नमाज़ न पढ़े। हाँ, अगर यात्रा में हो, या ऐसे स्थान पर जहाँ क़िबले की सही जानकारी संभव न हो तो फिर वह क़िबले को जानने का पूरा प्रयत्न करे और फिर जिस ओर क़िबला होने का विश्वास हो जाए उस ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ ले। ऐसी दशा में अगर उससे ग़लती हो जाए अर्थात् क़िबले को छोड़कर किसी दूसरी तरफ़ मुँह करके नमाज़ पढ़ ले तो अल्लाह क्षमा करनेवाला है।

काबा
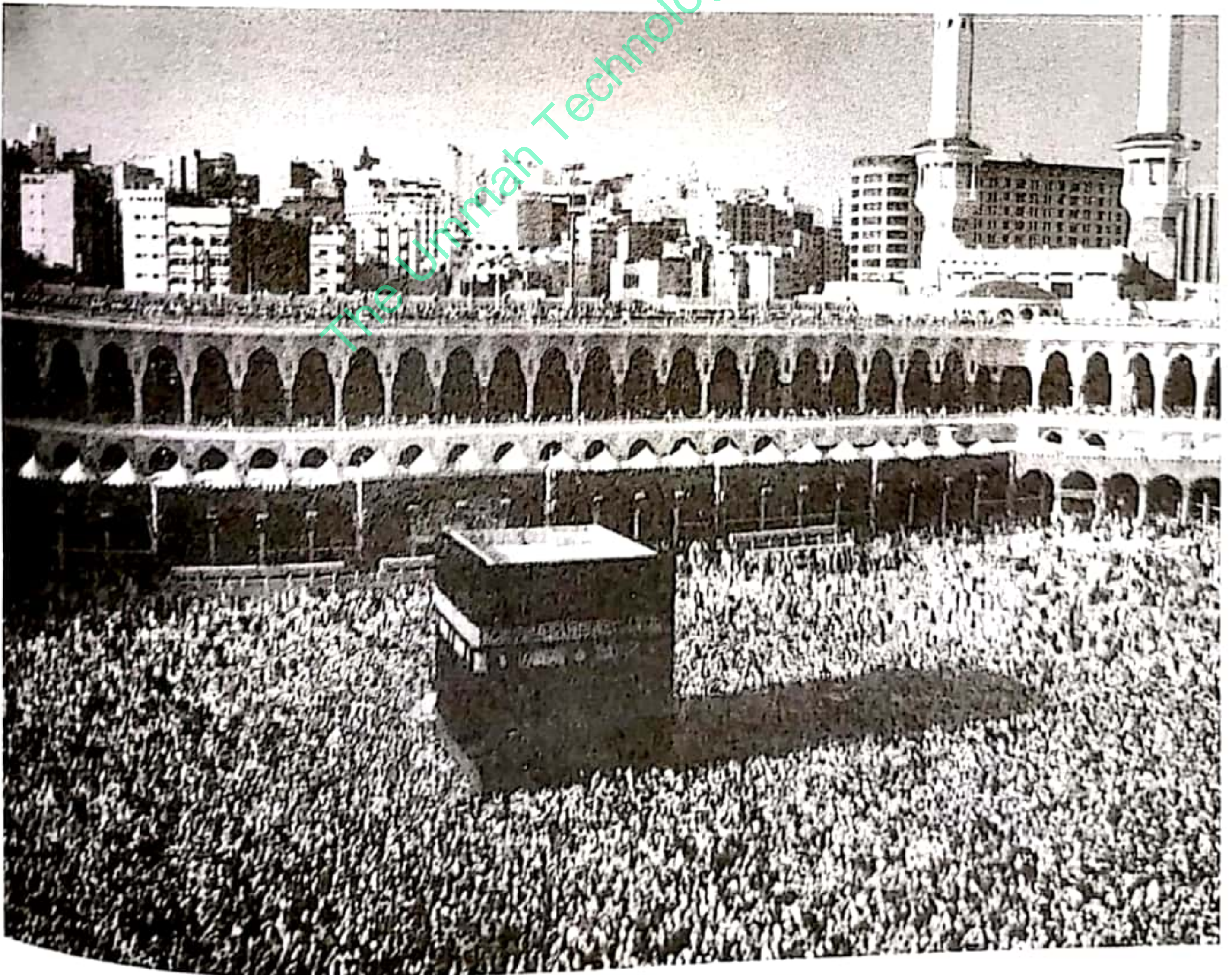
"ख़ानये काबा का ख़ूबसूरत मंज़र"

काबे को बैतुल्लाह भी कहते हैं। इसे इबराहीम (عليه السلام) ने अपने पुत्र इसमाईल (عليه السلام) के साथ मिलकर बनाया और यही वह पहला घर है जिसे केवल एक अल्लाह की बन्दगी के लिए मक्का में बनाया गया और यही वह क़िबला है जिसकी ओर मुसलमान मुँह करके नमाज़ पढ़ते हैं। इसमें एक द्वार है, जिसे 'मुल्तज़िम' कहा जाता है, जो धरती से कोई छह-सात फुट ऊँचा है। यहाँ हाजी दुआ माँगते हैं। काबे के दक्षिण-पूर्व कोने में 'हजरे-अस्वद' है, जो जन्नत का पत्थर है। इसे मुसलमान चूमते हैं। काबे के पूर्व में 'मक़ामे-इबराहीम' (वह पत्थर जिस पर इबराहीम (عليه السلام) के पाँव का चिह्न है) है, जो एक बड़ी निशानी है। इसका वर्णन क़ुरआन में आया है। (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–125 तथा सूरा–3, आले-इमरान, आयत–97)

"खानये काबा का दरवाज़ा"

'काबे' के उत्तर में एक स्थान है जिसे 'हतीम' कहते हैं। यह वास्तव में 'काबा' का ही भाग है। परन्तु इस्लाम से पूर्व जब क़ुरैश दोबारा काबे का निर्माण कर रहे थे, उस समय उनके पास हलाल कमाई इतनी नहीं थी कि काबे को उसकी असल नींव पर उठाएँ। इसलिए उन्होंने इतने भाग को कम कर दिया। काबे के अन्दर फ़र्ज़ नमाज़ नहीं पढ़ी जा सकती। चूँकि हतीम वास्तव में काबे ही का भाग है, इसलिए उसके अन्दर भी फ़र्ज़ नमाज़ नहीं पढ़ सकते। अधिकतर विद्वानों का यही विचार है।

क्योंकि नबी (ﷺ) ने और आपके बाद ख़ुलफ़ाए-राशिदीन तथा दूसरे सहाबा में से किसी ने और मुहद्दिसीन तथा फ़ुक़हा में से किसी ने काबे के अन्दर फ़र्ज़ नमाज़ नहीं पढ़ी। हाँ, सुन्नत नमाज़ पढ़ सकते हैं। क्योंकि नबी (ﷺ) ने जब मक्का पर विजय प्राप्त की और आप (ﷺ) काबे में दाख़िल हुए, तो उसमें दो रकअत नमाज़ पढ़ी, इसलिए हतीम में दो रकअत नमाज़ पढ़ना ऐसे ही है जैसे काबे के अन्दर नमाज़ पढ़ना। आइशा (नबी ﷺ की पत्नी) की इच्छा थी कि काबे में नमाज़ पढ़ें, नबी (ﷺ) ने उनका हाथ पकड़ा और हतीम में ले गए और फ़रमाया,

"तुम्हें काबे में नमाज़ पढ़ने की इच्छा है तो इसमें नमाज़ पढ़ लो। क्योंकि यह भी काबे का एक भाग है। परन्तु धन की कमी के कारण तुम्हारी जातिवालों ने उसको काबे से अलग कर दिया था।" (अबू दाऊद 2028, तिर्मिज़ी 876 तथा नसई 2912)

एक सहीह हदीस में आता है कि नबी (ﷺ) ने आइशा से कहा,

"ऐ आइशा! अगर तुम्हारी जातिवाले नए-नए मुसलमान न होते तो मैं काबे को गिराकर दोबारा बनाता और हतीम को उसमें मिला लेता।" (सहीह मुस्लिम, 1333)

इतिहास की पुस्तकों से पता चलता है कि इसमाईल (عليه السلام) के बाद एक हज़ार वर्ष तक 'बनू-जुरहम' काबे के प्रबंधक रहे और अन्त में इसके प्रबंधक क़ुरैश बने। बाद में इसका प्रबन्धक क़ुरैश का एक क़बीला बना। जिस समय मक्का-विजय हुई उस समय काबे की चाभी उस क़बीले के दो लोगों के पास थी, जिनका नाम 'उस्मान-बिन-तलहा-बिन-अबी-तलहा' और उनका चचेरा भाई 'शैबा-बिन-उस्मान-बिन-अबी तलहा' था। नबी (ﷺ) ने उनसे काबे का द्वार खोलने को कहा और आप (ﷺ) काबे में दाख़िल हुए, पहले आप (ﷺ) ने अल्लाह के घर को बुतों से पाक-साफ़ किया फिर दो रकअत नमाज़ पढ़ी, फिर काबे की चाभी उन्हीं को लौटा दी और फ़रमाया, "यह क़ियामत तक इन्हीं के पास रहनी चाहिए, इनसे छीननेवाला ज़ालिम होगा।" (तबरानी कबीर, 11:20)
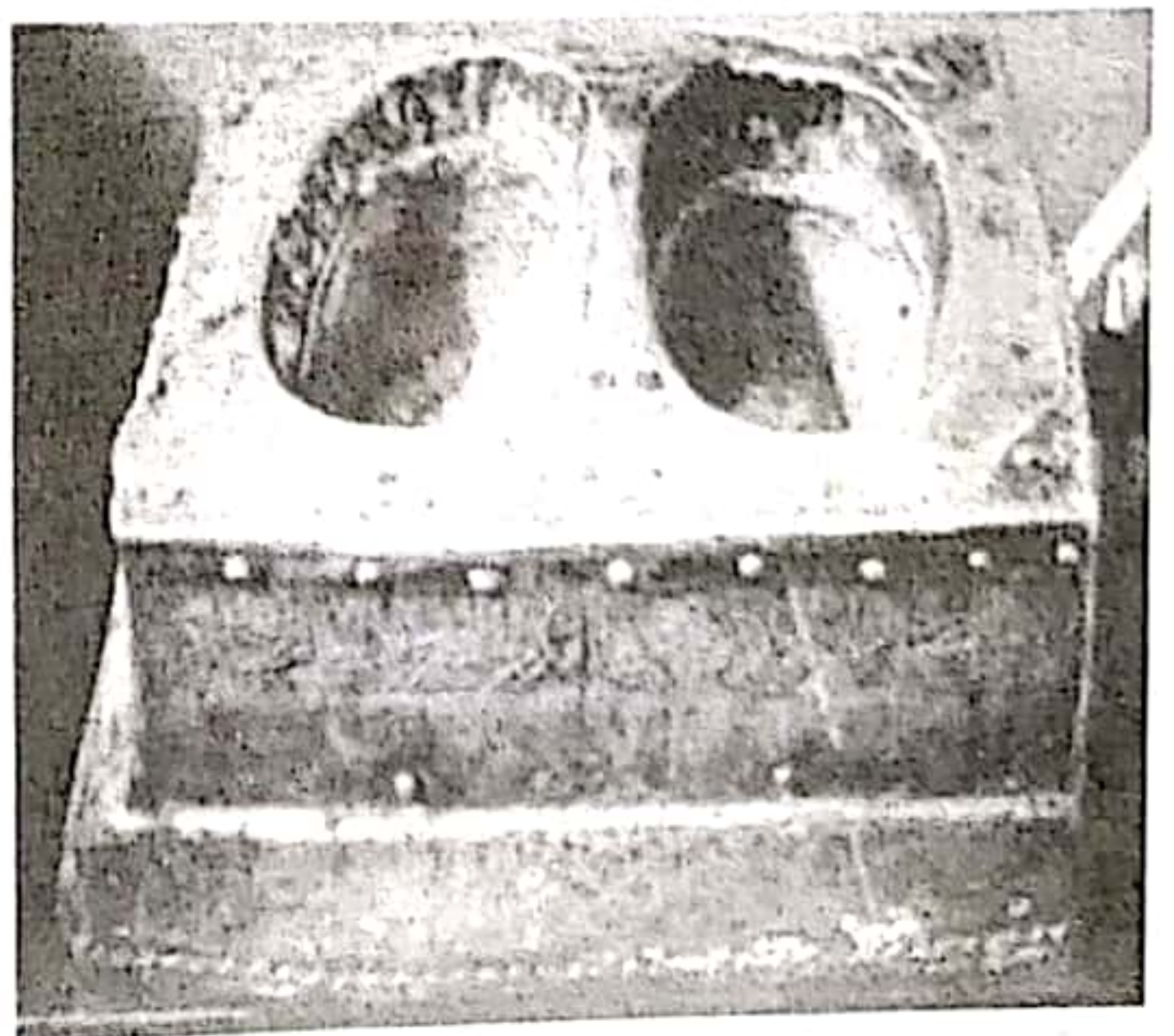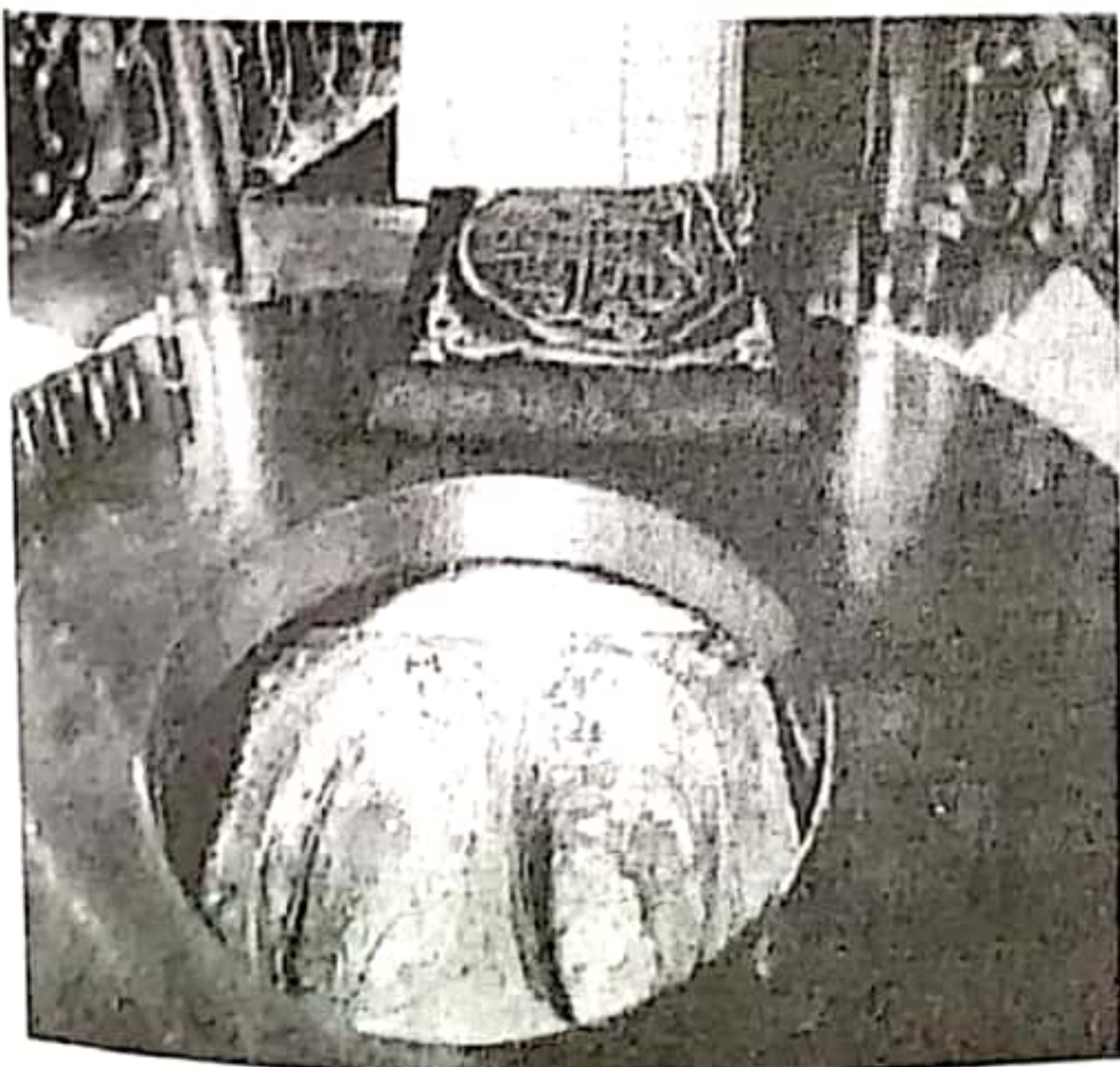
"मक़ामे-इब्राहीम (इब्राहीम عليه السلام के पांव का चिन्ह)"

इसकी सनद में कुछ कमज़ोरी है परन्तु दूसरी सनदों से इसकी पुष्टि होती है। सन 42 हिजरी में 'उस्मान-बिन-अबी-तलहा' का देहान्त हो गया तो काबे की चाभी 'शेबा-बिन-उस्मान-बिन-अबी-तलहा' को मिल गई और आज तक यह चाभी शैबा ही के वंश में है। वे ही काबा को खोलते हैं और उन्हीं के द्वारा काबे को ग़िलाफ़ पहनाया जाता है।

यही वह काबा है जिसको गिराने के लिए तथा उसके चिह्न को मिटाने के लिए यमन से 'अब्रहा' नामक गवर्नर एक बहुत बड़ी सेना लेकर, जिसमें हाथियों का भी एक झुण्ड था, मक्का आया। परन्तु रास्ते ही में अल्लाह ने उसे नष्ट कर दिया।

इसी घटना को 'सूरा अल-फ़ील' में इस प्रकार बयान किया गया है –

«क्या तुमने नहीं देखा कि तुम्हारे 'रब' ने हाथीवालों के साथ क्या किया, क्या उसने उनकी चाल को अकारथ नहीं कर दिया? और उनपर झुंड के झुंड पक्षी भेज दिए, जो उन्हें मिट्टी तथा पत्थर की कंकरियों से मार रहे थे। अन्ततः उन्हें खाए हुए भूसे के समान बना दिया।» (सूरा–105, अल-फ़ील, आयतें–1-5)

और यही वह 'काबा' है जिसके कारण मक्का के क़ुरैश को मान-सम्मान प्राप्त हुआ। इसी के कारण वे भूख तथा भय से सुरक्षित रहे। क़ुरआन में है–

«अतः उन्हें चाहिए कि इस घर (काबा) के रब (प्रभु) की बन्दगी (वन्दना) करें, जिसने उन्हें भूख में भोजन दिया तथा भय में निश्चिन्तता प्रदान की। (सूरा–106, अल-क़ुरैश, आयतें–3-4)

क़ुरैश

यह शब्द क़ुरआन में केवल एक बार सूरा 'क़ुरैश' में आया है –

«क़ुरैश को लगाए और परचाए रखना, लगाए और परचाए रखना उन्हें जाड़े और गर्मी की यात्रा से। अतः उन्हें चाहिए कि इस घर (काबा) के रब की बन्दगी करें, जिसने उन्हें भूख में भोजन दिया तथा भय में निश्चिन्तता प्रदान की।» (सूरा–106, क़ुरैश, आयतें–1-4)

क़ुरैश मक्का के सर्वश्रेष्ठ क़बीले (वंश) का नाम है, जिनका नसब (वंशक्रम) 'फ़हर' तक पहुँचता है, जिनका नाम क़ुरैश था और उन्हीं की सन्तान में नबी मुहम्मद (ﷺ) पैदा हुए। नबी (ﷺ) से 'फ़हर' तक का नसबनामा (वंशावली) यह है –

मुहम्मद (बिन) अब्दुल्लाह (बिन) अब्दुल मुत्तलिब (बिन) हाशिम (बिन) अब्द मनाफ़ (बिन) क़ुसै (बिन) किलाब (बिन) मुर्रा (बिन) कअ्ब (बिन) लुई (बिन) फ़हर। यही वे फ़हर हैं जिनका नाम क़ुरैश था और मक्का के क़ुरैश उन्हीं के सगे-सम्बन्धी और सन्तानों में से हैं।

'फ़हर' के पूर्व का वंशक्रम यह है: फ़हर (बिन) मालिक (बिन) नज़्र (बिन) किनाना (बिन) ख़ुज़ैमा (बिन) मुद्रिका (बिन) इयास (बिन) मुज़र (बिन) निज़ार (बिन) मअ्द (बिन) अदनान।

यहाँ तक प्राय: सभी इतिहासकार तथा हदीसशास्त्री इस बात पर सहमत हैं कि नबी (ﷺ) इन्हीं 'अदनान' के वंशज थे और इस बात पर भी सहमत हैं कि 'अदनान' का वंशक्रम इबराहीम (عليه السلام) के पुत्र इसमाईल (عليه السلام) तक पहुँचता है, जो मक्का में बस गए थे। परन्तु 'अदनान' से इसमाईल (عليه السلام) तक जो वंशक्रम बताया जाता है, उसमें कुछ मतभेद है। वह इस प्रकार है –

अदनान (बिन) अद्द (बिन) यज़ीद (बिन) यक़दुद (बिन) मुक़व्वम (बिन) यसअ (बिन) क़ेदार (बिन) इसमाईल (عليهم السلام)।

अल्लाह ने नबी मुहम्मद (ﷺ) को इन्हीं इसमाईल (عليه السلام) के वंश से चुना, जैसा कि एक सहीह हदीस में आया है –

"अल्लाह ने कनाना को इसमाईल की सन्तान से चुना, और कनाना से क़ुरैश को चुना, और क़ुरैश से 'बनू-हाशिम' को चुना, और मुझे बनू हाशिम से चुना।" (सहीह मुस्लिम, 2276)

क़ुरैश को अल्लाह ने बड़ा सम्मान दिया, क्योंकि यही काबा के प्रबन्धक थे। अरब के सभी लोगों से इनके सम्बन्ध थे। जाड़े में यमन और गर्मी में शाम (सीरिया) की व्यापारिक यात्रा में निकलते थे और फिर सारे अरब से लोग हज करने मक्का पहुँचते थे। इस प्रकार उनका सम्वन्ध और भी बढ़ जाता, जिसके कारण अल्लाह ने उन्हें भूख अर्थात् (अकाल) से सदैव बचाए रखा, जबकि मक्का का अधिकांश भूभाग मरूस्थल है, जहाँ कोई चीज़ नहीं उगती; जैसा कि क़ुरआन में भी इसका वर्णन हुआ है। (सूरा–14, इबराहीम, आयत–37) और पूरे अरब देश में केवल मक्का को शान्ति का नगर बना दिया।

अल्लाह ने मुहम्मद (ﷺ) को नबी बनाकर भेजा, जो इन्हीं के वंश से थे। चाहिए तो यह था कि सबसे पहले क़ुरैश आप (ﷺ) पर ईमान लाते, परन्तु ऐसा नहीं हुआ, बल्कि सबसे अधिक क़ुरैश ही ने आप (ﷺ) का विरोध किया, क्योंकि उन्हें अपनी सरदारी जाने का भय सताने लगा। इसलिए वे आप (ﷺ) से युद्ध करने के लिए भी तैयार हो गए, परन्तु उन्हें युद्ध क्षेत्रों में मुँह की खानी पड़ी और उनके बहुत सारे सरदार युद्धों में मारे गए। सन आठ हिजरी में मक्का के विधर्मी परास्त हो गए और वहाँ सत्यधर्म इस्लाम का बोलबाला हो गया। प्राय: क़ुरैश के सभी लोगों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। इससे उनकी मर्यादा घटी नहीं, बल्कि बहुत बढ़ गई।

नबी (ﷺ) के पश्चात् जो चार ख़लीफ़ा बने, जिनको 'ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन' अर्थात् सदाचारी शासक कहते हैं, वे सब क़ुरैश वंश ही के थे। उनके शुभ नाम ये हैं –

अबू बक्र सिद्दीक़, उमर फ़ारूक़, उस्मान ग़नी और अली (رضي الله عنهم)।

कफ़्फ़ारा

इसका शाब्दिक अर्थ है 'छिपानेवाली वस्तु'। इसी लिए किसानों को 'कुफ़्फ़ार' भी कहते हैं, क्योंकि वे बीज को धरती में छिपा देते हैं। जैसा कि क़ुरआन में आया है–

«जैसे एक वर्षा हो गई तो उससे पैदा होनेवाली वनस्पति को देखकर कुफ़्फ़ार (अर्थात किसान) ख़ुश हो गए।» (सूरा–57, अल-हदीद, आयत–20)

कोई उपाय करने या किसी गुनाह के दोष से मुक्त होने के लिए किए जानेवाले धार्मिक कार्य को कफ़्फ़ारा कहते हैं। इस प्रकार इसका वास्तविक इस्लामी अर्थ यह है कि किसी गुनाह के काम का 'कफ़्फ़ारा' देकर आत्मशुद्धि की जाए। इसे हिन्दी में 'प्रायश्चित' कहते हैं क़ुरआन तथा सहीह हदीसों में विभिन्न कामों का विभिन्न 'कफ़्फ़ारा' बताया गया है। जैसा कि –

1. शपथ का कफ़्फ़ारा :

शपथ तीन प्रकार की होती हैं –

पहली शपथ व्यर्थ शपथ है, जो कुछ लोग आदत पड़ जाने की वजह से बात-बात में खाते रहते हैं। परन्तु उसका उद्देश्य शपथ खाना नहीं होता। इसको अरबी भाषा में 'लग़्व' कहते हैं। इस प्रकार की शपथ या सौगन्ध पर कोई पकड़ नहीं है, जैसा कि स्वयं अल्लाह तआला ने क़ुरआन में कहा है–

«अल्लाह तुम्हारी ऐसी क़समों पर तुमको नहीं पकड़ेगा, जो यूँ ही मुँह से निकल गई हों, लेकिन उन क़समों पर वह तुम्हें अवश्य पकड़ेगा, जो तुम्हारे दिल के इरादे का नतीजा हों। अल्लाह बहुत क्षमा करनेवाला, सहनशील है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–225)

«तुम्हारी उन क़समों पर अल्लाह तुम्हें नहीं पकड़ता जो यूँ ही असावधानी में ज़बान से निकल जाती हैं।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–89)

दूसरी शपथ 'ग़मूस' है अर्थात् वह झूठी शपथ जो व्यापारी अपना माल बेचने के लिए या इसी प्रकार किसी व्यक्ति को, जो वास्तव में अपराधी नहीं है, फँसाने के लिए खाई जाती है। इस्लामी दृष्टि से यह बहुत बड़ा पाप है। सहीह हदीसों में इसकी बड़ी भर्त्सना की गई है। सहीह बुख़ारी (6920) में आया है कि एक बद्दू ने नबी (ﷺ) से बड़े पापों के विषय में पूछा तो आप (ﷺ) ने कहा, "अल्लाह के साथ शिर्क करना।" उसने कहा, "उसके पश्चात्?" नबी (ﷺ) ने कहा, "माता-पिता का कहना न मानना।" उसने कहा, "उसके पश्चात्?" आप (ﷺ) ने कहा, 'झूठी क़सम खाना।"

झूठी क़सम खानेवाले की सज़ा जहन्नम की आग बताई गई है। इसलिए ऐसे व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने इस कुकर्म से अल्लाह से क्षमा माँगे और भविष्य में ऐसा न करने का निश्चय करे।

तीसरी शपथ यह है कि कोई किसी अच्छे काम को न करने की शपथ खाए। जैसे यह कि मैं दोबारा निर्धनों की सहायता नहीं करूँगा, या अपने नातेदारों से नहीं मिलूँगा, तो ऐसे व्यक्ति पर अनिवार्य है कि वह अपनी शपथ भंग कर दे और अल्लाह की शपथ को अच्छे काम न करने का बहाना न बनाए। क़ुरआन में है –

«अपने नेक और धर्मपरायण होने और लोगों के बीच सुधारक होने के सम्बन्ध में अपनी क़समों के द्वारा अल्लाह को आड़ और निशाना न बनाओ कि इन कामों को छोड़ दो, अल्लाह सब कुछ सुनता और जानता है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–224)

सहीह हदीस में आया है –

"अपनी शपथ का कफ़्फ़ारा अदा करे और जो काम भला हो उसे करने लगे।" (बुख़ारी, 6648, मुस्लिम, 1649)

शपथ का कफ़्फ़ारा यह है–

«दस निर्धनों को औसत दर्जे का खाना खिला दो जैसा कि तुम अपने घरवालों को खिलाते हो, या उनको वस्त्र पहना दो, या एक ग़ुलाम आज़ाद करो और जो इनमें से किसी की सामर्थ्य न रखता हो तो वह तीन दिन रोज़े (उपवास) रखे। यह तुम्हारी शपथों का कफ़्फ़ारा है जबकि तुम शपथ खा बैठे और तुम्हें चाहिए कि अपनी शपथों का ध्यान रखो (अर्थात् जान-बूझकर किसी गुनाह की शपथ न खाओ)। इस प्रकार अल्लाह अपनी आयतों को तुम्हारे लिए खोल-खोलकर बयान करता है, ताकि तुम कृतज्ञता दिखलाओ।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–89)

2. एहराम की हालत में शिकार करने का कफ़्फ़ारा :

जो व्यक्ति हज या उमरे की नीयत से मक्का की यात्रा करे उसके लिए शिकार करना वर्जित (हराम) है। क़ुरआन में है –

«ऐ ईमानवालो! जब तुम एहराम की दशा में हो तो शिकार न करो, और तुममें जो कोई जान-बूझकर शिकार करेगा तो चौपायों में से उसी के समान एक जानवर कफ़्फ़ारे में देना पड़ेगा, जिसका निर्णय तुममें से दो न्यायप्रिय व्यक्ति करेंगे। वह जानवर क़ुरबानी के लिए 'काबा' पहुँचाया जाएगा। या वह कफ़्फ़ारे के रूप में मुहताजों को भोजन कराए या उसके बराबर रोज़े (उपवास) रखे, ताकि अपने किए का दण्ड चखो। जो पहले हो चुका उसे अल्लाह ने क्षमा कर दिया, परन्तु जिस किसी ने फिर ऐसा किया तो अल्लाह उससे बदला लेगा। अल्लाह शक्तिशाली और बदला लेनेवाला है। तुम्हारे लिए समुद्र का शिकार करना और उसे खाना हलाल है, वह तुम्हारे लिए और यात्रियों के लिए भोग-सामग्री है

परन्तु थल का शिकार, जब कि तुम एहराम की दशा में हो, तुमपर हराम किया गया है। अल्लाह से डरते रहो, जिसके पास तुमको इकट्ठा किया जाएगा।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयतें–95-96)

3. एहराम की हालत में सिर मुंडाने का कफ़्फ़ारा :

हज या उमरे की नीयत के बाद एहराम की हालत में सिर के बाल मुंडाने पर कफ़्फ़ारा अदा करना पड़ता है। लेकिन यदि किसी के सिर में कोई ऐसा रोग हो गया है या जूएँ आदि हो गई हों जिसके कारण सिर के बाल मुंडाने पड़ जाएँ तो उसका कफ़्फ़ारा क़ुरआन में यह बताया गया है –

«तुममें से जो रोगी हो, अथवा उसके सिर में कोई तकलीफ़ हो, जिसके कारण वह सिर मुंडवा ले तो उसपर फ़िद्या है। चाहे वह रोज़े रखे, चाहे दान दे, चाहे क़ुरबानी दे।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–196)

क़ुरआन में इन फ़िदयों का विवरण नहीं आया है। केवल एक सहीह हदीस में इस प्रकार आया है-

"काब-बिन-अजरा का कथन है कि मेरे सिर में जूएँ पड़ गई थीं, जिनके कारण मुझे कष्ट होता था, इसलिए नबी (ﷺ) ने मुझे हुक्म दिया कि मैं अपना सिर मुंडा दूँ, और फ़िद्या यह कि या तो तीन दिन के रोज़े (व्रत) रखूँ, या छह निर्धनों को भोजन कराऊँ, या जो भी मेरे लिए सरल हो उसकी क़ुरबानी करूँ। (अर्थात् ऊँट, बकरी इत्यादि)» (बुख़ारी, 1815 तथा मुस्लिम, 1201)

4. किसी मुसलमान की हत्या करने का कफ़्फ़ारा :

किसी की हत्या करना महापाप है और कोई मुसलमान किसी मुसलमान भाई की हत्या करे, यह तो और भी बड़ा पाप है। ऐसे हत्यारे की क़ुरआन और सहीह हदीसों में कड़ी निन्दा की गई है और सख़्त अज़ाब की बात कही गई है। ऐसे व्यक्ति को दुनिया में तो हत्यादण्ड दिया ही जाएगा, परन्तु आख़िरत में भी उसे जहन्नम में डाला जाएगा, जो जान-बूझकर किसी मुसलमान भाई का रक्त बहाए। (सूरा–4, अन-निसा, आयत–93)

अलबत्ता अगर किसी ने भूल-चूक से किसी की हत्या कर दी हो तो उसका कफ़्फ़ारा क़ुरआन में यह बताया गया है –

«यह किसी 'ईमानवाले' का काम नहीं है कि वह किसी 'ईमानवाले' का वध करे सिवाय भूल-चूक के। और कोई व्यक्ति यदि भूल से किसी 'ईमानवाले' का वध कर दे तो एक 'ईमानवाले' व्यक्ति को गुलामी से आज़ाद करना होगा, और उस (मारे गए व्यक्ति) के घरवालों को ख़ून के बदले में धन देना होगा। हाँ, यदि वे क्षमा कर दें तो और बात है। और यदि वह उन लोगों में से हो, जो तुम्हारे शत्रु हों और वह (मारा जानेवाला) स्वयं 'ईमानवाला' हो, तो एक 'ईमानवाले' व्यक्ति को गुलामी से आज़ाद करना होगा। और

यदि वह उन लोगों में से हो कि तुम्हारे और उनके बीच सन्धि और समझौता हो, तो उसके घरवालों को ख़ून के बदले में धन देना होगा और एक 'ईमानवाले' को ग़ुलामी से आज़ाद करना होगा। फिर जो (ग़ुलाम) न पाए वह दो महीने निरन्तर रोज़े रखे। यह अल्लाह की ओर से ठहराई 'तौबा' है। अल्लाह तो सब कुछ जाननेवाला, तत्वदर्शी है।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–92)

5. ज़िहार का कफ़्फ़ारा :

ज़िहार का अर्थ है पीठ। इस्लाम से पहले अरबों में अगर कोई व्यक्ति अपनी पत्नी को यह कह देता था कि तुम मेरे लिए वैसी ही हो जैसे मेरे लिए मेरी माँ की पीठ तो ऐसा कहने से उनका शादी का रिश्ता टूटा हुआ मान लिया जाता था और पत्नी हमेशा के लिए हराम मान ली जाती थी। इसलिए औस-बिन-सामित नामक सहाबी ने जब अपनी पत्नी ख़ौला-बिन्त-मालिक से ज़िहार किया तो वह नबी (ﷺ) के पास गईं और कहने लगीं कि इस आयु में हम दोनों कैसे अलग हो सकते हैं। इस पर क़ुरआन की सूरा-58 अल-मुजादला उतरी, जिसमें कहा गया कि ज़िहार करने से पत्नी माँ के समान नहीं हो जाती, माँ तो वही है जिसने तुमको पैदा किया अलबत्ता ऐसा कहना बहुत बड़ा गुनाह है। और पत्नी उस समय तक हराम रहेगी जब तक कफ़्फ़ारा अदा न कर दिया जाए। कफ़्फ़ारा यह है –

«जो लोग अपनी पत्नियों से ज़िहार करते हैं, फिर अपनी कही हुई बात वापस ले लेते हैं तो उनके ऊपर आपस में एक-दूसरे को हाथ लगाने से पूर्व एक ग़ुलाम को आज़ाद करना होगा। इस प्रकार तुमको उपदेश दिया जा रहा है, अल्लाह तुम्हारे सारे कर्मों से अवगत है। परन्तु जो व्यक्ति ग़ुलाम आज़ाद न कर सके वह दो माह तक निरन्तर रोज़े रखे, इससे पूर्व कि वे एक-दूसरे को हाथ लगाएँ (अर्थात् संभोग करें)। परन्तु जो इसकी भी शक्ति न रखता हो उसपर साठ निर्धनों को भोजन कराना है। यह इसलिए है कि तुम अल्लाह पर तथा उसके रसूल पर ईमान लाओ। ये अल्लाह की निर्धारित की हुई सीमाएँ हैं तथा इनकार करनेवालों के लिए दुखदायी यातना है।» (सूरा–58, अल-मुजादला, आयतें–3-4)

6. रमज़ान में रोज़े की दशा में संभोग करने का कफ़्फ़ारा :

रमज़ान में रोज़े रखना अनिवार्य है, जिसके द्वारा आत्मा की शुद्धि और अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त होती है, क्योंकि भोर से सन्ध्या होने तक केवल अल्लाह के लिए खाना-पीना तथा संभोग आदि त्यागकर एक रोज़ेदार (व्रतधारी) अपने बारे में अल्लाह का सच्चा बन्दा होने का प्रमाण देता है। इसलिए इस दशा में संभोग करना महापाप क़रार दिया गया है और अगर किसी ने ऐसा कर लिया तो उसे अपने किए पर अल्लाह से क्षमा माँगनी चाहिए और क्षमा माँगने के साथ-साथ निम्नलिखित कफ़्फ़ारा अदा करना चाहिए, जिसका विवरण एक सहीह हदीस में आया है। वह यह है –

"एक व्यक्ति नबी (ﷺ) के पास आया और कहने लगा, "मैंने रमज़ान (रोज़े की हालत) में अपनी स्त्री से संभोग कर लिया।" आप (ﷺ) ने कहा, 'एक गुलाम आज़ाद करो।" उसने कहा, "मेरे पास कोई गुलाम नहीं है।" फिर आप (ﷺ) ने कहा, "फिर दो मास के रोज़े रखो।" उसने कहा, "इसकी भी शक्ति नहीं रखता।" तो आप (ﷺ) ने कहा, "तब साठ निर्धनों को भोजन कराओ।" उसने कहा, "मेरे पास इतना धन भी नहीं है।" इसी बीच एक व्यक्ति नबी (ﷺ) की सेवा में सात किलो खजूर लेकर आया। आप (ﷺ) ने उससे कहा, "ये लो और निर्धनों को अपनी ओर से खिला दो।" उसने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! इन दोनों पर्वतों के बीच कोई ऐसा घर नहीं है जो मुझसे अधिक निर्धन हो।" आप (ﷺ) हँस पड़े और कहा, "ले जाओ अपने परिवार में ही बाँट दो।" (बुख़ारी, 1936 तथा मुस्लिम, 1111)

और यह कफ़्फ़ारा केवल पुरुष पर होगा। क्योंकि स्त्री-सम्भोग उसने अपनी इच्छा से किया न कि पत्नी की इच्छा से।

इस हदीस से जहाँ रमज़ान में (रोज़े की हालत में) संभोग करने के कफ़्फ़ारे का पता चलता है, वहीं नबी (ﷺ) के उच्च आचरण का भी पता चलता है कि आप (ﷺ) वास्तव में 'रहमतुल्लिल-आलमीन' (संसार के लिए दयानिधि) बनाकर भेजे गए थे।

क़ब्र

क़ब्र यानी वह गढ़ा जिसमें मुर्दे को दफ़न करते हैं। इसे मृतक भवन या समाधि भी कहा जाता है। अरब प्राचीनकाल में भी मुर्दे को क़ब्र में दफ़न करते थे। तौरात से भी इस बात की पुष्टि होती है कि मुर्दों को दफ़न किया जाता था। जैसे याक़ूब (عليه السلام), जिनका देहान्त मिस्र में हुआ था, पहले उनकी ममी की गई, अर्थात् उनके शव में सुगन्ध भरी गई, चालीस दिन के पश्चात् यूसुफ़ (عليه السلام) फ़िरऔन की आज्ञा से उनके शव को लेकर फ़िलस्तीन आए और मकफ़ेला नामक गुफा में दफ़न किया। (उत्पत्ति, 50 : 2, 7, 13)

इसी प्रकार यूसुफ़ (عليه السلام) के शव को बनी-इसराईल मिस्र से अपने साथ लाए और फ़िलस्तीन में दफ़न किया। हाँ, अगर कोई बीमारी फैल जाती थी तो मुर्दों को जला देते थे। (आमोस 6:10) अरब में भी मुर्दों को दफ़न किया जाता था। प्राचीन हिन्दू धर्मग्रन्थों से भी ज्ञात होता है कि हिन्दुओं में भी मुर्दे को दफ़न करने की प्रथा थी। (दखें अथर्ववेद 18/2/50; शब्दों का जीवन, पृष्ठ-36; लेखक-भोलानाथ तिवारी)

क़ुरआन से भी यही सिद्ध होता है कि मुर्दे को दफ़न करना चाहिए –

«फिर उसे मृत्यु दी, फिर उसे क़ब्र में दफ़न कराया।» (सूरा–80, अ-ब-स, आयत–21)

और फ़रमाया –

«अधिक धन की इच्छा ने तुम्हें बहलाए रखा, यहाँ तक कि तुम क़ब्रिस्तानों में पहुँच गए।» (सूरा–102, अत-तकासुर, आयतें–1, 2)

क़ब्र वास्तव में आख़िरत (मृत्यु के बाद के जीवन) का पहला पड़ाव है। अगर कोई इस पड़ाव में सुरक्षित रह गया (अर्थात् क़ब्र की यातना से) तो उसके बाद की जो दशा है, वह आसान है। जैसा कि एक हदीस में आया है, जिसका तिरमिज़ी (2308) तथा इब्ने-माजा (4267) ने उल्लेख किया है।

इस्लाम से पहले और इस्लाम आने के बाद तथा आज भी शिर्क के जो बड़े-बड़े स्थान हैं उनमें एक क़ब्र भी है, जहाँ नादान लोग अल्लाह को छोड़कर क़ब्रवालों से प्रार्थना करते हैं। उनके सामने इस प्रकार झुकते हैं जैसे अल्लाह के सम्मुख झुका जाता है। कुछ लोग तो क़ब्र को सजदा भी करते हैं। ये सारे काम इस्लामी शिक्षाओं के पूर्णतः विरुद्ध हैं। इसलिए सहीह हदीसों में क़ब्र को पक्की बनाने से मना किया गया है। (सहीह मुस्लिम, 970)

एक दूसरी हदीस में आया है –

"जब किसी सदाचारी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती थी तो लोग उसकी क़ब्र पर मस्जिद बना लेते थे और उसमें उसकी मूर्ति रख देते थे, यही दुर्जन प्राणी हैं।" (बुख़ारी, 1341 तथा मुस्लिम, 528)

एक ओर जहाँ क़ब्रों को पक्की करने से मना किया गया है, वहीं दूसरी ओर क़ब्रों का अनादर करने से भी रोका गया है।

एक सहीह हदीस में आया है –

नबी (ﷺ) ने कहा,

"कोई व्यक्ति भड़कते हुए कोयले पर बैठ जाए यहाँ तक कि उसका वस्त्र जल जाए तो यह इससे उत्तम है कि किसी क़ब्र के ऊपर बैठे।" (मुस्लिम, 971)

एक दूसरी हदीस में आया है –

"न तो क़ब्रों पर बैठो और न उनकी ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ो।" (मुस्लिम, 972)

इसी प्रकार क़ब्रों के बीच जूता पहनकर चलने से भी मना किया गया है। (अबू दाऊद, 3230; नसई, 2048; इब्ने-माजा, 1568)

ऐसा इसलिए कि हम जिस प्रकार एक जीवित व्यक्ति का सम्मान करते हैं, उसी प्रकार हमें चाहिए कि मृतक का भी सम्मान करें। इसलिए उसकी हड्डियों को तोड़ने से भी मना किया गया है और क़ब्र को गहरा खोदने का हुक्म दिया गया है, ताकि कोई पशु किसी के शव को निकाल न सके। इस प्रकार इस्लाम ने एक ओर जहाँ जीवित व्यक्ति को सम्मान देने का आदेश दिया है, वहीं दूसरी ओर मृतक व्यक्ति का आदर करने का भी आदेश दिया है।

नबी (ﷺ) का आदेश है –

"बल्कि इस्लाम की शिक्षाओं में से एक यह भी है कि जब तुम्हारे बीच में से किसी की मृत्यु हो जाए तो उसके लिए दुआ करो, उसकी बुराइयाँ बयान करने में मत लग जाओ।" (अबू दाऊद, 4899)

क़ब्र दो प्रकार से खोदी जाती है, एक तरह की क़ब्र को 'लहद' कहते हैं और दूसरी तरह की क़ब्र को 'शिक़' (बग़ली) कहते हैं।

'लहद' उस क़ब्र को कहते हैं जो सीधी होती है जैसा कि नबी (ﷺ) की क़ब्र। इसमें शव को रखने के बाद पहले उसको तख़्तों या पत्थर की पटियों से बन्द कर देते हैं और फिर उसके ऊपर मिट्टी डाल दी जाती है। (मुस्लिम, 966)

'शिक़' (बग़ली) क़ब्र उन स्थानों पर खोदी जाती है जहाँ की मिट्टी कठोर होती है ताकि ऊपर से क़ब्र गिर न पड़े। जैसे मक्का में मिट्टी पथरीली है। वहाँ इसी प्रकार की क़ब्र खोदी जाती है। एक ही क़ब्र में एक से अधिक शवों को भी दफ़न किया जा सकता है। जैसा कि नबी (ﷺ) की आज्ञा से उहुद की लड़ाई में शहीद होनेवालों को दफ़न किया गया था।

उनमें से जो अधिक क़ुरआन पढ़ सकता था, पहले उसे रखा गया, उसके बाद उसको जो उससे कम पढ़ सकता था। (बुख़ारी, 1347)

इस प्रकार नबी (ﷺ) ने जीवन-मरण दोनों दशाओं में विद्वानों को उच्च श्रेणी में रखा।

❀ क़ब्र का अज़ाब

क़ब्र आख़िरत की पहली मंज़िल है। जो क़ब्र के अज़ाब से बच गया वह आख़िरत के अज़ाब से भी बच जाएगा और जो क़ब्र के अज़ाब से न बच सका वह आख़िरत के अज़ाब से भी नहीं बच सकेगा।

क़ब्र के इसी अज़ाब की ओर संकेत करते हुए क़ुरआन कहता है–

«अन्तत : जो चाल वे चल रहे थे, उसकी बुराइयों से अल्लाह ने उसे बचा लिया और फ़िरऔनियों को बुरी यातना ने आ घेरा ; अर्थात आग ने : जिसके सामने प्रात:काल तथा संध्या समय पेश किया जाता है। और जिस दिन क़ियामत आएगी कहा जाएगा : फ़िरऔन के लोगों को कठोर अज़ाब में दाख़िल कर दो।» (सूरा-40, अल-मोमिन, आयत-46)

एक दूसरी आयत में है –

«हम उन्हें दो बार अज़ाब देंगे, फिर वे बड़े अज़ाब की ओर फेर दिए जाएँगे।» (सूरा-9, अत-तौबा, आयत-101)

सूरा अल-अनआम में तो साफ़ साफ़ बता दिया गया है –

«काश कि तुम उन ज़ालिमों को देखते जो मृत्यु की कठिनाइयों में होते हैं और फ़रिश्ते उनकी जान निकालने के लिए हाथ बढ़ा-बढ़ाकर कहते हैं, लाओ निकालो अपनी जान, आज तुम्हें अपमानजनक अज़ाब दिया जाएगा इसके बदले कि तुम अल्लाह के सम्बन्ध में असत्य बातें करते थे, और उसकी आयतों के मुक़ाबले में अकड़ते थे।» (सूरा-6, अल-अनआम, आयत-93)

एक सहीह हदीस में आता है –

"जब मनुष्य को क़ब्र में दफ़न कर दिया जाता है और उसके लोग वहाँ से चले जाते हैं तो वह उनके जूतों की आवाज़ सुनता है। इतने में दो फ़रिश्ते आते हैं और उसको उठाकर बैठाते हैं और उससे प्रश्न करते हैं कि तुम इस व्यक्ति के विषय में क्या कहते थे? अर्थात् मुहम्मद (ﷺ) के विषय में।

तो ईमानवाला कहता है, 'मैं गवाही देता हूँ कि वे अल्लाह के बन्दे और उसके रसूल हैं।' तो फिर उससे कहा जाता है, 'तुम जहन्नम में अपना ठिकाना देखते लेकिन अल्लाह ने बदलकर तुम्हारा ठिकाना जन्नत में कर दिया, तो वह जन्नत और जहन्नम दोनों में अपना ठिकाना देखता है। और जब मुनाफ़िक़ तथा विधर्मी से मुहम्मद (ﷺ) के विषय में पूछा जाता है तो वह कहता है, 'मुझे नहीं मालूम, लोग ऐसा कहते थे।' तो उसे लोहे के हथौड़े से पीटा जाता है जिसकी चीख़ को मनुष्य और जिन्नों के अतिरिक्त सब सुनते हैं।" (बुख़ारी, 1374)

क्योंकि मनुष्य और जिन्न उसकी आवाज़ सुन लें तो संसार में जीवन बिताना कठिन हो जाए। इसलिए अल्लाह ने उनके सुनने को निषिद्ध कर दिया और क़ब्र के अज़ाब को ईमान-बिल-ग़ैब में सम्मिलित कर दिया है।

कारागार

कारागार को अरबी भाषा में सिज्न कहते हैं और प्रचलित भाषा में सिज्न क़ैद या जेल को कहते हैं। यह शब्द क़ुरआन में दो अवसरों पर प्रयुक्त हुआ है–

1. जब मूसा (عليه السلام) ने फ़िरऔन को तौहीद की दावत दी तो उसने धमकी देते हुए कहा –

«यदि तूने मेरे सिवा किसी और को इलाह (पूज्य) बनाया तो मैं तुझे क़ैदियों में सम्मिलित कर दूँगा।» (सूरा-26, अश-शुअरा, आयत-29)

2. यूसुफ़ (عليه السلام) के क़िस्से में बार-बार क़ैद का वर्णन आता है, जैसे मिस्री स्त्री ने कहा–

«उसका दण्ड यही है कि उसे क़ैद में डाल दिया जाए, अथवा अन्य कोई घोर यातना दी जाए।» (क़ुरआन, सूरा-12, यूसुफ़, आयत-25)

«अज़ीज़ की बीवी ने कहा, 'देख लिया ! यह है वह नौजवान जिसके बारे में तुम मुझपर बातें बनाती थीं। बेशक मैंने इसे रिझाने की कोशिश की मगर यह बच निकला। लेकिन अगर यह मेरा कहना न मानेगा तो अवश्य क़ैद किया जाएगा और बहुत अपमानित होगा।'» (क़ुरआन, सूरा-12, यूसुफ़, आयत-32)

यूसुफ़ (ﷺ) का कथन –

«उसने कहा, ऐ मेरे प्रभु! जिस बात की ओर ये सब (स्त्रियाँ) मुझे बुला रही हैं उसके मुक़ाबले में तो कारागार मुझे अधिक प्रिय है।» (क़ुरआन, सूरा-12, यूसुफ़, आयत-33)

«फिर उन सभी लक्षणों के देख लेने के बाद उन्हें यही उचित लगा कि यूसुफ़ को कुछ समय के लिए कारागार में रखें।» (क़ुरआन, सूरा-12, यूसुफ़, आयत-35)

यूसुफ़ (ﷺ) कारागार में लोगों को तौहीद (एकेश्वरवाद) की दावत देते रहे –

«ऐ मेरे कारागार के साथियो! क्या विभिन्न प्रकार के कई देवता श्रेष्ठ हैं अथवा सर्वशक्तिमान एक अल्लाह।» (क़ुरआन, सूरा-12 यूसुफ़, आयत-39)

इतिहास में सबसे प्रथम कारागार की कल्पना मिस्र में पाई जाती है।

नबी (ﷺ) के समय में अरब देश में कारागार तो नहीं होते थे परन्तु क़ातिल या क़र्ज़ लेकर वापस न करनेवाले को कुछ दिनों के लिए क़ैद में रखने का वर्णन मिलता है। (अबू दाऊद 3630, तिरमिज़ी 1417, नसई 4876)

फिर दूसरे ख़लीफ़ा उमर-बिन- ख़त्ताब ने मक्का में सफ़वान-बिन- उमय्या का घर ख़रीदकर उसको कारागार बना दिया।

इसी प्रकार उन्होंने मदीना में भी एक कारागार बनाया था जिसमें हुतय्या नामी एक कवि को क़ैद कर दिया था जो लोगों की निन्दा में कविताएँ कहता रहता था।

इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि उसकी इन निन्दनीय कविताओं से कोई सुरक्षित नहीं था। मुसलमानों के तीसरे ख़लीफ़ा उसमान-बिन-अफ़्फ़ान ने ज़ाबी-बिन-हतिस को क़ैद कर दिया था जो चोरी डकैती में बड़ा प्रसिद्ध था।

इस प्रकार इस्लामी राज्य में अपराधियों को क़ैद करने का तरीक़ा प्रचलित हो गया। ऐसा करना ज़रूरी भी था क्योंकि समाज को दुष्टों की बुराइयों से बचाने के लिए इसके अतिरिक्त कोई और साधन नहीं था। सभी मुस्लिम धर्मशास्त्री इस बात पर एकमत हैं कि कारागार का दण्ड अपराधियों को दिया जा सकता है।

काफ़िर

जो लोग काफ़िर का अर्थ नहीं जानते वे काफ़िर शब्द को एक गाली समझते हैं। इसकी वास्तविकता को जानने के लिए आवश्यक है कि हम इसके अर्थ को जानें।

काफ़िर शब्द कुफ़्र शब्द से बना है, जिसका अर्थ है – ढाँकना, छिपाना, इनकार करना। क्योंकि काफ़िर या विधर्मी अपनी प्रकृति को छिपाता है और उसका इनकार करता है इसलिए उसे काफ़िर कहा जाता है। हिन्दी में इसी को नास्तिक भी कहा जाता है।

एक सहीह हदीस में आया है –

"हर व्यक्ति अपनी प्रकृति पर पैदा किया जाता है, फिर उसके माता-पिता उसको ईसाई बना लेते हैं या यहूदी बना लेते हैं या मजूसी (मुशरिक) बना लेते हैं।" (बुख़ारी, 1359 तथा मुस्लिम, 2658)

यहाँ प्रकृति से अभिप्राय ऐकेश्वरवाद है जिसकी ओर इस्लाम बुलाता है। बल्कि इस्लाम ही वह प्रकृति है जिसपर प्रत्येक बच्चा पैदा होता है। फिर उसके माता-पिता जिस धर्म पर होते हैं उसको उसी पर डाल देते हैं। इसी लिए ईसाई का बच्चा ईसाई, और यहूदी का बच्चा यहूदी बन जाता है, क्योंकि उसको अपनी प्रकृति पर पलने-बढ़ने का अवसर नहीं मिल पाता, अर्थात् उसकी प्रकृति पर परदा पड़ जाता है।

कुफ़्र एक महारोग है, जिसकी ओर क़ुरआन ने विभिन्न शैली में संकेत किया है। इस्लाम-विरोधियों के लिए सांसारिक जीवन शोभायमान बना दिया गया है। क़ुरआन में है –

«जिन लोगों ने कुफ़्र किया, उनके लिए सांसारिक जीवन शोभायमान बना दिया गया, और वे ईमान लानेवालों पर हँसते हैं, जबकि वे लोग (अल्लाह) से डरते हैं। प्रलय के दिन वे उनसे ऊपर होंगे और अल्लाह जिसे चाहे बेहिसाब जीविका दे।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–212)

क़ुरआन ने कुफ़्र के विभिन्न कारणों का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। उनमें से एक ईर्ष्या भी है। पुरानी जातियों के अध्ययन से पता चलता है कि उन्होंने अपने नबियों का इनकार इसी ईर्ष्या के कारण किया था। यह बात भी स्पष्ट है कि अन्तिम नबी मुहम्मद (ﷺ) का इनकार भी उन्होंने ईर्ष्या के कारण ही किया। अन्यथा वे बहुत अच्छी तरह जानते और पहचानते थे कि हमारी किताबों में जिस अन्तिम नबी के आने की शुभ सूचना दी गई है वह यही है। क़ुरआन में है –

«इसपर उसकी जाति के सरदार जिन्होंने कुफ़्र किया, कहने लगे, "यह तो बस तुम्हारे जैसा एक व्यक्ति है, चाहता है कि तुमपर श्रेष्ठता प्राप्त करे। और यदि अल्लाह चाहता तो फ़रिश्ते भेजता, हमने तो अपने पूर्वजों से यह बात कभी नहीं सुनी।"» (सूरा–23, अल-मोमिनून, आयत–24)

इसलिए जब अल्लाह ने नबियों को उनके सुधार के लिए और अनको उनकी प्रकृति की पहचान कराने के लिए भेजा तो सबसे पहले इनकार करनेवाले यही नेता तथा सरदार होते थे। क़ुरैश के सरदार भी लोगों को क़ुरआन सुनने से रोकते थे कि कहीं उससे प्रभावित होकर ये लोग सुधर न जाएँ और हमारी सरदारी ख़तरे में न पड़ जाए। क़ुरआन में है –

«जिन लोगों ने कुफ़्र किया, उन्होंने कहा, "इस 'क़ुरआन' को सुनो ही मत और इसके बीच में शोर-गुल मचाओ, ताकि तुम प्रभावी रहो।"» (सूरा–41, हा-मीम अस-सजदा, आयत–26)

क़ुरआन में प्रयुक्त कुफ़्र तथा काफ़िर शब्द बहुत ही अर्थपूर्ण हैं। क़ुरआन में इन शब्दों का प्रयोग मोमिन तथा मुसलमानों के विपरीतार्थक शब्द के रूप में हुआ है, क्योंकि मोमिन या मुसलमान से अभिप्राय वह व्यक्ति है जो अल्लाह की आज्ञा का पालन करनेवाला होता है और काफ़िर या विधर्मी से अभिप्राय वह व्यक्ति है जो अल्लाह और उसके रसूल (ﷺ) की आज्ञा पालन करने से इनकार कर दे। इसलिए अगर देखा जाए तो सबसे पहला विधर्मी इब्लीस था, जिसे अल्लाह ने आदम को सजदा करने का आदेश दिया, परन्तु उसने सजदा करने से इनकार कर दिया और इस्लाम विरोधियों में हो गया। (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–34)

फिर अल्लाह समय-समय पर नबी भेजता रहा और उन नबियों का इनकार करनेवालों को काफ़िर कहा जाने लगा। जैसे नूह (عليه السلام) ने जब अपनी जाति को अल्लाह की ओर बुलाया तो उन्होंने उनकी बात मानने से इनकार कर दिया, जिसके कारण वे तूफ़ान में घिरकर तबाह और बरबाद हो गए। उस समय नूह (عليه السلام) ने अल्लाह से जो प्रार्थना की वह क़ुरआन में इस प्रकार बयान हुई है –

«नूह ने कहा, ऐ मेरे रब! तू धरती पर इन इस्लाम विरोधियों में से किसी बसनेवाले को न छोड़। यदि तू उन्हें छोड़ देगा तो वे तेरे बन्दों को पथभ्रष्ट कर देंगे और वे दुराचारियों और बड़े विधर्मियों (काफ़िरों) को ही जन्म देंगे।» (सूरा–71, नूह, आयतें–26,27)

इसी प्रकार सालेह (عليه السلام) की जाति समूद ने उनके उपदेश और आदेश का इनकार किया और उस ऊँटनी को, जिसे अल्लाह ने एक चिह्न बनाकर भेजा था, कूच काटकर मार डाला, तो उसका परिणाम यह हुआ –

«सुन लो! समूद ने अपने रब से कुफ़्र किया, तो वे (अल्लाह से) दूर कर दिए गए।» (क़ुरआन, सूरा–11, हूद, आयत–68)

इसी प्रकार ईसा (عليه السلام) ने जब अपना उपदेश बनी-इसराईल में देना शुरू किया तो आपने अनुभव किया कि कुछ लोग आप (عليه السلام) के उपदेश और आदेश का इनकार कर रहे हैं। क़ुरआन में है –

«फिर जब ईसा ने उनके कुफ़्र को भाँप लिया तो कहा, ''कौन है जो अल्लाह की ओर (बढ़ने में) मेरी सहायता करे।'' तो 'हवारियों' (ईसा के शिष्यों) ने कहा, ''हम अल्लाह के सहायक हैं। हम अल्लाह पर ईमान लाए और साक्षी रहो कि हम मुस्लिम हैं।''» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–52)

अर्थात् बनी-इसराईल के वे लोग, जो ईसा (عليه السلام) पर ईमान नहीं लाए, काफ़िर (विधर्मी, नास्तिक या इनकारी) कहलाए।

और अब विधर्मी उन लोगों को कहा जाता है जो नबी मुहम्मद (ﷺ) पर ईमान नहीं लाते, क्योंकि आप (ﷺ) सारे संसार के लिए नबी बनाकर भेजे गए हैं। आप (ﷺ) के पश्चात् अब प्रलय दिवस तक कोई और नबी नहीं आएगा, बल्कि ईसा (عليه السلام) प्रलय से पूर्व आसमान से वापस आएँगे तो नबी मुहम्मद (ﷺ) ही के धर्म पर चलेंगे।

एक सहीह हदीस में नबी (ﷺ) ने कहा –

''अगर मूसा भी अब जीवित होते तो मेरा ही अनुकरण करते।''

❁ काफ़िर के अधिकार :

काफ़िर या तो मुसलमानों के देश में होगा, या मुसलमान उस देश में होंगे जहाँ अधिकतर लोग ग़ैर मुस्लिम होंगे। दोनों दशाओं में काफ़िर की जान उसके धन और उसकी मान की रक्षा करना मुसलमानों पर अनिवार्य है। एक सहीह हदीस में आता है –

''जिसने किसी 'ज़िम्मी' (ग़ैर मुस्लिम जो मुस्लिम देश में रह रहा हो) को क़त्ल किया स्वर्ग उसके लिए हराम है।''

बल्कि क़ुरआन में प्रत्यक्ष रूप से बता दिया गया है –

«अल्लाह तुमको इससे नहीं रोकता कि तुम उन लोगों के साथ अच्छा व्यवहार करो, और उनके साथ न्याय करो जिन्होंने तुमसे धर्म के मामले में युद्ध नहीं किया, और न तुम्हें तुम्हारे अपने घरों से निकाला। निस्सन्देह अल्लाह न्याय करनेवालों को पसन्द करता है।» (सूरा–60, अल-मुम्तहिना, आयत–8)

इसलिए कि मुसलमान न तो ग़ैर- मुस्लिम के शत्रु हैं और न सारे ग़ैर- मुस्लिम मुसलमानों के शत्रु हैं। मुसलमानों का कर्त्तव्य है कि वे जिस देश में रहें उसके विकास की ओर पूरा ध्यान दें और बढ़-चढ़कर वहाँ की तरक़्क़ी में हिस्सा लें और सबसे बड़ी बात यह है कि मुसलमान ईशधर्म इस्लाम के संदेशवाहक हैं, अत: उनको चाहिए कि अपने व्यवहार से तथा अपनी ज़बान से वे इस्लाम का सहीह आदर्श पेश करें। क़ुरआन में है –

«तुम एक उत्तम समुदाय हो, तुमको लोगों के समक्ष लाया गया है। तुम भलाई का हुक्म देते हो, और बुराई से रोकते हो, और अल्लाह पर ईमान लाते हो।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–110)

क़ियामत

इसको प्रलय-दिवस भी कहा जा सकता है। सभी धर्मों में इसका किसी न किसी रूप में वर्णन हुआ है। अन्तिम ईशग्रंथ पवित्र क़ुरआन में तो क़ियामत (प्रलय-दिवस) का अत्यन्त विस्तृत वर्णन मिलता है। इसमें प्रलय-सम्बन्धी अनेकानेक लक्षणों और प्रतीकों की ओर संकेत किया गया है। प्रलय के सम्बन्ध में पवित्र क़ुरआन और हदीसों में पाए जानेवाले विवरणों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है –

प्रथम : क़ियामत की बड़ी-बड़ी निशानियाँ

1. रसूल मुहम्मद (ﷺ) का आना :

यह क़ियामत के निकट होने का सबसे बड़ा प्रमाण है। क़ुरआन में है –

«तो क्या अब इन्हें क़ियामत ही की प्रतीक्षा है कि वह उनके पास अचानक आ पड़े जबकि उसके लक्षण सामने आ चुके हैं। तो जब वह उनके पास आ जाएगी तो उन्हें होश में आने का समय कहाँ मिलेगा ?» (सूरा–47, मुहम्मद, आयत–18)

अतः मुहम्मद (ﷺ) अन्तिम नबी हैं। अब क़ियामत तक कोई दूसरा नबी नहीं आएगा। इसलिए आप (ﷺ) का आना क़ियामत के निकट होने का सबसे बड़ा प्रमाण है। एक सहीह हदीस में आया है कि नबी (ﷺ) ने कहा –

"क़ियामत और मैं दो उंगलियों के समान हैं जो बहुत ही निकट होती हैं।" (बुख़ारी, 4936 तथा मुस्लिम, 2950)

2. ईसा (عليه السلام) का धरती पर दोबारा वापस आना :

क़ुरआन में है –

«बल्कि उसे (ईसा को) अल्लाह ने अपनी ओर उठा लिया और अल्लाह प्रभुत्वशाली तथा तत्त्वदर्शी है और किताबवालों में कोई ऐसा न होगा जो उसकी मृत्यु से पूर्व उसपर 'ईमान' न लाए। और वह क़ियामत के दिन उनपर गवाह होगा।» (सूरा–4, अन-निसा, आयतें–158,159)

अर्थात् ईसा (عليه السلام) क़ियामत के निकट आसमान से वापस आएँगे। उस समय जितने अहले-किताब होंगे, वे सब उनके नबी होने पर ईमान लाएँगे।

3. याजूज-माजूज का निकलना :

क़ुरआन में है –

«यहाँ तक कि जब याजूज-माजूज खोल दिए जाएँगे और वे हर ऊँचे स्थान से दौड़ते चले आएँगे और जब सच्चा वचन (क़ियामत) निकट आ जाएगा, उस समय इस्लाम विरोधियों की आँखें फटी रह जाएँगी (और वे कह उठेंगे), ''हाय अफ़सोस, हम इस दुर्दशा से निश्चिन्त थे, बल्कि वास्तव में हम स्वयं ही अपराधी थे।''» (सूरा–21, अल-अंबिया, आयतें–96-97)

ये याजूज-माजूज कौन हैं? (देखिए : याजूज-माजूज)

4. दाब्बा :

अर्थ है पृथ्वी पर चलनेवाला। अल्लाह तआला क़ियामत से पूर्व एक ऐसा पशु निकालेगा जो लोगों से बातें करेगा। क़ुरआन में है –

«जब उनके विषय में (प्रकोप का) वचन सिद्ध हो जाएगा, हम धरती से उनके लिए एक पशु निकालेंगे, जो उनसे बातें करता होगा कि 'लोग हमारी आयतों पर विश्वास नहीं करते थे'।» (सूरा–27, अन-नम्ल, आयत–82)

5. आकाश का धुआँ-धुआँ हो जाना :

क़ुरआन में है –

«अच्छा तो तुम उस दिन की प्रतीक्षा करो, जब आकाश प्रत्यक्ष धुआँ लाएगा, वह लोगों को ढाँक लेगा। यह है दुखद यातना।» (सूरा–44, अद्-दुख़ान, आयतें–10,11)

सहीह हदीसों में क़ियामत से पूर्व की जो दस निशानियाँ बताई गई हैं उनमें से एक धुआँ भी है। (सहीह मुस्लिम, 2901)

लेकिन सहीह बुख़ारी की एक हदीस से पता चलता है कि जब नबी (ﷺ) ने मक्केवालों को शाप दिया तो वे अकालग्रस्त हो गए, जिसके कारण वे भूख से व्याकुल हो उठे। वे जब आकाश की ओर मुँह करके देखते तो पूरा आकाश धुएँ से भरा दिखाई देता। इस अवसर पर सूरा–41, अद्-दुख़ान की उपर्युक्त आयतें अवतरित हुईं। (बुख़ारी, 4823)

इसलिए अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद का कथन है कि क़ियामत की पाँच निशानियाँ तो घटित हो चुकी हैं, जिनमें एक धुआँ भी है। (बुख़ारी, 4820)

विद्वानों का विचार है कि दोनों बातें सही हो सकती हैं अर्थात् धुएँवाली घटना घटित हो चुकी है और फिर क़ियामत के निकट दोबारा भी घटित हो सकती है। शेष जिन पाँच निशानियों का वर्णन मुस्लिम की हदीस में आया है, वे ये हैं –

1. पूर्व के देशों में भूकम्प
2. पश्चिम के देशों में भूकम्प
3. अरब के रेगिस्तानों में भूकम्प
4. सूर्य का पश्चिम से निकलना
5. यमन के शहर 'अदन' से आग निकलना और लोगों को भगाते चले जाना।

द्वितीय, क़ियामत के समय विश्व की दशा

जब क़ियामत आएगी यह ब्रह्मांड तहस-नहस हो जाएगा। सूरज-चाँद आपस में टकरा जाएँ। पहाड़ रूई की तरह भागते फिरेंगे, कोई किसी का पूछनेवाला नहीं होगा। क़ुरआन में बड़े विस्तार के साथ इसका चित्र खींचा गया है।

❁ सूर्य-चाँद और तारों की दशा :

«जब सूर्य लपेट दिया जाएगा, जब तारे प्रकाशहीन हो जाएँगे, जब पर्वतों को चला दिया जाएगा, जब दस मास की गर्भवती ऊँटनियाँ छोड़ दी जाएँगी; जब जंगली जानवर घबराकर एकत्र हो जाएँगे; जब समुद्र उबल पड़ेंगे; जब लोगों को उनकी आत्माओं से जोड़ दिया जाएगा; जब जीवित गाड़ी गई कन्या से पूछा जाएगा कि उसकी हत्या किस गुनाह के कारण की गई; और जब कर्मपत्र खोल दिए जाएंगे; और जब आकाश की खाल उतार दी जाएगी; और जब नरक भड़काई जाएगी; और जब स्वर्ग निकट कर दिया जाएगा; तो उस दिन प्रत्येक मनुष्य जान लेगा, जो कुछ वह लेकर आया है।» (सूरा–81, अत-तकवीर, आयतें–1-14)

क़ुरआन में एक अन्य स्थान पर इसका वर्णन इस प्रकार हुआ है –

«वह पूछता है, "आख़िर क़ियामत का दिन कब आएगा?" (तो बता दो) जिस दिन आँखें पथरा जाएँगी तथा चाँद प्रकाशहीन हो जाएगा और सूरज तथा चाँद एकत्र कर दिए जाएँगे। उस दिन मनुष्य पुकार उठेगा, "आज शरण लेने का स्थान कहाँ है?" कुछ नहीं, उस दिन कोई शरणस्थल नहीं होगा। उस दिन तुम्हारे रब ही की ओर सबको जाकर ठहरना है। उस दिन मनुष्य को बता दिया जाएगा, जो कुछ उसने आगे बढ़ाया और पीछे टाला।» (सूरा–75, अल-क़ियामह, आयतें–6-13)

अर्थात् क़ियामत के दिन प्रत्येक व्यक्ति के कर्मों का हिसाब लिया जाएगा और प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्म के अनुसार स्वर्ग या नरक में डाल दिया जाएगा। क़ुरआन में है –

«जब आकाश फट पड़ेगा, और जब तारे बिखर पड़ेंगे, और जब समुद्र उबल पड़ेंगे, और जब क़ब्रों के अन्दर जो हैं उन्हें उठा दिया जाएगा, तब प्रत्येक व्यक्ति जान लेगा जो कुछ उसने आगे भेजा और जो कुछ उसने पीछे छोड़ा है। ऐ मनुष्य, किस चीज़ ने तुम्हें अपने उदार 'रब' के विषय में धोखे में डाल रखा है, जिसने तुझे पैदा किया, और तुझे ठीक-ठीक, और सन्तुलित बनाया। फिर जिस प्रकार के रूप में चाहा तुम्हें ढाल दिया, मगर तुम तो बदले के दिन (क़ियामत) को झुठलाते हो।» (सूरा–82, अल-इन्फ़ितार, आयतें–1-9)

❀ पृथ्वी और आकाश की दशा :

क़ुरआन में है –

«तथा उन लोगों ने अल्लाह का जैसा सम्मान करना चाहिए था, नहीं किया। क़ियामत के दिन सारी धरती उसकी मुट्ठी में होगी तथा आकाश उसके दाएँ हाथ में लिपटे हुए होंगे। वह हर प्रकार के शिर्क (साझेदारी) से पवित्र और उच्च है।» (सूरा–39, अज़-ज़ुमर, आयत–67)

«जब धरती भूकम्प से हिला दी जाएगी, और धरती अपने बोझ को बाहर निकाल फेंकेगी, और मनुष्य कहने लगेगा, "इसे क्या हो गया है?" उस दिन वह अपना वृत्तान्त सुनाएगी, इसलिए कि तुम्हारे 'रब' ने उसे आदेश दिया होगा।» (सूरा–99, अज़-ज़िलज़ाल, आयत–1-5)

❀ पर्वतों की दशा :

क़ुरआन में है –

«वह खड़खड़ा देनेवाली, क्या है वह खड़खड़ा देनेवाली? और तुम्हें क्या पता कि क्या है वह खड़खड़ा देनेवाली? जिस दिन लोग बिखरे हुए पतिंगों के सदृश हो जाएँगे, और पर्वत धुनके हुए रंग-बिरंगे ऊन जैसे हो जाएँगे।» (सूरा–101, अल-क़ारिया, आयतें–1-5)

इस प्रकार क़ुरआन में अत्यन्त विस्तारपूर्वक क़ियामत का वर्णन किया गया है, ताकि मनुष्य अपनी अवस्था को समझे और क़ियामत के लिए अपने आपको तैयार करे कि वह कर्मपत्र लेकर अल्लाह के पास जाएगा, ताकि उसको अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त हो।

पवित्र क़ुरआन में इस बात की चेतावनी दी गई है कि इनसान यह न समझ ले कि मरने के बाद वह सड़-गल जाएगा और फिर उसको दोबारा जीवित नहीं किया जाएगा बल्कि उसे अवश्य उठाया जाएगा, ताकि वह अपने कर्मों का हिसाब दे –

«नहीं! मैं सौगन्ध खाता हूँ क़ियामत के दिन की और नहीं! सौगन्ध खाता हूँ उस आत्मा की, जो मलामत करनेवाली है, क्या मनुष्य यह समझता है कि हम कदापि उसकी हड्डियों को एकत्र नहीं करेंगे। हाँ, अवश्य करेंगे? हम उसकी पोरों तक को ठीक-ठाक करने की सामर्थ्य रखते हैं।» (सूरा–75, अल-क़ियामह, आयतें–1-4)

अर्थात् अल्लाह सर्वशक्तिमान है। वह जो चाहे कर सकता है। इसलिए क़ियामत के दिन जो उंगलियाँ और शरीर के दूसरे भाग सड़-गल गए होंगे उनको दोबारा ठीक कर देगा, और उस दिन सभी मनुष्यों को उठा खड़ा करेगा।

कपूर

इसको अरबी में 'काफ़ूर' कहते हैं। यह एक सुगंधित वस्तु है। इसको किसी चीज़ में मिला दिया जाए तो उसकी सुगंध बढ़ जाती है। जन्नत में सदाचारियों को जो पेय पदार्थ मिलेगा, उसमें काफ़ूर मिला होगा। क़ुरआन में है –

«निस्संदेह सदाचारी लोग उस प्याले से पिएँगे, जिसमें कपूर मिला होगा। उस स्रोत का क्या कहना! जिसपर बैठकर अल्लाह के बन्दे पिएँगे, इस तरह कि उसे बहा-बहाकर (जहाँ चाहेंगे) ले जाएँगे।» (सूरा–76, अद्-दहर, आयतें–5-6)

यह कपूर दुनिया के कपूर से भिन्न होगा, अत्यन्त सुगन्धित, स्वादिष्ट, शीतल, आनन्ददायक तथा शान्तिप्रद होगा। इसे पीने से आत्मा संतुष्ट होगी। और फिर उसकी नहरें बहती होंगी, और उन नहरों को जहाँ चाहेंगे, बहाकर ले जाएँगे। वास्तव में जन्नत की वस्तुओं का हम ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगा सकते। वे हमारी कल्पनाओं की सीमा से भी बाहर की चीज़ें हैं। अल्लाह दुनिया की वस्तुओं का उदाहरण केवल क़ुरआन के भावों को स्पष्ट करने के लिए और हमें समझाने के लिए देता है।

क़र्ज़

क़र्ज़ अर्थात् उधार। क़ुरआन तथा सहीह हदीसों में ज़रूरतमन्द लोगों को क़र्ज़ देने की बड़ी महत्ता बताई गई है और इसको पुण्य-कार्य ठहराया गया है। क़ुरआन में अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने पर बहुत बल दिया गया है, यहाँ तक कि उस धन को अल्लाह अपने ज़िम्मे क़र्ज़ क़रार देता है –

«कौन है जो अल्लाह को अच्छा क़र्ज़ दे कि अल्लाह उसके लिए उसे कई गुना बढ़ा दे? अल्लाह ही तंगी भी देता है और कुशादगी भी प्रदान करता है और उसी की ओर तुम्हें लौटना है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–245)

यहाँ अल्लाह की राह में ख़र्च करने का अर्थ अल्लाह के दीन को स्थापित करने के कामों में ख़र्च करना तथा निर्धन और ज़रूरतमन्द लोगों की सहायता करना है।

क़ुरआन में एक दूसरी जगह है –

«कौन है जो अल्लाह को अच्छा क़र्ज़ दे कि अल्लाह उसके लिए उसे कई गुना बढ़ा दे, और उसके लिए बहुत ही अच्छा बदला है।» (सूरा–57, अल-हदीद, आयत–11)

इन आयतों में क़र्ज़ लेनेवाले के स्थान पर अल्लाह ने अपने आपको रखा है अर्थात् किसी निर्धन को क़र्ज़ देना ऐसा ही है जैसे अल्लाह को क़र्ज़ दिया जाए। इससे क़र्ज़ देने की महत्ता प्रकट होती है।

एक स्थान पर तो अल्लाह के मार्ग में ख़र्च करने का आदेश नमाज़ और ज़कात के तुरन्त बाद दिया गया है –

«नमाज़ क़ायम करो और ज़कात दो, और अल्लाह को अच्छा क़र्ज़ दो तथा जो पुण्य काम (इनके अतिरिक्त भी) तुम अपने लिए आगे भेजोगे, उसे अल्लाह के यहाँ अति उत्तम और प्रतिदान की दृष्टि से बहुत बढ़ा हुआ पाओगे। अल्लाह से क्षमा माँगते रहो, निस्संदेह अल्लाह क्षमा करनेवाला तथा कृपालु है।» (सूरा–73, अल-मुज़्ज़म्मिल, आयत–20)

वास्तव में किसी निर्धन को क़र्ज़ देना महापुण्य है, परन्तु क़र्ज़ पर ब्याज लेना महापाप है, क्योंकि क़ुरआन एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहता है, जहाँ धनी और निर्धन एक-दूसरे के सहायक और सहयोगी हों, न कि एक-दूसरे के शत्रु। भला उस समाज में पारस्परिक प्रेम कैसे पैदा हो सकता है जिसमें धनी निर्धन को चूस रहा हो? इसलिए मनुष्य के आत्म-सुधार के लिए आवश्यक है कि हम एक-दूसरे की सेवा करें, ताकि आपस में प्रेम-भाव बढ़े। इसी की ओर एक सहीह हदीस में नबी (ﷺ) ने फ़रमाया है –

"अल्लाह बन्दे की सहायता करता है, जब तक बन्दा अपने भाई की सहायता करता रहता है।" (मुस्नद अहमद, 2:274)

जहाँ क़र्ज़ देने की इतनी महत्ता बताई गई है वहीं क़र्ज़ लेनेवाले के लिए भी कुछ नियम बताए गए हैं –

1. क़र्ज़ के लेन-देन को लिख लेना चाहिए, ताकि किसी समय यह शुभ काम आपस में लड़ाई-झगड़े का कारण न बन जाए। क़ुरआन की सबसे बड़ी सूरा–2, अल-बक़रा में इस विषय पर विस्तृत वर्णन हुआ है। इन बातों को ध्यान में रखने पर किसी प्रकार की कठिनाई उत्पन्न होने की आशंका नहीं रहती है। क़ुरआन में इस विषय में कहा गया है –

«ऐ ईमान लानेवालो! जब तुम किसी नियत समय के लिए आपस में उधार का लेन-देन करो, तो उसे लिख लिया करो। चाहिए कि कोई लिखनेवाला तुम्हारे बीच इनसाफ़ के साथ लिख दे। किसी लिखनेवाले के लिए यह सही नहीं है कि जैसा कुछ अल्लाह ने उसे सिखाया है उसके अनुसार लिखने से इनकार करे, उसे लिख देना चाहिए, और (दस्तावेज़ का लेख) बोलकर वह लिखाए जिसपर हक़ आता है (अर्थात क़र्ज़ लेनेवाला)। और उस अल्लाह का, जो उसका 'रब' है, डर रखना चाहिए और उसमें कमी नहीं करनी चाहिए, और यदि वह व्यक्ति जिसपर हक़ आता है कम समझ या कमज़ोर हो, या बोलकर (दस्तावेज़) न लिखा सकता हो, तो चांहिए कि उसका सरपरस्त इनसाफ़ के साथ बोलकर लिखा दे। और अपने पुरुषों में से दो गवाहों की गवाही कर लो। और यदि दो पुरुष न हों तो एक पुरुष और दो स्त्रियाँ, जिन्हें तुम गवाह होने के लिए पसन्द करो, गवाह हो जाएँ, ताकि यदि एक ग़लती करे, तो दूसरी उसे याद दिला दे। और जब गवाहों से गवाही के लिए कहा जाए तो उन्हें इनकार नहीं करना चाहिए। और मामला छोटा हो या बड़ा, समय के निर्धारण के साथ उसे लिखने में आलस्य से काम न लो। यह अल्लाह की दृष्टि में अधिक न्यायसंगत बात है और यह गवाही अधिक ठीक रखनेवाला तरीक़ा है और इसमें तुम्हारे किसी सन्देह में न पड़ने की अधिक सम्भावना है। हाँ, यदि नक़द सौदा हो, तो उसके न लिखने में तुम्हारे लिए कोई दोष नहीं। और जब सौदा करो तो गवाह कर लिया करो, किसी लिखनेवाले को और किसी गवाह को हानि न पहुँचाई जाए। यदि ऐसा करोगे तो यह तुम्हारी बड़ी अवज्ञा होगी। अल्लाह का डर रखो। अल्लाह तुम्हें शिक्षा दे रहा है। और अल्लाह हर चीज़ को जानता है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–282)

इससे पहले की आयतों में ब्याज लेने की घोर निन्दा की गई है, बल्कि ब्याज लेनेवाले के लिए यहाँ तक कह दिया गया है कि अगर तुम ब्याज लेना नहीं छोड़ते हो तो फिर अल्लाह और उसके रसूल से युद्ध करने के लिए तैयार हो जाओ।

वास्तविकता यह है कि अल्लाह ने क़र्ज़ और क़र्ज़े-हस्ना पर बल इसलिए दिया है कि समाज को सूद और ब्याज की लानत से छुटकारा मिल सके, क्योंकि ब्याज के हराम होने की दशा में ग़रीब या ज़रूरतमन्द अपनी आवश्यकता क़र्ज़ के द्वारा ही पूरी कर सकता है और क़र्ज़ का लेन-देन एक ऐसा काम है कि यदि क़र्ज़ का भुगतान समय पर न किया जाए तो इसमें झगड़े की संभावना बनी रहती है। इसलिए क़र्ज़े-हस्ना पर और अधिक बल दिया गया है। इसके अतिरिक्त कुरआन और सहीह हदीसों में इसके विषय में विस्तार से बातें बता दी गई हैं, ताकि यह पुण्य काम झगड़े का कारण न बन जाए।

2. जहाँ क़र्ज़ देने को महापुण्य बताया गया है, वहीं क़र्ज़ लेकर निश्चित समय पर वापस न करने को महापाप की संज्ञा दी गई है। एक सहीह हदीस में आया है कि मोमिन की आत्मा (आकाश और

पृथ्वी के बीच) फँसी रहती है जब तक उसका क़र्ज़ न उतार दिया जाए। (तिरमिज़ी, 1078 तथा इब्ने-माजा, 2413)

अल्लाह के रसूल मुहम्मद (ﷺ) बहुत-सी दुआएँ किया करते थे। उनमें से एक दुआ यह भी थी –

"ऐ अल्लाह, हमारे ऊपर से क़र्ज़ उतार दे और निर्धनता से बचा।" (मुस्लिम, 2713)

इसी प्रकार सहीह मुस्लिम ही की एक दूसरी हदीस में आया है –

"अल्लाह के मार्ग में शहीद होनेवाले के सारे पाप मिट जाते हैं, सिवाय क़र्ज़ के।" (मुस्लिम, 1886)

नबी (ﷺ) ऐसे व्यक्ति की नमाज़े-जनाज़ा पढ़ाने से इनकार कर दिया करते थे, जिसपर दूसरों का क़र्ज़ हुआ करता था। (देखिए: बुख़ारी, 2298 तथा मुस्लिम, 1719)। हाँ, अगर उसके चुकाने की कोई ज़िम्मेदारी ले लेता तो आप (ﷺ) नमाज़े-जनाज़ा पढ़ा देते थे, क्योंकि क़र्ज़ लेकर फिर उसको वापस न करना यह क़र्ज़ देनेवाले पर एक प्रकार का अत्याचार है, जिसके कारण क़र्ज़ देनेवाला क़र्ज़ देने ही से रुक जाएगा, और निर्धनों की आवश्यकता पूरी नहीं हो सकेगी। इसलिए अगर क़र्ज़ देनेवाला कुछ कठोरता का व्याहार करे तो वह ऐसा कर सकता है। परन्तु उसके लिए भी नबी (ﷺ) की शिक्षा है कि नर्मी ही का व्यवहार करे, क्योंकि हो सकता है कि क़र्ज़ लेनेवाला किसी विवशता के कारण क़र्ज़ वापस न कर पा रहा हो। एक सहीह हदीस में आया है कि इब्ने-अबी-हदरद पर काब-बिन-मालिक का क़र्ज़ था। आपस में तकरार के कारण मस्जिद में स्वर ऊँचा हो गया। नबी (ﷺ) ने द्वार का पर्दा उठाकर काब-बिन-मालिक से कहा, "ऐ काब, आधा क़र्ज़ छोड़ दो।" काब ने इसको तुरन्त स्वीकार कर लिया। तब नबी (ﷺ) ने इब्ने-अबी हदरद से कहा, "जाओ, आधा क़र्ज़ वापस कर दो।" (बुख़ारी, 457 तथा मुस्लिम, 1558)

इसी प्रकार नबी (ﷺ) ने एक सहीह हदीस में फ़रमाया है –

"अल्लाह उस व्यक्ति पर दयालु हो, जो बेचने, ख़रीदने तथा क़र्ज़ की वापसी में नर्मी से काम ले।" (बुख़ारी, 2076)

इसी प्रकार की और बहुत सारी हदीसें आई हैं, जिनसे इस बात की पुष्टि होती है कि अल्लाह ने नबी (ﷺ) को रहमतुल्लिल-आलमीन (सारे संसार के लिए दया) बनाकर भेजा है।

इसलिए अगर क़र्ज़ लेनेवाला पूरा क़र्ज़ वापस न कर सके तो क़र्ज़ देनेवाले को चाहिए कि उसका कुछ क़र्ज़ माफ़ कर दे, क्योंकि क़र्ज़ देनेवाला आमतौर से लेनेवाले के मुक़ाबले में धनी होता है और क़र्ज़ लेनेवाले को चाहिए कि जल्द-से-जल्द क़र्ज़ चुकता करने का प्रयत्न करे।

जिस समाज का निर्माण इन कल्याणकारी एवं व्यावहारिक सिद्धांतों पर होगा, वह समाज मानव-जाति के लिए आदर्श बनेगा और इस्लाम इसी की शिक्षा देता है।

क़ज़फ़

क़ज़फ़ का अर्थ है पत्थर फेंकना, अर्थात् आरोप लगाना। इस्लामी पारिभाषा में किसी स्त्री पर व्यभिचार का आरोप लगाना 'क़ज़फ़' कहलाता है। यह आरोप झूठा भी हो सकता है और सच्चा भी।

झूठा आरोप (क़ज़फ़) सात महापापों में से एक है। नबी (ﷺ) ने फ़रमाया है कि सात महापाप ये हैं –

"अल्लाह का साझी ठहराना, जादू करना, किसी की हत्या करना, ब्याज खाना, अनाथ का धन खाना, युद्ध में पीठ दिखाकर भागना और ईमानवाली स्त्रियों पर झूठा आरोप लगाना।" (बुख़ारी, 2766 तथा मुस्लिम, 8)

क़ुरआन ने इसकी कठोर निन्दा की है –

«निस्संदेह जो लोग शरीफ़, पाकदामन, भोली-भाली ईमानवाली स्त्रियों पर तोहमत लगाते हैं उनपर दुनिया और आख़िरत में फिटकार है और उनके लिए अत्यन्त कठोर यातना है।» (सूरा–24, अन-नूर, आयत–23)

किसी पर झूठा आरोप (क़ज़फ़) लगाना हराम (वर्जित) है, जैसे किसी पर बिना उचित प्रमाण के आरोप लगाना। लेकिन कुछ दशाओं में यह सही बल्कि अनिवार्य होता है, जैसे कोई अपनी स्त्री को व्यभिचार करते देखे और उसे यह विश्वास हो जाए कि उसके यहाँ जो बच्चा पैदा हुआ है वह उसके वीर्य से नहीं है तो ज़ाहिर है ऐसे में औरत के बारे में व्यभिचार की बात कहना अनिवार्य हो जाएगा और यह इसलिए हुआ कि यह बच्चा उसकी सन्तान में समझा जाएगा जब कि वह उसके वीर्य से नहीं है।

कुछ दशाओं में क़ज़फ़ जायज़ होता है, अनिवार्य नहीं, जैसे कोई अपनी स्त्री को व्यभिचार करते तो देखे, परन्तु उसे विश्वास न हो कि जो बच्चा पैदा हुआ है वह उसका है या नहीं, ऐसी दशा में क़ज़फ़ जायज़ है, अनिवार्य नहीं।

❀ कज़फ़ करनेवाले को दंड :

कज़फ़ करनेवाले को निम्नलिखित दंड दिया जाएगा, जिसका वर्णन क़ुरआन में आया है –

«और जो लोग शरीफ़ एवं पाकदामन स्त्रियों पर तोहमत लगाएँ, फिर चार गवाह (साक्षी) प्रस्तुत न कर सकें तो उन्हें अस्सी कोड़े लगाओ तथा कभी भी उनकी गवाही स्वीकार न करो। ये लोग अवज्ञाकारी (मिथ्याचारी) हैं। हाँ, जो लोग उसके पश्चात् क्षमा माँगकर सुधार कर लें, तो अल्लाह क्षमा करनेवाला तथा दया करनेवाला है।» (सूरा–24, अन-नूर, आयत–4)

इस आयत में तीन प्रकार के दंड बताए गए हैं :

1. झूठा आरोप (क़ज़फ़) करनेवाले को अस्सी कोड़े लगाए जाएँगे।

2. उसकी गवाही कभी भी स्वीकार नहीं की जाएगी।

3. वह सदैव के लिए अवज्ञाकारी (मिथ्याचारी) समझा जाएगा।

अब अगर क़ज़फ़ करनेवाला पश्चात्ताप करके क्षमा माँग ले अर्थात् यह कहे कि मैंने जो कुछ कहा वह सब झूठ है, तो फिर उसकी गवाही स्वीकार योग्य हो सकती है। परन्तु वह पहले दंड से नहीं बच सकेगा। लेकिन इसके लिए आवश्यक है कि जिसपर आरोप लगाया गया है वह न्यायालय से दंड की याचना करे। परन्तु अगर आरोप लगानेवाला स्त्री का पति हो तो इसके बारे में नियम बदल जाएगा। (इसके लिए देखिए : 'लिआन')

अगर क़ज़फ़ के सम्बन्ध में इस्लामी विधान पर ध्यान से विचार किया जाए तो अनुभव होगा कि इस्लाम एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहता है जिसमें लोग एक-दूसरे पर झूठा आरोप लगाने से बचें, क्योंकि इस्लाम की प्रमुख शिक्षाओं में जान, माल, नस्ल, बौद्धिक सम्पदा तथा सतीत्व की रक्षा करना है। इसी कारण इस्लाम ने इन मर्यादाओं को तोड़नेवालों के लिए कठोर दंड की व्यवस्था की है।

क़िसस

यह शब्द 'क़िस्सा' का बहुवचन है।

क़ुरआन में स्थान-स्थान पर अतीतकाल की विभिन्न जातियों का वर्णन हुआ है। मक्का के इस्लाम-विरोधी उन जातियों के ऐतिहासिक वृत्तान्तों को पुरानी कथाएँ कहकर लोगों को क़ुरआन से विमुख करते और घृणा दिलाते थे, बल्कि यह भी कहते थे कि इससे अच्छी कहानियाँ तो वे हैं जो रूम और ईरान में पाई जाती हैं। इसलिए कुछ ऐसे मूर्ख भी थे, जो ईरान गए और वहाँ से इस्फ़न्दयार इत्यादि की कथाएँ और कहानियाँ लेकर आए। इन परिस्थितियों का वर्णन क़ुरआन में इस प्रकार हुआ है –

«लोगों में से कोई तो ऐसा भी है जो सौदा करता है बहलावे की बातों का, ताकि बिना ज्ञान के अल्लाह के मार्ग से भटका दे, और इन (आयतों) की हँसी उड़ाए। ऐसे लोगों के लिए अपमानित करनेवाली यातना है। जब उसे हमारी आयतें सुनाई जाती हैं तो वह बड़े गर्व के साथ मुँह मोड़ लेता है, मानो उसने इन्हें सुना ही नहीं, मानो उसके कानों में डाट है। अच्छा उसे एक दुखदायिनी यातना की सूचना दे दो।» (सूरा–31, लुक़मान, आयतें–6,7)

परन्तु उनको पता नहीं था या जान-बूझकर इस सत्य को छिपाते थे कि वास्तव में ये प्राचीन क़िस्से-कहानियाँ नहीं हैं, बल्कि उन जातियों ने अपने नबियों के साथ जो अन्याय किया और एकेश्वरवाद के स्थान पर अनेकेश्वरवाद को अपनाया, जिसके सुधार के लिए अल्लाह ने नबियों की

एक परम्परा की शुरुआत की थी ताकि वे सत्य मार्ग अपना लें और असत्य को त्याग दें, परन्तु जब उन्होंने ऐसा करने से इनकार कर दिया तो फिर वे अल्लाह की यातना में घिर गए। इसी बात की शिक्षा देने के लिए अल्लाह ने क़ुरआन में एक ही क़िस्से का विभिन्न प्रकार से वर्णन किया है, ताकि ये भटके हुए मनुष्य सत्य मार्ग पर आ जाएँ। इन पुरातन वृत्तान्तों के अध्ययन से स्पष्ट है कि प्रत्येक वृत्तान्त वास्तव में सत्य और असत्य में संघर्ष पर समाप्त होता है। इसमें एक ओर तो अल्लाह और उसके रसूल दिखाई देते हैं, जो लोगों को स्वर्ग की ओर बुला रहे हैं –

«अल्लाह तुम्हें सलामती के घर की ओर बुलाता है।» (सूरा–10, यूनुस, आयत–25)

तो दूसरी ओर शैतान और उसका दल दिखाई देता है, जो लोगों को नरक की ओर बुला रहा है अर्थात् सत्य और असत्य के बीच संघर्ष जारी रहता है, जिसमें सत्य विजयी होता है।

नुबूवत मिलने के बाद मक्का में दस वर्ष बिताकर जब नबी (ﷺ) मदीना चले आए तो केवल बारह वर्ष में पूरा अरब देश इस्लाम के अधीन हो गया और प्रत्येक घर में इस्लाम प्रवेश कर गया। नबी (ﷺ) के देहान्त के कुछ ही समय पश्चात् इस्लाम संसार के कोने-कोने में फैलने लगा।

यह बात भली-भाँति समझ में आ जाती है कि प्राचीन जातियों के क़िस्से- कहानियाँ वास्तव में उन लोगों की हिदायत के लिए हैं जो अब भी सत्य के मार्ग में रोड़ा अटकाते रहते हैं, और वे समझ बैठे हैं कि इस प्रकार इस्लाम का रास्ता रोका जा सकता है।

कुम्मल

देखें घुन का कीड़ा

क़स्र

यह क़ुरआन का विशिष्ट शब्द है। इसका अर्थ है कम करना।

क़ुरआन की परिभाषा में यात्रा की स्तिथि में फ़र्ज़ नमाज़ का चार रकअ़त की जगह दो रकअ़तें पढ़ना क़स्र कहलाता है। जैसे ज़ुहर, अस्र तथा इशा की चार-चार रकअ़तों के बदले दो-दो रकअ़तें पढ़ी जाएँ। परन्तु मग़रिब की तीन रकअ़त तथा फ़ज्र की दो रकअ़तों में क़स्र नहीं है।

यूँ तो क़ुरआन में इसका वर्णन केवल युद्ध के समय के लिए आया है –

«जब तुम धरती में यात्रा करो तो क़स्र (संक्षिप्त) नमाज़ पढ़ने में कोई दोष नहीं, यदि तुम्हें इस बात का भय हो कि विधर्मी लोग तुम्हें सताएँगे। निस्संदेह विधर्मी लोग तुम्हारे खुले शत्रु हैं।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–101)

फिर जब शान्ति स्थापित हो गई और युद्ध काल समाप्त हो गया तो कुछ सहाबा के दिल में आया कि अब क़स्र नमाज़ नहीं पढ़नी चाहिए। इसपर नबी (ﷺ) ने कहा –

"यह अल्लाह की देन है, इसे स्वीकार कर लो।" (सहीह मुस्लिम, 686)

अर्थात् अब शान्तिकाल में भी अगर तुम यात्रा में हो तो क़स्र पढ़ सकते हो।

क़स्र कितनी दूर की यात्रा पर किया जाएगा : नबी (ﷺ) की एक हदीस है जिसमें आप (ﷺ) ने फ़रमाया –

"कोई स्त्री जो अल्लाह तथा क़ियामत के दिन पर विश्वास करती हो बिना किसी महरम के एक दिन तथा एक रात का सफ़र अकेले न करे।" (बुख़ारी 1088 तथा मुस्लिम 1339)

एक दिन और एक रात के सफ़र को आप (ﷺ) ने सफ़र बताया है, जो ऊँट की चाल से 80 किलो मीटर के लगभग बनता है। अगर इससे कम हो तो उसपर सफ़र का हुक्म नहीं लगेगा।

❋ सफ़र की अवधि:

यह सफर कम से कम चार दिन का होना चाहिए। हाँ अगर किसी ने सफ़र की अवधि का पहले से निर्णय नहीं किया हो तो वह उस समय तक मुसाफ़िर कहलाएगा जब तक वापस न आए। इस पूरी अवधि में वह नमाज़ क़स्र करेगा। सफ़र की दशा में जहाँ क़स्र किया जा सकता है वहीं दो नमाज़ों को एक साथ मिलाकर भी पढ़ा जा सकता। अर्थात् ज़ुहर-अस्र एक साथ मग़रिब-इशा एक साथ और फ़ज्र की नमाज़ फ़ज्र के समय, जैसा कि नबी (ﷺ) ने 'तबूक' की जंग के अवसर पर किया था। (अबू दाऊद 1208 तथा तिर्मिज़ी 553)

कौआ

कौआ एक पक्षी है। इसे अपवित्र पक्षियों में गिना जाता है क्योंकि यह गन्दी और नापाक चीज़ें भी खाता है। इसका गोश्त खाना हराम (वर्जित) हैं परन्तु एक समय ऐसा भी आया, जब यह छोटा-सा पक्षी मनुष्य जाति के लिए शिक्षा का कारण बन गया।

इसका विवरण यह है कि आदम (عليه السلام) के दो पुत्र थे। एक का नाम 'हाबील' तथा दूसरे का नाम 'क़ाबील' था। दोनों ने अल्लाह के सम्मुख 'क़ुरबानी' की। 'हाबील' की भेंट को अल्लाह ने स्वीकार कर लिया, जिसपर 'क़ाबील' क्रोधित हो उठा और अपने भाई की हत्या कर बैठा। परन्तु हत्या करने के पश्चात् उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह अपने भाई की लाश का क्या करे? तब अल्लाह ने एक कौवे के द्वारा उसे शिक्षा दी, जिसका वर्णन क़ुरआन में आया है –

«तब अल्लाह ने एक कौआ भेजा, जो भूमि कुरेदने लगा, ताकि उसे दिखाए कि वह अपने भाई के शव को किस प्रकार छिपाए। वह कहने लगा हाय अफ़सोस! क्या मैं इस कौवे जैसा भी न हो सका कि अपने भाई के शव को छिपा देता? (अर्थात् दफ़न कर देता)। फिर वह लज्जित हो गया।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–31)

तौरात में भी क़ाबील की हत्या का वर्णन है, परन्तु क़ुरआन ने जिस विस्तार से इसका वर्णन किया है, तौरात में उसकी ओर केवल संकेत किया गया है। जैसे –

''तेरे भाई का लहू भूमि में से मेरी ओर चिल्लाकर मेरी दुहाई दे रहा है।'' (उत्पत्ति, 4:10)

इसमें संकेत किया गया है कि उसने अपने भाई को भूमि में गाड़ दिया। तभी से मुर्दे को धरती में दफ़नाने की परम्परा चली आ रही है। ताकि जिस मिट्टी से मनुष्य बनाया गया है उसी मिट्टी में मिल जाए और फिर प्रलय दिवस को उसी मिट्टी से उठाया जाए।

कुत्ता

यह एक गन्दा और आवारा पशु है जो आबादी में घूमता फिरता है और मुरदार जानवर तक खा लेता है। इसलिए आसमानी ग्रन्थों में इसे खाना हराम (वर्जित) ठहराया गया है।

कुत्ते के अन्दर कुछ ऐसी विशेषताएँ भी हैं, जो दूसरे पशुओं में नहीं पाई जातीं। जैसे : यह अपने स्वामी का बड़ा वफ़ादार होता है। इसलिए जब 'कहफ़वाले' पहाड़ की घाटी में छिपने चले गए तो उनके साथ उनका कुत्ता भी था, जैसा कि क़ुरआन में आया है –

«तुम (उन्हें देखकर) समझते कि वे जाग रहे हैं जबकि वे सो रहे होते। हम उन्हें दाएँ तथा बाएँ करवट दिलाते रहते, और उनका कुत्ता ड्योढ़ी पर अपनी दोनों भुजाएँ फैलाए हुए होता।» (सूरा–18, अल-कहफ़, आयत–18)

कहफ़वालों की संख्या के विषय में मतभेद हो गया तो लोग कहने लगे –

«कुछ लोग कहते हैं कि वे तीन थे, चौथा उनका कुत्ता था और कुछ लोग कहते हैं कि वे पाँच थे, छटा उनका कुत्ता था। यह बिना निशाना देखे पत्थर (अंधेरे में तीर) चलाना है। और कुछ लोग यह भी कहेंगे कि वे सात थे और आठवाँ उनका कुत्ता था।» (सूरा–18, अल-कहफ़, आयत–22)

कुत्ते की इसी विशेषता के कारण इस्लाम ने दो स्थितियों में उसका पालना उचित बताया है –

1. शिकार के लिए :

अगर उसको शिकार के लिए तैयार कर लिया गया हो अर्थात् उसे शिकार को अपने शिकारी स्वामी तक लाने की शिक्षा दी गई हो। क़ुरआन में है –

«वे तुमसे पूछते हैं कि उनके लिए कौन-कौन सी वस्तुएँ हलाल (वैध) की गई हैं? कह दो, "तुम्हारे लिए सारी अच्छी स्वच्छ चीज़ें हलाल की गई हैं और वह शिकार भी हलाल है, जिसको तुम्हारे सधाए हुए शिकारी जानवरों ने पकड़ा हो। जिन्हें तुम उसी प्रकार सिखाते हो जैसे अल्लाह ने तुम्हें सिखाया है। तो उन्होंने तुम्हारे लिए जो शिकार किया, उसे खाओ और उसपर अल्लाह का नाम लो।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–4)

शिकार के लिए सधाए जानेवालों में कुछ विद्वानों के निकट कुत्ता भी है। सधाए जाने का अर्थ है कि जब उसको शिकार पर छोड़ा जाए तो दौड़ पड़े और जब बुलाया जाए तो वापस आ जाए। ऐसे सिखाए हुए जानवर का शिकार दो दशाओं में हलाल है।

एक यह कि उसको छोड़ते हुए अल्लाह का नाम लिया गया हो। दूसरा यह कि वह शिकार को अपने स्वामी के पास लाए और स्वयं खाना आरम्भ न कर दे। अब अगर वह शिकार मर भी जाए तो उसका खाना हलाल है, क्योंकि उसके सम्बन्ध में नियम वही है जो 'ज़बीहा' के सम्बन्ध में है।

अदी-बिन-हातिम की हदीस में आया है –

"अगर तुमने सधाए हुए कुत्ते को अल्लाह के नाम के साथ शिकार करने के लिए छोड़ा, तो उसने जो शिकार किया उसको खाओ, चाहे वह मर ही क्यों न गया हो। हाँ, अगर शिकारी कुत्ते ने उसमें से कुछ खा लिया हो, तब मत खाओ, क्योंकि मुझे आशंका है कि उसने अपने लिए शिकार किया है। इसी प्रकार कोई और कुत्ता उसके साथ शिकार करने में सम्मिलित हो गया हो तब भी न खाओ।" (बुख़ारी, 5483 तथा मुस्लिम, 1929)

2. कुत्ते को पालतू पशुओं की रक्षा के लिए इस्तेमाल करना:

जैसाकि एक सहीह हदीस में आया है –

"जिसने कुत्ते को पशुओं की रक्षा तथा शिकार के अतिरिक्त किसी और कारण पाला तो उसके पुण्य कर्मों का प्रतिदिन दो 'क़ीरात' घट जाया करेगा।» (बुख़ारी, 5480 तथा मुस्लिम, 1574)

(क़ीरात वज़न करने का एक पैमाना है जो सोने के तीन गेहूँ के बराबर होता है)

एक दूसरी हदीस में यह भी आया है –

"और खेत की रखवाली के लिए।" (सहीह मुस्लिम)

घर की रखवाली के लिए भी कुत्ता पाला जा सकता है, मगर उसका घर के अन्दर आना-जाना नहीं होना चाहिए।

कुत्ते की एक बुरी आदत की ओर क़ुरआन में संकेत किया गया है, वह उसका लोभ तथा लोलुपता है। हर समय वह अपनी नाक से यह सूँघता फिरता है कि कहीं उसे कुछ खाने को मिल जाए। उसकी

दूसरी आदत यह है कि अगर आप उसे कुछ खाने को दें तब भी हाँफ़ता रहेगा और न दें तब भी हाँफ़ता रहेगा। कुत्ते की इस आदत से अल्लाह उस व्यक्ति की उपमा दे रहा है, जिसको अल्लाह ने ज्ञान दिया, संसार भर का धन दिया और लोगों में मान-मर्यादा दी। ऐसे व्यक्ति के लिए यह अनिवार्य था कि सत्य को पहचानता और उसको ग्रहण करता, परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। बल्कि धनाढ्यता, सम्पन्नता और ज्ञान के घमंड में अल्लाह से विद्रोह कर बैठा। उसकी मिसाल कुत्ते जैसी है, जिसे कुछ दो तब भी हाँफ़ता है और न दो तब भी ज़बान खोलकर हाँफ़ता है –

«उन्हें उस व्यक्ति का हाल पढ़कर सुनाओ, जिसे हमने अपनी आयतें (निशानियाँ) दी थीं, परन्तु वह उनसे निकल भागा। फिर शैतान उसके पीछे लग गया और वह गुमराहों में हो गया और यदि हम चाहते तो उन (आयतों) के द्वारा उसे उच्चता प्रदान कर देते, परन्तु वह तो धरती का हो रहा और अपनी इच्छाओं में घिर गया, तो उसकी मिसाल एक कुत्ते जैसी है। अगर उसपर दया करो तब भी वह हाँफ़े और न करो तब भी वह हाँफ़े। यही उदाहरण उन लोगों का है जिन्होंने हमारी आयतों को झुठलाया।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयतें–175-176)

अगर कुत्ते आबादी के लिए समस्या बन जाएँ, तो मनुष्यों की रक्षा के लिए उनको क़त्ल कर देना चाहिए, क्योंकि पागल कुत्तों की राल में विष आ जाता है और अगर वे किसी को काट लें तो उसकी मृत्यु हो सकती है। इस्लाम के ये सारे नियम मनुष्यों के लाभ और उनकी रक्षा के लिए बनाए गए हैं, समय-समय पर जिनके प्रमाण मिलते रहते हैं।

काफ़-हा-या-ऐन-सॉद

देखें अलिफ़-लाम-मीम ।

कीड़ा

हमने 'दाब्बा' का अनुवाद 'प्राणधारी' तथा जानवर किया है। परन्तु क़ुरआन की सूरा सबा में 'दाब्बा' का प्रयोग घुन के कीड़े (दीमक) के अर्थ में हुआ है–

«फिर जब हमने उस (सुलैमान (ﷺ)) पर मृत्यु का फ़ैसला कर दिया तो उसकी मृत्यु की सूचना (जिन्नों को) घुन के कीड़ों ने दी जो उनकी बैसाखी को खा रहे थे। जब (सुलैमान) गिर पड़ा तो जिन्नों को (उसकी मौत का) ज्ञान हुआ, यदि वे ग़ैब का ज्ञान रखते तो इस अपमान के प्रकोप में फंसे न रहते।» (सूरा–34, सबा, आयत–14)

(अधिक जानकारी के लिए सुलैमान (ﷺ) की कहानी देखिए।)

कुरबानी

कुरबानी एक प्रकार की उपासना है जो अल्लाह के लिए की जाती है। सबसे पहले इसका प्रयोग आदम के दो बेटों ने किया था जिसकी ओर क़ुरआन संकेत करता है–

«और इन्हें आदम के बेटों का हाल हक़ के साथ सुना दो, जब कि दोनों ने कुरबानी की, तो उनमें से एक की कुरबानी क़बूल हुई, दूसरे की क़बूल नहीं हुई।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–27)

प्राचीन समय में किसी की क़ुरबानी के स्वीकृत होने का अर्थ व्याख्याकारों ने यह बताया है कि आकाश से अग्नि आती और उसको जला देती।

बाइबल की उत्पत्ति नामक पुस्तक में इसका विस्तारपूर्वक वर्णन आता है, परन्तु उसमें इसके स्वीकार करने का तरीक़ा नहीं बताया है। (देखें, उत्पत्ति 4:1-7)

क़ुरआन में है –

«ये वही लोग हैं जिनका कहना है कि ''अल्लाह ने हमें ताकीद की है कि हम किसी रसूल पर ईमान न लाएँ, जब तक कि वह हमारे सामने ऐसी कुरबानी न पेश करे जिसे आग खा जाए।'' कहो, ''तुम्हारे पास मुझसे पहले कितने ही रसूल खुली निशानियाँ लेकर आ चुके हैं, और वे वह चीज़ भी लाए थे जिसके लिए तुम कह रहे हो। फिर यदि तुम सच्चे हो तो तुमने उन्हें क़त्ल क्यों किया ?''»

जहाँ तक क़ुरबानी के जानवर को आग में जलाने की रीति की बात है तो बाइबल इसकी पुष्टि करती है। बाइबल के अनुसार क़ुरबानी यहोवा के लिए एक सुखदायक सुगंधवाला हवन ठहरती है। (देखें, लैव्य-व्यवस्था 1:9)

परन्तु इस्लाम ने क़ुरबानी के जानवर को आग में जलाने की रीति को सदैव के लिए समाप्त कर दिया।

एक क़ुरबानी इबरहीम (عليه السلام) ने अपने इकलौते बेटे इसमाईल की की जिनके स्थान पर भेड़ ज़िबह हुई। जैसा कि क़ुरआन में आया है–

«और हमने उसे (इसमाईल को) एक बड़ी क़ुरबानी के बदले में छुड़ा लिया।»
(सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयत–107)

और फिर इसी क़ुरबानी की याद में नबी (ﷺ) ने हज के अवसर पर एक सौ ऊँटों की क़ुरबानी दी, और उनके मांस को लोगों में वितरित कर दिया। और अब क़ियामत तक मुसलमान इबराहीम (عليه السلام) के उस अनुपम बलिदान की याद में क़ुरबानी करते रहेंगे। अल्लाह ने बड़ी क़ुरबानी कहकर मुसलमानों

को एक प्रकार का पैग़ाम दिया है कि अगर तुम इबराहीम को पैग़म्बर मानते हो तो आवश्यकता पड़ने पर अपने प्राण तक को अल्लाह के मार्ग में समर्पण करने का साहस पैदा करो। परन्तु अब किसी के लिए उचित नहीं कि इबराहीम की तरह अपने बेटे को क़ुरबान करे, क्योंकि इबराहीम को अल्लाह ने स्वप्न में ऐसा करने का आदेश दिया था, और नबियों का स्वप्न सच्चा होता है।

कुरबानी से सम्बन्धित नियम

1. कुरबानी तीन प्रकार के जानवरों की की जाती है। ऊँट, गाय, बकरी आदि, जिनका वर्णन सूरा-22, अल-हज, आयत-34 में आया है।
2. एक बकरी की क़ुरबानी एक परिवार की ओर से की जा सकती है।
3. ऊँट और गाय में सात परिवार सम्मिलित हो सकते हैं।
4. कुरबानी करने का सही समय ईदुल-अज़हा की नमाज़ के बाद है। अगर किसी ने उससे पूर्व क़ुरबानी कर दी तो उसको दोबारा करनी पड़ेगी।
5. उत्तम है कि क़ुरबानी का गोश्त स्वयं भी खाए और दोस्तों तथा निर्धनों को भी दे, ताकि इस दिन कोई भूखा न रहे। (क़ुरआन,सूरा–22, अल-हज, आयत–28)
6. अगर कुछ मांस सुखाकर या फ्रिज़र में रखकर कुछ दिन बाद खाए तो भी दोष नहीं है।
7. जानवर मोटा होना चाहिए, स्वस्थ होना चाहिए, उसके नाक, कान, आदि न कटे हों और न ही सींघ टूटे हों, लंगड़ा न हो, अर्थात देखने में ठीक-ठाक लगता हो।
8. कुरबानी करने वाले को चाहिए कि ज़िल-हिज्जा का चाँद देखने के बाद अपने बाल न कटाए, नाख़ुन न तराशे, जब तक कि क़ुरबानी न कर ले।

ख़
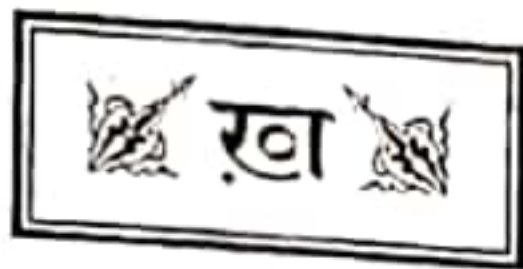
ख़च्चर

ख़च्चर घोड़े से छोटा और गधे से बड़ा जानवर है। यह घोड़े और गधे की मिश्रित संतान है। यह बड़ा सब्र करनेवाला, परन्तु ज़िद्दी जानवर है। इससे वहाँ काम लिया जा सकता है, जहाँ घोड़े काम नहीं कर सकते। जैसे पहाड़ों पर चढ़ना तथा पथरीली धरती पर चलना। इसलिए लेबनान की पहाड़ियों पर रहनेवाले लोग ख़च्चर का अधिक प्रयोग करते हैं।

प्राचीनकाल से ख़च्चर का प्रयोग सवारी के रूप में होता रहा है। बाइबल में इसे अन्य पशुओं के साथ रखने से मना किया गया है। (देखिए : बाइबल, लावी, 19:19)

बाइबल में, इस बात का उल्लेख मिलता है कि सुलैमान (عليه السلام) ख़च्चर की भेंट स्वीकार करते थे। (देखिए : राजा, 10:25)

क़ुरआन में ख़च्चर का वर्णन सवारी करनेवाले जानवरों के संदर्भ में केवल एक बार आया है–

«घोड़े और ख़च्चर और गधे भी पैदा किए, ताकि तुम उनपर सवार हो और वे तुम्हारी शोभा का कारण भी बनें, और वह उसे भी पैदा करता है जिसे तुम नहीं जानते।» (सूरा–16, अन-नह्ल, आयत–8)

ख़लीफ़ा

ख़लीफ़ा का अर्थ है प्रतिनिधि या वह व्यक्ति जो किसी दूसरे के बाद आए। अबू बक्र (رضي الله عنه) को इसलिए ख़लीफ़ा (उत्तराधिकारी अथवा प्रतिनिधि) कहते हैं कि वे नबी (ﷺ) के पश्चात् मुसलमानों के शासक बने। उनके बाद 'उमर' (رضي الله عنه) ख़लीफ़ा बने, और फिर इसी प्रकार यह ख़िलाफ़त चलती रही।

क़ुरआन में ख़लीफ़ा बनाने का उल्लेख है–

«ऐ दाऊद, हमने तुम्हें धरती में ख़लीफ़ा बनाया, ताकि तुम लोगों के बीच हक़ के साथ फ़ैसला करो।» (सूरा–38, सॉद, आयत–26)

दाऊद (عليه السلام) को ख़लीफ़ा इसलिए कहा गया, क्योंकि उनको 'शावल' के स्थान पर बनी-इसराईल का बादशाह बनाया गया था। इससे यह बात भी सिद्ध होती है कि बादशाह को भी ख़लीफ़ा कहा जा सकता है। अल्लाह ने आदम (عليه السلام) और उन्हीं के साथ उनकी सन्तान – अर्थात् मनुष्य जाति को भी ख़लीफ़ा बनाया–

«जब तुम्हारे 'रब' ने फ़रिश्तों से कहा कि मैं धरती में एक ख़लीफ़ा (सत्ताधारी) बनाने जा रहा हूँ तो उन्होंने कहा, ''क्या तू उसमें ऐसे लोगों को बसाएगा, जो उसमें बिगाड़ पैदा

करेंगे और रक्तपात करेंगे। जब कि हम तेरी प्रशंसा के साथ तेरा महिमागान करते हैं ?'' उसने कहा, ''जो मैं जानता हूँ, तुम नहीं जानते।''» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–30)

«वही है जिसने तुम्हें धरती में ख़लीफ़ा बनाया और तुममें से कुछ लोगों के दर्जे कुछ लोगों की अपेक्षा ऊँचे रखे, ताकि जो कुछ उसने तुम्हें दिया है उसमें वह तुम्हारी परीक्षा ले।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–165)

आदम और उनकी संतान से पूर्व पृथ्वी पर कौन लोग थे जिनके स्थान पर मनुष्यों को उनका ख़लीफ़ा बनाया गया? इस सम्बन्ध में एक विचार यह है कि वे जिन्न रहे होंगे, जिनकी शरारतों को देखकर फ़रिश्तों ने कहा था कि ये उपद्रव करेंगे। या यह भी हो सकता है कि अल्लाह ने यह बता दिया हो कि मैं पृथ्वी पर ऐसे लोगों को अपना ख़लीफ़ा बना रहा हूँ जिनको सोचने-समझने और फिर उसपर आचरण करने और कर्मशील होने की पूरी स्वतंत्रता होगी। इससे फ़रिश्तों ने यह अर्थ निकाला होगा कि फिर तो बड़ा उपद्रव फैलेगा।

इसी प्रकार नूह (ﷺ) के तूफ़ान के पश्चात् हूद की क़ौम को ख़लीफ़ा बनाया –

«याद करो जब अल्लाह ने नूह की जाति के स्थान पर तुम्हें (अभिप्राय है हूद (ﷺ) की क़ौम) ख़लीफ़ा बनाया, और शारीरिक दृष्टि से भी तुम्हें अधिक विशालता प्रदान की।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–69)

और इसी प्रकार 'आद' नामक जाति के पश्चात् उसके स्थान पर समूद की क़ौम को ख़लीफ़ा बनाया–

«वह समय याद करो जब अल्लाह ने 'आद' के बाद तुम्हें (समूद की क़ौम को) ख़लीफ़ा बनाया, और तुम्हें धरती में ठिकाना दिया।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–74)

इन आयतों में ख़लीफ़ा का अर्थ किसी एक जाति के स्थान पर किसी अन्य जाति को पृथ्वी पर आबाद करना है। जैसा कि यही अर्थ एक अन्य स्थान पर भी आया है–

«फिर उनके पश्चात् हमने पृथ्वी पर तुमको उनके स्थान पर बसाया, ताकि हम देखें तुम कैसे कार्य करते हो।» (सूरा–10, यूनुस, आयत–14)

इसी लिए हाकिम (शासक) को ख़लीफ़ा कहते हैं कि वह अपने से पहलेवाले शासक के स्थान पर नियुक्त किया जाता है। और यही अर्थ 'सल्फ़' (पहले के इस्लामी विद्वानों) के यहाँ अधिक प्रसिद्ध एवं प्रचलित है।

इब्ने-जरीर तबरी ने एक दूसरा अर्थ भी बताया है कि, यहाँ 'ख़लीफ़ा' का प्रयोग अल्लाह के संदेशों को पृथ्वी पर रहनेवाले मनुष्यों पर लागू करनेवाले प्रतिनिधि के लिए किया गया है। अर्थात् अल्लाह की ओर से उसके आदेशों को लागू करने के लिए आदम (ﷺ) और फिर नबी (ﷺ) की उम्मत को अल्लाह का ख़लीफ़ बनाया गया, परन्तु अधिक सही पहला अर्थ ही है, क्योंकि अगर दूसरा अर्थ सही होता तो फ़रिश्तों को आक्षेप करने की क्या आवश्यकता थी?

ख़ून या रक्त

इसका पीना हराम है। क़ुरआन में एक स्थान पर है–

«उसने तो तुमपर केवल मुर्दार और ख़ून और सूअर का मांस और जिसपर अल्लाह के अतिरिक्त किसी और का नाम लिया गया हो, हराम ठहराया है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–173)

इसलिए आवश्यक है कि पशु को ज़िब्ह किया जाए, ताकि उसका रक्त निकल जाए। इसलिए इलेक्ट्रिक शार्ट से मरे हुए या गले को एक ही बार में काट दिए जाने (झटका) से मरे हुए या स्वयं मरे हुए पशु का मांस खाना हराम है। क्योंकि इस प्रकार से मरने पर जानवर के शरीर में उसका रक्त रह जाता है।

ख़िज़्र

ख़िज़्र अल्लाह के एक भक्त और बन्दे का नाम है, जिनके विषय में आता है कि वे धरती के जिस भाग पर बैठ जाते, वह हरी-भरी होकर लहलहाने लगती। (देखिए : बुख़ारी, 3402)

इसलिए उनका नाम 'ख़िज़्र' पड़ गया, जिसका अर्थ है हरा रंग। क़ुरआन में तो आपका नाम नहीं आया है, परन्तु सूरा अल-कहफ़ में मूसा (عليه السلام) की कहानी में जिस बन्दे का वर्णन आया है, सहीह हदीसों में उन्हें 'ख़िज़्र' बताया गया है। इसलिए क़ुरआन में उनका जो वर्णन आया है सबसे पहले उसे बयान किया जाता है–

«याद करो जबकि मूसा ने अपने युवक सेवक से कहा, "जब तक कि मैं दो दरियाओं के संगम पर न पहुँच जाऊँ चलना नहीं छोड़ूंगा, चाहे मैं एक दीर्घ समय तक चलता रहूँ।" तो जब वे दोनों (दो दरियाओं के) संगम पर पहुँचे तो वे अपनी मछली से ग़ाफ़िल हो गए और उस (मछली) ने दरिया में सुरंग बनाकर अपनी राह ली। फिर जब वे आगे चले तो (मूसा ने) अपने युवक सेवक से कहा, "हमारे दिन का भोजन हमें लाओ। अपने इस सफ़र में तो हमें बड़ी थकावट पहुँची।" उसने कहा, "क्या आपने देखा, जब हम उस चट्टान के पास ठहरे हुए थे, तो मैं मछली भूल गया–और शैतान ही ने मुझे भुला दिया कि मैं उसका ज़िक्र करता – और उसने दरिया में अद्‌भुत रीति से अपनी राह ली। (मूसा ने) कहा, "यही है वह जगह जो हम चाहते थे।" फिर वे दोनों अपने पद-चिह्नों को देखते हुए वापस हुए। तो उन्होंने हमारे बन्दों में से एक बन्दे को पाया, जिसे हमने अपने पास से दयालुता प्रदान की थी, और जिसे हमने ज्ञान दिया था। मूसा ने उससे कहा, "क्या मैं आपके साथ रह सकता हूँ, ताकि आप मुझे उस सूझ-बूझ और भली बात की शिक्षा दें जिसकी शिक्षा आपको दी गई है?" उसने कहा, "आप मेरे साथ सब्र न कर सकेंगे। और जो चीज़ आपकी ज्ञान-परिधि से बाहर

हो उसपर आप सब्र कर भी कैसे सकते हैं?'' (मूसा ने) कहा, ''अल्लाह ने चाहा, तो आप मुझे धैर्यवान् पाएँगे और मैं आपके किसी आदेश को न टालूँगा।'' उसने कहा, ''अच्छा, यदि आप मेरे साथ चलते हैं, तो मुझसे कोई बात न पूछें, जब तक कि मैं स्वयं आपसे उसका ज़िक्र न करूँ।'' अब दोनों चले, यहाँ तक कि जब नौका में सवार हुए तो उसने उसमें दरार डाल दी। (मूसा ने) कहा, ''क्या आपने इसमें दरार डाल दी ताकि उस (नौका) के लोगों को डुबो दें? आपने तो एक अनोखी हरकत कर डाली।'' उसने कहा, ''क्या मैंने कहा नहीं था कि आप मेरे साथ सब्र न कर सकेंगे?'' (मूसा ने) कहा, ''जो भूल-चूक मुझसे हुई उसपर मुझे न पकड़िए, मेरे मामले में आप मुझपर सख़्ती न कीजिए।'' फिर वे दोनों चले, यहाँ तक कि वे एक लड़के से मिले, तो उसने लड़के को क़त्ल कर दिया। (मूसा ने) कहा, ''क्या आपने एक निर्दोष जीव की बिना किसी जीव (की हत्या) के बदले हत्या कर डाली? आपने बहुत ही बुरा कर्म किया।'' उसने कहा, ''क्या मैंने आपसे कहा नहीं था कि आप मेरे साथ सब्र न कर सकेंगे?'' (मूसा ने) कहा, ''इसके बाद यदि मैं आपसे कुछ पूछूँ, तो आप मुझे साथ न रखें। अब तो मेरी ओर से आप पूरी तरह उज़्र को पहुँच चुके हैं।'' फिर वे दोनों चले, यहाँ तक कि एक बस्ती के लोगों तक पहुँचे, तो वहाँ के लोगों से खाना माँगा, परन्तु उन्होंने इन्हें मेहमान बनाने से इनकार कर दिया। फिर वहाँ उन्हें एक दीवार मिली जो गिरा चाहती थी तो उसने उसे सीधा खड़ा कर दिया। (मूसा ने) कहा, ''यदि आप चाहते, तो इसकी मज़दूरी ले सकते थे।'' उसने कहा, ''यह मेरे और आपके बीच जुदाई है! मैं आपको उसकी वास्तविकता बताए दे रहा हूँ जिसपर आप सब्र न कर सके। वह जो नौका थी, वह मुहताजों की थी जो दरिया में काम-धन्धा करते थे, तो मैंने चाहा कि उसे ऐबदार कर दूँ, क्योंकि उनके परे एक सम्राट था जो प्रत्येक नौका को छीन लेता था। और रहा वह लड़का, तो उसके माता-पिता ईमानवाले थे। हम डरे कि वह (अपनी) सरकशी और कुफ़्र से उन्हें तंग करेगा। तो हमने चाहा कि उनका रब उन्हें इसके बदले और (बच्चा) प्रदान करे जो शुद्धता में इससे अच्छा हो और दयाशीलता से अधिक निकट हो। और रही यह दीवार, तो यह दो अनाथ लड़कों की है जो इस नगर में रहते हैं, और इस (दीवार) के नीचे उन (बच्चों) का एक ख़ज़ाना है, और उनका बाप नेक था, तो आपके रब ने चाहा कि वे (लड़के) अपनी युवावस्था को प्राप्त हो जाएँ और अपना ख़ज़ाना निकाल लें, यह तुम्हारे रब की दयालुता के कारण हुआ; और मैंने कुछ अपने अधिकार से नहीं किया। यह है वास्तविकता उस चीज़ की जिसपर आप सब्र न कर सके।» (सूरा-18, अल-कह्फ़। आयतें-60-82)

सहीह बुख़ारी में है कि एक बार मूसा (عليه السلام) बनी-इसराईल में भाषण देने के लिए खड़े हुए, तो एक व्यक्ति ने आप से पूछा, ''क्या आप अपने से किसी बड़े विद्वान को जानते हैं?'' मूसा (عليه السلام) ने उत्तर दिया, ''नहीं।'' अल्लाह ने मूसा को वह्य के द्वारा बताया तो मूसा (عليه السلام) ने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की, तो अल्लाह ने मछली को निशानी बनाकर बताया कि जहाँ वह समुद्र में चली

जाएगी, वहाँ मेरा भक्त मिलेगा और फिर ऐसा ही हुआ, जिस प्रकार क़ुरआन ने वर्णन किया है। (देखिए : सहीह बुख़ारी, 74)

सहीह बुख़ारी की एक दूसरी रिवायत में है कि जब मूसा की भेंट ख़िज़्र से हुई तो मूसा (ﷺ) ने प्रार्थना की कि मुझे भी कुछ सिखाएँ जो कुछ आपको सिखाया गया है। ख़िज़्र ने कहा, "तुम मेरा साथ नहीं दे सकोगे। ऐ मूसा! अल्लाह ने जो ज्ञान मुझे दिया है वह तुम्हारे पास नहीं है और अल्लाह ने जो ज्ञान तुम्हें दिया है वह मेरे पास नहीं है।" और फिर जब दोनों नौका में सवार हो गए तो क्या देखते हैं कि एक चिड़िया समुद्र में ठोंग मारकर एक क़तरा पानी अपनी चोंच में पकड़ लेती है। ख़िज़्र ने मूसा से कहा, "ऐ मूसा! मेरा और तुम्हारा ज्ञान अल्लाह के मुक़ाबले में ऐसे ही है जैसे चिड़िया का समुद्र से क़तरा लेना।" (सहीह बुख़ारी, 4725)

संक्षेप में यह कि अल्लाह ने ख़िज़्र को अन्तर्ज्ञान दिया था और मूसा (ﷺ) को ज़ाहिरी शरीअत का ज्ञान क्योंकि बनी-इसराईल के सुधार के लिए ज़ाहिरी शरीअत के ज्ञान ही से काम लिया जा सकता था, जबकि ख़िज़्र को अन्तर्ज्ञान देने का अर्थ था, मूसा (ﷺ) को यह बताना कि हर ज्ञानवाले से ऊँचा भी कोई ज्ञानवाला होता है। (देखिए : सूरा–12, यूसुफ़, आयत–76)

हमारा ज्ञान भी ख़िज़्र के विषय में इससे अधिक नहीं है। रही वे बातें जो इतिहास और तफ़सीर की किताबों में पाई जाती हैं वे सब ज़ईफ़ हैं, उनकी कोई सहीह सनद नहीं। हमारा अपना विश्वास यह है कि वे एक भक्त थे, नबी नहीं और न ही फ़रिश्ते और न वे अभी तक जीवित हैं, और न ही क़ियामत तक जीवित रहेंगे, बल्कि अल्लाह के बनाए हुए नियम के अनुसार उनका देहान्त हो चुका है। और जिस काम के लिए अल्लाह ने उन्हें भेजा था वह काम पूरा हो गया। इसलिए अब तक जीवित रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। क़ुरआन में एक स्थान पर आया है –

«**ऐ मुहम्मद! हमने तुमसे पहले किसी व्यक्ति को अमर नहीं रखा।**» (सूरा–21, अल-अंबिया, आयत–34)

ख़ुलअ़

जिस प्रकार तलाक़ के द्वारा कोई पति अपनी पत्नी से अलग हो सकता है, उसी प्रकार 'ख़ुलअ़' के द्वारा पत्नी अपने पती से अलग हो सकती है। और यह इस्लाम धर्म की विशेषताओं में से एक है कि उसने स्त्री-पुरुष दोनों को बराबर का दर्जा दिया है। क्योंकि जिस प्रकार कोई पति अपनी पत्नी के बुरे आचरण व व्यवहार से तंग आकर उसके साथ सुखी एवं मंगलमय जीवन व्यतीत नहीं कर सकता उसी प्रकार स्त्री भी अपने पति के दुराचार एवं दुर्व्यवहार से तंग आकर उसके साथ सुखमय जीवन व्यतीत नहीं कर सकती। इस्लाम ने स्त्री को भी अपने पति से अलग होने का अधिकार दिया है जिसको 'ख़ुलअ़' कहते हैं जैसा कि क़ुरआन में कहा गया है —

«यदि तुमको यह डर हो कि वे अल्लाह की सीमाओं का उल्लंघन करेंगे तो पत्नी स्वतंत्र होने के लिए कुछ देना चाहे तो इसमें उन दोनों के लिए कोई दोष नहीं है।»
(सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-229)

इस आयत में कुछ दे देने का अर्थ है महर और निकाह में खर्च किया गया धन। क्योंकि पुरुष ने स्त्री से विवाह के लिए "महर" दिया और वलीमा किया, इसलिए न्याय यही कहता है कि उसका धन उसको वापस कर दिया जाए और स्त्री अपने माता पिता के पास चली जाए, क्योंकि पुरुष को दूसरा विवाह करने के लिए फिर महर देना पड़ेगा।

विद्वानों ने इस बात को नापसन्द किया है कि स्त्री से महर से अधिक भी कुछ माँगा जाए।

क्योंकि एक सहीह हदीस में है –

"साबित-बिन-क़ैस की पत्नी नबी (ﷺ) के पास आई और कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल, मुझे साबित के धर्म तथा आचरण पर कोई आपत्ति नहीं परन्तु मुझे मुसलमान होते हुए भी कुफ़्र का भय है।" (अर्थात् मैं उसके साथ जीवन व्यतीत नहीं कर सकती) इसपर आप (ﷺ) ने फ़रमाया, "क्या तुम उसका बाग़ वापस कर सकती हो?" उसने कहा, "हाँ कर सकती हूँ।" तो आप (ﷺ) ने उसका बाग़ वापस करने का आदेश दिया, और दोनों को अलग कर दिया।"
(सहीह बुख़ारी 5273)

एक दूसरी हदीस में यह भी आया है कि बाग़ भी वापस कर सकती हूँ और कुछ अधिक धन भी दे सकती हूँ। परन्तु इस हदीस की सनद सहीह नहीं है।

अधिकतर विद्वानों का विचार है कि 'ख़ुलअ' तलाक़ नहीं बल्कि फ़स्ख़ है क्योंकि दोनों में निम्न भिन्नताएँ पाई जाती हैं –

1. तलाक़ में रुजू है, ख़ुलअ में नहीं
2. तलाक़ पाकी की उस दशा में दी जाती है जिसमें पति ने संभोग न किया हो। ख़ुलअ में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है।
3. तीन तलाक़ पूरी होने की दशा में अनिवार्य है कि किसी और से निकाह हो और फिर जब वह भी तलाक़ दे दे तो पहले पति के साथ दोबारा विवाह हो सकता है। ख़ुलअ में ऐसा नहीं है, औरत जब चाहे पहले पति से नये महर के साथ निकाह कर सकती है।

तलाक़ की इद्दत तीन माह है, जबकि ख़ुलअ की इद्दत एक माह है। (कुछ विद्वानों के मतानुसार ख़ुलअ की इद्दत भी वही है जो तलाक़ की है।) इन भिन्नताओं के कारण यही सही लगता है कि ख़ुलअ तलाक़ नहीं बल्कि 'फ़स्ख़' है।

ग
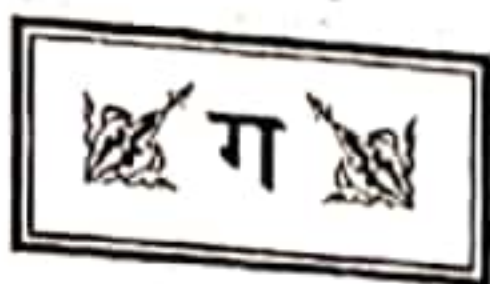
ग़नीमत

सत्य के लिए लड़ी जानेवाली लड़ाई में दुश्मनों का जो धन और माल इस्लामी सेना के क़ब्ज़े में आता है, उसे 'ग़नीमत' कहते हैं।

इस्लाम से पहले ईसाई, यहूदी आदि धर्मों में इसका प्रयोग वर्जित था। इसका सामान्य नियम यह था कि इसको एक स्थान पर इकट्ठा किया जाता था फिर आकाश से आग आती थी और इसको जला देती थी। (देखिए : बुख़ारी 3124 तथा मुस्लिम 1747)

परन्तु इस्लाम ने इसका प्रयोग हलाल कर दिया और इस सिलसिले में प्राचीन धर्म के सारे नियमों को निरस्त कर दिया। ग़नीमत के धन को जहाँ सेना में वितरित करने का आदेश दिया, वहीं इस धन में निर्धनों और अपाहिजों को भी सम्मिलित कर लिया। क़ुरआन में कहा गया है –

«जान लो कि जो वस्तु तुमने ग़नीमत के रूप में प्राप्त की है, उसका पाँचवाँ भाग अल्लाह, उसके रसूल और (रसूल के) नातेदारों तथा अनाथों, निर्धनों और मुसाफ़िरों का है।» (सूरा–8, अल-अनफ़ाल, आयत–41)

अर्थात् ग़नीमत के धन को पाँच भागों में बाँटा जाएगा। एक भाग अल्लाह, उसके रसूल इत्यादि को मिलेगा, जबकि चार भाग सेना में बाँट दिए जाएंगे। परन्तु वह धन जिसको 'फ़ै' कहते हैं अर्थात् जो विरोधी दल से युद्ध के बिना प्राप्त हो जाए वह केवल अल्लाह, रसूल, (रसूल के) नातेदार, अनाथ, निर्धन तथा मुसाफ़िरों में बाँट दिया जाएगा, ताकि यह धन धनवालों ही के बीच चक्कर न लगाता रहे। (क़ुरआन, सूरा–59, अल-हश्र, आयत–7)

अर्थात् इस धन में सेना का कोई हिस्सा नहीं है। अल्लाह और रसूल से अभिप्राय इस्लामी बैतुल-माल (राजकोष) है, जहाँ से निर्धनों और ज़रूरतमन्दों की मदद की जाती है। इस्लाम की अर्थव्यवस्था की यह एक झलक है कि धन केवल धनवानों ही के बीच चक्कर न लगाता रहे, बल्कि समाज के निर्धनों का भी इसमें हिस्सा है। अगर जीवन बिताने के लिए उनके पास सुविधाएँ नहीं हैं तो बैतुल-माल से उनको आवश्यकता के अनुसार दिया जाएगा।

गन्दना

गन्दना यह एक प्रकार की भाजी है, जो प्याज़ के पत्तों की तरह होती है और अरब देशों में इसको और खाने के साथ कच्चा खाते हैं। अरब देशों में यह बहुत उगता है जिसको "कुर्रात" कहते हैं। चूँकि इसको खाने के बाद खानेवाले के मुँह से दुर्गन्ध आती है इसलिए इसको खाने के बाद मस्जिद में जाने से मना किया गया है। इसका वर्णन क़ुरआन में तो नहीं है। परन्तु सहीह हदीसों में आता है।

गुलाम

गुलाम का प्रयोग क़ुरआन में केवल बालक के लिए हुआ है। (देखें: सूरा-3, आले-इमरान, आयत-40; सूरा-12, यूसुफ़, आयत-19; सूरा-18, अल-कहफ़, आयत-80; सूरा-19, मरियम, आयत-7)

गुलाम का बहुवचन है 'ग़िलमान'। जन्नत में रहनेवालों को जो नेमतें मिलेंगी उनमें 'ग़िलमान' भी होंगे। अर्थात् बालक उनकी सेवा करेंगे जो छिपाए हुए मोतियों की तरह चमक रहे होंगे। (दे. सूरा-52 अत-तूर, आयत-24)

हिन्दुस्तानी भाषाओं में गुलाम दास के अर्थ में प्रयोग होता है जिसको अरबी भाषा में 'अब्द' कहते हैं। और 'अब्द' का प्रयोग क़ुरआन तथा हदीसों में 'स्वतंत्र मनुष्य' तथा दास दोनों के लिए आया है। जैसे-

«निश्चय ही इसमें हर उस अब्द के लिए निशानी है जो (अल्लाह की ओर) रुजू करनेवाला है।» (सूरा-34, सबा, आयत-9)

नूह (ﷺ) के विषय में कहा गया-

«निश्चय ही वह एक कृतज्ञ अब्द (बन्दा) था।» (सूरा-17, बनी-इसराईल, आयत-3)

नबी (ﷺ) को भी अब्द अर्थात बन्दा कहा गया है।

«क्या तुमने देखा नहीं उस व्यक्ति को जो एक बन्दे को रोकता है जब वह नमाज़ पढ़ता है।» (सूरा-96, अल-अलक़, आयतें-9,10)

यह संकेत इस्लाम-विरोधियों के सरदार अबू-लहब की ओर है जो नबी (ﷺ) को नमाज़ पढ़ने से रोका करता था।

अब्द का दूसरा अर्थ दास या हिन्दुस्तानी भाषा में ग़ुलाम के हैं। जैसे कि क़ुरआन में है –

«ऐ ईमानवालो, मारे गए लोगों के बारे में क़िसास अनिवार्य ठहराया गया है। स्वतंत्र का बदला स्वतंत्र, अब्द (ग़ुलाम) का बदला अब्द (ग़ुलाम), स्त्री का बदला स्त्री......» (सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-178)

«मुशरिक पुरुषों से (अपनी स्त्रियों) का विवाह न करो जब तक कि वे ईमान न लाएँ। ईमानवाला एक अब्द एक मुशरिक पुरुष से अच्छा है चाहे वह तुम्हें कितना ही अच्छा लगे।» (सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-221)

अब यह प्रश्न उठता है कि ये ग़ुलाम कैसे बनाए जाते थे ?

प्राचीन इतिहास से पता चलता है कि ग़ुलाम बनाने का सर्वप्रथम चलन मसीह से शुरू हुआ है। इसके कुछ कारण इस प्रकार हैं –

1. निर्धन होने के कारण क़र्ज़ न चुकाने की दशा में अपने आपको कुछ समय के लिए बेच देना।
2. निर्धन होने के कारण अपनी पुत्री या पुत्र को सदैव के लिए बेच देना।

3. चोरी करते हुए पकड़े जाने की दशा में ग़ुलाम बना लेना।
4. युद्ध में पकड़े जाने वाले क़ैदियों को ग़ुलाम बना लेना और विजयी सेना में बाँट देना।
5. व्यापार करनेवाले निर्धन देश के लोगों को पकड़कर धनवान देश के लोगों के हाथ बेच देना जैसे अफ़्रीक़ा के वासियों को यूरोप तथा अमेरीका में बेचा गया। आज भी सिंगाल में वह जगह सुरक्षित है जहाँ यूरोप के जहाज़ खड़े होते थे और लोगों को बन्दूक़ की नोक पर भगाते हुए लाया जाता था और जब जहाज़ भर जाता तो उनको यूरोप के बाज़ारों में बेच दिया जाता था और वे सदैव के लिए ग़ुलाम बना लिए जाते थे।

इसमें प्रथम तीन तरीक़ों का वर्णन तो बाइबल में भी आया है, परन्तु इन कारणों से केवल ग़ैर-यहूदियों को ग़ुलाम बनाया जाता था, यहूदियों को नहीं। (देखें : बाइबल, लैव्यव्यवस्था 25:39-43 तथा निर्गमन 21:7, 22:1-3)

परन्तु इस्लाम ने इन तमाम नियमों को निरस्त कर दिया, किसी स्वतंत्र व्यक्ति को किसी भी कारण बेचने को महापाप बताया और भिन्न-भिन्न तरीक़ों से ग़ुलाम को स्वतंत्र करने की शिक्षा दी। उनमें से कुछ ये हैं जिनका वर्णन क़ुरआन और हदीसों में आया है–

1. अगर किसी ने ग़लती से किसी मुसलमान को क़त्ल कर दिया तो उसे चाहिए कि ख़ूनबिहा के साथ-साथ एक ग़ुलाम भी स्वतंत्र करे। (सूरा-4, अन-निसा, आयत-92)
2. ज़िहार का कफ़्फ़ारा यह है कि एक ग़ुलाम आज़ाद किया जाए। (सूरा-58, अल-मुजादला, आयत-3)
3. क़सम का कफ़्फ़ारा यह है कि एक ग़ुलाम आज़ाद करे। (सूरा-5, अल-माइदा, आयत-89)
4. पुण्य कर्म के लिए ग़ुलाम स्वतंत्र करना। क़ुरआन ने जिसको अक़बा (घाटी) का नाम दिया है, क्योंकि पुण्य कर्म मनोकामनाओं के विरुद्ध करना पड़ता है और शैतान विभिन्न प्रकार से संदेहों में डालता रहता है। (सूरा-90, अल-बलद, आयतें-11,12)
5. अगर सूर्य-ग्रहण या चाँद-ग्रहण लग जाए तो ग़ुलाम आज़ाद करना चाहिए जैसा कि नबी (ﷺ) किया करते थे। (सहीह बुख़ारी : 2519)
6. जो व्यक्ति किसी मुसलममान ग़ुलाम को स्वतंत्र करेगा अल्लाह उसके एक-एक अंग को नरक की आग से स्वतंत्र कर देगा। (बुख़ारी 2517 तथा मुस्लिम 1509)
7. जिसके पास कोई लौंडी (ग़ुलाम लड़की) हो और उसने उसे अच्छी तरह पाला फिर उससे विवाह कर लिया उसके लिए (अल्लाह के पास) दोहरा सवाब (पुण्य) है। (सहीह बुख़ारी 2544)
8. सहीह हदीसों में आता है कि अगर कोई व्यक्ति रमज़ान में अपनी पत्नी से दिन में संभोग कर ले तो उसे चाहिए कि एक ग़ुलाम स्वतंत्र करे। (दे. कफ़्फ़ारा)

अर्थात इस्लाम ने ग़ुलाम स्वतंत्र करने के असंख्य द्वार खोल दिए और ग़ुलाम बनाने के सारे द्वार बन्द कर दिए हैं। परन्तु केवल एक द्वार बाक़ी रखा और वह है युद्ध में पकड़े गए सैनिक। क्योंकि

इनको ग़ुलाम बना कर इनसे सेवा लेने के अतिरिक्त कोई और उचित मार्ग नहीं था। फिर इस्लाम ने उनको भी स्वतंत्र करने के असंख्य उपाय बताए हैं जिनमें से कुछ ये हैं –

1. मुस्लिम क़ैदी सैनिकों के बदले विधर्मी क़ैदी सैनिकों को स्वतंत्र करना।
2. फ़िदया (अर्थ दण्ड) लेकर स्वतंत्र करना।
3. अगर वे किसी प्रकार की शिक्षा दे सकते हों तो उसके बदले स्वतंत्र करना।
4. अगर शासक चाहे तो अपनी ओर से क्षमा कर दे।
5. अगर कोई स्वयं अपनी इच्छा से इस्लाम क़बूल कर ले तो उसे स्वतंत्र करना।

इसके पश्चात भी अगर कोई ग़ुलाम बना लिया जाए तो उसके साथ उत्तम व्यवहार करने की ताकीद की गई है, जो इस प्रकार है –

1. ग़ुलामों और लौंडियों का आपस में विवाह करा दिया जाए। (क़ुरआन, सूरा-24, अन-नूर, आयत-32)
2. प्राचीन काल की तरह लौंडियों को व्यभिचार पर मजबूर न किया जाए। (क़ुरआन, सूरा-24, अन-नूर, आयत-33)
3. अगर वे अपनी स्वतंत्रता के लिए लिखा-पढ़ी करना चाहें तो उनसे लिखा-पढ़ी की जाए। (क़ुरआन, सूरा-24, अन-नूर, आयत-33)
4. लौंडी और उसके बच्चों में जुदाई न डाली जाए। अगर किसी ने ऐसा किया तो क़ियामत के दिन अल्लाह उसके और उसके प्यारों में जुदाई डाल देगा। एक हदीस में आता है कि अली (ﷺ) ने दो ग़ुलाम भाइयों में से एक को बेच दिया, नबी ﷺ को पता चला तो आपने वापस करने का आदेश दिया। क्योंकि इस तरह दो भाइयों में जुदाई हो गई थी।
5. एक और सहीह हदीस में आता है कि अगर कोई ग़ुलाम खाना पकाए तो खाते समय उसको भी उस भोजन में शामिल कर लिया जाए, अगर भोजन बहुत कम है तो दो-चार लुक़्मे ही उसे दिए जाएँ। (दे. सहीह बुख़ारी 2557)

इसी प्रकार के और भी बहुत सारे अधिकार हैं जो इस्लाम में ग़ुलामों को दिए गए हैं जिनका कोई उदाहरण इतिहास में नहीं मिलता।

ग़ुस्ल

ग़ुस्ल का मतलब 'स्नान' है। क़ुरआन में स्नान करने का वर्णन केवल एक स्थान पर आया है –

«ऐ ईमानवालो! जब तुम नशे में हो तो नमाज़ के निकट न जाओ, जब तक कि तुम यह न जान लो कि क्या कह रहे हो और नापाकी की दशा में भी नमाज़ के निकट न जाओ, जब तक कि ग़ुस्ल न कर लो।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–43)

अर्थात् संभोग करने के पश्चात् या किसी अन्य नापाकी की हालत में ग़ुस्ल किए बिना नमाज़ पढ़ना वर्जित है। हाँ, अगर पानी न मिले तो 'तयम्मुम' किया जा सकता है। सहीह हदीसों से ज्ञात होता है कि जिन दशाओं में ग़ुस्ल करना अनिवार्य है, वे ये हैं –

1. वीर्य का किसी भी दशा में निकलना, चाहे संभोग करने की दशा में या स्वप्न दोष (एहतिलाम) की दशा में।
2. मर्द का लिंग स्त्री की योनि में समा जाने की दशा में, चाहे वीर्य निकले या न निकले। जैसा कि सहीह हदीस में आया है –

"मर्द का लिंग पत्नी की योनि से मिले तो ग़ुस्ल अनिवार्य हो जाता है।" (सहीह मुस्लिम, 349)

एक दूसरी हदीस में आया है कि वीर्य चाहे गिरे या न गिरे, ग़ुस्ल अनिवार्य है। (दखिए : सहीह मुस्लिम, 348)

3. जब स्त्री का मासिक धर्म ख़त्म हो तो उस पर स्नान करना और गन्दगी दूर करना अनिवार्य है। (देखिए : बुख़ारी, 306 तथा मुस्लिम, 262)

स्त्री स्नान किए बिना न तो क़ुरआन पढ़ सकती है, और न नमाज़ पढ़ सकती है। कुछ ग़ुस्ल अनिवार्य तो नहीं हैं, परन्तु उनका करना उत्तम है। जैसे :

- जुमे के दिन का ग़ुस्ल
- ईद के दिन का ग़ुस्ल
- एहराम पहनने से पहले का ग़ुस्ल
- मक्का में प्रवेश करते समय ग़ुस्ल,
- अरफ़ात में 'वुक़ूफ़' करने से पहले ग़ुस्ल
- इस्तिहाज़ा (अर्थात मासिक धर्म के बाद भी बीमारी के कारण ख़ून का आते रहना और इस हालत में नमाज़ अनिवार्य है) में हर नमाज़ के लिए ग़ुस्ल,
- इस्लाम धर्म स्वीकार करने से पहले ग़ुस्ल,
- बेहोशी से होश में आने के बाद ग़ुस्ल ।

ये वे अवसर या अवस्थाएं हैं जिनमें ग़ुस्ल करना उत्तम बताया गया है, परन्तु जुमे के दिन के ग़ुस्ल को कुछ विद्वानों ने अनिवार्य ठहराया है।

ग़ीबत

ग़ीबत का अर्थ किसी की पीठ पीछे निन्दा करना है। यह एक सामाजिक बिगाड़ और रोग है, जिसकी इस्लाम में कठोर शब्दों में निन्दा की गई है। क़ुरआन में है –

«ऐ ईमानवालो! बहुत-से गुमानों से बचा करो, क्योंकि कतिपय गुमान पाप होते हैं। और न टोह में पड़ो और न तुममें से कोई किसी की पीठ पीछे निन्दा करे क्या तुम में से

कोई इस बात को पसन्द करेगा कि अपने मरे हुए भाई का मांस खाए? इससे तुम्हें घृणा होगी और अल्लाह से डरते रहो। निश्चय ही अल्लाह तौबा स्वीकार करनेवाला और अत्यन्त दयावान है।» (सूरा–49, अल-हुजुरात, आयत–12)

किसी की पीठ पीछे निन्दा करने में वैसे ही मज़ा आता है जैसे मांस खाने में, परन्तु अगर वह मांस किसी मुर्दे का हो विशेष रूप से अपने सगे मरे हुए भाई का तो जो घृणा इस मांस के खाने में होगी वही घृणा पीठ पीछे निन्दा करने में होनी चाहिए। अब ग़ीबत करनेवाला स्वयं निणर्य कर ले कि क्या वह लोगों की पीठ पीछे निन्दा करके अपने मुर्दा भाई का मांस खाना पसन्द करेगा ? यहाँ पीठ पीछे निन्दा करने की उपमा मरे हुए भाई का मांस खाने से इस लिए दी गई कि जिस प्रकार मृत् भाई अपने बचाव में कुछ नहीं कर सकता उसी प्रकार, जिसकी ग़ीबत की जा रही है वह कुछ नहीं कर सकता।

यह तो उस अवस्था में है जब वह बुराई, जो पीठ पीछे की जा रही है, उसमें पाई जा रही हो और अगर उसकी निन्दा किसी ऐसी बुराई के बारे में की जाए जो उसमें पाई ही न जाती हो, तो यह तोहमत (मिथ्यारोपण) कहलाता है, जो ग़ीबत से भी अधिक बड़ा पाप है।

कुरआन जहाँ मनुष्यों को ग़ीबत जैसी सामाजिक बुराई से रोकता है, वहीं उन्हें पारस्परिक प्रेम-भावना की शिक्षा भी देता है–

«पुण्य कर्मों और तक़वा (ईश-परायणता) में एक-दूसरे की सहायता करते रहो, पाप तथा अत्याचार में सहायता न करो, अल्लाह से डरते रहो। निश्चय ही अल्लाह कठिन यातना देनेवाला है।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–2)

गुस्सा

क़ुरआन में इसके लिए 'ग़ज़ब' शब्द का प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ कोप, प्रकोप, क्रोध, फटकार इत्यादि होता है। इसमें अल्लाह का 'ग़ज़ब' भी शामिल है और मनुष्यों का भी। अल्लाह का 'ग़ज़ब' मनुष्यों के सुधार के लिए प्रयुक्त हुआ है। (देखिए : सूरा–48, अल-फ़तूह, आयत–60; सूरा–6, अल-मुम्तहिना, आयत–13; सूरा–24, अन-नूर, आयत–9)

परन्तु मनुष्यों में 'ग़ज़ब' का होना शिष्टाचार के विरुद्ध है।

इसलिए ऐसे मनुष्य की प्रशंसा की गई है, जो गुस्सा पी जाता हो। (कुरआन, सूरा–3, आले-इमरान, आयत–134)

सहीह हदीसों में बलवान उस व्यक्ति को कहा गया है जो गुस्से की दशा में अपने आप को संभाले तथा अपने ऊपर पूरा नियंत्रण रखे। (देखिए : बुख़ारी, 6114 तथा मुस्लिम, 2609)

इसी प्रकार एक सहीह हदीस में आया है कि एक व्यक्ति ने नबी (ﷺ.) से निवेदन किया कि मुझे कोई उपदेश दें ! आप (ﷺ) ने कहा, ''गुस्सा मत किया करो।'' उस व्यक्ति ने दोबारा निवेदन किया।

आप (ﷺ) ने उसे वही उपदेश दिया। इस प्रकार उसने कई बार निवेदन किया और आप (ﷺ) उसको यही कहते रहे कि ग़ुस्सा मत किया करो। (देखिए : सहीह बुख़ारी, 6116)

और स्वयं नबी (ﷺ) उस समय तक ग़ुस्सा नहीं करते थे, जब तक अल्लाह के हुक्म पर अमल किया जाता रहता था। परन्तु जब अल्लाह के हुक्म के विरुद्ध कोई काम किया जाता तो आप (ﷺ) क्रोधित हो जाते।

﴾ ग़द्दार ﴿

ग़द्दार का अर्थ है – विश्वासघाती। (देखिए : विश्वासघात)

﴾ गधा ﴿

गधा एक पालतू पशु है। इसमें दो बातें विशेष रूप से पाई जाती हैं –

एक तो यह कि इसपर जितना भी सामान लादा जाए यह सब्र करता है।

दूसरे यह कि यह अत्यन्त मन्द बुद्धिवाला पशु है। इसलिए इससे मन्द बुद्धि की उपमा दी जाती है।

गधे दो प्रकार के होते हैं–

1. जंगली : जंगली गधे को अरबी में 'वहशी' कहा जाता है। इसका मांस हलाल है।
2. घरेलू : घरेलू या पालतू गधे को हिमार कहते हैं। इसका मांस खाना मना है।

प्राचीनकाल से गधे का प्रयोग विभिन्न कामों में किया जाता रहा है। इबराहीम (عليه السلام) से लेकर नबी हज़रत मुहम्मद (ﷺ) तक सभी नबियों ने सवारी के रूप में इसका प्रयोग किया और आज भी बहुत सी जगहों पर लोग इसका प्रयोग सवारी के रूप में करते हैं।

इबराहीम (عليه السلام) ने गधे की सवारी की। (देखिए : बाइबल, उत्पत्ति, 22:3)

याक़ूब (عليه السلام) के पास बहुत-से गधे थे। (देखिए : बाइबल, उत्पत्ति, 30:43)

ईसा (عليه السلام) गधे पर सवार होकर यरूशलम में प्रविष्ट हुए। (देखिए : बाइबल, मत्ती, 21:5, 7)

नबी (ﷺ) भी गधे पर सवारी किया करते थे। आप (ﷺ) के गधे का नाम 'उफ़ैर' था। आप (ﷺ) के एक गधे का नाम 'याफ़ूर' था, जिसे 'फ़रवा- बिन-अम्र जुज़ामी' ने भेंट किया था। क़ुरआन में गधे का वर्णन सवारी के रूप में किया गया है–

«घोड़े और ख़च्चर और गधे भी पैदा किए, ताकि तुम उनपर सवार हो और वे तुम्हारी शोभा का कारण भी बनें। और वह उसे भी पैदा करता है जिसे तुम नहीं जानते।»
(सूरा–16, अन-नहल, आयत–8)

क़ुरआन में गधे का दूसरे अर्थों में प्रयोग–

1. उन लोगों की उपमा गधे से दी गई है जिनको 'तौरात' दी गई परन्तु उन्होंने उसपर अमल नहीं किया।

«जिन लोगों पर तौरात का बोझ डाला गया, किन्तु उन्होंने उसे न उठाया, उनकी मिसाल उस गधे की-सी है जो किताबें लादे हुए हो। बहुत ही बुरी मिसाल है उन लोगों की जिन्होंने अल्लाह की आयतों को झुठला दिया। अल्लाह ज़ालिमों को सीधा मार्ग नहीं दिखाया करता।» (देखिए: सूरा–62, अल-जुमुआ, आयत–5)

2. गधे की आवाज़ कि उपमा सबसे बुरी आवाज़ से दी गई है।

«अपनी आवाज़ धीमी रख। निस्संदेह आवाज़ों में सबसे बुरी आवाज़ गधों की आवाज़ होती है।» (देखिए: सूरा–31, लुक़मान, आयत–19)

अपराधियों को जब नसीहत की जाती है तो ऐसे बिदकते हैं जैसे गधा शेर को देखकर बिदकता है।

«आख़िर उन्हें क्या हुआ है कि वे नसीहत से घबराते हैं, मानो वे बिदके हुए गधे हैं जो शेर से (डरकर) भागे हैं।» (सूरा–74, अल-मुद्दस्सिर, आयतें–49-51)

गाय

गाय को अरबी में 'बक़रा' कहते हैं। यह संसार के अधिकतर भागों में पाई जाती है। इसकी क़ुरबानी सदैव दी जाती रही है। मूसा (ﷺ) के समय में भी दी जाती थी। परन्तु बाइबल ने एक ही दिन में गाय और उसके बच्चे को बलि देने से मना किया है। (देखिए: बाइबल, लैव्यव्यस्था, 22:27)

क़ुरआन में गाय का वर्णन चार अवसरों पर आया है।

1. मूसा (ﷺ) का अपनी जाति से गाय की क़ुरबानी माँगने का वर्णन। (देखिए: सूरा–2, अल-बक़रा, आयतें–67-71)
2. यहूदियों के लिए गाय की चर्बी हराम करने का वर्णन। (देखिए: सूरा–6, अल-अनआम, आयत–146)
3. यूसुफ़ (ﷺ) का राजा को गायों के स्वप्न में देखे जाने का स्वप्नफल बताए जाने का वर्णन। (देखिए सूरा–12, यूसुफ़, आयतें–43-49)
4. क़ुरबानी के पशुओं में गाय का वर्णन। (देखिए: सूरा–6, अल-अन आम, आयत–144)

ग़ैब

देखें परोक्ष

घ
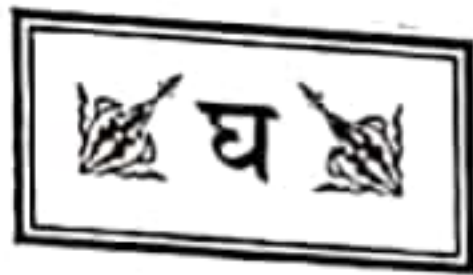
घमंड

'घमंड' अरबी शब्द 'तकब्बुर' का हिन्दी अनुवाद है। घमंड एक ऐसा रोग है कि यदि किसी मनुष्य को लग जाए तो वह सत्य और असत्य में अन्तर नहीं कर सकता। इसी लिए अल्लाह ऐसे व्यक्ति को पसन्द नहीं करता जो घमंडी हो। क़ुरआन में है –

«(अल्लाह को) ऐसे लोग प्रिय नहीं हैं जो अपने आपको बड़ा समझते हों (अर्थात घमंडी हों)।» (सूरा–16, अन-नह्ल, आयत–23)

इसके विरुद्ध उन लोगों की प्रशंसा की गई है जो घमंडी नहीं हैं। क़ुरआन में एक स्थान पर आया है–

«तुम ईमानवालों की शत्रुता में सब लोगों से बढ़कर 'यहूदियों' और बहुदेववादियों को पाओगे, और ईमानवालों के लिए मित्रता में सब से निकट उन लोगों को पाओगे जिन्होंने कहा कि हम नसारा (ईसाई) हैं। यह इस कारण कि उनमें बहुत-से धर्मज्ञाता और संसार त्यागी सन्त पाए जाते हैं, और इस कारण कि वे घमंड नहीं करते।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–82)

अर्थात् जब इनको सत्य बात बताई जाती है, तो स्वीकार कर लेते हैं।

परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि यहूदियों में कोई सत्य स्वीकार करनेवाला नहीं था। उनमें बहुत-से लोग ऐसे थे जिन्होंने सत्य को स्वीकार किया। यहूदियों के एक विद्वान अब्दुल्लाह-बिन-सलाम थे, जिनकी प्रशंसा करते हुए पवित्र क़ुरआन में कहा गया है –

«बनी-इसराईल में से एक गवाह ने ऐसी ही 'किताब' की गवाही भी दे दी। और वह ईमान भी ले आया और तुम घमंड में पड़े रह गए।» (सूरा–46, अल-अहक़ाफ़, आयत–10)

एक सहीह हदीस में आया है कि साद-बिन-अबी वक़्क़ास कहते हैं–

"मैंने धरती पर चलनेवाले किसी व्यक्ति के विषय में यह नहीं सुना कि नबी (ﷺ) उसको जन्नती कहते हों सिवाय अब्दुल्लाह-बिन-सलाम' के।"

इन्हीं के विषय में क़ुरआन की सूरा-43, अल-अहक़ाफ़ की यह आयत उतरी। (देखिए: बुख़ारी, 3812 तथा मुस्लिम, 2483)

अल्लाह ने घमंडियों की घोर निन्दा की है।

सबसे पहला घमंडी तो 'इबलीस' था, जिसको अल्लाह ने फ़रिश्तों के साथ आदम के आगे झुकने का आदेश दिया, उसके अतिरिक्त सब झुक गए। उसने झुकने से इनकार कर दिया और घमंड किया और वह अवज्ञाकारियों में हो गया। (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–34)

और इसी घमंड के कारण उसको अपमानित करके स्वर्ग से धरती पर भेज दिया गया। (क़ुरआन, सूरा-7, अल-आराफ़, आयत-13)

अर्थात् घमंड करनेवाले जहाँ भी होंगे अपमानित ही होंगे। उच्च श्रेणी के अधिकारी तो वे लोग होंगे जो अल्लाह के लिए विनम्रता ग्रहण करेंगे, जिसकी पुष्टि सहीह हदीस से भी होती है –

"जो अल्लाह के लिए विनम्रता ग्रहण करेगा अल्लाह उसको ऊँचा दरजा प्रदान करेगा।" (सहीह मुस्लिम, 2588)

एक दूसरी सहीह हदीस में इस प्रकार आया है –

"मेरी ओर यह 'वह्य' की गई कि लोगो! विनम्रता ग्रहण करो, एक-दूसरे पर घमंड न करो और न ही किसी पर अत्याचार करो।" (सहीह मुस्लिम, 2865)

क़ुरआन में बहुत से अहंकारियों का वर्णन हुआ है, उनमें से एक फ़िरऔन भी है –

«उसने और उसकी सेनाओं ने धरती में किसी हक़ के बिना घमंड किया और समझा कि उन्हें हमारी ओर पलटना न होगा, तो हमने उसे और उसकी सेनाओं को पकड़ा और उन्हें दरिया में फेंक दिया अब देख लो उन ज़ालिमों का कैसा परिणाम हुआ।» (सूरा-28, अल-क़सस, आयतें-39, 40)

क़ुरआन में तीन महा अहंकारियों का वर्णन एक ही आयत में आया है और फिर उनका अंजाम भी बताया गया है –

«क़ारून, फ़िरऔन और हामान को हमने विनष्ट किया। मूसा उनके पास प्रत्यक्ष प्रमाण लेकर आया, परन्तु उन्होंने धरती में घमंड किया, यद्यपि वे बाज़ी ले जानेवाले न थे। तो हर एक को हमने उसके अपने गुनाह के कारण पकड़ लिया। फिर उनमें से कुछ पर तो हमने पथराव करनेवाली हवा भेजी और उनमें से कुछ को एक प्रचण्ड धमाके ने आ लिया और उनमें से कुछ को हमने धरती में धँसा दिया और उनमें से कुछ को डुबो दिया। अल्लाह ऐसा न था कि उनपर ज़ुल्म करता, परन्तु वे स्वयं अपने-आप पर ज़ुल्म करते थे।» (सूरा-29, अल-अनकबूत, आयतें-39,40)

इसी प्रकार जब नबी मुहम्मद (ﷺ) ने अल्लाह की ओर लोगों को बुलाया तो क़ुरैश के सरदारों में से एक वलीद-बिन-मुग़ीरा भी था, जिसने घमंड किया। उस पर क़ुरआन की यह आयत अवतरित हुई –

«छोड़ दो मुझे और उसको जिसे मैंने अकेला पैदा किया।» (सूरा-74, अल-मुदस्सिर, आयत-11)

और फिर क़ुरआन में अल्लाह अपनी नेमतों को गिनाने के बाद कहता है –

«फिर पीठ फेरी और घमंड किया। फिर कहा – यह 'क़ुरआन' तो एक जादू है, जो होता चला आ रहा है। यह तो मनुष्य ही की वाणी है। मैं जल्द ही उसे सक़र (दहकती आग) में डाल दूँगा

और तुम्हें क्या मालूम यह 'सक़र' क्या है? यह वह आग है जो न तरस खाएगी और न छोड़ेगी। वह खाल को झुलसाकर काला कर देगी।» (सूरा–74, अल-मुद्दस्सिर आयतें–23-29)

यह वलीद-बिन-मुग़ीरा कुरैश के उन सरदारों में से एक था जो नबी (ﷺ) का मज़ाक़ उड़ाया करता था, जिसपर यह आयत उतरी –

«हँसी उड़ानेवालों के लिए हम तुम्हारी ओर से काफ़ी हैं।» (सूरा–15, अल-हिज्र, आयत–95)

फिर उसका देहान्त इस प्रकार हुआ कि एक तीर जो उसके पैर में दो वर्ष पूर्व लग गया था, उससे विष पैदा हो गया और फिर वह इस संसार से ऐसा गया कि उसको याद करनेवाला भी कोई नहीं रहा, बल्कि उसके कुछ पुत्रों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। उनमें से एक ख़ालिद-बिन-वलीद हैं, जो मुस्लिम सेना के नायक नियुक्त हुए और विभिन्न क्षेत्रों में जिहाद किया और इस्लाम के शत्रुओं को परास्त किया। इस्लामी इतिहास में उनका नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है जबकि उनके घमंडी पिता पर धिक्कार किया जाता है।

घुन का कीड़ा

क़ुरआन में घुन के कीड़े का वर्णन केवल एक बार हुआ है–

«फिर हमने उनपर तूफ़ान तथा टिड्डियाँ, जूएँ तथा मेंढक एवं रक्त, कितनी ही अलग-अलग निशानियाँ भेजीं, फिर उन्होंने अहंकार किया और वे अपराधी लोग थे।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–133)

अरबी भाषा में 'कुम्मल' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ अधिकांश भाष्यकारों ने एक छोटा-सा कीड़ा बताया है, जो ऊँट से चिमटा रहता है। इसलिए इसे जूँ कह दिया गया जबकि क़ुरआन के बयान के अनुसार जूँओं से अधिक सही अर्थ वह छोटा कीड़ा है, जो टिड्डियों से बची हुई वस्तुओं को खा जाता है। जब फ़िरऔन की जाति ने अल्लाह का इनकार कर दिया और नबी मूसा (عليه السلام) को झुठला दिया तो अल्लाह ने उनपर तूफ़ान, टिड्डियाँ, छोटे-छोटे कीड़े, मेंढक तथा रक्त भेज दिया, जिसके कारण उनका रहना दूभर हो गया।

घोड़ा

क़ुरआन में इसके लिए दो शब्दों का प्रयोग किया गया है –

एक शब्द जियाद है। क़ुरआन में सुलैमान (عليه السلام) के क़िस्से में वर्णित हुआ है –

«याद करो जब कि सन्ध्या समय उसके सामने सधे हुए द्रुतगामी घोड़े लाए गए तो उसने कहा, ''मैं अपने प्रभु की याद को छोड़कर माल के प्रेम में लग गया, यहाँ तक कि सूर्यास्त हो गया।» (सूरा–38, सॉद, आयत–31)

उसके पश्चात् सुलैमान (ﷺ) ने क्या किया इसके के लिए देखिए 'सुलैमान'।

दूसरा शब्द ख़ैल है, जिसका अर्थ भी घोड़ा ही होता है। यह शब्द क़ुरआन में एक से अधिक स्थानों पर विभिन्न उद्देश्य के लिए प्रयुक्त हुआ है।

कभी तो यह कहा गया कि –

«लोगों को चाहत की चीज़ों से प्रेम शोभायमान प्रतीत होता है कि वे स्त्रियाँ, बेटे, सोने-चाँदी और निशान लगे (चुने हुए) घोड़े हैं और चौपाए और खेती। यह सब सांसारिक जीवन की सामग्री है, और अल्लाह के पास ही अच्छा ठिकाना है।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–14)

और कहीं कहा गया है –

«और जहाँ तक तुम से हो सके उन शत्रुओं के लिए बल और बंधे घोड़े तैयार कर रखो।» (सूरा–8, अल-अनफ़ाल, आयत–60)

इसका कारण यह है कि प्राचीन-काल में घोड़ों पर बैठकर ही योद्धा युद्ध किया करते थे।

एक जगह यह कहा गया है –

«(अल्लाह) ने घोड़े, ख़च्चर तथा गधे भी पैदा किए ताकि तुम उनको यातायात के साधन के रूप में प्रयोग कर सको।» (सूरा–16, अन-नहल्, आयत–8)

क़ुरआन में घोड़ों की प्रशंसा करते हुए बताया गया –

«हाँफते हुए दौड़नेवाले घोड़ों की सौगन्ध, फिर टाप मारकर आग निकालनेवालों की सौगन्ध, फिर प्रातः काल धावा बोलनेवालों की सौगन्ध, तो उस समय धूल उड़ाते हैं, फिर उसी के साथ सेनाओं में जा घुसते हैं। निस्संदेह मनुष्य अपने रब का बड़ा अकृतज्ञ है।» (सूरा–100, अल-आदियात, आयत–1-6)

इन आयतों में घोड़े की सौगन्ध खा कर मनुष्य के अकृतज्ञ होने का उल्लेख किया गया है, अर्थात् घोड़े अपने स्वामी के कितने आज्ञाकारी हैं कि उसके एक संकेत पर शत्रु पर आक्रमण कर देते हैं, और अपने प्राण की परवाह नहीं करते। परन्तु मनुष्य कितना अकृतज्ञ है कि अपने 'रब' की एक नहीं सुनता जबकि उसके लिए अल्लाह ने पूरा संसार बनाया तथा उसे उसके अधीन कर दिया। अल्लाह ऐसे मनुष्यों को, जो अपने 'रब' की याद से बेपरवाह हो गए हैं, चेतावनी देते हुए क़ुरआन में कहता है –

«निस्सन्देह मनुष्य अपने 'रब' का बड़ा अकृतज्ञ है। और वह स्वयं इसपर साक्षी है। और वह धन के मोह में बड़ा ही दृढ़ है। तो क्या वह जानता नहीं, जब उगलवा दिया जाएगा जो कुछ क़ब्रों में है। और स्पष्ट अनावृत्त कर दिया जाएगा जो कुछ सीनों (दिलों) में है। निस्सन्देह उनका 'रब' उस दिन उनकी पूरी ख़बर रखता होगा।» (सूरा–100, अल-आदियात, आयतें–6-11)

च

चन्द्रमा

चन्द्रमा शब्द के लिए अरबी भाषा में तीन शब्द आते हैं। एक हिलाल जब वह नया निकलता है और खजूर की पुरानी टेढ़ी टहनी जैसा होता है, दूसरे बद्र जब वह चौदहवीं रात का पूरा चमकदार गोला होता है और तीसरे क़मर जो महीने के बाक़ी दिनों में होता है। क़ुरआन में 'क़मर' शब्द का प्रयोग हुआ है। यह आकाश में घूमता हुआ एक सुन्दर और प्रकाशमान गोला है। प्राचीन काल से लोग उसके साथ विभिन्न प्रकार की मनघड़त कथाओं को जोड़ते चले आ रहे हैं। इस्लाम धर्म के आने से पूर्व भी लोग उसकी उपासना करते थे, और उसे अपनी देवी-देवताओं में सम्मिलित किए हुए थे। क़ुरआन ने इन सारे अंधविश्वासों का खंडन किया और बताया कि अल्लाह ने सूर्य और चन्द्रमा को अधीन बना रखा है। प्रत्येक अपने एक निर्धारित कक्ष एवं समय की सीमा में चल रहे हैं।

«अल्लाह वह है जिसने आकाशों को बिना सहारे के ऊँचा बनाया जैसा कि तुम उन्हें देखते हो। फिर वह सिंहासन पर आसीन हुआ। उसने सूर्य और चन्द्रमा को काम पर लगाया। हर एक नियत समय तक के लिए चला जा रहा है। वह सारे काम का विधान कर रहा है; वह निशानियाँ खोल-खोलकर बयान करता है, ताकि तुम्हें अपने रब से मिलने का विश्वास हो।» (सूरा–13, अर-रअद, आयत–2)

ये वास्तव में हमारी ही सेवा में लगे हुए हैं क़ुरआन में है–

«सूर्य तथा चन्द्रमा को तुम्हारे लिए कार्यरत किया कि एक सुनिश्चित विधान के अधीन निरन्तर गतिशील हैं। और रात और दिन को भी तुम्हें लाभ पहुँचाने में लगा रखा है।» (सूरा–14, इबराहीम, आयत–33)

उपर्युक्त आयत में बताया गया है कि चन्द्रमा या सूर्य कोई देवी या देवता नहीं हैं बल्कि ये भी अल्लाह की इच्छानुसार एक आज्ञाकारी के रूप में कार्यरत हैं और ये इनसानों के सेवक हैं न कि उपास्य। फिर जब बात यह है तो न सूर्य को सजदा करो और न चन्द्रमा को, बल्कि उस अल्लाह को सजदा करो जिसने इन्हें पैदा किया।

«रात और दिन और सूर्य और चन्द्रमा उसकी निशानियों में से हैं। तुम न तो सूर्य को सजदा करो और न चन्द्रमा को, बल्कि अल्लाह को सजदा करो जिसने उन्हें पैदा किया, यदि तुम उसी की बन्दगी करनेवाले हो।» (सूरा–41, हा-मीम अस-सजदा, आयत–37)

«और एक निशानी उनके लिए रात है। हम उसपर से दिन को खींच लेते हैं। फिर क्या देखते हैं कि वे अँधेरे में रह गए। और सूर्य अपने नियत ठिकाने के लिए चला जा रहा है। यह बाँधा हुआ हिसाब है प्रभुत्वशाली, ज्ञानवान का। और रहा चन्द्रमा, तो उसकी नियति हमने मंज़िलों के क्रम में रखी, यहाँ तक कि वह फिर खजूर की पुरानी टेढ़ी टहनी के सदृश हो जाता है। न सूर्य ही से हो सकता है कि चाँद को जा पकड़े और न रात दिन से आगे बढ़ सकती है। सब एक-एक कक्षा में तैर रहे हैं।» (सूरा–36, या-सीन, आयत–37-40)

«वे तुमसे (प्रतिष्ठित) महीनों के विषय में पूछते हैं। कहो, ''वे तो लोगों के लिए और हज के लिए नियत हैं।'' और यह कोई ख़ूबी और नेकी नहीं है कि तुम घरों में उनके पीछे से आओ, बल्कि नेकी तो उसकी है जो (अल्लाह का) डर रखे। तुम घरों में उनके दरवाज़ों से आओ और अल्लाह से डरते रहो, ताकि तुम्हें सफलता प्राप्त हो।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–189)

क़ुरआन में इस नाम की एक सूरा भी है, जिसको सूरतुल-क़मर कहते हैं। उसमें कुल 55 आयतें हैं। इसकी पहली आयत में कहा गया है –

«क़ियामत की घड़ी निकट आ पहुँची है और चाँद फट गया»

एक चमत्कार की ओर संकेत है। वह यह कि मक्कावालों ने नबी (ﷺ) से किसी चमत्कार की माँग की तो नबी (ﷺ) ने चाँद की ओर संकेत किया जो दो भागों में विभाजित हो गया। (देखें बुख़ारी, 3636-3638 तथा मुस्लिम, 2800,2803)

इसकी पुष्टि भारत के प्राचीन इतिहास से भी होती है। जब मालाबार के राजा ने चाँद को दो भागों में बंटा देखा तो नबी (ﷺ) से मिलने के लिए निकल पड़ा परन्तु मदीना पहुंचने से पहले ही उसकी मृत्यु हो गई।

चोरी

यह एक सामाजिक रोग है। जब किसी समाज में चोरी की लत पड़ जाती है, तो उसको रोकना बहुत कठिन हो जाता है। इस्लाम ने व्यक्ति के जिन अधिकारों की रक्षा की है, उनमें से एक उसका धन भी है। इसलिए चोरी को महापाप बताया है। नबी (ﷺ) किसी व्यक्ति को बैअ़त (दीक्षित) करते समय जहाँ अल्लाह के साथ किसी को साक्षी न ठहराने का वचन लेते थे, वहीं चोरी न करने का भी वचन लेते थे। अब यह शासक पर निर्भर है कि देश को चोरी जैसे रोग से कैसे बचाए।

समाज को चोरी जैसी लानत से दूर रखने के लिए इस्लाम ने कुछ नियम बताए हैं। उनमें से एक यह है कि शासक को चाहिए कि समाज की व्यवस्था इस ढंग से करे कि समाज में कोई व्यक्ति भूखा न रहे, सबको उसकी अनिवार्य आवश्यकता के अनुसार जीविका मिलती रहे। जो कमाने से लाचार हों उनके लिए 'बैतुल-माल' (राजकोष) बनाए जाएँ, जहाँ से उनको मासिक वृत्ति मिलती रहे। फिर चोरी के बुरे प्रभाव से लोगों को आगाह किया जाता रहे, परन्तु लोग फिर भी चोरी करने से न रुकें, तो फिर उनपर वह दंड लागू किया जाए जो इस्लाम ने निर्धारित किया है।

इस प्रकार समाज इस रोग से सुरक्षित रह सकेगा।

❀ चोरी का दंड

क़ुरआन में कहा गया है –

«चोर चाहे स्त्री हो या पुरुष दोनों के हाथ काट दो। यह उसकी कमाई का बदला है और अल्लाह की ओर से शिक्षाप्रद दंड। अल्लाह प्रभुत्त्वशाली, तत्त्वदर्शी है।»
(सूरा–5, अल-माइदा, आयत–38)

अर्थात् अल्लाह जानता है कि उसने यह दंड क्यों निर्धारित किया है। एक हाथ काटने से पूरा समाज सुरक्षित हो सकता है। इस दंड को लागू करने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना अनिवार्य है –

1. धन किसी सुरक्षित स्थान से चुराया गया हो। अगर किसी खुले स्थान से चोरी कर ले तो उसपर यह दंड नहीं है।
2. चोरी के धन में कोई सन्देह न हो। अगर कोई संदेह पैदा हो जाए तो दंड लागू नहीं होगा। जैसे कोई नौकर अपने स्वामी का या पुत्र अपने पिता का धन चुरा ले, इसी प्रकार कोई पत्नी अपने पति का धन चुरा ले या कोई कुछ ऐसा धन चुरा ले जिसमें उसका भी हिस्सा हो, तो दंड लागू नहीं होगा। और अगर न्यायालय चाहे तो उसको ताज़ीर (हल्की सज़ा) दे सकता है।
3. चोरी करने का आरोप न्यायालय में सिद्ध किया जाए और वहीं से उसको यह दंड मिले, अगर ऐसा न हो सके तो यह दंड लागू नहीं होगा। अर्थात न्यायालय के अतिरिक्त किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी को कोई दंड दे सके।

इनके अतिरिक्त और भी कुछ शर्तें और सीमाएँ हैं जिनके पूरा होने के पश्चात् ही यह दंड दिया जा सकता है।

यहाँ एक आवश्यक बात की ओर ध्यान आकृष्ट कराना आवश्यक प्रतीत होता है कि इस्लाम ने बुराइयों को रोकने के लिए हर प्रकार के भेद-भाव पर प्रतिबन्ध लगाया है जिसकी पुष्टि एक सहीह हदीस से होती है। एक स्त्री ने चोरी का अपराध किया। क़ुरैश के लोगों ने उसामा-बिन-ज़ैद, जो कि

नबी (ﷺ) को बहुत प्रिय थे, से कहा कि तुम नबी (ﷺ) से इस विषय में बात करो। उन्होंने नबी (ﷺ) से इस औरत की सज़ा माफ़ कराने के विषय में बात की तो नबी (ﷺ) ने उसामा से कहा, "तुम अल्लाह के बताए दंड में भेद-भाव कर रहे हो।" फिर आप (ﷺ) ने लोगों को इकट्ठा किया और यह भाषण दिया, "ऐ लोगो, तुमसे पहले जो लोग थे, नष्ट हो गए, क्योंकि अगर कोई उच्च वर्ग का व्यक्ति चोरी करता था तो उसको छोड़ दिया जाता था और अगर कोई निम्न वर्ग का व्यक्ति चोरी करता था तो उसको दंड दिया जाता था। मैं अल्लाह की शपथ लेकर कहता हूँ कि अगर मेरी पुत्री फ़ातिमा भी चोरी करे तो मैं उसका भी हाथ काट दूँगा।" (बुख़ारी, 347 तथा मुस्लिम, 1688)

चींटी

चींटी कीड़े-मकोड़ों में एक बहुत ही दुर्बल प्राणी है। परन्तु प्राचीनकाल से ही इसकी बुद्धिमत्ता, मेहनत और चुस्ती की उपमा दी जाती है। इसकी बुद्धिमत्ता ही है कि जिन देशों में सर्दियों में बर्फ़ गिरती है और खाने-पीने की सारी सामग्री नष्ट हो जाती है, वहाँ चींटियाँ गर्मी में ही अपने खाने की वस्तुएँ इकट्ठा कर लेती हैं।

क़ुरआन में एक सूरा का नाम ही 'नम्ल' है जिसका अर्थ है चींटी। इसमें कुल तिरानवे आयतें हैं। यह मक्का में उतरी। इसकी अठारहवीं आयत में तीन बार 'नम्ल' का वर्णन आया है। और इससे भी चींटियों की हिक्मत और सूझ-बूझ का पता चलता है।

अल्लाह ने सुलैमान (عليه السلام) के लिए जिन्न, मनुष्य तथा पक्षियों को उनका अधीनस्थ बना दिया था। क़ुरआन में है–

«जब वे (सुलैमान عليه السلام) चींटियों के मैदान में पहुँचे तो एक चींटी ने कहा, "ऐ चींटियो! अपने-अपने बिलों में घुस जाओ, कहीं असावधानी के कारण सुलैमान तथा उनकी सेना तुम्हें रौंद न डाले।"» (सूरा–27, अन-नम्ल, आयत–18)

ज

ज़महरीर

सख़्त सर्दी को ज़महरीर कहते हैं। स्वर्गवासियों को जो नेमतें मिलेंगी उनमें से एक यह भी है कि उनको न सख़्त गर्मी व्याकुल करेगी न सख़्त सर्दी।

क़ुरआन में आया है–

«ये वहाँ ऊँचे आसनों पर तकिए लगाए हुए होंगे, वहाँ न सूर्य की गर्मी देखेंगे न जाड़े की कठोरता।» (सूरा-76, अद-दहर, आयत–13)

अर्थात स्वर्ग का मौसम वसंत जैसा होगा। इसलिए वे वहाँ से कहीं जाना नहीं चाहेंगे।

«जिनमें वे सदैव रहेंगे, वहाँ से कहीं और जाना नहीं चाहेंगे।» (सूरा-18, अल-कहफ़, आयत–108)

जन्नत

'जन्नत' क़ुरआन का एक विशेष शब्द है जिसको हिन्दी और संस्कृत भाषा में स्वर्ग कहते हैं। किन्तु 'जन्नत' के अर्थ का दूसरी भाषाओं में अनुवाद करने से उसका सम्पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता। क्योंकि जन्नत या स्वर्ग की विचारधारा धार्मिक ग्रन्थों में भी पाई जाती है, परन्तु जिस प्रकार क़ुरआन और सहीह हदीसों में इसके विषय में आया है वह किसी और ग्रन्थ में नहीं है।

इसलिए यहाँ संक्षेप में क़ुरआन तथा सहीह हदीसों के प्रकाश में कुछ विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। हमारा वास्तविक ठिकाना तो जन्नत ही है, क्योंकि सारे इन्सानों के बाप आदम (عليه السلام) तथा उनकी पत्नी हव्वा को वहीं से निकाला गया था। शैतान हमारे पीछे पड़ा रहता है, ताकि हमें जन्नत से वंचित कर दे, जैसे आदम (عليه السلام) और उनकी पत्नी को जन्नत से निकलवा दिया।

«और हमने कहा : ऐ आदम! तुम और तुम्हारी पत्नी दोनों 'जन्नत' में निवास करो, और जहाँ जी चाहे घूमो फिरो, और जो जी चाहे खाओ-पियो, परन्तु इस वृक्ष के निकट न जाना, नहीं तो तुम ज़ालिमों में हो जाओगे।» (क़ुरआन, सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-35)

लेकिन हुआ यह कि शैतान ने आदम (عليه السلام) को बहकाकर जन्नत से निकलवा दिया।

आदम (عليه السلام) की इस घटना से यही पता चलता है कि हमारा वास्तविक ठिकाना तो जन्नत ही है। जो सांसारिक जीवन में तो प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिए मृत्यु के पश्चात ही जन्नत मिल सकती है

क्योंकि सांसारिक जीवन की व्यवस्था कुछ इस प्रकार की है कि सारे भले कर्मों का फल इस संसार में नहीं मिलता। इसी प्रकार सारे बुरे कर्मों का दण्ड भी इस संसार में नहीं मिलता। इसलिए इस जीवन के पश्चात एक और जीवन होना चाहिए जहाँ सत्य और असत्य का निर्णय किया जा सके और सत्यकर्मियों को जन्नत में तथा अत्याचारियों तथा दुष्कर्मियों को जहन्नम में डाला जा सके। अगर ऐसा नहीं हुआ तो ईश्वर की बनाई हुई इस सृष्टि में घोर अत्याचार एवं अन्याय होगा। इसलिए जन्नत और जहन्नम का अवश्यंभावी होना हमारी प्रकृति के अनुसार है।

क़ुरआन ही अल्लाह की वह अन्तिम पुस्तक है जिसमें 'जन्नत' और 'जहन्नम' का विस्तारपूर्वक वर्णन आया है। यहाँ संक्षेप में जन्नत के विषय में वर्णन किया जाता है।

❋ जन्नत के नाम :

क़ुरआन में जन्नत के लिए विभिन्न नाम आए हैं और हर नाम की अपनी एक विशेषता है। जैसे :

'जन्नतुन्नईम' अर्थात वह जन्नत जो हर प्रकार की नेमतों से भरी हो। 'जन्नतुलखुल्द' अर्थात वह जन्नत जो सदा रहने के लिए हो और जिसमें जानेवाला सदैव रहे। इसी प्रकार 'जन्नते-अदन' है जिसका अर्थ भी सदा रहनेवाली है। 'दारुस्सलाम' जिसमें रहनेवाले को सदैव शान्ति और सलामती प्राप्त हो। इत्यादि।

❋ जन्नत की श्रेणियाँ :

जन्नत की लगभग एक सौ श्रेणियाँ हैं। उनमें सबसे उच्च श्रेणी को 'जन्नतुल-फ़िरदौस' कहते हैं। सहीह हदीस में आता है कि अगर तुम अल्लाह से जन्नत माँगो तो 'जन्नतुल-फ़िरदौस' माँगो। क्योंकि वह जन्नत की सबसे उच्च श्रेणी है। उसके ऊपर अल्लाह का अर्श है। (सहीह बुख़ारी, 2790)

❋ 'जन्नतुल-फ़िरदौस' में जानेवालों का वर्णन :

यूँ तो जन्नत में जाने के लिए अल्लाह पर विश्वास, उसके अन्तिम नबी पर विश्वास तथा उनके लाए हुए मार्ग-दर्शन पर विश्वास करना अनिवार्य है जैसा कि क़ुरआन में कहा गया है।

«निस्सन्देह जो लोग ईमान लाए और पुण्य कर्म किए उनका ठिकाना 'जन्नतुल-फ़िरदौस' है।» (सूरा-18, अल-कहफ़, आयत-107)

हो सकता है 'फ़िरदौस' और अंग्रेज़ी का शब्द पेराडाइज़ (Paradise) दोनों का मूल एक ही हो।

इन पुण्य कर्मों में छः का वर्णन क़ुरआन में आया है –

«निश्चय ही ईमानवाले सफल हो गए : 1. जो अपनी नमाज़ में (अल्लाह से) डरते रहते हैं। 2. और जो व्यर्थ बातों से बचते हैं। 3. और जो ज़कात पाबन्दी से अदा करते हैं। 4. और जो अपने

गुप्तांगों की रक्षा करते हैं (अर्थात् व्यभिचार से बचते हैं) सिवाय अपनी पत्नियों के और जो उनकी दासियाँ हैं तो इनसे भोग करना निन्दनीय नहीं है। परन्तु जो कोई इसके अतिरिक्त (व्यभिचार) करना चाहेगा तो ऐसे लोग सीमा से आगे बढ़नेवाले हैं। 5. और जो अपनी अमानतों और अपनी प्रतिज्ञा का ध्यान रखनेवाले हैं। 6. और जो अपनी नमाज़ों की रक्षा करते हैं; वही वारिस होनेवाले हैं। जो फ़िरदौस की विरासत पाएँगे। वे उसमें सदैव रहेंगे।» (सूरा-23, अल-मोमिनून, आयतें-1-11)

❁ स्वर्गवासियों की कुछ विशेषताएँ :

यूँ तो स्वर्ग में जाने के लिए अल्लाह, उसके रसूल तथा उसके लाए हुए विधान पर ईमान लाना अनिवार्य है। इस्लाम धर्म आ जाने के बाद अब उसपर पूर्ण ईमान के बिना कोई स्वर्ग में नहीं जा सकता। जो लोग इस्लाम के बताए हुए मार्ग पर चलेंगे वही जन्नत के पात्र होंगे। क़ुरआन में ऐसे लोगों के जीवन की विशेषताओं और उनके कर्मों का उल्लेख विभिन्न स्थानों पर किया गया है। उनमें से कुछ का वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

क़ुरआन की एक सूरा में स्वर्गवासियों के छः पुण्य कर्म बताए गए हैं –

«और अगर कोई अश्लील कार्य कर बैठे, या अपने ऊपर कोई अत्याचार कर बैठे, तो अल्लाह को स्मरण करने लगते हैं और उससे अपने गुनाहों की क्षमा माँगने लगते हैं। और कौन है अल्लाह के सिवा जो गुनाहों को क्षमा कर सके? और जान बूझ कर अपने (दुष्कर्मों) पर अड़े नहीं रहते। यही लोग है जिनको रब की ओर से क्षमा करने के साथ ऐसी जन्नतों का बदला मिलेगा जिनके नीचे नहरें बहती होंगी, उनमें वे सदैव रहेंगे। क्या ही अच्छा प्रतिदान है (अच्छे) काम करने वालों का!» (सूरा-3, आले-इमरान, आयतें-135-136)

❁ जन्नत की सबसे बड़ी नेमत :

जन्नत की सबसे बड़ी नेमत अल्लाह का दर्शन है जो संसार में रहते हुए असम्भव है। यहाँ तक कि नबी (ﷺ) 'मेराज' की रात 'सिदरतुल-मुन्तहा' तक पहुँच गए जिसके आगे कोई और नहीं जा सकता था। फिर भी अल्लाह का दर्शन नहीं कर सके। नबी मूसा (عليه السلام) ने भी अल्लाह के दर्शन की इच्छा की और कहा –

«मेरे रब! मुझे देखने की शक्ति प्रदान कर कि मैं तुझे देखूँ !" उसने कहा, "तू मुझे नहीं देख सकता। हाँ, पर्वत की ओर देख, यदि वह अपने स्थान पर स्थिर रहा तो तू मुझे देख सकेगा। फिर जब उसके रब ने पहाड़ पर अपनी तजल्ली की तो उसको चकनाचूर कर दिया, और मूसा मूर्छित होकर गिर पड़ा। जब होश में आया तो कहने लगा, "महिमा है तेरी! मैं तेरे हुज़ूर तौबा करता हूँ। और मैं सबसे पहले ईमान लानेवालों में हूँ।» (सूरा-7, अल-आराफ़, आयत-143)

इससे सिद्ध हुआ कि इस संसार में अल्लाह का दर्शन असम्भव है। परन्तु जन्नत की महान नेमतों में से एक नेमत अल्लाह का दर्शन है। जैसा किएक सहीह हदीस में आया है–

"तुम लोग अल्लाह को इसी प्रकार देखोगे जैसे चाँद देखते हो। और कोई वस्तु बीच में रुकावट नहीं बनेगी।" (सहीह बुख़ारी, 7434 तथा सहीह मुस्लिम 633)

स्वर्गवासियों की नेमतों में से एक नेमत यह भी होगी कि अल्लाह सदैव के लिए उनसे प्रसन्न हो जाएगा। जैसा कि एक सहीह हदीस में आया है कि स्वर्गवासियों से अल्लाह पूछेगा क्या तुम लोग स्वर्ग में प्रसन्न हो? वे कहेंगे कि ऐ हमारे रब! हम क्यों प्रसन्न न हों जबकि तूने हमें सब कुछ दे दिया। वह कहेगा कि क्या इससे भी उत्तम चीज़ तुम्हें दूँ। वे कहेंगे कि भला इससे भी उत्तम कोई और चीज़ हो सकती है? वह कहेगा कि हाँ है, और वह है मेरी प्रसन्नता, मैं तुमपर कभी भी क्रोधित नहीं हूँगा।" (दे. सहीह मुस्लिम, 2829)

सूरा अत-तौबा में है –

«अल्लाह ने मोमिन पुरुषों तथा मोमिन स्त्रियों से ऐसी जन्नतों का वादा किया है जिनके नीचे नहरें बहती होंगी, जिनमें वे सदैव रहेंगे, और ऐसे घरों का वादा किया है जो सदैव रहनेवाली जन्नत में पाक-साफ़ होंगे, और सबसे बढ़कर अल्लाह की प्रसन्नता (उनको प्राप्त) होगी, और यही सबसे बड़ी सफलता है।» (क़ुरआन, सूरा-9, अत-तौबा, आयत-72)

इस्लाम की महान शिक्षाओं में पुरुष तथा स्त्री दोनों समान हैं। जन्नत में प्रवेश का दोनों को अधिकार है। ईमानवालों के लिए अल्लाह ने फ़िरऔन की पत्नी का उदाहरण दिया है–

«और अल्लाह ने ईमानवालों के लिए फ़िरऔन की पत्नी की मिसाल दी है। जब उसने कहा : ऐ मेरे रब! मेरे लिए अपने पास 'जन्नत' में एक घर बना दे, और मुझे फ़िरऔन और उसके कर्म से छुटकारा दे, और छुटकारा दे अत्याचारियों से।» (सूरा-66, अत-तहरीम, आयत-11)

इसमें ईमानवाली स्त्रियों के लिए खुला संदेश यह है कि अपने नेक कामों के द्वारा वे भी जन्नत की हक़दार बन सकती हैं।

जन्नत की नेमतों को हम इस संसार में अनुभव नहीं कर सकते जैसा कि एक सहीह हदीस में आया है।

"अल्लाह ने अपने सदाचारी बन्दों के लिए (जन्नत में) ऐसी चीज़ें तैयार कर रखी हैं जिनको किसी नेत्र ने देखा नहीं, किसी कान से सुना नहीं, और न किसी के विचार में वे चीज़ें आ सकती हैं। वास्तविकता तो यही है कि अल्लाह ने किसी को उससे सूचित किया ही नहीं।" (दे. बुख़ारी 3244, तथा मुस्लिम 2823)

इसी बात को क़ुरआन में एक स्थान पर इस प्रकार बयान किया गया है

«कोई जीव नहीं जानता कि आँखों की जो ठंडक उसके लिए छिपाकर रखी गई है वह उनके कर्मों का बदला है जो वे करते थे।» (सूरा-32 अस-सजदा, आयत-17)

❋ जन्नत की ओर ले जानेवाले कर्म :

सत्यता अच्छाई की ओर ले जाती है और अच्छाई जन्नत की ओर खींचती है। एक व्यक्ति जब सच्चाई ग्रहण करता है तो उसको सच्चा लिख दिया जाता है। और झूठ बुराई की ओर ले जाता है और बुराई जहन्नम की ओर ले जाती है एक व्यक्ति झूठ बोलता रहता है यहाँ तक कि उसको झूठ लिख दिया जाता है। (दे. बुख़ारी 6094 तथा मुस्लिम 2607)

एक हदीस में आया है –

"तुम जन्नत में उस समय तक प्रवेश नहीं कर सकते जब तक कि ईमान न लाओ। और तुम्हारा ईमान उस समय तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक आपस में प्रेम न करो। क्या मैं तुम्हें ऐसी बात न बता दूँ कि अगर तुम उसपर अमल करो तो तुम में आपस में प्रेम हो जाए? वह है : आपस में सलाम को फैलाना।" (सहीह मुस्लिम, 54)

एक दूसरी हदीस में आता है कि अब्दुल्लाह-बिन-सलाम मदीना के एक यहूदी थे। जब नबी (ﷺ) मदीना पधारे तो वे भी आप को देखने के लिए निकल पड़े। जब आप (ﷺ) का दमकता हुआ चाँद जैसा चेहरा देखा तो पुकार उठे कि यह किसी झूठे नबी का चेहरा नहीं हो सकता। अब्दुल्लाह-बिन-सलाम कहते हैं कि सबसे पहली बात जो नबी (ﷺ) से मैने सुनी, वह यह थी–

"ऐ लोगो! आपस में सलाम को फैलाओ, एक-दूसरे को भोजन कराओ, जब लोग रात्रि में सोते हैं तो उस समय उठकर नमाज़ पढ़ो, और फिर जन्नत में शान्ति के साथ प्रवेश कर जाओ।" (तिर्मिज़ी 2485 तथा इब्ने-माजा 1334)

कन्याओं के साथ उत्तम व्यवहार जहन्नम से सुरक्षित रखने का साधन है। (बुख़ारी 1418 तथा मुस्लिम 2629)

"वह व्यक्ति कितना निन्दनीय है जिसने अपने माता-पिता को बुढ़ापे में पाया और स्वर्ग में प्रवेश न कर सका।" (सहीह मुस्लिम 2551)

अर्थात उनकी सेवा नहीं की, जिसका प्रतिदान स्वर्ग है।

❋ जन्नत के वासी :

जन्नत के वासियों में अधिकतर वे लोग होंगे जो संसार में निर्धन और असहाय थे, और जहन्नम के वासियों में अधिकतर वे होंगे जो संसार में घमन्डी और अपने को श्रेष्ठ समझते थे। (सहीह मुस्लिम, 2853)

"जन्नत में प्रवेश करनेवाला पहला गरोह चौदहवीं के चाँद के सदृश होगा। उसके बादवाला गरोह सितारों के सदृश चमकता हुआ होगा। वहाँ प्रत्येक पुरुष के लिए दो पत्नियाँ होंगी। जन्नत में कोई बिन ब्याहा नहीं होगा।" (दे. सहीह मुस्लिम, 2834)

जो जन्नत में प्रवेश कर गया वह वहाँ सदैव रहेगा। न तो उसके कपड़े पुराने होंगे, और न ही उसकी जवानी जाएगी।" (सहीह मुस्लिम 2836)

एक दूसरी हदीस में आया है –

जन्नत के वासी कभी बीमार नहीं पड़ेंगे। उसमें सदैव रहेंगे, कभी मृत्यु नहीं आएगी। हर समय युवक रहेंगे, कभी बूढ़े नहीं होंगे। (दे. सहीह मुस्लिम 2837)

✿ जन्नत की कुछ विशेषताएँ :

जन्नत का विस्तार आकाशों और धरती जैसा है।

«अपने रब की क्षमा की ओर लपको, और जन्नत की ओर भी जिसका विस्तार आकाशों और धरती के समान है, यह अल्लाह से डरनेवालों के लिए तैयार की गई है।» (क़ुरआन, सूरा-3, आले-इमरान, आयत-133)

एक हदीस में जन्नत का विस्तार नबी (ﷺ) ने इस प्रकार बताया है –

"जन्नत का एक वृक्ष इतना विशाल होगा कि एक व्यक्ति उसके साए में एक सौ वर्ष तक चलता रहेगा परन्तु उसके अन्त तक नहीं पहुँच पाएगा।" (दे. बुखारी 4881 तथा मुस्लिम 2826)

एक दूसरी हदीस में यह भी आया है कि:

"अगर वह चलनेवाला तेज़ रफ़्तार घोड़े पर भागे तब भी उसके अन्त तक नहीं पहुँच सकता।" (दे. बुख़ारी 6553, मुस्लिम 2828)

✿ जन्नत के द्वार :

क़ुरआन में तीन स्थानों पर जन्नत के द्वारों का वर्णन आया है

प्रथम : सूरा रअ्द में जहाँ ईमान वालों की विशेषताएँ बताई गई हैं जैसे धैर्य ग्रहण करना, नमाज़ अदा करना, भलाई के द्वारा बुराई को दूर करना इत्यादि। इनका फल यह बताया गया –

«इनके लिए सदैव रहनेवाली जन्नतें हैं जिनमें वे प्रवेश करेंगे। इसी प्रकार उनके पूर्वजों में से, और उनकी पत्नियों में से, और उनकी सन्तानों में से जो सदाचारी होंगे, और फ़रिश्ते हर द्वार से उनके पास आएँगे। (वे कहेंगे) तुमपर सलाम हो, यह तुम्हारे धैर्य का बदला है। तो कितना अच्छा घर है बदले का!» (सूरा-13, अर-रअद, आयतें-23-24)

द्वितीय : सूरा सॉद में यह बताया गया है कि सदाचारियों के लिए जन्नत के द्वार खुले रहेंगे –

«यह एक उपदेश है, और निश्चय ही सदाचारियों के लिए अच्छा ठिकाना है, वह है सदैव रहनेवाली जन्नत जिनके द्वार उनके लिए खुले रहेंगे।» (सूरा-38, सॉद, आयतें-49,50)

तृतीय : सूरा ज़ुमर में दो गरोहों का वर्णन हो रहा है। जहन्नम में जानेवाले तथा जन्नत में जानेवाले, इस दूसरे गरोह के विषय में आया है –

«जो लोग अपने रब से डरते हैं, उनको गरोह बनाकर जन्नत की ओर खींचकर लाया जाएगा। यहाँ तक कि जब वे उसके पास पहुँच जाएंगे, और उसके द्वार खोल दिए जाएंगे, तो उसके प्रबंधक कहेंगे, तुमपर सलामती हो, तुम बहुत अच्छे रहे, इसमें सदैव के लिए प्रवेश कर जाओ।» (सूरा-39, अज़-ज़ुमर, आयत-73)

हमें अल्लाह से दुआ करनी चाहिए कि हमें भी अपनी कृपा से जन्नत प्रदान करे।

जहन्नम

जहन्नम का अर्थ है गहरी खाई या घाटी । इस्लाम की परिभाषा में उस स्थान को जहन्नम कहा जाता है, जहाँ मरने के पश्चात् अल्लाह को न माननेवालों, उसकी अवज्ञा करनेवालों और बुरे लोगों को रखा जाएगा। यह एक प्रकार का दंड है जो उनको दिया जाएगा।

इस्लाम के अतिरिक्त अन्य धर्मों और मतों में भी स्वर्ग तथा नरक की धारणा पाई जाती है। (देखिए: बाइबल, मत्ती, 25:41-46)

परन्तु अन्य धर्मों के ग्रंथों में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते रहे, जिनके कारण वे धर्मग्रंथ पूर्ण रूपेण विकृत हो गए। उनकी मूल शिक्षाएँ शेष नहीं रहीं। वर्तमान समय में पवित्र क़ुरआन ही एकमात्र ऐसा धर्मग्रंथ है जिसमें लेशमात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ है। इसके अवतरण काल से आज तक इसकी एक मात्रा या बिन्दु में भी परिवर्तन नहीं हुआ है।

पवित्र क़ुरआन में जहन्नम या नरक का वर्णन बड़े विस्तृत रूप में हुआ है। साथ ही, पवित्र क़ुरआन में 'जहन्नम' के लिए कुछ और नामों का भी प्रयोग किया गया है। वे नाम ये हैं –

सईर : इसका अर्थ है भड़कती हुई आग। क़ुरआन में है –

«निश्चय ही अल्लाह ने इनकार करनेवालों पर धिक्कार भेजी और उनके लिए 'सईर' (भड़कती हुई आग) तैयार कर रखी है।» (सूरा–33, अल-अहज़ाब, आयत–64)

इसी प्रकार दूसरी जगह है –

«एक गरोह स्वर्ग में होगा, तथा एक गरोह सईर (भड़कती हुई आग) में।» (सूरा–42, अश-शुअरा, आयत–7, साथ ही, देखिए: सूरा–22, अल-हज, आयत–4; सूरा–31, लुक़मान, आयत–4 और सूरा–67, अल-मुल्क, आयत–10)

हु-त-मा : इसका अर्थ है तोड़-फोड़ और चूर-चूर कर देनेवाली। .

क़ुरआन में आया है –

«कदापि नहीं, यह तो अवश्य 'हु-त-मा' (चूर-चूर कर देनेवाली) में फेंक दिया जाएगा। और तुम्हें क्या मालूम की यह 'हु-त-मा' क्या है? वह अल्लाह की सुलगाई हुई आग है, जो दिलों पर चढ़ती चली जाएगी तथा वह उनपर ढाँककर बन्द कर दी गई होगी, लम्बे-लम्बे स्तंभों में।» (सूरा–104, अल-हु-म-ज़ह् आयतें–4-9)

सक़र : यह जहन्नम के नामों में से एक नाम है। क़ुरआन में है–

«मैं शीघ्र ही उसे सक़र में झोंक दूँगा और तुझे क्या मालूम कि 'सक़र' क्या चीज़ है? वह न तो तरस खाती है और न ही छोड़ती है। खाल को झुलसा देनेवाली है। उसपर उन्नीस फ़रिश्ते नियुक्त हैं।» (सूरा–74, अल-मुद्दस्सिर, आयतें–26-30)

❁ जहन्नम के द्वार :

जहन्नम इतनी विशाल और विस्तृत होगी कि उसके सात दरवाज़े होंगे और हर एक दरवाज़ा इतना विशाल होगा जितना कि आकाशों और पृथ्वी के बीच का स्थान है। क़ियामत के दिन इन दरवाज़ों से लोग गरोह की शक्ल में निकलेंगे और हर गरोह के लिए दरवाज़ा निश्चित कर दिया गया है –

«(ऐ शैतान!) निस्सन्देह मेरे (सच्चे) भक्तों पर तेरा बस नहीं चलेगा सिवाय उन लोगों के जो भटक गए हैं, और तेरे पीछे चल पड़े हैं। और हर द्वार के लिए उनका एक ख़ास हिस्सा होगा।» (सूरा-15, अल-हिज्र, आयतें-42-44)

❁ जहन्नमियों पर अल्लाह का क्रोध :

निश्चित रूप से अल्लाह रहमान तथा रहीम है, परन्तु वह अपने साथ किसी को साझी ठहराने को कदापि सहन नहीं करता। जो लोग अल्लाह के साथ किसी को साझी ठहराते हैं उनपर उसका क्रोध भड़क उठता है।

«और यातना देगा मुनाफ़िक़ पुरुषों तथा मुनाफ़िक़ स्त्रियों को, और साझी ठहरानेवाले पुरुषों तथा साझी ठहरानेवाली स्त्रियों को, जो अल्लाह के विषय में बुरे विचार रखते थे। (अब) उनपर बुरा समय आ पड़ा। और उनपर अल्लाह का क्रोध भड़क उठा। वे उसकी लानत में घिर गए, और उनके लिए जहन्नम तैयार कर रखी है, जो बहुत ही कष्टमय स्थान है।» (सूरा-48, अल-फ़तह, आयत-6)

❋ जहन्नम में जानेवालों की दशा :

«जिन लोगों ने हमारी आयतों का इनकार किया, उन्हें हम जल्द अग्नि में झोंक देंगे, जब उनकी खालें गल (जल) जाएँगी तो हम उन्हें दूसरी खालों से बदल देंगे ताकि वे यातना का मज़ा चखें। निस्सन्देह अल्लाह प्रभुत्त्वशाली, तत्त्वदर्शी है।» (सूरा-4, अन-निसा, आयत-56)

आज की साइंस से यह सिद्ध हो चुका है कि मनुष्य को कष्ट उसकी खाल से होता है न कि माँस से। इसलिए जहन्नमियों की खालें बार-बार बदली जाएंगी ताकि वे दहकती हुई आग का मज़ा चखें।

सूरा 'अत-तौबा' में उन लोगों को जहन्नम की आग से डराया गया है जो सोना-चाँदी एकत्र करते रहते हैं, परन्तु अल्लाह के मार्ग में ख़र्च नहीं करते अर्थात ज़कात नहीं देते –

«जिस दिन (सोने-चाँदी) के ढेर पर जहन्नम की आग दहकाई जाएगी, फिर उससे उनके माथे, और पहलू और पीठें दाग़ी जाएंगी, (और कहा जाएगा) यह वही है जिसे तुमने अपने लिए एकत्र किया था, तो अब जो कुछ तुम एकत्र करके रखते थे उसका मज़ा चखो।» (सूरा-9, अत-तौबा, आयत-35)

मूर्तिपूजक और जिनकी वे पूजा करते थे सब जहन्नम में डाल दिए जाएंगे –

«निश्चय ही तुम, और वे सब जिनको तुम अल्लाह के सिवा पूजते थे, जहन्नम का ईंधन होंगे। तुम अवश्य उस (जहन्नम) में प्रवेश करोगे।» (सूरा-21, अल-अंबिया, आयत-98)

अर्थात मिट्टी, पत्थर, तथा सोने-चाँदी के उन बुतों को भी जहन्नम में डाल दिया जाएगा, जो जहन्नम की आग को और भड़काएंगे। इस आयत के द्वारा मूर्तिपूजकों को चेतावनी दी जा रही है कि तुम और तुम्हारे बुत सबको जहन्नम की आग का मज़ा चखना पड़ेगा। जहन्नम में सबसे कम यातना पानेवाले से अल्लाह पूछेगा, अगर सारा संसार और उसमें जो कुछ है तुम्हें दे दिया जाए, और पूछा जाए कि क्या जहन्नम की यातना से बचने के लिए तुम इसे त्याग सकते हो? तो वह कहेगा। हाँ, क्यों नहीं। अल्लाह उससे कहेगा, "मैंने तुझसे इससे तुच्छ चीज़ माँगी थी, वह यह कि तुम मेरे साथ किसी को साझी मत बनाओ तो मैं तुम्हें जहन्नम में नहीं डालूँगा। लेकिन तुमने शिर्क करने ही को प्राथमिकता (तर्जीह) दी।" (बुख़ारी 3334 तथा मुस्लिम 2805)

❋ शैतान का काम जहन्नम की ओर बुलाना है :

मनुष्य और शैतान का युद्ध आदम (عليه السلام) से चला आ रहा है। इसलिए क़ुरआन में बार-बार इसकी चेतावनी आई है कि शैतान के धोखे से बचो, नहीं तो वह तुम्हें जहन्नम में दाख़िल कराकर छोड़ेगा।

«निश्चय ही शैतान तुम्हारा शत्रु है, तो उसे तुम अपना शत्रु ही समझो, वह अपने अनुयायियों को बुलाता है ताकि वे दहकती आगवालों में से हो जाएँ।» (सूरा-35, फ़ातिर, आयत-6)

❁ जहन्नम घमंडियों का ठिकाना है :

«जहन्नम के दरवाज़ों में प्रवेश करो, जहाँ सदैव रहोगे। घमंड करनेवालों का बहुत ही बुरा ठिकाना है।» (सूरा-40, अल-मोमिन, आयत-76)

❁ पशुओं के साथ अत्याचार करनेवाले जहन्नमी हैं :

पशुओं के साथ अत्याचार करने को भी इस्लाम पसन्द नहीं करता। इसलिए पशुओं पर अत्याचार करनेवाले भी जहन्नम में जाएँगे। एक स्त्री इस कारण जहन्नम की हक़दार हुई कि उसने बिल्ली को घर में बन्द कर दिया, न उसको खाना खिलाती न उसे पानी पिलाती थी, और न ही उसको छोड़ती थी कि जाए इधर-उधर से अपना पेट भरे। यहाँ तक कि इसी दशा में वह मर गई। (बुख़ारी 3482 तथा मुस्लिम 22421)

इस हदीस के बयान करने का उद्देश्य यह है कि नबी (ﷺ) पशुओं के साथ भी सदव्यवहार का आदेश देते हैं।

अल्लाह से दुआ है कि हम सबको जहन्नम की आग से मुक्त रखे।

जहीम

इसका अर्थ है दहकती हुई आग। यहाँ उन लोगों को रखा जाएगा जिन्होंने अल्लाह और उसके आदेशों का इनकार किया। क़ुरआन में एक विशाल वृक्ष का वर्णन किया गया है, जिसकी जड़ 'जहीम' में है –

«क्या यह अतिथि-सत्कार अच्छा है अथवा ज़क़्क़ूम का वृक्ष? जिसे हमने अत्याचारियों के लिए कठोर परीक्षा बना दिया है। निस्सन्देह वह एक वृक्ष है जो 'जहीम' की तह से निकलता है।» (सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयतें–62-64)

ज़िक्र

ज़िक्र शब्द क़ुरआन में एक से अधिक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। जिनमें कुछ ये हैं –

1. अल्लाह को याद करना, उसके नाम का गुणगान करना, उसकी सत्ता एवं उसके प्रभुत्त्व का वर्णन करना, क्योंकि उसकी याद ही मनुष्य की आत्मा को शान्ति प्रदान कर सकती है।

«सुन लो, अल्लाह की याद से दिलों को शान्ति प्राप्त होती है।» (सूरा-13, अर-रअद, आयत-28)

और ईमानवालों की यह निशानी बताई गई है –

«जो ईमान लाए उनके दिलों को अल्लाह की याद से चैन और आराम मिलता है।» (सूरा-13, अर-रअद, आयत-28)

और एक दूसरे स्थान पर आया है–

«ईमानवाले तो वही हैं कि जब अल्लाह को याद किया जाए तो उनके दिल काँप उठते हैं।» (सूरा-8, अल-अनफ़ाल, आयत-2)

✻ अल्लाह को याद करने का उत्तम समय :

क़ुरआन में है –

«अपने रब को अपने मन में प्रातः और संध्या के समयों में विनम्रतापूर्वक, डरते हुए और हलकी आवाज़ से याद किया करो।» (सूरा-7, अल-आराफ़, आयत-205)

नमाज़ के पश्चात् –

«फिर जब तुम नमाज़ पूरी कर चुको तो खड़े-बैठे और लेटे अल्लाह को याद करो।» (सूरा 4 अन-निसा, आयत-103)

और नमाज़ क़ायम करना स्वयं अल्लाह का ज़िक्र है –

«मेरी याद के लिए नमाज़ क़ायम करो।» (सूरा-20, ता-हा, आयत-14)

इसलिए मुसलमानों को हुक्म दिया जा रहा है कि अल्लाह को अधिक से अधिक याद किया करो। (देखें सूरा-33, अल-अहज़ाब, आयत-41)

क़ुरआन में उन लोगों की घोर निन्दा की गई है जो अल्लाह के ज़िक्र से ग़ाफ़िल हैं–

«जो रहमान के ज़िक्र से अन्धा बनकर जीवन व्यतीत करेगा हम उसपर एक शैतान नियुक्त कर देंगे, तो वह उसका साथी बन जाएगा।» (सूरा-43, अज़-ज़ुख़रुफ़, आयत-36)

«और जो मेरी याद से मुँह मोड़ेगा उसका जीवन तंग हो जाएगा और क़ियामत के दिन हम उसे अंधा उठाएँगे। वह कहेगा, '' ऐ रब तूने मुझे अंधा क्यों उठाया जब कि मैं तो

आँखोंवाला था ?" वह कहेगा, "इसी प्रकार (तू संसार में अंधा रहा था) तेरे पास मेरी आयतें आई थीं तो तूने उनको भुला दिया था। उसी तरह आज तू भुला दिया जाएगा।» (सूरा-20, ता-हा, आयतें 124-125)

2. किसी चीज़ को याद रखना जैसे मूसा (ﷺ) के साथ जा रहे युवक ने कहा –

«शैतान ने उसको (अर्थात मछली को) याद रखने से मुझे ग़ाफ़िल कर दिया और उसने आश्चर्य रूप से दरिया में अपनी राह ली।» (क़ुरआन, सूरा-18, अल-कहफ़, आयत-63)

3. नसीहत ग्रहण करना–

«क्या मनुष्य इस बात से नसीहत ग्रहण नहीं करता कि हमने उसे इस दशा में पैदा किया कि वह कुछ भी नहीं था।» (क़ुरआन, सूरा-19, मरयम, आयत-67)

क़ुरआन को नसीहत कहा गया –

«(ऐ नबी!) हमने तुमपर यह क़ुरआन इसलिए नहीं उतारा कि तुम कठिनाई में पड़ जाओ, बल्कि यह तो एक नसीहत है उसके लिए जो उससे डरता रहे।» (सूरा-20, ता-हा, आयत-1,2)

4. क़ुरआन को भी ज़िक्र कहा गया है। मक्का के विधर्मियों ने कहा–

«क्या हम सबमें से केवल उसपर (मुहम्मद पर) ज़िक्र (क़ुरआन) उतारा गया है?» (सूरा-38, सॉद, आयत-8)

«निस्संदेह यह ज़िक्र (क़ुरआन) हमने ही उतारा है, और हम ही इसके रक्षक हैं।» (सूरा-15, अल-हिज्र, आयत-9)

और अल्लाह का यह वचन कि हम ही क़ुरआन के रक्षक हैं आज भी उसी प्रकार सत्य है जिस प्रकार आज से डेढ़ हज़ार वर्ष पहले सत्य था।

5. पुराना इतिहास – क़ुरआन में इसको भी ज़िक्र कहा गया है–

«ऐ मुहम्मद, वे तुमसे ज़ुलक़रनैन के बारे में पूछते हैं। कह दो, मैं तुमको उसका कुछ ज़िक्र (इतिहास) बताता हूँ।» (सूरा-18, अल-कहफ़, आयत-83)

ये हैं ज़िक्र के कुछ अर्थ जो क़ुरआन में आए हैं। इनमें एक बात सामान्य तौर पर पाई जाती है, और वह यह कि अल्लाह की याद और उसका स्मरण ही वास्तव में ज़िक्र है। और ये सारे अर्थ किसी न किसी रूप में इसी अर्थ की ओर संकेत करते हैं। इसलिए क़ुरआन और सहीह हदीसों की रौशनी में ऐसी पुस्तकें लिखी गई हैं जिनको 'किताबुज़्-ज़िक्र वल अज़्कार' कहते हैं जिनमें प्रात:काल से लेकर साँय काल तक के ज़िक्र का वर्णन किया गया है।

जिहाद

जिहाद का अर्थ है प्रयत्न करना। क़ुरआन में इसका प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है। उनमें से कुछ ये हैं –

1. दबाव डालना :

«हमने मनुष्य को अपने माता-पिता के साथ अच्छा व्यवहार करने की ताकीद की है। परन्तु यदि वे तुमपर दबाव डालें कि तुम मेरे साथ किसी को सम्मिलित कर लो जिसका तुम्हें कोई ज्ञान नहीं तो उनका कहना मत मानो।» (सूरा–29, अल-अनकबूत, आयत–8)

यहाँ दबाव डालने के अर्थ में 'जिहाद' शब्द का प्रयोग किया गया है।

2. दौड़-धूप करना :

«जिन लोगों ने हमारे लिए दौड़-धूप की, हम अवश्य उन्हें अपना मार्ग दिखाएँगे। निस्संदेह अल्लाह सदाचारियों के साथ है।» (सूरा–29, अल-अन्कबूत, आयत–69)

यहाँ दौड़-धूप करने के लिए जिहाद शब्द का प्रयोग हुआ है।

«जो व्यक्ति (अल्लाह के मार्ग में) संघर्ष करता है, वह तो स्वयं अपने लिए संघर्ष करता है। निश्चय ही अल्लाह सारे संसार से निस्पृह है।» (सूरा–29, अल-अन्कबूत, आयत–6)

3. युद्ध :

क़ुरआन ने युद्ध करने के बहुत-से कारण बताए हैं। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं –

(i) जो अपने घरों से बिना कारण निकाल दिए जाएँ और उनके विरुद्ध शत्रुओं ने युद्ध छेड़ रखा हो, तो ऐसी दशा में निकाले गए लोगों को युद्ध करने का आदेश दिया गया है। (देखें: क़ुरआन, सूरा–22, अल-हिज, आयतें–39,40)

परन्तु वे लोग जो मुसलमानों को सताते नहीं और न ही उनसे युद्ध करते हैं, उनके साथ उत्तम व्यवहार करने से अल्लाह नहीं रोकता –

«जिन लोगों ने तुमसे धर्म के विषय में युद्ध नहीं किया, और न देश से निकाला, उनके साथ उत्तम व्यवहार एवं उपकार करने से तथा न्यायपूर्ण व्यवहार करने से अल्लाह तुम्हें नहीं रोकता। निस्सन्देह अल्लाह न्याय करनेवालों को पसन्द करता है।» (सूरा–60, अल-मुम्तहिना, आयत–8)

(ii) जब शत्रु मुसलमानों से युद्ध करें :

«अल्लाह के मार्ग में उनसे युद्ध करो, जो तुमसे लड़ते हैं, और अत्याचार न करो। अल्लाह अत्याचारी को पसंद नहीं करता।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–190)

(iii) जब धर्म-विरोधी सत्य-धर्म से फेरने की चेष्टा करें :

«वे चाहते हैं कि जिस प्रकार वे स्वयं विधर्मी हैं तुम भी उनकी तरह बन जाओ। तो तुम उनमें से किसी को सच्चा मित्र न बनाओ, जब तक कि वे (ईमान लाने के पश्चात्) अल्लाह के मार्ग में हिजरत न करें। फिर यदि वे इससे मुँह फेर लें, तो उनको पकड़ो और युद्ध करो। उनमें से किसी को मित्र एवं सहायक न बनाओ।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–89)

यहाँ यह बात भली-भांति समझ लेनी चाहिए कि जिहाद (युद्ध) का अधिकार शासक के पास होता है। वही हालात का जायज़ा लेकर जिहाद करने का एलान कर सकता है। यह काम किसी व्यक्ति या समूह का नहीं है, क्योंकि जिहाद भी इस्लाम के उन आदेशों में से है जिनका लागू करना हुकूमत की ज़िम्मेदारी होती है, किसी व्यक्ति या समूह की नहीं। जैसे हत्यारे को मृत्यु-दण्ड देना, चोर का हाथ काटना, पापी को सज़ा देना इत्यादि, और जब शासक की ओर से जिहाद करने का एलान हो जाए तो फिर उसकी प्रजा पर जिहाद अनिवार्य हो जाता है। जैसा कि पवित्र क़ुरआन में आया है –

«हल्के-फुल्के और बोझिल निकल पड़ो और तन-मन-धन से जिहाद करो अल्लाह के मार्ग में और यही तुम्हारे लिए अच्छा है, अगर तुमको इसका ज्ञान हो।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयत–41)

क़ुरआन में ऐसी दशा में उन लोगों की निन्दा की गई है, जो जिहाद करने से बचना चाहते हैं –

«ऐ ईमानवालो! तुम्हें क्या हो गया है कि जब तुमसे कहा जाता है कि अल्लाह के मार्ग में निकल पड़ो तो तुम धरती पर ढहे जाते हो। क्या तुम परलोक के बदले सांसारिक जीवन पर रीझ गए हो? सुनो, संसार का यह जीवन परलोक की तुलना में अति तुच्छ है।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयत–38)

जैसा कि बताया जा चुका है जिहाद एक ऐसा धार्मिक कर्तव्य है जो शासन के हाथ में है। उसकी आज्ञा के बिना जिहाद नहीं बल्कि उपद्रव है, और इस्लाम एक शान्तिप्रिय धर्म है उपद्रवी धर्म नहीं। इसलिए जिहाद के लिए कुछ नियम भी बनाए गए हैं, जिनको नबी (ﷺ) जिहाद पर जानेवालों को बताया करते थे। उनमें से कुछ ये हैं –

1. युद्ध में उन्हीं लोगों की हत्या की जा सकती है जो युद्ध कर रहे हों अर्थात् सैनिक। जो लोग युद्ध न कर रहे हों उनकी हत्या न की जाए।
2. स्त्रियों, बच्चों, बूढ़ों, पुरोहितों की हत्या न की जाए।

3. रात्रि के समय युद्ध न छेड़ा जाए, क्योंकि इस समय लोग आराम कर रहे होते हैं।
4. युद्ध करने से पहले उनको इस्लाम की शिक्षा से अवगत करा दिया जाए ताकि अगर वे उन्हें समझ-बूझकर इस्लाम स्वीकार करना चाहें तो फिर उनसे युद्ध न किया जाए।
5. किसी क़ैदी को आग में न जलाया जाए।
6. युद्ध के दौरान किसी को बाँधकर उसकी हत्या न की जाए।
7. लूट-खसोट न की जाए।
8. खेतों और बाग़ों को नष्ट न किया जाए।
9. किसी क़ैदी की हत्या न की जाए।
10. किसी भागनेवाले का पीछा न किया जाए।
11. जो अपने घर का द्वार बन्द कर ले, उसे कुछ न कहा जाए।
12. जो शरण माँगे उसे शरण दी जाए।
13. किसी पत्रवाहक तथा दूत की हत्या न की जाए।
14. जो क़ैदी बना लिए गए हों, उनसे अच्छा बर्ताव किया जाए।
15. क़ैदियों को मुसलमान क़ैदियों के बदले में छोड़ा जा सकता है।

ये हैं इस्लामी युद्ध के कुछ नियम। जिहाद पर जानेवालों को नबी (ﷺ) इन नियमों से अवगत कराया करते थे और इन नियमों का पालन करने को कहते थे।

इनसे भली-भाँति अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि इस्लाम ने युद्ध के जो नियम बताए हैं, वे आज के युद्ध नियमों से कितने उत्तम हैं! बल्कि आनेवाली नस्लों के लिए भी ये नियम कितने लाभप्रद सिद्ध होंगे।

आज तो शक्तिशाली राष्ट्र निर्बल राष्ट्रों पर अंधाधुंध बमबारी करके वहाँ के नगरों, धन-सम्पत्ति, मकानों-दुकानों और असंख्य बेगुनाह लोगों को क्षण भर में नष्ट कर डालते हैं और जिन राष्ट्रों पर बमबारी की जाती है, वहाँ की कई-कई पीढ़ियाँ बमबारी के दुष्प्रभावों से उत्पन्न त्रासदियों को झेलती रहती हैं।

जिन्न

ईश्वर ने दो प्रकार के अदृश्य प्राणी बनाए हैं। वे हैं : फ़रिश्ते और जिन्न।

ऐसे अदृश्य प्राणी जो सदाशयता एवं सज्जनता के प्रतीक होते हैं, उन्हें फ़रिश्ते कहते हैं। (विस्तृत विवरण के लिए देखें : 'फ़रिश्ता'।)

जिन्न ऐसे अदृश्य प्राणी हैं, जो भले और बुरे दोनों तरह के होते हैं।

आइए, अब 'जिन्न' शब्द की उत्पत्ति पर विचार करते हैं। अरबी भाषा में 'जन्न' का अर्थ है छिपना। इसी से 'जुनून' और 'मजनून' बना है, जिसका अर्थ है अक़्ल को छिपा लेना, अर्थात् 'मजनून' की अक़्ल काम नहीं करती, इसलिए उसके जी में जो आता है, वह करने लगता है।

इसी से एक शब्द और निकला है जिसको 'जनीन' कहते हैं, जो बच्चा माँ के गर्भ में छिपा रहता है। इसी शब्द से 'जन्नत' भी निकला है, जिसका अर्थ है ऐसा घना बाग़ जो पृथ्वी को छिपा ले।

'जिन्न' के विषय में जितना विस्तृत वर्णन क़ुरआन में आया है, उतना विस्तृत वर्णन किसी अन्य धर्मग्रन्थ में नहीं मिलता। शायद इसका कारण यह हो कि दूसरे धर्मों में जिन्नों को किसी प्रकार का कोई आदेश नहीं था, इसलिए उनके विषय में धर्म ग्रन्थों में कुछ अधिक बातें नहीं बताई गईं। परन्तु नबी मुहम्मद (ﷺ) मनुष्यों और जिन्नों दोनों के लिए नबी बनाकर भेजे गए थे इसलिए उनका विस्तृत वर्णन करना पड़ा।

यहाँ क़ुरआन के संदर्भ में जिन्नों के विषय में कुछ विशेष बातें बयान की जा रही हैं। पहले उन बातों की चर्चा की जा रही है, जो मनुष्यों और जिन्नों के बीच अन्तर को स्पष्ट करती हैं –

1. जिन्नों को आग से पैदा किया गया, जबकि मनुष्यों को मिट्टी से। क़ुरआन में है–

«हमने मनुष्य को सड़ी हुई मिट्टी के सूखे खनखनाते हुए गारे से बनाया और जिन्नों को इससे पहले लू की लपट से पैदा किया।» (सूरा–15, अल-हिज्र, आयतें–26,27)

«मनुष्य को ठीकरे जैसी खनकती मिट्टी से पैदा किया, और जिन्न को अग्नि ज्वाला से पैदा किया।» (सूरा–55, अर-रहमान, आयतें–14,15)

इसी कारण इब्लीस ने आदम को सजदा करने से इनकार कर दिया और कहा –

«मुझसे यह नहीं हो सकता कि मैं उस मनुष्य को सजदा करूँ जिसको तूने सड़ी हुई मिट्टी के सूखे गारे से बनाया।» (क़ुरआन, सूरा–15, अल-हिज्र, आयत–33)

इस आयत से यह भी पता चलता है कि इस धरती पर मनुष्यों से पहले जिन्न आबाद थे। फिर मनुष्य को पैदा किया गया, जो अल्लाह का ख़लीफ़ा (प्रतिनिधि) बना।

2. जिन्नों को एक विशेष प्रकार की शक्ति दी गई है जो मनुष्यों को नहीं दी गई। क़ुरआन में 'इफ़रीत' नामक जिन्न का उल्लेख हुआ है, जिसने सुलैमान नबी से कहा कि मैं सबा की रानी का सिंहासन आपके अपने स्थान से उठने से पूर्व ला सकता हूँ। मैं इस काम के लिए शक्तिशाली और विश्वसनीय हूँ। (क़ुरआन, सूरा–27, अन-नम्ल, आयत–39)

सबा जिसकी राजधानी मारिब थी, यमन देश की राजधानी सना से 55 मील दूर उत्तर पूर्व में स्थित एक प्रदेश है और सुलैमान नबी बैतुल-मक़दिस, फ़िलस्तीन के राजा थे। दोनों के बीच दो हज़ार से भी अधिक मील की दूरी है।

परन्तु सुलैमान के पास एक दूसरा जिन्न भी था जो 'इफ़रीत' से भी शक्तिशाली था। उसने कहा –

«मैं आपकी पलक झपकने से पहले उसे ला दूँगा। फिर जब उस (सुलैमान) ने उसे अपने पास रखा हुआ देखा तो पुकार उठा, "यह मेरे 'रब' का अनुग्रह है, ताकि वह मेरी परीक्षा करे कि मैं कृतज्ञता दिखलाता हूँ, या कुफ़्र करता हूँ।"» (क़ुरआन, सूरा–27, अन-नम्ल, आयत–40)

3. मनुष्य आकाश में किसी साधन के बिना घूम-फिर नहीं सकते जबकि जिन्न आकाश में बिना किसी साधन के घूम फिर सकते हैं और वहाँ से कुछ बातें भी उचक लेते हैं और उनमें अपनी ओर से बढ़ाकर लोगों को बता देते हैं परन्तु मलए-आला, जो सबसे उच्च दरबार है, तक नहीं पहुँच सकते, क्योंकि उसके निकट पहुँचते ही हर ओर से उनपर अंगारों की वर्षा कर दी जाती है। (सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयतें–8-10)

4. मनुष्य को अल्लाह ने एक ही रूप में रहने पर विवश किया है जबकि जिन्नों को अल्लाह ने यह अधिकार दिया है कि वे विभिन्न रूपों में मनुष्यों के सामने ज़ाहिर हो सकते हैं, और बहुत तेज़ी के साथ विभिन्न स्थानों पर पहुँच सकते हैं। इसलिए नबी (ﷺ) ने हमें यह शिक्षा दी है कि अगर हम रात्रि में कहीं पड़ाव डालें तो यह दुआ पढ़ लें –

"अ-ऊज़ु बि-कलिमातिल्लाहि त्ताम्मातिम-मिन-शर्रि मा ख़लक़" (सहीह मुस्लिम, 2708)

(सृष्टि के कष्ट पहुँचाने से अल्लाह के मुकम्मल कलिमों के ज़रिए शरण माँगता हूँ।)

इस दुआ के पढ़ने के कारण अगर वहाँ जिन्नों की आबादी है तो वे हमें हानि नहीं पहुँचा सकते।

5. मनुष्यों में से केवल सुलैमान (عليه السلام) को ही जिन्नों पर सत्ता का अधिकार दिया गया था –

«सुलैमान के लिए इसकी सेनाएँ एकत्र की गईं जिनमें जिन्न भी थे और इनसान भी और पक्षी भी।» (क़ुरआन, सूरा–27, अन-नम्ल, आयत–17)

सुलैमान (عليه السلام) ने अल्लाह से एक दुआ की थी जिसमें उन्होंने कहा था–

«मेरे 'रब' मुझे क्षमा कर दे, और मुझे वह राज्य प्रदान कर जो मेरे बाद किसी के लिए उचित न हो। निस्सन्देह तू ही सबसे बड़ा दाता है।» (क़ुरआन, सूरा–38, सॉद, आयत–35)

एक सहीह हदीस में आया है कि नबी (ﷺ) ने कहा –

"मैं रात में 'तहज्जुद' की नमाज़ पढ़ रहा था कि एक बड़ा ही शक्तिशाली (इफ़रीत) जिन्न मेरी नमाज़ ख़राब करने की चेष्टा करने लगा, परन्तु अल्लाह ने मुझे उसपर विजयी कर दिया। मैंने चाहा कि उसको मस्जिद के खम्भों से बाँध दूँ, ताकि तुम लोग भोर होने पर उसे देखो। तब मुझे अपने भाई सुलैमान की यह बात याद आ गई, 'ऐ अल्लाह! मुझे ऐसा राज्य प्रदान कर दे जो मेरे बाद किसी के लिए उचित न हो।' तो मैंने उसे तिरस्कृत दशा में छोड़ दिया।" (सहीह बुख़ारी, 461 तथा सहीह मुस्लिम, 54)

यहाँ ऐसे राज्य से अभिप्राय ऐसा देश है जिसमें मनुष्यों की भाँति जिन्नों की भी सेना हो और वे भी मनुष्यों की तरह काम करें। क़ुरआन में आया है –

«सुलैमान जो कुछ चाहते वे (जिन्न) उसके लिए तैयार कर देते, जैसे ऊँचे-ऊँचे उपासना-गृह, प्रतिमाएँ, पानी के बड़े हौज़ जैसे थाल और देगें (भारी-भारी) जो एक ही स्थान पर जमी रहतीं।» (सूरा–34, सबा, आयत–13)

लेकिन एक दूसरा मत यह भी है कि जिस क्षेत्र में जो नबी भी आते थे उस क्षेत्र के जिन्न उनका ही अनुकरण करते थे तभी तो वे तौरात से परिचित थे, जैसा कि सूरा अल-अहक़ाफ़ की आयत-30 में आया है।

6. जिन्नों के कामों में से यह काम भी है कि वे लोगों के दिलों में भ्रम (वसवसा) डालें, जैसा कि क़ुरआन की सूरा–114, अन-नास में हमें यह शिक्षा दी गई है कि हम जिन्नों के भ्रम से अल्लाह की पनाह माँगें।

अब उन बातों की ओर संकेत किया जाता है, जो जिन्न तथा मनुष्य दोनों में सामान्य रूप से पाई जाती हैं –

1. जिन्नों और मनुष्यों को अल्लाह ने अपनी इबादत (अथवा तौहीद के मार्ग पर चलने) के लिए पैदा किया। (क़ुरआन, सूरा–51, अज़-ज़ारियात, आयत–56) इसमें उन लोगों के विचारों का खंडन किया गया है जो जिन्नों को ही अपना उपास्य बना बैठे थे –

   «जिस दिन वह सबको इकट्ठा करेगा, फिर फ़रिश्तों से कहेगा, "क्या ये लोग तुम्हारी ही पूजा करते थे।" वे कहेंगे, "तेरी महिमा हो! हमारा सम्बन्ध तो तुझसे है, न कि उनसे! बल्कि बात यह है कि वे जिन्नों की पूजा करते थे। इनमें से अधिकतर उनपर ईमान लाए हुए थे।» (सूरा–34, सबा, आयतें–40,41)

   इसलिए जहन्नम को जहाँ एक ओर मनुष्यों से भरा जाएगा वहीं जिन्नों से भी भरा जाएगा। (क़ुरआन, सूरा–11, हूद, आयत–119 तथा सूरा–32, अस-सज्दा, आयत–13)

2. जिन्नों में भी मनुष्यों की भाँति सदाचारी तथा कदाचारी पाए जाते हैं। (क़ुरआन, सूरा–72, अल-जिन्न, आयत–11)

3. इन दोनों प्राणियों को अल्लाह ने कुछ अधिकार दे रखे हैं इसलिए अल्लाह दोनों को सम्बोधित करते हुए कहता है –

«ऐ मनुष्यो और जिन्नो के गरोह! यदि तुममें शक्ति है कि आकाशों और धरती की सीमाओं को पार कर सको, तो पार कर जाओ; तुम कदापि पार नहीं कर सकते बिना अधिकार शक्ति के।» (क़ुरआन, सूरा–55, अर-रहमान, आयत–33)

4. जिन्न भी मनुष्यों की तरह स्त्रियों से सहवास करते हैं –

«उन (अनुकम्पाओं) में निगाह बचाए रखने वाली स्त्रियाँ होंगी, जिन्हें उनसे पहले न किसी मनुष्य ने हाथ लगाया होगा और न किसी जिन्न ने।» (क़ुरआन, सूरा–55, अर-रहमान, आयत–56)

5. मनुष्यों की तरह जिन्नों की ओर भी रसूल भेजे गए –

«ऐ जिन्नों तथा मनुष्यों के गिरोह! क्या तुम्हारे पास तुम्हीं में से रसूल नहीं आए थे, जो तुम्हें मेरी आयतें सुनाते और इस दिन के पेश आने से तुम्हें डराते थे? वे कहेंगे, ''क्यों नहीं! (रसूल आए थे) हम ही स्वयं अपने विरुद्ध गवाह हैं। सांसारिक जीवन ने उन्हें धोखे में रखा। मगर अब वे स्वयं अपने विरुद्ध गवाही देने लगे कि वास्तव में वे विधर्मी थे।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–131)

6. अब मुहम्मद (ﷺ) क़ियामत तक के लिए सारे संसार के लिए नबी बनाकर भेजे गए हैं। तो जिस प्रकार पहले नबियों की शिक्षाएँ निरस्त हो गईं, उसी प्रकार जिन्नों के नबियों की शिक्षाएँ भी निरस्त हो गईं। अब जिन्नों की सफलता भी इसी में है कि वे मनुष्यों की तरह मुहम्मद (ﷺ) की नुबुव्वत को स्वीकार करें।

7. मनुष्यों और जिन्नों दोनों को चैलेंज किया गया कि तुम दोनों मिलकर भी क़ुरआन जैसी पुस्तक नहीं ला सकते। (देखें : क़ुरआन, सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–88)

8. मनुष्यों की तरह जिन्न भी ग़ैब (परोक्ष) का ज्ञान नहीं रखते थे, जबकि यह बात मशहूर हो गई थी और आज भी लोग विश्वास करते हैं कि जिन्न ग़ैब का ज्ञान रखते हैं। इसका खंडन क़ुरआन ने यह कहकर कर दिया –

«फिर जब हमने सुलैमान के लिए मौत का फ़ैसला लागू किया तो फिर उन जिन्नों को उसकी मौत का पता बस भूमि के उस कीड़े ने दिया जो उसकी लाठी को खा रहा था। जब सुलैमान गिर पड़ा तो जिन्नों ने कहा कि यदि वे ग़ैब का ज्ञान रखते तो इस अपमान के प्रकोप में फँसे न रहते।» (देखिए : सूरा–34, सबा, आयत–14)

❋ जिन्नों का क़ुरआन सुनना :

क़ुरआन में जिन्नों के क़ुरआन सुनने का वर्णन आया है –

«(ऐ मुहम्मद ! लोगों से) कह दो, "मेरी ओर 'वह्य' की गई है कि जिन्नों के एक गिरोह ने (इस किताब को) सुना, तो उन्होंने कहा, हमने एक मन भाता क़ुरआन सुना है, वह सीधा मार्ग दिखाता है, तो हम उसपर ईमान ले आए और हम कदापि किसी को अपने रब का साझी न ठहराएँगे। और यह कि हमारे रब का गौरव अत्यन्त ऊँचा है – उसने न तो किसी को अपनी पत्नी बनाया और न किसी को अपनी औलाद, और यह कि हममें का मूर्ख, अल्लाह से सम्बन्ध लगाकर बहुत दूर की बात कहता रहा है। और यह कि हमने समझ रखा था कि मनुष्य और जिन्न अल्लाह के विषय में कदापि झूठी बात न कहेंगे। और यह कि मनुष्यों में से कितने ही ऐसे लोग रहे हैं जो जिन्नों में से कितने ही लोगों की शरण लेते थे, तो उन्होंने उन्हें और चढ़ा दिया। और यह कि उन्होंने समझ लिया था जैसे तुमने समझ लिया था कि अल्लाह किसी (नबी) को कदापि न उठाएगा। और यह कि हमने आकाश को टटोला तो पाया कि उसे सख़्त चौकीदार और अग्नि शिखाओं से भर दिया है। और यह कि हम उसके बैठने के स्थानों में सुनने के लिए बैठा करते थे। परन्तु अब कोई सुनने जाए तो वह अपने लिए एक अग्निशिखा को घात में लगा पाएगा। और यह कि हम नहीं जानते कि उन लोगों के साथ जो धरती में हैं बुराई का इरादा किया गया है या उनके रब ने उनके लिए भलाई और मार्गदर्शन का इरादा किया है। और यह कि हममें कुछ नेक लोग हैं और हम ही में और तरह के भी, हम अलग-अलग मार्गों पर थे। और यह कि हमने समझ लिया कि हम न धरती में कहीं अल्लाह के अधिकार से निकल सकते हैं, और न आकाश में कहीं भागकर उसके अधिकार से निकल सकते हैं। और यह कि हमने जब हिदायत (मार्गदर्शन) की बात सुन ली, तो उसे स्वीकार कर लिया। अब जो कोई अपने रब पर ईमान लाएगा, उसे न तो किसी हक़ के मारे जाने का भय होगा और न किसी अत्याचार का। और यह कि हममें से कुछ तो मुस्लिम (आज्ञाकारी) हैं और हममें से कुछ मार्ग से फिरे हुए हैं। तो जो मुस्लिम हुए, उन्होंने तो भलाई और सूझ-बूझ का मार्ग पसन्द कर लिया। रहे वे लोग जो मार्ग से फिरे हुए हैं तो वे जहन्नम का ईंधन हुए। (सूरा–72, अल-जिन्न, आयतें–1-15)

आयत नम्बर 8,9,10 और से स्पष्ट होता है कि जिन्नों द्वारा क़ुरआन सुनने की घटना मुहम्मद (ﷺ) के नबी होने के प्रारंभिक समय में घटी होगी क्योंकि जब अल्लाह की ओर से वह्य आने लगी, तो आकाश में फ़रिश्तों को नियुक्त कर दिया गया, ताकि कोई जिन्न या शैतान वह्य उचक न ले। और फिर उसमें घटा-बढ़ा न दे। इसी की ओर इन आयतों में संकेत किया गया है। सहीह बुख़ारी (4921) तथा सहीह मुस्लिम (882) में अब्दुल्लाह -बिन-अब्बास की यह हदीस आई है कि जब शैतान को

आकाश के समाचार प्राप्त करने से रोक दिया गया तो उसने अपने लोगों को यह पता लगाने के लिए भेजा कि ऐसा क्यों हुआ। वे घूमते-घूमते 'नख़ला' नाम के स्थान पर पहुँचे, जहाँ नबी (ﷺ) अपने साथियों के साथ भोर (फ़ज्र) की नमाज़ पढ़ रहे थे। जब उन्होंने क़ुरआन सुना तो पुकार उठे कि यही वह चीज़ है जिसके कारण हमारे और आकाश के समाचार के बीच रुकावट खड़ी कर दी गई है, और फिर वे अपने साथियों को बताने चले गए कि हमने एक अद्भुत क़ुरआन सुना है। अर्थात् उस समय सूरा–72, अल-जिन्न अवतरित हुई।

हाफ़िज़ इब्ने-हजर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'बुख़ारी शरीफ़ की व्याख्या' में बताया है कि यह घटना मुहम्मद (ﷺ) के नबी बनने के प्रारम्भिक समय की है। जिन्नों के क़ुरआन सुनने की दूसरी घटना का वर्णन क़ुरआन की सूरा–46, अल-अहक़ाफ़ में आया है –

«याद करो (ऐ नबी) जब हमने कुछ जिन्नों का ध्यान तुम्हारी ओर कर दिया कि वे क़ुरआन सुन लें, तो जब वे वहाँ पहुँचे तो कहने लगे, ''चुप हो जाओ!'' फिर जब वह (क़ुरआन, का पाठ) पूरा हो गया, तो वे अपनी जातिवालों की ओर सचेत करनेवाले बनकर लौटे। उन्होंने कहा, ''ऐ मेरी जातिवालो! हमने एक किताब सुनी है, जो मूसा के बाद उतरी है, उसकी पुष्टि में है जो उससे पहले से मौजूद है, सत्य की ओर और सीधे मार्ग की ओर ले जाती है। ऐ हमारी जातिवालो, आमन्त्रणकर्त्ता का आमन्त्रण स्वीकार करो और उसपर ईमान लाओ। वह (अल्लाह) तुम्हारे गुनाहों को क्षमा कर देगा, और तुम्हें दुखदाई यातना से बचा लेगा, और जो कोई अल्लाह के मन्त्रणकर्त्ता का आमन्त्रण स्वीकार नहीं करेगा तो वह धरती पर (अल्लाह से) बचकर कहीं नहीं जा सकता, और न इसके अतिरिक्त कोई उसका सहायक (वली) होगा, यही वे लोग हैं, जो खुली गुमराही में हैं।''» (सूरा–46, अल-अहक़ाफ़, आयतें–29-32)

इन आयतों से पता चलता है कि जिन्न पहले से मूसा (عليه السلام) तथा ईसा (عليه السلام) पर ईमान रखते थे। इसलिए जब उन्होंने क़ुरआन को सुना तो पुकार उठे कि यह तो वही संदेश है जो मूसा और ईसा लेकर आए थे।

हदीसों से पता चलता है कि यह घटना उस समय घटी जब नबी (ﷺ) ताइफ़ से वापस आ रहे थे, जो आप (ﷺ) के नबी बनने का दसवाँ साल था। ताइफ़वालों ने आप (ﷺ) को बहुत कष्ट पहुँचाया, जिसके कारण आप दुखी थे। इस घटना ने आप (ﷺ) को भरोसा दिलाया कि इनसान तो इनसान, जिन्न भी आप पर ईमान ला रहे हैं।

अब्दुल्लाह इब्ने-अब्बास का विचार है कि इनकी संख्या सात थी, जो तुर्की के नगर 'नसीबैन' से आए थे। (देखिए: इब्ने-कसीर 7 : 272) और यह घटना भी नख़ला में घटी, क्योंकि वह एक ऐसा स्थान है जहाँ पानी है, जिसके कारण वहाँ पड़ाव डालना सरल होता है। इन दो घटनाओं के अतिरिक्त

भी अनेक घटनाएँ घटी हैं, जब जिन्न नबी (ﷺ) के पास क़ुरआन सुनने आया करते थे, और कभी-कभी आप स्वयं उनके पास चले जाया करते थे। सहीह रिवायतों से पता चलता है कि इस प्रकार की कोई सात घटनाएँ घटी हैं।

इस विषय में और भी बहुत कुछ लिखा जा सकता है, परन्तु विस्तार-भय से जिन्न-संबंधी विवरण को यहीं विराम दिया जाता है। अधिक जानकारी के लिए मेरी किताब 'जामिउल-कामिल' देखें।

जीवधारी

क़ुरआन में मनुष्यों, जिन्नों तथा फ़रिश्तों के अतिरिक्त अन्य चार प्रकार के जीवधारियों का वर्णन भी विभिन्न स्थानों पर विभिन्न रूपों में हुआ है। जैसे–

- **पशुओं में :** हाथी, घोड़ा, ऊँट, गधा, ख़च्चर, सूअर, बन्दर, कुत्ता, बकरी, गाय, शेर, भेड़िया और बछड़ा।
- **कीड़े-मकोड़ों और रेंगनेवाले जानवरों में :** चींटी, घुन का कीड़ा, इत्यादि।
- **उड़नेवाले परिंदों में :** कौआ, हुदहुद, शहद की मक्खी, मक्खी, पतिंगा, टिड्डी, मच्छर इत्यादि।
- **पानी में रहनेवाले जीवधारियों में :** मछली, मेंढक आदि। इन जीवधारियों का वर्णन यथास्थान कर दिया गया है।

जुमुआ

शुक्रवार को अरबी भाषा में जुमुआ कहते हैं। इस्लाम से पहले इसको 'अरुबा' कहते थे। जुमुआ इस्लामी नाम है, जो सप्ताह का छठा दिन होता है। पहला दिन रविवार है। इसी दिन से अल्लाह ने इस संसार की रचना का आरम्भ किया और छह दिनों में शुक्रवार को समाप्त किया ओर फिर सिंहासन पर विराजमान हो गया। क़ुरआन में है –

«वास्तव में तुम्हारा रब तो अल्लाह ही है जिसने आकाशों और धरती को छह दिनों में पैदा किया, और फिर अर्श (सिंहासन) पर विराजमान हो गया।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–54)

सहीह हदीसों से पता चलता है कि शुक्रवार ही को अल्लाह ने आदम को पैदा किया। इसी दिन उनको स्वर्ग में प्रविष्ट किया। इसी दिन उनको स्वर्ग से बाहर निकाला। इसी दिन प्रलय आएगी, इस दिन एक ऐसी भी घड़ी है, जिसमें अल्लाह अपने बन्दों की दुआओं को विशेष तौर पर स्वीकार करता है।

अर्थात् शुक्रवार की बड़ी विशेषताएँ और महिमाएँ हैं। इस्लाम से पहले जो लोग इबराहीम के अनुयायी थे वे भी इस दिन की विशेषताओं और महिमाओं को मानते थे, जिसमें स्वयं मूसा (ﷺ) भी थे। परन्तु बाद में यहूदियों ने जब अल्लाह को एक मनुष्य का रूप दे दिया, जिसको वे 'यहोवा' कहते हैं, तो उन्होंने शुक्रवार को छोड़कर शनिवार को ग्रहण कर लिया, और यह कहने लगे कि चूँकि अल्लाह ने छह दिनों में संसार को पैदा किया और सातवें दिन विश्राम किया, इसलिए हम भी सातवें दिन विश्राम करेंगे। और फिर इसके लिए उन्होंने अपने नबियों और दूसरे लोगों के बहुत सारे वचन बाइबल में प्रविष्ट कर लिए। फिर ऐसा हुआ कि शनिवार को अल्लाह ने उनके लिए अनिवार्य कर दिया और उसके विपरीत काम करने पर उनको कठोर दंड दिया। क़ुरआन इसी ओर संकेत करते हुए कहता है –

«रहा शनिवार का दिन तो यह उन लोगों पर आच्छादित कर दिया गया जिन्होंने उसके विषय में विभेद किया। और निस्सन्देह तेरा रब क़ियामत के दिन उसमें मतभेद करनेवालों के बीच फ़ैसला कर देगा।» (सूरा–16, अन-नहल, आयत–124)

अर्थात् उन लोगों पर प्रकट कर देगा कि वास्तव में इबराहीम (ﷺ) के धर्मशास्त्र में तो शुक्रवार की विशिष्टता थी परन्तु तुम लोगों ने स्वयं शनिवार को अपना लिया और फिर स्वयं अपने बनाए हुए विधान का ही अपमान और उल्लंघन किया, जिसके कारण कठोर दंड के भागी बने।

इसी की ओर सहीह 'बुख़ारी' की एक हदीस में संकेत किया गया है –

"हम क़ियामत के दिन सबसे आगे होंगे, जबकि उन लोगों को हमसे पहले धर्मशास्त्र दिया गया था, और यही शुक्रवार का दिन था जो उनपर अनिवार्य किया गया था, लेकिन वे उसमें मतभेद कर बैठे। बस अल्लाह ने हमारी हिदायत की, इसलिए लोग हमारे अधीन हैं। यहूदी एक दिन बाद (अर्थात् शनिवार को) और ईसाई उनके एक दिन बाद (अर्थात् रविवार)।" (सहीह बुख़ारी, 876 तथा सहीह मुस्लिम, 855)

यहूदियों ने शनिवार को अपने लिए पवित्र दिन ठहराया। इस दिन वे कोई काम नहीं करते थे। उनके धार्मिक विद्वान केवल धर्मशास्त्रों का अध्ययन करते थे। जब ईसा (ﷺ) आए और उन्होंने यहूदियों की दशा देखी तो उनकी कड़ी आलोचना की और कहा –

"सब्त का दिन (शनिवार) मनुष्य के लिए बनाया गया है, न कि मनुष्य सब्त के दिन के लिए। इसलिए मनुष्य का पुत्र 'सब्त' के दिन का भी स्वामी है।" (बाइबल, मरक़ुस, 2:27)

यहूदी ईसा (ﷺ) से एक बार इसलिए क्रोधित हो उठे, क्योंकि उन्होंने शनिवार को एक सूखे हाथवाले मनुष्य के हाथ को ठीक कर दिया। (बाइबल, मरक़ुस, 3:3-6)

प्रारम्भिक काल में कुछ ईसाइयों ने शनिवार को पवित्र माना, लेकिन फिर वे शनिवार को छोड़कर रविवार को पवित्र मानने लगे, क्योंकि उनके विचार में रविवार को मसीह (ﷺ) क़ब्र से बाहर निकले

थे। सन 364 ईसवी में मसीही धर्म सम्मेलन ने सदैव के लिए शनिवार के स्थान पर रविवार को निर्धारित कर दिया। इस प्रकार ये दोनों जातियाँ-यहूदी तथा ईसाई–उस पवित्र दिवस को नहीं पा सके, जिसे जुमुआ कहते हैं। इस पवित्र दिन जुमुआ की ओर अल्लाह ने नबी (ﷺ) का मार्गदर्शन किया।

जुमे का अर्थ है इकट्ठा होना। इस्लाम में इसकी इतनी अधिक विशिष्टता और महिमा है कि अल्लाह तआला ने इस नाम की सूरा उतारी, जिसको 'सूरतुल-जुमा' कहा जाता है। इस सूरा की नवीं आयत है –

«ऐ ईमानवालो ! जब जुमा के दिन तुम्हें नमाज़ के लिए बुलाया जाए तो तुम अल्लाह को याद करने के लिए दौड़ पड़ो और क्रय-विक्रय छोड़ दो। यह तुम्हारे लिए अच्छा है यदि तुम ज्ञान रखते हो।» (क़ुरआन, सूरा–62, अल-जुमुआ, आयत–9)

यहाँ अल्लाह की याद का तात्पर्य है जुमा की नमाज़, जिसे पढ़ना प्रत्येक मुसलमान के लिए अनिवार्य ठहराया गया है। सहीह हदीसों में इसे पढ़ने की बड़ी ताकीद आई है। एक सहीह हदीस में आया है –

"लोग जुमे की नमाज़ छोड़ने से रुक जाएँ, नहीं तो अल्लाह उनके दिलों पर ठप्पा लगा देगा। फिर वे ग़ाफ़िलों में से हो जाएँगे।" (सहीह मुस्लिम 865)

इसी प्रकार एक दूसरी हदीस में आया है:

"जो मुसलमान तीन जुमे अपनी सुस्ती के कारण छोड़ेगा, अल्लाह उसके हृदय पर ठप्पा लगा देगा।" (देखिए: इब्ने-माजा 1126, इब्ने-ख़ुज़ैमा 1856 तथा मुसनद अहमद 14559)

हाँ, मुसाफ़िर (यात्री), महिला, छोटे बच्चे और रोगी, पर जुमे की नमाज़ फ़र्ज़ नहीं है।

❋ जुमे के कुछ विशेष आदाब :

1. जुमे के दिन हर मुसलमान को स्नान अवश्य करना चाहिए।
2. अच्छे वस्त्र पहनना और सुगंध लगाना सुन्नत है।
3. जल्द-से-जल्द मस्जिद पहुँचने का प्रयास करना चाहिए।
4. मस्जिद में प्रवेश करते समय इसका ध्यान रखना चाहिए कि किसी दूसरे व्यक्ति को कष्ट न हो। इसलिए किसी को फलाँगकर आगे जाना मना है, बल्कि जहाँ स्थान मिले, वहीं बैठ जाना चाहिए।
5. अगर कोई व्यक्ति किसी कारण मस्जिद से बाहर जाता है, तो उसके स्थान को ख़ाली रखना चाहिए, क्योंकि वह उस स्थान का अधिक अधिकारी है।
6. यदि दो व्यक्तियों के बीच में कुछ स्थान है, और कोई तीसरा व्यक्ति वहाँ बैठना चाहता है तो चाहिए कि इधर-उधर सरक जाएँ, ताकि उसके लिए स्थान बन जाए।

7. बैठने से पूर्व दो रकअत नमाज़ पढ़ना सुन्नत है, जिसको 'तहियतुल मस्जिद' अर्थात् 'मस्जिद का प्रणाम' कहते हैं।
8. जब इमाम ख़ुतबा (भाषण) दे रहा हो, तो उसके भाषण को ध्यानपूर्वक सुनना अनिवार्य है। भाषण के बीच किसी से बातें करना या अपने आपको किसी और काम में लगाना मना है।
9. जुमे के दिन नबी (ﷺ) पर अधिक से अधिक दुरूद व सलाम भेजना चाहिए।
10. इमाम को चाहिए कि अपना भाषण बहुत लम्बा न करे, बल्कि जो कुछ कहना है संक्षेप में बयान करे।
11. जब इमाम भाषण देने के लिए खड़ा हो जाए और अज़ान दी जाने लगे, उस समय किसी भी प्रकार का काम करना निषिद्ध हो जाता है। इसलिए ऐसे समय में कोई चीज़ बेचना या ख़रीदना वर्जित है।
12. जुमे की नमाज़ के पश्चात् नियमानुसार काम, व्यापार वग़ैरह किया जाए।

जुमा वास्तव में मुसलमानों का साप्ताहिक त्योहार है। इसलिए इस दिन अच्छे वस्त्र पहनना, स्नान करना, अच्छा खाना खाना, एक-दूसरे से मिलना-जुलना, बच्चों को घुमाना-फिराना ये सब उचित काम हैं। परन्तु इस्लामी शिक्षाओं के विरुद्ध कोई काम करना उचित नहीं। जैसे : सिनेमा देखना, मुस्लिम स्त्रियों का बनाव-सिंगार करके बाहर निकलना इत्यादि।

जुलकिफ़्ल

ज़ुलकिफ़्ल का वर्णन कुरआन में दो बार आया है। एक स्थान पर है –

«और हमने इसमाईल, इदरीस, तथा ज़ुलकिफ़्ल पर भी कृपा-दृष्टि की। ये लोग धैर्यवान थे। और हमने इन्हें दयालुता (की छाया) में प्रविष्ट किया। निस्संदेह ये सदाचारी लोगों में से थे।» (सूरा–21, अल-अंबिया, आयतें-85,86)

दूसरे स्थान पर आया है –

«और इसमाईल, अल-यसअ तथा ज़ुलकिफ़्ल को भी याद करो। ये सब सदाचारी लोग थे।» (सूरा–38, सॉद, आयत–48)

इनमें कहीं भी यह नहीं बताया गया है कि ज़ुलकिफ़्ल की ओर वह्य की गई है और न ही सहीह हदीसों में उनके नबी होने की चर्चा आई है, जिससे हम विश्वास के साथ कह सकें कि वे भी नबी थे। परन्तु नबियों के साथ उनकी चर्चा संकेत करती है कि वे भी कदाचित् नबी थे। परन्तु कुछ विद्वानों का विचार है कि वे नबी नहीं, बल्कि एक सदाचारी और न्यायप्रिय व्यक्ति थे, जो लोगों को सदैव न्यायप्रियता का संदेश देते थे। मुजाहिद का विचार है, जो तफ़सीर के एक महान विद्वान थे, कि ज़ुलकिफ़्ल अल-यसअ के पश्चात् उनके ख़लीफ़ा (उत्तराधिकारी) बने। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं बताया

कि वे कहाँ पैदा हुए, उनका समयकाल क्या था? परन्तु अगर हम मुजाहिद की बात सही मान लें तो फिर यह कहना पड़ेगा कि वे जार्डन में पैदा हुए, क्योंकि अल-यसअ वहीं पैदा हुए थे। उनके समय का तो पूरा ज्ञान नहीं है, परन्तु ऐसा माना जाता है कि वे लगभग 878-838 ईसा पूर्व थे। अनुमान है कि वे 878 ईसा पूर्व ख़लीफ़ा बने होंगे और उनका सम्बन्ध भी जार्डन से ही रहा होगा।

"जुलकिफ़्ल का आस्ताना"

कुछ विद्वानों का विचार है कि ज़ुलकिफ़्ल वही हैं जिनको बाइबल में यहेज़केल कहा गया है। परन्तु दोनों के क़िस्से में कोई ऐसी बात नहीं मिलती, जिससे इस विचार की पुष्टि होती हो। इसलिए हम जो बात विश्वास के साथ कह सकते हैं वह केवल यह है कि ज़ुलकिफ़्ल एक सदाचारी और न्यायप्रिय व्यक्ति थे और लोगों को इसी का उपदेश देते थे।

ज़करीया (ﷺ)

ये एक महान नबी थे।

इबराहीम (ﷺ) के वंश से थे। (क़ुरआन, सूरा–6, अल-अनआम, आयत–86)

उनका जन्म स्थान फ़िलस्तीन है। वे अपनी जीविका के लिए बढ़ई का काम करते, और शेष समय मस्जिदे-अक़्सा की सेवा में लगे रहते। आनेवालों को अल्लाह का उपदेश सुनाते और उनको नमाज़ पढ़ने की हिदायत देते। वे मरयम के ख़ालू (मौसा) थे। जब उनकी माता ने मरयम को बैतुल-मक़दिस की सेवा के लिए भेंट कर दिया, तो वे ही उनके संरक्षक बने। एक दूसरे उल्लेख में है कि आप मरयम के ख़ालू नहीं, बल्कि बहनोई थे। अर्थात् उनकी पत्नी मरयम की बहन थीं। उनके साथ यह चमत्कार हुआ कि जब वे बूढ़े हो गए, और उनकी पत्नी बालक को जन्म देने योग्य नहीं रह गईं, तो अल्लाह ने उनकी प्रार्थना के कारण उनकी पत्नी को इस योग्य बना दिया कि यह्या नामक एक बालक को जन्म दिया। उस समय उनकी उम्र लगभग नव्वे वर्ष थी। जब उनके पुत्र यह्या लगभग तीस वर्ष के हो गए तो दोनों को 'हीरोदस अन्तीवास' नामक शासक ने शहीद करा दिया। इसलिए एक हदीस में यह्या के विषय में 'शहीद इब्ने-शहीद' आया है।

क़ुरआन की सूरा–3, आले-इमरान की आयत 40 में ज़करीया की पत्नी का उल्लेख हुआ है, जिसमें बताया गया है कि वह एक बाँझ स्त्री थी। जब उनको पुत्र की सूचना दी गई, तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि मैं तो बाँझ हूँ। मेरे यहाँ पुत्र कैसे होगा। इनका नाम यूनानी भाषा में अलीसावात है और इबरानी में अल-यशअ हिन्दी बाइबल में इलीशिबा लिखा गया है। वह हारून नबी के वंश की थी और मरयम की माँ 'हन्ना:' की सगी बहन थी। इसी लिए जब मरयम के पालन-पोषण' की बात आई तो ज़करीया को उनका संरक्षक बनाया गया, क्योंकि वे मरयम के ख़ालू थे। ज़करीया की पत्नी 'इलीशिबा' का पूरा वर्णन लूक़ा की इंजील (1:5-24) में पाया जाता है।

क़ुरआन के वृत्तांत से जो बातें उनके बारे में स्पष्ट होती हैं, वे ये हैं –

1. वे बड़े संयमी तथा सदाचारी थे :

«ज़करीया, यह्या, ईसा तथा इलयास ये सभी लोग बड़े सदाचारी थे।» (सूरा–6, अन-आम, आयत–85)

2. वे मस्जिद-अक़्सा के इमाम थे –

«तो फ़रिश्तों ने उसे आवाज़ दी जब वह मेहराब में खड़ा नमाज़ पढ़ रहा था।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–39)

जब मरयम की माता ने अपनी पुत्री को मस्जिदे-अक़्सा की सेवा के लिए समर्पित किया तो ज़करीया ही उनके संरक्षक बने। क़ुरआन में है –
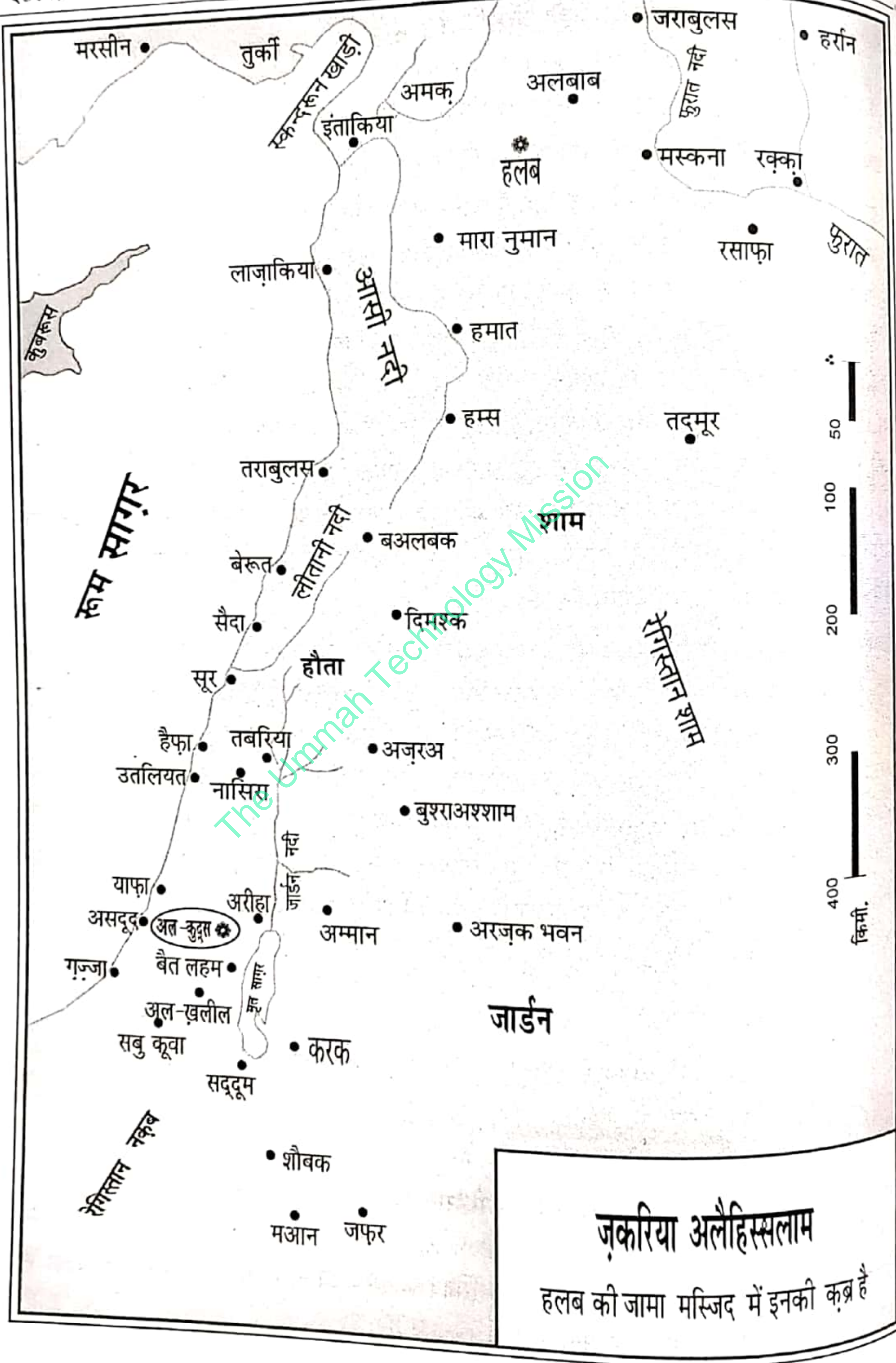
«ज़करीया को उसका संरक्षक बनाया।» (क़ुरआन, सूरा–3, आले-इमरान, आयत–37)

3. बुढ़ापे में अल्लाह से संतान की प्रार्थना की, जिसे अल्लाह ने स्वीकार कर लिया –

«उस समय ज़करीया ने अपने 'रब' को पुकारा, ''रब! तू मुझे अपने पास से अच्छी सन्तान प्रदान कर। निस्सन्देह तू प्रार्थना सुननेवाला है।'' तो फ़रिश्तों ने उसे आवाज़ दी, जबकि वह 'मेहराब' में नमाज़ पढ़ रहा था, ''अल्लाह तुझे यह्या की शुभ-सूचना देता है।''» (सूरा–3, आले-इमरान, आयतें-38,39)

«ऐ ज़करीया, हम तुझे एक बालक की शुभ सूचना देते हैं, जिसका नाम यह्या होगा।» (सूरा–19, मरयम, आयत–7)

«तो हमने उसकी प्रार्थना सुन ली, और उसे यह्या प्रदान किया।» (सूरा–21, अल-अंबिया, आयत–90)

4. उसने लोगों को अल्लाह की इबादत करने और उसकी महानता का वर्णन करने का आदेश और उपदेश दिया –

«तब वह मेहराब से बाहर निकला और अपनी जातिवालों के पास आया, और उनसे संकेतों में कहा, ''प्रातः काल तथा संध्या-समय अपने रब की तसबीह (महिमागान) करो।''» (सूरा–19, मरयम, आयत–11)

ज़करीया का आदेश और उपदेश भी वही था जो सारे नबियों का था अर्थात् एक अल्लाह की उपासना करना, उसके साथ किसी को साझी न ठहराना, और मूर्ति-पूजा का खंडन करना।

ज़ुल-क़रनैन

यह दो शब्दों के मेल से बना है। इसका अर्थ है 'दो सींगोंवाला'। 'ज़ुल-क़रनैन' का वर्णन क़ुरआन में इस प्रकार आया है –

«(ऐ मुहम्मद!) वे तुमसे ज़ुल-क़रनैन के बारे में पूछते हैं। कह दो, ''मैं उसका कुछ ज़िक्र तुमसे बयान करता हूँ। हमने उसे धरती में प्रभुत्त्व प्रदान किया था और उसे हर प्रकार की सामग्री दे रखी थी। तो उसने पश्चिम की ओर (एक मुहिम का) आयोजन किया। यहाँ तक कि वह सूर्यास्त की जगह पहुँचा, उसने उसे एक मटमैले काले पानी के एक स्रोत में अस्त होते पाया, और उसके निकट उसे एक जाति मिली। हमने कहा, ''ऐ ज़ुल-क़रनैन, (तुम्हें इसकी शक्ति प्राप्त है कि) चाहे तुम इन्हें यातना दो और चाहे इनके साथ अच्छा व्यवहार करो।'' उसने कहा, ''(इन लोगों में से) जो कोई ज़ुल्म करेगा, उसे हम दण्ड देंगे। फिर वह अपने 'रब' की ओर पलटाया जाएगा, तो वह उसे

कठोर यातना देगा। और जो कोई 'ईमान' लाया और अनुकूल कर्म किया, उसके लिए अच्छा बदला है और हम उसे अपना नर्म आदेश देंगे।'' फिर उसने एक (दूसरी मुहिम का) आयोजन किया। यहाँ तक कि सूर्योदय के स्थान पर जा पहुँचा, उसने उसे एक ऐसी जाति पर उदित होते पाया जिनके लिए हमने सूर्य के मुक़ाबले में कोई आड़ नहीं रखी थी।

ऐसा ही (हमने किया)। उसके पास जो कुछ था उसको हम ज्ञान द्वारा घेरे हुए थे।

फिर उसने एक (और मुहिम का) आयोजन किया। यहाँ तक कि जब दो पहाड़ों के बीच पहुँचा, तो उसे उनके पास एक जाति मिली जो कोई बात समझ ही नहीं पाती थी। उन्होंने कहा, ''ऐ ज़ुल-क़रनैन! याजूज और माजूज इस भूमि में फ़साद (उत्पात) मचाते हैं। तो क्या हम तुझे कोई कर इस काम के लिए दें ताकि तू हमारे और उनके बीच एकआड़ बना दे?'' उसने कहा, ''मेरे 'रब' ने जो कुछ मुझे सामर्थ्य प्रदान की है वह उत्तम है। तुम बस (आदमियों के) बल से मेरी सहायता करो। मैं तुम्हारे और उनके बीच एक मज़बूत दीवार बना दूँगा। मुझे लोहे के टुकड़े ला दो।'' यहाँ तक कि जब दोनों पहाड़ों के बीच (के ख़ाली स्थान) को पाट दिया तो कहा, ''फूँको!''– यहाँ तक कि जब उसे (धौंका कर) आग कर दिया तो कहा, ''मुझे पिघला हुआ ताँबा ला दो कि उसपर उँडेल दूँ।'' तो वे (याजूज और माजूज) न तो उसपर चढ़कर आ सकते थे, और न वे उसमें नक़ब लगा सकते थे। (ज़ुल-क़रनैन ने) कहा, ''यह मेरे रब की दयालुता है, परन्तु जब मेरे रब का वादा आ पूरा होगा, तो वह उसे उठाकर बराबर कर देगा, और मेरे 'रब' का वादा सच्चा है।'' छोड़ दिया हमने कि उस दिन वे एक-दूसरे के बीच मौजों की तरह घुसे जाते होंगे और 'सूर' में फूँक मारी जाएगी। फिर हम सबको एक साथ इकट्ठा कर लेंगे।» (सूरा-18, अल-कह्फ़, आयतें 83-99)

ऐसा लगता है कि 'ज़ुल-क़रनैन' नाम का कोई व्यक्ति यहूदियों में प्रसिद्ध था। नबी (ﷺ) की परीक्षा लेने के लिए मक्का के क़ुरैश ने यहूदियों के उकसाने पर यह प्रश्न पूछा। अल्लाह ने आप पर वह्य उतारी और हज़ारों वर्ष पूर्व के इतिहास को आप (ﷺ) ने उनको सुनाया, जिससे आप (ﷺ) का नबी होना सिद्ध होता है।

यह 'ज़ुल-क़रनैन' कौन था? इसका ऐतिहासिक काल क्या था? उसके विषय में क़ुरआन जो कुछ बयान करता है, वह किसपर चरितार्थ होता है? इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। मौलाना मौदूदी (رحمہ اللہ) का विचार है कि जिस व्यक्ति में ज़ुल-क़रनैन की विशेषताएँ पाई जाती हैं, क़ुरआन में उल्लिखित वह ईरान का राज्याधिकारी 'ख़ोरस अथवा ख़ुसरू, या साइरस (Syrus)' है, जिसका देहान्त 539 ईसा पूर्व हुआ था।

मौलाना मौदूदी के इस विचार की पुष्टि इतिहास से भी होती है। 'ज़ुल-क़रनैन' का अर्थ होता है 'दो सींगोंवाला' (The Two Horned One)। यह उपाधि सरलतापूर्वक साइरस पर चस्पाँ होती है; क्योंकि बाइबल में दानियाल (Daniel) नबी का जो स्वपन बयान किया गया है उसमें यूनानियों के उत्थान से पूर्व मेडिया और फ़ारस (Media and Persia) के संयुक्त राज्य को मेंढे के रूप में दिखाया गया है जिसके दो सींग थे। साइरस ने मेडिया और फ़ारस के राज्यों को मिलाकर एक बड़े राज्य की स्थापना की। यहूदियों में इस दो सींगवाले की बड़ी चर्चा थी। क्योंकि इसी व्यक्ति ने बाबिल जैसे राज्य को परास्त करके बनी-इसराईल को उसकी क़ैद से छुटकारा दिलाया था।

साइरस एक महान् विजेता था; और बाइबल से यह भी मालूम होता है कि वह ईशभक्त और अल्लाह से डरनेवाला भी था। क़ुरआन में ज़ुल-क़रनैन की तीसरी मुहिम का उल्लेख किया गया है; परन्तु अभी तक उत्तर या दक्षिण में साइरस की किसी बड़ी मुहिम का पता नहीं चल सका है। फिर भी यह कोई असम्भव बात नहीं है कि कोई इस तरह की बड़ी मुहिम भी पेश आई हो जबकि इतिहास से पता चलता है कि साइरस का राज्य उत्तर में काकेशिया (Caucasia) तक फैला हुआ था। 'ज़ुल-क़रनैन' के बारे में क़ुरआन में यह भी बताया गया है कि 'याजूज' और 'माजूज' से बचाव के लिए उसने मज़बूत दीवार का निर्माण कराया था। यह बात क़रीब-क़रीब साबित हो चुकी है कि 'याजूज' और 'माजूज' से मुराद रूस और उत्तरी चीन के वे क़बीले हैं जो तातारी, मंगोल, सेपीन, हुण आदि नामों से प्रसिद्ध हैं और प्राचीन समय से सभ्य देशों पर आक्रमण करके लूट-मार मचाते रहे हैं; और यह भी मालूम है कि उन्हीं से बचने के लिए काकेशिया (Caucasia) के दक्षिणी क्षेत्र में दरबन्द और दारयाल की दीवारों (Wall at Derbent or Darband and Darial) का निर्माण हुआ था। परन्तु अभी तक यह बात सिद्ध नहीं हो सकी है कि ये दीवारें साइरस ही की निर्माण कराई हुई हैं। सारांश यह कि सम्भव है 'ज़ुल-क़रनैन' 'क़ुरआन' में साइरस ही को कहा गया हो, परन्तु निश्चित रूप से अभी यह नहीं कहा जा सकता कि साइरस ही 'ज़ुल-क़रनैन' था; इसके लिए जैसा कि ऊपर संकेत किया गया अभी कुछ और प्रमाण अभीष्ट हैं।

साइरस ने 'कोहे-काब' की एक घाटी में 'ख़ज़र' सागर (Caspan sea) के पश्चिमी किनारे पर तीस मील लम्बी एक दीवार बनवाई, जिसके द्वारा वह 'सेथीन' नामक जाति के आक्रमणों से अपने देश को बचाना चाहता था और ऐसा लगता है कि यही वे लोग थे, जिनको क़ुरआन में 'याजूज-माजूज' कहा गया है। (अधिक जानकारी के लिए देखिए : 'याजूज-माजूज')

कुछ विद्वानों का विचार है कि 'ज़ुल-क़रनैन' मक़दोनिया का 'सिकन्दर' है जो चौथी शताब्दी ईसा पूर्व एक महान सम्राट के रूप में प्रकट हुआ। और देखते-देखते वह सारे संसार पर छा गया। उसका देहान्त सन् 323 ईसा पूर्व हुआ। कुछ भाष्यकारों का यही विचार है। परन्तु इसको मानने में कई बाधाएँ हैं। एक तो यह कि वह कोई ईमानवाला व्यक्ति नहीं था, क़ुरआन के बयान से उसके ईमानवाला होने का संकेत मिलता है और न ही इसने कोई बाँध बनवाया था। इसी प्रकार सिकन्दर कोई रहमदिल

बादशाह नहीं था, बल्कि वह दूसरे शासकों की तरह एक शासक था, जो अपनी सफल युद्ध-नीति के कारण संसार के बड़े भाग पर विजय प्राप्त करने में सफल रहा। इसलिए वास्तव में यह कोई और ही राजा हो सकता है, जिसकी ओर क़ुरआन संकेत करता है। क़ुरआन से यह बात भी स्पष्ट होती है कि उस व्यक्ति को यहूदी भली-भाँति जानते थे। इसी लिए उन्होंने नबी (ﷺ) की परीक्षा लेने के उद्देश्य से उसके विषय में प्रश्न किया और वह्य द्वारा जवाब सुनकर भयभीत हो उठे। जब हम ईरान के साइरस के विषय में पढ़ते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि यही ज़ुल-क़रनैन है, क्योंकि वह यहूदियों के लिए बड़ा रहमदिल था। उसके द्वारा यहूदियों को बड़ा लाभ हुआ। उसी की कोशिशों से यहूदी बाबिल की क़ैद से स्वतंत्र हुए और दोबारा फ़िलस्तीन वापस आए, और वहाँ अपने आपको दोबारा संगठित करने लगे।

परन्तु यह बात अवश्य कही जा सकती है कि जिस 'ज़ुल-क़रनैन' का क़ुरआन में वर्णन आया है और जो कुछ उसके विषय में क़ुरआन में वर्णित हुआ है अभी बहुत कुछ इतिहास के पन्नों में छिपा हुआ है। अब भविष्य ही में पुरातत्त्व द्वारा उन छिपे पन्नों पर प्रकाश डाला जा सकेगा। साइरस के विषय में मौलाना अबुल-कलाम आज़ाद ने जो रिसर्च किया है, वह बड़ा महत्त्वपुर्ण है।

(देखिए: तर्जुमानुल-क़ुरआन 2 : 431-450 – 'यूनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ़ दी वर्ल्ड' के माध्यम से उन्होंने साइरस के द्वारा जीते गए देशों का मानचित्र भी बनाया है।)

जालूत

इसको बाइबल में गोलियत कहा गया है। यह फ़िलस्तीनी था, जो छह हाथ एक बित्ता (लगभग नौ फुट) लम्बा था। (देखिए : प्रथम शमुएल 17/4) फ़िलस्तीनी इसको अपना सेनापति मानते थे और उसी के नेतृत्व में बनी-इसराईल से युद्ध किया करते थे। क़ुरआन में इसका नाम एक ही स्थान पर तीन बार आया है।

प्रथम : जब तालूत ने अपनी सेना की परीक्षा ली कि –

«जो व्यक्ति इस नहर का पानी पिएगा वह हममें से नहीं होगा। मेरा साथी केवल वह है जो इससे अपनी प्यास न बुझाए, हाँ एक-आध चुल्लू कोई पी ले तो पी ले, परन्तु थोड़े से गरोह के अलावा सबने उसी नहर से अपनी प्यास बुझाई। फिर जब तालूत और उसके साथी ईमानवाले नदी पार गए तो उन्होंने तालूत से कह दिया, ''आज हममें जालूत और उसकी सेनाओं के मुक़ाबले की शक्ति नहीं है''।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–249)

द्वितीय : जो थोड़े-बहुत ईमानवाले तालूत के साथ रह गए थे और जिनका यह विश्वास था कि हमें एक दिन अल्लाह से मिलना है, उनका सामना जालूत की सेनाओं से हुआ। जब दोनों की सेनाएँ आमने-सामने हुईं तो तालूत के साथियों ने कहा –

«हमारे रब, तू हमें अधिक से अधिक धैर्य प्रदान कर और हमारे क़दमों को जमा दे, और विधर्मी लोगों पर हमें विजय प्रदान कर।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–250)

तृतीय : जब तालूत की सेना का मुक़ाबला जालूत की सेना से हो रहा था तो तालूत की सेना को एक महान योद्धा दाऊद (जो बाद में एक नबी भी हुए) ने जालूत का वध कर दिया। क़ुरआन में आया है–

«उन्होंने (तालूत की सेना ने) अल्लाह की आज्ञा से उन्हें परास्त किया, और दाऊद ने जालूत का वध कर दिया।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–251 और बाइबल, प्रथम शमुएल, 17:51)

जालूत सिर से पाँव तक कवच में लिपटा हुआ था। दाऊद (ﷺ) ने तीन पत्थर उसकी पेशानी पर खींचकर मारे जिसके कारण वह चकराकर धरती पर गिर पड़ा। फिर उन्होंने उसी की तलवार से उसका वध कर दिया। यह देखना था कि फ़िलस्तीनियों में भगदड़ मच गई। तालूत की सेना ने उनका पीछा किया। जो भी हाथ आया, उसका वध कर दिया। इस प्रकार जालूत के वध के कारण फ़िलस्तीनी पराजित हो गए।

जिबरील

यह सुरयानी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है अल्लाह का भक्त। फिर यह शब्द एक विशेष फ़रिश्ते के लिए बोला जाने लगा, जो अल्लाह की ओर से वह्य (प्रकाशना) लाया करता था।

बाइबल तथा क़ुरआन में जिबरील का वर्णन बार-बार आया है। जैसे बाइबल में दानिय्येल नबी को दर्शन का अर्थ समझाना तथा सत्तर सप्ताह की नुबूवत देना। (देखिए : दानिय्येल, 9:21-27)

इसी प्रकार ज़क़रीया (ﷺ) को यूहन्ना के जन्म की भविष्यवाणी सुनाना, (देखिए : लूक़ा, 1:11-21) और 'मरयम' (ﷺ) को ईसा की भविष्यवाणी सुनाना। (देखिए : लूक़ा, 1:26-27)

और यही वे जिबरील हैं जो मुहम्मद (ﷺ) के पास अल्लाह की ओर से पहली बार हिरा नामक पहाड़ी में वह्य लेकर आए। प्राय: वे एक मनुष्य के भेस में आया करते थे, परन्तु दो बार वे अपने असली भेस में मुहम्मद (ﷺ) के सामने आए जिसका वर्णन क़ुरआन में इस प्रकार आया है –

«उसे बड़े शक्तिशाली ने शिक्षा दी, जो बड़ी हिक्मतवाला है। फिर सामने आ खड़ा हुआ, जबकि वह क्षितिज के उच्चतम छोर पर था। फिर वह निकट हुआ और उतर गया। यहाँ तक कि दो क़दमों के बराबर या उससे भी अधिक निकट हो गया, तब उसने अपने बन्दे की ओर वह्य की जो वह्य करनी थी। दिल ने कोई धोखा नहीं दिया जो कुछ उसने देखा। अब क्या तुम उससे उस चीज़ पर झगड़ते हो जिसे वह देख रहा है।» (सूरा–53, अन-नज्म, आयतें–5-12)

पहली बार नबी (ﷺ) ने जिबरील को अपने असली भेस में देखा, जिनके छह सौ पर थे, जो पूर्व की ओर से ज़ाहिर हुए और देखते-देखते पूर्व क्षितिज पर छा गए। दूसरी बार आप (ﷺ) ने उस समय देखा, जब आप (ﷺ) ने आकाश-यात्रा की, जिसको 'मेराज का सफ़र' कहते हैं। क़ुरआन में इसी की ओर इस प्रकार संकेत किया गया है –

«उसने उस (अर्थात् जिबरील) को एक बार फिर 'सिदरतुल मुन्तहा' के पास उतरते हुए देखा, जिसके निकट जन्नतुल-मावा (ठिकानेवाली जन्नत) है। जबकि 'सिदरा' उसपर छाया हुआ था, न तो दृष्टि इधर-उधर हटी, और न ही सीमा से बढ़ी। निश्चय ही उसने अपने 'रब' की बड़ी-बड़ी निशानियाँ देखीं।» (सूरा–53, अन-नज्म, आयतें–13-17)

सहीह बुख़ारी में इब्ने-मसूऊद से उल्लिखित है कि नबी (ﷺ) ने जिबरील को असली शक्ल में देखा, जिनके छह सौ पर थे। (बुख़ारी, 4856 तथा मुस्लिम, 174/280)

आइशा (رضي الله عنها) का कहना है कि पूरे आकाश का किनारा छिप गया था। (बुख़ारी, 3735 और मुस्लिम, 177/287)

आइशा (رضي الله عنها) ने उन लोगों की बातों का खंडन भी किया है जिन्होंने इन आयतों के द्वारा अल्लाह के साक्षात दर्शन को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। (सहीह बुख़ारी, 3234) अबू ज़र (رضي الله عنه) ने स्वयं नबी (ﷺ) से पूछ लिया था कि क्या आप (ﷺ) ने अल्लाह को देखा है? उत्तर में नबी (ﷺ) ने कहा,

"वह तो एक नूर (प्रकाश) है, उसे कैसे देखा जा सकता है।" (सहीह मुस्लिम, 178/291)

तात्पर्य यह कि जब भी जिबरील आते थे तो किसी मनुष्य के भेष में होते थे। सिवाय इन दो स्थानों के।

एक बार जिबरील ने नबी (ﷺ) से कहा,

"अभी कुछ समय पश्चात् ख़दीजा (رضي الله عنها) आपके लिए खाना लेकर आनेवाली हैं। जब वे आएँ तो उनके 'रब' की ओर से उनको सलाम सुनाना और यह शुभ-सूचना भी दे देना कि उनके लिए स्वर्ग में एक ऐसा घर बनाया गया है कि उसमें रहने से न तो कोई शोर होगा और न ही थकावट होगी।" (बुख़ारी, 3820 तथा मुस्लिम, 2432/71)

एक बार नबी (ﷺ) ने आइशा (رضي الله عنها) से कहा,

"देखो, ये जिबरील हैं। तुम्हें सलाम कर रहे हैं।" आइशा (رضي الله عنها) ने कहा, *"उनको भी मेरा सलाम।"* फिर कहा, *"वे देख सकते थे और मैं नहीं देख सकती थी।"* (बुख़ारी, 3217 तथा मुस्लिम, 2447/91)

हस्सान-बिन-साबित बहुत बड़े कवि थे। नबी (ﷺ) की प्रशंसा में और क़ुरैश के विरुद्ध कविता कहा करते थे। एक बार नबी (ﷺ) ने उनसे कहा,

"उनके विरुद्ध और कविताएँ कहो। तुम्हारे साथ जिब्रील हैं।" (बुख़ारी, 3213 तथा मुस्लिम, 2480/153)

एक बार नबी (ﷺ) के पास आप (ﷺ) की पत्नी उम्मे-सलमा बैठी हुई थीं। इतने में एक व्यक्ति आया और आप (ﷺ) से कुछ बातें करके चला गया। उसके जाने के पश्चात्, आप (ﷺ) ने उम्मे-सलमा से पूछा, "क्या तुम इनको जानती हो ?" उन्होंने कहा, "हाँ, यह दिह्या कल्बी हैं।" फिर उनको बाद में पता चला कि वे जिबरील थे, जो 'दिह्या' का रूप धारण करके आए थे। (बुख़ारी, 3633 तथा मुस्लिम, 2431/100)

और हदीसों से भी पता चलता है कि जिबरील दिह्या का रूप धारण करके आते थे और वह्य सुनाकर चले जाते थे। सहीह हदीसों से पता चलता है कि जिबरील एक बार सहाबा (رضي الله عنهم) की मज्लिस में इस्लाम की मौलिक शिक्षा प्रदान करने के लिए आए और नबी (ﷺ) से ईमान, इस्लाम, एहसान, तथा प्रलय के विषय में प्रश्न करते रहे और फिर उठकर चले गए। उनके जाने के बाद नबी (ﷺ) ने पूछा,

"क्या जानते हो वे कौन थे ? ये जिबरील थे जो तुम्हें धर्म की मूल बातें सिखाने के लिए आए थे।" (सहीह बुख़ारी, 50 तथा सहीह मुस्लिम, 8)

इसी तरह सहीह हदीसों से पता चलता है कि जिबरील ने दो बार नबी (ﷺ) को नमाज़ें पढ़ाईं ताकि यह बताएँ कि नमाज़ का तरीक़ा और समय क्या होता है। जिस वर्ष नबी (ﷺ) का देहान्त होनेवाला था, उस वर्ष जिबरील ने दो बार पूरा क़ुरआन आप (ﷺ) को सुनाया। (बुख़ारी, 6285 तथा मुस्लिम, 2450)

इस प्रकार वास्तव में जिबरील (عليه السلام) नबी (ﷺ) तथा अल्लाह के मध्य एक दूत थे, जो अल्लाह का पैग़ाम लेकर आते थे और आप (ﷺ) को सुनाते थे, परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि जिबरील नबी (ﷺ) से श्रेष्ठ थे। आप (ﷺ) तो समस्त प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ थे।

ज़ब्ह (वध)

पशु को एक ख़ास तरीक़े (इस्लामी तरीक़े) से वध करने को ज़ब्ह कहते हैं।

पशु को ज़ब्ह (वध) करते समय अल्लाह का नाम लेना अनिवार्य है। अगर उसको किसी और के नाम पर ज़ब्ह किया गया, तो इसकी शिक्षा के अनुसार वह हराम (निषिद्ध) हो जाएगा। (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–173)

इसी प्रकार अगर किसी देवी, देवता, क़ब्र इत्यादि के स्थान पर ज़ब्ह (वध) किया जाए तो वह भी हराम (निषिद्ध) हो जाता है। (क़ुरआन, सूरा–5, अल-माइदा, आयत–3)

सूरा माइदा की इसी आयत में उन पशुओं को खाना भी हराम (निषिद्ध) बताया गया है, जो सांस घुटकर, या चोट खाकर, या उँचाई से गिरकर, या सींग लगने से मर गए हों, सिवाय उनके जिन्हें कोई ज़िन्दा पाकर ज़ब्ह कर ले।

ज़ैद

इनका पूरा नाम ज़ैद-बिन-हारिसा-बिन-शाराहील अल-कल्बी था। यूँ तो वे अरब वंश से थे, परन्तु किसी ने उनको ग़ुलाम बनाकर बेच दिया था। 'ख़दीजा' (رضي الله عنها) ने ख़रीदकर नबी (ﷺ) की सेवा में भेंट कर दिया। आप (ﷺ) ने स्वतंत्र करके अपना लेपालक (मुँहबोला बेटा) बना लिया। इसका वर्णन क़ुरआन की सूरा–33, अल-अहज़ाब, आयत 37 में आया है। इनकी गणना भी नबी (ﷺ) के प्रतिष्ठित सहाबा में होती है। अधिक जानकारी के लिए देखिए 'सहाबा'।

ज़कात

यह अरबी भाषा का शब्द है। यह एक विशेष प्रकार के दान का नाम है। इसमें बढ़ोत्तरी और पवित्र करने के दोनों अर्थ निहित हैं अर्थात् 'ज़कात' देने से धन घटता नहीं बल्कि बढ़ता है। परन्तु हम इसका एहसास नहीं कर पाते। इसी प्रकार 'ज़कात' देने से धन शुद्ध हो जाता है, क्योंकि इस धन में निर्धनों, अनाथों तथा दूसरे और लोगों के भाग सम्मिलित हैं। अब धन को शुद्ध करने का एक मात्र साधन केवल 'ज़कात' है। इसी की ओर एक सहीह हदीस में संकेत करते हुए बताया गया है कि:

"धन धनवानों से लेकर निर्धनों में वितरित किया जाएगा।" (बुख़ारी, 1395 तथा मुस्लिम, 29)

क़ुरआन में अल्लाह ने नबी (ﷺ) को यह हुक्म दिया–

«(ऐ नबी!) तुम उनके मालों में से 'ज़कात' लेकर उन्हें शुद्ध एवं पवित्र कर दो, तथा उनके लिए दुआ (प्रार्थना) करो। निस्सन्देह आपकी दुआ उनके लिए सर्वथा परितोष का साधन है।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयत–103)

अब जबकि इस बात का ज्ञान हो गया कि हमारे धनों में निर्धनों का धन भी सम्मिलित है और हमारा धन ज़कात दिए बिना शुद्ध नहीं हो सकता, तो 'ज़कात' न देनेवालों के लिए गम्भीर यातना से डराया गया है। जैसा कि सहीह हदीस में आया है कि ज़कात न देनेवाले की पेशानी को गर्म सलाख़ से दाग़ा जाएगा और वे पशु जो ज़कात में निकाले जाने चाहिए थे परन्तु नहीं निकाले गए, प्रलय के दिन अपने खुरों से उसे कुचलेंगे तथा अपने सींगों से उसे घायल करेंगे और ऐसा बार-बार किया जाएगा, यहाँ तक कि अल्लाह इस बात का निर्णय कर दे कि इनको स्वर्ग में जाना है या नरक में। (देखिए: सहीह मुस्लिम, 987)

ज़कात चार प्रकार के धनों पर अनिवार्य है, परन्तु इसके लिए आवश्यक है कि उनपर एक वर्ष बीत गया हो।

1. सोना-चाँदी तथा करेंसी (मुद्रा)
2. खेत की पैदावार
3. व्यापार का सामान
4. व्यापार के लिए पाले गए पशु जैसे ऊँट, गाय, बकरी इत्यादि।

ज़कात के लिए कम से कम धन की अलग-अलग मात्रा (निसाब) निश्चित की गई है। जैसे सोने की मात्रा (निसाब) साढ़े सात तोला तथा चाँदी की साढ़े बावन तोला, करेंसी नोट जो सोने या चाँदी के मूल्य के बराबर हों तो उसपर ढाई प्रतिशत ज़कात अनिवार्य होगी। और अगर यह सोना-चाँदी या करेंसी नोट इस मात्रा (निसाब) से कम हों तो उनपर ज़कात अनिवार्य नहीं।

खेत की पैदावार दो प्रकार की होती है : एक वह जो वर्षा के पानी से पैदा हो। इसमें पैदावार का दसवाँ हिस्सा अर्थात दस प्रतिशत ज़कात बनती है, दूसरी वह जिसके लिए सिंचाई का प्रबन्ध किया जाता है। इसमें पैदावार का बीसवाँ हिस्सा अर्थात पाँच प्रतिशत ज़कात बनती है। पैदावार पर निकाली जानेवाली ज़कात को उश्र भी कहते हैं।

व्यापारिक सामान का मूल्य लगाया जाएगा और मूल्य पर ढाई प्रतिशत ज़कात दी जाएगी।

पशुओं की ज़कात का परिमाण अलग है, जिसका विवरण हदीस की किताबों में पाया जाता है। ज़कात का हिसाब लगाने का सरल तरीक़ा यह है कि वर्ष का कोई मास निर्धारित कर लिया जाए और फिर प्रतिवर्ष उस माल में देखा जाए कि उसके पास कितनी सम्पत्ति है। और फिर उसके हिसाब से ढाई प्रतिशत ज़कात निकाल दी जाए।

अपने प्रयोग की वस्तुओं पर ज़कात नहीं है। जैसे घर, सवारी, पहनने के कपड़े आदि। इसी प्रकार ज़मीन (प्लॉट) वग़ैरह। परन्तु बेचने की दशा में जब धन पर एक वर्ष बीत जाए तो प्रयोग के पश्चात् जो धन बचे उसपर ज़कात दी जाएगी।

सोने-चाँदी के प्रयोग में आनेवाले गहनों पर ज़कात के विषय में कुछ विद्वानों में मतभेद है। परन्तु सही यही है कि इनपर भी ज़कात है।

❋ ज़कात कहाँ ख़र्च की जाए?

क़ुरआन ने ज़कात को आठ प्रकार के लोगों में ख़र्च करने का हुक्म दिया है–

«सदक़े तो वास्तव में मुहताजों और निर्धनों के लिए हैं। और उन कर्मचारियों के लिए जो ज़कात इकट्ठा करने पर लगे हों। और उनके लिए जिनके दिल परचाए और आकृष्ट किए जा रहे हों। और ग़ुलामों को आज़ाद कराने के लिए और क़र्ज़दारों की सहायता

के लिए, और अल्लाह के मार्ग में ख़र्च करने के लिए और यात्रियों की सहायता के लिए, यह अल्लाह का ठहराया हुआ हुक्म है अल्लाह जाननेवाला और तत्त्वदर्शी है।»
(सूरा–9, अत-तौबा, आयत–60)

ज़कात वास्तव में इस्लामी समाज में आर्थिक असमानता मिटाने का एक ऐसा साधन है जिसका उदाहरण किसी और धर्म या व्यवस्था में नहीं पाया जाता। इतिहास के पन्नों में मदीना राज्य की जो घटनाएँ सुरक्षित हैं, उनमें से एक यह भी है कि ज़कात देनेवाले बाज़ारों में धन हाथ में लेकर घूमते फिरते थे, परन्तु कोई लेनेवाला नहीं मिलता था, क्योंकि ज़कात का एक सरकारी प्रबन्ध था जहाँ लोग अपने ज़ाहिरी माल की ज़कात 'बैतुल माल' में जमा करते थे, या स्वयं सरकार उनसे वुसूल करती थी (ज़ाहिरी माल में जानवर, व्यापार, खेत की पैदावार आदि आते हैं।) और फिर बैतुल-माल से निर्धनों और मोहताजों को बाँटी जाती थी। परन्तु सोने-चाँदी की ज़कात मुसलमान स्वयं बाँटते थे, जिसको लेनावाले नहीं मिलते थे। इस प्रकार ज़कात के सिद्धान्त ने निर्धनता को सदैव के लिए विदा कर दिया।

फिर ज़कात मनुष्य की आत्मा की शुद्धि का भी एक साधन है, क्योंकि धन का मोह सदैव आत्मा को घेरे रहता है। अब उससे छुटकारे का एकमात्र साधन ज़कात ही है, क्योंकि हर मुसलमान को ढाई प्रतिशत ज़कात तो देनी ही है, इसके अतिरिक्त उसे कुछ और भी देना चाहिए। इस प्रकार ज़कात का सिद्धान्त आत्मा को शुद्ध करने औ उसे विकसित करने का विशेष साधन बन जाता है।

ज़कातुलफ़ित्र

जैसा कि इससे पूर्व बताया जा चुका है कि ज़कात का अर्थ है शुद्ध करना। ज़कातुलफ़ित्र में भी यही अर्थ पाया जाता है। अर्थात् रमज़ान के रोज़े (उपवास) में अगर कोई चूक हो गई हो तो ज़कातुलफ़ित्र के द्वारा उसको शुद्ध किया जाता है।

यह ज़कात भी अनिवार्य है। एक सहीह हदीस में आया है–

"नबी (ﷺ) ने आज़ाद एवं ग़ुलाम, पुरुष-स्त्री, छोटे-बड़े, अर्थात् प्रत्येक (सामर्थ्य रखनेवाले) मुसलमान पर ज़कातुलफ़ित्र अदा करना अनिवार्य किया, जिसका परिमाण है एक साअ खजूर, या एक साअ गेहूँ।" (बुख़ारी, 1504 तथा मुस्लिम, 984)

परन्तु उन मुसलमानों पर ज़कातुल-फ़ित्र वाजिब नहीं जिनके पास इतना भी धन न हो कि ईद के दिन अपना और अपने बच्चों का पेट भर सकें।

यह 'साअ' एक प्राचीन पैमाना है, जिसका वर्णन यूसुफ़ (عليه السلام) के क़िस्से में आता है। (देखिए: सूरा–12, यूसुफ़, आयत–72) और जो आज के पैमाने से लगभग साढ़े तीन किलोग्राम बनता है। (अधिक जानकारी के लिए देखिए : साअ)

इस ज़कात को निकालने का उचित समय ईद की नमाज़ से पहले है, ताकि निर्धन लोग भी ईद के आनन्द और उल्लास में सम्मिलित हो जाएँ। इसलिए अगर इस ज़कात पर विचार किया जाए तो इस्लामी समाज में एकता पैदा करने का यह भी एक साधन है, ताकि धनवान तथा निर्धन दोनों ही इस्लाम के साए में मिल-जुलकर जीवन व्यतीत कर सकें और यही इस्लामी शिक्षाओं का विशिष्ट उद्देश्य है।

ज़ुहा

ज़ुहा का अर्थ है दिन चढ़ा समय जो सूर्योदय के दो घंटे बाद प्रारम्भ होता है, और दोपहर से दो घंटे पहले समाप्त हो जाता है। यह समय संसार के काम के लिए बहुत उचित समझा जाता है इसलिए मूसा (ﷺ) के साथ जादूगरों को मुक़ाबले के लिए यही समय नियुक्त किया गया। क़ुरआन में है –

«उसने (अर्थात मूसा ने) कहा, ''तुमसे मुक़ाबले का समय जश्न मनाने का दिन है। और यह कि लोग दिन चढ़े इकट्ठा हो जाएँ।''» (सूरा-20 ता-हा, आयत-59)

इस समय अल्लाह से ग़ाफ़िल हो जाना अधिक संभव है। इससे बचने का उत्तम साधन ज़ुहा की नमाज़ है जिसका विस्तृत विवरण नमाज़ में देखें।

रात को सोते हुए और दिन को काम-काज करते हुए बहुत-से लोग ग़ाफ़िल हो जाते हैं। इसकी क़ुरआन में निन्दा की गई है –

«तो क्या बस्तियों के लोग इससे निश्चिन्त हो गए कि हमारी यातना रात के समय उनपर आ जाए जबकि वे पड़े सो रहे हों? या बस्तियों के लोग इससे निश्चिन्त हैं कि हमारी यातना दिन चढ़े उनपर आ जाए जबकि वे खेल-कूद में लगे हों।» (सूरा-7, अल-आराफ़, आयत-97)

इसलिए नबी (ﷺ) अल्लाह की याद से कभी ग़ाफ़िल नहीं होते थे बल्कि सहीह हदीसों में आता है कि –

''आप अल्लाह की याद हर पल किया करते थे।''

अल्लाह की याद का सबसे उत्तम साधन तहज्जुद तथा ज़ुहा की नमाज़ है।

इसलिए सूरा शम्स में अल्लाह ने चढ़ते दिन की क़सम खाई है। बल्कि ज़ुहा नाम की एक और सूरा भी उतारी जिसका प्रारंभ ज़ुहा (अर्थात चढ़ते दिन) की क़सम से किया।

और चूँकि इस चढ़ते दिन के समय गर्मियों में धूप तेज़ हो जाती है इसलिए स्वर्ग में जानेवालों को यह शुभ सूचना दी जाती है कि –

«तुम न उसमें प्यासे रहोगे और न ही धूप की तकलीफ़ उठाओगे।» (क़ुरआन, सूरा-20, ता-हा, आयत-119)

जुआ

जुआ, इसको अरबी में 'मैसिर' कहते हैं। इसका अर्थ है सरलता, अर्थात् धन बिना किसी चीज़ के बदले या बिना परिश्रम के प्राप्त कर लेना। क्योंकि जुए में अचानक धन मिल जाता है। या चला जाता है, इसलिए इसको 'Game of Chance' कहते हैं।

प्राचीन काल से जुआ (Gambling) खेलने का रिवाज चला आ रहा है। जो इस्लामी शिक्षानुसार किसी के धन को बग़ैर हक़ के खाना है। इसलिए इस्लाम ने इसको सदैव के लिए निषिद्ध कर दिया।

चूँकि जुए के द्वारा धन खाना लोगों का स्वभाव बन चुका था, इसलिए पहले यह आयत उतरी–

«तुमसे शराब तथा जुए के विषय में पूछते हैं। कहो, ''इन दोनों चीज़ों में बड़ा पाप है यद्यपि लोगों के लिए कुछ लाभ भी हैं। परन्तु उनका पाप लाभ से कहीं बढ़कर है।» (सूरा–2,अल-बक़रा, आयत–219)

इस आयत से पहली बार लोगों को मालूम हुआ कि शराब तथा जुए के अन्दर लाभ कम और हानि अधिक है। और फिर यह आयत उतरी–

«ऐ ईमानवालो! ये शराब, जुआ, देव-स्थान तथा पाँसे ये सब गंदे शैतानी काम हैं। अतः तुम इनसे अलग रहो, ताकि सफलता पा सको। शैतान तो बस यही चाहता है कि शराब और जुए के द्वारा तुम्हारे बीच शत्रुता और द्वेष पैदा कर दे, और तुम्हें अल्लाह की याद से तथा नमाज़ से रोक दे। तो क्या तुम इनसे बाज़ नहीं आओगे?» (सूरा–5, अल-माइदा, आयतें-90,91)

इस आयत के उतरने के बाद सहाबा (ﷺ) ने यही समझा कि अब शराब, जुआ आदि ये सारे काम हराम हैं। और फिर बाद के विद्वानों ने भी यही समझा। इस प्रकार मुस्लिम विद्वानों का इसपर मतैक्य हो गया कि अब जुआ सदैव के लिए हराम है। इस लिए जुए में मिले हुए धन का प्रयोग वर्जित है।

ज़िना (व्यभिचार)

ज़िना (व्यभिचार) एक सामाजिक बुराई है, जिसके निकट भी जाने से क़ुरआन में रोका गया है –

«.....ज़िना के निकट भी मत जाओ, क्योंकि यह एक अश्लील कर्म तथा बुरा मार्ग है।» (सूरा–17, अल-इसरा, आयत–32)

एक सहीह हदीस में आया है कि सबसे बड़ा पाप यह है कि अल्लाह के साथ किसी को उसका साझी और समकक्ष ठहराया जाए। उसके बाद दूसरा बड़ा पाप यह है कि अपनी सन्तान की हत्या इस कारण की जाए कि वह उसकी आजीविका की सामग्री में उसके साथ खाएगी और फिर उससे दूसरा बड़ा पाप यह है कि अपने पड़ोसी की पत्नी के साथ ज़िना किया जाए। (बुख़ारी, 6861 तथा मुस्लिम 86)

ज़िना की हद (दंड)

1. अगर ज़िना करनेवाला (पुरुष या स्त्री) विवाहित है तो उसको पत्थरों से मार-मारकर हलाक किया जाएगा।
2. अगर विवाहित नहीं है तो सौ कोड़े लगाए जाएँगे। ये आदेश पुरुष और स्त्री दोनों के लिए एक जैसे हैं।

ज़िना कैसे सिद्ध होता है?

1. ज़िना करनेवाला स्वयं अपनी ग़लती को चार बार स्वीकार करे।
2. या फिर चार साक्षी इस प्रकार गवाही दें कि हमने ज़िना करते हुए ऐसे ही देखा है जैसे सुर्मे दानी में सलाई डाली और निकाली जाती है। अगर उन चारों में से एक ने भी शंका प्रकट कर दी तो ज़िना की हद लागू नहीं होगी, बल्कि गवाही देनेवालों पर क़ज़फ़ की हद लगेगी यानी झूठी गवाही देने पर उसे दंडित किया जाएगा। क़ज़फ़ के लिए देखिए 'क़ज़फ़'।

ज़ैतून

ज़ैतून एक पौधे का नाम है जो विशेष रूप से सीरिया और फ़िलस्तीन में पाया जाता है। इसका पत्ता ऊपर से हरा और नीचे से चाँदी के रंग जैसा होता है। जब हवा चलती है और ये पत्ते हिलने लगते हैं तो बड़े ही सुन्दर लगते हैं। ज़ैतून का प्रयोग विभिन्न प्रकार से होता है। इसके फल को रोटी के साथ खाते हैं। उसके तेल में खाना पकाते हैं। उसके पत्तों में चावल भरकर विशेष प्रकार का भोजन तैयार किया जाता है। अर्थात् ज़ैतून हर प्रकार से प्रयोग में आता है। इसकी चर्चा बाइबल में बार-बार आई है। कहते हैं कि जब नूह (عليه السلام) के समय सम्पूर्ण पृथ्वी पर तूफ़ान आ गया, तो सबसे पहले कबूतर जो चीज़ पृथ्वी से लेकर अपनी चोंच में दबाकर दोबारा नूह (عليه السلام) की नाव पर आया वह ज़ैतून का पत्ता ही था, जिससे नूह (عليه السلام) ने अन्दाज़ा लगाया कि अब पृथ्वी से तूफ़ान समाप्त हो गया है। (देखिए : उत्पत्ति, :11)

बाइबल की इसी कहानी के कारण ज़ैतून की डाली को शान्ति का प्रतीक माना जाता है। नाटक और ड्रामों में योद्धा अपने हथियार फेंककर ज़ैतून की डाली लेकर समझौता सभा में आते हुए दिखाए जाते हैं।

क़ुरआन में ज़ैतून के वृक्ष को बरकतवाला वृक्ष कहा गया है। (देखिए : सूरा–24, अन-नूर, आयत–34)

एक स्थान पर तो ज़ैतून की सौगंध खाकर अल्लाह तआला फ़रमाता है –

«हमने इनसान को उत्तम रूप से पैदा किया।» (सूरा–95, अत-तीन, आयत–1)

"जैतून का फल"
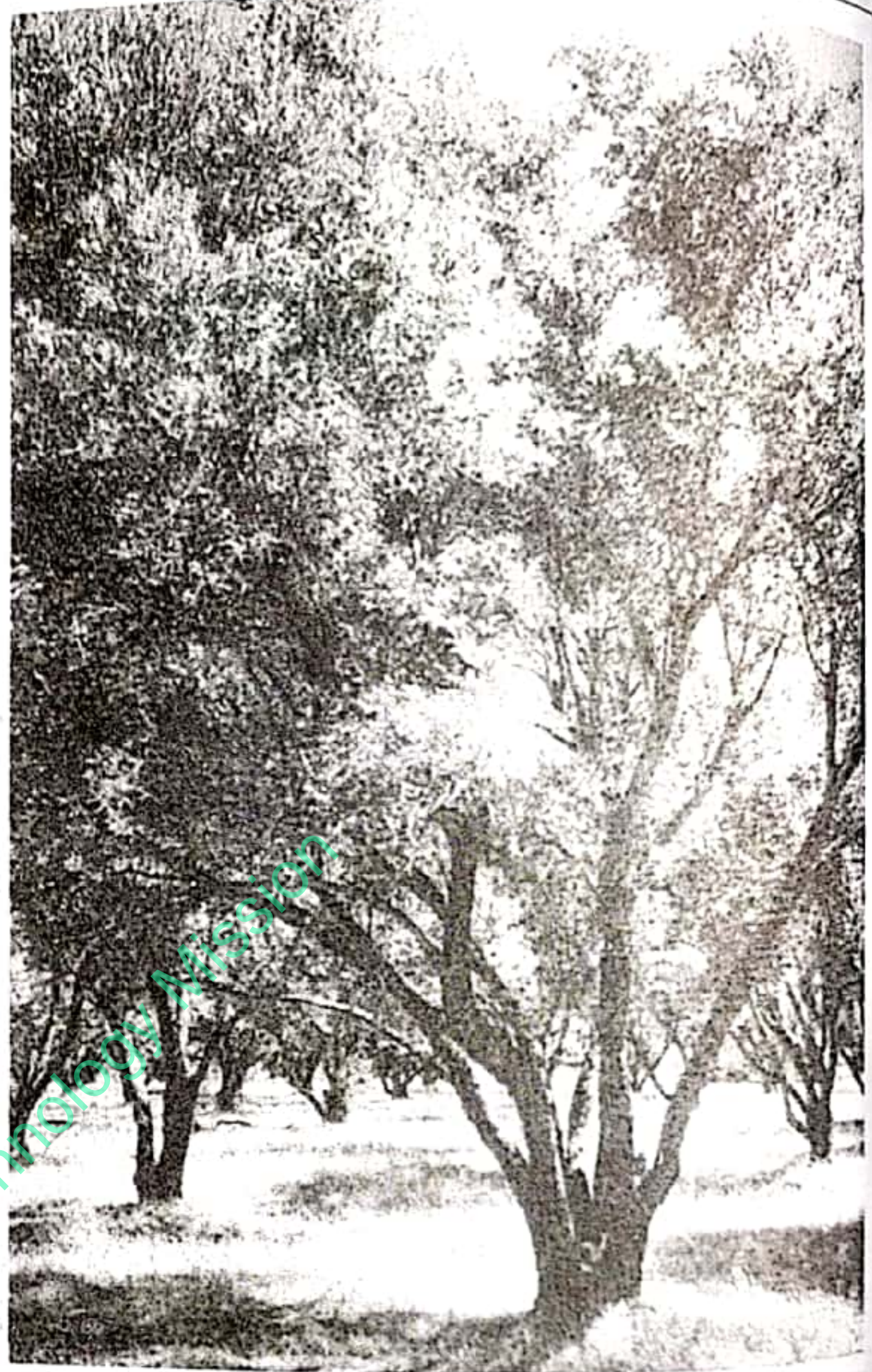
जैतून के सुन्दर वृक्ष

अल्लाह ने आकाश से पानी बरसाकर जिन नेमतों को हमारे लिए पृथ्वी से उगाया है, उनमें ज़ैतून भी है। (देखें सूरा–6, अल-अनआम, आयत–99)

ज़ैतून का तेल रोटी के साथ भी खाया जाता है। यह अरबों का स्वादिष्ट भोजन माना जाता है।

जिज़या

क़ुरआन में 'जिज़या' का वर्णन केवल एक बार आया है–

«उन किताबवालों से युद्ध करो– जो न अल्लाह पर ईमान लाते हैं, और न अन्तिम दिन पर, और न उसे हराम करते हैं जिसे अल्लाह और उसके रसूल ने हराम ठहराया, और न सच्चे धर्म को ग्रहण करते हैं– यहाँ तक कि अपमानित होकर अपने हाथ से 'जिज़या' देने लगें।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयत–29)

क़ुरआन के अनुसार 'जिज़या' अहले-किताब से लिया जाएगा, और हदीसों के अनुसार मजूसियों (अग्निपूजकों) से लिया जाएगा। जिज़या एक प्रकार का सुरक्षाकर है जो इस्लामी देश में रहनेवाले ग़ैर-

मुस्लिम को देना पड़ता है। इसके कारण उसकी धार्मिक स्वतंत्रता तथा उसके धन, मान-सम्मान, और जीवन की सुरक्षा की जाती है। यह कर उसी प्रकार है जैसे एक मुसलमान से ज़कात ली जाती है, ताकि इस धन के द्वारा हुकूमत उनकी हर प्रकार से सुरक्षा कर सके। अन्तर यह है कि ज़कात एक इस्लामी इबादत है, जो मुसलमान अपनी प्रसन्नता से अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए देता है और 'जिज़या' एक ऐसा कर है जो ग़ैर- मुस्लिम से केवल उसकी सुरक्षा, और धार्मिक स्वतंत्रता के बदले लिया जाता है। अर्थात् न तो इसमें अल्लाह की प्रसन्नता है, न आख़िरत का पुण्य, इसलिए 'जिज़या' देनेवाला इस बात पर अवश्य विचार करेगा कि क्यों न मैं भी सत्य धर्म ग्रहण कर लूँ और 'जिज़या' के बदले ज़कात देकर अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त कर लूँ। जिज़या देने वाले को युद्ध में शामिल होने की आवश्यकता नहीं होती और वह स्वेच्छा से मुस्लिम सैनिकों के साथ युद्ध में भाग लेता है तो उससे जिज़या नहीं लिया जाता और अगर हुकूमत ने जिज़या ले लिया है और किसी कारण उनकी सुरक्षा करने में असमर्थ हो जाए तो वह जिज़या वापस करेगी। (देखिए : अल-बक़रा, आयत–256)

जासूसी

जासूसी दो प्रकार की होती है–

एक वह जो समाज में एक-दूसरे के विरुद्ध की जाती है। इसका उद्देश्य एक-दूसरे की बुराई करना, कमज़ोरी और हर तरह की जानकारी हासिल करने की कोशिश करना और उसे समाज में फैलाना, या उससे कोई ग़लत लाभ उठाना होता है। यह वास्तव में व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं स्वाधीनता के विरुद्ध है। इसलिए क़ुरआन ने इसकी कठोर शब्दों में निन्दा की है–

«ऐ ईमानवालो! बहुत-से गुमानों से बचो, क्योंकि उनमें से कुछ गुमान पाप हैं और टोह (जासूसी) में न पड़ो, और न तुममें से कोई किसी की पीठ पीछे निन्दा करे। क्या तुममें से कोई इसको पसन्द करेगा कि वह अपने मरे हुए भाई का मांस खाए? वह तो तुम्हें अप्रिय होगा ही।» (सूरा–49, अल-हुजुरात, आयत–12)

और दूसरे प्रकार की जासूसी वह है जो किसी इस्लामी देश के विरुद्ध की जाए, जो बहुत बड़ा अपराध है, जिसका दंड क़त्ल भी हो सकता है।

एक सहीह हदीस में आता है कि नबी (ﷺ) 'हवाज़िन' नामक जिहाद में थे। एक जासूस आया। आप (ﷺ) के साथ भोजन किया और इधर-उधर देखता रहा और फिर अपने ऊँट पर सवार होकर जाने लगा। इसपर नबी (ﷺ) ने अपने साथियों से कहा, "जाओ उसको खोज लाओ और क़त्ल कर दो।" (बुख़ारी, 3051 तथा मुस्लिम 1754)

इसी प्रकार 'हातिब-बिन-अबी-बल्ता' नामक एक सहाबी ने मक्कावालों को इस बात से अवगत कराने के लिए कि नबी (ﷺ) तुमपर आक्रमण करनेवाले हैं, एक पत्र भेजा। परन्तु वह पत्र पकड़ा गया।

जब नबी (ﷺ) की सेवा में उनको उपस्थित किया गया तो उन्होंने कहा, ''ऐ अल्लाह के नबी! मैं एक निर्बल व्यक्ति हूँ मक्का में मेरी संतान है, परन्तु कोई उनकी सुरक्षा करनेवाला नहीं है। इसलिए मैंने यह पत्र लिखकर चाहा कि मक्कावाले मेरा एहसान मानेंगे और मेरी संतान की सुरक्षा करेंगे। मैंने यह जो कुछ किया इसका सम्बन्ध कुफ़्र से नहीं है। मुझे यक़ीन था कि इससे आपको कोई नुक़्सान नहीं होगा, अल्लाह आपको फिर भी सफलता प्रदान करेगा। उमर (ﷺ) ने नबी (ﷺ) से आज्ञा माँगी कि उनको क़त्ल कर दें। इसपर नबी (ﷺ) ने फ़रमाया–

''ये बद्र के जिहाद में सम्मिलित थे। हो सकता है कि अल्लाह को इसका ज्ञान हो।'' आप (ﷺ) ने उनसे कहा, ''जाओ जो चाहो करो मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया।'' तब यह आयत उतरी–

«ऐ ईमानवालो! मेरे तथा अपने शत्रुओं को अपना मित्र न बनाओ कि उनके प्रति प्रेम दिखाओ जब कि वे उस सत्य का इनकार कर चुके हैं जो तुम्हारे पास है।» (सूरा–60, अल-मुम्तहिना, आयत–1, देखिए: बुख़ारी, 3007 तथा मुस्लिम, 2494)

इससे विद्वानों ने यह अर्थ निकाला है कि अगर 'हातिब-बिन-अबी-बल्ता' बद्री न होते तो उन्हें क़त्ल कर दिया जाता, ताकि कोई दूसरा इस प्रकार की जासूसी करने का साहस न करे, जिससे मुसलमानों तथा इस्लामी सेना को कोई क्षति पहुँचे।

जादू

जादू एक वस्तविकता है, उसका इनकार नहीं किया जा सकता। प्राचीनकाल से जादू का वर्णन शास्त्रों में आता है। राजा-महाराजा जादूगरों को अपने निकट रखते थे। इसी लिए जब फ़िरऔन ने जादूगरों से मूसा (ﷺ) का मुक़ाबला करने के लिए कहा तो उन्होंने तुरन्त प्रश्न कर दिया, ''अगर हम मूसा पर विजयी हो गए तो हमारे लिए क्या पुरस्कार है?'' फ़िरऔन ने कहा–

«हाँ, और निश्चय ही तुम उस समय समीपवर्ती लोगों में से हो जाओगे।» (सूरा–26, अश-शुअरा, आयत–42)

इस्लामी धर्मशास्त्र में जादू सीखना और जादू करना दोनों हराम (वर्जित) हैं, क्योंकि जादू के द्वारा केवल क्षति पहुँचाई जाती है। जैसे स्त्री-पुरुष को अलग कर देना। (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–102)

इसलिए जादू-टोने से अल्लाह की शरण माँगने का आदेश है। क़ुरआन में है–

«कहो, मैं शरण लेता हूँ उस रब की जो (अंधकार को फाड़कर) भोर का प्रकाश लाता है, और हर उस बुराई से जो उसने पैदा की और अंधकार की बुराई से जबकि वह घुस जाए और गिरहों में फूँक मारनेवालों (या मारनेवालियों) की बुराई से और ईर्ष्या करनेवाले की बुराई से जब वह ईर्ष्या करे।» (सूरा–113, अल-फ़लक़, आयतें-1-5)

गिरहों में फूँकनेवालों से अभिप्राय जादू करनेवाले तथा जादू करनेवालियाँ हैं, जो गिरहें बाँध-बाँधकर जादू करते हैं। परन्तु जो लोग अल्लाह पर विश्वास रखते हों और उसी की शरण में पनाह लिए हों उनको भयभीत नहीं होना चाहिए और जो इस सूरा तथा इसके बादवाली सूरा–114, अन-नास, को सोने से पहले पढ़ लें, उनपर शैतान तथा जादू अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। अगर किसी पर जादू हो जाए तो उसको चाहिए कि किसी ऐसे सदाचारी विद्वान के पास जाए जो क़ुरआन पढ़कर जादू तोड़ता हो।

जूदी

यह उस चोटी का नाम है जिसपर नूह (عليه السلام) की नाव रुकी थी। यूरोपीय विद्वानों ने इसके विषय में काफ़ी खोज की है। उनका विचार है कि यह पहाड़ अरमीनिया तथा इराक़ के बीच में है, जिसका नाम 'अरारात' है, जैसा कि 'बाइबल' में आया है (उत्पत्ति 8:4), और उसी की किसी चोटी का नाम 'जूदी' है जहाँ नौका आकर रुक गई थी। (अधिक जानकारी के लिए देखिए : नूह عليه السلام)

"जूदी पर्वत जहां नूह عليه السلام की नौका आकर रुकी थी"

ज़क़्क़ूम

ज़क़्क़ूम एक वृक्ष का नाम है जो जहन्नम की आग की तह से निकलेगा और अत्यन्त कड़वा एवं काँटेदार होगा। कुरआन में है –

«**वह एक वृक्ष है, जो भड़कती हुई आग (जहन्नम) की तह से निकलेगा, उसके ख़ोशे (गाभे) ऐसे होंगे जैसे शैतानों के सिर।**» (सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयतें–64,65)

जहन्नम में जानेवाले लोगों का खाना ज़क़्क़ूम का यही वृक्ष है –

«**निश्चय ही ज़क़्क़ूम का वृक्ष पापी (गुनहगार) का खाना होगा, जैसे तेल की तलछट। वह पेटों में खौलता होगा, जैसे पानी खौलता है।**» (सूरा–44, अद्-दुख़ान, आयतें–43-46)

यहाँ पापी से अभिप्रेत वे लोग हैं जो ईश्वर को नहीं मानते और उनके अवज्ञाकारी हैं, जैसा कि कुरआन के एक प्रसिद्ध भाष्यकार इब्ने-जरीर तबरी ने कहा है।

जन्नत की अपार अनुकम्पाओं एवं नेमतों का ज़िक्र करने के बाद कुरआन कहता है–

«**भला यह अच्छी आव-भगत है, या ज़क़्क़ूम का वृक्ष। निश्चय ही हमने उस वृक्ष को ज़ालिमों के लिए यातना बना दिया है।**» (सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयतें–62,63)

«**फिर ऐ भटके हुए, झुठलाने वालो! तुम अवश्य 'ज़क़्क़ूम' के वृक्ष में से खाओगे, और उसी से पेट भरोगे, फिर उसके ऊपर से खोलता हुआ पानी पीओगे और ऐसे पीओगे जैसे प्यास से व्याकुल ऊँट पीता है। कर्मों का फल पाने के दिन इससे उनका पहला सत्कार होगा।**» (सूरा–56, अल-वाक़िया, आयतें–51-56)

अर्थात् तुम प्यासे ऊँट की तरह उस पानी पर टूट पड़ोगे, परन्तु प्यास नहीं बुझेगी, बल्कि वह पानी इतना खौलता हुआ होगा कि अँतड़ियों को काट डालेगा। (देखिए : सूरा–47, मुहम्मद, आयत–15)

कुछ विद्वान इस वृक्ष 'ज़क़्क़ूम' की उपमा 'तहामा' में पाए जानेवाले वृक्ष से देते हैं, जिसको 'थूहर' का वृक्ष कहते है। परन्तु सही यही है कि 'ज़क़्क़ूम' जहन्नम का वृक्ष है, उसकी उपमा किसी सांसारिक वृक्ष से नहीं दी जा सकती, केवल समझाने के लिए आप किसी सांसारिक वृक्ष से उसकी उपमा दे सकते हैं। क्योंकि जन्नत की नेमतों और जहन्नम की यातना के विषय में जो कुछ आया है, हम न तो दुनिया में उसका अनुभव कर सकते हैं, न देख सकते हैं, और न किसी के दिल में वैसी बात समा सकती है। यह सब 'ग़ैब' है, और 'ग़ैब' पर ईमान लाना प्रत्येक मुसलमान के लिए अनिवार्य है।

ज़ंजबील

'ज़ंजबील' अदरक को कहते हैं। जन्नत में जो पीने की चीज़ें मिलेंगी उनमें एक ऐसी चीज़ भी होगी, जिसमें अदरक मिली होगी–

«वहाँ वे एक और जाम पिएँगे, जिसमें अदरक (सोंठ) का मिश्रण होगा।» (सूरा–76, अद-दहर, आयत–17)

अदरक का स्वभाव वस्तुतः गर्म है। जन्नत की शीतल छाया में उनको ऐसा मद्यपान कराया जाएगा, जिसमें ज़ंजबील की गर्मी होगी। इससे एक ओर तो वह स्वादिष्ट हो जाएगा, वहीं दूसरी ओर उनको एक ऐसा आनन्द मिलेगा जिसकी तुलना हम संसार के आनन्द से नहीं कर सकते।

ज़ुबुर

'ज़ुबुर' 'ज़बूर' का बहुवचन है। इसका अर्थ है पुस्तक या धर्मग्रन्थ। क़ुरआन में यह शब्द बार-बार प्रयुक्त हुआ है, और जहाँ किताब के साथ आया है वहाँ किताब से अभिप्राय तौरात तथा इंजील है। और 'ज़ुबुर' से अभिप्राय दूसरी पुस्तकें हैं। (देखिए: सूरा–3, आले-इमरान, आयत–184; सूरा–26, अश-शुअरा, आयत–196; सूरा–35, फ़ातिर, आयत–25)

ज़बूर नाम की एक किताब अल्लाह ने अपने नबी दाऊद अलैहि. को दी थी। क़ुरआन में एक जगह कहा गया –

«और हमने दाऊद को ज़बूर प्रदान किया।» (सूरा-4, अन-निसा, आयत-163)

एक जगह और कहा गया –

«तुम्हारा रब उससे भी भली-भाँति परिचित है जो कोई आकाशों और धरती में है, और हमने कुछ नबियों को कुछ की अपेक्षा श्रेष्ठता दी और हमने ही दाऊद को ज़बूर प्रदान की थी।» (सुरा-17, बनी-इसराईल, आयत-55)

एक जगह और कहा गया –

«और हम ज़बूर में याददिहानी के बाद लिख चुके हैं कि ''धरती के वारिस मेरे अच्छे बन्दे होंगे।''» (सूरा-21, अल-अंबिया, आयत-105)

बाइबल में ज़बूर के नाम से एक किताब पाई जाती है मगर वह सारी की सारी ज़बूर नहीं है, उनमें बहुत सी चीज़ें दूसरे लोगों की भी भर दी गई हैं जिनके लेखकों के नाम भी लिखे गए हैं। हाँ, जिनपर लिखा है कि वे बातें दाऊद की हैं उनके अन्दर वास्तव में अल्लाह के सच्चे कलाम की रौशनी महसूस होती है।

सूरा–18, अल-कहफ़ में 'ज़ुबर' शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ है चादर। चूँकि चादर भी किताब के पन्ने की तरह होती है इसलिए क़ुरआनिक पुरुष ज़ुल-क़रनैन ने अपनी सेना से कहा–

«मुझे लोहे की चादर ला दो, यहाँ तक कि जब दोनों पंहाड़ों के बीच के रिक्त स्थान को पाट दिया, तो कहा, "फूँको!" यहाँ तक कि जब उसे आग कर दिया तो कहा मुझे पिघला हुआ ताँबा ला दो, ताकि उसपर उँडेल दूँ।» (सूरा–18, अल-कहफ़, आयत–96)

(अधिक जानकारी के लिये देखिए; याजूज-माजूज)

ट
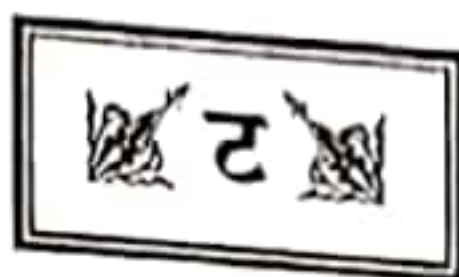
टिड्डी

'टिड्डी' उड़नेवाला एक कीड़ा है, जो लगभग दो इंच लम्बा होता है। इसके चार पंख होते हैं, सामने के दो छोटे और पीछे के बड़े तथा छः पैर होते हैं, चार चलने के लिए और दो छलांग लगाने के लिए। इसका भोजन वृक्ष के पत्ते और खेतों में उगे हुए फूल-पत्ते इत्यादि हैं। ये बड़े-बड़े दलों के साथ चलते हैं और जहाँ से इनका गुज़र होता है वहाँ सारी हरियाली चाट जाते हैं। इसलिए इनके हमलों से बचने के लिए बहुत पहले से प्रबन्ध करना पड़ता है। क़ुरआन में इनका वर्णन दो बार आया है।

प्रथम बार :

फ़िरऔन और उसकी जाति ने मूसा से कहा कि तुम कोई भी निशानी लाओ हम तुमपर ईमान लानेवाले नहीं हैं, तो अल्लाह ने अनेक निशानियाँ भेज दीं–

«फिर हमने उनपर तूफ़ान और टिड्डियाँ और जूएँ और मेंढक और रक्त भेजे, जो प्रत्यक्ष निशानियाँ थीं, फिर भी उन्होंने अहंकार किया, तथा वे पापी लोग थे।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–133)

(अधिक जानकारी के लिए देखें मूसा عليه السلام)

द्वितीय बार :

क़ियामत में इस्लाम विरोधियों की दशा की उपमा टिड्डी से दी गई है–

«ये झुकी आँखों के साथ क़ब्रों से इस प्रकार उठेंगे जैसे बिखरी हुई टिड्डियाँ हों।» (सूरा–54, अल-क़मर, आयत–7)

चूँकि टिड्डियों का भोजन घास-पात है। इसलिए इसका खाना मूसा (عليه السلام) के समय से ही हलाल चला आ रहा है। (देखिए : बाइबल, लावी 11:22)

यहया (عليه السلام) का स्वादिष्ट भोजन टिड्डियाँ और जंगली शहद था। (देखिए : मत्ती, 3:4)

एक हदीस में आता है–

"हमारे लिए दो मरी हुई और दो रक्तवाली चीज़ें हलाल की गई हैं। मरी हुई चीज़ों में से कलेजी और तिल्ली।" (देखिए : बेहक़ी, 1:254)

इसके पकाने का तरीक़ा यह है कि इसके पैरों, पंखों तथा सिर को काट देते हैं और अंतड़ियाँ निकाल देते हैं। फिर बाक़ी को हल्की आग पर भूनते हैं या तेल में तल लेते हैं।

त
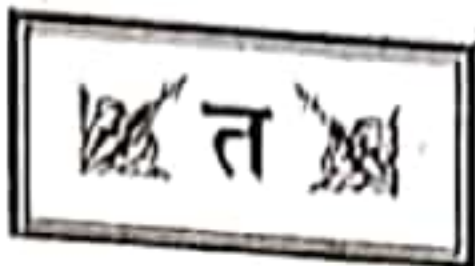
तौहीद (एकेश्वरवाद)

इसका अर्थ है एक अल्लाह पर विश्वास। इस्लाम धर्म की यह मूल और विशिष्ट शिक्षा है। सभी नबियों ने इसी की शिक्षा दी थी। परन्तु उन नबियों की क़ौमों ने एकेश्वरवाद की शिक्षा को या तो भुला दिया था या विकृत कर दिया था और पथभ्रष्ट हो गई थीं। इसी लिए इस्लाम प्रलय दिवस तक के लिए अन्तिम, शुद्ध एवं परिष्कृत धर्म बनकर सम्पूर्ण मानव-जाति के मार्गदर्शन एवं मुक्ति के लिए भेजा गया है। क़ुरआन तथा हदीसों में उसका विस्तृत वर्णन है, ताकि फिर कहीं मानव-जाति पथ से भटक न जाए।

यहाँ तौहीद (एकेश्वरवाद) के विभिन्न अंगों का क़ुरआन और हदीस की रौशनी में विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है –

तौहीद के तीन अनिवार्य तत्त्व हैं –

प्रथम तत्व : तौहीद अर्थात् यह विश्वास कि इस संसार को एक अल्लाह ही ने पैदा किया। इस काम में उसका कोई साझी नहीं, वही इसको चला रहा है, वही हमारा तथा समस्त प्राणियों का पालनहार है, और फिर वही इस संसार को विनष्ट भी कर सकता है। अर्थात् इस ब्रह्मांड में जो कुछ भी हो रहा है वह सब अल्लाह की आज्ञा के अनुसार हो रहा है। क़ुरआन में है–

«वास्तव में तुम्हारा रब वही अल्लाह है, जिसने आकाशों और धरती को छह दिनों में पैदा किया– और फिर राजसिंहासन पर विराजमान हुआ। वह रात को दिन पर ऐसे ढाँकता है, जो तीव्र गति से उसका पीछा करने में सक्रिय है। उसी ने सूर्य, चाँद और सितारों को पैदा किया, जो उसके आज्ञानुसार काम में लगे हुए हैं। जान लो और सावधान रहो। उसी की सृष्टि है और उसी का आदेश है। अल्लाह, जो सारे संसार का रब है, बड़ी बरकतवाला है।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–54)

«कहो, ''ऐ अल्लाह, राजसत्ता के स्वामी! तू जिसे चाहे राज्य प्रदान करे और जिससे चाहे राज्य छीन ले और जिसे चाहे सम्मानित करे और जिसे चाहे अपमानित करे। तेरे ही हाथ में भलाई है। निस्सन्देह तुझे हर चीज़ की सामर्थ्य प्राप्त है।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–26)

अल्लाह क़ुरआन में कहता है कि सम्पूर्ण ब्रह्मांड की सृष्टि करनेवाला तो मैं हूँ, इसमें मेरा कोई साझी नहीं है। बताओ, दूसरों ने क्या रचा है –

«यह (सारा संसार) अल्लाह का बनाया हुआ है। अब तनिक मुझे दिखाओ जो कुछ दूसरों ने बनाया है, नहीं, बल्कि ये अत्याचारी खुली पथभ्रष्टता में पड़े हुए हैं।» (सूरा–31, लुक़मान, आयत–11)

यह तौहीद जिसको हम एकेश्वरवाद कहते हैं, वास्तव में हमारे स्वभाव में रची बसी है, क्योंकि जब अल्लाह ने आदम को पैदा किया, उसी समय उसने हमारी आत्माओं से यह वचन ले लिया था कि मैं ही तुम्हारा रब हूँ। और फिर उसने संसार में अपने स्रष्टा होने के असंख्य चिह्न छोड़ दिए, जिनको देखकर हर व्यक्ति सरलता के साथ उसके रचयिता होने का साक्षी बन सकता है। यही कारण है कि मक्का के इस्लाम-विरोधियों से जब पूछा गया कि आकाशों और धरती को किसने पैदा किया है, तो वे बोल पड़े –

«"अल्लाह ने!" कहो, "सारी प्रशंसाएँ अल्लाह के लिए हैं।" परन्तु उनमें से अधिकतर लोग इस बात को जानते नहीं।» (सूरा–31, लुक़मान, आयत–25)

और अगर किसी ने उसके 'रब' होने से इनकार किया है तो ये केवल उसके भटके हुए विचार हैं। वह अपने हृदय से कभी भी उसका इनकार नहीं कर सकता। क़ुरआन इन्हीं लोगों की ओर संकेत करते हुए कहता है –

«अत: उन्होंने अत्याचार एवं घमंड के कारण उसको अस्वीकार कर दिया, यद्यपि उनके हृदय उसका विश्वास कर चुके थे। तो देखो इन उपद्रवियों का परिणाम क्या हुआ?» (सूरा–27, अन-नम्ल, आयत–14)

फिर क़ुरआन ऐसे लोगों से प्रश्न करता है –

«क्या ये लोग बिना किसी (पैदा करनेवाले) के स्वयं ही पैदा हो गए हैं? अथवा ये स्वयं पैदा करनेवाले हैं? या इन्होंने आकाशों और धरती को पैदा किया? नहीं, बल्कि ये लोग विश्वास नहीं करते।» (सूरा–52, अत-तूर, आयतें–35,36)

अरब संस्कृति में यह लोकोक्ति बहुत प्रसिद्ध है कि एक बद्दू (ऊँट चरानेवाला) कहता है कि ऊँट की मेंगनी उसके अस्तित्व का प्रमाण है और उसके पैरों के चिह्न मार्ग बताते हैं। तो क्या ये बुर्जोंवाले आकाश और फैली हुई पृथ्वी अल्लाह के अस्तित्व के प्रमाण नहीं हैं?

द्वितीय तत्व : इसको 'तौहीदे-उलूहिया' कहा जाता है, जिसका अर्थ है कि केवल एक अल्लाह ही उपासना के योग्य है, किसी और की उपासना करना सबसे बड़ा अत्याचार है, जिसको शिर्क कहते हैं। इस कुकृत्य को अल्लाह कदापि क्षमा नहीं करता। नबियों की शिक्षाओं का केन्द्र-बिन्दु यही तौहीद (एकेश्वरवाद) है।

क़ुरआन में है –

«हमने हर समुदाय में कोई न कोई रसूल भेजा कि लोगो! केवल अल्लाह की उपासना करो, और ताग़ूत (राक्षसों) की उपासना से बचो।» (सूरा–16, अन-नहल, आयत–36)

«हमने तुमसे पहले जो रसूल भी भेजे। उसकी ओर यही 'वह्य' की कि मेरे अतिरिक्त कोई (सच्चा) पूज्य-प्रभु नहीं, तो तुम केवल मेरी ही उपासना करो।» (सूरा–21, अल-अंबिया, आयत–25)

नूह, हूद, सालेह, शुऐब, मूसा, ईसा (عليهم السلام) तथा मुहम्मद (ﷺ) सहित सारे नबियों ने अपनी जाति को सबसे पहले इसी तौहीद की दावत दी थी। क़ुरआन में है–

«हमने नूह को उसकी जाति की ओर भेजा तो उसने कहा, "ऐ मेरी जातिवालो, केवल एक अल्लाह की उपासना करो, उसके अतिरिक्त तुम्हारा कोई पूज्य-प्रभु नहीं (अगर तुमने ऐसा न किया), तो मैं तुम्हारे लिए एक भारी दिन की यातना से डरता हूँ।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–59)

«और 'आद' की ओर उनके भाई हूद को भेजा। उसने कहा, "ऐ मेरी जातिवालो, केवल अल्लाह की उपासना करो। उसके अतिरिक्त कोई तुम्हारा उपास्य नहीं। क्या तुम डरते नहीं?"» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–65)

«'समूद' की ओर उसके भाई 'सालेह' को भेजा। उसने कहा, "ऐ मेरी जातिवालो, केवल अल्लाह की उपासना करो। उसके अतिरिक्त तुम्हारा कोई उपास्य नहीं।"» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयात–73)

यही तौहीद सारे नबियों की दावत की मूल शिक्षा थी, क्योंकि हमारे कर्मों का दारोमदार इसी तौहीद पर है। अगर यह तौहीद न रहेगी तो शिर्क पैदा होगा, जो सारे कर्मों को नष्ट कर देगा।

क़ुरआन में है –

«तुम्हारी ओर और उनकी ओर, जो तुमसे पहले थे, यह 'वह्य' की जा चुकी है कि यदि तुमने 'शिर्क' किया तो तुम्हारे सारे कर्म अकारथ हो जाएँगे, और निश्चय ही तुम घाटा उठानेवालों में हो जाओगे।» (सूरा–39, अज़-ज़ुमर, आयत–65)

तृतीय तत्त्व : 'अस्मा व सिफ़ात' अर्थात् अल्लाह को उसके नामों और गुणों में अद्वितीय और एकमात्र मानना और उनमें किसी को सम्मिलित न करना और न ही अल्लाह से किसी की तुलना करना। बस जो नाम अल्लाह ने अपने लिए प्रयुक्त किए हैं तथा रसूलों ने जो नाम उसके लिए प्रयुक्त किए हैं, उनको उसी प्रकार स्वीकार कर लेना। इसी प्रकार अल्लाह ने अपने लिए जो गुण बताए हैं, या रसूल ने जो गुण अल्लाह के लिए बताए हैं इनको बिना किसी हेर-फेर के स्वीकार करना तौहीद कहलाता है। क़ुरआन में अल्लाह ने अपने विषय में बताया है –

«वह आकाशों और धरती का बनानेवाला है। उसने तुम्हारे लिए तुम्हारी अपनी सहजाति से जोड़े बनाए और चौपायों के जोड़े भी। वह तुम्हें इसी प्रकार फैलाता और बढ़ाता है। उस जैसी कोई वस्तु नहीं। और वह सुनता और देखता है।» (सूरा–42, अश-शूरा, आयत–11)

अर्थात् उसके अस्तित्व तथा विशेष गुणों में किसी की उपमा नहीं दी जा सकती। उसका कोई साझी नहीं, उस जैसा कोई नहीं। क़ुरआन में है –

«अच्छे नाम अल्लाह ही के लिए हैं। तो तुम उन्हीं के द्वारा उसे याद करो और उन लोगों को छोड़ दो जो उसके नामों के विषय में कुटिलता ग्रहण करते हैं। जो कुछ वे करते हैं उसका फल वे जल्द पाएँगे।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–180)

जातिवाचक संज्ञा में तो उसका नाम अल्लाह है, परन्तु उसके गुणवाचक नाम असंख्य हैं। उनमें से सहीह हदीसों में निन्यानवे (99) की संख्या मिलती है। (बुख़ारी, 2736 और मुस्लिम, 2677)

कुछ पुस्तकों में इन निन्यानवे नामों का वर्णन भी आ गया है, कुछ वद्वानों का विचार है कि यह वर्णन सही नहीं है, बल्कि व्याख्याकारों ने अपनी ओर से बढ़ा दिया है। (देखिए: तिरमिज़ी, 3574; इब्ने-माजा, 3861)

इसलिए अधिकतर विद्वानों का विचार है कि अल्लाह के नामों की सही संख्या का ज्ञान केवल अल्लाह ही को है, उनमें से कुछ हमें उसने बता दिए हैं। पिछली जातियों में अधिकतर इसी तौहीद अर्थात अस्मा व सिफ़ात में शिर्क हुआ है। जैसे अरब के मूर्ति-पूजकों ने अल्लाह के नाम अज़ीज़ से उज़्ज़ा नामक बुत बना लिया और उसकी पूजा करने लगे। इसी प्रकार उसके नामों में 'मन्नान' है, जिससे मूर्ति-पूजकों ने 'मनात' नामक बुत बना लिया और उसकी उपासना करने लगे। इसी प्रकार उसके गुणों में से एक यह है कि वही पैदा करता है, वही आजीविका तथा अन्य सामग्री देता है, वही मारता-जिलाता है। अब इन गुणों को अल्लाह के अतिरिक्त किसी और के साथ संबद्ध कर दिया जाए तो 'शिर्क' होगा।

स्वयं भारतीय विचारधारा के अनुसार विभिन्न देवता एक ही देव के विविध रूप हैं। परन्तु अज्ञानी लोग हर देवता को ईश्वर का रूप देकर उसकी वन्दना और उपासना करने लगे, इस प्रकार बहुदेववाद का भारतीय संस्कृति में प्रचार हो गया और इन्द्र, वरुण, विष्णु, प्रजापति इत्यादि देवता और ईश्वर बन बैठे, और फिर उनकी पूजा-पाठ होने लगी। ऋग्वेद से लेकर उपनिषद् तथा महाभारत का एक ब्रह्म, जो विभिन्न गुणोंवाला है, अद्वैतवाद का प्रतीक बन गया। क़ुरआन ही अल्लाह की वह पुस्तक है जिसने तौहीद का स्पष्ट रूप से वर्णन किया और जहाँ भी 'शिर्क' होने का संदेह हुआ, तुरन्त सचेत किया, ताकि पृथ्वी पर एक अल्लाह को छोड़ कर किसी और की उपासना न की जाए और यह पृथ्वी कभी भी ऐकेश्वरवादियों से ख़ाली न हो। इस विषय में विभिन्न स्थानों पर वर्णन किया गया है। यहाँ तो केवल तौहीद के तीन तत्त्वों की चर्चा की गई है।

तौरात

इससे अभिप्राय यहूदी तथा ईसाई के इतिहास में वर्णित बाइबल की निम्नलिखित पाँच पुस्तकें हैं :

1. उत्पत्ति (GENESIS)
2. निर्गमन (EXODUS)
3. लै व्यवस्था (LEVITICUS)
4. गिनती (NUMBERS)
5. व्यवस्था विवरण (DEUTERONOMY)

"तौरात लिखने का एक ढंग"

विद्वानों का विचार है कि पुराने नियम (OLD TESTAMENT) की ये पाँच पुस्तकें मूसा पर अल्लाह की ओर से उतारी गई हैं। परन्तु इन पुस्तकों के अध्ययन से पता चलता है कि यह विचार सत्य नहीं है, क्योंकि इनमें कहीं-कहीं उन ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन भी आ गया है जो मूसा (ﷺ) के पश्चात् घटी हैं जैसे; व्यवस्था विवरण के अन्त में मूसा (ﷺ) की मृत्यु का वर्णन आना स्पष्ट करता है कि यह पुस्तक मूसा (ﷺ) पर नहीं उतरी, बल्कि बाद के किसी व्यक्ति ने लिखकर इसमें सम्मिलित कर दी।

इसलिए अब कुछ विद्वान यह कहने लगे हैं कि तौरात से अभिप्राय वे दस ईश्वरीय सन्देश और उपदेश हैं, जो पत्थर की तख़्ती पर लिखकर मूसा को दिए गए और फिर चालीस वर्ष तक मूसा (ﷺ) को जो सन्देश अल्लाह की ओर से दिए गए, वे पूरे पुराने नियम में फैले हुए हैं। यही कारण है कि क़ुरआन ने कहीं भी इन पाँच पुस्तकों की पुष्टि नहीं की है। वह केवल यह कहता है कि हमने मूसा और हारून को पुस्तक दी –

«हमने उन दोनों (मूसा और हारून) को स्पष्ट किताब दी।» (सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयत–117)

«उनसे कहो! वह किताब किसने उतारी, जिसको लेकर मूसा आए, जिसमें लोगों के लिए प्रकाश और मार्गदर्शन है, जिसे तुम अलग-अलग पन्नों के रूप में रखते हो, जिन्हें दिखाते हो। परन्तु बहुत कुछ छिपा जाते हो।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–91)

केवल उसी किताब का नाम तौरात है, जिसका क़ुरआन में बार-बार वर्णन आया है और इसने कई स्थानों पर संकेत किया है कि यहूदी विद्वानों ने तौरात में किस प्रकार हेर-फेर किया। परन्तु अब भी इसमें ईशवाणी के कुछ अंश मौजूद हैं, जिनको क़ुरआन ने नूर तथा हिदायत (प्रकाश तथा अनुदेश) कहा है और उन्हीं स्थानों की क़ुरआन पुष्टि करता है, न कि उन पाँच पुस्तकों की, जिनको यहूदी तथा ईसाई मूसा (ﷺ) से सम्बद्ध करते हैं। और चूँकि क़ुरआन अन्तिम ईशवाणी और ईशग्रंथ है, इसलिए जो कुछ भी उसके विरुद्ध है सब निरस्त है।

शेष चौंतीस (34) पुस्तकें, जो पुराने नियम में पाई जाती हैं, उनके विषय में तो स्वयं यहूदी तथा ईसाई विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि वे विभिन्न समयों में लिखी गई थीं और 'अज़रा काहिन' ने सबको एक स्थान पर इकट्ठा कर दिया था। वे चौंतीस (34) पुस्तकें ये हैं :

6. यहोशू, 7. न्यायियों, 8. रूत, 9. शमूएल-1, 10. शमूएल-2, 11. राजाओं-1, 12. राजाओं-2, 13. इतिहास-1, 14. इतिहास-2, 15. एज्रा, 16. नहेम्याह, 17. एस्तेर, 18. अय्यूब, 19. भजन संहिता, 20. नीतिवचन, 21. सभोपदेशक, 22. श्रेष्ठगीत, 23. यशायाह, 24. निर्मयाह, 25. विलापगीत, 26. यहेजकेल, 27. दानिय्येल, 28. होशे, 29. योएल, 30. आमोस, 31. ओबद्याह, 32. योना, 33. मीका, 34. नहूम, 35. हबक्कूक, 36. सपन्याह, 37. हाग्गै, 38. जकर्याह और 39 मलाकी।

इस प्रकार पहली पाँच पुस्तकों के मिलाने से पुराने नियम की कुल संख्या 39 बनती है।

तालूत

यह वही है जिसको बाइबल में 'शावुल' कहा गया है। दाऊद के जीवन-वृत्तान्त में बताया जा चुका है कि 'शावुल' तालूत कैसे बन गया!

तालूत के विषय में जो जानकारी है वह यह है कि बनी-इसराईल फ़िलस्तीन में प्रवेश करते ही विभिन्न प्रकार की समस्याओं में घिर गए। सबसे बड़ी समस्या यह थी कि फ़िलस्तीन और आस-पास के प्रदेश के निवासियों के साथ युद्ध प्रारम्भ हो गया, क्योंकि बनी-इसराईल वहाँ बलपूर्वक प्रविष्ट हुए थे। वहाँ के निवासियों पर बड़ा अत्याचार किया था। इसलिए उनके हृदय में बनी-इसराईल के विरुद्ध प्रचंड आक्रोश और घृणा थी। एक समय ऐसा भी आया कि फ़िलस्तीनियों ने बनी-इसराईल को पराजित कर दिया और उनसे वह ताबूत भी छीन लिया, जिसको लेकर वे मिस्र से आए थे। चूँकि उनका कोई राजा नहीं था, इसलिए वे अनुशासनहीन और अस्त-व्यस्त जीवन व्यतीत करते थे। अब उन्होंने अपने नबी 'शमुएल' से प्रार्थना की कि हमारे लिए एक राजा नियुक्त कर दें, जिसके साथ मिलकर हम अपने शत्रुओं से युद्ध करेंगे। नबी चूँकि उनके स्वभाव को जानते थे इसलिए कहा, "कदाचित् तुम ऐसा न करो।" उन्होंने कहा, "क्यों नहीं हम ऐसा ही करेंगे। क्योंकि हम घर से बेघर हो गए हैं।" लेकिन वही हुआ जिस बात पर नबी 'शमुएल' ने संदेह प्रकट किया था –

«क्या तुमने बनी-इसराईल के सरदारों को नहीं देखा, जबकि मूसा के बाद उन्होंने अपने एक नबी से कहा कि हमारे लिए एक शासक (राजा) नियुक्त कर दो, ताकि हम अल्लाह के मार्ग में युद्ध करें। उसने कहा, "ऐसा न हो कि तुमपर युद्ध आवश्यक कर दिया जाए तो तुम युद्ध न करो।" कहने लगे, "हम अल्लाह के मार्ग में युद्ध क्यों न करेंगे जबकि हमें अपने घरों से निकाल दिया गया है और अपने बाल-बच्चों से भी अलग कर दिया गया है।" फिर जब उनपर युद्ध अनिवार्य कर दिया गया तो उनमें से थोड़े लोगों के अतिरिक्त सब मुँह मोड़ गए। और अल्लाह अत्याचारियों को भली-भाँति जानता है।» (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–246)

नबी शमुएल ने उनके आग्रह पर 'तालूत' नामक एक व्यक्ति (शावुल) को, जो बिनयामीन के वंश से था और निर्धन भी था, राजा नियुक्त कर दिया। बनी-इसराईल बोल उठे, "तुमने ऐसे व्यक्ति को हमारा राजा बना दिया जो नीच कुल का है और निर्धन है।" नबी ने कहा, "अल्लाह ने तालूत को इस कारण राजा बनाया है, क्योंकि वह बहुत बुद्धिमान और शक्तिशाली है।" क़ुरआन में है –

«उनके नबी ने उनसे कहा, "अल्लाह ने तुम्हारे लिए तालूत को शासक नियुक्त किया है।" बोले, "यह कैसे हो सकता है कि वह हमारा शासक बन जाए, जबकि उसके विरुद्ध हम शासन के लिए अधिक हक़दार हैं। जबकि उसे तो धन की अधिकता भी प्राप्त नहीं है?" उसने कहा, "अल्लाह ने तुमपर उसी को चुना है। और उसे ज्ञान तथा शारीरिक

शक्ति में अधिकता प्रदान की है। और अल्लाह जिसे चाहता है अपना राज्य प्रदान करता है। और वह बड़ी समाईवाला, सर्वज्ञ है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–247)

तालूत ने जो बनी-इसराईल का पहला राजा था, युवकों की एक सेना बनाई और अपनी सेना लेकर फ़िलस्तीनियों से मुक़ाबले के लिए निकल खड़ा हुआ, क्योंकि फ़िलस्तीनी बनी-इसराईल से युद्ध के लिए संगठित और तैयार हो गए थे। फ़िलस्तीनियों की सेना में एक व्यक्ति था जिसका नाम जालूत (जुलयात) था, जो बड़ा बहादुर और प्रतापी लगता था। वह बहुत लम्बा-तगड़ा था। बाइबल ने उसकी ऊँचाई छह हाथ की बताई है जिसका पूरा शरीर कवचों से ढका हुआ था। (देखिए: प्रथम शमुएल: 17/4) दाऊद ने पत्थर मारकर उसको मौत के घाट उतार दिया। (देखिए: प्रथम शमुएल: 17/49) यह देखना था कि फ़िलस्तीनी घबरा गए और भाग खड़े हुए। तालूत की सेना ने उनका पीछा किया और बहुत सारे फ़िलस्तीनियों की हत्या कर दी। तालूत ने दाऊद को अपना सेनापति बना लिया और अपनी पुत्री का उनसे विवाह कर दिया. परन्तु जब देखा कि बनी-इसराईल दाऊद को अधिक चाहते हैं तो उसे भय हुआ कि कहीं वह उसका शासन न छीन ले, इसलिए उसकी हत्या करने का संकल्प ले लिया। जब दाऊद को इसका ज्ञान हुआ तो वह भाग खड़ा हुआ। इधर तालूत और फ़िलस्तीनियों में 'जलबूअ' के स्थान पर दोबारा युद्ध छिड़ गया। इस बार तालूत अपने तीन पुत्रों समेत मारा गया। कहते हैं कि उसने आत्महत्या कर ली थी, क्योंकि वह नहीं चाहता था कि पराजित होने पर कोई फ़िलस्तीनी उसकी हत्या करे। यह लगभग 1055 ईसा पूर्व की घटना है। उसके बाद लोगों ने दाऊद (عليه السلام) को अपना राजा बना लिया। और उन्होंने लगभग 1015 ईसा पूर्व तक शासन किया। इस प्रकार दाऊद (عليه السلام) नबियों में पहले और बनी-इसराईल में दूसरे राजा माने जाते हैं।

❮ ताबूत ❯

यह इबरानी भाषा का शब्द है। इसको हिन्दी में आप 'लकड़ी की पेटिका' कह सकते हैं। इसका वर्णन क़ुरआन में दो स्थानों पर आया है।

प्रथम : वह 'ताबूत' जिसको बनी-इसराईल मिस्र से आते हुए अपने साथ लाए थे और सदैव अपने साथ रखते थे। युद्ध में उसको अपने साथ ले जाते थे, उसके द्वारा वह विजय प्राप्त होने की आशा रखते थे, जिसके कारण अपने हृदय में बड़ी शान्ति अनुभव करते थे। एक युद्ध में ऐसा हुआ कि उनके शत्रु फ़िलस्तीनी विजयी हो गए और वे उनसे ताबूत छीनकर अपने साथ ले गए। इसी की ओर क़ुरआन संकेत करते हुए एक स्थान पर कहता है –

«उनके नबी ने उनसे कहा, "उसके शासक नियुक्त होने का चिह्न यह है कि वह 'ताबूत' (सन्दूक़) तुम्हारे पास आ जाएगा, जिसमें तुम्हारे 'रब' की ओर से तुम्हारे लिए शान्ति सामग्री है और मूसा तथा हारून के समुदाय की छोड़ी हुई यादगारें हैं। उसे फ़रिश्ते उठाए हुए होंगे।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–248)

यह बात उस समय की है जब बनी-इसराईल ने नबी शमुएल से प्रार्थना की कि हमारे लिए कोई राजा नियुक्त कर दें, ताकि उसके साथ मिलकर अपने शत्रु फ़िलस्तीनियों से युद्ध करें। जब नबी ने उनके लिए 'तालूत' को राजा बनाया तो वे नबी पर आक्षेप करने लगे। तब नबी ने उनको बताया कि उसके चिह्नों में से एक यह होगा कि वह ताबूत तुम्हें वापस दिला देगा। ताबूत के विषय में बाइबल में बड़ा विस्तारपूर्वक वर्णन आया है, जिससे पता चलता है कि उसको मूसा (ﷺ) ने अल्लाह के हुक्म से बनाया था, जो कीकर की लकड़ी का था। पौने चार फ़िट लम्बा, सवा दो फ़िट चौड़ा और इतना ही गहरा। उसपर सोने की चादरें लगी हुई थीं। दोनों ओर दो लाठियाँ लगी थीं, जैसे डोली में लगी होती हैं, ताकि कन्धे पर उठाकर ले जाने में सुविधा हो। और फिर उसके ऊपर कपड़ा डाल दिया जाता था, ताकि दिखाई न दे। (देखिए : निर्गमन, 25:10)

उसमें हारून (ﷺ) की लाठी, वह बर्तन जिसमें मूसा 'मन्न' इकट्ठा करते थे, जो आकाश से उतरता था, दो तख़्तियाँ जिनपर दस उपदेश लिखे थे और एक ओर तौरात की एक प्रति रखी हुई थी। इसको उठानेवाले लावी वंश से होते थे (जो मूसा के पिता थे)। जब कोई युद्ध छिड़ जाता तो ताबूत को उठानेवाले ताबूत को लेकर सेना के आगे लेकर चलते थे, जिससे सेनाओं को बड़ी शान्ति मिलती थी और बड़ा उत्साह मिलता था। और अधिकतर अवसरों पर विजय प्राप्त हो जाती थी।

एक युद्ध में बनी-इसराईल परास्त हो गए और फ़िलस्तीनी अपने साथ ताबूत भी उठा ले गए। उन्होंने उसको अपने देवता 'दाजून' के मन्दिर में रख दिया। फिर वह ताबूत 'तालूत' के समय में वापस आया। जब दाऊद (ﷺ) शासक बने तो उन्होंने एक ख़ेमा बनवाया और ताबूत को इसमें रख दिया। जब हज़रत सुलैमान (ﷺ) ने मस्जिद बनवाई तो उसमें स्थानांतरित कर दिया गया। (देखिए : द्वितीय शमुएल, 6:1-10 तथा प्रथम इतिहास, 15:25)

जब बाबिल के राजा 'बुख़्तनसर' ने लगभग 600 ईसा पूर्व यहूदियों पर आक्रमण किया, तो अपने साथ ताबूत भी ले गया जो 'यरोशलम' के साथ नष्ट हो गया, क्योंकि उसके बाद उसका कुछ पता नहीं चला कि कहाँ गया। कुछ लोगों का विचार है कि वह अभी तक यूथोपिया में मौजूद है। परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। (देखिए : क़ामूस मुक़द्दस, पृ. 209,210)

द्वितीय : वह ताबूत जिसमें मूसा (ﷺ) को उनकी माता ने रखकर अल्लाह के हुक्म से दरिया में डाल दिया था। क्योंकि फ़िरऔन, जो मिस्र का बादशाह था, बनी-इसराईल के लड़कों का वध करता था और लड़कियों को जीवित छोड़ देता था। इस प्रकार अल्लाह ने मूसा को फ़िरऔन से बचाने के लिए उनकी माँ को हुक्म दिया कि एक ताबूत में मूसा को रखकर दरिया में डाल दो, जो बहता हुआ किनारे लग जाएगा और उसको शत्रु उठा लेगा। फिर वह उसी के घर में पलेगा-बढ़ेगा। क़ुरआन में है –

"याद करो जब हमने तेरी माता को संकेत किया जो अब प्रकाशना की जा रही है कि "इसको ताबूत में रखकर दरिया में डाल दे, दरिया उसे तट पर डाल देगा, इसे मेरा शत्रु

और इसका शत्रु उठा लेगा।'' (अर्थात् उसका पालन-पोषण करेगा) मैंने अपनी ओर से तुझपर प्रेम डाल दिया, ताकि तू मेरी आँखों के सामने पाला जाए।» (सूरा–20, ता-हा, आयतें–38,39)

फिर मूसा (ﷺ) अपनी माता के पास कैसे पहुँचे, इसका पूरा वर्णन 'मूसा' में देखिए।

तबूक

यह एक बस्ती का नाम है, जो मदीना के उत्तर में 780 किलोमीटर की दूरी पर है। यहाँ का राजा 'हिरक़्ल' ईसाई था। उसको इस्लाम का फैलना गवारा न था। वह अपने ईसाई धर्म को ही फैलते हुए देखना चाहता था और इस्लाम को ईसाई धर्म के लिए ख़तरा समझता था। इसलिए उसने एक लाख की सेना तैयार की और सेना को मदीना की ओर बढ़ने का आदेश दे दिया। जब इसकी सूचना नबी (ﷺ) को मिली तो आप (ﷺ) ने भी मुसलमानों को तैयार रहने और तबूक की ओर बढ़ने का आदेश दे दिया। वह बड़ा कठिन समय था। जून-जुलाई का मौसम! एक तो इस मौसम में गर्म हवाएँ चलती हैं, घर से बाहर निकलना कठिन होता है। दूसरे इसी मौसम में खजूर भी पकने लगता है। ऐसे समय में मुसलमानों को युद्ध पर निकलने का आदेश दिया जाता है। क़ुरआन ने स्वयं भी इसको कठिन घड़ी बताया है –

«अल्लाह नबी, मुहाजिरों, और अन्सार पर मेहरबान हो गया, जिन्होंने कठिन समय में नबी का साथ दिया, यद्यपि उनमें से एक गरोह के दिल कुटिलता की ओर झुक जाने के निकट थे।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयत–117)

लेकिन मुसलमान अल्लाह का नाम लेकर निकल पड़ते हैं, यद्यपि उनके पास युद्ध का सामान नहीं है। खाने के लिए भी केवल कुछ खजूरों के अलावा कुछ नहीं है। हदीसों में आता है कि दो आदमी मिलकर एक खजूर खाते थे। परन्तु उनका हृदय अल्लाह तथा रसूल के प्यार से भरा हुआ था। उनको संसार की कोई चिन्ता नहीं थी। वे तो अल्लाह के मार्ग में अपने जीवन को न्योछावर कर देने को बड़ा सौभाग्य समझते थे। इसलिए तीस हज़ार की सेना लेकर नबी (ﷺ) मदीना से निकले। आज की तरह कोई सड़क नहीं थी। पहाड़ी रास्तों को रौंदते हुए जब आप (ﷺ) तबूक पहुँचे तो हिरक़्ल का दिल बैठने लगा। उसपर इतनी घबराहट छाई कि उसने जिज़या देने पर सन्धि कर ली और रास्ते में पड़नेवाली बस्तियों के दूसरे सरदार भी जिज़या देने पर राज़ी हो गए, जिसके कारण युद्ध की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। बीस दिन तक नबी (ﷺ) तबूक में रहकर वापस आ गए।

इस युद्ध में मुनाफ़िक़ों ने बड़ी कायरता दिखाई और न केवल यह कि युद्ध में वे स्वयं सम्मिलित नहीं हुए बल्कि उन्होंने मुसलमानों को भी युद्ध पर न जाने के लिए उकसाया। परन्तु वे असफल रहे। और जब नबी (ﷺ) तबूक से वापस आ गए तो वे युद्ध पर न जाने के लिए अपना बहाना बनाने के लिए आने लगे। आप (ﷺ) ने उनके बहानों को स्वीकार कर लिया जिसपर क़ुरआन की यह आयत उतरी–

«अल्लाह तुम्हें क्षमा करे, तुमने उन्हें (पीछे रह जाने की) आज्ञा क्यों दे दी, यहाँ तक कि उनमें सच्चे और झूठे सामने आ जाते।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयत–43)

अल्लाह ने प्रारम्भ में तीन पक्के मुसलमानों की तौबा स्वीकार नहीं की, जिनके नाम ये हैं: काब-बिन-मालिक, मुरारा-बिन-रबीआ और हिलाल-बिन-उमैया। परन्तु जब वे पूरे दिलो-जान से अल्लाह की ओर झुक गए तो अल्लाह ने उनकी तौबा स्वीकार कर ली, जिसका वर्णन क़ुरआन में इस प्रकार आया है–

«(अल्लाह) उन तीनों पर भी मेहरबान हो गया, जो पीछे छोड़ दिए गए थे। जब धरती विशाल होते हुए भी उनपर तंग हो गई, और उनकी जानें उनपर दूभर हो गईं और उन्होंने समझा कि अल्लाह की पकड़ से बचने के लिए कहीं और शरण नहीं मिल सकती, मिल सकती है तो बस उसी के यहाँ। तो वह अपनी मेहरबानी से उनकी ओर पलटा ताकि वे भी उसकी ओर पलट जाएँ। निस्सन्देह अल्लाह तो बड़ा तौबा स्वीकार करनेवाला है और दया करनेवाला है।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयत–118)

इनके वर्णन के लिए देखिए: तीन व्यक्ति जो पीछे छोड़ दिए गए।

तीन व्यक्ति जो पीछे छोड़ दिए गए

सूरा–9, अत-तौबा की आयत– 118 में उन तीन व्यक्तियों का उल्लेख है, जिनकी तौबा को अल्लाह ने स्वीकार कर लिया, उनके नाम ये हैं: काब-बिन-मालिक, हिलाल-बिन-उमैया और मुरारा-बिन-रबीआ। इनका विस्तृत वर्णन सही मुस्लिम में निम्न प्रकार किया गया है।

काब-बिन-मालिक का बयान है कि मैं तबूक के युद्ध में पीछे रह गया, जबकि इससे पहले किसी भी युद्ध में पीछे नहीं रहा, हालाँकि तबूक के युद्ध के समय मैं बिलकुल ठीक था। मुझे किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं था, केवल सुस्ती के कारण मैं सम्मिलित न हो सका। यहाँ तक कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) तबूक से वापस आ गए। पीछे रह जानेवाले, जिनकी संख्या अस्सी से कुछ अधिक थी, विभिन्न प्रकार के उज़्र (बहाने) लेकर आप (ﷺ) की सेवा में उपस्थित हुए जिनकी ओर क़ुरआन ने इस प्रकार संकेत किया है–

«वे तुम्हारे सामने क़समें खाएँगे, ताकि तुम उनसे राज़ी हो जाओ, तो यदि तुम उनसे राज़ी हो भी गए तो अल्लाह कभी भी ऐसे लोगों से राज़ी नहीं होगा जो अवज्ञाकारी हैं।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयत–96)

इसलिए काब-बिन-मालिक ने साफ़ बता दिया कि ऐ नबी मेरे पास कोई उज़्र नहीं है। इसपर आप (ﷺ) ने कहा कि इसने सच कहा अब जाओ तुम्हारा निर्णय अल्लाह करेगा। और मुसलमानों को हुक्म दे दिया गया कि कोई इन तीन व्यक्तियों से बातचीत तथा सलाम भी न करे और अगर ये सलाम करें तो जवाब भी न दिया जाए। हिलाल-बिन-उमैया तथा मुरारा-बिन-रबीया ने तो अपने आपको घर

में बन्द कर लिया और रोते रहे, जबकि मैं इधर-उधर मदीना की गलियों में घूमता फिरता था। इसी दशा में चालीस दिन बीत गए तो हमारी पत्नियों को हुक्म हुआ कि वे भी हमसे दूर हो जाएँ, अर्थात् हमपर जीवन तंग हो गया। जैसा कि क़ुरआन ने बयान किया है–

«जब धरती विशाल होते हुए भी उनपर तंग हो गई।»

मैं इसी दशा में था कि ग़स्सान के राजा का एक पत्र आया, जो ईसाई था। उसने मुझे यह कहकर कि तुम्हारे नबी (ﷺ) ने तुम्हारे साथ बड़ा कठोर व्यवहार किया है तुम मेरे पास आ जाओ, तुम बड़े सुख-चैन से रहोगे। मैंने उस पत्र को, यह कहकर आग में जला दिया कि यह दूसरी परीक्षा है।

अन्त में जब पचास दिन बीत गए तो अल्लाह की ओर से हमारी तौबा स्वीकार करने का आदेश आया–

«अल्लाह नबी पर मेहरबान हो गया और मुहाजिरों और अनसार पर भी, जिन्होंने कठिन समय में नबी का साथ दिया। यद्यपि उनमें से एक गरोह के दिल कुटिलता की ओर झुक जाने के निकट थे। फिर वह उनपर मेहरबान हुआ, निस्सन्देह वह इन लोगों के लिए करुणामय तथा दयाशील है। और उन तीनों पर भी (मेहरबान हो गया) जो पीछे छोड़ दिए गए थे, जबकि धरती विशाल होते हुए भी उनपर तंग हो गई, और उनकी जानें उनपर दूभर हो गईं, और उन्होंने समझा कि अल्लाह की पकड़ से बचाने के लिए कहीं और शरण नहीं मिल सकती– मिल सकती है तो बस उसी के यहाँ – तो वह अपनी मेहरबानी से उनकी ओर पलटा, ताकि वे उसकी ओर पलट जाएँ। निस्सन्देह अल्लाह तौबा स्वीकार करनेवाला है।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयतें–117,118)

काब-बिन-मालिक का कहना है कि अल्लाह की नेमतों में से इस्लाम के बाद यह सबसे बड़ी नेमत है कि मैंने अल्लाह के रसूल (ﷺ) के सामने सच बोला। अगर मैं भी झूठ बोल जाता तो उन दूसरे लोगों की तरह मैं भी नष्ट हो जाता जो झूठ बोलकर नष्ट हुए, जिनको अल्लाह ने नापाक कहा। (देखिए : क़ुरआन, सूरा–9, अत-तौबा, आयत–95; सहीह बुख़ारी, 4418 तथा सहीह मुस्लिम, 2769)

(और अधिक जानकारी के लिए देखिए : 'तबूक')

तलाक़

तलाक़, जिसे 'विवाह-विच्छेद' कह सकते हैं, अत्यंत अप्रिय कार्य है क्योंकि विवाह करने का उद्देश्य ही यह है कि पति-पत्नी दोनों मिलकर जीवन व्यतीत करें और अपनी आनेवाली संतान का पालन-पोषण करें। परन्तु कभी-कभी कुछ ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हो जाती हैं जिनमें दोनों का इकट्ठा रहना असम्भव हो जाता है। तो तलाक़ के अतिरिक्त कोई और मार्ग नहीं बचता। यह एक प्राचीन प्रथा है। बाइबल में भी तलाक़ का वर्णन आता है। 'लूक़ा' की इंजील में है–

"जो पति अपनी पत्नी को त्यागकर दूसरी स्त्री से विवाह करता है, वह व्यभिचार करता है और जो पुरुष ऐसी त्यागी हुई स्त्री से विवाह करता है, वह भी व्यभिचार करता है।" (लूक़ा, 16:18)

लेकिन 'मत्ती' में व्यभिचार करने की दशा में तलाक़ का आदेश मिलता है–

"परन्तु मैं तुमसे यह कहता हूँ कि जो पति अपनी पत्नी को व्यभिचार के सिवा किसी और कारण से छोड़ेगा, तो वह उससे व्यभिचार करवाता है और जो पुरुष उस त्यागी हुई स्त्री से विवाह करेगा, वह व्यभिचार करता है।" (मत्ती, 5:32)

इसका अर्थ यह हुआ कि 'ज़िना' की दोषी होने के अतिरिक्त कोई ईसाई अपनी पत्नी को किसी अन्य कारण से तलाक़ नहीं दे सकता, और अगर तलाक़ दे दी तो दूसरा पुरुष उससे विवाह नहीं कर सकता। इस प्रकार की शिक्षाओं के कारण ईसाई समाज ने तलाक़ के सिद्धान्त को ही ठुकरा दिया और फिर ऐसे कड़े प्रतिबन्ध लगा दिए जिनका पालन करना असम्भव हो गया।

इस्लाम धर्म एक मध्यमार्गी धर्म है, जैसा कि क़ुरआन में आया है–

«इसी प्रकार हमने तुम्हें बीच का एक समुदाय बनाया, ताकि तुम सारे मनुष्यों पर साक्षी बनो।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–143)

इसलिए जहाँ उसने तलाक़ को एक अप्रिय कार्य बताया, वहीं कुछ परिस्थितियों में तलाक़ को अनिवार्य और कुछ परिस्थितियों में उचित बताया, क्योंकि जब पति-पत्नी आपस में प्रेम के साथ जीवन नहीं बिता सकते, तो फिर घृणा के साथ जीवन बिताना जीवन के आनन्द को नष्ट करना है, बल्कि उन दोनों और उनकी संतान के लिए यह एक बहुत बड़ी यातना बन जाती है। इसलिए इस समस्या का केवल एक ही समाधान है कि दोनों अलग हो जाएँ।

❋ तलाक़ देने का सही तरीक़ा–

अगर पति-पत्नी का एक साथ रहना असम्भव हो जाए और तलाक़ देना अनिवार्य हो जाए तो उसका सही तरीक़ा यह है कि जब पत्नी मासिक धर्म से पवित्र हो जाए और पति ने उससे संभोग न किया हो तो एक बार तलाक़ दे। फिर जब पवित्र मास बीत जाए और मासिक धर्म आ जाए और फिर जब उससे पवित्र हो जाए तो दूसरी तलाक़ दे। फिर इसी प्रकार पवित्र मास बीत जाए और मासिक धर्म के बाद फिर पवित्र मास आ जाए तो तीसरी बार तलाक़ दे। इस तीसरी तलाक़ के बाद दोनों को सदैव के लिए अलग कर दिया जाएगा। इसे तलाक़े-बाइना कहते हैं। तलाक़े-बाइन के पश्चात् अगर पत्नी ने किसी और से विवाह कर लिया और उससे संभोग करने के पश्चात् तलाक़ हो गई या इस दूसरे पति का देहान्त हो गया हो तो ऐसी स्थिति में वह अपने पहले पति से दोबारा विवाह कर सकती है, जिसको 'हलाला' कहते हैं। इसके बिना वह पहले पति से विवाह नहीं कर सकती।

ये पूरे तीन मास इस लिए रखे गए हैं कि अगर बीच में वे दोनों आपस में रहने पर राज़ी हो जाएँ तो पति को चाहिए कि तलाक़ से 'रुजू' कर ले, जिसका तरीक़ा यह है कि या तो–

1. यह कहे कि मैं तलाक़ से रुजू करता हूँ।

2. या पत्नी से संभोग कर ले।

याद रहे कि इन तीनों मासों में पत्नी पति के घर से न निकले, और न पति उसको अपने घर से निकाले। कारण यह है कि इस प्रकार पश्चात्ताप करते हुए सम्भव है कि दोनों को अपनी ग़लती का एहसास हो जाए और दोनों अपने-अपने व्यवहार को सुधार लें, ताकि दो दिल जो कभी एक हो गए थे, अब बिछड़ने से बच जाएँ।

❃ तलाक़ देने का ग़लत तरीक़ा–

1. मासिक धर्म की दशा में तलाक़ देना ग़लत है, क्योंकि इब्ने-उमर (رضي الله عنه) ने जब अपनी पत्नी को मासिक धर्म में तलाक़ दे दी थी तो नबी (ﷺ) ने उनको हुक्म दिया कि इससे रुजू कर लो। फिर जब वह मासिक धर्म से पवित्र हो जाए तो अगर चाहो तो तलाक़ दो। (देखिए : बुख़ारी, 5252 तथा मुस्लिम, 1471)

   परन्तु अगर किसी ने मासिक धर्म में तलाक़ दे दी तो इसको एक तलाक़ गिना जाएगा या नहीं? विद्वानों का इसमें मतभेद है। और सही यही है कि इसे एक तलाक़ गिना जाएगा जैसा कि इब्ने-उमर (رضي الله عنه) ने स्वयं बताया है कि एक तलाक़ माना गया। (देखें- बुख़ारी-5333 तथा मुस्लिम-1471)

2. ऐसे पवित्र मास में तलाक़ देना, जिसमें संभोग किया हो, परन्तु गर्भ न हो। इस प्रकार तलाक़ देनेवाला पापी होगा, लेकिन उसकी तलाक़ की गिनती की जाएगी।

3. एक बार में एक से अधिक तलाक़ देना पाप है। जैसे कोई एक बार में तीन तलाक़ दे डाले, तो अब उसकी तीन तलाक़ गिनी जाएंगी या नहीं? इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। मेरी जानकारी के अनुसार वह एक गिनी जाएगी। विस्तृत जानकारी हासिल करने के लिए मेरी अरबी किताब 'अल-मिन्नतुल-कुबरा' देखिए।

तक़वा

तक़वा का अर्थ है डरना। यह शब्द क़ुरआन में अल्लाह से डरने के लिए प्रयोग हुआ है और अल्लाह से डरने का अर्थ है, उसके बताए हुए मार्ग पर चलना। इसमें आदेश और निषेध दोनों सम्मिलित हैं। आदेश में नमाज़ पढ़ना, ज़कात देना, रमज़ान में उपवास रखना, हज करने की सामर्थ्य हो तो हज करना, एक-दूसरे की सहायता करना, नातेदारों के साथ अच्छा व्यवहार करना, निर्धनों को दान देना, इत्यादि सम्मिलित हैं। निषेध (वर्जित कर्म) में, जैसे ज़िना करना, चोरी करना, किसी की हत्या करना, झूठी गवाही देना, किसी पर अत्याचार करना, इत्यादि सम्मिलित हैं। अल्लाह से सबसे अधिक डरनेवाला व्यक्ति ही श्रेष्ठ है। क़ुरआन में है–

«वास्तव में अल्लाह के यहाँ तुममें सबसे अधिक श्रेष्ठ वह है जो तुममें सबसे अधिक (अल्लाह का) डर रखता है। निश्चय ही अल्लाह सब कुछ जाननेवाला और ख़बर रखनेवाला है।» (सूरा–49, अल-हुजुरात, आयत–13)

अल्लाह की किताब क़ुरआन से केवल 'मुत्तक़ी' (अल्लाह से डरनेवाले) लोग ही लाभ उठा सकते हैं।

«यह वही किताब है, (जिसका वादा किया गया था) जिसमें कोई सन्देह नहीं, इसमें मार्गदर्शन उन लोगों के लिए है जो अल्लाह से डरनेवाले हैं।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–2)

अतः जो लोग अल्लाह का तक़वा (डर) रखते हैं उनसे अल्लाह का वादा है कि उनके लिए वह रास्ते खोल देगा –

«जो कोई अल्लाह का डर रखेगा, उसको वह (परेशानी से) निकलने की राह पैदा कर देगा।» (सूरा–65, अत-तलाक़, आयत–2)

«जो कोई अल्लाह का डर रखेगा उसके मामले में वह आसानी पैदा कर देगा।» (सूरा–65, अत-तलाक़, आयत–4)

और अल्लाह से डरनेवाले ही सफल होंगे–

«जो कोई अल्लाह और उसके रसूल की आज्ञा का पालन करे, और अल्लाह से डरे, तो ऐसे ही लोग सफलता प्राप्त करनेवाले हैं।» (सूरा–24, अन-नूर, आयत–52)

संक्षेप में यह कि ये वे लोग हैं जो अल्लाह के बताए हुए मार्ग पर चलते हैं। और रसूल ने जो कुछ हुक्म दे दिया उसको स्वीकार करते हैं–

«रसूल जो भी तुम्हें हुक्म दे उसपर अमल करो, और जिससे तुम्हें रोके रुक जाओ और अल्लाह का डर रखो। निश्चय ही अल्लाह की यातना बहुत कठोर है।» (सूरा–59, अल-हश्र, आयत–7)

ताज़ीर

ताज़ीर का अर्थ है रोकना या किसी काम से मना करना। यहाँ ताज़ीर से अभिप्राय ऐसे अपराध को रोकना है, जिनके लिए इस्लामी विधान में कोई दंड निर्धारित नहीं किया गया है। ऐसे अपराध को रोकने के लिए न्यायालय जो दंड देता है उसको 'ताज़ीर' कहते हैं। इस दंड के विषय में न्यायालय ही निर्णय कर सकता है कि वह क्या होना चाहिए। इससे इस्लामी विधान की व्यापकता का पता चलता है। परन्तु एक सहीह हदीस में आया है–

"दस कोड़ों से अधिक का दंड किसी को नहीं दिया जा सकता, सिवाय अल्लाह की निर्धारित की हुई सीमा के।" (बुख़ारी, 6848 तथा मुस्लिम 1708)

इस हदीस के विषय में यही कह सकते हैं कि यह किसी विशेष दशा के सम्बन्ध में है, क्योंकि ताज़ीर के द्वारा किसी को फाँसी का दंड भी दिया जा सकता है। जैसे जासूस (गुप्तचर), जिनके कारण देश की सुरक्षा को ख़तरा पैदा हो जाए, या अफ़ीम आदि नशीले पदार्थों के व्यापारी, जिनके कारण समाज की सुरक्षा को ख़तरा पैदा हो जाए इत्यादि। इस प्रकार के कुछ उदाहरण हमें सहाबा (ﷺ) के यहाँ मिलते हैं कि उन्होंने कुछ अपराधों में दस कोड़ों से अधिक का दंड दिया है।

तौबा

'तौबा' का अनुवाद पश्चात्ताप या पलटना या रूजु करना भी किया जा सकता है। इस्लामी शिक्षाओं में इसका बड़ा महत्त्व है, क्योंकि मनुष्य अपनी प्रकृति में तो सत्यवादी है, परन्तु जीवन-व्यवहार में बड़ा अत्याचारी, अवज्ञाकारी और अहंकारी है। क़ुरआन में है –

«उसी ने तुम्हें मुँह माँगी सभी वस्तुएँ दे रखी हैं। यदि तुम अल्लाह के उपकारों (नेमतों) को गिनना चाहो तो उन्हें पूरा-पूरा गिन नहीं सकते। वास्तव में मनुष्य बड़ा अन्यायी और अकृतज्ञ है।» (सूरा–14, इबराहीम, आयत–34)

«हमने इस अमानत (क़ुरआन) को आकाशों, धरती, तथा पहाड़ों पर प्रस्तुत किया, परन्तु कोई भी उसको उठाने के लिए तैयार न हुआ, बल्कि उससे डर गए। (परन्तु) मनुष्य ने उसे उठा लिया। निश्चय ही वह अत्यन्त अत्याचारी और मूर्ख है।» (सूरा–33, अल-अहज़ाब, आयत–72)

इनसान के अत्याचारी और मूर्ख बनने में शैतान का भी बड़ा हाथ है–

«निश्चय ही शैतान मनुष्य का खुला हुआ शत्रु है।» (सूरा–12, यूसुफ़, आयत–5)

एक ओर इनसान स्वयं अत्याचारी और मूर्ख है, क्योंकि उसने उस अमानत को स्वीकार कर लिया जिसको आकाशों, पृथ्वी तथा पहाड़ों ने अस्वीकार कर दिया था। दूसरी ओर शैतान भी उसके पीछे लगा हुआ है, ताकि उसको पथभ्रष्ट करता रहे। जब ऐसी स्थिति है तो मनुष्य से पाप कर्म होना कोई अचम्भे की बात नहीं, क्योंकि पग-पग पर शैतान उसको अल्लाह का अवज्ञाकारी बनाने पर लगा हुआ है यहाँ तक कि उसने आदम (عليه السلام) को भी नहीं छोड़ा और उनसे भी अल्लाह की अवज्ञा करा कर रहा–

«परन्तु शैतान ने उसे शंका में डाल दिया। (जिसके कारण) आदम ने अपने रब की अवज्ञा की तो वह मार्ग से भटक गया।» (सूरा–20, ता-हा, आयतें–120,121)

जब इनसान की यह दशा है तो अल्लाह ने अपनी कृपा से 'तौबा' का दरवाज़ा खोल दिया और अपने बन्दों से कहा–

«कह दो, "ऐ मेरे बन्दो, जिन्होंने अपने प्राणों पर अत्याचार किए हैं, तुम अल्लाह की रहमत से निराश मत हो जाना। निस्सन्देह अल्लाह सारे पापों को क्षमा कर देता है। वास्तव में वह अत्यन्त क्षमाशील तथा कृपालु है।"» (सूरा–39, अज़-ज़ुमर, आयत–53)

एक स्थान पर तो मोमिनों को आदेश देता है कि तौबा करो–

«ऐ ईमानवालो! अल्लाह के आगे सच्चे दिल से तौबा करो बहुत संभव है तुम्हारा 'रब' तुमसे तुम्हारी बुराइयाँ दूर कर दे। और तुम्हें ऐसी जन्नत में दाख़िल कर दे जिसके नीचे नहरें बह रही होंगी।» (सूरा–66, अत-तहरीम, आयत–8)

आयत में अरबी शब्द 'तौबतुन्-नसूहा' (विशुद्ध तौबा) प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ है सच्चे दिल से की गई तौबा और इसके लिए निम्नलिखित शर्तों का पाया जाना अनिवार्य हैं–

1. मनुष्य जिस पाप से तौबा कर रहा है उसे सदैव के लिए त्याग दे, और दिल में यह दृढ़ निश्चय करे कि अब दोबारा इस पाप के पास नहीं जाना है।
2. अपने किए हुए पाप पर अल्लाह के सामने लज्जित हो।
3. अगर उस पाप का सम्बन्ध बन्दों से हो तो उनसे क्षमा माँगे, और किसी का उसके पास धन हो तो उसको वापस कर दे।

इस प्रकार तौबा करने को 'तौबतुन्-नसूहा' (विशुद्ध तौबा या पश्चात्ताप) कहते हैं निश्चय ही जिसने एक बार यह तौबा कर ली, फिर वह कभी भी पाप नहीं कर सकता और अगर ग़लती से हो जाए तो तुरन्त तौबा कर लेगा। क़ुरआन में है –

«तुममें से किसी ने भूल-चूक से पाप कर लिया, और फिर तौबा करके अपना सुधार कर लिया तो अल्लाह क्षमा करनेवाला कृपालु है।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–54)

तौबा करना नबियों का आचरण है। जैसे आदम (عليه السلام) ने तौबा की–

«फिर आदम ने अपने रब से कुछ शब्द सीखकर क्षमा माँगी, तो अल्लाह ने उसकी तौबा स्वीकार कर ली। निस्सन्देह वह तौबा स्वीकार करनेवाला दयावान है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–37)

इबराहीम (عليه السلام) भी तौबा करनेवालों में से थे। क़ुरआन में है –

«ऐ हमारे रब, हमें हज करने का तरीक़ा बता, और हमारी तौबा स्वीकार कर। निस्सन्देह तू तौबा स्वीकार करनेवाला और दयावान है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–128)

मूसा (عليه السلام) ने भी तौबा की थी–

«अल्लाह ने जब अपनी तजल्ली पर्वत पर डाली तो वह रेज़ा-रेज़ा (चकनाचूर) हो गया और मूसा मूर्छित हो कर गिर पड़ा। फिर जब होश में आया तो पुकार उठा, ''महिमा है तेरी। मैं तेरे समक्ष तौबा करता हूँ और सबसे पहले ईमान लानेवाला मैं हूँ।''» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–143)

और फिर अल्लाह सारे मोमिनों को भी तौबा करने का आदेश देता है–

«ऐ ईमानवालो! तुम सब मिलकर अल्लाह से तौबा करो, ताकि तुम सफल हो जाओ।» (सूरा–24, अन-नूर, आयत–31)

तौबा करना भी एक प्रकार की इबादत है। इसलिए यह भी केवल अल्लाह के लिए है। किसी और के सामने तौबा करना अल्लाह के साथ उसको साझी बनाना है। क़ुरआन में है –

«क्या वे जानते नहीं कि अल्लाह ही है जो अपने बन्दों की तौबा स्वीकार करता है, और वही दानों (सदक़ों) को स्वीकार करता है और अल्लाह बहुत तौबा स्वीकार करनेवाला और दयावान है।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयत–104)

«वही है जो अपने बन्दों की 'तौबा' स्वीकार करता है, और बुराइयों को माफ़ कर देता है, और वह जानता है जो कुछ तुम करते हो।» (सूरा–42, अश-शूरा, आयत–25)

इन आयतों से स्पष्ट होता है कि जिस प्रकार सारी इबादतें अल्लाह के लिए हैं, उसी प्रकार तौबा भी उसी के लिए है। उसी से तौबा करनी चाहिए। वही तौबा स्वीकार करनेवाला और पापों से पाक-साफ़ करनेवाला है। उसका कोई साझीदार नहीं है। इसलिए जिसने भी तौबा करने में किसी को अल्लाह का साझीदार बनाया और अल्लाह के अतिरिक्त किसी और के समक्ष तौबा की, उसने शिर्क किया और शिर्क महापापों में से एक है जो कदापि क्षमा नहीं किया जाएगा।

﴾ तूर ﴿

'तूर' एक पर्वत का नाम है, जो रेगिस्तान सीना के दक्षिणी भाग में है। इसके पूर्व में 'उक़बा' की खाड़ी और पश्चिम में 'सुवेस' की खाड़ी है। अब इसको मूसा पर्वत कहते हैं। 'तुवा' का मैदान इसी के दामन में है, जहाँ मूसा (عليه السلام) के साथ अल्लाह ने बातें की थीं और उन्हें तौरात दी थी। इसी पहाड़ को सिरों पर उठाकर बनी-इसराईल से वचन लिया गया था कि तुम तौरात की शिक्षाओं को दृढ़तापूर्वक पकड़े रहोगे, उनको छोड़ोगे नहीं। परन्तु वे अपनी बिगड़ी हुई प्रकृति के कारण तौरात छोड़ बैठे। एक अल्लाह को छोड़कर असंख्य देवी-देवताओं की पूजा में लग गए। क़ुरआन में है –
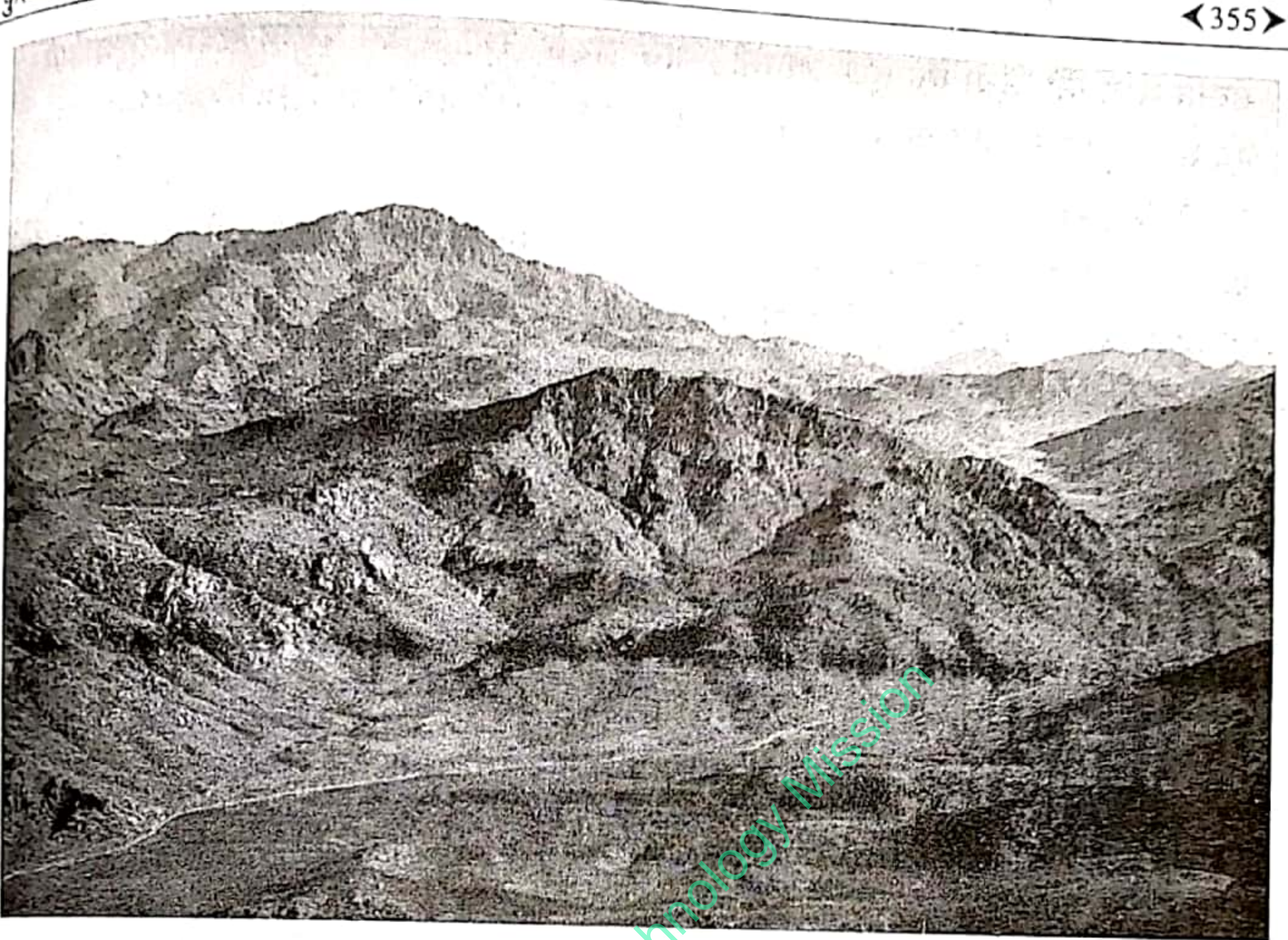
"तूर पर्वत, जिस पर मूसा عليه السلام से अल्लाह तआला ने बातें की और तौरात दी"

《जब हमने तुमसे वचन लिया, और 'तूर' को तुम्हारे ऊपर खड़ा कर दिया। (कहा कि) जो तुम्हें हम दे रहे हैं उसको शक्ति से थाम लो और जो उसमें है उसे याद रखो, ताकि तुम (प्रकोप) से बच सको।》 (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–63)

《हमने उसे 'तूर' के दाएँ किनारे से अवाज़ दी और बातें करने के लिए समीप कर लिया।》 (सूरा–19, मरयम, आयत–52)

तुवा

'तुवा' का वर्णन क़ुरआन में दो स्थानों पर आया है, और दोनों स्थानों पर मूसा (عليه السلام) को अल्लाह आदेश देता है कि तुम 'तुवा' के पवित्र मैदान में हो। इसलिए अपने जूते उतार लो और जो मैं कह रहा हूँ उसको ध्यान से सुनो–

《निस्सन्देह मैं तेरा 'रब' हूँ। तू अपने जूते उतार दे, क्योंकि तू पवित्र मैदान 'तुवा' में है तथा मैंने तुझे चुन लिया। इसलिए जो तुझे वह्य की जा रही है उसे ध्यानपूर्वक सुन।》 (सूरा–20, ता-हा-, आयतें–12,13)

दूसरे स्थान पर फ़रमाया–

«क्या मूसा की कथा का तुम्हें ज्ञान है? जब उसके 'रब' ने उसे पवित्र मैदान 'तुवा' में पुकारा। तुम फ़िरऔन के पास जाओ, जो बहुत घमंडी बन गया है।» (सूरा–79, अन-नाज़िआत, आयतें–15-17)

यह क़िस्सा उस समय का है जब मूसा (अलैहि०) 'मदयन' से अपनी पत्नी और बच्चों के साथ 'मिस्र' वापस आ रहे थे। कि 'तुवा' नामक मैदान में उनको नबी होने की शुभ सूचना दी गई और उसी के साथ यह हुक्म भी हुआ कि फ़िरऔन के पास जाओ। वह बड़ा घमंडी और अत्याचारी बन गया है। पहले उसे 'तौहीद' का संदेश दो, और फिर बनी-इसराईल को उसके चंगुल से निकालो।

यह मैदान 'तुवा' कहाँ है? क़ुरआन से पता चलता है कि यह 'तूर' नामक पहाड़ के दामन में है–

«जब मूसा ने (शुएब (अलैहि०) के यहाँ रहने की) अवधि पूरी कर ली, और अपने परिवारवालों से को लेकर निकल पड़ा तो 'तूर' नामक पर्वत की ओर उसने आग देखी। उसने अपने परिवारवालों कहा, "ठहरो मैंने आग देखी है, सम्भव है मैं वहाँ से कोई समाचार लाऊँ, या आग का कोई टुकड़ा, ताकि तुम गर्मी प्राप्त कर लो।" अतः जब वह वहाँ पहुँचा तो उस शुभ धरती के मैदान के दाएँ किनारे के वृक्ष में से आवाज़ आई, "ऐ मूसा! मैं ही अल्लाह हूँ, सर्वलोक का 'रब'।"» (सूरा–28, अल-क़सस, आयतें–29,30)

(अधिक जानकारी के लिए देखिए : 'मूसा (अलैहि०)'।)

तागूत

तागूत शब्द क़ुरआन में आठ बार प्रयोग हुआ है –

सूरा–2, अल-बक़रा, आयतें–256; सूरा–4, अन-निसा, आयतें–51, 60, 76; सूरा–5, अल-माइदा, आयत–60; सूरा–16, अन-नह्ल, आयत–36 और सूरा–39, अज़-ज़ुमर, आयत–17।

प्रत्येक स्थान पर एक ही अर्थ है कि अल्लाह को छोड़कर किसी और की इबादत की जाए, चाहे वे मनुष्य हों, मूर्तियाँ हों या शैतान हों, ये सब 'तागूत' हैं। क्योंकि इन्होंने अल्लाह का जो हक़ उसके बन्दों पर होता है उसमें ज़्यादती की और उस हक़ को उसके बन्दों को दे दिया। जैसे–

«जो तागूत को ठुकरा दे और अल्लाह पर ईमान लाए, उसने शक्तिशाली सहारा थाम लिया।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–256)

«अल्लाह उन लोगों का वली (संरक्षक) है जो ईमान लाएँ। वह उन्हें अंधेरों से निकालकर प्रकाश की ओर लाता है और जिन लोगों ने कुफ़्र किया, उनके वली (संरक्षक) 'तागूत' हैं। वे उन्हें प्रकाश से निकालकर, अंधेरों की ओर ले जाते हैं। यही लोग जहन्नमवाले हैं, जिसमें वे सदैव रहेंगे।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–257)

«क्या तुमने उन लोगों को नहीं देखा, जिन्हें किताब का एक हिस्सा दिया गया? वे 'जिब्त' (अनावश्यक चीज़ों) और 'ताग़ूत' पर ईमान लाते हैं।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–51)

«हमने हर गरोह में कोई-न-कोई रसूल भेजा कि अल्लाह की इबादत करो और 'ताग़ूत' से बचो।» (सूरा–16, अन-नह्ल, आयत–36)

«जो लोग 'ताग़ूत' की इबादत से बचे और अल्लाह की ओर पलटे उनके लिए शुभ सूचना है। तो मेरे बन्दों को शुभ सूचना दे दो।» (सूरा–39, अज़-ज़ुमर, आयत–17)

तस्बीह

'तस्बीह' एक इस्लामी पारिभाषिक शब्द है, जिसका अनुवाद किसी और भाषा में करना कठिन है, क्योंकि किसी और धर्म में 'तस्बीह' का वह अर्थ पाया ही नहीं जाता जो क़ुरआन में आया है। इसलिए कि हर धर्म में किसी न किसी प्रकार से 'शिर्क' पाया जाता है और 'तस्बीह' शिर्क के विरुद्ध अल्लाह के एक होने का वर्णन है। इसलिए समझने के लिए इसका अर्थ है अल्लाह की पवित्रता और महिमा का हर प्रकार के शिर्क से रहित होकर वर्णन करना। चूँकि वही सारी सृष्टि का रचयिता है, इसलिए किसी न किसी प्रकार से सारी सृष्टि ही उसकी 'तस्बीह' कर रही है, उसका गुणगान अथवा महिमागान कर रही है।

✻ फ़रिश्तों द्वारा अल्लाह की तस्बीह–

«जब तुम्हारे 'रब' ने फ़रिश्तों से कहा, "मैं धरती में 'ख़लीफ़ा' (सत्ताधारी) बनानेवाला हूँ।" उन्होंने कहा, "क्या उसमें तू उसे नियुक्त करेगा जो उसमें बिगाड़ पैदा करेगा और रक्तपात करेगा? जबकि हम तेरी प्रशंसा के साथ तेरी 'तस्बीह' (गुणगान) करते हैं, और तेरी पवित्रता का वर्णन करते हैं।" उसने कहा, "मैं वह जानता हूँ जो तुम नहीं जानते।"» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–30)

«(क़ियामत के दिन) तुम फ़रिश्तों को देखोगे कि वे 'अर्श' (अल्लाह के सिंहासन के) चारों ओर घेरा बाँधे हुए हैं, अपने 'रब' की प्रशंसा के साथ 'तस्बीह' (गुणगान) कर रहे हैं।» (सूरा–39, अज़-ज़ुमर, आयत–75)

«तथा हम पंक्तिबद्ध खड़े हुए हैं। और उसकी 'तस्बीह' कर रहे हैं।» (सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयतें–165,166)

✻ बादलों द्वारा अल्लाह की तस्बीह–

«गरजते बादल और भय खाए हुए फ़रिश्ते उसकी प्रशंसा के साथ 'तस्बीह' कर रहे हैं।» (सूरा–13, अर-रअ़द, आयत–13)

✽ पहाड़ों द्वारा अल्लाह की तस्बीह –

«हमने पहाड़ों को उस (अर्थात् दाऊद (عليه السلام)) के साथ लगा दिया था कि सन्ध्या समय, और प्रातः काल 'तस्बीह' करते रहें।» (सूरा–38, सॉद, आयत–18)

✽ पक्षियों द्वारा अल्लाह की तस्बीह –

«क्या तुमने देखा नहीं कि जो कोई भी आकाशों और धरती में है, अल्लाह की 'तस्बीह' (गुणगान) कर रहा है और पंख फैलाए हुए पक्षी भी? हर एक अपनी बंदगी और 'तस्बीह' से परिचित है और अल्लाह जानता है जो कुछ वे करते हैं।» (सूरा–24, अन-नूर, आयत–41)

अर्थात् सारी सृष्टि ही उसकी 'तस्बीह' कर रही है। परन्तु हम उनकी तस्बीह को समझते ही नहीं –

«सातों आकाशों और धरती और जो कोई उनके बीच है सब उसकी 'तस्बीह' (महिमागान) करते हैं। और ऐसी कोई चीज़ नहीं जो उसकी प्रशंसा के साथ 'तस्बीह' न करती हो। परन्तु तुम उनकी 'तस्बीह' को समझते नहीं हो। निस्सन्देह वह बड़ा ही सहनशील और क्षमा करनेवाला है।» (सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–44)

'तस्बीह' को क़ुरआन तथा सहीह हदीसों में हमारा वास्तविक उद्देश्य बताया गया है –

«उन घरों में, जिनको ऊँचा करने और जिनमें अपने नाम को याद करने का अल्लाह ने आदेश दिया है, ऐसे लोग प्रभातकाल तथा सायंकाल अल्लाह की तस्बीह करते हैं, जिन्हें अल्लाह की याद और नमाज़ क़ायम करने और ज़कात देने से न तो व्यापार ग़ाफ़िल करता है न क्रय-विक्रय। वे उस दिन से डरते हैं जिसमें दिल और आँखें विकल हो जाएँगी।» (सूरा–24, अन-नूर, आयतें–36,37)

घरों को उच्च करने का अर्थ है मस्जिदें बनाना, जहाँ इबादत के साथ अल्लाह की 'तस्बीह' की जाती है। यह तो उन सदाचारियों का वर्णन है जिनके दिल हर समय अल्लाह की याद में मग्न रहते हैं और उसकी 'तस्बीह' बयान करते हैं जो यह है–

'सुबहानल्लाह, सुबहानल्लाह' अर्थात् सारी पवित्रता और महिमा केवल अल्लाह के लिए है, कोई उसका साझी नहीं है। लेकिन जो लोग उसकी पवित्रता और महिमा को नहीं पहचान पाते और उसकी अनुभूति नहीं कर पाते, किसी न किसी जीवधारी को उसका साझी बना बैठते हैं। जैसे किसी ने किसी को उसका बेटा बना दिया।

जैसा कि क़ुरआन में है –

«यह उसकी महिमा के विरुद्ध है कि उसका कोई बेटा हो, जबकि आकाशों और धरती में जो कुछ है उसी का है, और अल्लाह का कार्यसाधक होना काफ़ी है।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–171)

«कहते हैं कि अल्लाह औलाद रखता है। महिमावान है वह! बल्कि वे तो उसके प्रतिष्ठित बन्दे हैं।» (सूरा–21, अल-अंबिया, आयत–26)

अर्थात् जिनको ये लोग अल्लाह के बेटे समझ बैठे हैं वे तो उसके प्रतिष्ठित 'फ़रिश्ते' हैं, जो उसकी 'तस्बीह' में लगे हुए हैं। इन पथ-भ्रष्टों ने इसी को पर्याप्त समझा बल्कि अल्लाह की बेटियाँ भी बना डालीं। क़ुरआन में है –

«वे अल्लाह के लिए बेटियाँ ठहराते हैं– महान और उच्च है वह–और अपने लिए वह, जो वे चाहें।» (सूरा–16, अन-नह्ल, आयत–57)

अर्थात् अरब के मुशरिक स्वयं अपने लिए बेटियों को पसन्द नहीं करते थे, परन्तु उन्होंने अल्लाह की बेटियाँ बना रखी थीं, जिनकी पूजा करते थे। अल्लाह तो बड़ा ही महिमावान है और पवित्र है इस बात से कि वह अपने लिए बेटियाँ बनाकर रखे। जब ऐसी बात है तो अल्लाह की तस्बीह हर समय करनी चाहिए, उससे अचेत नहीं रहना चाहिए। इसलिए क़ुरआन में बार-बार इसकी चेतावनी आई है। (देखिए: सूरा–3, आले-इमरान, आयत–41; सूरा–20, ता-हा, आयत–130; सूरा–40, अल-मोमिन, आयत–55) इत्यादि। इसी लिए मुसलमान हर नमाज़ में रुकूअ की दशा में 'सुबहा-न रबियल-अज़ीम' और सजदे की दशा में 'सुबहा-न रबियल-आला' पढ़ते हैं। अर्थात् मैं महान रब की तस्बीह बयान करता हूँ।

इस प्रकार तस्बीह के द्वारा अल्लाह ने शिर्क के सारे दरवाज़े बन्द कर दिए, क्योंकि तस्बीह भी इबादत है और यह तस्बीह भी केवल अल्लाह ही की की जा सकती है। अल्लाह ने विभिन्न अवसरों पर अपने नबी (ﷺ) को भी तस्बीह का आदेश दिया है। जैसा कि क़ुरआन में है–

«जब अल्लाह की सहायता आ जाए और विजय प्राप्त हो, और तुम देखो कि लोगों के दल के दल अल्लाह के धर्म में प्रवेश कर रहे हैं तो प्रशंसा के साथ अपने 'रब' की तस्बीह करो, और उससे क्षमा माँगो। निस्सन्देह वह 'तौबा' स्वीकार करनेवाला है।» (सूरा–110, अन-नस्र, आयतें–1-3)

यह सूरा मक्का-विजय के पश्चात् अवतरित हुई। यह वही 'मक्का' है जिससे कठोर हृदय लोगों ने नबी (ﷺ) को इसलिए निकाल दिया था कि आप उनको एक अल्लाह की इबादत की ओर बुलाते थे। और आज अल्लाह की सहायता से आप विजयी होकर अपने प्रिय नगर को वापस आए हैं और लोग दल के दल इस्लाम में प्रवेश कर रहे हैं। ऐसे अवसर पर आपको आदेश दिया जा रहा है कि अल्लाह की प्रशंसा के साथ उसकी 'तस्बीह' करें, जिसने आप (ﷺ) को विजय प्रदान की, इस्लाम-विरोधियों

को पराजय का मुँह दिखलाया। अत: आप केवल उस महान हस्ती की 'तस्बीह' करें। सहीह हदीसों में भी तस्बीह की बड़ी महत्वता बताई गई है। एक हदीस में आया है–

''जिसने प्रतिदिन सौ बार कहा, 'सुबहानल्लाहि व बिहम्दिही' उसके सारे पाप मिट जाएँगे, चाहे वे समुद्र के झाग के बराबर ही क्यों न हों।'' (सहीह बुख़ारी, 6405 व सहीह मुस्लिम, 2691)

एक और हदीस में आता है–

''दो शब्द जो पढ़ने में बहुत सरल हैं, तराज़ू में भारी हैं और रहमान के निकट बहुत प्रिय हैं, वे 'सुबहानल्लाहिल- अज़ीम' और 'सुबहानल्लाहि व बिहम्दिही' हैं।'' (बुख़ारी, 6406 तथा मुस्लिम, 2694)

इसलिए हर मुसलमान को चाहिए कि प्रात: काल तथा सायंकाल, और नमाज़ों के बाद अल्लाह की अधिक से अधिक 'तस्बीह' करे (अर्थात् सुबहानल्लाह, सुबहानल्लाह कहे), ताकि अल्लाह उससे प्रसन्न हो, और 'तस्बीह' की बरकतें उसे इस जीवन में और इस जीवन के पश्चात् भी प्राप्त होती रहें। यूनुस (عليه السلام) अगर अल्लाह की 'तस्बीह' न करते तो क़ियामत तक मछली के पेट में पड़े रहते। जैसा कि क़ुरआन में है –

«तो फिर उन्हें मछली ने निगल लिया, और वह दोषी था। तो यदि वह 'तस्बीह' करनेवालों में से न होता तो, लोगों के उठाए जाने तक मछली के पेट में होता (अर्थात् क़ियामत तक मछली के पेट में ही पड़े रहते)।» (सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयतें–142-144)

और उनकी 'तस्बीह' तथा दुआ का वर्णन भी क़ुरआन में आया है।

«मछलीवाले को याद करो जबकि वह क्रोधित होकर चल पड़ा, और समझा कि हम उसे न पकड़ेंगे। अन्तत: उसने अंधेरों में से पुकारा, ''इलाही, तेरे अतिरिक्त कोई इष्ट-पूज्य नहीं, निस्सन्देह मैं ही अत्याचारियों में से हूँ।'' तो हमने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, और उसको दुखों से मुक्त किया, और हम इसी प्रकार ईमानवालों को बचा लिया करते हैं।» (सूरा–21, अल-अंबिया, आयतें–87,88)

इससे मालूम हुआ कि पहले के रसूल भी अल्लाह की तस्बीह किया करते थे। जैसे मूसा (عليه السلام)(दे.: सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–143) ईसा (عليه السلام) और (दे.: सूरा–5, अल-माइदा, आयत–116)

और सबसे बढ़कर यह कि जन्नत में जानेवालों के मुख से 'सुबहानल्लाह' की आवाज़ निकलेगी (देखिए: सूरा–10, युनुस, आयत–10) और सहीह हदीस में भी वर्णन आया है कि उनके दिल एक होंगे और प्रात:काल तथा सायंकाल वे अल्लाह की 'तस्बीह' बयान करेंगे। (देखिए: सहीह मुस्लिम, 3834) और एक दूसरी हदीस में आया है कि वे 'तस्बीह' इस प्रकार करेंगे जैसे निरन्तर साँस का अन्दर और बाहर आना-जाना लगा रहता है। (देखिए: सहीह मुस्लिम, 3838)

इसलिए किसी मुसलमान को अल्लाह की 'तस्बीह' से ग़ाफ़िल (अचेत) नहीं रहना चाहिए।

तयम्मुम

तयम्मुम वास्तव में वुज़ू का बदला है। अर्थात् यदि पानी न हो या किसी कारण पानी इस्तेमाल न किया जा सकता हो तो तयम्मुम करके नमाज़ पढ़ी जा सकती है। जैसा कि क़ुरआन में एक स्थान पर आया है–

«यदि बीमार हो या यात्रा में हो या तुममें से कोई शौच करके आया हो या तुमने स्त्रियों को हाथ लगाया हो (अर्थात् उनसे संभोग किया हो) फिर पानी न पाओ तो स्वच्छ मिट्टी से अपने मुँह और हाथों पर 'मस्ह' कर लो, अल्लाह तुम्हें तंगी में नहीं डालना चाहता।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–6)

हदीसों में तयम्मुम की जो व्याख्या आई है उससे पता चलता है कि एक बार पाक मिट्टी पर हाथ मारे और उसे मुँह और हाथ पर फेर ले।

जैसा कि क़ुरआन की उपर्युक्त आयत से स्पष्ट होता है इस तयम्मुम से वैसे ही नमाज़ पढ़ी जाएगी जिस प्रकार वुज़ू से पढ़ी जाती है, चाहे नमाज़ पढ़नेवाले ने संभोग किया हो या वह बीमार हो और पानी से डरता हो कि कहीं बीमारी बढ़ न जाए इत्यादि। परन्तु जब पानी मिल जाए या उसके प्रयोग से कोई हानि न हो, तो तयम्मुम समाप्त हो जाता है। फिर नमाज़ के लिए वुज़ू करना अनिवार्य हो जाता है।

तहज़ीब व अख़लाक़

देखें : सदव्यवहार की शिक्षाएँ।

ता-सीन-मीम

देखें : अलिफ़-लाम-मीम।

ता-हा

देखें : अलिफ़-लाम-मीम।

ता-सीन

देखें : अलिफ़-लाम-मीम।

तुब्बा

''तुब्बा'' का वर्णन कुरआन में दो बार आया है।

1- «**क्या ये (मुश्रिक) अच्छे हैं या ''तुब्बा'' की जाति वाले, और वे लोग जो उनमें से पहले हो चुके हैं। हम ने उन्हें नष्ट कर दिया, निश्चय ही वे अपराधी थे।**» (सूरा-44, अद-दुखान, आयत-37)

2- «**इन से पहले झुठलाया नूह की जाति ने, और ''अर-रस्स'' की जाति ने, और ''समूद'' की जाति ने, और ''आद'', ''फ़िरऔन'' और लूत के भाईयों ने, और ''एका'' वालों ने, और ''तुब्बा'' की जाति वालों ने, हर एक ने रसूलों को झुठलाया तो मेरी (यातना) की धमकी पूरी हो कर रही।**» (सूरा-50, क़ाफ़, आयत- 12-14)

''तुब्बा'' का सम्बन्ध यमन के हिमयूरी वंश से था, जिनका राज्य-काल डेढ़ शताब्दी प्रथम ईसवी था, इन राजाओं की उपाधि ''तुब्बा'' थी, जैसे मिस्र के राजाओं की उपाधि फ़िरऔन थी।

दूसरे विद्वानों का विचार है कि यह एक भक्त का नाम है जो ऐकश्वरवाद की दावत देते थे, परन्तु दूसरी जातियों की तरह इनकी जाति ने भी इन्हें झुठलाया, जिसके कारण वे यातना में घिर गये।

हज़रत आईशा का यही विचार है कि यह एक धार्मिक पुरुष थे, इसलिये इन को गाली मत दो।

''काब'' नामी सहाबी का विचार है कि अल्लाह ने ''तुब्बा'' को बुरा नहीं कहा, बल्कि उनकी जाति को बुरा कहा, बल्कि एक हदीस में आता है-

''तुब्बा को गाली मत दो, क्योंकि वह मुसलमान हो गया था।'' (देखिए मुसनद अहमद, 22880)

लेकिन इसकी सनद ज़ईफ़ है क्योंकि इसमें ''अब्दुल्लाह बिन लहीया'' नामी रावी ज़ईफ़ है, लेकिन दूसरी मुरसल हदीसों से इस कथन की पुष्टि होती है।

सूरा ''क़ाफ़'' की आयत से तो किसी नबी का विचार आता है, क्योंकि उस आयत में जिन जातियों का वर्णन आया है उनकी ओर अम्बिया भेजे गये, जिनको उन्होंने ठुकरा दिया।

इन अम्बिया का वर्णन कुरआन तथा अहादीस में बार-बार स्पष्ट रूप से बयान किया गया है, परन्तु ''तुब्बा'' के नबी होने का स्पष्ट प्रमाण कहीं नहीं आया है, इसलिए उनको नबी मानना संभव नहीं है।

द

दाऊद (अलैहि०)
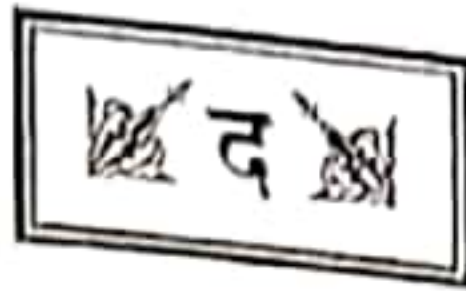
दाऊद (अलैहि०) बनी-इसराईल के महान नबी थे, जिनका वर्णन क़ुरआन में भी आया है। बाइबल के अधिकतर 'मज़ामीर' (अर्थात भजन) इन्हीं की ओर सम्बद्ध किए जाते हैं। बाइबल दाऊद (अलैहि०) लगभग एक हज़ार साल ईसा पूर्व बैतुल्लहम में, जो फ़िलस्तीन में है, पैदा हुए। बाइबल के अनुसार पिता का नाम यस्सी था, जो इबराहीम (अलैहि०) के वंश से थे। अल्लाह ने इनको बड़ा शक्तिशाली बनाया था। एक बार जब वे बकरी चरा रहे थे तो एक शेर और रीछ ने उनपर धावा बोल दिया, उन्होंने उन दोनों का अकेले मुक़ाबला किया और दोनों को मौत के घाट उतार दिया। (बाइबल, शमूएल प्रथम 16/11, 17/34-36)

क़ुरआन ने भी उनके शक्तिशाली होने की ओर संकेत किया है—

«हमने दाऊद को अपनी ओर से श्रेष्ठता प्रदान की थी। ऐ पहाड़ो ! उसके साथ मिलकर तस्बीह करो और पक्षियो तुम भी। हमने उसके लिए लोहे को नर्म कर दिया, कि पूरी-पूरी कवच बना, और कड़ियों को ठीक अन्दाज़े से जोड़।» (सूरा–34, सबा, आयतें-10,11)

एक दूसरे स्थान पर नबी (सल्ल०) को सांत्वना दी जा रही है कि आप भी दाऊद की तरह धैर्य रखें, क्योंकि दाऊद बड़ा शक्तिशाली था, परन्तु उसको भी कष्ट उठाना पड़ा। लेकिन वह अल्लाह की ओर ही ध्यान लगाए रहा—

«(ऐ नबी) धैर्य से काम लो, और हमारे बन्दे दाऊद को याद करो जो बड़ी शक्तिवाला था। निश्चय ही वह अल्लाह की ओर ही ध्यान लगाए रहता था।» (सूरा–38, सॉद, आयत–17)

परिणामत: अल्लाह ने दाऊद को शासक बना दिया—

«ऐ दाऊद! हमने तुझे धरती में ख़लीफ़ा (उत्तराधिकारी) बनाया है। अत: तुम लोगों के बीच हक़ के साथ फ़ैसला करो और अपनी इच्छा का अनुपालन न करना कि वह तुझे अल्लाह के मार्ग से भटका देगी।» (सूरा–38, सॉद, आयत–26)

फिर ऐसा हुआ की बनी-इसराईल की याचना पर अल्लाह ने 'तालूत' नामक व्यक्ति को उनका शासक बना दिया, ताकि वे 'जालूत' नामक शासक से सुरक्षित रह सकें, जो निरंतर उनपर आक्रमण कर रहा था। क़ुरआन इसी ओर संकेत करता है—

«क्या तुमने ''बनी-इसराईल'' के सरदारों को नहीं देखा, जब मूसा के बाद उन्होंने अपने एक नबी से कहा कि हमारे लिए एक शासक नियुक्त कर दे, ताकि हम अल्लाह के मार्ग में युद्ध करें।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–246)

«उनके नबी ने उनसे कहा : अल्लाह ने तुम्हारे लिए 'तालूत' को शासक नियुक्त किया है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–247)

«तो उन्होंने अल्लाह की आज्ञा से उन्हें परास्त किया, और दाऊद ने 'जालूत' का वध कर दिया और उसे अल्लाह ने राज्य और तत्वदर्शिता (हिकमत) प्रदान की।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–251)

बाइबल में इसका वृत्तांत इस प्रकार आया है–

जालूत, जिसको बाइबल में जुलयात कहा गया है, बड़ा अत्याचारी था। बनी-इसराईल पर कई बार आक्रमण कर चुका था। यहाँ तक कि उनका वह ताबूत भी छीनकर ले गया, जिसको वे मिस्र से लाए थे, इसलिए बनी-इसराईल ने अपने नबी शमूएल से प्रार्थना की कि हमारे लिए भी कोई राजा नियुक्त कर दें, ताकि उसके साथ मिलकर फ़िलस्तीनियों तथा निकट के दूसरे सरदारों के विरुद्ध युद्ध करें। उनके नबी ने शाबुल नाम का एक राजा नियुक्त किया, जिसको क़ुरआन में तालूत कहा गया है।[1] जो अपने साथियों को लेकर 'जालूत' से युद्ध करने निकल पड़ा, दोनों की फ़ौजें बैतुल्लहम के निकट कोई पन्द्रह मील पश्चिम में इकट्ठी हो गईं। दाऊद के पिता यस्सी के दो पुत्र युद्ध में सम्मिलित थे। इसलिए यस्सी ने दाऊद को भेजा कि अपने भाइयों का समाचार लेकर आए। जब दाऊद वहाँ पहुँचे, तो देखा कि जालूत, तालूत के युवकों को ललकार रहा है, परन्तु उसके भारी-भरकम शरीर के कारण किसी ने साहस नहीं किया कि आगे बढ़े। यह देखकर दाऊद से न रहा गया। वे आगे बढ़े, और ताक लगाकर उसकी पेशानी पर तीन पत्थर मारे, जिससे रक्त बहने लगा और वह चकराकर धरती पर गिर पड़ा। दाऊद आगे बढ़े और उसी की तलवार से उसे मौत के घाट उतार दिया। यह लगभग 1010 ईसा पूर्व की घटना है। जब यह समाचार तालूत तक पहुँचा तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ और अपनी पुत्री का विवाह दाऊद के साथ कर दिया और उन्हें अपनी फ़ौज का जनरल बना दिया। दाऊद की वीरता से बनी-इसराईल बहुत प्रभावित हुए, और उनकी बहादुरी के गीत गाने लगे, जिससे तालूत ईर्ष्या करने लगा, और उनकी विभिन्न प्रकार से हत्या की योजना बनाने लगा। इसलिए वे उसके दरबार से भाग निकले और हबरून चले गए जहाँ लोगों ने उनको अपना राजा बना लिया। साढ़े सात वर्ष तक वे शासन करते रहे। तालूत की मृत्यु के पश्चात् बनी-इसराईल ने उनको अपना शासक बना लिया।

[1] बाइबल में आया है कि शाबुल बड़ा लम्बा-चौड़ा था। (देखिए : शमूएल प्रथम, 10:23) क़ुरआन ने भी इसकी पुष्टि की है। (देखिए : सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-247) इसलिए शाबुल अरबों में अपने भारी शरीर के कारण तालूत की उपाधि से प्रसिद्ध हो गया था। जिसका अर्थ है : लम्बा-चौड़ा। इसलिए क़ुरआन ने उसके नाम के स्थान पर उसकी उपाधि का प्रयोग किया, जो जालूत के वज़न पर है।

सैदा
लीतानी नदी
रूम सागर
दिमश्क़
सूर
शाम
झील हौला
बाशान
झील तबरिया
अक्का
अज़रअ
शहबा
तबरिया
नासिरा
हैफ़ा
यरमूक नदी
सुवैदा
अतलीत
अज़रआत
बीसान
कैसारिया
बुसरा शाम
जार्डन नदी
जलआद
सामरा
नाबुलस
फ़िलस्तीन
याफ़ा
लद्द
रामुल्लाह
हल्लाबात भवन
अज़रक़
रमला
अरीहा
अम्मान
अबु ग़ौश
असदूद
अलकुदस
उमरह भवन
बैत लहम
मुर्दार सागर
अल-ख़लील
मुआब
ग़ज़्ज़ा
ख़ान यूनुस
रफ़ह
करक
अदूम
जौग़र
सद्दूम
आमूरा
जार्डन
50
50
100
150
किमी.
नक़ब रेगिस्तान
पतरा
मुआन

दाउद अलैहिस्सलाम
का कार्यक्षेत्र
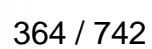
971 ईसा पूर्व में उनका देहान्त हुआ। उनके बाद उनके पुत्र सुलैमान (ﷺ) राजगद्दी पर बैठे।

दाऊद (ﷺ) जहाँ एक महान शासक थे वहीं एक महान नबी भी थे। जो बनी-इसराईल के सुधार के लिए भेजे गए थे। अल्लाह ने उनपर ज़बूर नामक पुस्तक भी उतारी थी। क़ुरआन में है –

«हमने दाऊद को 'ज़बूर' प्रदान की।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–163 तथा सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–55)

वे 'ज़बूर' इतने मधुर स्वर में पढ़ते थे कि पक्षी और पहाड़ भी उनके साथ एकाग्र होकर अल्लाह की तसबीह (महिमागान) करने लगते थे–

«दाऊद के साथ हमने पहाड़ों और पक्षियों को वशीभूत कर दिया था कि वे अल्लाह की तसबीह (महिमागान) करें। और हम ही ऐसा करनेवाले थे।» (सूरा–21, अल-अंबिया, आयत–79)

«हमने दाऊद पर अपना बड़ा अनुग्रह किया था। 'ऐ पहाड़ो और पक्षियो, उसके साथ तसबीह को प्रतिध्वनित करो। और हमने उसके लिए लोहे को नर्म कर दिया।» (सूरा–34, सबा, आयत–10)

«हमने पहाड़ों को उसके साथ वशीभूत कर दिया कि संध्या समय, तथा प्रातःकाल तसबीह (महिमागान) करते रहें, और पक्षियों को जो एकत्र हो जाते थे सब उसकी आज्ञा का पालन करनेवाले थे।» (सूरा–38, सॉद, आयत–19,20)

दाऊद (ﷺ) के मधुर स्वर का वर्णन बाइबल में भी बड़े विस्तार से किया गया है। (प्रथम इतिहास, 6:31, 16:7, 41-43, 25:1)

दाऊद (ﷺ) पर अल्लाह ने ज़बूर उतारी थी, जिसे एक लम्बे समय तक लोग पढ़ा करते और याद किया करते थे। वास्तविकता यह है कि पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व विद्वानों ने ज़बूर की खोज की। यह ज़बूर उस समय गीतों के रूप में थी। फिर बाद में तो उनको कुछ और गीत मिल गए। सबको मिलाकर उन्होंने एक पुस्तक तैयार की, जिसमें कुल 150 गीत थे। इनमें से 73 दाऊद के, शेष दूसरों के हैं। इनको पाँच पुस्तकों में विभाजित किया गया है। पहली पुस्तक में कुल 41 गीत हैं। जिनमें से 37 दाऊद के और शेष दूसरों के हैं जिनका सही पता लगाना मुशकिल है कि किसके हैं। इसलिए इनको 'अनाथ' कहते हैं। दूसरी पुस्तक में कुल 31 गीत हैं, जिनमें से 18 दाऊद के और शेष दूसरों के हैं, तीसरी पुस्तक में कुल 17 गीत हैं, जिनमें से केवल एक दाऊद का, शेष दूसरों के। चौथी पुस्तक में भी कुल 17 गीत हैं, जिनमें से केवल 2 दाऊद के, शेष दूसरों के हैं। पाँचवीं पुस्तक में 44 गीत हैं, जिनमें से 15 दाऊद के, शेष दूसरों के हैं। (देखिए : क़ामूस किताब मुक़द्दस, पृ. 430,431)

दाऊद (عليه السلام) को क़ुरआन ने बड़ा उच्च स्थान प्रदान किया है। वह इस प्रकार कि अल्लाह ने उनके राज्य को दृढ़ कर दिया, और उनको बुद्धिमान बनाया, जो कठिन-से-कठिन समस्या भी सरलता पूर्वक सुलझा देते थे–

«हमने उसके राज्य को दृढ़ कर दिया था, उसे बुद्धिमान बनाया, तथा निर्णायक बात करने की क्षमता प्रदान की।» (सूरा–38, सॉद, आयत–20)

क़ुरआन में उनके बुद्धिमान होने की एक घटना का वर्णन किया गया है। उनके पास दो व्यक्ति अपना मुक़द्दमा लेकर पहुँचे। उनमें से एक ने कहा –

«यह मेरा भाई है, इसके पास निन्यानवे बकरियाँ हैं और मेरे पास केवल एक बकरी है। अब इसका कहना है कि यह (एक बकरी) भी मुझे सौंप दे, और इसने बातचीत में मुझे दबा लिया।» (सूरा–38, सॉद, आयत–23)

दाऊद (عليه السلام) ने उसके भाई की हरकत को ग़लत बताते हुए ठीक-ठीक फ़ैसला सुना दिया, उसी समय उनको अपनी कोई घटना याद आ गई, वे तुरन्त सजदे में गिरकर अपने रब से क्षमा की प्रार्थना करने लगे।

वह क्या घटना थी? क़ुरआन तथा सहीह हदीसों में इसका वर्णन नहीं आया है। परन्तु हो सकता है कि सूरा-सॉद की आयत-23 में जो निन्यानवे बकरियों का वर्णन हुआ है उससे अभिप्राय आपकी पत्नियाँ हों। क्योंकि अरबी भाषा में स्त्रियों को बकरियों से उपमा दी जाती है।

अब्दुल्लाह इब्ने-अब्बास से एक सहीह वचन आया है कि दाऊद (عليه السلام) ने उस व्यक्ति से (जिसका नाम बाइबल में हित्ती आया है) याचना की कि वह अपनी पत्नी से अलग हो जाए। जैसा कि अबुल-मुज़फ़्फ़र समआनी (देहान्त 489 सन् हिजरी) ने अपनी तफ़्सीर वर्णन किया है।

तो जब दाऊद (عليه السلام) को अपनी ग़लती का पता चला तो सजदे में गिर गए और अल्लाह से क्षमा माँगने लगे।

इतनी-सी बात को बाइबल में बढ़ा-चढ़ाकर इस प्रकार बताया गया कि उन्होंने हित्ती की पत्नी से ज़िना (व्यभिचार) किया, और हित्ती को जान-बूझ कर एक युद्ध में मरवा दिया और उसकी पत्नी से विवाह कर लिया।

इसका पूरा विवरण 2 शमुएल अध्याय 11-12 में देखें।

दाऊद (عليه السلام) को अल्लाह ने जो चमत्कार दिए थे, उनमें से एक यह था कि उनके लिए लोहे को मोम जैसा नर्म व मुलायम बना दिया। क़ुरआन में है –

«हमने उसके लिए लोहे को नर्म कर दिया कि उसके द्वारा कवचें बना, उनकी कड़ियों को ठीक-ठीक लगा।» (क़ुरआन, सूरा–34, सबा आयतें-10-11)

इस प्रकार अल्लाह ने दाऊद (عليه السلام) पर बड़े उपकार किए, क्योंकि वह बड़ा ईश भक्त था–
«निश्चय ही वह अल्लाह की ओर ध्यान देनेवाला था।» (क़ुरआन, सूरा–38, साद, आयत–17)

अल्लाह नबी मुहम्मद (ﷺ) को दाऊद (عليه السلام) की कहानी बताकर सब्र करने का आदेश दे रहा है कि जिस प्रकार हमने दाऊद (عليه السلام) को उसके कर्मों का फल दिया और उसको धरती में सत्ता दे दी, उसी प्रकार आपको भी एक दिन धरती में सत्ता प्राप्त होगी।

देव-स्थान

देव-स्थानों पर जाकर चढ़ावे चढ़ाना, किसी प्रकार की इबादत करना, जैसे दुआ माँगना, रुकू-सजदे करना, सिर झुकाना, क़ब्रों को चूमना आदि सब वर्जित है। चाहे ये देव-स्थान किसी बुत आदि के हों या किसी की क़ब्र हो, जहाँ लोग इकट्ठा होकर विभिन्न प्रकार की इबादतें करते हों। जैसे : नज़र मानना, चादर चढ़ाना, क़ब्रवाले को सहायता के लिए पुकारना, उससे औलाद माँगना इत्यादि। यह सब तौहीद (एकेश्वरवाद) के विरुद्ध है। तौहीद इस्लामी शिक्षाओं का केन्द्रीय विषय है। क़ुरआन में है –

«ऐ ईमानवालो! शराब, जुआ, देव-स्थान तथा पाँसे ये सब गंदे शैतानी काम हैं। अत: तुम इनसे अलग रहो, ताकि सफलता पा सको, शैतान तो यही चाहता है कि शराब तथा जुए के द्वारा तुम्हारे बीच शत्रुता और द्वेष पैदा कर दे और तुम्हें अल्लाह की याद से और नमाज़ से रोक दे, तो क्या तुम बाज़ नहीं आओगे?» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–90-91)

मुस्नद अहमद (2:351) में है कि जब यह आयत उतरी तो मुसलमान कहने लगे, "ऐ हमारे रब! हम बाज़ आ गए।"

इसलिए जो अपने आपको मुसलमान कहते हुए विभिन्न प्रकार की बिदअतें करते हैं, वे वास्तव में इस्लाम की सही शिक्षा से बहुत दूर हैं। उन्हें चाहिए कि अपनी सफलता के लिए इस्लाम में तौहीद के महत्त्व को समझें और उसपर अमल करें।

दुआ

दुआ करना वास्तव में अल्लाह की बंदगी करना है, क्योंकि दुआ के द्वारा बन्दा अपने आपको अल्लाह के सामने बड़े निर्बल रूप में पेश करता है। और इस बात का दिल में विश्वास रखता है कि देनेवाला केवल अल्लाह है। इसलिए उसी से माँगना चाहिए। अल्लाह ने क़ुरआन में स्वयं हुक्म दिया है कि मुझसे ही माँगो, मैं ही दूँगा–

«तुम्हारे रब ने कहा, "मुझसे ही माँगो, मैं ही तुम्हारी दुआ स्वीकार करूँगा।" निस्सन्देह जो लोग मेरी बन्दगी के मामले में घमण्ड से काम लेते हैं, वे शीघ्र ही अपमानित होकर नरक में पहुँच जाएँगे।» (सूरा–40, अल-मोमिन, आयत–60)

«अपने रब को गिड़गिड़ाकर और चुपके-चुपके पुकारो। निस्सन्देह वह हद से आगे बढ़नेवालों से प्रेम नहीं करता।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–55)

अर्थात् दुआ करना वास्तव में अल्लाह की बंदगी करना है, जैसा कि हदीस में आया है–

"दुआ बंदगी ही है।" (अबू दाऊद, 1479; तिरमिज़ी, 2969; इब्ने-माजा, 3828 तथा मुस्नद अहमद 8:267)

प्रत्येक मुसलमान पर अनिवार्य है कि वह अल्लाह से दुआ करता रहे, क्योंकि दुआ से भाग्य बदल सकता है जैसा कि एक हदीस में आया है–

"भाग्य को दुआ के अतिरिक्त कोई और चीज़ नहीं बदल सकती।" (तिरमिज़ी, 2139; इब्ने-माजा, 4022; मुस्नद अहमद, 5:277; हाकिम ने सहीह कहा है। मुस्तदरक 1:493)

परन्तु लिखा हुआ भाग्य तो मिट नहीं सकता, इसलिए इस हदीस का अर्थ यह है कि वही दुआ स्वीकार की जाएगी जो भाग्य के समर्थन में हो, उससे टकराती न हो, चूँकि हमें भाग्य का ज्ञान नहीं, इसलिए दुआ करनी चाहिए कि भाग्य से टकराए बिना हमारी दुआ स्वीकार कर ली जाए। क्योंकि दुआ स्वयं भाग्य का हिस्सा है।

इसी कारण तो नबियों ने दुआ की–

«अय्यूब को याद करो जब उसने अपने रब से दुआ की : मुझे बीमारी लग गई है, और तू सबसे बढ़कर दया करनेवाला है।» (सूरा–21, अल-अंबिया, आयत–83)

दुआ स्वीकार हो या न हो, बहरहाल इससे दिल को शान्ति मिलती है, और कठिनाइयों पर धैर्य से काम लेने का साहस बढ़ता है।

एक हदीस में यह भी आता है–

"कोई मुसलमान जब दुआ करता है, अगर उसमें पाप न हो, और न नातेदारों से कटा हुआ हो तो अल्लाह निम्नलिखित तीन चीज़ों में से एक अवश्य देता है। या तो उसकी दुआ तुरन्त स्वीकार कर ली जाती है, या उसे क़ियामत के लिए सुरक्षित कर ली जाती है, या उसके स्थान पर कोई आपत्ति (मुसीबत) दूर कर दी जाती है।" लोगों ने कहा, "तब तो हम बहुत दुआ किया करेंगे।" नबी (ﷺ) ने फ़रमाया, "अल्लाह उससे भी अधिक देनेवाला है।" (देखिए : मुस्नद अहमद, 11133)

इससे मालूम हुआ कि दुआ स्वयं एक इबादत है और दूसरी इबादतों की तरह यह इबादत भी केवल अल्लाह के लिए विशेष है। अब अल्लाह को छोड़कर कोई किसी और को पुकारता है। उससे अपनी हाजतें माँगता है, तो एक प्रकार से वह शिर्क करता है। क़ुरआन में एक स्थान पर है –

«मस्जिदें तो केवल अल्लाह के लिए हैं, अतः अल्लाह के किसी और को न पुकारो।» (सूरा–72, अल-जिन्न, आयत–18)

«तुम लोग अल्लाह के सिवा जिन्हें पुकारते हो वे तो तुम्हारी तरह ही बन्दे हैं, अतः पुकार लो उनको यदि तुम सच्चे हो, तो उन्हें चाहिए कि वे तुम्हें जवाब दें।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–194)

सच तो यह है–

«जिन्हें तुम अल्लाह को छोड़कर पुकारते हो, उन्हें न तुम्हारी सहायता करने का सामर्थ्य प्राप्त है और न वे अपनी ही सहायता कर सकते हैं।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–197)

«उसे छोड़कर जिनको तुम पुकारते हो, वे तो एक 'क़ितमीर' (खजूर की गुठली की झिल्ली) के भी मालिक नहीं हैं, यदि तुम उन्हें पुकारो तो वे तुम्हारी पुकार नहीं सुनेंगे, और यदि सुनते तो भी तुम्हारा जवाब न देते, और क़ियामत के दिन वे तुम्हारे शिर्क का इनकार कर देंगे (अल्लाह की तरह) तुमको कोई ख़बर देनेवाला नहीं।» (सूरा–35, फ़ातिर, आयतें–13, 14)

इलयास (عليه السلام) एक रसूल थे, उन्होंने अपनी जाति से कहा–

«क्या तुम अल्लाह से डरते नहीं? क्या तुम 'बअल' को पुकारते हो और सबसे अच्छे पैदा करनेवाले को छोड़ देते हो? उस अल्लाह को जो तुम्हारा भी रब है, और तुम्हारे अगले पूर्वजों का भी रब है।» (सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयतें–123-126)

जब यह बात है तो हमारी सारी दुआएँ केवल अल्लाह के लिए ही होनी चाहिएँ। इसलिए नबी (ﷺ) ने विभिन्न परिस्थितियों में तथा विभिन्न समयों के लिए दुआएँ बताई हैं। जैसे क़र्ज़ उतारने की दुआ, रोग से शिफ़ा (मुक्ति) पाने की दुआ, यात्रा पर निकलने से पहले की दुआ, किसी कष्ट से निकलने की दुआ इत्यादि। ये दुआएँ हदीस की पुस्तकों में मौजूद हैं।

इसलिए एक मुसलमान को चाहिए कि इन दुआओं को याद कर ले और पाबन्दी के साथ अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए केवल अल्लाह से दुआ करे। आशा है कि उसकी दुआएँ स्वीकार होंगी और उसकी मुरादें पूरी होंगी। क़ियामत के दिन बड़ा आश्चर्यजनक दृश्य होगा जब वे, जिनको

दुनिया में लोग अपनी हाजतों के लिए पुकारा करते थे, अपने को अल्लाह का साझी ठहराने से इनकार करेंगे, और कहेंगे, "हमने कब कहा था कि अल्लाह को छोड़कर हमें पुकारो, हम तुम्हारी हाजतों को पूरा करेंगे। हम तुम्हारे इस शिर्क से इनकार कर रहे हैं। हम तो स्वयं अल्लाह से अपनी सफलता और मुक्ति के लिए दुआ करते हैं। भला हम तुम्हें क्या लाभ पहुँचा सकेंगे।"

दिनों का उलट-फेर

अल्लाह की सर्वव्यापी और विशाल सत्ता में से एक यह भी है कि वह दिनों में उलट-फेर करता रहता है और जातियों-प्रजातियों की दशा में भी। अत: कभी इस समुदाय को प्रभुत्व प्राप्त होता है, कभी उस समुदाय को। जैसा कि क़ुरआन में कहा गया है–

«यदि तुम्हें (उहुद के युद्ध में) आघात पहुँचा तो उन्हें भी तो (उस युद्ध अर्थात् बद्र) में इसी प्रकार का आघात पहुँच चुका है। और हम इन दिनों को लोगों के बीच इसी प्रकार अदलते-बदलते रहते हैं ताकि अल्लाह ईमान लानेवालों को जान ले और तुममें से कुछ को गवाह बना ले। अल्लाह अत्याचारियों से प्रेम नहीं करता।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–140)

इस आयत में उहुद और बद्र के युद्ध की ओर संकेत करते हुए अल्लाह ने अपना एक नियम बताया है। वह यह कि दिनों के अदल-बदल करने से मुसलमानों को अगर कोई कठिनाई होती है, तो उनको धैर्य रखना चाहिए, क्योंकि अगर कभी कोई कठिनाई हुई तो उससे पहले बहुत कुछ आसानी भी तो हुई और यह जो कुछ हो रहा है वह वास्तव में एक विधानानुसार हो रहा है। और यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि अल्लाह मुसलमानों के मुक़ाबले में इस्लाम विरोधियों और मुशरिकों को सफलता प्रदान कर रहा है, बल्कि यहाँ जो कुछ हो रहा है वह सब एक नियमानुसार हो रहा है। क्योंकि अगर अल्लाह बलपूर्वक सबको मुसलमान बना देता, या प्रत्येक दशा में केवल मुसलमान ही सफल होते तो फिर कोई विधर्मी क्यों रहता और फिर आख़िरत का सवाल-जवाब सब बेकार हो जाता, यद्यपि अल्लाह के अधिकार में यह है कि वह चाहे तो सबको मुसलमान बना दे–

«अगर तेरा रब चाहता तो पृथ्वी पर बसनेवाले सब मोमिन होते, तो क्या तुम लोगों को विवश करोगे कि वे मोमिन हो जाएँ ?» (सूरा–10, यूनुस, आयत–99)

अर्थात् जब स्वयं अल्लाह ईमान लाने पर लोगों को विवश नहीं कर रहा है तो ऐ मुहम्मद! आप किस प्रकार लोगों को ईमान लाने पर विवश कर सकते हैं?

इस आयत में उन लोगों के लिए चेतावनी है जो नबी (ﷺ) पर झूठा लांछन लगाते हैं कि आपने लोगों को तलवार के द्वारा इस्लाम ग्रहण करने पर विवश किया।

एक स्थान पर अल्लाह ने मुशरिकों के इस कथन का भी उल्लेख किया है–

«जो लोग शिर्क करते हैं वे कहेंगे : यदि अल्लाह चाहता तो न हम शिर्क करते और न हमारे पूर्वज, और न हम किसी चीज़ को हराम ठहराते।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–148)

परन्तु अल्लाह का नियम तो यही है कि कोई व्यक्ति अपने लिए जो कुछ पसंद करता है वह उसको उसी में छोड़ देता है। वह बलपूर्वक किसी को इस्लाम पर नहीं चलाता।

इसलिए मुसलमानों को चाहिए कि दिनों के हेर-फेर तथा अदल-बदल से अपने आपको प्रभावित न करें, बल्कि हालात को बदलने के लिए जो उचित उपाय हैं, करते रहें और अल्लाह से दुआ भी जारी रखें। क्योंकि उसकी इच्छा के बिना यहाँ कुछ भी नहीं हो सकता।

क़ुरआन की शिक्षाओं में से एक प्रमुख शिक्षा यह है–

«निस्सन्देह अल्लाह किसी जाति की दशा उस समय तक नहीं बदलता, जब तक कि वह स्वयं अपने आपको नहीं बदलती।» (सूरा–13, अर-रअ़द, आयत–11)

इस आयत में अल्लाह एक सामान्य नियम की ओर संकेत कर रहा है विशेषकर मुसलमानों को संबोधित करते हुए कहता है तुम्हारी दशा उस समय तक ठीक नहीं हो सकती जब तक तुम स्वयं अपनी दशा को बदलने की चेष्टा न करो, चाहे वह आर्थिक क्षेत्र हो या वैज्ञानिक और चाहे सामाजिक क्षेत्र हो या राजनीतिक, हर क्षेत्र में अपनी दशा को बदलने की कोशिश करनी होगी।

दाब्बा

दाब्बा का वर्णन क़ुरआन में बार-बार आया है। उसका अनुवाद प्राणधारी (जीव) किया जा सकता है। इसमें भी अल्लाह की बड़ी निशानियाँ छिपी हैं –

«उसकी निशानियों में से आकाशों और धरती का पैदा करना है, और वे प्राणधारी भी जो इन दोनों (आकाश और धरती) में फैला रखे हैं। वह जब चाहे उनको इकट्ठा करने की सामर्थ्य भी रखता है।» (सूरा–42, अश-शूरा, आयत–29)

इस आयत से मालूम होता है कि पृथ्वी की तरह आकाशों में भी जीवन पाया जाता है, जिसकी खोज में आज वैज्ञानिक लगे हुए हैं।

❋ दाब्बा का वर्षा होते ही निकल आना

कुछ दाब्बा ऐसे भी हैं जो वर्षा होते ही पृथ्वी से निकल पड़ते हैं। (देखिए : सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–164)

❀ दाब्बा का सजदा करना

«तमाम जानदार जो आसमानों में हैं और धरती में हैं अल्लाह को सजदा करते हैं, और फ़रिश्ते भी और वे घमंड नहीं करते। अपने रब से, जो उनके ऊपर है, डरते हैं, और जो उन्हें हुक्म दिया जाता है करते हैं।» (सूरा–16, अन-नह्ल, आयतें–49,50)

अल्लाह को सजदा करना और उसकी इबादत करना ही समस्त जानदारों का परम ध्येय है। परन्तु आवश्यक नहीं कि वह सजदा मनुष्यों की तरह हो। इसी प्रकार अल्लाह से डरना भी वास्तविक है। परन्तु उनके डरने के तरीक़े और मनुष्य के डरने के तरीक़े में अन्तर है। हमारा ज्ञान अभी तक सीमित है और सदैव ही सीमित रहेगा। कभी भी हम अल्लाह के असीमित ज्ञान का बोध नहीं कर सकेंगे। इसलिए अल्लाह की बताई हुई इन बातों पर हमको उसी प्रकार विश्वास करना चाहिए, जिस प्रकार प्रत्यक्ष और देखी हुई बातों पर विश्वास करते हैं।

❀ दाब्बा के जत्थे

क़ुरआन में है –

«धरती में चलनेवाला कोई भी जीवधारी हो, और अपने दो पंखों से उड़नेवाला कोई भी पक्षी हो उन सबके तुम्हारे जैसे जत्थे हैं। हमने किताब में कोई चीज़ (लिखने से) छोड़ी नहीं। फिर वे अपने रब की ओर इकट्ठे किए जाएँगे।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–38)

अर्थात् कोई भी जीवधारी धरती तथा आकाशों में तनहा नहीं है, बल्कि उनकी भी नस्ल होती है और मनुष्यों की तरह उनके भी गरोह होते हैं। जिस प्रकार मनुष्यों की तक़दीर अल-किताब (अर्थात् लौहे-महफ़ूज़) में लिखी हुई है, उसी प्रकार इन तमाम जीवधारियों की तक़दीर भी लिखी हुई है और उसी तक़दीर के अनुसार उनको आजीविका मिलती है। फिर आयु बीतने के बाद मृत्यु आ जाती है। यह सब कुछ अल्लाह ने अपने पूर्व ज्ञान के अनुसार लौहे-महफ़ूज़ में लिख रखा है।

❀ आजीविका

क़ुरआन में है –

«धरती में चलनेवाला कोई ऐसा जीवधारी नहीं है जिसकी आजीविका अल्लाह के ज़िम्मे न हो। और जिसके रहने की जगह, और जिसके सौंपे जाने (अर्थात् मरने) की जगह वह न जानता हो। सब कुछ एक खुली किताब में (लिखा हुआ) है।» (सूरा–11, हूद, आयत–6)

सौंपे जाने की जगह से अभिप्राय उसके मरने की जगह है।

इस आयत का भावार्थ समझने के लिए उस सहीह हदीस को देखना ज़रूरी है जिसमें कहा गया है कि अल्लाह ने आकाशों तथा पृथ्वी बनाने से पचास हज़ार वर्ष पूर्व जीवधारियों का भाग्य लिख दिया था। उस समय उसका 'अर्श' (सिहांसन) पानी पर था। (सहीह मुस्लिम, 2653)

❃ अल्लाह की पकड़ में ढील

«यदि अल्लाह लोगों को उनके ज़ुल्म पर पकड़ने लगे, तो धरती पर एक जानदार को भी न छोड़े, परन्तु वह उन्हें एक निर्धारित समय तक ढील देता है। फिर जब उनका निश्चित समय आ जाएगा तो न वे एक घड़ी पीछे रह सकते हैं, न आगे बढ़ सकते हैं।» (सूरा–16, अन-नह्ल, आयत–61)

❃ क़ियामत से पहले निकलनेवाला दाब्बा

क़ियामत की निशानियों में से एक निशानी वह दाब्बा है, जो लोगों से बातें करेगा–

«जब उनके ऊपर प्रकोप का वचन सिद्ध हो जाएगा, हम पृथ्वी से उनके लिए एक दाब्बा (पशु) निकालेंगे, जो उनसे बातें करता होगा। लोग हमारी आयतों पर विश्वास नहीं करते।» (सूरा–27, अन-नह्ल, आयत–82)

यह पशु उनको बताएगा कि रसूलों की शिक्षा सत्य थी, परन्तु तुम लोगों ने उसे ठुकरा दिया। अब अल्लाह की यातना के लिए तैयार हो जाओ। इस 'दाब्बा' की ज़बान से तौहीद का बयान वास्तव में अल्लाह की ओर से एक अपमान है कि तुमने अपने जैसे मनुष्यों की बातों को ठुकरा दिया। परन्तु अब तुम इस दाब्बा की बात कैसे ठुकराओगे, क्योंकि उस समय ईमान लाने का समय बीत चुका होगा।

दूध पिलाना

देखें : रिज़ाअत।

ध
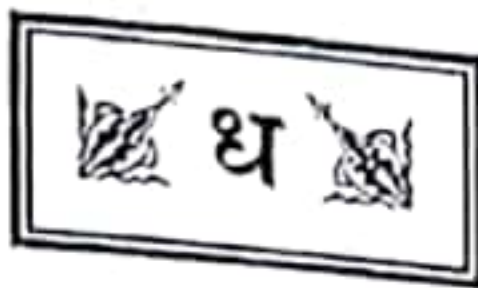
धरती

जिस जगह पर हम चलते फिरते हैं वह अल्लाह की रचनाओं में से एक है जिसमें विचार करनेवालों के लिए बड़ी शिक्षाएं हैं। क़ुरआन में है –

«निस्संदेह आकाशों और धरती की रचना में और रात-दिन के एक दूसरे के पश्चात बारी-बारी से आने में बुद्धिमानों के लिए बहुत-सी निशानियाँ हैं।» (सूरा-3, आले-इमरान, आयत-190)

✻ पृथ्वी तथा आकाश आपस में मिले हुए थे –

«क्या इस्लाम-विरोधियों ने देखा कि ये आकाश और धरती पहले आपस में मिले हुए थे फिर हमने उन्हें अलग-अलग कर दिया, और पानी से हर जानदार चीज़ बनाई। तो ऐ लोगो! ईमान क्यों नहीं लाते?» (सूरा-21, अल-अंबिया, आयत 30)

इस आयत से ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल से यह बात चली आ रही है कि आकाश और धरती आपस में एक थे। इसी लिए क़ुरआन विधर्मियों को सम्बोधित कर रहा है कि क्या इन्होंने देखा नहीं, अर्थात विचार नहीं किया?

यहाँ आकाश से अभिप्राय है कि जो कुछ आकाश में है अर्थात विभिन्न प्रकार के नक्षत्र अलग होते ही अपने मार्ग की ओर निकल पड़े और फिर अपनी निश्चित की हुई सीमा में घूमने लगे।

अल्लाह ने छः दिनों में इस पूरी कायनात (जग) को, जिसमें आकाश भी है और धरती भी, पैदा किया–

«वह अल्लाह ही है जिसने आकाशों और धरती को और जो कुछ इन दोनों के बीच है छः दिनों में पैदा किया।» (सूरा-32 अस-सजदा, आयत-4)

आकाश की तरह धरती की भी सात परतें हैं।

«अल्लाह ही तो है जिसने सात आकाश पैदा किए, और उन्हीं की तरह धरती भी। उनके बीच आदेश उतरता रहता है।» (सूरा-65, अत-तलाक़, आयत-12)

एक सहीह हदीस में आता है–

"जिसने किसी की एक हथेली के बराबर भूमि पर क़ब्ज़ा कर लिया तो क़ियामत के दिन सात धरतियों का पट्टा उसके गले में डाल दिया जाएगा।" (सहीह मुसलिम, 1610)

✻ **धरती को पहाड़ों के द्वारा स्थिर कर दिया ताकि किसी एक ओर को झुक न जाए –**

«और उसने अटल पहाड़ डाल दिए ताकि वह तुम्हें लेकर लुढ़क न जाए।» (सूरा 16, अन-नहल, आयत-15)

«और हमने धरती में अटल पहाड़ रख दिए ताकि वह तुम्हें लेकर लुढ़क न जाए, और हमन उसमें ऐसे दर्रे बनाए जो रास्तों का काम देते हैं ताकि तुम मार्ग पा सको।» (सूरा-21, अल-अंबिया, आयत-31)

«उसने आकाशों को बिना सहारे के पैदा किया जैसा कि तुम देखते हो, और धरती में पहाड़ डाल दिए ताकि वह तुम्हें लेकर लुढ़क न जाए और उसमें हर प्रकार के जानवर फैला दिए।» (सूरा-31 लुक़मान, आयत-10)

पहाड़ों को धरती में डालने का विशेष लाभ यह है कि पृथ्वी की गति और उसकी चाल को ठीक रखा जाए।

✻ **अल्लाह ने हर चीज़ को संतुलन के साथ पैदा किया है–**

«निश्चय ही हमने हर चीज़ को अंदाज़े के साथ पैदा किया और हमारा आदेश (और काम) तो बस एक क्षण की बात होती है जैसे आँख का झपका।» (सूरा-54 अल-क़मर, आयतें-49,50)

अर्थात जिस प्रकार पलक झपकाने में देर नहीं होती उसी प्रकार हमारे हुक्म के कार्य रूप में आने में देर नहीं होती। और यह जो कुछ होता है वह पूरे नियमानुसार होता है, ताकि संसार को ठहराई हुई रीति पर चलने में कोई कठिनाई न हो।

अल्लाह के एक दिन की व्यवस्था हमारे एक हज़ार वर्ष के बराबर है।

«वह आकाश से धरती तक हर कार्य की व्यवस्था करता है, फिर ये कार्य एक दिन में उसके पास पहुंच जाते हैं जिसका अनुमान तुम्हारी गणनानुसार एक हज़ार वर्ष के बराबर है।» (सूरा-32, अस-सजदा, आयत-5)

अर्थात अल्लाह आकाश से, जहाँ उसका अर्श है और जहाँ लौहे-महफ़ूज़ है, धरती पर अपना आदेश अवतरित करता है जैसे जीवन-मरण, स्वास्थ-रोग युद्ध शान्ति इत्यादि। और एक हज़ार वर्ष का -पूरा विवरण उसके पास एक दिन के बराबर है। इससे उसकी महान सत्ता का पता चलता है।

✻ **आकाश को सितारों द्वारा सुशोभित कर दिया –**

«हमने दुनिया के निकटवाले आकाश को तारों द्वारा सुशोभित कर दिया।» (सूरा-37, अस-साफ़्फ़ात, आयत-6)

«हमने दुनिया के निकटवाले आकाश को चिराग़ो (तारों) से सजाया और उससे शैतानों को मार भगाने का काम लिया।» (सूरा-67, अल-मुल्क, आयत-5)

* धरती की तरह दूसरे आकाशों में भी प्राणधारी पाए जाते हैं –

«और जो जानदार आकाशों और धरती में हैं सब अल्लाह ही को सजदा करते हैं। और फ़रिश्ते भी, और वे घमण्ड नहीं करते।» (सूरा-16, अन-नह्ल, आयत-49)

* धरती पर रहनेवालों के लिए चन्द्रमा का निकलना और डूबना समय जानने का साधन बनाया–

«वे आप से चाँद (अर्थात उसके निकलने और डूबने) के विषय में पूछते हैं तो आप बता दें कि यह लोगों के लिए समय, और 'हज' (का अवसर) जानने का साधन है।» (सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-189)

«वही तो है जिसने सूर्य को प्रकाशमान बनाया, और चन्द्रमा को उजियाला बनाया, और उसके लिए मंज़िलें निश्चित कीं ताकि तुम इसके द्वारा वर्षों की गिनती और हिसाब मालूम करो।» (सूरा-10, यूनुस, आयत-5)

सूर्य को प्रकाशमान बनाने का अर्थ है कि उसकी रौशनी स्वयं अपनी है। और चन्द्रमा को, उजियाला बनाने का अर्थ है कि वह सूर्य की रौशनी के कारण रौशन है उसकी अपनी कोई रौशनी नहीं है।

एक दूसरी आयत में यूँ आया है–

«वह बड़ा बरकतवाला है जिसने आकाश में बुर्ज बनाए और उसमें एक रौशनीवाला चिराग़ (सूर्य) और चमकता हुआ चाँद भी बना दिया।» (सूरा-25 अल-फ़ुरक़ान, आयत-61)

यहाँ 'बुर्ज' का अर्थ आकाश के वे क्षेत्र हो सकते हैं जिन्हें मज़बूत सरहदों ने एक दूसरे से अलग कर रखा है, ताकि कोई क्षेत्र दूसरे क्षेत्र को पार न कर सके। धरती को इस योग्य बना दिया कि इसमें से हर प्रकार की जीविका उगती है।

«और हमने धरती को फैलाया, और उसमें पहाड़ डाल दिए और उसमें हर प्रकार की चीज़ें एक अन्दाज़ के साथ उगाईं, और उसमें तुम्हारी जीविका के सामान बनाए और उनके लिए भी जिनको जीविका देने वाले तुम नहीं हो।» (सूरा-15, अल-हिज्र, आयतें 19,20)

* सितारों को समुद्रों तथा पृथ्वी पर मार्ग तलाश करने का साधन बनाया –

«और वही है जिसने तुम्हारे लिए तारे बनाए ताकि तुम उसके द्वारा भूमि और समुद्र की अंधियारियों में मार्ग जान सको, ज्ञान रखनेवालों के लिए हमने आयतें खोल-खोलकर बयान कर दी हैं।» (सूरा-6, अल-अनआम, आयत-98)

«और तारों के द्वारा भी लोग मार्ग पा लेते हैं।» (सूरा-16, अन-नह्ल, आयत-16)

* **धरती को इस योग्य बना दिया कि उसमें से हर प्रकार की आजीविका उगती है–**

«और हमने धरती को फैलाया और उसमें पहाड़ डाल दिए और उसमें हर प्रकार की चीज़ें एक अंदाज़े के साथ उगाईं। और उसमें तुम्हारी आजीविका के लिए सामान बनाए, और उनके लिए भी जिनको आजीविका देनेवाले तुम नहीं हो।» (सूरा-15, अल-हिज्र, आयतें-19-20)

«और आकाश से हमने एक अन्दाज़े के साथ पानी उतारा फिर उसे धरती में ठहरा दिया, और उसे विलुप्त करने की सामर्थ्य भी हमें प्राप्त है। फिर उस (पानी) के द्वारा तुम्हारे लिए उन खजूरों और अंगूरों के बाग़ बनाए, तुम्हारे लिए उन बाग़ों में बहुत-से स्वादिष्ट फल हैं, और उनमें से तुम खाते हो।» (सूरा-23, अल-मोमिन, आयतें -18,19)

अर्थात धरती को हमारे लिए तथा हर प्रकार के जीवधारियों के लिए जीविका का साधन बनाया और अब तक जो कुछ हमें पता चला है वह धरती में पाए जानेवाले साधनों का केवल 4 प्रतिशत है। अभी तक 96 प्रतिशत का हमें ज्ञान ही नहीं हुआ है। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि अल्लाह ने हर चीज़ को निश्चित अंदाज़े के साथ उतारा।

यह कायनात सितारों से परिपूर्ण है जिनके चारों ओर सय्यारे (ग्रह) घूम रहे हैं जो अपने केन्द्रीय गुरुत्वाकर्षण के कारण अपने क्षेत्र से बाहर नहीं निकल सकते। जैसे सूर्य एक तारा है जिसके चारों ओर सय्यारे घूम रहे हैं। इसी प्रकार सूर्य भी किसी बड़े तारे का सय्यारा है जिसके चारों ओर यह घूम रहा है। और कितने सितारे ऐसे हैं जिनका अभी तक हमें ज्ञान नहीं हुआ।

«और आकाश को हमने अपनी शक्ति से बनाया, और निस्सन्देह हम ही उसे बढ़ाते रहनेवाले हैं।» (सूरा-51, अज़-ज़ारियात, आयत-47)

* **कायनात की हर चीज़ अपने-अपने रास्ते पर चल रही है–**

«सूर्य के लिए जो निर्धारित मार्ग है वह उसी पर चलता रहता है और यह प्रभुत्वशाली तथा सर्वज्ञ का निर्धारित किया हुआ (मार्ग) है, तथा चन्द्रमा के लिए हमने ठिकाने निर्धारित कर दिए हैं। यहाँ तक कि घूम फिर कर खजूर की पुरानी टहनी के समान हो जाता है। न सूर्य के वश में है कि वह चन्द्रमा को जा ले और न रात दिन से आगे बढ़ जानेवाली है। सब के सब अपनी सीमा में फिरते रहते हैं।» (सूरा-36, या-सीन, आयतें-38-40)

सीमा से तात्पर्य वह व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत नक्षत्र अपने सितारों के साथ आकाश में फिरते रहते हैं। जैसे, चाँद पृथ्वी के साथ, पृथ्वी सूर्य के साथ और सूर्य किसी और बड़े सय्यारे के साथ फिर

रहे हैं, परन्तु कहीं आपस में टकराव नहीं होता, और जिस दिन ऐसा होगा वह संसार का अन्तिम दिन होगा अर्थात क़ियामत होगी। उस दिन सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा, केवल अल्लाह का नाम बाक़ी रह जाएगा –

«धरती पर जो कुछ है नाशवान है। केवल तुम्हारे रब का अस्तित्व, जो महान एवं सम्मानित है, शेष रह जाएगा।» (सूरा-55, अर-रहमान, आयतें-26-27)

धार्मिक वार्तालाप

इस्लाम का अर्थ ही शान्ति है। इसलिए यह अपनी हर शिक्षा में शान्ति का संदेश देता है। धार्मिक वार्तालाप में भी इसकी झलक मिलती है। अहले-किताब (अर्थात् यहूदियों तथा ईसाइयों) को सम्बोधित करते हुए क़ुरआन में कहा गया है –

«कहो, "ऐ अहले-किताब जो चीज़ हमारे और तुम्हारे बीच समान रूप से मान्य है उसकी ओर आओ। वह यह है कि अल्लाह के अतिरिक्त किसी की इबादत (बंदगी) न करें और न उसके साथ किसी को साझी ठहराएँ, और न हममें से कोई एक दूसरे को अल्लाह के सिवा 'रब' बनाए।" फिर यदि वे इससे मुँह मोड़ें तो कह दो, "साक्षी रहना हम तो मुस्लिम (आज्ञाकारी) हैं।"» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–64)

किसी को रब न बनाने का अर्थ है कि अल्लाह के अतिरिक्त किसी को हलाल तथा हराम करने का अधिकार नहीं, जैसा कि ईसाइयों ने अपने विद्वानों को बना रखा था–

«उन्होंने अल्लाह के सिवा अपने धर्मशास्त्रियों तथा संसार-त्यागियों और मरयम के पुत्र 'मसीह' को अपने रब बना लिए जबकि उनको इसके सिवा कोई आदेश नहीं दिया गया था कि अकेले इलाह (ईष्ट-पूज्य) की ही बन्दगी (उपासना) करें, जिसके सिवा कोई और पूज्य नहीं। वह उसकी महिमा के प्रतिकूल है जो शिर्क ये करते हैं।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयत–31)

कभी-कभी ऐसा होता है कि स्पष्ट बात भी समझ में नहीं आती। उसमें मनुष्य के अपने दिमाग़ी टेढ़ेपन का दख़ल होता है। परन्तु इस्लाम ऐसी दशा में भी न कठोरता का हुक्म देता है और न ज़बरदस्ती करता है, बल्कि फिर भी सद्व्यवहार ही का संदेश देता है–

«हिकमत और सदुपदेश के साथ अपने रब की ओर बुलाओ और उनसे उत्तम तरीक़े से वार्तालाप करो। निस्सन्देह तुम्हारा रब इस बात को भली-भाँति जानता है कि कौन उसके मार्ग से भटक गया और वह मार्ग पानेवालों को भी भली-भाँति जानता है।» (सूरा–16, अन-नहल, आयत–125)

और इसी के साथ यह भी एलान कर दिया–

«धर्म के विषय में कोई ज़बरदस्ती नहीं, सत्य-असत्य से अलग हो गया, इसलिए जो ताग़ूत को ठुकराकर अल्लाह पर ईमान लाए उसने मज़बूत सहारा थाम लिया, जो कभी टूटनेवाला नहीं। अल्लाह सुनने और जाननेवाला है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–256)

इन आयतों का सार यह है कि विभिन्न धर्मवालों के बीच वार्तालाप होना चाहिए, परन्तु उसके लिए आवश्यक है कि इन सिद्धान्तों को सामने रखें :

1. अल्लाह, जो सबका रब है, को स्वीकार किया जाए, अर्थात् किसी को उसका साझी न बनाया जाए।
2. धर्म के विषय में ज़बरदस्ती न दिखाई जाए।
3. सभी धर्मों का सम्मान किया जाए, किसी के विरुद्ध ऐसी बात न की जाए जिससे उसको कष्ट पहुँचे। इस्लाम ने अपने अनुयायियों को इस विषय में स्पष्ट संदेश दे रखा है–

   «अल्लाह के सिवा ये जिन्हें पुकारते हैं, तुम उन्हें गाली मत दो, कहीं ऐसा न हो कि हद से बढ़ कर, अज्ञान में ये लोग अल्लाह को गाली देने लगें।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–108)

4. इन वार्तालापों से अगर कोई लाभ नहीं होता, तो भी आपस के रहन-सहन में कोई रुकावट नहीं होनी चाहिए। सबको मिलकर एक अच्छे समाज का निर्माण करना चाहिए, जिसमें शान्ति तथा न्याय का बोल-बाला हो। कोई किसी से भयभीत न हो, जीविका प्राप्त करने की सबको सुविधा हो और यही इस्लाम की शिक्षा है।

न
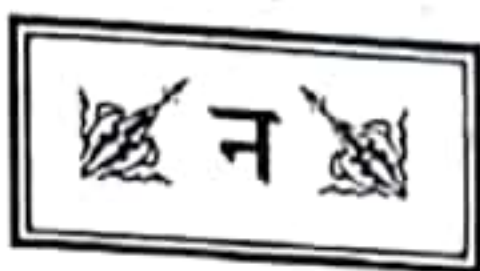
नमाज़

अरबी भाषा में नमाज़ को 'सलात' कहते हैं। क़ुरआन में सलात शब्द का प्रयोग एक से अधिक अर्थों में हुआ है। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण अर्थों का वर्णन यहाँ किया जा रहा है :

1. एक तो वह विशेष इबादत जिसे नमाज़ कहते हैं। क़ुरआन में जहाँ कहीं भी नमाज़ क़ायम करने, तथा ज़कात देने का हुक्म आया है वहाँ सलात से अभिप्राय यही इबादत है। जैसे क़ुरआन में आया है–

«जो ग़ैब (परोक्ष) पर ईमान रखते हैं, नमाज़ क़ायम करते हैं और जो कुछ हमने उन्हें दिया है उसमें से ख़र्च करते हैं।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–3)

क़ुरआन में सबसे अधिक जिस इबादत का वर्णन आया है, वह यही सलात (नमाज़) है, जो हर दिन पाँच बार निश्चित समय पर अदा की जाती है–

«निस्सन्देह ईमानवालों पर निश्चित समय पर नमाज़ पढ़ना अनिवार्य कर दिया गया है।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–103)

इसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि दूसरी इबादतें तो वह्य के द्वारा जिबरील (ﷺ) लेकर आते थे, परन्तु नमाज़ को मेराज की रात अल्लाह ने नबी (ﷺ) पर और आपके अनुयायियों पर स्वयं अनिवार्य किया, जिसमें अल्लाह तथा नबी (ﷺ) के बीच कोई और नहीं था, जिसका वर्णन बड़े विस्तार से सहीह बुख़ारी, तथा सहीह मुस्लिम में आया है। (देखिए : बुख़ारी 349 तथा मुस्लिम, 163)

(अधिक जानकारी के लिए देखें क़ुरआन की सूरा- 'इसरा')

नमाज़ के अतिरिक्त दूसरी उपासनाओं के लिए कुछ नियम निश्चित किए गए हैं। जैसे ज़कात के लिए एक विशेष परिमाण में धन का होना आवश्यक है। अगर इस परिमाण में धन न हो तो ज़कात अनिवार्य नहीं। इसी प्रकार 'हज' के लिए इतना धन होना ज़रूरी है कि वह मक्का की यात्रा कर सके। अगर इतना धन न हो तो हज अनिवार्य नहीं। परन्तु नमाज़ की विशेषता यह है कि यह एक ऐसी इबादत है जो प्रत्येक मुसलमान पुरुष तथा स्त्री पर अनिवार्य है चाहे वे किसी दशा में हों, ताकि एक मुसलमान का हृदय अल्लाह के स्मरण से कभी भी अचेत (ग़ाफ़िल) न हो। भोर भी अल्लाह के स्मरण से हो और दोपहर तथा रात्रि भी।

वास्तव में नमाज़ ही तो वह इबादत है जो इस्लाम और कुफ़्र (ग़ैर-इस्लाम) के बीच अन्तर को स्पष्ट करती है, जिसकी पुष्टि सहीह हदीसों से होती है–

"नमाज़ का छोड़ना कुफ़्र और शिर्क के बीच चिह्न है।" (सहीह मुस्लिम, 82)

एक दूसरी हदीस में है –

"हमारे और उनके बीच प्रतिज्ञा (अहद) है। तो जिसने नमाज़ छोड़ दी वह विधर्मी हो गया।" (तिरमिज़ी, 2621; नसई, 464; इब्ने-माजा)

"अबू हुरैरा (ﷺ) का कथन है कि नबी (ﷺ) के साथी (सहाबा) किसी कर्म को छोड़ने को कुफ़्र नहीं समझते थे सिवाय नमाज़ के।" (हाकिम, 1:70 तथा तिरमिज़ी 2622)

लेकिन तिरमिज़ी ने अबू-हुरैरा के नाम का ज़िक्र नहीं किया, जबकि हाकिम ने ज़िक्र किया है।

इन हदीसों से नमाज़ की श्रेष्ठता और विशिष्टता सिद्ध होती है, जो एक मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम में अन्तर को स्पष्ट करती है, क्योंकि मुस्लिम का अर्थ ही होता है अल्लाह की आज्ञाओं का पालन करनेवाला। और अल्लाह की आज्ञाओं को स्मरण करानेवाली चीज़ यही नमाज़ है, जो भोर से लेकर रात्रि सोने तक पाँच बार पढ़ी जाती है। अब ऐसा व्यक्ति जो पाँच बार नमाज़ पढ़ता हो, वह जीवन के किसी क्षण में कैसे अल्लाह की अवज्ञा कर सकता है। इसी की ओर क़ुरआन में संकेत किया गया है–

«निश्चय ही नमाज़ अश्लीलता और कुकर्म से रोकती है और अल्लाह का स्मरण करना बहुत बड़ी चीज़ है और अल्लाह वह सब कुछ जानता है जो तुम करते हो।» (सूरा–29, अल-अनकबूत, आयत–45)

अर्थात् नमाज़ पढ़कर भी अगर तुम कुकर्मों से नहीं बच सके तो तुम जान लो कि अल्लाह तुम्हारे कुकर्मों से अच्छी तरह परिचित है।

किसी भी धर्म में इबादत का उद्देश्य इससे अधिक स्पष्ट रूप में नहीं बताया गया है। अब यह इबादत करनेवाले पर है कि वह अपनी पाँच समय की इबादत से भली-भाँति लाभ उठाता है या नहीं। अल्लाह ईमानवालों को सचेत करते हुए कहता है–

«ऐ ईमानवालो! शैतान के पद-चिह्नों पर न चलो और जो कोई शैतान के पद-चिह्नों पर चलेगा तो वह तो उसे अश्लीलता और कुकर्मों ही का आदेश देता है।» (सूरा-24, अन-नूर, आयत–21)

नमाज़ पढ़ने से मनुष्य को बहुत-से आत्मिक लाभ होते हैं, जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण लाभों का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है–

(i) सलात (नमाज़) मनुष्य की सफलता का प्रतीक है। क़ुरआन में है –

«निश्चय ही ईमानवालों ने सफलता प्राप्त की, जो अपनी सलात (नमाज़) में विनम्रता ग्रहण करते हैं।» (सूरा–23, अल-मोमिनून, आयतें-1,2)

अर्थात् जो नमाज़ में अल्लाह से डरते हैं, वे इस प्रकार नमाज़ पढ़ते हैं जैसे अल्लाह उनको देख रहा है। ऐसी अवस्था में मनुष्य अपने पूरे शरीर एवं मस्तिष्क के साथ उसकी उपासना करता है, उसके ध्यान में अल्लाह के अतिरिक्त कोई और बात नहीं आ सकती।

(ii) सलात के द्वारा सहायता प्राप्त करने का भी आदेश दिया गया है–

«**धैर्य और नमाज़ से मदद लो। निस्सन्देह नमाज़ बहुत कठिन है, परन्तु उन लोगों के लिए नहीं जो अल्लाह से डरते रहते हैं।**» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–45)

«**ऐ ईमानवालो! धैर्य तथा नमाज़ से मदद लो। निस्सन्देह अल्लाह धैर्यवानों के साथ है।**» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–153)

(iii) सलात (नमाज़) के द्वारा एक व्यक्ति अपने प्रभु के निकट पहुँच जाता है। ऐसी दशा में वह अपने हृदय को बड़ी सावधानी के साथ अल्लाह से जोड़ सकता है। और जिसका हृदय अल्लाह से जुड़ जाए वह संसार के कष्टों की परवाह नहीं करता।

इसी की ओर क़ुरआन ने इस प्रकार संकेत किया है–

«**सुनो! अल्लाह के मित्रों को न तो कोई भय होगा और न वे दुखी होंगे।**» (सूरा–10, यूनुस, आयत–62)

(iv) नमाज़ ही वह इबादत है जिसके विषय में नबी (ﷺ) ने फ़रमाया था–

"मेरी आँखों की ठंडक नमाज़ में है।" (मुस्नद अहमद, 3:128)

नमाज़ पढ़ने का नबी (ﷺ) का तरीक़ा

नबी (ﷺ) ने फ़रमाया :

"नमाज़ ऐसे पढ़ो जिस प्रकार मुझे पढ़ते हुए देख रहे हो।" (बुख़ारी 631 तथा मुस्लिम 674)

नबी (ﷺ) नमाज़ कैसे पढ़ते थे? अब इसपर विचार करते हैं :

(i) नबी (ﷺ) मदीना में सत्रह माह तक बैतुल-मक़दिस की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ते रहे। परन्तु आप चाहते यह थे कि बैतुल्लाह (काबा) की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ें। इसपर यह आयत उतरी–

«**हम तुम्हारे मुँह को आकाश की ओर गर्दिश करते देख रहे हैं, तो हम तुम्हें उसी क़िबले की ओर फेरे देते हैं जिसे तुम पसन्द करते हो; तो तुम अपना मुँह मस्जिदे-हराम (काबा) की ओर फेर लो और तुम जहाँ कहीं भी हो उसी की ओर (नमाज़) में अपना मुँह कर लो।**» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–144)

(ii) काबे की ओर मुँह करने के पश्चात् अल्लाहु-अकबर कहकर दोनों हाथों को अपने कंधों के बराबर ले जाएँ और फिर दोनों हाथों को सीने पर इस प्रकार बाँधे कि दाहिना हाथ बाएँ हाथ के ऊपर हो। (देखिए : सहीह इब्ने-ख़ुज़ैमा, 479)

(iii) फिर दुआ-ए-इस्तिफ़ताह (अर्थात् नमाज़ प्रारम्भ करने की दुआ) पढ़ें, उनमें से एक यह है :

"अल्लाहुम-म बाइद बैनी व बैन ख़ताया-य, कमा बाअद्-त बैनल-मशरिक़ि वल-मग़रिब। अल्लाहुम-म नक़्क़िनी मिनल-ख़ताया कमा युनक़्क़स-सौबुल-अबयज़ मिनद्-दनस। अल्लाहुम्मग़्सिल ख़ताया-य बिल-माइ वस्-सल्जि वल-बर्द।" (बुख़ारी, 744 तथा मुस्लिम, 598)

एक दूसरी दुआ जो अली (ﷺ) ने बयान की है, उसे भी पढ़ सकते हैं। इसी प्रकार उमर (ﷺ) से भी एक दुआ आई है जिसमें कहा गया है :

"सुब्हा-न-कल्लाहुम-म व बि हम्दि-क व तबा-र-कस्मु-क, व तआला जद्दु-क, व ला इला-ह ग़ैरु-क।"

(iv) फिर सूरतुल-फ़ातिहा पढ़ें, सूरतुल-फ़ातिहा के बग़ैर नमाज़ नहीं होती। (बुख़ारी, 756 तथा मुस्लिम 394)

इसके बाद क़ुरआन की कोई भी सूरा पढ़ी जा सकती है।

(v) फिर अल्लाहु-अकबर कहते हुए दोनों हाथों को अपने कंधों तक ले जाएँ और फिर रुकूअ में चले जाएँ और पूरे इतमीनान के साथ रुकूअ में रुके रहें। (बुख़ारी, 707)

और यह दुआ पढ़ें –

"सुबहा-न कल्लाहुम-म रब्बना व बिहम्दि-क, अल्लाहुम्मग़फ़िर ली।" (बुख़ारी, 4968 तथा मुस्लिम, 484)

यह दुआ भी पढ़ सकते हैं–

"सुब्हा-न रब्बियल अज़ीम।" (मुस्लिम, 772)

(vi) फिर 'समिअल्लाहु-लिमन हमिदह' कहते हुए अपने दोनों हाथों को कन्धों तक ले जाएँ और पूरी तरह से सीधे खड़े हो जाएँ और खड़े-खड़े यह दुआ पढ़ें –

"रब्बना लकल-हम्दु मिल-उस्-समावाति व मिलउल-अरज़ि व मा बैनहुमा, व मिलउ मा शिअ-त मिन शैइन बअ्दु, अहलस्-सनाइ वल्-मज्दि, अ-हक़्क़ु मा क़ालल-अब्दु कुल्लुना ल-क अब्द, ला मानि-अ लिमा आतै-त, व ला मुअति-य लिमा मनअ-त, व ला यन्फ़उ ज़ल-जद्दि मिनकल-जद्दु।" (मुस्लिम, 478)

(vii) फिर अल्लाहु-अकबर कहते हुए सजदे में चले जाएँ और पूरे इतमीनान के साथ सजदा करें। वह इस प्रकार कि दोनों हाथों की उँगलियाँ सामने की ओर हों और बाज़ू तथा बग़ल में इतना फ़ासला हो कि छोटा जानवर जैसे बिल्ली इत्यादि उसके अन्दर से गुज़र जाए। (मुस्लिम, 497)

सजदे में सात चीज़ें धरती से लगी हों : पेशानी, दोनों हाथ, दोनों घुटने तथा दोनों पाँव। (मुस्लिम, 491) और सजदे में यह दुआ पढ़ें–

"सुबहा-न रब्बियल-आला।" (मुस्लिम, 772)

या यह दुआ पढ़ें –

"अल्लाहुम-मग़फ़िर ली ज़ंबी कुल्लिही, दिक़्क़िही व ज़िल्लिही, व अव्वलिही व आख़िरिही, व अलानियतिही व सिर्रिही।" (मुस्लिम, 483)

(viii) फिर अल्लाहु अकबर कहते हुए सजदे से उठें और इत्मीनान से बैठ जाएँ और यह दुआ पढ़ें –
"रब्बिग़फ़िर् ली रब्बिग़फ़िर् ली।" (इब्ने-माजा, 897 तथा हाकिम, 1:271)

(ix) फिर 'अल्लाहु अकबर' कहते हुए सजदे में चले जाएँ और इतमीनान से सजदा करें और वे दुआएँ पढ़ें, जिनकी चर्चा पीछे की जा चुकी है। और इनके अतिरिक्त और भी कोई दुआ पढ़ना चाहें तो पढ़ सकते हैं।

(x) फिर 'अल्लाहु अकबर' कहते हुए सजदे से उठें और बैठ जाएँ। इतमीनान से बैठने के बाद दोनों हाथों को धरती पर टिका कर खड़े हो जाएँ और दोबारा दाएँ हाथ को बाएँ हाथ पर बाँधकर सीने पर रख लें। इस प्रकार आपकी एक रक्अत नमाज़ पूरी हो गई।

(xi) दूसरी रक्अत इसी प्रकार पढ़ने के पश्चात् तशहहुद में धरती पर टेक लगाकर इस प्रकार बैठें कि बायाँ पाँव दाईं ओर निकल जाए। और दोनों हाथों को घुटने पर रख लें और दाएँ हाथ की वह उँगली जो अँगूठे से मिली होती है उसको खड़ा कर लें और बाएँ हाथ से बाएँ घुटने को जमकर पकड़ लें और तशह्हुद की यह दुआ पढ़ें :

"अत्तहियातु लिल्लाहि वस्सलवातु वत्तय्यिबातु, अस्सलामु अलै-क अय्युहन्नबीयु, व रहमतुल्लाहि व बरकातुहू, अस्सलामु अलैना व अला इबादिल्लाहिस्सालिहीन, अश्हदु अल्ला इला-ह इल्लल्लाह, व अश्हदु अन-न मुहम्मदन अब्दुहू व रसूलुहू।" (बुख़ारी, 831 तथा मुस्लिम 402)

यह अब्दुल्लाह बिन मसऊद की प्रसिद्ध तशह्हुद की दुआ है। इसी प्रकार की और दुआएँ दूसरे सहाबा से भी उल्लिखित हैं।

(xii) फिर जो भी और दूसरी दुआ करना चाहें करें। सलाम फेरने से पहले चार चीज़ों से अल्लाह की पनाह माँगें–

"अल्लाहुम-म अऊज़ु बि-क मिन अज़ाबिल-क़ब्र, व अज़ाबिन्नार, व मिन फ़ित्नतिल-महया वल-ममात, व मिन फ़ितनतिल-मसीहिद-दज्जाल।" (बुख़ारी, 1377 तथा मुस्लिम 588)

(xiii) और फिर दाएँ तथा बाएँ दोनों ओर सलाम फेरें और सलाम फेरते समय, 'अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाह' कहें। इस प्रकार दो रक्अत की नमाज़ पूरी हो गई।

यह नबी (ﷺ) का नमाज़ पढ़ने का वह तरीक़ा है जो सहीह हदीसों में बयान किया गया है जिसको बयान करनेवालों में अबू-हुरैरा, इब्ने-उमर, वाइल-बिन-हजर, अली, उबादा-बिन-सामित, अबू-हुमैद साइदी इत्यादि सहाबा हैं, बल्कि अबू-हुमैद साइदी ने तो यह कहकर नमाज़ पढ़ी कि मैं नबी (ﷺ) की तरह नमाज़ पढ़कर दिखाता हूँ। और फिर उन्होंने इस प्रकार नमाज़ पढ़ी, वहाँ दस दूसरे सहाबी भी मौजूद थे।

(अधिक जानकारी के लिए मेरी पुस्तक : 'अल-मिन्नतुलकुबरा', देखिए : 1:489)

2. सलात का दूसरा अर्थ सामान्य इबादत (उपासना तथा आराधना) है, जो किसी प्रकार भी की जाए। इस विषय में हम यह कह सकते हैं कि पहले नबियों के प्रसंग में जो सलात का शब्द प्रयोग हुआ है उसका अर्थ सामान्य उपासना ही है। क्योंकि जिस तरह नबी (ﷺ) ने नमाज़ पढ़ी है, उस तरह दूसरे नबियों ने नहीं पढ़ी होगी। या यह कहा जा सकता है कि हम उसके विषय में कुछ अधिक नहीं जानते। क़ुरआन में जिन नबियों के प्रसंग में सलात का वर्णन हुआ है उनमें से कुछ ये हैं–

❊ इबराहीम (عليه السلام) –

«ऐ रब! मुझे नमाज़ क़ायम करनेवाला बना दे। और मेरी संतान को भी।» (सूरा-14, इबराहीम, आयत-40)

❊ इसमाईल (عليه السلام) –

«वह अपनी जातिवालों को नमाज़ तथा ज़कात का हुक्म देता था, और वह अपने रब के यहाँ पसन्द किया हुआ भक्त था।» (सूरा-19, मरयम, आयत-55)

❊ मूसा (عليه السلام) –

«निस्सन्देह मैं अल्लाह हूँ। मेरे अतिरिक्त कोई पूज्य नहीं। अत: तू मेरी इबादत कर और मेरी याद (स्मरण) के लिए नमाज़ क़ायम कर।» (सूरा-20, ता-हा, आयत-14)

❊ ईसा (عليه السلام) –

«मुझे बरकतवाला बनाया, जहाँ भी रहूँ, और मुझे नमाज़ तथा ज़कात की ताकीद की जब तक मैं जीवित रहूँ।» (सूरा-19, मरयम, आयत-31)

लुक़मान ने भी अपनी सन्तान को नमाज़ पढ़ने की ताकीद की–

«ऐ मेरे पुत्र! नमाज़ क़ायम कर और अच्छाई का हुक्म दे और बुराई से रोक।» (सूरा-31, लुक़मान, आयत-17)

तौरात से भी पता चलता है कि नबियों को नमाज़ (सलात) का हुक्म दिया गया था। जैसे: इबराहीम– (उत्पत्ति, 20:17), याक़ूब– (उत्पत्ति, 32:26-31), मूसा– (गिनती, 11:2) इत्यादि को नमाज़ का आदेश दिया गया था।

परन्तु बाइबल के हिन्दी अनुवाद में सलात का अनुवाद प्रार्थना किया गया है।

3. सलात का एक अर्थ दुआ (प्रार्थना) भी है। जैसे : अल्लाह ने नबी (ﷺ) को यह हुक्म दिया– «**उनके लिए दुआ करो। निस्सन्देह तुम्हारी दुआ उनके लिए संतोष-निधि है।**» (सूरा-9, अत-तौबा, आयत-103)

एक सहीह हदीस में आया है–

"अगर तुममें से किसी को खाने पर बुलाया जाए तो उसे चाहिए कि स्वीकार कर ले, परन्तु अगर उसका रोज़ा या व्रत हो तो बुलानेवाले के लिए दुआ करे अर्थात् वह बता दे कि मैं रोज़े से हूँ और तुम्हारे भोजन में सम्मिलत नहीं हो सकता, परन्तु उसके लिए दुआ करे और रोज़ा न हो तो खाने में सम्मिलित हो जाए।" (देखिए : सहीह मुस्लिम, 1150)

4. सलात का एक अर्थ सलाम भेजना भी है। जैसे : क़ुरआन में आया है–

«**अल्लाह और उसके फ़रिश्ते नबी पर सलाम भेजते हैं। ऐ ईमानवालो! तुम भी उनपर सलाम भेजो। तथा ख़ूब सलाम भेजते रहो।**» (सूरा-33, अल-अहज़ाब, आयत-56)

5. सलात का एक अर्थ प्रभु की कृपाएँ भी है। क़ुरआन में एक स्थान पर आया है –

«**यही लोग हैं जिनपर उनके रब की विशेष कृपाएँ हैं और उसकी दयालुता भी और यही लोग हैं जो सीधे मार्ग पर हैं।**» (सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-157)

6. सलात का एक अर्थ उपासनागृह या उपासना-स्थल भी है। क़ुरआन में चार जातियों के लिए चार प्रकार के उपासनागृहों का उल्लेख है और उनमें से एक स-ल-वात भी है जो यहूदियों का उपासनागृह है–

«**यदि अल्लाह लोगों को एक दूसरे के द्वारा हटाता न रहता तो संन्यासियों के आश्रम (सवामिअ), गिरजा (बि-य-उन), यहूदियों के प्रार्थना-भवन (सलवात) और मुसलमानों की मस्जिदें जिनमें अल्लाह का अधिक नाम लिया जाता है सब ढा दिए जाते।**» (सूरा-22, अल-हज, आयत-40)

वास्तव में सलात शब्द नमाज़ के अर्थ में सबसे अधिक प्रयुक्त हुआ है। अनिवार्य नमाज़ें तो वही हैं जो प्रतिदिन पाँच बार पढ़ी जाती हैं। शेष नमाज़ें ये हैं :

❀ नमाज़े-तहज्जुद :

यह रात्रि के तीसरे पहर पढ़ी जाती है, क्योंकि इस समय अल्लाह संसार की ओर उतरता है। वह कहता है : कोई है जो मुझसे प्रार्थना करे और मैं उसकी प्रार्थना का उत्तर दूँ? कोई है जो मुझसे माँगे और मैं उसको दूँ? कोई है जो मुझसे क्षमा-याचना करे और मैं उसे क्षमा कर दूँ? (बुख़ारी, 1145 तथा मुस्लिम, 785)

इसलिए अल्लाह के वली (भक्त) तहज्जुद की नमाज़ को बहुत महत्वपूर्ण समझते हैं। नबी (ﷺ) तो इस नमाज़ का इतना अधिक आयोजन करते थे कि आपके पाँव खड़े-खड़े सूज जाते थे। जब आपसे कहा जाता कि अल्लाह ने तो आपके सारे पाप क्षमा कर दिए हैं, फिर आप इतनी अधिक बन्दगी (भक्ति) क्यों करते हैं? तो आप कहते–

''क्या मैं अपने अल्लाह का कृतज्ञ बन्दा (भक्त) न बनूँ!''

✽ नमाज़े-जुमा

देखिए : 'जुमुआ'।

✽ नमाज़े-ईदैन

अर्थात् दो ईदों की नमाज़। एक को ईदुल-फ़ित्र कहते हैं जो रमज़ान के रोज़ों के पूरे होने के बाद पढ़ी जाती है। दूसरी को ईदुल-अज़हा कहते हैं, जो दसवीं ज़िल-हिज्जा को पढ़ी जाती है। उस दिन हाजी अरफ़ात से मिना आकर क़ुरबानी करते हैं। ईदुल-अज़हा में नमाज़ के पश्चात् क़ुरबानी की जाती है। यह वास्तव में इबराहीम (अलैहिस्सलाम) की उस क़ुरबानी की याद है, जब उन्होंने अल्लाह के हुक्म से अपने इकलौते पुत्र इसमाईल को क़ुरबान करना चाहा तो अल्लाह ने उनसे प्रसन्न होकर पुत्र के स्थान पर एक भेड़ को क़ुरबान करा दिया, जिसका वर्णन क़ुरआन में इस प्रकार आया है–

«फिर जब बालक इस उम्र को पहुँचा कि उसके साथ चले-फिरे तो उस (इब्राहीम) ने कहा, मेरे प्रिय पुत्र! मैं स्वप्न में अपने आप को तेरी बलि करते हुए देख रहा हूँ। अब तू बता कि तेरा क्या विचार है? पुत्र ने उत्तर दिया कि पिताजी! आपको जो आदेश दिया जा रहा है उसका पालन कीजिए। अल्लाह ने चाहा तो आप मुझे धैर्य रखनेवालों में पाएंगे। अर्थात् जब दोनों ने आज्ञापालन (स्वीकार) कर लिया तथा उस (पिता) ने उस (पुत्र) को माथे के बल गिरा दिया, तो हमने आवाज़ दी कि ऐ इबराहीम, निस्सन्देह तूने स्वप्न को सत्य कर दिखाया। निस्सन्देह हम पुण्यकारियों को इसी प्रकार बदला देते हैं। वास्तव में यह स्पष्ट परीक्षा थी। तथा हमने एक महान बलि उसके मुक्ति प्रदान के रूप में दे दी। तथा हमने उनकी शुभ चर्चा पिछली उम्मतों में शेष रखी। इबराहीम पर सलाम हो। हम पुण्य कार्य करनेवालों को इसी प्रकार बदला देते हैं। निश्चय ही वह हमारे ईमानवाले भक्तों में से था।» (सूरा-37, अस-साफ़्फ़ात, आयतें–102-111)

इबराहीम (अलैहिस्सलाम) की इसी याद में प्रत्येक वर्ष मुसलमान ईदुल-अज़हा के अवसर पर क़ुरबानी करते हैं।

❀ नमाज़े-जनाज़ा

मुस्लिम समुदाय पर अनिवार्य है कि जब किसी मुसलमान की मृत्यु हो जाए तो उसको क़ब्र में दफ़न करने से पूर्व नमाज़े-जनाज़ा पढ़ें। अगर कुछ लोग पढ़ लें तो शेष लोगों पर से यह फ़र्ज़ (अनिवार्य कर्म) समाप्त हो जाता है, जिसको इस्लामी शास्त्र (फ़िक़्ह) में 'फ़र्ज़े-किफ़ाया' कहते हैं। लेकिन अगर कोई भी न पढ़े तो पूरा इस्लामी समाज दोषी होगा, क्योंकि एक मुसलमान के समाज पर जिस प्रकार जीवन में कुछ अधिकार हैं, उसी प्रकार मृत्यु के पश्चात् भी कुछ अधिकार हैं। जैसे स्नान देना, कफ़न पहनाना तथा नमाज़े-जनाज़ा पढ़ना और फिर क़ब्र में दफ़्न करना।

एक सहीह हदीस में आया है–

"एक मुसलमान के दूसरे मुसलमान पर पाँच हक़ हैं। सलाम का जवाब देना, रोगी का हाल-चाल पूछना, जनाज़े के साथ निकलना, खाने की दावत में सम्मिलित होना, छींकनेवाले का जवाब देना। (अर्थात् जब वह अल-हम्दुलिल्लाह कहे तो उसके उत्तर में यरहमुकल्लाह कहे।)" (बुख़ारी 1240 तथा मुस्लिम, 2162)

नमाज़े-जनाज़ा जिसको अरबी में 'सलात' कहते हैं वास्तव में दुआ है, जो मरनेवाले के लिए की जाती है। इन दुआओं में से एक प्रसिद्ध दुआ का अर्थ इस प्रकार है –

"ऐ अल्लाह हमारे जीवित रहनेवाले तथा हमारे मृत्यु पानेवाले, हमारे छोटे तथा हमारे बड़े, हमारे पुरुष तथा हमारी स्त्रियाँ, यहाँ उपस्थित रहनेवाले तथा अनुपस्थित रहनेवाले, सबको तू क्षमा कर दे। ऐ अल्लाह हममें से जिसे जीवित रखे तो उसे ईमान पर जीवित रख, और जिसे मृत्यु दे तो उसे इस्लाम पर मृत्यु दे। ऐ अल्लाह इसके पश्चात् हमें उसके पुण्य से वंचित न कर और न उसके बाद हमें पथभ्रष्ट कर।" (अबू-दाऊद-3201, तिरमिज़ी-1024 और इब्ने-माजा-1498)

❀ भय की दशा में नमाज़

नमाज़ की महत्ता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि युद्ध के मैदान में भी इसे पढ़ने का आदेश दिया गया है। हाँ, इतना अवश्य किया गया है कि चार रकअतवाली नमाज़ें दो रकअत कर दी गईं।

क़ुरआन मजीद में है–

«जब धरती में यात्रा करो तो तुम पर नमाज़ क़स्र करने (चार रकअत की नमाज़ दो रकअत पढ़ने) में कोई दोष नहीं, यदि तुम्हें यह भय हो कि शत्रु तुम्हें कष्ट देंगे। निस्संदेह अधर्मी तुम्हारे खुले शत्रु हैं। और जब आप उनमें हों और उनके लिए नमाज़ का आयोजन करें तो चाहिए कि उनका एक गुट आपके साथ हथियार लिए खड़ा हो। फिर जब ये सजदा कर चुकें तो यह हट कर तुम्हारे पीछे आ जाएँ और दूसरा गुट जिसने

नमाज़ नहीं पढ़ी है, वह आ जाए और तेरे साथ नमाज़ अदा करे और अपने हथियार लिए रहे, विधर्मी (दुश्मन) चाहते हैं कि तुम किसी प्रकार अपने हथियार तथा अपनी सामग्रियों से असावधान हो जाओ, तो वह तुम पर सहसा आक्रमण कर दें। और हाँ, अगर वर्षा के कारण तकलीफ़ होती हो या बीमारी हो तो अपने हथियार उतार रखने में तुम पर कोई दोष नहीं, मगर फिर भी चौकन्ने रहो। निस्संदेह अल्लाह ने इनकार करनेवालों के लिए अपमान का दण्ड तैयार कर रखा है।» (सूरा-4, अन-निसा, आयतें–101,102)

सहीह हदीसों से पता चलता है कि नबी (ﷺ) ने भय की स्थिति में नमाज़ विभिन्न प्रकार से पढ़ी, जो युद्ध की विभिन्न दशाओं पर निर्भर करती है। इस लिए इमाम अहमद का विचार है कि सारे तरीक़े सहीह हैं, जैसी दशा हो उसके अनुसार कोई भी तरीक़ा अपनाया जा सकता है। उद्देश्य यह है कि नमाज़ भी न छूटने पाए और शत्रु घात लगाकर आक्रमण भी न कर सके। अगर रुकूअ और सजदे के साथ नमाज़ पढ़ना कठिन हो तो खड़े-खड़े या घोड़े की पीठ पर बैठे-बैठे भी नमाज़ पढ़ी जा सकती है। अर्थात् एक मुसलमान के लिए अनिवार्य है कि वह अल्लाह के स्मरण से कभी भी ग़ाफ़िल न रहे। रण-क्षेत्र में भी अल्लाह को याद करे, बल्कि उससे सहायता का इच्छुक रहे।

❁ यात्रा में नमाज़

जिस प्रकार भय की दशा में नमाज़ क़स्र हो जाती है अर्थात् चार रकअतवाली दो रकअत हो जाती है उसी प्रकार यात्रा में भी नमाज़ क़स्र हो जाती है। याला बिन उमैया नामक एक सहाबी ने उमर बिन ख़त्ताब से कहा, "अल्लाह ने तो भय की दशा में क़स्र का हुक्म दिया है। अब तो भय नहीं है। फिर हम यात्रा में क़स्र क्यों करते हैं?" उन्होंने कहा : यही प्रश्न मैंने नबी (ﷺ) से किया था, तो आपने फ़रमाया–

"*यह अल्लाह की ओर से तुम्हारे लिए उपहार है। उसके उपहार को स्वीकार कर लो।*" (सहीह मुस्लिम-686)

अर्थात् क़स्र नमाज़ वास्तव में भय की दशा में पढ़ी जाती है। परन्तु अब तुम यात्रा की दशा में भी क़स्र नमाज़ पढ़ सकते हो। अधिकतर विद्वानों का विचार है कि यात्रा में पूरी नमाज़ पढ़ने की अपेक्षा क़स्र नमाज़ पढ़ना अधिक उत्तम है।

यात्रा में एक और सुविधा यह दी गई है कि दो-दो नमाज़ें मिलाकर एक समय में पढ़ी जा सकती हैं। जैसे ज़ुहर-अस्र तथा मग़रिब-इशा। एक सहीह हदीस में आता है कि अगर नबी (ﷺ) सूर्य ढलने से पहले यात्रा प्रारम्भ करते तो ज़ुहर की नमाज़ में देर कर देते और अस्र के समय दोनों को मिलाकर पढ़ते। लेकिन अगर सूर्य ढलने के बाद यात्रा आरम्भ करते तो ज़ुहर की नमाज़ के साथ ही अस्र की नमाज़ भी पढ़कर यात्रा आरम्भ करते। (देखिए : बुख़ारी-1112 तथा मुस्लिम-704)

एक दूसरी हदीस में इस प्रकार आया है। मुआज़ बिन-जबल कहते हैं कि हम युद्ध करने के लिए तबूक की ओर निकले तो देखा कि नबी (ﷺ) ज़ुहर तथा अस्र मिलाकर पढ़ते थे। इसी प्रकार मग़रिब तथा इशा मिलाकर पढ़ते थे। (देखिए : सहीह मुस्लिम-706)

दो नमाज़ों को मिलाकर पढ़ना वास्तव में यात्रा की दशा में है ताकि यात्री को यात्रा में कष्ट न हो। परन्तु यदि कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर कोई व्यक्ति यात्रा के बिना भी दो नमाज़ों को मिलाकर पढ़ ले तो कोई दोष नहीं है। जैसा कि अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास का कथन है कि नबी (ﷺ) ने ज़ुहर तथा अस्र, मग़रिब तथा इशा की नमाज़ बिना भय तथा बिना यात्रा के मिलाकर पढ़ी। (देखिए : सहीह मुस्लिम-705)

❋ ज़ुहा की नमाज़

ज़ुहा उस समय को कहते हैं जब सूर्य की गर्मी का अनुभव होने लगे। अर्थात् दिन में नौ-दस बजे के निकट। ज़ुहा वह नमाज़ है जिसमें नबी (ﷺ) कभी-कभी दो रकअत से लेकर आठ रकअत तक पढ़ा करते थे। उम्मे-हानी की एक हदीस में है कि नबी (ﷺ) मक्का विजय होने के दिन मेरे घर आए। आप (ﷺ) ने पहले स्नान किया। फिर आठ रकअत नमाज़ पढ़ी, जो थी तो बहुत छोटी, परन्तु रुकूअ और सजदा पूरा करते थे। (देखिए : बुख़ारी-1176 तथा मुस्लिम-336)

आइशा (رضي الله عنها) से पूछा गया कि नबी (ﷺ) ज़ुहा की कितनी रकअत पढ़ते थे तो कहा : चार रकअत और कभी इससे अधिक भी पढ़ते थे। (देखिए : सहीह मुस्लिम-719)

एक हदीस में आता है कि मनुष्य के अन्दर कुल तीन सौ साठ जोड़ हैं, और हर जोड़ पर दान करना अनिवार्य है। लोगों ने कहा, "ऐ अल्लाह के नबी किसके पास इतनी शक्ति है।" तो नबी (ﷺ) ने फ़रमाया कि अगर कोई मस्जिद से गन्दगी साफ़ कर दे या रास्ते से कोई ऐसी चीज़ हटा दे (जिससे लोगों को कष्ट होता हो), या अगर इनमें से कुछ भी न कर सके तो दो रकअत ज़ुहा की नमाज़ पढ़ ले (तो उसका दान पूरा हो जाएगा)। (देखिए : अबू दाऊद-5242, इब्ने-ख़ुज़ैमा-1226) तथा इब्ने-हिब्बान-2540 इसकी सनद हसन है।

❋ नमाज़े-इस्तिस्क़ा

इस्तिस्क़ा का अर्थ है पानी तलब करना। इसलिए यह नमाज़ उस समय पढ़ी जाती है जब देश में सूखा पड़ जाता है। जैसा कि एक सहीह हदीस में आया है कि नबी (ﷺ) इस्तिस्क़ा की नमाज़ पढ़ने के लिए बाहर निकले। पहले दो रकअत नमाज़ पढ़ी। उसके पश्चात् अपनी चादर को उलटा कर दिया, अर्थात् जो भाग दाएँ था उसे बाएँ किया और जो बाएँ था उसे दाएँ किया। फिर हाथ उठाकर वर्षा के लिए दुआ की। आपकी दुआ से पूरा मदीना जल-थल हो गया।

❋ नमाज़े-कुसूफ़

कुसूफ़ का अर्थ है ग्रहण। इस्लाम से पूर्व लोगों ने सूर्य ग्रहण या चन्द्र ग्रहण को विभिन्न प्रकार के अन्ध विश्वासों से जोड़ दिया था। इसलिए जिस दिन नबी (ﷺ) के पुत्र इबराहीम का देहान्त हुआ उसी दिन सूर्य ग्रहण लग गया, तो पुरानी रीति के अनुसार कुछ लोग कहने लगे कि देखो इबराहीम के देहान्त

के कारण ग्रहण लग गया। जब नबी (ﷺ) को इसकी सूचना मिली तो आप (ﷺ) ने लोगों को इकट्ठा किया, और फ़रमाया कि सूर्य तथा चन्द्रमा अल्लाह की निशानियाँ हैं। किसी के देहान्त हो जाने या जीवित रहने से इसको ग्रहण नहीं लगता। इसलिए अगर कभी ग्रहण लगे तो अल्लाह से दुआ करो और नमाज़ पढ़ो। (देखिए : बुख़ारी-1060 तथा मुस्लिम-91)

नमाज़-कुसूफ़ की कोई निश्चित रकअतें नहीं हैं, बल्कि जब तक ग्रहण लगा हो दो-दो रकअत नमाज़ पढ़ते रहें यहाँ तक कि ग्रहण समाप्त हो जाए। एक दूसरी सहीह हदीस में आया है कि वास्तव में ये निशानियाँ हैं। इसलिए जब कभी ऐसा हो तो अल्लाह की याद, दुआ और उससे क्षमा माँगने में लग जाओ। (देखिए : बुख़ारी-1059 तथा मुस्लिम-912)

✻ नमाज़े-इस्तिख़ारा

इस्तिख़ारा का अर्थ है किन्हीं दो चीज़ों में से एक को ग्रहण करना। यह नमाज़ उस समय पढ़ी जाती है जब किसी के सामने कोई समस्या हो। ऐसी दशा में अल्लाह से दुआ की जाती है कि उसके लिए जो उत्तम हो उसकी ओर दिल फेर दे। सहीह हदीसों में इसका नियम यह बताया गया है कि सोने से पूर्व फ़र्ज़ नमाज़ के अतिरिक्त दो रकअत नमाज़ पढ़ने के पश्चात् यह दुआ पढ़ें –

"अल्लाहुम-म इन्नी अस्तख़ीरु-क बि-इल्मि-क, व अस्तक़दिरु-क बि-क़ुदरति-क, व अस्अलु-क बि-फ़ज़लिकल-अज़ीम, फ़इन्न-क तक़्दिरु, व ला- अक़्दिरु, व तअ्लमु, व ला-आलमु व अन-त अल्लामुल-ग़ुयूब, अल्लाहुम-म इन कुन-त तअ्लमु अन-न हाज़ल-अम्र ख़ैरुन ली फ़ी दीनी, व मईशती, व आक़िबति अम्री फक़दिरहु ली, व यस्सिरहु ली, सुम-म बारिक ली फ़ीह, व इन कुन त तअ्लमु अ-न हाज़ल अम-र शर्रुन ली, फ़ी दीनी व मईशती, व आक़िबति अम्री फ़सरिफ़हु अन्नी, वस्रिफ़नी अन्हु, वक़दिर लियल ख़ै-र हैसु का-न, सुम-म अरज़िनी"

और इसके पश्चात् अपनी आवश्यकता का नाम ले। (देखिए : सहीह बुख़ारी 1162)

इस नमाज़ के द्वारा उसकी समस्या का सही हल निकल जाएगा और उसके लिए जो उत्तम होगा उससे अल्लाह उसके दिल को संतुष्ट कर देगा और उस उत्तम कार्य का उसके लिए निर्णय कर देगा।

✻ नमाज़े-तस्बीह

यह एक विशेष प्रकार की नमाज़ है जिसकी कोई सनद सहीह नहीं है, जिसका, पूरा विवरण मैंने अपनी पुस्तक 'अलमिन्नतुल-कुबरा' 2:421 में कर दिया है। यह नमाज़ कुछ इस प्रकार है कि नबी (ﷺ) ने अपने चचा अब्बास से कहा, "हो सके तो प्रतिदिन एक बार पढ़ लिया करो, अगर ऐसा न कर सको तो हर सप्ताह एक बार पढ़ लिया करो; अगर यह भी न हो सके तो हर मास एक बार पढ़ लिया करो और अगर यह भी न हो सके तो हर वर्ष एक-एक बार पढ़ लिया करो और अगर यह भी न हो सके तो पूरी उम्र में एक बार पढ़ लो।" (देखिए : पुस्तक : 'अलमिन्नतुल कुबरा' 2:421)

❀ नमाज़े-रग़ाइब

इस नमाज़ का वर्णन 'जामिउल-उसूल' में आया है। परन्तु विद्वानों का विचार है कि यह नमाज़ चौथी शताब्दी हिजरी में प्रचलित हुई। इसलिए इसका पढ़ना बिदअत (ग़ैर-इस्लामी) है।

❀ नमाज़े-हाजा

अर्थात् वह नमाज़, जो किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए पढ़ी जाए। इस विषय में मुझे तीन हदीसें मिली हैं और वे सब 'ज़ईफ़ जिद्दन' हैं। इसलिए नमाज़े-हाजा के नाम से जो नमाज़ पढ़ी जाती है, उसका कोई सहीह प्रमाण नहीं है। इसके लिए मेरी पुस्तक 'अल-जामिउल-कामिल' देखें।

नफ़्ल

नफ़्ल का अर्थ अधिकता है, जो अनिवार्य के अतिरिक्त होता है। जैसे इबराहीम (عليه السلام) ने तो एक पुत्र की प्रार्थना की थी परन्तु अल्लाह ने इसमाईल के अतिरिक्त एक और बेटे इसहाक़ की भी ख़ुशख़बरी दी और इसके साथ-साथ इसहाक़ के बेटे के रूप में याक़ूब की भी जो कि आगे चलकर नबी हुए। (दे. सूरह 21, अल्-अंबिया 72)

यहाँ इस्माईल (عليه السلام) का वर्णन नहीं आया है। क्योंकि आप तो चौदह वर्ष पहले पैदा हो चुके थे।

एक दूसरी आयत में आया है –

«तथा रात्रि के कुछ भाग में क़ुरआन को तहज्जुद की नमाज़ में पढ़ा करें, जो आपके लिए नफ़्ल है।» (सूरा-17, बनी इसराईल, आयत-70)

इस्लामी आदेशों में से कुछ तो अनिवार्य होते हैं जिनको 'वाजिब' या 'फ़र्ज़' कहते हैं। जिसका छोड़ना महापापों में से एक है। और दूसरा 'नफ़्ल' कहलाता है, इसको 'मुस्तहब' तथा 'मन्दूब' भी कहते हैं। इनको न करने से कोई पाप तो नहीं होता, परन्तु करने से सवाब मिलता है।

यह विभिन्न प्रकार की इबादतों से लेकर जीवन के दूसरे बहुत-से मामलों तक में पाया जाता है, जिनमें से कुछ का वर्णन यहाँ किया जा रहा है –

1. अनिवार्य नमाज़ों के बाद बारह रकअत नफ़िल हैं जिनको 'सुन्नते-मुअक्कदा' कहते हैं। एक सहीह हदीस में आता है कि जिसने रात-दिन में बारह रकअते पढ़ीं उसके लिए स्वर्ग में एक घर बनाया जाएगा।'' (देखिए : सहीह मुस्लिम, 728)

   और वे बारह रकअतें इस प्रकार हैं –

   – दो रकअत 'फ़ज्र' से पहले

   – चार रकअत 'ज़ुहर' से पहले

– दो रकअत 'ज़ुहर' के बाद

– दो रकअत 'मग़रिब' के बाद

– दो रकअत 'इशा' के बाद

2. अनिवार्य ज़कात के बाद नफ़िल दान की बड़ी महत्ता है। एक सहीह हदीस में आया हैं, कि सात लोग क़ियामत के दिन अल्लाह के साए में होंगे, जिस दिन कोई दूसरा साया नहीं होगा, उनमें से एक वह व्यक्ति होगा जिसने दान इतना छिपाकर दिया कि बायें हाथ को भी यह सूचना नहीं हो सकी कि दायें हाथ ने क्या दान किया। (देखिए : बुख़ारी 660 तथा मुस्लिम 1031)

3. नफ़िल रोज़ा : रमज़ान का रोज़ा तो अनिवार्य है। परन्तु नफ़िल रोज़ों– हर महीने तीन दिन के रोज़ों (अर्थात चाँद के अनुसार 13, 14, 15 तारीख़ों के रोज़ों)– की बड़ी महत्ता है। एक सहीह हदीस में अबू-हुरैरा से उल्लिखित है –

"मेरे मित्र (अर्थात नबी ﷺ) ने मुझे वसीयत की कि में तीन रोज़ों को कभी न छोड़ूँ।" (बुख़ारी, 1178 तथा मुस्लिम, 721)

4. जीवन में एक बार हज करना उस व्यक्ति पर जिसके पास हज करने की सामर्थ्य है अनिवार्य है, उसके पश्चात् जो हज करेगा वह नफ़िल कहलाएगा। हज चाहे 'वाजिब' हो या 'नाफ़िल' उसके विषय में आता है –

"जिसने हज किया और किसी प्रकार का दुराचार नहीं किया, वह अपने पापों से छुटकारा पाकर इस प्रकार वापस आएगा जैसे वह माँ के पेट से आया था।" (बुख़ारी, 1521 तथा मुस्लिम, 1350)

इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति काबे का तवाफ़ करता है तो हर क़दम पर उसका एक पाप कम होता है, और एक सवाब लिखा जाता है, और उसकी श्रेणी ऊँची होती जाती है। (इब्ने ख़ुज़ैमा 2752 तथा इब्ने हिब्बान 3689)

इसी प्रकार जीवन के दूसरे मामलों में भी नफ़्ल की बड़ी महत्ता है, जिसके करने से बड़ा सवाब मिलता है। जैसे एक सहीह हदीस में आया है –

"जिसने किसी मुसलमान के कष्ट को दूर किया तो अल्लाह क़ियामत के दिन उसके कष्टों को दूर करेगा। और जिसने किसी मुसलमान की परदापोशी की (अर्थात कमियों को छिपाया) तो अल्लाह क़ियामत के दिन उसकी परदापोशी करेगा, (अर्थात उसकी बुराइयों को छिपा देगा) अल्लाह अपने बन्दे की सहायता उस समय तक करता रहेगा जब तक यह बन्दा अपने भाई की सहायता करता रहेगा।" (सहीह मुस्लिम, 2699)

एक सहीह हदीस में आया है –

"अल्लाह उस बन्दे पर कृपा करेगा जो बेचने, ख़रीदने तथा क़र्ज़ वापस लेने में नर्मी बरतता है।" (सहीह बुख़ारी, 2076)

अर्थात बेचने व ख़रीदने में ईमानदारी बरतना तथा क़र्ज़ वापस लेने में नर्मी बरतना भी एक प्रकार से नफ़्ली नेकी है। इससे पता चला कि इस्लाम में नफ़्ल के द्वार खुले हुए हैं। वाजिब पूरा करने के बाद अपनी दशा तथा शक्ति के अनुसार नफ़्ल काम भी किए जा सकते हैं जिनका सवाब सहीह हदीसों में बता दिया गया है।

नूह (عليه السلام)

नूह (عليه السلام) का वर्णन क़ुरआन में तैंतालीस बार हुआ है। क़ुरआन में जिन नबियों का वर्णन बहुत विस्तार से हुआ है उनमें एक नूह भी हैं बल्कि हम कह सकते हैं कि इबराहीम (عليه السلام) के पश्चात जिस नबी का वर्णन विस्तारपूर्वक हुआ है वे नूह ही हैं। वे (عليه السلام) इराक़ में उस जगह पैदा हुए जहाँ आजकल मूसल शहर है। सहीह बुख़ारी की एक हदीस से पता चलता है कि वे आदम (عليه السلام) के एक हज़ार वर्ष बाद पैदा हुए। लोग इस पूरे समय में ईश धर्म पर थे। अर्थात् एकेश्वरवाद को मानते थे। लेकिन नूह (عليه السلام) का समय आते-आते ये लोग बुतों की पूजा करने लगे। उनकी मूर्तियों के नाम जिनका क़ुरआन में वर्णन है ये हैं ! वद्द, सुवाअ, यग़ूस, यउक़, नस्र। सहीह हदीस से पता चलता है कि नूह (عليه السلام) सबसे पहले रसूल हैं जिनको पृथ्वी पर भेजा गया। और उन्होंने आते ही लोगों को अल्लाह की तरफ़ बुलाना प्रारम्भ कर दिया। क़ुरआन में है –

«हमने नूह को उसकी जातिवालों की ओर भेजा, उसने कहा, "ऐ मेरी जातिवालो! अल्लाह की इबादत करो उसके अतिरिक्त तुम्हारा कोई इलाह (पूज्य) नहीं। मैं तुम्हारे लिए एक भारी दिन की यातना से डरता हूँ।"» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत-59)

«और हमने नूह को उसकी जातिवालों की ओर भेजा था (उसने कहा) मैं तुम्हें साफ़ सचेत करनेवाला हूँ, यह कि तुम अल्लाह के अतिरिक्त किसी और की इबादत न करो मैं तुम्हारे बारे में एक दुख भरे दिन की यातना से डरता हूँ।» (सूरा–11, हूद, आयतें–25,26)

«और नूह को उसकी जाति की ओर भेजा, तो उसने कहा: ऐ मेरी जातिवालो! अल्लाह की इबादत करो। उसके अतिरिक्त तुम्हारा कोई इलाह (पूज्य) नहीं है। क्या तुम डरते नहीं।» (सूरा–23, अल-मोमिनून, आयत–23)

इस प्रकार नूह (عليه السلام) कोई नौ सौ पचास वर्ष तक अपनी जाति को अल्लाह की ओर बुलाते रहे। (देखिए: सूरा-29, अनकबूत, आयत-14) परन्तु जाति ने उनके निमंत्रण को स्वीकार नहीं किया।
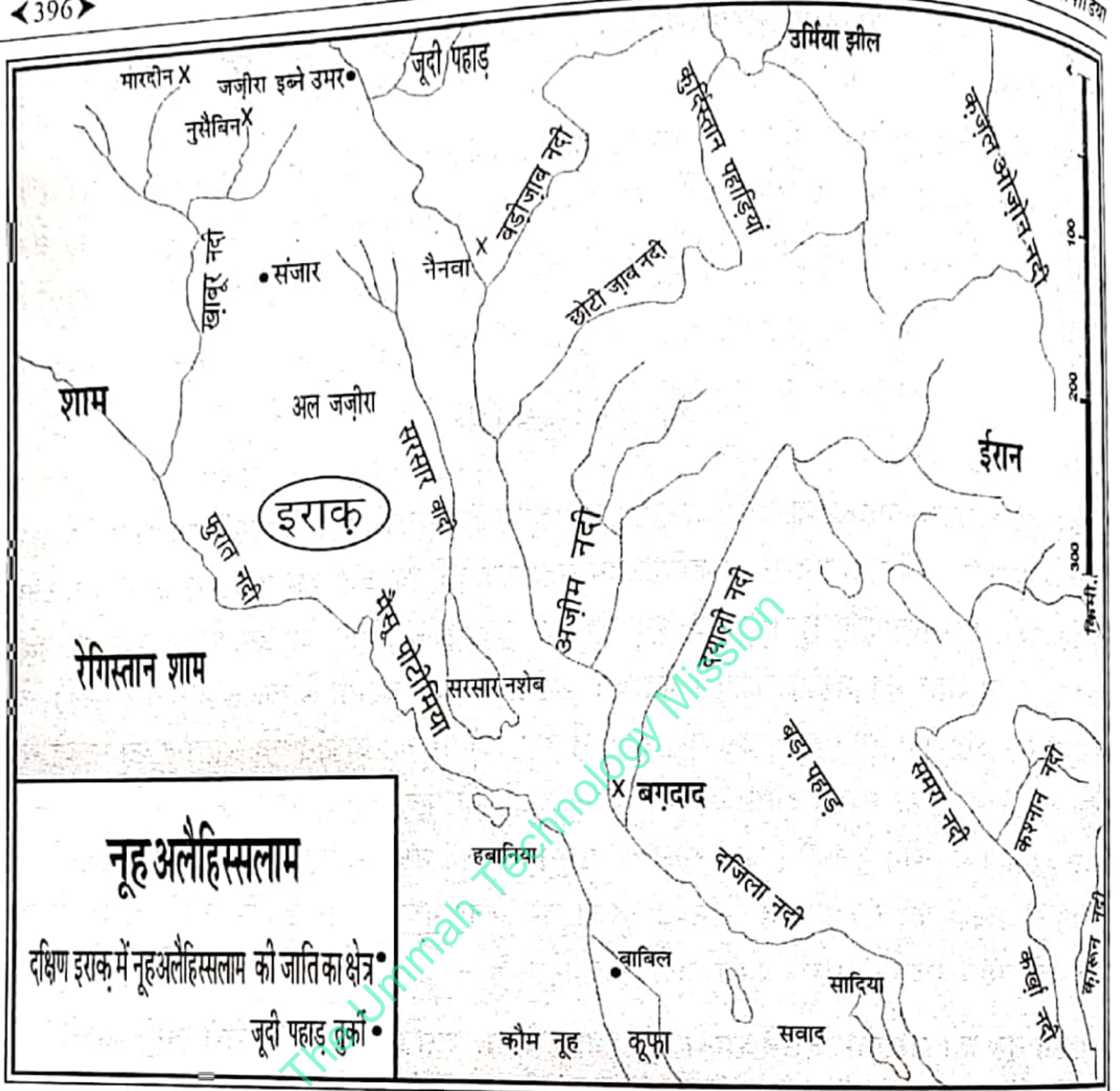
«नूह की जातिवालों ने रसूलों को झुठलाया।» (सूरा–26, शुअरा, आयत–105)

«उन्होंने कहा, ''क्या हम तुझपर ईमान लाएँ, जबकि नीच लोग तेरे अनुयायी हैं।''» (सूरा–26, शुअरा, आयत–111)

«इनसे पहले नूह की जातिवालों ने झुठलाया बस उन्होंने हमारे बंदे को झुठलाया और उन्मादी कहा और उसे सताया भी।» (सूरा–54, अल-क़मर, आयत–9)

जबकि नूह (عليه السلام) पूरे नौ सौ पचास वर्ष तक अपनी जाति को अल्लाह की ओर बुलाते रहे। (सूरा–26, अल-अनकबूत, आयत–14)

इसके लिए उन्होंने दिन-रात एक कर दिया। परन्तु उनकी जाति ने उनकी बात नहीं मानी।

«उसने कहा, ''रब! मैंने अपनी जातिवालों को रात-दिन (तेरी ओर) बुलाया। मगर मेरे बुलाने पर वे भागते ही रहे।''» (सूरा–71, नूह, आयतें–5,6)

«नूह ने कहा, ''रब ! इन्होंने मेरी अवज्ञा की और ऐसे लोगों के पीछे चलने लगे जिन्होंने उनके माल और संतान में बस घाटा ही घाटा किया।''» (सूरा–71, नूह, आयत–21)

अन्त में नूह (ﷺ) जब थक गए तो उन्होंने अपनी जाति को बद्‌दुआ दी :

«और नूह ने कहा, ''रब ! तू धरती पर इन इस्लाम-विरोधियों में से किसी बसनेवाले को न छोड़, यदि तू इन्हें छोड़ देगा तो ये तेरे बन्दों को गुमराह करेंगे। और वे दुराचारियों और बड़े अधर्मियों को ही जन्म देंगे।''» (सूरा–71, नूह, आयतें–26-27)

बस अल्लाह ने उनको उनके अपने पापों के कारण डुबो दिया।

«वे अपने पापों के कारण डुबो दिए गए। फिर आग में दाख़िल कर दिए गए। और वे अपने लिए अल्लाह के अतिरिक्त किसी प्रकार के सहायक नहीं पा सके।» (सूरा–71, नूह, आयत–25)

बस जब वे हद से आगे बढ़ गए, नबी के संदेश को ठुकरा दिया, और नूह (ﷺ) ने अन्दाज़ा लगा लिया कि ये लोग ईमान लानेवाले नहीं हैं तब अल्लाह ने नूह (ﷺ) को हुक्म दिया कि एक बहुत बड़ी नौका तैयार करें –

«तब हमने उसकी ओर वह्य की कि हमारी देख-रेख में और वह्य के अनुसार नौका तैयार करो, फिर जब हमारा हुक्म आ जाए और तन्नूर उबल पड़े तो प्रत्येक प्रजाति में से एक-एक जोड़ा उसमें ले ले और अपने घरवालों को भी, सिवाय उसके जिसके विरुद्ध पहले ही बात निश्चित हो चुकी है। और ज़ुल्म करनेवालों के प्रति मुझसे बात न करना, वे अवश्य डूबकर रहनेवाले हैं। (सूरा–23, मोमिनून, आयत–27)

और फिर पृथ्वी पर एक ऐसा तूफ़ान आया कि सारे जीवधारी जो उस समय पृथ्वी पर थे नष्ट हो गए फिर अल्लाह ने नूह (ﷺ) और उनके साथ जो लोग नौका में सवार थे सबको पृथ्वी पर दोबारा आबाद किया, इस लिए नूह (ﷺ) को दूसरा आदम कहते हैं। कहते हैं कि तूफ़ान में डूबनेवालों में उनकी स्त्री आविर और एक पुत्र याम भी था क्योंकि वे दोनों नूह (ﷺ) पर ईमान नहीं लाए और बचनेवालों में उनके तीन पुत्र थे, जिनके नाम ये हैं : हाम, साम, याफ़िस। हाम से यूरोपियन लोग, साम से एशिया के लोग और याफ़िस से अफ़रीक़ा के लोग पैदा हुए। परन्तु यह बात कोई प्रामाणिक नहीं है क्योंकि हमारे पास उस समय का कोई इतिहास नहीं है। जब तूफ़ान में सब नष्ट हो गए तो अल्लाह ने हुक्म दिया –

«और कहा गया, ''ऐ धरती ! अपना पानी निगल जा, और ऐ आकाश ! थम जा।'' तो पानी धरती में बैठ गया। और फ़ैसला चुका दिया गया, और वह (नाव) जूदी (नामक पर्वत) पर टिक गई, और कह दिया गया कि ज़ालिमों पर धिक्कार हो।» (सूरा–11, हूद, आयत–44)

"नूह (अलैहिस्सलाम) की नौका का एक चित्र"
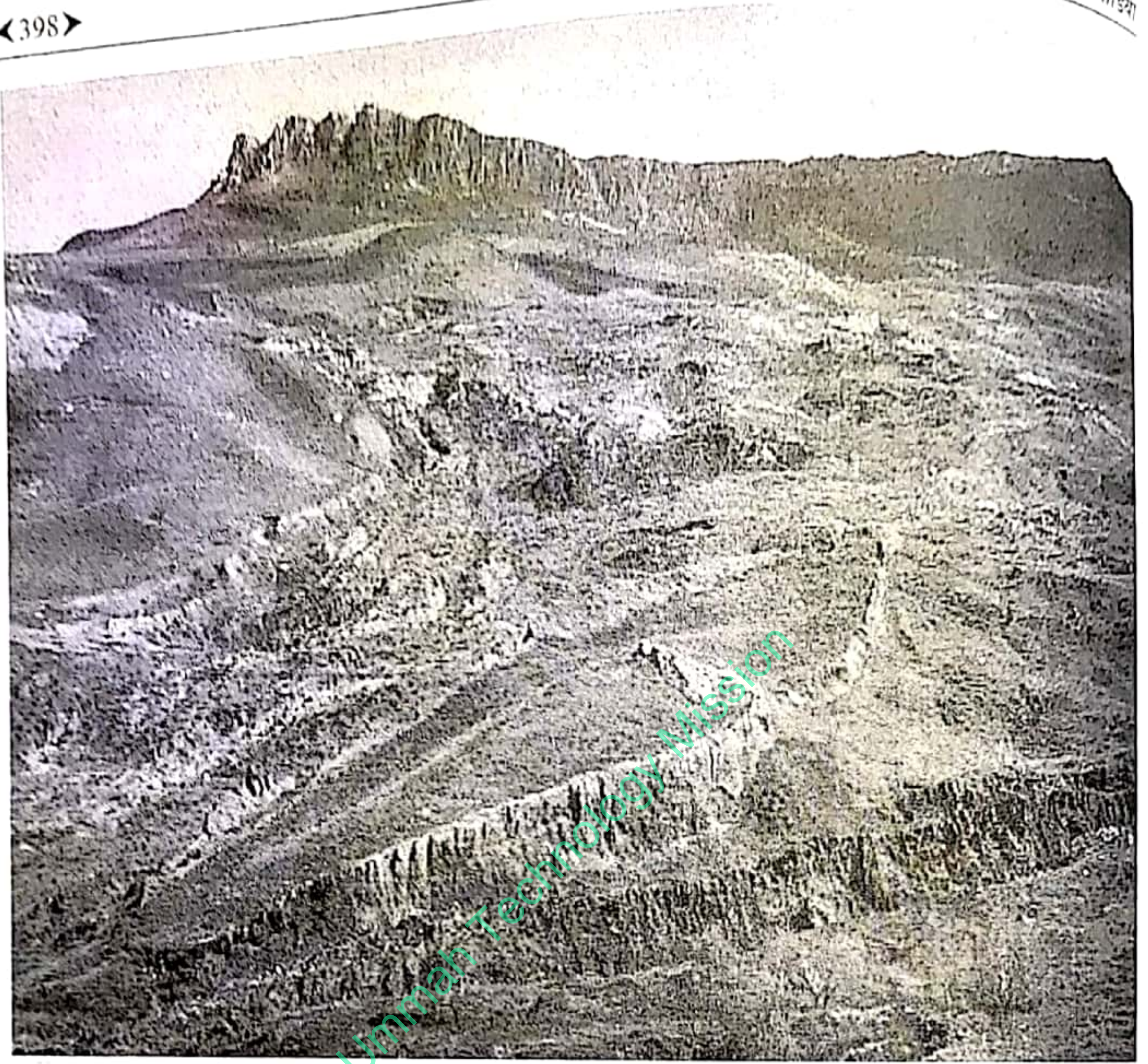
फिर नूह (अलैहिस्सलाम) की नस्ल इराक़ से निकलकर धीरे-धीरे पृथ्वी पर फैलने लगी। और इस नस्ल के लोग जहाँ भी गए अपने साथ उस तूफ़ान की कथा को भी ले गए। यही कारण है कि इस तूफ़ान का वर्णन संसार के हर भाग में पाया जाता है। बाइबल में है कि यह तूफ़ानी वर्षा चालीस दिन तक होती रही जिसके कारण पृथ्वी पर मौजूद तमाम जानवर पानी में डूब गए। बचनेवालों में नूह (अलैहिस्सलाम) उनके तीन पुत्र और उनकी स्त्रियाँ थीं तथा प्रत्येक प्रकार के जानवर भी नौका में थे। चालीस दिनों पश्चात् जब तूफ़ान रुका तब नूह (अलैहिस्सलाम) अपने पुत्रों के संग दोबारा पृथ्वी पर आए और यह संसार दोबारा आबाद हुआ। फिर अल्लाह ने नूह (अलैहिस्सलाम) और उनकी संतान को बरकत दी और कहा, ''जाओ पृथ्वी पर फैल जाओ।'' इस प्रकार नूह (अलैहिस्सलाम) आदम (अलैहिस्सलाम) के पश्चात् मनुष्यों के दूसरे पिता कहलाए। (देखिए : उत्पत्ति : अध्याय 6-8)

सूरतुल-क़मर की आयत-15 में नौका के विषय में आया है कि –

«निस्संदेह हमने इसे एक निशानी बना कर छोड़ा है। तो क्या कोई है शिक्षा ग्रहण करने वाला?»

यहाँ निशानी बना कर छोड़ने का अर्थ स्वयं नौका नहीं है। बल्कि वह पूरी कथा है जो नूह (عليه السلام) के साथ घटित हुई। जैसे अल्लाह के आदेश से नौका बनाना, फिर उसमें ईमान वालों को सवार करना, फिर नौका का जूदी पर्वत पर ठहर जाना और शेष लोगों का डूब जाना यह पूरी घटना एग निशानी है। शिक्षा ग्रहण करने वालों के लिए। और अगर कभी उस नौका का पता चल जाए जैसा कि आज कल मीडिया में आ रहा है कि अरमीनिया के किसी पर्वत की चोटी पर नौका के कुछ बक़ाया मिले हैं तो यह भी विभिन्न निशानियों में से एक निशानी होगी।

नूह (عليه السلام) का पुत्र

बाइबल में नूह के पुत्रों की संख्या तीन बताई गई है। वे ये हैं: साम, हाम, याफ़िस (उत्पत्ति, 6:10) यह भी बताया गया है कि तूफ़ान में बच जानेवालों में नूह (عليه السلام) के वे तीन पुत्र भी थे, जिनसे दोबारा संसार में मानव-जीवन की उत्पत्ति हुई, लेकिन बाइबल में इस विषय में जो कुछ बताया गया है वह अधूरा है। ऐसा लगता है कि बाइबल लिखनेवालों से चूक हो गई है। क़ुरआन अन्तिम ईश-ग्रंथ है। इसलिए जहाँ उसने विभिन्न प्रकार की त्रुटियों को दूर किया, वहीं उसने नूह (عليه السلام) के वृत्तान्त के उस भाग को भी पूर्ण किया जो छूट गया था। वह नूह (عليه السلام) का विधर्मी पुत्र है, जिसने नौका पर सवार होने से इनकार कर दिया। वह कहने लगा कि मैं तूफ़ान से बचने के लिए पर्वत पर चढ़ जाऊँगा, परन्तु वह अल्लाह के प्रकोप से न बच सका और तूफ़ान में डूब गया–

«नूह ने अपने बेटे को पुकारा, जो अलग था, ''ऐ मेरे पुत्र, हमारे साथ सवार हो जा और विधर्मियों के साथ न रह।'' उसने कहा, ''मैं किसी पहाड़ की शरण ले लूँगा, जो मुझे पानी से बचा लेगा।'' नूह ने कहा, ''आज अल्लाह की यातना से कोई बचानेवाला नहीं परन्तु जिस पर वह दया करे।'' इतने में लहर दोनों के बीच आ गई, और वह भी डूबनेवालों में हो गया।» (सूरा–11, हूद, आयतें-42,43)

यह वह चौथा पुत्र है जिसका वर्णन बाइबल में नहीं आया है, क्योंकि वह तूफ़ान में डूब गया और उसकी कोई सन्तान भी नहीं थी। बाइबल ने केवल उन तीन पुत्रों का वर्णन किया है, जिनसे तूफ़ाने-नूह के बाद इनसानी नस्ल आगे बढ़ी। नूह (عليه السلام) के डूबनेवाले पुत्र के विषय में क़ुरआन ने नूह (عليه السلام) का कथन उद्धृत किया है, जिसमें वे एक पिता होने के नाते अल्लाह से याचना करते हैं–

«नूह ने अपने रब को पुकारा और कहा, ''ऐ रब, मेरा बेटा मेरे घरवालों में से है। और निश्चय ही तेरा वचन सत्य है। और तू ही सबसे बड़ा हाकिम भी है।'' कहा, ''ऐ नूह, वह तेरे लोगों में से नहीं है। वह तो सर्वथा अशिष्ट कर्म है, तो तू मुझसे ऐसा कुछ न माँग जिसका तुझे ज्ञान नहीं है। मैं तुझे सदुपदेश देता हूँ कि तू अज्ञानी लोगों में से न बन जा।''» (सूरा–11, हूद, आयतें-45,46)

यहाँ क़ुरआन ने नूह (ﷺ) के पुत्र को अशिष्ट कर्म कहा है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह उनका पुत्र नहीं था। बल्कि यहाँ एक महत्वपूर्ण बात की ओर संकेत किया गया है कि कर्म के अनुसार फल मिलता है, वंश या कुल के आधार पर नहीं। यहाँ एक बात का खंडन कर देना भी उचित है कि क़ुरआन के कुछ विशेषज्ञों ने यह लिखा है कि नूह (ﷺ) के डूबनेवाले पुत्र का नाम 'कन्आन' था, जिसकी पुष्टि न बाइबल से होती है न किसी सहीह हदीस से, बल्कि बाइबल से तो यह पता चलता है कि 'कन्आन' वास्तव में 'हाम' का चौथा पुत्र था (उत्पत्ति, 10:6)। अर्थात् नूह (ﷺ) का पोता। वह जीवित रहा और उसका वंश जॉर्डन के पश्चिम किनारे पर आबाद हुआ, जिसके कारण इसको 'कन्आन' का देश कहा जाता है। बाद में बनी-इसराईल के साथ उनका युद्ध होता रहा।

﴾ नज़्र ﴿

नज़्र का अर्थ है मन्नत मानना, अपने ऊपर किसी चीज़ को अनिवार्य करना जिसको अल्लाह तथा उसके रसूल ने अनिवार्य न किया हो।

इसी लिए किसी चीज़ की नज़्र मानने को उत्तम कर्मों में सम्मिलित नहीं किया गया है। सहीह हदीस में आया है –

"नज़्र मानने से कोई चीज़ वापस नहीं आ जाती (और न कोई काम बन सकता है) परन्तु इसके द्वारा कंजूस आदमी से धन अवश्य निकाला जा सकता है।" (सहीह बुख़ारी 6692, सहीह मुस्लिम 1639)

लेकिन जब कोई नज़्र मान ले तो फिर उसका पूरा करना ज़रूरी है। क्योंकि नज़्र भी एक प्रकार का वचन है, और जब कोई वचनबद्ध हो जाए तो उसे पूरा करे।

इसी लिए अल्लाह ने नज़्र पूरी करनेवालों की प्रशंसा करते हुए फ़रमाया है–

«वे नज़्र पूरी करते हैं और उस दिन से डरते हैं जिसकी मुसीबत हर ओर फैली होगी।» (सूरा-76, अल-इनसान, आयत-7)

«और जो कुछ तुमने ख़र्च किया और जो कुछ नज़्र तुमने मानी तो अल्लाह उसे जानता है।» (सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-270)

अर्थात अपनी मन्नतों को पूरा करो। और एक दूसरे स्थान पर नज़्र पूरी करने का आदेश देता है–

«फिर अपना मैल कुचैल दूर करें और अपनी नज़रों को पूरा करें और बैतुल्लाह का तवाफ़ करें।» (सूरा-22, अल-हज, आयत-29)

अर्थात दस ज़िलहिज्जा को जब हाजी जमरात को कंकरियाँ मार ले तो बाल कटवाए, स्नान करे, और सिले हुए कपड़े पहने, सुगंध लगाए। इस प्रकार बहुत दिनों से एहराम की दशा में रहते हुए जो मैल कुचैल जम गया था उसको धोकर साफ़ करे और अगर किसी ने कोई नज़्र मानी हो तो उसे पूरा करे। जैसे किसी ने यह नज़्र मानी हो कि अगर अल्लाह ने हज करा दिया तो मिना में दस ऊँटों की क़ुरबानी दूँगा तो अब अपनी मन्नत पूरी करे। क्योंकि मन्नत भी अल्लाह की वंदनाओं में से एक वंदना है। इसी लिए तो किसी और के नाम नज़्र मानना हराम है। क्योंकि अल्लाह की वंदना में किसी को शरीक करना शिर्क है। (देखें सूरा-31, लुक़मान, आयत-13)

अगर किसी ने कोई ऐसी नज़्र मानी हो जो हराम हो तो उसे पूरा करना अनिवार्य नहीं, बल्कि पूरा न करना अनिवार्य है।

जैसे कोई नज़्र माने कि अगर अल्लाह ने उसे संतान दी तो वह लोगों को मदिरा-पान कराएगा या कोई यह नज़्र माने कि मेरा फ़लाँ काम हो जाए तो किसी क़ब्र पर जाकर चादर चढ़ाऊँगा, लोगों को क़ब्रवालों के नाम का भोजन कराऊँगा या क़ब्र के ऊपर मस्जिद बनवा दूँगा इत्यादि तो फिर ऐसी नज़्र मानना और पूरी करना दोनों हराम हैं। यही वह शिर्क है जो इस्लाम से पूर्व मक्कावाले करते थे। एक सहीह हदीस में है–

"जो अल्लाह के आदेशों के पालन की नज़्र माने उसे चाहिए कि अल्लाह के आदेशों का पालन करे, और जो अल्लाह के अवज्ञा की नज़्र माने उसे चाहिए कि अल्लाह की अवज्ञा न करे।" (सहीह बुख़ारी, 6696)

अर्थात ऐसी नज़्र पूरी न करे जिसका उदाहरण ऊपर दिया गया है।

नसारा

नसारा नसरानी का बहुवचन है। क़ुरआन में नसारा ईसा (عليه السلام) के अनुयायियों के लिए प्रयोग हुआ है। इसका कारण यह है कि जब ईसा (عليه السلام) 'बैतुल्लहम' में (जो ओरोशलीम के उत्तर में है) पैदा हुए तो उनको लेकर उनकी माता मरयम मिस्र चली गईं। क्योंकि ओरोशलीम के शासक हीरोदस को यह सूचना मिली थी कि उसका राज्य नष्ट करनेवाला मसीहा पैदा हो गया है। परन्तु वह यह न जान सका कि वह है कौन? इसलिए उसने आदेश दिया कि सब बालकों को क़त्ल कर दिया जाए।

जब हीरोदस का देहान्त हो गया तो मरयम ईसा (عليه السلام) को लेकर फ़िलस्तीन वापस आ गईं और बैतुल्लहम के बजाय नासिरा नामक नगर में आबाद हुए। मत्ती के अनुसार वे नासरत नामक नगर में जाकर बस गए ताकि वह वचन पूरा हो जो नबियों के द्वारा कहा गया था कि वह नासरी कहलाएगा। (बाइबिल, मत्ती 2:23)

ईसा (عليه السلام) के अनुयायी अपने आपको कभी भाई और कभी शिष्य तथा कभी मोमिन कहते थे, परन्तु यहूदी उनको गुलैली या नासरी कहते थे। मसीही इस शब्द से घृणा करते थे।

और जब सन 43 ईसवी को पतरस ने अन्ताकिया के गिर्जाघर को बनाया तो उसने उसका नाम मसीह रख दिया।

इससे मालूम हुआ कि बाइबल ने जो नाम मसीह (عليه السلام) के लिए प्रयोग किया था, वह 'मसीह नासरी' था। इसलिए उनके अनुयायी नसारा या नसरानी कहलाए होंगे। और इसी नाम को क़ुरआन ने उनके लिए प्रयोग किया, परन्तु जहाँ मसीह (عليه السلام) की शिक्षाओं में उलट-फेर हुआ वहीं उस नाम में भी परिवर्तन हुआ होगा जो मसीह ने अपने अनुयायियों के लिए प्रयोग किया। परन्तु बाद में आनेवालों ने उसे मसीही बना दिया, जिसका प्रयोग मसीह (عليه السلام) ने नहीं किया था।

क़ुरआन में अल्लाह ने बहुत-सी जगहों पर नसारा (ईसाइयों) को समझाने का प्रयास किया है और बताया है कि ईसा (عليه السلام) ने जो शिक्षाएँ तुमको दी थीं तो यह क़ुरआन उन्हीं शिक्षाओं की पुनरावृत्ति है। दूसरी ओर अल्लाह ने मुसलमानों को यह भी बताया है कि ये नसारा तुम्हारे लिए मित्रता में सबसे निकट होंगे तथा ये यहूदी तुम्हारे लिए शत्रुता में सबसे निकट होंगे। क़ुरआन में है –

«तुम ईमानवालों की शत्रुता में सबसे बढ़कर यहूदियों और बहुदेव-वादियों को पाओगे, और ईमान लानेवालों के लिए मित्रता में सबसे निकट उन लोगों को पाओगे जिन्होंने कहा कि हम नसारा (अर्थात ईसाई) हैं। यह इस कारण कि उनमें बहुत से धर्म-ज्ञाता और संसार-त्यागी सन्त पाए जाते हैं और इस कारण कि वे घमंड नहीं करते।» (क़ुरआन, सूरा-5, अल-माइदा, आयत-82)

नबी

नबी का अर्थ है सूचना देनेवाला। चूँकि नबी ग़ैब की सूचना देता है इसलिए उसे नबी कहते हैं। चाहे यह सूचना वह हो जिस तक हम अपनी ज्ञानेंद्रियों के द्वारा नहीं पहुँच सकते या वह सूचना हो जो भविष्य के विषय में हो।

(अधिक जानकारी के लिए देखिए 'रसूल')

अल्लाह ने मानव-जाति को पैदा करने के बाद उसको भटकने के लिए यूँ ही नहीं छोड़ दिया बल्कि उसके मार्गदर्शन के लिए नबियों की श्रृंखला जारी की। ये नबी संसार की समस्त जातियों में समय-समय पर आते रहे। क़ुरआन में है –

«और हर जाति के लिए एक मार्ग बतानेवाला हुआ है।» (सूरा-13, अर-रअद, आयत-7)

चूँकि इनका काम मनुष्यों का पथ-प्रदर्शन करना था इसलिए ये मनुष्य ही हुआ करते थे और लोगों से उनकी भाषा में ही बातें किया करते थे। ताकि लोगों पर अल्लाह का मार्ग स्पष्ट हो जाए और उनका जीवन-चरित्र लोगों के लिए आदर्श बन सके। क़ुरआन में है–

«और तुमसे पहले हमने जितने रसूल भेजे हैं निस्सन्देह वे सब खाना खाते और बाज़ारों में चलते फिरते थे।» (सूरा-25, अल-फ़ुरक़ान, आयत-20)

«और तुमसे पहले भी हम कितने रसूलों को भेज चुके हैं, उन्हें हमने पत्नियाँ और बच्चे भी दिए थे।» (सूरा-13, अर-रअद, आयत-38)

इन आयतों में उन विचारों का खंडन किया गया है कि स्वयं अल्लाह मनुष्य के रूप में पृथ्वी पर उतरता है।

इन आयतों से यह भी पता चलता है कि नबी बनाना केवल अल्लाह के हाथ में है कोई व्यक्ति स्वयं नबी होने का दावा नहीं कर सकता-

«अल्लाह फ़रिश्तों में से संदेश पहुंचानेवाला चुन लेता है, और मनुष्यों में से भी। निस्संदेह वह सब कुछ सुनता, देखता है।» (सूरा-22, अल-हज; आयत-75)

यहाँ फ़रिश्तों में से चुनने से अभिप्रेत जिबरील (ﷺ) हैं जो अल्लाह की ओर से वह्य लेकर नबियों के पास आया करते थे। अल्लाह ने उनको इस काम के लिए चुन लिया था। इसी प्रकार अल्लाह ने नुबुव्वत के लिए आदम, नूह, इबराहीम (ﷺ) आदि नबियों को उनकी अपनी-अपनी क़ौम तक अपना पैग़ाम पहुँचाने के लिए और अन्त में हज़रत मुहम्मद (ﷺ) को सारे संसार के लोगों तक अपना पैग़ाम पहुँचाने के लिए चुन लिया था। नबी मुहम्मद (ﷺ) अन्तिम नबी बना कर भेजे गये अब आपके बाद कोई नबी नहीं आयगा।

«मुहम्मद तुम्हारे पुरुषों में से किसी के पिता नहीं हैं, परन्तु वे अल्लाह के रसूल और नबियों के समापक हैं, और अल्लाह हर चीज़ का ज्ञान रखनेवाला है।» (सूरा-33, अल-अहज़ाब, आयत-40)

इस बात की पुष्टि एक सहीह हदीस से भी होती है। जिसमें मुहम्मद (ﷺ) ने कहा है कि मेरे बाद कोई नबी नहीं आएगा। अर्थात् अब नुबुव्वत का सिलसिला ख़त्म हो चुका है (अब आप का लाया हुआ धर्म अन्तिम धर्म है, और क़ुरआन अन्तिम पुस्तक जो प्रलय-दिवस तक के लोगों के लिए एक मार्गदर्शन है।)

नबी और रसूल में अन्तर यह है कि रसूल अपनी शरीअत लेकर आता है और नबी पहले रसूल की शरीअत को जीवित करने के लिए भेजा जाता है।

नबी (ﷺ) की पत्नियाँ

देखें मुहम्मद (ﷺ) की पत्नियाँ

नबी (ﷺ) की पुत्रियाँ

देखें मुहम्मद (ﷺ) की पुत्रियाँ

नीयत

नीयत इस्लामी पारिभाषिक शब्द है, जो किसी और धर्म में नहीं पाया जाता। चूँकि यह इबादत का प्रमुख अंग है इसलिए यहाँ संक्षेप में इसका अर्थ बताया जा रहा है–

किसी भी पुण्य कर्म के करने से पूर्व करनेवाले का मन में यह इच्छा करना कि यह इबादत केवल अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए कर रहा हूँ, नीयत कहलाता है। अगर कोई व्यक्ति यह नीयत किसी इबादत में न करे तो उसकी इबादत अल्लाह के यहाँ स्वीकृत नहीं होगी।

एक सहीह हदीस में आया है–

''कर्मों का स्वीकृत होना नीयत पर निर्भर है और प्रत्येक व्यक्ति को वही मिलता है जिसकी वह नीयत करता है।'' (बुख़ारी, 1 तथा मुस्लिम, 1907)

अर्थात् जो कोई उत्तम कर्म अल्लाह के लिए करेगा उसका बदला अल्लाह देगा और जो किसी और के लिए करेगा अल्लाह उसका बदला नहीं देगा, बल्कि उससे प्रलय के दिन कहा जाएगा, ''जाओ उससे बदला माँगो, जिसके लिए तुम इबादत कर रहे थे।''

इसलिए उत्तम कर्मों के करने से पूर्व यह नीयत करना कि मैं यह अल्लाह के लिए कर रहा हूँ अनिवार्य है। परन्तु इसके लिए दिल में इरादा या संकल्प कर लेना पर्याप्त है, ज़बान से बोलना ज़रूरी नहीं है। केवल हज की नीयत ज़बान से बोलना अनिवार्य है, जिसमें हाजी यह कहे–

''अल्लाहुम-म लब्बैक बिलहज'' अर्थात ऐ अल्लाह! मैं हज की नीयत तुझ तक पहुँचने के लिए कर रहा हूँ। जब एक मुसलमान इबादत या अन्य कोई भी उत्तम कर्म, केवल अल्लाह की प्रसन्नता के लिए करता है तो वह लोगों को दिखाने के लिए नहीं करता है, बल्कि इस्लाम के अनिवार्य (फ़र्ज़) कर्मों जैसे नमाज़, रोज़ा, ज़कात, हज, के अतिरिक्त जो दूसरे उत्तम कर्म (जैसे तहज्जुद की नमाज़, नफ़्ल रोज़े, मुहताजों की मदद आदि) जितना छिपकर करेगा उतना ही अधिक पुण्य का काम माना जाएगा। एक सहीह हदीस में आता है–

''दान इतना छिपाकर दो कि बाएँ हाथ को यह पता न हो कि दाएँ हाथ ने कितना दान दिया।''

वास्तव में दिखावा हृदय का एक रोग है, और जिसको यह रोग लग जाए वह कोई पुण्य कर्म उस समय तक नहीं कर सकेगा, जब तक उसकी प्रशंसा न की जाए। परन्तु इस्लाम इस बात की शिक्षा देता है कि पुण्य कर्म करना एक सद्गुण है, चाहे कोई देखे या न देखे उसे पुण्य कर्म करना ही है क्योंकि अल्लाह तो देख रहा है और यही उसकी अभीष्ट मंज़िल है। क़ुरआन में है –

«**उन्हें इस बात का हुक्म दिया गया कि अल्लाह की बन्दगी करें निष्ठा एवं विनयशीलता को उसके लिए विशिष्ट करके, बिलकुल एकाग्र होकर।**» (सूरा–98, अल-बैयिनह, आयत–5)

अर्थात् इबादत में किसी और को शरीक न करो।

नस्र

'नस्र' हिम्यर क़बीले का बुत था। अधिक जानकारी के लिए देखिए 'वद्द'।

नस्ख़

'नस्ख़' अरबी शब्द है। इसका अर्थ है मिटाना। क़ुरआन अल्लाह की किताब है। इसलिए अल्लाह को अधिकार है कि जो चाहे उसमें 'नस्ख़' कर दे और जो चाहे शेष रखे। इसलिए किसी को अल्लाह के कर्त्तव्यों पर आक्षेप नहीं करना चाहिए।

फिर अल्लाह ने इस विषय में एक नियम भी बताया है–

«**हम जिस आयत को 'मन्सूख़' (निरस्त) कर देते हैं, या भुला देते हैं, तो उससे बेहतर या उस जैसी दूसरी (आयत) ला देते हैं। क्या तुम नहीं जानते कि अल्लाह हर चीज़ की सामर्थ्य रखता है।**» (सूरा–2, अल–बक़रा, आयत–106)

इस आयत में दो बातें बताई गई हैं।

एक यह कि अगर अल्लाह किसी आयत को 'मन्सूख़' करता है तो उससे अच्छी आयत उतार देता है। यहाँ अच्छी और ख़राब का सम्बन्ध अल्लाह की आयतों से नहीं है, क्योंकि अल्लाह की सभी आयतें अच्छी होती हैं। इनका सम्बन्ध कर्म करनेवालों से है कि दूसरी आयत उनके लिए पहली से सरल होती है। इसका उदाहरण निम्नलिखित आयत है–

«**ऐ नबी, ईमानवालों को लड़ाई पर उभारो। यदि तुम में से बीस धैर्यवान हों तो वे दो सौ पर भारी रहेंगे, और यदि तुममें से सौ हों तो वे एक हज़ार इस्लाम- विरोधियों पर भारी होंगे। क्योंकि वे ऐसे लोग हैं जो समझ-बूझ नहीं रखते।**» (सूरा–8, अल-अनफ़ाल, आयत–65)

इस आयत के प्रकाश में अगर मुसलमानों के मुक़ाबले में शत्रुओं की सेना दस गुनी होती थी और नबी (ﷺ) की ओर से जिहाद का एलान हो जाता था तब भी जिहाद करना अनिवार्य था।

और फिर इस प्रतिशत को 'मन्सूख़' कर दिया गया। अब मुसलमानों के मुक़ाबले में अगर शत्रु की सेना दुगनी हो और शासक की ओर से जिहाद का एलान हो जाए तो जिहाद फ़र्ज़ होगा, वरना नहीं–

«अच्छा अब अल्लाह ने तुम्हारा बोझ हलका कर दिया। उसने भली-भाँति जान लिया कि तुम कमज़ोर हो, तो अब यदि तुममें से एक सौ धैर्यवान होंगे, तो वे दो सौ पर भारी होंगे, और यदि तुममें से एक हज़ार होंगे तो वे अल्लाह के आदेश से दो हज़ार पर भारी होंगे, और अल्लाह उन लोगों के साथ है जो धैर्यवान हैं।» (सूरा–8, अल-अनफ़ाल, आयत–66)

उपर्युक्त आयत में जो यह कहा गया है कि ईमानवालों को लड़ाई पर उभारो, तो इससे किसी को यह ग़लतफ़हमी नहीं होनी चाहिए कि इस्लाम लड़ने, मरने और मारने की शिक्षा देता है। वास्तव में ये आयतें उस समय अवतरित हुई थीं जब इस्लाम-विरोधियों ने मुसलमानों का जीना हराम कर रखा था।

इस्लाम वास्तव में समाज में शान्ति की स्थापना का हर संभव प्रयास करता है। अब यदि समाज में शान्ति के विरोधी या असामाजिक तत्त्व समाज की शान्ति को छिन्न-भिन्न करना चाहें, ईश्वर के बाग़ी हो जाएँ तथा उनपर समझाने-समझाने के सभी दरवाज़े बन्द हो जाएँ तो फिर उनके विरुद्ध हथियार उठाने को इस्लाम उभारता है। परन्तु ताकीद करता है कि "यदि वे सन्धि की ओर झुकें तो तुम भी झुक जाओ।" इससे पता चलता है कि लड़ाई कोई उद्देश्य नहीं, बल्कि वह तो लोगों को अत्याचार से बचाने और शान्ति स्थापित करने का अन्तिम मार्ग है। यही कारण है कि नबी (ﷺ) के मदीना के जीवन काल में – जो दस वर्षों तक फैला हुआ है – पूरे अरब देश में शान्ति स्थापित हो गई। जो पहले लड़ते थे, अब भाई-भाई हो गए। इन युद्धों में दोनों ओर से कुल मिलाकर एक हज़ार से भी कम व्यक्ति मारे गए।

आइए अब 'नस्ख़' के विषय की ओर पलटते हैं। तो सूरा-2 आयत 107, में भुलवा देने की जो बात कही गई है उसमें एक अर्थ यह भी निकलता है कि पहले जो किताबें उतारी गई थीं लोगों ने उनको भुला दिया था या उनमें अपनी ओर से मिला दिया था। इसलिए अल्लाह ने उनको भुलाकर उससे अच्छी किताब – क़ुरआन मजीद – उतार दी, अब पुराने धर्म ग्रन्थों में जो आदेश हैं सब 'मन्सूख़' हो गए, सिवाय उन आदेशों के जिनको स्वयं क़ुरआन में बाक़ी रखा गया है।

निफ़ाक़

'निफ़ाक़' अरबी भाषा के शब्द 'नफ़क़' से निकला है जिसका अर्थ होता है 'गुज़रकर पार हो जाना'। इसलिए नफ़क़ सुरंग को भी कहते हैं। क्योंकि इसमें एक ओर से घुसकर दूसरी ओर पार हो जाते हैं। इस सम्बन्ध से 'निफ़ाक़' का अर्थ होता है 'दीन में एक द्वार से प्रवेश करना और दूसरे द्वार से निकल जाना' अर्थात ज़बान से इस बात को स्वीकार करना कि मैं इस्लाम पर ईमान लाता हूँ और दिल में इस्लाम से दुश्मनी रखना 'निफ़ाक़' कहलाता है।

'निफ़ाक़' क़ुरआन के विशेष वर्णित-विषयों में से एक है। जब इस्लाम तेज़ी से फैलने लगा और उसका मुक़ाबला करना इस्लाम-विरोधियों के लिए कठिन हो गया, तो कुछ लोग इस्लाम को क्षति पहुँचाने के लिए ज़बान से 'कलिमा' पढ़कर मुसलमान तो हो गए परन्तु उनके दिलों में इस्लाम के विरुद्ध जो भावना थी, उसमें कमी नहीं आई। बल्कि अब उनके लिए मुसलमानों के भेस में इस्लाम को हानि पहुँचाना और भी सरल हो गया। इसलिए इस गरोह को 'मुनाफ़िक़' (अवसरवादी, कपटाचारी) कहा गया। मुनाफ़िक़ों के बारे में क़ुरआन ने जो कुछ कहा है वह निम्नलिखित है –

1. ये अल्लाह को धोखा देते हैं, जबकि उनको ज्ञान होना चाहिए की कोई अल्लाह को क्या धोखा दे सकता है। वे तो स्वयं धोखे में पड़े हुए हैं। वे स्वयं धोखा खा रहे हैं।

   «ये (मुनाफ़िक़) अल्लाह तथा ईमानवालों को धोखा दे रहे हैं, जबकि वे धोखा अपने आप को दे रहे हैं, और इन्हें इसका ज्ञान नहीं है।» (सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-9)

2. नमाज़ पढ़ने में बड़ी सुस्ती दिखाते हैं। और अगर कभी नमाज़ पढ़ते भी हैं तो केवल लोगों को दिखाने के लिए पढ़ते हैं–

   «जब वे नमाज़ के लिए खड़े होते हैं तो कसमसाते हुए, केवल लोगों को दिखाने के लिए खड़े होते हैं और अल्लाह को तो बहुत ही कम याद करते हैं।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–142)

3. ये उलझन के शिकार हैं कि इस्लाम-विरोधियों के साथ रहें या मुसलमानों के साथ, क्योंकि ये अवसर के पुजारी हैं। पता नहीं किसके साथ रहने से अधिक लाभ होगा–

   «वे बीच में डांवाडोल हो रहे हैं, न इधर के हैं, न उधर के।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–143)

   «जब ये लोग ईमान लानेवालों से मिलते हैं तो कहते हैं, ''हम ईमान ले आए हैं'' और जब एकान्त में अपने शैतानों से मिलते हैं तो कहते हैं, ''हम तुम्हारे साथ हैं और हम तो उनसे हँसी-मज़ाक़ करते हैं।''» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–14)

4. मुनाफ़िक़ अल्लाह की सौगन्ध को अपने लिए ढाल बना लेते हैं, ताकि उनका निफ़ाक़ छिपा रहे। परन्तु अल्लाह ने उनके निफ़ाक़ को प्रकट कर दिया और इस विषय में अल-मुनाफ़िक़ून नाम की सूरा उतारी, जिसमें कुल ग्यारह आयतें हैं। आरंभिक आठ आयतों का अनुवाद ध्यानपूर्वक पढ़िए–

«(ऐ नबी!) जब मुनाफ़िक़ तुम्हारे पास आते हैं तो कहते हैं, ''हम गवाही देते हैं कि आप अल्लाह के रसूल हैं।'' और अल्लाह भी जानता है कि तुम उसके रसूल हो, और अल्लाह गवाही देता है कि मुनाफ़िक़ झूठे हैं। उन्होंने अपनी क़समों को ढाल बना लिया है, इस प्रकार वे अल्लाह के मार्ग से (लोगों को) रोकते हैं। ये लोग बहुत ही बुरा कर रहे हैं, यह इस कारण है कि वे ईमान लाए, फिर कुफ़्र किया तो उनके दिलों पर ठप्पा लगा दिया गया अब वे समझते नहीं। और जब तुम उन्हें देखोगे तो वे शरीर (बाह्य रूप) से तुम्हें बहुत भले लगेंगे; और यदि वे बोलें तो तुम उनकी बात पर कान धरोगे। मानो ये लकड़ियाँ हैं सहारे से खड़ी कर दी गईं। कोई भी हल्ला हो उसे अपने ऊपर समझते हैं। वे पक्के दुश्मन हैं, उनसे बचते रहो। इनपर अल्लाह की मार पड़े! वे कहाँ फिरे जाते हैं। और जब उनसे कहा जाता है, ''आओ! अल्लाह का रसूल तुम्हारे लिए क्षमा की प्रार्थना करे!'' तो वे अपने सिर मटकाते हैं और तुम देखते हो कि वे खिंचे रहते हैं और अपने को बड़ा समझते हैं। इनके हक़ में बराबर है चाहे तुम उनके लिए क्षमा की प्रार्थना करो या न करो, अल्लाह इनको कदापि क्षमा न करेगा। निस्सन्देह अल्लाह अवज्ञाकारी लोगों को राह नहीं दिखाता। ये वही लोग हैं जो कहते हैं कि उन लोगों पर, जो अल्लाह के रसूल के पास हैं, ख़र्च न करो ताकि वे तितर-बितर हो जाएँ; जबकि आकाशों और धरती के ख़ज़ाने अल्लाह ही के हैं, परन्तु मुनाफ़िक़ समझते नहीं। कहते हैं, ''यदि हम मदीना वापस पहुँच गए तो जो अधिक सम्मानवाला है वह (अपने से) अधिक अपमानवाले को निकाल बाहर करेगा।'' और सम्मान तो अल्लाह उसके रसूल और ईमानवालों के लिए है। परन्तु मुनाफ़िक़ जानते नहीं।» (सूरा-63, अल-मुनाफ़िक़ून, आयतें-1-8)

यह बात मुनाफ़िक़ों के सरदार अब्दुल्लाह-बिन-उबई को सामने रखकर कही गई है। (अधिक जानकारी के लिए देखिए : अब्दुल्लाह-बिन-उबई।)

मुनाफ़िक़ किसी भी समाज के लिए ख़तरनाक हो सकते हैं, इस लिए इनकी यातना भी बहुत कठोर है–

«मुनाफ़िक़ अवश्य नरक के सबसे निचले खण्ड में जाएँगे, जिनके लिए तुम कोई सहायक नहीं पाओगे।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–145)

❀ मुनाफ़िक़ की पहचान

सहीह हदीसों में मुनाफ़िक़ की पहचान बताई गई है –

"जिस व्यक्ति के अन्दर ये चार अवगुण हों वह पक्का मुनाफ़िक़ है और जिसके अन्दर इनमें से एक अवगुण हो तो उसके अन्दर मुनाफ़िक़ का एक अवगुण है। यहाँ तक कि वह उसे भी छोड़ दे–

(i) जब उसे अमानत दी जाए तो ख़यानत करे,

(ii) जब बात करे तो झूठ बोले।

(iii) जब समझौता करे तो धोखा दे,

(iv) जब वार्तालाप करे तो गाली-गलौज करने लगे। (सहीह बुख़ारी, 34 तथा सहीह मुस्लिम, 58)

ये बातें जो ऊपर की हदीस में बताई गई हैं। इनको 'निफ़ाक़-अमल' (कर्म का निफ़ाक़) कहते हैं। कर्म के निफ़ाक़ की यह क़िस्म हमेशा पाई जाएगी, परन्तु वह निफ़ाक़ जो नबी (ﷺ) के समय में पाया जाता था 'निफ़ाक़-ईमान (विश्वास और आस्था में निफ़ाक़)' था। और विश्वास का निफ़ाक़ अल्लाह और रसूल के अतिरिक्त कोई नहीं जान सकता, क्योंकि इसका सम्बन्ध दिल से है। इस लिए एक सहाबी हुज़ैफ़ा (رضي الله عنه) ने कहा था–

"निफ़ाक़ तो नबी (ﷺ) के युग में पाया जाता था, परन्तु अब ईमान के बाद केवल कुफ़्र है।"

(सहीह बुख़ारी, 7114)

अर्थात् अब किसी को मुनाफ़िक़ नहीं कहा जाएगा, बल्कि अब तो केवल मोमिन होगा या विधर्मी या अगर किसी के अन्दर ऊपर बताए गए अवगुणों में से कोई एक अवगुण पाया जाता है, तो यह कह सकते हैं कि तुम्हारे अन्दर निफ़ाक़ का अवगुण पाया जाता है।

❮ नाम ❯

नाम रखने और फिर नामों से किसी को पुकारने के विषय में इस्लाम की दो विशेष शिक्षाएँ हैं –

1. इस्लाम से पहले अगर कोई व्यक्ति किसी बच्चे को मुँह-बोला बेटा बना लेता था तो वह बच्चा उस व्यक्ति के पुत्र के नाम से जाना जाता था। जैसे नबी (ﷺ) ने ज़ैद-बिन-हारिसा को अपना मुँह बोला बेटा बना लिया था तो लोग उनको ज़ैद-बिन-मुहम्मद कहने लगे थे। क़ुरआन ने स्पष्ट रूप से इससे रोक दिया–

«उन (मुँह-बोले बेटों) को उनके पिता के नामों से पुकारो। यही अल्लाह की दृष्टि में अधिक न्यायोचित बात है।» (सूरा–33, अल-अहज़ाब, आयत–5)

इसलिए अब किसी मुँह-बोले बेटे को मुँह-बोले बाप के नाम से नहीं पुकारा जाएगा और न ही वह उसका सगा पिता माना जाएगा, अर्थात् सगे बाप-बेटे के जो आदेश हैं वे मुँह-बोले बाप-बेटे पर लागू नहीं किए जाएँगे। जैसे मीरास, विवाह इत्यादि।

इस आयत से यह अर्थ भी निकलता है कि बेटे के साथ बाप का नाम लगाना उचित है, अर्थात् नाम का दूसरा भाग बाप का होना चाहिए न कि एक ही व्यक्ति के दो तीन नाम। जैसे कोई अपना नाम 'अहमद मुहम्मद अब्दुल्लाह' रखे, तो यह उचित नहीं है, क्योंकि किसी सहाबी, ताबिई, इमाम, मुहद्दिस तथा साधारण व्यक्ति के विषय में ऐसा नहीं आता कि उसने अपने लिए दो या तीन नाम रखे हों। लेकिन कुछ देशों में ऐसा ही होता है, इसलिए अरब के लोगों को यह समझना कठिन होता है कि क्या ये तीन नाम एक व्यक्ति के हैं? या उसका, उसके पिता तथा उसके दादा के नाम हैं। सहीह हदीस में आया है कि नबी (ﷺ) ने फ़रमाया–

"मेरे पाँच नाम हैं। मैं मुहम्मद हूँ, मैं अहमद हूँ, मैं माही हूँ जिसके द्वारा अल्लाह कुफ़्र को मिटाता है, और मैं हाशिर हूँ जिसके क़दमों पर लोग क़ियामत में उठेंगे, और मैं आक़िब हूँ (अर्थात् जिसके बाद कोई नबी नहीं आएगा)।" (बुख़ारी, 3532 तथा मुस्लिम, 2354)

आप (ﷺ) के ये शुभ नाम, आप (ﷺ) की विशेषताएँ बताने के लिए हैं। इसी लिए एक दूसरी सहीह हदीस में आता है–

"मैं मुहम्मद हूँ, मैं अहमद हूँ, मैं मुक़फ़्फ़ी हूँ, मैं नबीयुत्तौबा हूँ, मैं नबीयुल-मलाहिम हूँ।" (सहीह मुस्लिम, 2355)

इसलिए कुछ विद्वानों ने आप (ﷺ) के बीस से भी अधिक नाम बताए हैं। परन्तु आप (ﷺ) का वास्तविक नाम केवल एक ही था मुहम्मद-बिन-अब्दुल्लाह। इसी प्रकार यह भी उचित नहीं कि कोई कन्या विवाह के बाद अपने नाम के साथ अपने पति का नाम लगा ले। जैसे ज़ैनब से ज़ैनब फ़रीद बन जाए, क्योंकि फ़रीद उसके पति का नाम है। ऐसा करना क़ुरआन की उपर्युक्त आयत के विरुद्ध है जिसमें कहा गया है कि –

«उनके पिता के नामों से पुकारो।» (सूरा–33, अल-अहज़ाब, आयत–5)

इस्लाम ने नारी-जाति के मान-सम्मान और प्रतिष्ठा को पूर्ण रूप से स्वीकार किया है। इसलिए चाहे कुँवारी हो या विवाहिता, दोनों दशाओं में उसको नाम के साथ ही पुकारा जाएगा। कभी उसको ज़ैनब अब्दुल्लाह कहेंगे अर्थात् अब्दुल्लाह की पुत्री ज़ैनब और कभी फ़रीद की पत्नी ज़ैनब कहेंगे। यहाँ 'पत्नी' शब्द लगाना अनिवार्य है, ताकि वह फ़रीद की पुत्री न बन जाए। यह आधुनिक परम्परा और प्रचलन के विरुद्ध है, जिसमें स्त्री की कोई प्रतिष्ठा ही नहीं है। जब वह कुँवारी होती है तो उसको 'मिस जॉर्ज' कहते हैं। और जब ब्याही जाती है तो 'मिसेज़ लॉर्ड' कहने लगते हैं। प्रश्न यह है कि उसका अपना व्यक्तित्व कहाँ गया? क्या यह महिला अधिकार और मान-सम्मान के विरुद्ध नहीं है?

एक हदीस में तो यह भी आता है–

"क़ियामत के दिन तुमको तुम्हारे बाप के नामों के साथ पुकारा जाएगा, इसलिए अच्छे नाम ग्रहण करो।" (अबू-दाऊद, 4948; मुस्नद अहमद, 5:194)

2. नामों के विषय में इस्लाम की दूसरी शिक्षा यह है कि बच्चों का नाम अच्छा रखा जाए।

एक सहीह हदीस में आता है–

"अल्लाह को अब्दुल्लाह और अब्दुर्रहमान नाम अधिक पसन्द हैं।" (सहीह मुस्लिम, 2132)

अर्थात् वह नाम जिसमें अल्लाह का बंदा होने का विचार आए, जैसे– अब्दुल-करीम (करीम का बन्दा), अब्दुर्रहीम (रहीम का बन्दा), अब्दुल- अज़ीम (अज़ीम का बन्दा), अब्दुल- जब्बार (जब्बार का बन्दा), इत्यादि। क्योंकि ये सब अल्लाह के नाम हैं। इसके बाद रुचिकर नामों में रसूलों के नाम हैं जैसे– मुहम्मद, अहमद, आदम, नूह, इबराहीम, इस्माईल, इसहाक़, याक़ूब, यूसुफ़, सुलैमान, मूसा, हारून, ईसा इत्यादि।

इसके बाद रुचिकर नामों में सहाबा के नाम हैं। जैसे– अबू बक्र, उमर, उस्मान, अली, ज़ुबैर, उबैदा, हसन, हुसैन इत्यादि।

इसके बाद रुचिकर नामों में वे नाम हैं जिनका अर्थ सुन्दर निकलता हो, जैसे– आदिल, फ़ैसल, फ़हद, शफ़ीक़, सहल, सुहैल, सईद, इत्यादि।

इसी प्रकार रुचिकर नामों में जिबरील, मीकाईल, इसराफ़ील इत्यादि फ़रिश्तों के नाम हैं। चूँकि वे भी अल्लाह के पैदा किए हुए हैं। इसलिए उनके नाम रखना अनुचित नहीं है, परन्तु कुछ विद्वानों ने पसन्द नहीं किया है।

"अल्लाह के निकट सबसे अप्रिय नाम यह है कि कोई अपना नाम मलिकुल-मुलूक (अर्थात् शहनशाह) रखे।" (सहीह बुख़ारी 6205 तथा सहीह मुस्लिम 2143)

इसी प्रकार ऐसे नामों से भी बचना चाहिए जिनमें स्वयं की प्रशंसा हो, जैसे– बर्रह अर्थात् बहुत अधिक पुण्य कर्म करनेवाली।

सहीह हदीस में आता है कि ज़ैनब का वास्तविक नाम बर्रह था, तो नबी (ﷺ) ने उनका नाम ज़ैनब रख दिया। (बुख़ारी, 6192 तथा मुस्लिम, 2141)

इसी प्रकार ऐसे नाम को भी नबी (ﷺ) ने पसन्द नहीं किया जिसमें अशुभ अर्थ पाया जाता हो।

सहीह हदीस में आया है कि एक व्यक्ति नबी (ﷺ) के पास आया। आप (ﷺ) ने उसका नाम पूछा तो उसने बताया, 'हुज़्न' अर्थात् दुख तथा कठिनाई। आप (ﷺ) ने कहा, "तुम 'हुज़्न' नहीं बल्कि

'सहल' हो।'' उसने कहा, ''जिस नाम को मेरे वंशवालों ने रखा है, मैं उसको बदलना नहीं चाहता।'' आप (ﷺ) ख़ामोश हो गए।

इसी प्रकार अशुभ नामों में फ़िरऔन, क़ारून, हामान इत्यादि हैं, जिनपर अल्लाह का अज़ाब आ चुका है।

इसी प्रकार अशुभ नामों में यह भी है कि कोई व्यक्ति अल्लाह को छोड़कर किसी और के साथ अपनी बंदगी जोड़े। जैसे– अब्दुन्नबी, अब्दुर्रसूल इत्यादि। अगर अब्द का अर्थ ग़ुलाम है तो ग़ुलाम मुहम्मद, ग़ुलाम रसूल, इत्यादि नाम रखना भी ठीक नहीं।

बच्चों के नाम रखने के विषय में ये बातें पुत्र और पुत्रियाँ दोनों के लिए हैं। अर्थात् पुत्रियों के नाम रखते समय भी इन बातों का ध्यान रखना चाहिए कि वे सुन्दर भी हों और उनसे अल्लाह के सिवा किसी और की बंदगी का अर्थ न आने पाए।

नून

देखें : अलिफ़-लाम-मीम।

प
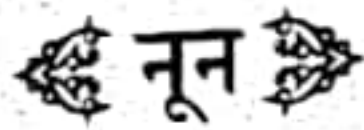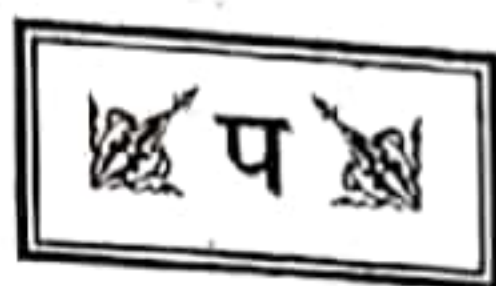
पतिंगा

पतिंगा जो दीप के पास भ्रमण करता रहता है। इसका वर्णन क़ुरआन में एक बार आया है जिसमें क़ियामत के दिन मनुष्यों की उपमा उससे दी गई है, जब वे पतिंगों की भाँति इधर-उधर भागे फिरेंगे और कहीं उनको ठिकाना नहीं मिलेगा–

«जिस दिन मनुष्य बिखरे हुए पतिंगों की भाँति हो जाएँगे।» (सूरा–101, अल-क़ारिआ, आयत–4)

परोक्ष

यूँ तो पूरा ब्रहमाण्ड ही ग़ैब है और अगर उसके विषय में हमें ज्ञान दिया गया है तो वह बहुत ही थोड़ा है। परन्तु 5 वस्तुएं ऐसी हैं जिनका ज्ञान केवल अल्लाह ही के पास है–

«निस्संदेह उस घड़ी का ज्ञान अल्लाह ही के पास है। वही मेंह बरसाता है और जानता है जो कुछ गर्भाशयों में होता है। कोई व्यक्ति नहीं जानता कि कल वह क्या कमाएगा और कोई व्यक्ति नहीं जानता है कि किस भूभाग में उसकी मृत्यु होगी। निस्संदेह अल्लाह जाननेवाला, ख़बर रखनेवाला है।» (सूरा-31, लुक़मान, आयत 34)

सहीह बुख़ारी में 5 ग़ैब की कुंजियाँ बताई गई हैं जिनको अल्लाह के अतिरिक्त कोई नहीं जानता और ये वही पाँच बातें हैं। (देखिए सहीह बुख़ारी-1039)

स्त्री गर्भ में जो कुछ है वही जानता है अर्थात जो बच्चा माँ के गर्भ में पल रहा है वह भविष्य में क्या बनेगा उसका ज्ञान केवल अल्लाह के पास है। इसलिए हमें चिन्तित नहीं होना चाहिए और न यह समझना चाहिए कि यह हम पर बोझ बनेगा बल्कि वह तो संसार में अपनी क़िस्मत लेकर आएगा। अत: उसे माँ के गर्भ में मारने की चेष्टा करना मना है

प्याज़

रेगिस्तान सीना में बनी-इसराईल के लिए अल्लाह मन्न और सलवा (बटेर) उतारता था, परन्तु वे इनको खाते-खाते उकता गए। इसलिए उन्होंने मूसा से कहा –

«ऐ मूसा हम एक ही प्रकार के भोजन पर सन्तोष नहीं कर सकते, इसलिए अपने रब से प्रार्थना करो कि वह हमारे लिए धरती से साग, सब्ज़ी, लहसुन, मसूर की दाल और

प्याज़ पैदा करे। उसने कहा, "उत्तम चीज़ों को छोड़कर तुम तुच्छ चीज़ें माँगते हो।"»
(सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-61)

बाइबल में है कि –

इसराईली रोने लगे और कहने लगे, "हमें मांस खाने को कौन देगा, हमें वे मछलियाँ याद हैं जो हम मिस्र में मुफ़्त खाया करते थे। वे खीरे, ख़रबूज़े, गन्दने, प्याज़ और लहसुन भी हमें याद हैं, परन्तु अब हमारा जी घबरा गया है। यहाँ इस मन्न को छोड़कर और कुछ दीख नहीं पड़ता।" (गिनती, 11:4-5)

मूसा ने सब घराने के आदमियों को अपने-अपने डेरे के द्वार पर रोते सुना। (गिनती, 11:10)

प्याज़, लहसुन और गन्दने (जो प्याज़ की पत्तियों की तरह एक सब्ज़ी है और जो अरब देश में कच्ची खाई जाती है) आदि चीज़ों को खाना है तो हलाल लेकिन इनमें दुर्गन्ध के कारण इन्हें खाकर मस्जिद में जाने से मना किया गया है।

एक सहीह हदीस में आया है –

"जिसने लहसुन और प्याज़ खाया हो वह हमारी मस्जिद के निकट भी न आए, बल्कि अपने घर ही में बैठा रहे।"

एक बार आपके सामने कुछ भाजियाँ पेश की गईं। आपने उनमें दुर्गन्ध पाई तो कहा –

"तुम लोग खाओ, मुझे इसमें दुर्गन्ध आती है। मैं उससे (अर्थात अल्लाह) से वार्तालाप करता हूँ जिससे तुम नहीं करते। (सहीह बुख़ारी 855, सहीह मुस्लिम 561, 564)

यह देखकर कुछ सहाबा ने यह कहना शुरू कर दिया कि अब ये चीज़ें हराम हो गईं। लेकिन नबी (ﷺ) को इसकी ख़बर हुई तो आपने फ़रमाया –

"ऐ लोगो, मैं उस चीज़ को कैसे हराम कर सकता हूँ जिसको अल्लाह ने हलाल किया हो! लेकिन मुझे दुर्गन्ध से नफ़रत है।" (सहीह मुस्लिम, 565)

पकाकर खाने में कोई दोष नहीं। जैसा कि एक बार द्वितीय ख़लीफ़ा उमर-बिन-ख़त्ताब ने जुमे के ख़ुतबे में कहा –

"नबी (ﷺ) के जीवन में कोई प्याज़ या लहसुन खाकर आता तो आप उसको मस्जिद से बक़ीअ तक निकाल देते। लेकिन अगर कोई इसको खाना ही चाहता है तो इतना पकाए कि इसकी दुर्गन्ध ख़त्म हो जाए।" (सहीह बुख़ारी, 567)

पवित्रता

पवित्रता को अरबी में तहारत कहते हैं, और चूँकि अल्लाह पवित्र लोगों से प्रेम करता है इसलिए इस्लाम में इसकी बड़ी महत्त्वता है। एक सहीह हदीस में आता है:

"पवित्रता आधा ईमान है।" (सहीह मस्लिम 233)

यह पवित्रता शरीर की भी हो सकती है और हृदय की भी।

शरीर की पवित्रता :

क़ुरआन और सहीह हदीसों में सुबह से शाम तक, और फिर पूरे जीवन में पवित्र रहने के नियम और तरीक़े बताए गए हैं –

1. सुबह उठते ही पहले हाथों को धोना चाहिए, क्योंकि रात को सोते हुए हाथ कहाँ-कहाँ गया होगा? सोनेवाले को कोई पता नहीं। (बुख़ारी 162 तथा मुस्लिम 278)
2. पेशाब करने के बाद तीन बार लिंग को झटकना चाहिए, ताकि पेशाब की कोई बूंद अटक गई हो तो निकल जाए। और फिर लिंग को पानी से धोना चाहिए।
3. शौच करते हुए क़िबले की ओर मुख नहीं करना चाहिए और पवित्रता प्राप्त करने के लिए दायें हाथ का प्रयोग नहीं करना चाहिए। और यह कि मिट्टी के तीन ढेलों या तीन पत्थरों से पवित्रता प्राप्त करनी चाहिए, जिनमें न गोबर हो न हड्डी। (मुस्लिम 262) उसके पश्चात् पानी का प्रयोग और उत्तम है।
4. अगर किसी ने अपनी पत्नी से संभोग किया हो तो उसको स्नान करना अनिवार्य है, चाहे वीर्यपात हुआ हो या न हुआ हो। (बुख़ारी 291, मुस्लिम 348)
5. स्वप्नदोष (एहतलाम) चाहे पुरुष को हो या नारी को, दोनों पर स्नान अनिवार्य है। (देखें बुख़ारी 13., मुस्लिम 31.)
6. अगर स्त्री ने अपने सर के बालों को गूथ रखा है तो स्नान करते हुए उनको खोलना आवश्यक नहीं है। (मुस्लिम 33)
7. परन्तु अगर मासिक धर्म के पश्चात् पवित्र होने के लिए स्नान करे तो बालों की लटों को खोलना आवश्यक है। (बुख़ारी 317, मुस्लिम 1211)
8. स्नान करते हुए किसी आड़ में हो जाना चाहिए। (बुख़ारी 28, मुस्लिम 336)
9. उत्तम है कि स्नान करते समय नग्न न हो, क्योंकि अल्लाह से भी तो लज्जा आनी चाहिए।

10. स्त्रियों को जनरल शौचालयों में नहीं जाना जाहिए। (मुस्नद अहमद 28041)
11. पेशाब की बूँदें कपड़े पर लग जाएँ, इससे बचना चाहिए। (बुख़ारी 218, तथा मुस्लिम 292)
12. मुँह की सफ़ाई के लिए मिस्वाक (दातुन) करनी चाहिए। (बुख़ारी 887, मुस्लिम 252)
13. हो सके तो सदैव वुज़ू की दशा में रहें, क्योंकि इस दशा में मोमिन ही रह सकता है। (मुस्नद अहमद 5:282)
14. खत्ना कराना चाहिए, शर्मगाह तथा बग़ल के बाल साफ़ रखने चाहिए, मूँछ कटवाना चाहिए, नाख़ुन तरशवाना चाहिए। क्योंकि ये सब काम मनुष्य की प्रकृति में सम्मिलित हैं। (सहीह बुख़ारी 5889, तथा सहीह मुस्लिम 257)
15. शौचालय में प्रवेश करते हुए यह दुआ पढ़नी चाहिए। (ऐ अल्लाह, मैं शैतान औरतों और शैतान मर्दों से तेरी शरण माँगता हूँ। (अबू-दाऊद 6, इब्ने-माजा 296)
16. मासिक-धर्म वाली पत्नी से संभोग करना हराम है जब तक कि वह पवित्र न हो जाए। (सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-222)
17. पत्नी के साथ पीछे से संभोग करना हराम है, परन्तु पीछे से आगे किया जा सकता है।
18. बालकों के साथ मैथुन करना हराम है। ऐसा करनेवालों के लिए इस्लाम में कठोर दण्ड है। इसी के कारण तो अल्लाह ने लूत (عليه السلام) की जाति को नष्ट कर दिया था। (सूरा-27, अन्-नम्ल, आयत 57,58)
19. पेशाब बैठकर करना चाहिए ताकि पेशाब की छींटें कपड़ों पर न आएं, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर खड़े होकर भी पेशाब किया जा सकता है। (बुख़ारी 224, मुस्लिम 273)
20. ठहरे हुए पानी में पेशाब नहीं करना चाहिए। (बुख़ारी 289, मुस्लिम 272)
21. दो स्थानों की लानतों से बचना चाहिए– एक यह कि लोगों के रास्तों में शौच किया जाए, दूसरे उन सायों में जहाँ लोग विश्राम करते हों। (मुस्लिम 289)
22. कपड़े पर वीर्य लग जाए तो धोना चाहिए, और सूख जाए तो खुरच देना भी ठीक है। (मुस्लिम 29)
23. अगर किसी ने ग़लती से मस्जिद में पेशाब कर दिया तो पानी से साफ़ कर देना चाहिए। (बुख़ारी 221, मुस्लिम 284)
24. पुरुषों को पुरुषों की शर्मगाह नहीं देखनी चाहिए, इसी प्रकार स्त्रियों को स्त्रियों की शर्मगाह नहीं देखनी चाहिए, एक लिहाफ़ में दो पुरुष न सोएं, इसी प्रकार एक लिहाफ़ में दो स्त्रियाँ भी न सोएं।
25. अपने कपड़ों को सदैव साफ़-सुथरा रखनचाहिए। (सूरा-74, अल-मुद्दस्सिर, आयत-4)

26. क़ुरआन को नापाकी की दशा में नहीं पढ़ना चाहिए। (सूरा-56, अल-वाक़िआ, आयत-79)

कुछ विशेष अवसरों पर स्नान अवश्य करना चाहिए जैसे –

1. प्रति सप्ताह जुमे को स्नान करना चाहिए और उत्तम सुगन्ध प्रयोग करनी चाहिए।
2. ईदुल-फ़ित्र तथा ईदुल-अज़हा (बक़रीद) को स्नान करना चाहिए।
3. हज तथा उमरे का एहराम पहनते समय स्नान करना चाहिए।
4. अरफ़ात से वापस आने के बाद जब जमरात को कंकरी मार ले और क़ुरबानी कर ले तो बाल मुंडाए या कटवाए और स्नान करे।

इस प्रकार एक मुसलमान अपने आप को पवित्र रखकर पूर्ण जीवन व्यतीत करता है और सुबह से शाम तक पाँच बार नमाज़ पढ़ता है। जिसका उदाहरण एक सहीह हदीस में इस प्रकार आया है कि नबी (ﷺ) ने एक बार सहाबा (ﷺ) से पूछा कि यदि एक व्यक्ति पाँच बार बहती हुई नदी में स्नान करे तो क्या उसके शरीर पर मैल बाक़ी रहेगा? सहाबा ने कहा, नहीं। तो नबी (ﷺ) ने फ़रमाया–

"पाँच नमाज़ों का उदाहरण भी इसी प्रकार है, इनके द्वारा अल्लाह पापों को मिटा देता है।"
(सहीह बुख़ारी 528 तथा सहीह मुस्लिम 667)

❁ मन की पवित्रता

मन की पवित्रता यह है कि उसमें तौहीद रच-बस जाए और शिर्क से इस प्रकार घृणा होने लगे जैसे अपवित्र चीज़ से घृणा होती है। क्योंकि शिर्क बहुत बड़ा अत्याचार है। (सूरा-31, लुक़मान, आयत-13)

जो अपने हृदय में अल्लाह के अतिरिक्त किसी और को बसा लेता है वह अपवित्र हो जाता है।

अल्लाह ने इबराहीम (عليه السلام) को ऐसे अपवित्र लोगों से अपने घर को पाक-साफ़ रखने का आदेश दिया –

«याद करो जब हमने इबराहीम के लिए इस घर काबा को ठिकाना बनाया, इस आदेश के साथ कि मेरे साथ किसी को शरीक न करना और मेरे घर को तवाफ़ (परिक्रमा) करनेवालों और खड़े होने और झुकने और सजदा करनेवालों के लिए पाक-साफ़ रखना।» (सूरा-22, अल-हज, आयत-26)

अर्थात् उन लोगों से मेरा घर पाक-साफ़ रखना जो मेरे अतिरिक्त किसी और पर ईमान लाते हैं, और मेरे साथ उसकी भी बन्दगी करते हैं। ऐसे लोग अपवित्र हैं। और उनकी यह अपवित्रता उनके हृदय की अपवित्रता है। यही कारण था कि जब मक्का विजय हो गया तो नबी (ﷺ) ने काबे में रखे तमाम बुतों को निकाल दिया था और अल्लाह की ओर से यह एलान हो गया –

«ऐ ईमानवालो मुशरिक तो अपवित्र हैं, तो इस वर्ष के पश्चात् ये मस्जिदे-हराम के पास न आएँ।» (सूरा-9,अत-तौबा, आयत-28)

मन की पवित्रता यह भी है कि जो भी पुण्य कर्म किया जाए वह केवल अल्लाह के लिए हो। (देखें बुख़ारी 3465 तथा मुस्लिम 2743)

अगर किसी ने पुण्य कर्म दिखावे के लिए किया तो वह अल्लाह के पास स्वीकार नहीं होगा। बल्कि ऐसा व्यक्ति जहन्नम में जाएगा। (देखें सहीह मुस्लिम 1905)

इस्लाम ने मन की पवित्रता को शरीर की पवित्रता से अधिक महत्त्व दिया है। क्योंकि कर्मों का स्वीकार होना, या न होना मन की शुद्धता पर ही निर्भर करता है।

«जिस दिन न धन काम आएगा न औलाद, सिवाय इसके कि कोई भला-चंगा दिल लिए हुए अल्लाह के पास आया हो।» (सूरा-26, अश-शुअरा, आयतें- 88,89)

अर्थात वह हृदय जो शिर्क, कुफ़्र , मायामोह, बिद्अत, पाखंड, घमंड इत्यादि से मुक्त हो, और केवल अल्लाह के ज़िक्र से संतुष्ट हो।

दिलों के शिर्क के दो द्वार थे, उनको एक ही आयत में सदैव के लिए बन्द कर दिया गया।

«ऐ रब! हम केवल तेरी ही बन्दगी करते हैं। और तुझी से सहायता माँगते हैं।» (सूरा-1, अल-फ़ातिहा, आयत-4)

प्रति हिंसा

देखें : क़िसास।

फ
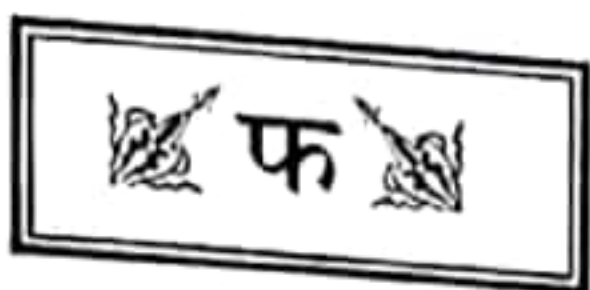
फ़ुरक़ान

फ़ुरक़ान का अर्थ है सत्य और असत्य को अलग-अलग करनेवाला। क़ुरआन के विभिन्न नामों में से एक नाम फ़ुरक़ान भी है। जैसा कि स्वयं क़ुरआन ही में आया है–

«**बड़ी बरकतवाला है वह (अल्लाह) जिसने अपने बन्दे (मुहम्मद) पर फ़ुरक़ान उतारा, ताकि वह सारे संसार के लिए सचेत करनेवाला बन जाए।**» (सूरा–25, अल-फ़ुरक़ान, आयत–1)

क़ुरआन की पच्चीसवीं सूरा का नाम भी 'फ़ुरक़ान' है। जो मक्का में उतरी और उसमें कुल 77 आयतें हैं। क़ुरआन के विभिन्न गुणों में से एक गुण फ़ुरक़ान भी है–

«**रमज़ान का महीना वह है, जिसमें क़ुरआन उतारा गया, जो लोगों के लिए मार्गदर्शन है, तथा प्रत्यक्ष प्रमाण है और सत्य-असत्य को स्पष्ट करता है।**» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–185)

इसी अर्थ में क़ुरआन की यह आयत भी है–

«**याद करो जब हमने मूसा को किताब और फ़ुरक़ान दिया, ताकि तुम सत्य-मार्ग ग्रहण कर सको।**» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–53)

यहाँ फ़ुरक़ान का अर्थ है वह कसौटी जिसके द्वारा मनुष्य जीवन के प्रत्येक मार्ग पर यह जान सके कि कौन-सा मार्ग सत्य है और कौन-सा असत्य, किसको ग्रहण करना चाहिए और किससे बचना चाहिए? कौन-सा मार्ग अल्लाह की ओर ले जाता है और कौन-सा मार्ग शैतान की ओर? अर्थात् यह वह समझ-बूझ है जो अल्लाह अपने विशेष बन्दों (भक्तों) को प्रदान करता है। इसी अर्थ में क़ुरआन की यह आयत भी है –

«**हमने मूसा तथा हारून को सदाचारियों के लिए कसौटी (फ़ुरक़ान) ज्योति और अनुस्मारक प्रदान किया।**» (सूरा–21, अल-अंबिया, आयत–48)

फ़ुरक़ान का एक और अर्थ, जो क़ुरआन में आया है, वह है, 'फ़ैसले का दिन' जैसा कि सूरा-8, अल-अनफ़ाल में बद्र के दिन को फ़ैसले का दिन कहा गया है, क्योंकि इस दिन दो सेनाएं आपस में टकरा गई थीं। बस अल्लाह ने सत्य-मार्ग पर चलनेवालों को विजयी किया। (देखिए : सूरा–8, अल-अनफ़ाल, आयत–41)

फ़रिश्ते

क़ुरआन में इनको 'मलाइका' कहा गया है, जो 'मलक' का बहुवचन है। फ़रिश्तों के वुजूद पर विश्वास करना इस्लाम के मुख्य अक़ीदों का एक अनिवार्य अंग है, जैसा कि स्वयं क़ुरआन में आया है–

«ये सब अल्लाह पर, उसके फ़रिश्तों पर, उसकी किताबों पर और उसके रसूलों पर ईमान लाए।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–285)

फ़रिश्तों के विषय में एक से अधिक स्थानों पर क़ुरआन तथा सहीह हदीसों में वर्णन आया है, जिनसे ज्ञात होता है कि यह एक ऐसा प्राणी वर्ग है जिसको अल्लाह ने प्रकाश से पैदा किया और इस प्राणी वर्ग के सभी सदस्यों को विभिन्न कामों पर लगा दिया है। जैसे हर व्यक्ति के साथ दो फ़रिश्ते इस तरह लगे हुए हैं कि वे हमारे सारे कर्मों को लिख रहे हैं–

«जब वह कोई काम करता है तो दो लिखनेवाले जो दाएँ और बाएँ बैठे हुए हैं, लिख लेते हैं।» (सूरा–50, क़ाफ़, आयत–17)

इसी प्रकार कुछ ऐसे फ़रिश्ते हैं जो मनुष्यों के प्राण निकालने पर नियुक्त हैं, कुछ क़ब्र में प्रश्न करने पर नियुक्त हैं। और इस ब्रहमांड में जो कुछ हो रहा है, इसको करनेवाले भी फ़रिश्ते ही हैं, जिनको अल्लाह ने नियुक्त कर रखा है–

«वे अल्लाह की अवज्ञा नहीं करते, जो हुक्म भी अल्लाह उन्हें देता है। वे वही करते हैं जिसका उनको हुक्म दिया जाता है।» (क़ुरआन, सूरा–66, अत-तहरीम, आयत–6)

फ़रिश्तों पर विश्वास करना अनिवार्य है परन्तु उनको देवी-देवता मानने या उनकी उपासना करने की कोई आवश्यकता नहीं। क्योंकि फ़रिश्ते हमारे जीवन में प्रबन्ध-सम्बन्धी दख़ल रखते तो हैं परन्तु करते वही कुछ हैं जो उनको अल्लाह की ओर से आदेश मिलता है। उपास्य तो केवल एक अल्लाह ही है, जो फ़रिश्तों द्वारा इस ब्रहमांड को चला रहा है। यही वे फ़रिश्ते हैं जिनको ग़लती से मुशरिक 'शुफ़आ' (सिफ़ारिश करनेवाले) बना बैठे और फिर अल्लाह को छोड़कर इनकी उपासना करने लगे। अपनी विचार-धारा के अनुसार इनकी मूर्तियाँ बना लीं और उनको सजदा करने लगे। इसी प्रकार दूसरी जातियों ने भी फ़रिश्तों के साथ वही किया जो अरब के मुशरिक करते थे। फ़रिश्तों का वर्णन क़ुरआन में विभिन्न नामों से किया गया है। जैसे –

1. रसूल : जिसका अर्थ है संदेशवाहक :

«प्रशंसा अल्लाह ही के लिए है जो आकाशों और धरती का स्रष्टा है दो-दो, तीन-तीन और चार-चार फ़रिश्तों को बाज़ुओंवाला सन्देशवाहक बनाकर नियुक्त करता है।» (सूरा–35, अल-फ़ातिर, आयत–1)

2. सफ़रा :

यह बहुवचन है, जिसका एक वचन साफ़िर है जो लिपिक तथा पढ़नेवाले के लिए प्रयुक्त होता है। (सूरा–80, अ-ब-स, आयत, 15) इसी से सफ़ीर बना है जो फ़रिश्ते के लिए प्रयुक्त हुआ है। यह फ़रिश्ता अल्लाह और उसकी सृष्टि के बीच में भलाई फैलाने का काम करता है। एक सहीह हदीस में आया है –

"जो कोई क़ुरआन पढ़ता है, और वह उसका हाफ़िज़ भी है वह 'सफ़रह किराम ब-र-रह' का-सा होगा।" (सहीह बुख़ारी : 4937 तथा सहीह मुस्लिम : 798)

अर्थात् ऐसे फ़रिश्तों जैसा होगा जो आदरणीय, प्रतिष्ठित और निष्ठावान् हैं।

अधिकतर विद्वानों का विचार है कि क़ुरआन में 'सफ़रह किराम ब-र-रह' से मुराद फ़रिश्ते ही हैं।

3. जुनूद :

यह जुन्दी शब्द का बहुवचन है, जिसका अर्थ है सेना। फ़रिश्तों के लिए क़ुरआन में एक से अधिक स्थानों पर जूनूद शब्द का प्रयोग हुआ है। जैसे क़ुरआन में आया है–

«ऐ लोगो जो ईमान लाए, अल्लाह के उपकार को याद करो, जब तुमपर सेनाएँ चढ़ दौड़ीं तो हमने उनपर आँधी भेजी और ऐसी सेनाएँ जिनको तुमने देखा नहीं।» (सूरा–33, अल-अहज़ाब, आयत–9)

यहाँ अनदेखी सेना से अभिप्रेत फ़रिश्ते हैं, जो मुसलमानों की सहायता करने के लिए ख़न्दक़ युद्ध के अवसर पर आकाश से आए थे, जिनका वर्णन हदीसों में इस प्रकार आता है कि विधर्मी अपने घोड़ों से गिर रहे थे, परन्तु गिराने वाला दिखाई नहीं देता था। इसी प्रकार सूरा–9, अत-तौबा की आयत–26 देखिए जिसमें आया है–

«अन्ततः अल्लाह ने अपने रसूल पर और मोमिनों पर अपनी सकीनत (शान्ति) उतारी और सेनाएँ उतारीं जिन्हें तुम देख नहीं सके।»

4. मलए-आला :

फ़रिश्तों के लिए 'मलए-आला' का प्रयोग हुआ है। जिसका अर्थ है फ़रिश्तों का सबसे ऊँचा और उत्तम गिरोह –

«ये (शैतान) मलए-आला की ओर कान नहीं लगा सकते, क्योंकि हर ओर से उनपर (अंगारे) फेंके जाते हैं।» (सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयत–8)

«मुझे मलए-आला का कोई ज्ञान नहीं था, जब वे झगड़ रहे थे।» (सूरा–38, सॉद, आयत–69)

फ़रिश्तों के लिए इनके अतिरिक्त कुछ और भी शब्द प्रयोग किए गए हैं। परन्तु प्रसिद्ध यही हैं। इनमें कोई मतभेद नहीं है।

फ़िरऔन

फ़िरऔन का शाब्दिक अर्थ है 'सूरज का पुत्र'। चूँकि मिस्र के लोग सूर्य की पूजा करते थे, इसलिए वे अपने राजा को 'फ़िरऔन' की उपाधि देते थे। उनका विचार था कि उनका राजा सूर्य का अवतार है, इसी लिए वे उसकी पूजा करते थे। इससे मालूम होता है कि फ़िरऔन किसी राजा का नाम नहीं है, बल्कि यह मिस्र के राजाओं की उपाधि है, जैसे रोम के राजा को 'क़ैसर', ईरान के राजा को 'किसरा', तुर्की के राजा को 'ख़ाक़ान' कहा जाता था इसी प्रकार मिस्र के राजा को फ़िरऔन कहते थे। बाइबल में जिन फ़िरऔनों का वर्णन नामों के साथ आया है, वे पाँच हैं। ये सब मूसा (عليه السلام) के काल के बाद के हैं। उन पाँचों फ़िरऔनों के नाम ये हैं–

1. शीशक, 2. शो, 3. नको, 4. हफ़रा और 5. तिर्हाक। इनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

1. शीशक : यह सुलैमान (عليه السلام) के समय मिस्र का राजा था। जब सुलैमान (عليه السلام) ने यारोबाम को मारना चाहा तो वह शीशक के पास भाग गया और सुलैमान (عليه السلام) की मृत्यु तक वहीं रहा। (देखिए: 1 राजा 11:40)

और जब यारोबाम राजा बना तो यही शीशक था, जिसने इसराईली राज्य पर आक्रमण कर दिया और सुलैमान (عليه السلام) के राज्य में जो कुछ भी था लूट कर ले गया। (देखिए: 1 राजा, 14:25)

2. शो : इसराईल के राजा होशे ने मिस्र के राजा फ़िरऔन शो से अशूर के राजा शल्मनेसेर के विरुद्ध सहायता माँगी, परन्तु शो उसकी कोई सहायता न कर सका, यहाँ तक कि राजा शल्मनेसेर विजयी हुआ और तीन वर्ष तक इसराईली राज्य उसके हाथ में रहा। (देखिए: 2 राजा, 17:3-4)

3. तिर्हाक : यह हब्शा का राजा था। लगभग 688 ईसा पूर्व मिस्र का राजा बन गया। (देखिए: 2 राजा, 19:9 तथा यशायाह, 37:9)

4. नको : इसने मिस्र पर (609-583) ईसा पूर्व तक राज्य किया। यह मिस्र का पहला शासक है जिसने लाल सागर को सफ़ेद सागर से मिलाने की कोशिश की। परन्तु लाखों लोगों को मौत के घाट उतारे जाने के बाद उसने अपना विचार बदल लिया। ढाई हज़ार वर्ष के बाद मिस्रियों ने एक नहर की खुदाई की और उसको स्वेज़ नहर का नाम दिया।

फ़िरऔन नको के विषय में विस्तृत विवरण के लिए देखिए 2 राजा, 23:29।

5. हफ़रा : जो राजा नको का उत्तराधिकारी बना।

ये वे पाँच फ़िरऔन हैं जिनके नाम बाइबल में आए हैं। रहे वे फ़िरऔन, जिनका वर्णन बाइबल में तो आता है, परन्तु उनके नामों का पता नहीं चलता वे हैं: इबराहीम, यूसुफ़ और मूसा (عليه السلام) के समय के फ़िरऔन। इसलिए इतिहासकारों में इनके नामों के विषय में मतभेद पाया जाता है। क़ुरआन में

मूसा (अलैहि०) के समय के फ़िरऔन का वर्णन चौहत्तर बार आया है। विद्वानों का विचार है कि जिस फ़िरऔन के दरबार में आप पले-बढ़े उसका नाम 'सिमत' था। कोई उसको 'पथामीन' बताता है तो कोई 'रामसीस तृतीय' कहता है। एक दूसरा विचार है कि जिस फ़िरऔन के दरबार में आप पले-बढ़े वह 'रामसीस द्वितीय' था, जिसने (1527-1407) ईसा पूर्व से शासन का आरंभ किया और जिसके दरबार में आप (अलैहि०) अल्लाह का संदेश लेकर गए वह मिन्फ़ताह था और फिर इसी फ़िरऔन ने आप (अलैहि०) का और इसराईलियों का पीछा किया और अन्त में दरिया में डूब मरा।

क़ुरआन चूँकि अल्लाह का संदेश है, जिसका उद्देश्य सम्पूर्ण मानव-जाति का मार्गदर्शन है, इसलिए उसने इस प्रकार की अनावश्यक बातों का वर्णन नहीं किया। इसी लिए यहाँ उसका बहुत संक्षेप में वर्णन किया गया है। वास्तव में हमें यह देखना है कि क़ुरआन ने फ़िरऔन को किस रूप में प्रस्तुत किया है, हम इससे क्या शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

इसलिए हमें यह देखना चाहिए कि फ़िरऔन ने मूसा (अलैहि०) और बनी- इसराईल के साथ कैसा व्यवहार किया और फिर उसका क्या अंजाम हुआ।

1. फ़िरऔन बनी-इसराईल के बेटों को मार डालता था और उनकी स्त्रियों को जीवित रखता था–

«याद करो जब हमने तुम्हें फ़िरऔन और उसकी जाति से छुटकारा दिलाया। वे तुम लोगों को अत्यन्त बुरी यातना देते थे, तुम्हारे बेटों को मार डालते थे और तुम्हारी स्त्रियों को जीवित रहने देते थे, और तुम्हारे रब की ओर से बड़ी परीक्षा थी।» (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–49)

2. फ़िरऔन और उसकी जाति ने अल्लाह की भेजी हुई खुली निशानियों को ठुकरा दिया–

«फिर उनके बाद हमने मूसा को अपनी निशानियों के साथ फ़िरऔन और उसके सरदारों के पास भेजा, परन्तु उन्होंने इन निशानियों के साथ ज़ुल्म किया। तो देखो, इन बिगाड़ पैदा करनेवालों का क्या परिणाम हुआ।» (क़ुरआन, सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–103)

3. फ़िरऔन ने जादूगरों को बुलाकर मूसा (अलैहि०) के संदेश को भ्रष्ट करने का प्रयत्न किया। परन्तु जब मूसा (अलैहि०) ने जादूगरों को पराजित कर दिया, और जादूगर मूसा (अलैहि०) पर ईमान ले आए तो वही फ़िरऔन अत्याचार पर उतर आया, और जादूगरों को धमकी देने लगा कि मैं तुम सबको फाँसी पर लटका दूँगा। इसका वर्णन क़ुरआन में बड़े विस्तार से आया है, जिसको यहाँ बयान किया जा रहा है–

«फ़िरऔन ने कहा, "यदि तू कोई निशानी लेकर आया है तो उसे पेश कर, यदि तू सच्चे लोगों में से है।" तब उसने अपनी लाठी (धरती पर) मारी। क्या देखते हैं कि वह एक

प्रत्यक्ष अजगर था। और उसने अपना हाथ बाहर निकाला तो देखनेवालों ने देखा कि वह चमक रहा है। फ़िरऔन की जाति के सरदार कहने लगे, "निश्चय ही यह बड़ा जानकार जादूगर है। तुम्हें तुम्हारी ज़मीन से निकाल देना चाहता है, तो अब तुम क्या कहते हो?" उन्होंने कहा, "इसे और इसके भाई (हारून) को प्रतीक्षा में रखो और इकट्ठा करनेवालों को नगरों में भेज दो कि वे हर जानकार जादूगर को तेरे पास ले आएँ।" और (ऐसा ही हुआ) जादूगर फ़िरऔन के पास आ गए। उन्होंने कहा, "यदि हम जीत गए तो हमें अवश्य इसका बदला मिलेगा।" कहा, "हाँ, और निश्चय ही तुम क़रीबी लोगों में से हो जाओगे।" उन्होंने कहा, "ऐ मूसा! या तो तुम (अपना अंछर) फेंको या हम फेंकें।" उसने कहा, "तुम ही फेंको।" उन्होंने फेंका तो लोगों की आँखों पर जादू कर दिया और उन्हें डरा दिया, और उन्होंने बहुत बड़ा जादू दिखाया।

हमने मूसा की ओर 'वह्य' की, "अपनी लाठी (धरती पर) डाल दो।" फिर क्या था वह उनके रचे हुए स्वाँग को निगलने लगी। इस तरह सच्चाई साबित हो गई और जो कुछ वे करते थे मिथ्या हो कर रहा। इस तरह वे वहाँ परास्त हुए और उल्टे अपमानित हो गए। और जादूगर सजदे में गिर पड़े। कहने लगे, "हम सारे संसार के रब पर ईमान लाए, जो मूसा और हारून का रब है।" फ़िरऔन ने कहा, "इससे पहले कि मैं तुम्हें इजाज़त देता, तुम उसपर 'ईमान' ले आए। निश्चय ही यह चाल है जो तुम लोग इस नगर में चले हो, ताकि तुम लोगों को यहाँ से निकाल दो, तो अब तुम्हें जल्द ही मालूम हो जाएगा। मैं तुम्हारे हाथ-पाँव विपरीत दिशाओं से कटवा दूँगा। फिर तुम सबको सूली पर चढ़ा दूँगा।" बोले, "हम तो अपने रब की ओर पलटनेवाले ही हैं। तुम हमसे केवल इस लिए वैर रखते हो कि हमारे रब की निशानियाँ जब हमारे पास आ गईं तो हम उनपर ईमान ले आए। हमारे रब! हम पर सब्र के दहाने खोल दे और हमें (इस लोक से) इस दशा में उठा कि हम मुस्लिम (आज्ञाकारी) हों।" और फ़िरऔन की जाति के सरदारों ने कहा, "क्या तू मूसा और उसकी जातिवालों को ऐसे ही छोड़ देगा कि वे धरती में फ़साद फैलाएँ और वह तुझे और तेरे 'इलाहों' (देवताओं) को छोड़ बैठें?" उसने कहा, "हम उनके बेटों को बुरी तरह क़त्ल करेंगे और उनकी स्त्रियों को जीवित रहने देंगे, और हमें उनपर पूर्ण आधिपत्य प्राप्त है।"» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयतें-106-127)

4. फ़िरऔन बहुत बड़ा घमंडी था–

«निश्चय ही फ़िरऔन धरती पर बड़ा घमंडी था और निश्चय ही वह सीमा से बाहर होनेवालों में था।» (क़ुरआन, सूरा–10, यूनुस, आयत–83)

अल्लाह ने मूसा (عليه السلام) को हुक्म दिया कि वे फ़िरऔन के पास जाएँ क्योंकि वह बड़ा विद्रोही बन गया है। (देखिए : सूरा–20, ता-हा, आयत–24)

«निश्चय ही फ़िरऔन धरती पर बड़ा घमंडी बन गया था, और उसने धरती के निवासियों को जत्थों में बाँट दिया था, फिर उनमें से एक जत्थे को कमज़ोर करता, उनके बेटों की हत्या करता, और स्त्रियों को जीवित रहने देता। निश्चय ही वह उपद्रव करनेवालों में से था।» (क़ुरआन, सूरा–28, अल-क़सस, आयत–4)

5. फ़िरऔन ने अपने बारे में ईश्वर होने का दावा किया–

«फ़िरऔन ने कहा : ऐ सरदारो! मैं तो अपने अतिरिक्त किसी और ईश्वर को नहीं जानता।» (क़ुरआन, सूरा–28, अल-क़सस, आयत–38)

«फिर लोगों को इकट्ठा किया, और पुकारकर कहने लगा : मैं तुम्हारा सर्वोच्च रब (पालनहार प्रभु) हूँ।» (सूरा–79, अन-नाज़िआत, आयतें–23,24)

❁ फ़िरऔन का अन्त :

जब इसराईली मिस्र से निकल रहे थे तो फ़िरऔन ने अपनी सेना के साथ उनका पीछा किया और समुद्र के निकट उनको घेर लिया। अल्लाह के हुक्म से मूसा (عليه السلام) ने समुद्र में लाठी मारी और वह दो भागों में बट गया–

«तब हमने मूसा की ओर वह्य् की कि अपनी लाठी समुद्र पर मारो, तो वह फट गया, और उसका प्रत्येक टुकड़ा एक बड़े पहाड़ की भाँति हो गया।» (क़ुरआन, सूरा–26, अश-शुअरा, आयत–63)

इसराईली तो समुद्र के बीच मार्ग बन जाने के कारण पार हो गए, परन्तु जब फ़िरऔन ने अपनी सेना के साथ समुद्र मार्ग में प्रवेश किया तो समुद्र के दोनों भाग आपस में जुड़ गए और उसकी सारी सेना डूब गई। परन्तु अल्लाह ने फ़िरऔन के शव को डूबने से बचा लिया और उसको समुंद्र के बाहर फेंक दिया, ताकि वे लोग जो उसको ईश्वर बना बैठे थे, और जो स्वयं अपने बारे में कहता था कि मैं तो तुम्हारा सर्वश्रेष्ठ रब हूँ, उसका दर्दनाक अंजाम देखें –

«आज हम तेरे (मृत) शरीर को बचा लेंगे, ताकि जो लोग तेरे पीछे रह गए हैं उनके लिए तू एक निशानी (इबरत) बन जाए।» (क़ुरआन, सूरा–10, यूनुस, आयत–92)

कुछ भाष्यकारों ने कहा है कि क़ुरआन की यह आयत उस शव की ओर संकेत करती है, जो आज क़ाहिरा के म्यूज़ियम में रखा है, और जिसके विषय में लोगों का विचार है कि यह वही फ़िरऔन है, जो समुद्र में डूबा और अल्लाह ने उसके शव को बचा लिया। ऐसा कहनेवाले लोग दो प्रकार की ग़लती करते हैं –

﴿ فاليوم ننجيك ببدنك لتكون لمن خلفك آية
وإن كثيرا من الناس عن آياتنا لغافلون ﴾
(يونس ١٠/٩٢)

"फ़िरऔन का शव, जो दरिया में डूब गया था परन्तु अल्लाह ने उसे बाहर फेंक दिया ताकि उसकी पूजा करने वाले अपने देव की इस दुर्दशा को देख सकें।"

एक तो यह कि क़ुरआन से यह सिद्ध नहीं होता कि उसका शव क़ियामत तक बाक़ी रहेगा या कम-से-कम हज़ार वर्ष तक रहेगा, क्योंकि उसके शव को दरिया से बाहर फेंकने का मुख्य कारण केवल उन लोगों को दिखाना था जिन्होंने उसको रब बना रखा था और उसके सामने सजदा करते थे। उनको यह दिखाना था कि देखो तुम्हारा रब आज किस दशा में है? और यह उद्देश्य प्राप्त हो गया।

दूसरी ग़लती यह है कि यह बात अभी तक सिद्ध नहीं हो सकी है कि यह उसी फ़िरऔन का शव है जो मूसा (عليه السلام) के समय में था और समुद्र में डूबा था, बल्कि अब तक लोग इस विषय में किसी अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँच सके हैं और अगर पहुँच भी जाएँ तो कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसलिए आयत में जो 'निशानी' कहा गया है, तो उसका अर्थ यह है कि यह निशानी है उसकी जातिवालों के लिए और शिक्षा है क़ियामत तक आनेवाले सारे मनुष्यों के लिए कि जो अल्लाह को छोड़कर किसी अन्य को अपना पूज्य बना लेते हैं तथा लोगों पर अत्याचार करते हैं उनका अन्त भी ऐसा ही होगा, जैसा फ़िरऔन का हुआ।

बाइबल में फ़िरऔन और उसकी सेना के डूबने का वर्णन कुछ इस प्रकार आया है–

''फिर यहोवा ने मूसा से कहा, 'अपना हाथ समुद्र के ऊपर बढ़ा कि जल मिस्रियों, उनके रथों और सवारों पर फिर बहने लगे।' तब मूसा ने अपना हाथ समुद्र के ऊपर बढ़ाया और सवेरा होते-होते क्या हुआ कि समुद्र फिर ज्यों का त्यों अपने स्थान पर आ गया और मिस्री उलटे भागने लगे, परन्तु यहोवा ने उनको समुद्र के बीच ही में झटक दिया। जल के पलटने से जितने रथ और सवार इसराईलियों के पीछे समुद्र में आए थे, वे सब बल्कि फ़िरऔन की सारी सेना उसमें डूब गई, और उसमें से एक भी न बचा। परन्तु इसराईली समुद्र के बीच स्थल ही स्थल पर होकर चले गए और जल उनकी दाहिनी और बाईं दोनों ओर दीवार का काम देता था। यहोवा ने उस दिन इसराईलियों को मिस्रियों के वश से इस प्रकार छुड़ाया। इसराईलियों ने मिस्रियों को समुद्र के तट पर मरे पड़े हुए देखा। यहोवा ने मिस्रियों पर जो अपना पराक्रम दिखलाया था उसको देखकर इसराईलियों ने यहोवा का भय माना और यहोवा और उसके सेवक मूसा पर विश्वास किया।'' (देखिए: निर्गमन, 14: 26-31)

यहाँ जो यह कहा गया है कि, ''इसराईलियों ने मिस्रियों को समुद्र के तट पर मरे पड़े हुए देखा।'' उनमें फ़िरऔन का शव भी हो सकता है, बल्कि उसका शव अवश्य ही रहा होगा, ताकि स्वयं इसराईलियों का एक गरोह जो फ़िरऔन की मृत्यु के बारे में शंकाग्रस्त था और अभी भी डरा हुआ था, उसको विश्वास हो जाए कि अब वह फ़िरऔन की पकड़ से बचकर निकल गए हैं।

फ़िरदौस

'फ़िरदौस' जन्नत के नामों में से एक नाम है। क़ुरआन में है –

«जो लोग ईमान लाए तथा अच्छे कर्म किए उनके आतिथ्य के लिए 'फ़िरदौस' के बाग़ (जन्नत) होंगे।» (सूरा–18, अल-कह्फ़, आयत–107)

'फ़िरदौस' नाम की यह जन्नत उन लोगों को मिलेगी जिनके अन्दर निम्नलिखित गुण होंगे–

1. जो अपनी नमाज़ों में 'ख़ुशू' (पूर्ण समर्पण) रखते हों। अर्थात् वे अपने शरीर और हृदय को अल्लाह की याद में लीन किए हुए हों।
2. जो व्यर्थ बातों से मुँह मोड़ लेते हों
3. जो ज़कात पाबन्दी से देते हों।
4. जो अपनी शर्मगाहों की रक्षा करते हों, सिवाए अपनी पत्नियों के, अर्थात् ज़िना (व्यभिचार) से दूर रहते हों, बल्कि उसके निकट भी न फटकते हों।
5. जो अपनी अमानतों (धरोहर) तथा अपने वचन की रक्षा करनेवाले हों।

6. जो अपनी नमाज़ों को बड़ी पाबन्दी से अदा करते हों। तो ऐसे लोग 'फ़िरदौस' नामक स्वर्ग के अधिकारी होंगे। जहाँ वे सदैव रहेंगे। (सूरा–23, अल-मोमिनून, आयतें–2-11)

'फ़िरदौस' जन्नत की सबसे उच्च श्रेणी है। एक सहीह हदीस में है–

"जन्नत में एक सौ श्रेणियाँ हैं, जिनको अल्लाह ने मुजाहिदों के लिए तैयार कर रखा है। हर दो श्रेणियों के बीच का अन्तर आकाश और पृथ्वी के अन्तर के बराबर है। इसलिए जब कभी तुम अल्लाह से माँगो, तो 'जन्नतुलफ़िरदौस' माँगो, क्योंकि यह जन्नत की सबसे ऊँची श्रेणी है, और इसके ऊपर अल्लाह का अर्श (सिंहासन) है, और वहीं से जन्नत की नहरें निकलती हैं।"
(सहीह बुख़ारी, 7422)

फ़त्हे-मुबीन

'फ़त्हे-मुबीन' का अर्थ है स्पष्ट विजय। सन 6 हिजरी में 'हुदैबिया' नामक स्थान पर मक्का के इस्लाम विरोधियों से जो समझौता हुआ था, अल्लाह ने उसको 'फ़त्हे-मुबीन' की संज्ञा दी। उसका विवरण यह है कि नबी (ﷺ) ने स्वप्न में देखा कि आप (ﷺ) मक्का में दाख़िल हो रहे हैं, और सिर के बाल मुंडवा रहे हैं। इससे आपको बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई कि अब आप (ﷺ) को 'उमरा' करने का अवसर मिलेगा। आप (ﷺ) उसी वर्ष पन्द्रह सौ सहाबा को लेकर 'ज़ीक़ादा' महीने में मक्का की ओर चल पड़े। क़ुरबानी के जानवर भी साथ ले लिए। आप (ﷺ) ने मक्का से बाईस किलोमीटर दूर 'हुदैबिया' के स्थान पर पड़ाव डाला। मक्कावालों को जब आप (ﷺ) के आने की सूचना मिली तो वे युद्ध करने के लिए तैयार हो गए। नबी (ﷺ) ने एक के बाद एक अपने तीन प्रतिनिधियों को मक्का भेजा और उनको यह पैग़ाम दिया कि हम युद्ध करने नहीं, बल्कि काबे का तवाफ़ और 'उमरा' करने आए हैं। जब 'उस्मान बिन अफ़्फ़ान' (رضي الله عنه) को भेजा और उनके वापस आने में कुछ समय लग गया तो यह ख़बर फैल गई कि उनको क़त्ल कर दिया गया है, तब नबी (ﷺ) ने अपने सहाबा को एक वृक्ष के नीचे, जिसका नाम 'समुरा' था, इकट्ठा किया और जिहाद करने की बैअ्त ली। इस 'बैअ्त' को 'बैअ्ते-रिज़वान' कहा गया। जब मक्कावालों को इसकी सूचना मिली तो उन्होंने 'उस्मान' (رضي الله عنه) को छोड़ दिया और साथ ही 'सुहैल-बिन-अम्र' को आप (ﷺ) से समझौता करने के लिए भेजा। इस समझौते की कुछ शर्तें ये हैं–

1. दोनों पक्षों में से कोई भी पक्ष दस वर्ष तक किसी पर आक्रमण नहीं करेगा।
2. अगर कोई मुसलमान मक्का से मदीना जाता है तो उसको वापस कर दिया जाएगा, परन्तु मदीने से मक्का जानेवाले को वापस नहीं किया जाएगा।
3. अरब के क़बीले, जिसके साथ चाहें संधि कर सकते हैं।

4. मुसलमान इस वर्ष बिना उमरा किए वापस चले जाएँ, अगले वर्ष उमरा करने के लिए आ सकते हैं।

नबी (ﷺ) बीस दिन रुके रहे और फिर वापस चल पड़े। मुसलमान इस समझौते से अप्रसन्न थे, क्योंकि इसमें उनको बड़ी हानि दिखाई देती थी। अभी नबी (ﷺ) मदीने के रास्ते ही में थे कि सूरा–48, अल-फ़त्ह अवतरित हुई जिसमें इस समझौते को स्पष्ट विजय बताया गया, जिससे मुसलमान प्रसन्न हो उठे और इसी समझौते के कारण दो वर्ष बाद ही मक्का विजय हो गया और अरब के हर घर में इस्लाम प्रवेश करने लगा।

फ़तवा

फ़तवा का अर्थ है धर्मादेश पूछना। जैसे मिस्र के बादशाह ने अपने स्वप्न के विषय में अपने सरदारों से पूछा– अगर तुम्हें इसका अर्थ मालूम है तो मुझे बताओ।

जब बादशाह को पता चला कि उसकी जेल में बन्द यूसुफ़ (عليه السلام) स्वप्न का अर्थ बता सकते हैं तो उसने उनको अपने पास बुलाया।

इसके विस्तृत विवरण के लिए क़ुरआन की सूरा–12, यूसुफ़, आयतें–43-49 देखिए।

इसी प्रकार नबी (ﷺ) से लोगों ने अनाथ स्त्रियों के विषय में धर्मादेश पूछा, जिसका उत्तर क़ुरआन की सूरा–4, अन-निसा, आयत–127 में दिया गया है।

इसी प्रकार लोगों ने 'कलाला' (अर्थात् जिसकी कोई संतान न हो) के विषय में प्रश्न किया, तो अल्लाह ने उसका उत्तर दिया। (देखिए : सूरा–4, अन-निसा, आयत–176)

किसी व्यक्ति को धर्म के विषय में कोई प्रश्न करना हो तो उसे चाहिए कि किसी धार्मिक विद्वान से पूछे जिसकी ओर क़ुरआन में संकेत किया गया है। (देखिए : सूरा–16, अन-नह्ल, आयत–43)

ऐसे धर्मशास्त्री को 'मुफ़्ती' कहते हैं जो लोगों के प्रश्नों का उत्तर दे। परन्तु 'मुफ़्ती' का यह परम कर्तव्य है कि वह कोई 'फ़तवा' क़ुरआन तथा हदीस के विरुद्ध न दे। और उसका जो 'फ़तवा' भी क़ुरआन तथा हदीस के विरुद्ध होगा वह स्वीकार नहीं किया जाएगा। इसलिए 'मुफ़्ती' को क़ुरआन तथा हदीस का पूरा ज्ञान होना चाहिए, ताकि ग़लती से कोई 'फ़तवा' क़ुरआन तथा हदीस के विरुद्ध न दे दे। बहुत-से देशों में इस्लामी संस्थाओं की ओर से या इस्लामी देशों में शासक की ओर से 'दारुल-फ़त्वा' बना दिया जाता है, जिसमें एक 'बड़ा मुफ़्ती' होता है। उसकी एक परामर्श-समिति होती है। जब कोई प्रश्न किया जाता है तो उसी परामर्श-समिति की ओर से उत्तर दिया जाता है, जिसमें ग़लती होने की सम्भावना कम हो जाती है।

यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि 'फ़तवा' नए-नए मामलों के बारे में होता है। जिनमें मुफ़्ती को इज्तिहाद (इस्लाम की शिक्षाओं की रौशनी में नवीनीकरण अथवा अन्वेषण) करना पड़ता है। यही कारण है कि दो मुफ़्तियों का फ़तवा एक ही मामले में भिन्न-भिन्न हो सकता है। यह इस्लाम धर्म की विशेषताओं में से एक है कि इज्तिहादी मामलों में हर विद्वान को स्वतंत्रता है कि वह अपने ज्ञानानुसार 'फ़तवा' दे। इससे इस्लाम धर्म की व्यापकता का पता चलता है। इससे सिद्ध हुआ कि इस्लाम पर हर समय और हर स्थान पर अमल किया जा सकता है।

ब

बरज़ख़

बरज़ख़ का वर्णन क़ुरआन में तीन स्थानों पर आया है।

प्रथम :

«यहाँ तक कि जब इनमें से किसी को मौत आ जाएगी तो वह कहेगा, "ऐ मेरे रब! मुझे (संसार में) लौटा दे। ताकि जिस संसार को मैं छोड़ आया हूँ, उसमें अनुकूल कर्म करूँ।" कदापि नहीं, यह तो बस एक बात है जो वह कह रहा है। और उन (सब मरनेवालों) के पीछे एक 'बरज़ख़' है क़ियामत के दिन तक के लिए।» (सूरा–23, अल-मोमिनून, आयतें 99,100)

तात्पर्य यह है कि वे लोग, जो संसार में रहकर अल्लाह के आदेशों का उल्लंघन करते हैं, जब वे अपनी मौत को क़रीब से देखेंगे तो यह इच्छा करेंगे कि उनको दोबारा संसार में वापस कर दिया जाए, तो वे अच्छे कर्म करेंगे। अर्थात् अल्लाह पर ईमान लाएँगे और उसके बताए हुए रास्ते पर चलेंगे। अल्लाह कहता है कि ये अपनी बात में झूठे हैं। इनको अगर संसार में दोबारा भेज दिया जाए तो फिर ये वही कर्म करेंगे जो पहले करते थे। क़ुरआन में एक दूसरे स्थान पर आया है–

«अगर वे वापस कर दिए जाएँ तो फिर वही करेंगे जिससे उन्हें मना किया गया था और वे तो अपनी बात में झूठे हैं।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–28)

और जो वे कह रहे हैं वह तो प्रत्येक अत्याचारी मत्यु के समय कहता है। लेकिन किसी को संसार में वापस नहीं किया जाएगा। बल्कि वह क़ियामत आने तक 'बरज़ख़' में पड़ा रहेगा। कुछ विद्वानों ने 'बरज़ख़' का अर्थ क़ब्र लिया है। उनके अनुसार लोग मरने के बाद क़ब्र में क़ियामत तक रहेंगे। फिर वे अपने कर्मों के हिसाब से स्वर्ग या नरक में जाएँगे।

द्वितीय :

«उसी ने दो दरियाओं को बहता छोड़ दिया जो परस्पर मिले रहते हैं। दोनों के बीच एक बरज़ख़ (आड़) है, जिसे पार नहीं कर सकते।» (सूरा–55, अर-रहमान, आयतें-19,20)

बरज़ख़ का शाब्दिक अर्थ है दो वस्तुओं के बीच आड़। पृथ्वी के छोटे टुकड़े को भी, जो दो समुद्रों के बीच में पाया जाता है, बरज़ख़ कहते हैं। इसी लिए बीच के जीवन को बरज़ख़ कहते हैं, क्योंकि वह संसार और आख़िरत के बीच एक आड़ है। बरज़ख़ में रहनेवालों की गिनती न तो संसार में रहनेवालों के रूप में कर सकते हैं और न ही आख़िरत में रहनेवालों के रूप में। पवित्र क़ुरआन में एक अन्य स्थान पर इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है–

तृतीय :

«वही है जिसने दो समुद्रों को मिला रखा है। (वे मिलकर बहते हैं) एक स्वादिष्ट और मीठा है। और दूसरा खारा और कड़वा है। और दोनों के बीच बरज़ख़ (आड़) और पृथक्-पृथक् करनेवाली रोक रख दी है।» (सूरा–25, अल-फ़ुरक़ान, आयत–53)

यहाँ भी बरज़ख़ अपने अभिधार्थ (मूल अर्थ) में प्रयुक्त हुआ है जिसके अर्थ आड़ और रुकावट के हैं, क्योंकि समुद्र में विभिन्न स्थानों पर मीठे पानी के स्रोत मिलते हैं, जो समुद्र में रहते हुए भी नमकीन पानी से नहीं मिलते, क्योंकि अल्लाह ने दोनों प्रकार के पानी के बीच में बरज़ख़ बना रखा है अर्थात् रुकावट बना रखी है, जो हमें दिखाई नहीं देती।

इन निशानियों को बयान करके यह बताया जा रहा है कि मनुष्य कितना ज़ालिम है कि जिस अल्लाह ने जीवन व्यतीत करने के लिए इतने साधन जुटाए उसी को छोड़कर इसने उन वस्तुओं की उपासना आरम्भ कर दी जो न तो उसको लाभ पहुँचा सकती हैं, न हानि। इसी सूरा अल-फ़ुरक़ान की आयत-53 के बाद अल्लाह फ़रमाता है –

«वही है जिसने पानी से एक आदमी पैदा किया। फिर उसे वंश और ससुराली रिश्तेवाला कर दिया। तेरा रब सर्वशक्तिमान है। और अल्लाह को छोड़कर वे उसको पूजते हैं जो न उन्हें लाभ पहुँचा सकता है और न हानि पहुँचा सकता है। और काफ़िर (इनकारी) अपने रब के मुक़ाबले में विद्रोहियों का सहायक बना हुआ है।» (सूरा–25, अल-फ़ुरक़ान, आयतें-54,55)

बाबिल

बाबिल अकदी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है अल्लाह का द्वार। बाबिल इराक़ के एक प्राचीन शहर का नाम है जो दो नहरों दजला और फ़ुरात के बीच स्थित है, इसके निकट हिल्ला शहर है। यह बग़दाद से अस्सी किलोमीटर दूर है। दो हज़ार वर्ष ईसा पूर्व में इस क्षेत्र में एक बहुत बड़ी सल्तनत थी। उसके प्रसिद्ध सम्राटों में एक बुख़्त नसर था। 605-562 ईसा पूर्व जिसने फ़िलस्तीन पर आक्रमण किया और वहाँ से बहुत सारे यहूदियों को लेकर बाबिल आया और यहाँ उनको क़ैदी बनाकर रखा। यहूद यहाँ आते ही बहुत सारी बुराइयों में लिप्त हो गए। और अल्लाह के नाफ़रमान बन गए। यहाँ तक कि अपनी इबरानी भाषा भी भूल गए। उनके कुछ विद्वान थे, जो इबरानी भाषा जानते थे। यहूदियों को फिर से अल्लाह के मार्ग पर लाने के लिए बहुत सारे नबी आए। उनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध नबी दानियाल हैं। उन्होंने उनको बहुत समझाया। मगर वे किसी तरह बुराइयों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुए। तब अल्लाह ने उनकी कड़ी परीक्षा ली और अपने दो फ़रिश्तों 'हारूत' और 'मारूत' को उनकी तरफ़ भेजा। उन फ़रिश्तों ने पहले ही उनको बता दिया कि हम तुम्हारे लिए परीक्षा हैं, तुम हमसे अच्छी बात

भी सीख सकते हो और बुरी बात भी। बस यहूदियों ने उनसे अच्छी बात सीखने के बजाय बुरी बातें सीखीं और पति-पत्नी को अलग करने के लिए जादू-टोने सीखने लगे और एक तरह से उस संकट में घिर गए, जिससे उनको डराया गया था।

क़ुरआन ने उनके इसी संकट का वर्णन किया है। ताकि यह बताए कि यहूदी किस प्रकार का स्वभाव रखते हैं।

सन् 539 ईसा पूर्व में फ़ारस के सम्राट कोरस ने बाबिल पर आक्रमण कर दिया। बाबिल की तबाही के बाद यहूदी अज़रा के नेतृत्व में दोबारा फ़िलस्तीन वापस आ गए। इस समय उनके दिलों में मनुष्य के लिए बड़ी घृणा थी। इस हालत में अज़रा ने दोबारा तौरात को लिखा और उसमें वे चीज़ें दाख़िल कर दीं कि यहूदी सारे मनुष्यों को अपना ग़ुलाम समझें और जब भी अवसर मिले उनसे "प्रत्यपकार" लें। रहा बाबिल तो उसपर सिकन्दर महान ने सन् 331 ईसा पूर्व आक्रमण कर दिया। और बाबिल को बुरी तरह नष्ट कर दिया। उसके बाद आज तक बाबिल एक खंडहर बना हुआ है। उसकी खुदाई चल रही है। बाबिल की प्रसिद्ध चीज़ बुर्ज बाबिल है जिसकी सात मंज़िलें हैं।

बाबिल का वर्णन क़ुरआन में केवल एक बार आया है –

«न ही बाबिल में दोनों फ़रिश्तों-हारूत और मारूत पर जादू उतारा गया था। और वे (फ़रिश्ते) किसी को सिखाते नहीं थे, जब तक कि कह न देते, "हम तो बस एक परीक्षा हैं, तो तुम लोग (इसे सीखकर) कुफ़्र में न पड़ना।" तो ये लोग उन दोनों से वह चीज़ सीखते, जिसके द्वारा पति-पत्नी में फूट डाल सकें – यद्यपि ये उससे अल्लाह के हुक्म के बिना किसी को कोई हानि नहीं पहुँचा सकते थे – और ये वह चीज़ सीखते थे जो उनके लिए हानिकारक थी, लाभदायक नहीं थी।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–102)

बद्र

यह एक घाटी का नाम है, जो मदीने से 175 किलो मीटर दूर मक्का के रास्ते में स्थित है। वहाँ एक बड़ा युद्ध हुआ था, जिसमें मुसलमान अल्लाह की सहायता से विजयी हुए थे। अल्लाह ने इसका वर्णन क़ुरआन में इस प्रकार किया है–

«अल्लाह ने बद्र में तुम्हारी सहायता की जबकि तुम बहुत निर्बल थे। तो तुम्हें चाहिए कि अल्लाह से डरते रहो, ताकि तुम कृतज्ञता दिखा सको।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–123)

यह युद्ध सन दो हिजरी, फ़रवरी 623 ईसवी को हुआ। इसका कारण यह था कि जब नबी (ﷺ) अपने साथियों को लेकर मदीना आ गए तो मक्का के विधर्मियों को यह बात पसन्द नहीं आई कि मुसलमान शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करें। इसलिए उन्होंने मक्का के सरदार अबू-सुफ़यान के नेतृत्व में एक बहुत बड़ा व्यापारिक दल शाम (सीरिया) भेजा ताकि वहाँ से धन कमाकर मक्का लाया जाए और

फिर उसके द्वारा युद्ध का सामान ख़रीदकर मदीने पर आक्रमण कर दिया जाए और मुहम्मद (ﷺ) तथा उनके साथियों (ﷺ) को सदैव के लिए समाप्त कर दिया जाए। जब यह व्यापारिक दल व्यापार करने के पश्चात् मक्का वापस जा रहा था तो नबी (ﷺ) को इसके विषय में पता चल गया। इसलिए आप (ﷺ) ने तीन सौ तेरह मुसलमानों को लेकर इस दल का घेराव किया, परन्तु अबू-सुफ़यान भी बहुत बुद्धिमान था, उसको आप (ﷺ) के आने की सूचना मिल गई। उसने तुरन्त ज़मज़म नामक एक व्यक्ति को मक्का भेज दिया और उनसे अपने व्यापारिक दल की रक्षा के लिए कहा। चूँकि मक्का के विधर्मी मदीने पर आक्रमण करने की योजना बनाए हुए थे, इसलिए वहाँ के सरदार एक हज़ार की सेना लेकर मदीने पर चढ़ाई के लिए निकल पड़े। यह एक नई दशा थी। मुसलमान अपनी संख्या तथा युद्ध सामग्री में शत्रु के तिहाई थे । नबी (ﷺ) ने अपने साथियों से परामर्श किया कि इस परिस्थिति में क्या किया जाय? एक व्यक्ति का विचार था कि व्यापारिक दल पर आक्रमण किया जाए। आप (ﷺ) ने फिर परामर्श किया। इस पर कुछ सरदार खड़े हुए जो आप (ﷺ) के विचार को समझ गए थे। उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! अल्लाह ने आपको जो निर्देश दिया है, आप वह करें, हम आपके साथ हैं। हम बनी- इसराईल की तरह यह नहीं कहेंगे कि ऐ मूसा तुम और तुम्हारा रब युद्ध करे, हम तो यहाँ बैठे रहेंगे। बल्कि यह कहेंगे कि चलिए आप और आपका रब युद्ध करें हम आपके साथ हैं।" ये मुहाजिरों के सरदार मिकदाद-बिन-अम्र थे। परन्तु आप (ﷺ) चाहते थे कि मदीने के अनसार के सरदार भी अपने विचार प्रकट करें। इसलिए आप (ﷺ) ने फिर कहा लोगो, मुझे परामर्श दो। इसपर साद-बिन-मुआज़ समझ गए और कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल (ﷺ) आप हम से परामर्श चाहते हैं?" आप (ﷺ) ने फ़रमाया, "हाँ।" इस पर साद-बिन-मुआज़ ने कहा, "हम आप पर ईमान लाए, हम आपके साथ हैं। अगर आप समुद्र में भी प्रवेश करेंगे तो हम भी आपके साथ प्रवेश कर जाएँगे। हम में (अर्थात अनसार में) से एक व्यक्ति भी पीछे नहीं रहेगा।" इस पर नबी (ﷺ) प्रसन्न हो उठे और आपने जिहाद करने का ऐलान कर दिया। इस्लामी इतिहास का यह बहुत ही कठिन मोड़ था। तीन सौ तेरह व्यक्तियों की सेना, जिनके पास युद्ध-सामग्री भी बहुत कम थी , अपने से तीन गुनी बड़ी और युद्ध-सामग्री से भरी सेना का सामना करने – युद्ध के लिए निकल पड़ी। यह ऐसी घड़ी थी कि अगर यह मुट्ठी-भर सेना परास्त हो जाती तो एक अल्लाह की वन्दना करने वाला कोई न रहता।

इस्लाम के महान विद्वान मौलाना अबुल-कलाम आज़ाद ने क़ुरआन की व्याख्या में लिखा है –

"कभी-कभी कोई साधारण-सी घटना युद्ध को जीत या हार में बदल देती है। वाटरलू के युद्ध के सम्बन्ध में सभी इतिहासकार सहमत हैं कि अगर 17 तथा 18 जून 1815 ईसवी की रात वर्षा न होती तो यूरोप का नक़्शा बदल जाता, क्योंकि ऐसी दशा में नेपोलियन को बारह बजे तक पृथ्वी के सूखने की प्रतीक्षा न करनी पड़ती, बल्कि सवेरे से ही युद्ध प्रारम्भ हो जाता, और 'बलोशर' के पहुँचने से पहले ही 'वेलिंगटन' की हार हो जाती। इसी प्रकार यदि बद्र में मुसलमानों की जीत न होती तो सारे संसार की हिदायत का नक़्शा उलट जाता।"

इसी ओर नबी (ﷺ) ने अपनी दुआ में संकेत किया था, "ऐ अल्लाह, अगर आज ये तेरे मुट्ठी भर भक्त हलाक हो गए तो फिर पृथ्वी पर तेरी सच्ची वन्दना करनेवाला कोई नहीं रहेगा।"

इस युद्ध में मुसलमान विजयी हुए। मक्का के बड़े-बड़े सरदार मारे गए और फिर यहीं से इस्लामी इतिहास का एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। इस विषय पर क़ुरआन में अल-अनफ़ाल नामक पूरी एक सूरा उतरी।

बिदअत

धर्म के मूल सिद्धान्तों को छोड़कर अपनी ओर से कुछ चीज़ों को धर्म में शामिल करने को 'बिदअत' कहते हैं। इस्लाम से पहले धर्म के अनुयायिओं ने यही तो किया जैसा कि क़ुरआन मजीद में आया था।

«रहा संन्यास तो इस बिदअत को उन्होंने स्वयं घड़ लिया, जिसका हमने हुक्म नहीं दिया था। उन्होंने ऐसा अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए किया।» (सूरा–57, अल-हदीद, आयत–27)

इस आयत में संकेत किया गया है कि उन धार्मिक पुरुषों ने संसार त्याग की बिदअत को स्वयं अपना लिया था, और इसके द्वारा वे अल्लाह की प्रसन्नता चाहते थे, परन्तु अल्लाह ने स्पष्ट कर दिया कि अल्लाह की प्रसन्नता अपनी ओर से बिदअत ईजाद करने से प्राप्त नहीं होती, चाहे वह कितनी ही मनोहर क्यों न हो। बल्कि अल्लाह की प्रसन्नता केवल उसके अनुपालन ही से प्राप्त होती है। इसलिए नबी (ﷺ) ने बिदअत करनेवालों की घोर निन्दा की है। एक सहीह हदीस में आया है–

"जिसने धर्म में कोई बिदअत निकाली वह मरदूद होगा।" (बुख़ारी, 2697 तथा मुस्लिम, 1718)

अर्थात उसकी बिदअत रद्द कर दी जाएगी।

एक और सहीह हदीस में आया है–

"हर बिदअत पथभ्रष्ट करनेवाली है।" (देखिए : सहीह मुस्लिम, 867)

यही कारण है कि मुसलमान क़ुरआन तथा सहीह हदीसों को मज़बूती के साथ थामे रहे। स्वयं बिदअत से बचते रहे तथा बिदअतियों को समझाते रहे। इसलिए आज भी इस्लामी शिक्षाएँ उसी प्रकार सुरक्षित हैं जिस प्रकार वे नबी (ﷺ) तथा आप (ﷺ) के सहाबा के समय में थीं और प्रलय दिवस तक इसी प्रकार सुरक्षित रहेंगी और धर्म में बिदअत करनेवालों की बिदअत मरदूद होगी। इसलिए वे लोग जो समय-समय पर नई-नई बिदअतें करते रहते हैं अल्लाह से डरें, क्योंकि उनकी बिदअतों से इस्लाम को तो कुछ हानि नहीं पहुँचेगी, परन्तु उनकी आख़िरत अवश्य ख़राब हो जाएगी।

ब्याज

यह एक सामाजिक रोग है, जो कैंसर के रोग की तरह फैलता है। यह रोग जिस समाज में फैल जाता है, उसके जीवित रहने की क्षमता घटती चली जाती है। इसी लिए प्राचीनकाल में कुछ जातियाँ अपने शत्रुओं के लिए इसका प्रयोग करती थीं, जबकि स्वयं अपने ऊपर इसे वर्जित किए हुए थीं। बाइबल में भी इसको अपने लोगों के लिए वर्जित किया गया है –

"यदि तू मेरी प्रजा में से किसी ग़रीब को, जो तेरे पास रहता हो रुपये का ऋण दे तो उससे महाजन के समान ब्याज न लेना।" (निर्गमन, 22:25)

"जो कोई अपना रुपया ब्याज पर नहीं देता और भोले-भाले निर्दोष लोगों को हानि पहुँचाने के लिए घूस नहीं लेता। जो कोई ऐसी चाल चलता है, वह कभी न डगमगाएगा।" (भजन संहिता, 15:5)

'नहेम्याह' ने यहूदियों को फटकारा जो अपने भाइयों से ब्याज लेते थे। (नहेम्याह, 5;6-12)

जहाँ बाइबल ने यहूदियों को आपस में ब्याज के लेने से रोका है, वहीं ग़ैर यहूदियों से ब्याज लेना उचित और वैध बताया है–

"अपने किसी भाई को ब्याज पर ऋण न देना, चाहे रुपया हो, चाहे खाद्य-सामग्री हो, चाहे कोई और वस्तु, जो ब्याज पर दी जाती है उसे ब्याज पर न देना। तू परदेसी को ब्याज पर ऋण तो दे, परन्तु अपने किसी भाई से ऐसा न करना।" (व्यवस्था विवरण, 23:19-20)

सत्य तो यह है कि यहूदियों को भी ब्याज खाने से रोका गया था। परन्तु उन्होंने ऐसा न किया बल्कि ब्याज खाते रहे। पहले ग़ैर-यहूदियों से ब्याज खाया और फिर आपस में भी खाने लगे जिसके कारण अल्लाह ने बहुत सारी हलाल चीज़ें भी उनपर हराम कर दीं। (देखिए: सूरा–4, निसा, आयत–160-161)

रहा इस्लाम तो उसने ब्याज का खाना सदैव के लिए वर्जित कर दिया, चाहे वह मुसलमान के बीच हो, चाहे मुसलमान और ग़ैर-मुस्लिम के बीच। क्योंकि इस्लाम एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहता है जिसमें आपस में सहानुभूति तथा सहायता का बरताव किया जाए, जबकि ब्याज का प्रचार समाज में घृणा और शत्रुता का कारण बनता है। ब्याज देनेवाला व्यक्ति ब्याज लेनेवाले लोगों की विवशता से लाभ उठाता है। और उनकी दुर्दशा को अपनी कमाई का साधन बनाता है, बल्कि एक बार किसी निर्धन को ब्याज देकर उसको सदैव के लिए अपना आधीन बना लेता है। क्योंकि ब्याज दर ब्याज एक ऐसी व्यवस्था है जिसके चंगुल में एक बार कोई निर्धन फंस जाए तो फिर वह कभी नहीं निकल सकता। भला ऐसे समाज में सहानुभूति तथा प्रेम-भाव कैसे पैदा हो सकता है। इसलिए क़ुरआन ने ब्याज लेनेवाले की कड़ी निन्दा की है–

«जो लोग ब्याज खाते हैं वे इस प्रकार उठेंगे जैसे वह आदमी उठता है जिसको शैतान ने छू कर बावला कर दिया हो। यह इसलिए होगा कि उन्होंने कहा, "व्यापार भी तो ब्याज

के समान है'' जबकि अल्लाह ने व्यापार को हलाल किया और ब्याज को हराम।» (सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-275)

अर्थात् ब्याज खानेवाले क़ियामत में बावलों की तरह उठेंगे, और दुनिया ही में हराम की इस कमाई में वे किसी बावले से कम नहीं होंगे, जो हर समय निर्धनों का रक्त चूसने के लिए सोच-विचार में पड़े रहते हैं। इसलिए क़ुरआन मोमिनों को सम्बोधित करते हुए साफ़ घोषणा करता है–

«ऐ ईमानवालो, अल्लाह से डरो, और जो ब्याज शेष रह गया है उसे छोड़ दो। यदि तुम सचमुच ईमानवाले हो। अगर तुमने ऐसा न किया तो अल्लाह और उसके रसूल से युद्ध के लिए तैयार हो जाओ, और यदि क्षमा माँग लो तो अपना मूलधन लेने का तुम्हें अधिकार है, ताकि न तुम किसी पर अत्याचार करो, और न तुम पर अत्याचार किया जाए।» (सूरा-2, अल-बक़रा, आयतें 278,279)

अर्थात् ऋण देनेवाले के लिए जायज़ है कि जितना ऋण दिया है वह वापस ले ले, और उसपर ब्याज लेने से तौबा कर ले। अगर ऐसा कर लेता है तो न उसपर अत्याचार होगा और न ऋण लेनेवाले पर। परन्तु अगर वह ऐसा नहीं करता है, बल्कि ब्याज लेने पर अड़ा रहता है तो फिर वह अल्लाह और उसके रसूल से युद्ध करता है और अल्लाह तथा रसूल से युद्ध करनेवाला संसार तथा परलोक में कभी सफल नहीं हो सकता। संसार में वह बावलों की तरह जीवन व्यतीत करेगा, जिसको शैतान ने छू लिया हो। और यह भी हो सकता है कि उसका धन एक झटके में समाप्त हो जाए। कोई ऐसी आपदा आ जाए जिससे सारा धन जाता रहे, जैसा कि ब्याज खानेवालों को देखा गया है। प्रलय में उनके साथ जो होनेवाला है वह इसके अतिरिक्त है।

इसके विपरीत सदक़ा (दान) है, जिसके विषय में क़ुरआन में आया है–

«अल्लाह ब्याज को घटाता और मिटाता है, और सदक़ों (दान) को बढ़ाता है।» (सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-276)

क़ुरआन की दृष्टि में ब्याज प्रत्येक दशा में हानिकारक है। इसके द्वारा किसी भलाई की आशा नहीं की जा सकती, जिसका समर्थन अब पश्चिम के अर्थशास्त्री भी करने लगे हैं, और उनकी बहुत बड़ी संख्या इस्लामी अर्थव्यवस्था का अध्ययन करने की ओर आकर्षित हो गई है।

क़ुरआन में एक दूसरे स्थान पर आया है–

«जो ब्याज तुम देते हो, ताकि लोगों के धनों में सम्मिलित होकर बढ़ जाए तो, वह अल्लाह के यहाँ नहीं बढ़ता, और जो ज़कात तुम अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए देते हो तो ऐसे ही लोग हैं अपना माल बढ़ानेवाले।» (सूरा-30, अर-रूम, आयत-39)

अर्थात् ब्याज से माल बढ़ता नहीं बल्कि जिस धन में ब्याज मिल जाए उससे उसकी बरकत उठ जाती है। इसके विपरीत ज़कात है जिसके देने से धन में कमी नहीं आती, बल्कि अल्लाह की ओर से

बरकरत होती है और ज़कात देनेवाले का धन बढ़ता ही रहता है। यह तो संसार की बात है और परलोक में उसके बदले क्या कुछ मिलनेवाला है हम उसको सोच भी नहीं सकते।

ब्याज दो प्रकार के होते हैं;

1. प्रथम जिसे 'रिबा नसीया' या चक्रवर्ती ब्याज कहते हैं, जैसे एक हज़ार रुपये ऋण देकर एक माह बाद एक हज़ार एक सौ रुपये लिया जाए। मौजूदा समय में अधिकतर ब्याज 'रिबा नसीया' है, क्योंकि इस ब्याज में समय का बहुत बड़ा महत्व होता है अर्थात् जितना अधिक समय बीतेगा उसी के हिसाब से ब्याज बढ़ता जाएगा। कभी ब्याज के ऊपर भी ब्याज लग जाता है, जिसकी ओर क़ुरआन संकेत करते हुए कहता है–

«ऐ ईमानवालो ! बढ़ा-चढ़ाकर ब्याज न खाओ, और अल्लाह से डरो, ताकि तुम्हें सफलता प्राप्त हो।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–130)

ब्याज के लेन-देन में होता यह है कि ऋण लेनेवाला अगर समय पर ऋण वापस नहीं कर पाता है तो साहूकार उसे कुछ और समय दे देता है, परन्तु इसके बदले ब्याज की दर बढ़ा देता है, फिर जितना समय बीतता जाता है ब्याज की दर बढ़ती जाती है, यहाँ तक कि छोटा-सा मूल-धन बढ़कर कहीं से कहीं पहुँच जाता है, जिसको वापस करना असम्भव हो जाता है। फिर उसका घर-बार सब कुछ बिक जाता है, और वह फ़क़ीर होकर रह जाता है। उसके पास न रहने के लिए घर होता है न खाने के लिए भोजन, न पहनने के लिए वस्त्र, क्योंकि यह सब साहूकार का हो जाता है। इस दशा को क़ुरआन ने 'अज़आफ़म मुज़ाअफ़ा' कहा है जिसका अर्थ 'बढ़ा-चढ़ाकर लेना' है क्योंकि 'रिबा नसीया' में सबसे अधिक महत्व समय का है जिसके कारण ब्याज बढ़ते-बढ़ते कहीं से कहीं पहुँच जाता है। ऐसे साहूकारों को चेतावनी दी गई है कि अल्लाह से डरो। उसके बाद की आयत में बताया गया है–

«उस आग से डरो जो कुफ़्र करनेवालों के लिए तैयार की गई है।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–131)

अर्थात ऐ ईमानवालो, अगर तुम ब्याज से नहीं रुकते तो तुम्हारा यह कुकर्म तुमको कुफ़्र तक पहुँचा सकता है, क्योंकि ऐसा करना वास्तव में अल्लाह तथा रसूल से युद्ध करने के समान है। निष्कर्ष यह कि 'रिबा नसीया' में समय की प्रधानता एवं महत्ता होती है और समय के हिसाब से ब्याज बढ़ता है। इसलिए किसी ऋण से यदि समय तथा ब्याज की दर निकाल दी जाए तो वह केवल ऋण रह जाएगा। और ऋण को वापस करते समय अगर लेनेवाले ने अपनी ओर से स्वयं कुछ बढ़ा कर दे दिया तो वह ब्याज नहीं होगा। बल्कि ऐसे व्यक्ति की तो प्रशंसा की गई है।

2. द्वितीय प्रकार के ब्याज को 'रिबा फ़ज़्ल' कहते हैं। इसका अर्थ है किसी वस्तु को बदलने की दशा में अधिक देना। फ़ज़्ल का अर्थ है अधिक।

एक सहीह हदीस में आया है–

"सोने को सोने के बदले बेचो और चाँदी को चाँदी के बदले और गेहूँ को गेहूँ के बदले और जौ को जौ के बदले और खजूर को खजूर के बदले और नमक को नमक के बदले और जो एक-दूसरे के बराबर हों और हाथ के हाथ हों। ये चीज़ें अगर बदलकर बेचनी हों तो जैसे चाहो वैसे बेचो, परन्तु हाथ के हाथ होनी चाहिएं।" (सहीह मुस्लिम, 1587)

अर्थात उधार नहीं

इसी प्रकार की और भी बहुत-सी सहीह हदीसें हैं जिनसे निम्नलिखित बातों का ज्ञान होता है–

1. ये चीज़ें तीन प्रकार की हैं –

एक : सोना, चाँदी

दूसरी : अनाज

तीसरी : मसाला

ये तीन प्रकार की वे चीज़ें हैं जिनसे मनुष्य की विशेष आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं। इस्लाम ने इनको बेचने के लिए इस बात को ध्यान में रखा कि कहीं इनमें भी ब्याज का कोई पहलू पैदा न होने पाए इसलिए इनको बेचने के लिए दो शर्तें लगाईं। एक यह कि इनको बराबर की दशा में बेचा जाए। अर्थात् एक किलोग्राम सोना या चाँदी को एक ही किलोग्राम सोना या चाँदी से बेचा जाए। इसी प्रकार एक किलोग्राम अनाज या नमक को एक ही किलोग्राम अनाज या नमक से बेचा जाए। इसमें अच्छे और ख़राब सब बराबर हैं। यह प्रतिबन्ध इस लिए लगाया गया कि कहीं किसी निर्धन को ब्याज के दलदल में न फँसना पड़ जाए।

दूसरी शर्त यह लगाई गई कि हाथ के हाथ हो। अर्थात् उधार न हो जैसे कोई एक किलोग्राम सोना एक किलोग्राम सोना के बदले बेचना चाहे परन्तु उधार पर, तो यह सही नहीं होगा बल्कि ब्याज बन जाएगा। क्योंकि पहले बताया जा चुका है कि समय ब्याज का विशेष कारण है। इसलिए आवश्यक है कि ये चीज़ें बराबर के साथ हाथ के हाथ बेची जाएँ।

2. जब इनको बदलकर बेचना हो तो जैसे चाहे बेच सकते हैं परन्तु शर्त यह है कि हाथ के हाथ बेची जाएं। जैसे सोने को चाँदी के बदले, या गेहूँ को जौ के बदले बेचना हो तो बराबर का होना आवश्यक नहीं जिस प्रकार और जितने में चाहें बेच सकते हैं, परन्तु हाथ के हाथ होना आवश्यक है।

3. जब इन चीज़ों के बदले किसी और चीज़ को बेचना हो तो फिर कोई शर्त नहीं, जैसे चाहे बेचा जाए। हाथ के हाथ होना भी आवश्यक नहीं। जैसे एक ग्राम सोने के बदले सौ किलोग्राम गेहूँ। इसी प्रकार सौ किलोग्राम खजूर के बदले पाँच सौ किलोग्राम अनाज। ऐसी दशा में बराबर होना अनिवार्य नहीं है, बल्कि जिस प्रकार आपस में तय हो जाए बेचा जा सकता है। अब एक व्यक्ति सौ किलो ग्राम उत्तम चावल को उससे कम अच्छे चावल के बदले बेचना चाहता है ताकि वह अधिक मिल जाए तो उसको चाहिए कि पहले सौ किलोग्राम उत्तम चावल को रुपयों में बेच दे, और फिर उस रुपये से कम अच्छा चावल जितना मिलता हो ख़रीद ले। ऐसी दशा में उसपर कोई

प्रतिबन्ध नहीं है। यह है इस्लाम की आर्थिक व्यवस्था, जिसके द्वारा वह निर्धन के अधिकार की रक्षा करता है, ताकि वह ब्याज के रोग में जकड़कर सदैव के लिए नष्ट न हो जाए।

अब चूँकि व्यापार में लेन-देन नोटों के द्वारा होता है इसलिए एक हज़ार रुपये के बदले कोई एक हज़ार एक सौ रुपये ले या दे तो यह ब्याज कहलाएगा, चाहे हाथ के हाथ हो या क़र्ज़ की दशा में, चाहे बेंक के द्वारा हो या व्यक्ति द्वारा। इस लिए बेंक के ब्याज से बचने के लिए विद्वानों ने इस्लामिक बेंक का विचार पेश किया जो शरीअत के विभिन्न आधारों पर निर्धारित है। विशेषकर ''मुज़ारबत'' और ''सलम''। मुज़ारबत यह है कि कुछ लोग मिलकर पूँजी इकट्ठा करते हैं और कुछ लोग उससे व्यापार करते है और सभी लोग लाभ और हानि में किसी सिद्धान्त के द्वारा सम्मिलित होते हैं।

सलम का प्रयोग व्यापार में किया जाता है जो बेंक से क़र्ज़ लेकर सलम के सिद्धान्त पर वापस किया जाता है। अधिक जानकारी के लिए किसी इस्लामी बेंककारी की पुस्तक का अध्ययन किया जा सकता है।

बनी-इसराईल

अर्थात इसराईल की सन्तान। इसराईल इबराहीम के पौत्र याक़ूब-बिन- इसहाक़ की उपाधि है जिसका अर्थ है – अल्लाह के साथ जिहाद करनेवाला (दे. उत्पत्ति 32:28)। इन्हीं के बारह बेटों से जो वंश चला। उसको 'बनी-इसराईल' कहते हैं। अल्लाह ने बनी-इसराईल पर बहुत उपकार किए जिनका वर्णन क़ुरआन में बार-बार आया है। उनमें से –

एक यह कि उनको अपने समय के लोगों पर प्रधानता दी। (देखें सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-47)

दूसरे यह कि उनको नुबूवत दी तथा उनको शासक बनाया। (देखें सूरा-45, अल-जासिया, आयत-16)

तीसरे यह कि उनको एक किताब का वारिस बनाया जिसमें उनके लिए मार्गदर्शन था। (देखें सूरा-40 अल-मोमिन, आयत-53,54)

उसी किताब में अन्तिम नबी मुहम्मद (ﷺ) के आगमन का समाचार था, परन्तु जब वे आए तो उन्होंने इनकार कर दिया। (देखें सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-89)

हालाँकि उसी किताब में अल्लाह ने यह बता दिया था कि तुम लोग पृथ्वी पर यूँ तो बहुत फ़साद करोगे लेकिन दो बार तुम्हारा फ़साद बहुत बड़ा होगा और दोनों बार तुम्हें नष्ट कर दिया जाएगा। और फिर उसी प्रकार फ़साद करते रहे तो फिर वही परिणाम होगा जो पहले हो चुका है।

«और हमने 'किताब' में बनी- इसराईल को साफ़-साफ़ बता दिया था कि तुम धरती में दो बार फ़साद मचाओगे, और बड़ी सरकशी दिखाओगे। फिर जब दोनों में से पहला मौक़ा आया, तो हमने तुम्हारे मुक़ाबले में अपने ऐसे बन्दे उठाए जो बड़े ही प्रबल थे। वे बस्तियों में घुसकर हर ओर फैल गए और यह वादा पूरा होकर रहा। फिर हमने दूसरी बार तुमको उनपर विजयी किया, और धन तथा औलाद से तुम्हारी सहायता की, और

तुमको एक बड़ा गरोह बना दिया, यदि तुम भलाई करोगे तो अपने ही लिए करोगे, और यदि तुम बुराई करोगे तो अपने ही लिए करोगे। फिर जब दूसरे वादे का समय आया (तो हमने फिर अपने बन्दे भेजे) ताकि वे तुम्हारे चेहरे बिगाड़ दें, और जिस तरह वे पहली बार मस्जिद (बैतुल-मक़दिस) में दाख़िल हो गए थे उसी प्रकार दूसरी बार भी घुस जाएँ, और जो चीज़ भी उनके हाथ आए नष्ट कर दें। सम्भव है कि तुम्हारा 'रब' तुमपर दया करे परन्तु यदि तुम फिर उसी पहली नीति की ओर पलटे तो हम भी वही पहला-सा व्यवहार करेंगे, और हमने जहन्नम को इस्लाम-विरोधियों के लिए बन्दीघर बना रखा है।» (सूरा-17, बनी-इसराईल, आयतें–4-8)

तौरात में अंबिया ने बनी-इसराईल को बार-बार चेतावनी दी है कि अल्लाह को छोड़कर किसी और की पूजा मत करो। अल्लाह की पुस्तक तौरात को अपने पीठ पीछे मत फेंको। कहीं तुमपर अल्लाह का अज़ाब न आ जाए, परन्तु उन्होंने उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया जिसके कारण उनपर दो बड़ी तबाहियाँ आईं –

पहली तबाही : जो बाबिल के बादशाह ''बुख़्तनसर'' के हाथों हुई जिसने सन् 605 से 582 ईसा पूर्व चार बार बैतुल-मक़दिस पर आक्रमण किया और हर बार हज़ारों लोगों की हत्या की और हज़ारों को पकड़कर अपने देश बाबिल ले गया। इन आक्रमणों में उसने सुलैमान की इबादतगाह को भी नष्ट कर दिया जिसका आज तक पता नहीं चल सका कि वह कहाँ थी। बाइबल की किताब ''राजा'' में बड़े विस्तारपूर्वक 'बुख़्तनसर' के आक्रमणों का वर्णन आया है।

दूसरी तबाही : यहूदियों का दूसरा फ़साद 70 ई. में हुआ जिसके कारण रूमी सम्राट 'तीतस' ने यरोशलम पर आक्रमण कर दिया। एक लाख से अधिक यहूदियों की हेत्या की और सात हज़ार से अधिक लोगों को बंदी बनाकर अपने देश ले गया, जिनमें से कुछ को मिस्र में परिश्रम करने के लिए भेज दिया। और इस आक्रमण के बाद से फिर कभी यहूदी राज्य स्थापित नहीं हुआ। बीसवीं शताब्दी में यहूदियों को यूरोप से निकाल कर फ़िलस्तीन में बसाया जाने लगा और सन् 1948 ई. में यहूदी राज्य की घोषणा कर दी गई। अब देखना यह है कि यह राज्य कब तक चलता है। क्योंकि अल्लाह का कथन है–

«परन्तु यदि तुम फिर उसी पहली नीति की ओर पलटे तो हम भी वही पहला-सा व्यवहार करेंगे।» (सूरा-17, बनी-इसराईल, आयत-8)

यहाँ पर बनी-इसराईल का बहुत ही संक्षिप्त इतिहास बता दिया गया है, जबकि क़ुरआन में उनके विषय में इतना कुछ बताया गया है जिसके बाद किसी इतिहास की आवश्यकता नहीं है।

«निस्सन्देह यह क़ुरआन बनी- इसराईल को अधिकांश ऐसी बातें बताता है जिनमें वे विभेद करते चले आ रहे हैं।» (सूरा-27, अन-नम्ल, आयत-76)

अधिक जानकारी के लिए देखिए 'मूसा (عليه السلام)'।

बहीरा

अरब के मूर्तिपूजक अपने देवताओं को प्रसन्न करने के लिए नित नए-नए तरीक़े ईजाद किया करते थे। उन्हीं में एक तरीक़ा यह था कि वे किसी ऊँटनी को किसी देवता के नाम पर छोड़ देते थे। उसका दूध नहीं पीते थे, बल्कि यह कहते थे कि इसका दूध देवता के लिए है। देवता के नाम पर छोड़ी हुई उस ऊँटनी को बहीरा कहा जाता था। उसकी पहचान यह होती थी कि उसका कान चीर दिया जाता था, जिससे लोग समझ जाते थे कि वह बहीरा है। इसलिए न तो कोई उसका दूध दूहता और न ही उसको घूमने-फिरने और चरने से रोकता था। वह जहाँ चाहती चली जाती, अर्थात् उसको एक प्रकार से तक़द्दुस (पवित्रता) की दृष्टि से देखा जाता था। बहीरा को इस प्रकार पवित्रता का स्थान प्रदान करना क़ुरआन के विरुद्ध था। (देखिए : क़ुरआन, सूरा–5, अल-माइदा, आयत–103)

बाँझ

बाँझ को अरबी में 'अक़ीम' कहते हैं जिसका अर्थ है वह जो किसी प्रकार के प्रभाव को स्वीकार न करे, जैसे मरुस्थल।

क़ुरआन में यह शब्द तीन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है –

1. प्रसिद्ध अर्थ वह स्त्री है जिसका गर्भ पुरुष के वीर्य को स्वीकार न करे। इसकी दो दशाएँ हैं।

पहली दशा यह कि अल्लाह ने उसे ऐसा ही पैदा किया हो। क़ुरआन में है –

«वह (अर्थात अल्लाह) जिसे चाहता है बेटियाँ देता है, और जिसे चाहता है बेटे देता है, या उन्हें बेटे और बेटियाँ दोनों देता है, और जिसे चाहता है बाँझ कर देता है। निस्सन्देह वह बड़ा ज्ञानवाला और सामर्थ्यवान है।» (सूरा-42, अश-शूरा, आयतें-49,50)

ऐसी दशा में किसी जोगी-फ़क़ीर, पीर या साहिबे-क़ब्र के अधिकार में नहीं कि उसको संतान दे सके। और जो लोग संतान माँगने के लिए इनके पास जाते हैं वे अल्लाह की सत्ता का इनकार करते हैं। और यह वही शिर्क है जो इस्लाम से पहले सारे संसार में फैला हुआ था, और आज भी बहुत-सी जगहों पर फैला हुआ है।

ऐसी बाँझ स्त्रियों को केवल अल्लाह चमत्कारिक रूप से संतान देने की शक्ति रखता है।

जैसे इबराहीम (عليه السلام) को फ़रिश्तों ने एक ज्ञानी पुत्र की शुभ सूचना दी तो उनकी पत्नी ने आश्चर्य से अपने मुख पर हाथ मारा और कहा–

«मैं तो बुढ़िया बाँझ हूँ, मेरे यहाँ बच्चा कैसे पैदा हो सकता है?

फ़रिश्तों ने कहा – ऐसा ही तेरे रब ने कहा है, निस्सन्देह वह हिकमतवाला और जाननेवाला है।» (क़ुरआन, सूरा-51, अज़-ज़ारियात, आयतें 28-30)

और इसी अर्थ में एक शब्द 'आक़िर' भी आया है जिसका अर्थ है कट जाना अर्थात बाँझ स्त्री से सन्तान कट जाती है। जैसे ज़करीया के विषय में आता है कि उन्होंने कहा – "मेरी पत्नी बाँझ है। तू मुझे अपने पास से एक उत्तराधिकारी प्रदान कर जो मेरा वारिस हो और याक़ूब के कुल का भी वारिस हो। और ऐ रब, उसे मन चाहा बना।"

(कहा गया) "ज़करीया! हम तुझे एक लड़के की शुभ सूचना देते हैं जिसका नाम यहया होगा; हमने किसी को पूर्वकाल में किसी को उसके जैसा नहीं बनाया।"

उसने कहा, "रब ! मेरे यहाँ कैसे लड़का होगा जब कि मेरी स्त्री बाँझ है और मैं बुढ़ापे की अन्तिम अवस्था को पहुँच चुका हूँ?"

कहा, "ऐसा ही होगा। तेरे रब ने कहा है कि यह तो मेरे लिए सरल है, इससे पहले मैं तुझे पैदा कर चुका हूँ, जबकि तू कोई चीज़ न था।"» (क़ुरआन, सूरा-19, मरयम, आयतें–1-9)

अर्थात् बाँझ स्त्री से संतान पैदा करना अल्लाह के लिए कठिन नहीं है।

यहाँ बाँझ के लिए आक़िर शब्द प्रयुक्त हुआ है।

दूसरी दशा यह है कि स्त्री बाँझ तो नहीं है, परन्तु किसी रोग के कारण संतान नहीं हो रही है। ऐसी दशा में किसी डॉक्टर, या चिकित्सक को दिखाना चाहिए, क्योंकि अल्लाह ने हर रोग की दवा निश्चित कर रखी है। अब यह डॉक्टर और चिकित्सक का काम है कि पहले वह रोग का पता लगाए और फिर उसके लिए दवा का सुझाव दे।

अब आप स्वयं समझ सकते हैं कि इन दो दशाओं में से किसी भी दशा में किसी पीर-फ़क़ीर, जोगी-संन्यासी से कोई लाभ नहीं पहुँच सकता। यह तो एक जाल है जिसमें सीधे-साधे लोग फंस जाते हैं।

2. ऐसी हवा को भी 'रीह अक़ीम' कहते हैं जो बादलों के बग़ैर चलती हो। इससे बरबादी तो होगी ही साथ ही वर्षा न होने के कारण कोई उपज भी नहीं होगी। ऐसी ही 'रीह अक़ीम' आद की जाति की ओर भेजी गई जिसने सबको उजाड़कर बरबाद कर दिया।
3. उस दिन को भी 'अक़ीम' कहते हैं जो ख़ुशियाँ न लाए बल्कि दुख का कारण बने। (क़ुरआन, सूरा-22, अल-हज, आयत-55)

बैअत

बैअत का अर्थ है वचन देना। इसका तरीक़ा यह है कि हाथ पर हाथ रखकर वचन दिया जाए कि हम एक-दूसरे के सहायक बनेंगे, फिर इस वचन को बिना किसी कारण तोड़ना महापाप है।

इसी प्रकार की एक बैअत' का वर्णन क़ुरआन में आया है–

«निश्चय ही अल्लाह ईमानवालों से प्रसन्न हो गया, जब वे वृक्ष के नीचे तुझसे बैअत कर रहे थे। उनके दिलों में जो कुछ था अल्लाह उससे अवगत था। अत: उनपर उसने शान्ति उतारी, और बदले में शीघ्र मिलनेवाली विजय निश्चित कर दी।» (सूरा–48, अल-फ़तह, आयत–18)

यह उस बैअत की ओर संकेत है जो सन 6 हिजरी में हुदैबिया नामक स्थान पर हुई। (विस्तृत विवरण के लिए देखिए 'फ़तहे-मुबीन')

अल्लाह ने अपने नबी (ﷺ) को हुक्म दिया–

«ऐ नबी ! जब ईमानवाली स्त्रियाँ तुम्हारे पास आएँ और तुमसे इस बात की बैअत करें कि वे अल्लाह के साथ किसी को शरीक नहीं करेंगी, न चोरी करेंगी, न ज़िना करेंगी, न अपनी संतान की हत्या करेंगी और न अपने हाथों और पैरों के बीच कोई आरोप घड़कर लाएँगी और किसी भले काम में तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन न करेंगी, तो तुम उनसे बैअत ले लो और उनके लिए अल्लाह से क्षमा की प्रार्थना करो। निस्सन्देह अल्लाह बड़ा क्षमाशील और दयावान है।» (सूरा–60, अल-मुम्तहिना, आयत–12)

यह बैअ़त उन स्त्रियों से ली जाती थी जो हिजरत करके मदीना आती थीं। या उनसे जो मदीने की ही होती थीं और इस्लाम स्वीकार कर लेती थीं। ऐसी स्त्रियों को कलिमा पढ़ाकर बैअत ली जाती थी ताकि वे इस्लाम की दूसरी शिक्षाओं को भी दृढ़तापूर्वक अपनाएं। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि यह बैअत नबी (ﷺ) से की जाती थी। फिर आपके पश्चात् आप (ﷺ) के ख़लीफ़ाओं से की जाती थी, और फिर इस्लामी राज्य के हाकिम (शासक) से की जाती है जिसमें इस बात का वचन लिया जाता है कि हम शासक की आज्ञा का पालन करेंगे। किसी और व्यक्ति के हाथ पर बैअ़त करने का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

बअ़ल

बअ़ल शब्द सामी भाषा का है। जिसका अर्थ है सरदार या मालिक। फिर अरबी में यही शब्द पति के अर्थ में प्रयोग होने लगा। बअ़ल वास्तव में कनआनियों के एक देवता का नाम था, जिसकी वे पूजा करते थे। फिर उनसे फ़ीनीक़ियों ने ग्रहण किया, और जब बनी-इसराईल का इन लोगों से मेल-जोल हुआ तो इन्होंने भी इसको अपना पूज्य बना लिया। और फिर बअ़ल की पूजा पूरे फ़िलस्तीन में फैल गई। इसके बाद बअल विभिन्न नामों से प्रसिद्ध हो गया। जैसे बअ़ल शफ़ू, बअ़ल जबूब, बअ़ल वर्णस, बअ़ल तामार आदि। फिर बअ़ल ही के नाम पर दमिश्क़ के उत्तर में एक नगर भी बन गया जिसको 'बअ़ल बक' कहते हैं। इन सभी का वर्णन बाइबल में बड़े विस्तार से आया है।

"बअ़ल नामी देवता का चित्र जिसकी पूजा फ़िलस्तीन में होती थी"

अल्लाह के नबी इलयास (عليه السلام) को, जो बनी-इसराईल के नबियों में एक नबी थे, अल्लाह की बन्दगी करने की दावत के साथ इनकी ओर भेजा गया–

«निस्संदेह इलयास भी नबियों में से था। याद करो, जब उसने अपनी जाति से कहा, ''क्या तुम अल्लाह से नहीं डरते? क्या तुम बअ़ल (देवता) को पुकारते हो, और सर्वोत्तम स्रष्टा अल्लाह को छोड़ देते हो; जो तुम्हारा भी रब है और तुम्हारे अगले पूर्वजों का भी रब है।» (सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयतें–123-126)

बियअ़

'बियअ़' बीअतुन का बहुवचन है, जिससे अभिप्राय ईसाइयों का गिरजाघर है। अल्लाह ने संसार के लिए यह नियम बना दिया है कि एक के द्वारा दूसरे को हटाता रहता है। अगर ऐसा न होता तो ये आश्रम, गिरजे, यहूदियों की इबादतगाहें, मुसलमानों की मस्जिदें, जिनमें अल्लाह के नाम का स्मरण किया जाता है, सब गिरा दिए जाते, और यह दुनिया उपद्रव का केन्द्र बन जाती और क़ियामत से पहले ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाती।

क़ुरआन में इस ओर संकेत किया गया है –

«वे लोग जो अपने घरों से बिना किसी कारण के निकाल दिए गए केवल इसलिए कि उन्होंने कहा, ''हमारा रब तो अल्लाह है'' और यदि अल्लाह लोगों को एक-दूसरे से न हटाता रहता, तो ये आश्रम, गिरजे, (यहूदियों के) उपासना-गृह, तथा (मुसलमानों की) मस्जिदें, जिनमें अल्लाह का अधिक नाम लिया जाता है, सब ढा दी जातीं।» (सूरा–22, अल-हज, आयत–40)

बछड़ा

गाय का छोटा बच्चा अर्थात् बछड़ा प्राचीनकाल से ही खाने और क़ुरबानी के लिए प्रयोग होता चला आ रहा है।

जब इबराहीम (عليه السلام) को फ़रिश्ते शुभ सूचना देने आए तो उनको मेहमान समझ कर तुरन्त बछड़े का भुना माँस लेकर आए–

«फिर वह चुपके से अपने घरवालों के पास गया और एक मोटा ताज़ा बछड़ा (भुना हुआ माँस) लेकर आया, और उसे उनके सामने पेश किया और कहा, ''क्या आप खाते नहीं?''» (सूरा–51, अज़-ज़ारियात, आयतें–26,27)

परन्तु मुशरिक लोग जिस तरह अन्य लाभदायक चीज़ों को बुत बनाकर उनकी पूजा करने लगे, उसी तरह उन्होंने बछड़े का भी बुत बना लिया। मिस्री भी बछड़े का बुत बनाया करते थे जिसको 'अबीस' कहा जाता था, इसलिए उनसे प्रभावित होकर बनी-इसराईल ने भी, जब मूसा (عليه السلام) तूर पर्वत पर तौरात लेने गए थे, बछड़े का बुत बना लिया–

«याद करो, जब हमने मूसा से चालीस रातों का वादा ठहराया, तो उसके पीछे तुम बछड़े को अपना देवता बना बैठे। तुम अत्याचारी थे।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–51)

«जब मूसा ने अपनी जाति से कहा, "ऐ मेरी जाति के लोगो, तुम लोगों ने बछड़े को देवता बनाकर अपने ऊपर अत्याचार किया।"» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–54)

«तुम्हारे पास मूसा खुली निशानियाँ लेकर आया। फिर भी तुमने बछड़े को अपना देवता बना लिया, और तुम बड़े ज़ालिम थे।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–92)

«फिर वे बछड़े को अपना उपास्य बना बैठे जबकि उनके पास खुली निशानियाँ आ चुकी थीं।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–153)

मूसा (عليه السلام) ने जो अल्लाह के रसूल थे और दूसरे रसूलों की तरह ख़ालिस तौहीद (एकेश्वरवाद) की दावत लेकर आए थे, जब देखा कि उनकी जाति बछड़ा बनाकर उसकी उपासना करने लगी है, तो आप बहुत क्रोधित हो उठे, और इसी दशा में अपने भाई हारून (عليه السلام) का, जो उनके साथ नबी बनाकर भेजे गए थे, सिर पकड़कर खींचने लगे, क्योंकि मूसा (عليه السلام) तूर पर जाते हुए हारून (عليه السلام) को बनी- इसराईल पर अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर गए थे–

«जब मूसा क्रोध और दुख से भरा हुआ अपनी जाति की ओर लौटा तो उसने कहा, "तुम लोगों ने मेरे पीछे मेरी जगह बुरा किया। क्या तुम अपने रब के हुक्म से पहले ही जल्दी कर बैठे?" फिर उसने तख़्तियाँ डाल दीं, और अपने भाई का सिर पकड़कर उसे अपनी ओर खींचने लगा। वह बोला, "ऐ मेरी माँ के बेटे! लोगों ने मुझे कमज़ोर समझ लिया, और निकट था कि मुझे मार डालते। अतः शत्रुओं को मुझपर हँसने का अवसर न दे, और अत्याचारी लोगों में मुझे सम्मिलित न कर।"» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–150)

इससे पता चलता है कि हारून (عليه السلام) ने बछड़े की उपासना की इजाज़त नहीं दी थी, परन्तु इस भय से कि कहीं उनको नुक़सान न पहुँचाया जाए वे ख़ामोश रहे।

उनको यह भी डर था कि अगर सख़्ती करते हैं तो बनी-इसराईल में कहीं फूट न पड़ जाए, जैसा कि कुरआन में कहा गया है–

«उसने कहा, "ऐ मेरी माँ के बेटे! मेरी दाढ़ी न पकड़ और न मेरा सिर। मैं डरा कि तू कहेगा कि तूने बनी-इसराईल में फूट डाल दी और मेरी बात पर ध्यान न दिया।"»
(सूरा–20, ता. हा., आयत–94)

हारून के कथन से बाइबल के इस दावे का खंडन होता है कि बछड़ा बनानेवाले और उसकी इबादत करनेवाले हारून थे, जिन्होंने बनी-इसराईल की स्त्रियों से सोने की बालियाँ इकट्ठा कीं और फिर हारून ने उन्हें अपने हाथ में लिया, और सोने का एक बछड़ा ढाल कर बनाया और कहा–

"ऐ इसराईल! यह तुम्हारा ख़ुदा है जो तुम्हें मिस्र देश से छुड़ा लाया है। और फिर उसके आगे एक बलि-स्थल बनाया, ताकि कल से लोग क़ुरबानी करें।" (देखिए : निर्गमन, 32:4-6)

जबकि सही बात यह है कि बछड़ा बनानेवाला सामरी नामक व्यक्ति था, जिसका वर्णन क़ुरआन में आया है। अधिकतर व्याख्याकारों का विचार है कि यह कोई मुनाफ़िक़ था, जो मूसा (ﷺ) पर ईमान लानेवालों को पथभ्रष्ट किया करता था। हमारे पास उसके विषय में कोई अधिक जानकारी नहीं है। बहरहाल यह कोई बुतपूजक था, जो किसी प्रकार बनी इसराईल के साथ मिस्र से निकलकर सीना में आ गया था, जहाँ मूसा (ﷺ) अपनी जाति के साथ चालीस साल तक रुके रहे।

मूसा (ﷺ) ने भी सामरी से वार्तालाप किया –

«(मूसा ने) कहा, "ऐ सामरी! तेरा क्या मामला है?" उसने कहा, "मैंने वह कुछ देखा जिसे औरों ने नहीं देखा, फिर मैंने रसूल के पद- चिह्नों से एक मुट्ठी मिट्टी ली, फिर उसको (बछड़े में) डाल दिया। मेरे जी ने मुझे ऐसी ही पट्टी पढ़ाई।" (मूसा ने) कहा, "अच्छा तो जा! अब इस जीवन में तेरे लिए यही है कि कहता रहे कि 'मुझे कोई छुए नहीं!' और निश्चय ही तेरे लिए (आख़िरत में यातना का) एक निश्चित वादा है जो तुझसे कदापि नहीं टलेगा। और देख अपने इलाह (इष्ट देव) को, जिसपर तू रीझा-जमा बैठा है, निश्चय ही हम इसे जला डालेंगे फिर इसे चूरा-चूरा कर के दरिया में बहा देंगे।" (लोगो!) तुम्हारा इलाह (पूज्य) तो बस वही अल्लाह है, जिसके सिवा कोई 'इलाह' नहीं। अपने ज्ञान से वह हर चीज़ को व्याप्त है।»
(सूरा–20, ता-हा, आयतें–95-98)

इस प्रकार बनी-इसराईल के दिलों में बछड़े की मुहब्बत बैठ गई, जिसके कारण वे उसकी बंदगी से स्वतंत्र न हो सके –

«याद करो जब हमने तुमसे वचन लिया, और तूर को तुमपर उठाए रखा, (और कहा,) ''जो कुछ तुम्हें दिया जा रहा है उसे दृढ़ता से पकड़ लो'' और सुनो, उन्होंने कहा, ''हमने सुना परन्तु अवज्ञा की'' उनके कुफ़्र के कारण उनके दिलों में बछड़ा बस गया।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–93)

क़ुरआन में इन बछड़े की पूजा करनेवालों को दुनिया और आख़िरत में यातना की ख़बर दी गई है –

«जिन लोगों ने बछड़े को अपना उपास्य बनाया, वे अपने रब की ओर से प्रकोप और सांसारिक जीवन में अपमान में ग्रस्त होकर रहेंगे और झूठ घड़नेवालों को हम ऐसा ही बदला देते हैं।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–152)

यहूदियों के इतिहास से भी पता चलता है कि वे बछड़े की मुहब्बत से कभी अलग नहीं हो सके। बनी-इसराईल का राज्य जब दो भागों में बंट गया तो यरबआम-बिन-नाबात ने, जो उत्तरी भाग का पहला राजा था, बछड़े के दो बुत बनाए, एक को 'ईल' में और दूसरे को 'दान' में रखवा दिया, फिर बनी-इसराईल बछड़े के साथ-साथ बैल का भी बुत बनाने लगे और अपने पूजाघरों में रखने लगे, जिसके कारण उनमें बछड़े और बैल की पूजा प्रचलित हो गई। बाइबल में भी बार-बार इन दोनों का वर्णन हुआ है।

बकरी

प्राचीन काल से मनुष्य बकरी पालता चला आ रहा है, क्योंकि इसके पालने में एक बात तो यह है कि कोई कठिनाई नहीं होती, दूसरे इसका मांस, दूध, ऊन, चमड़ा अर्थात प्रत्येक वस्तु प्रयोग में आती है। नबियों के बारे में प्रसिद्ध है कि वे बकरियाँ चराया करते थे। मूसा (ﷺ) के विषय में क़ुरआन में आया है कि जब उनसे पूछा गया–

«ऐ मूसा, ''यह तेरे दाहिने हाथ में क्या है?'' उसने कहा, ''यह मेरी लाठी है। मैं इसपर टेक लगाता हूँ और इससे अपनी बकरियों के लिए पत्ते झाड़ता हूँ।''» (सूरा–20, ता-हा, आयतें–17,18)

नबी (ﷺ) के विषय में भी आता है कि आप नुबूवत से पहले मक्कावालों की बकरियाँ चराया करते थे।

अल्लाह ने जिन पशुओं का मांस हलाल बताया है, उनमें बकरी भी है। अर्थात् बकरी की जांति चाहे वह नर हो या मादा, बकरी हो या भेड़, सभी का मांस हलाल है। क़ुरआन में है –

«आठ नर-मादा पैदा किए — दो भेड़ की जाति से, और दो बकरी की जाति से ..... और दो ऊँट की जाति से, और दो गाय की जाति से..... ।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयतें–143,144)

अब अगर किसी ने इनमें से किसी को अपने ऊपर हराम कर लिया तो यह उसकी ग़लती है, अल्लाह ने इसे हराम नहीं किया है, बल्कि वह तो उन लोगों से पूछता है जो इस पशु का मांस खाना हराम समझते हैं कि क्या अल्लाह ने इसे हराम किया है ? क्या तुम उस समय उपस्थित थे, जब तुम्हारे कथनानुसार अल्लाह ने इनमें से किसी के बारे में हराम का आदेश दिया था ?

«क्या तुम उस समय उपस्थित थे, जब अल्लाह ने इसका आदेश दिया था ? फिर उससे बड़ा अत्याचारी कौन होगा जो लोगों को पथभ्रष्ट करने के लिए अज्ञानतापूर्वक अल्लाह पर मिथ्या आरोप लगाए। निश्चय ही, अल्लाह अत्यचारियों को मार्ग नहीं दिखाता।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–144)

बकरी उन आठ जोड़ियों में से एक है जिसकी क़ुरबानी जायज़ है, जबकि धर्म से विद्रोह के कारण अल्लाह ने यहूदियों पर गाय एवं बकरी की चर्बी हराम कर दी, सिवाय उसके कि जो दोनों की पीठ एवं आँतों से लगी हुई या हड्डी से लिपटी हो। (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–146)

बन्दर

बन्दर एक पशु है। यह अधिकतर भारत और अफ़्रीक़ा में पाया जाता है। सुलैमान (अलैहि०) का व्यापारिक बेड़ा, जो समुद्र में इधर से उधर जाया करता था, उसमें कभी-कभी बन्दर भी जाया करते थे। (देखिए: बाइबल, राजा, 10:22)

क़ुरआन में तीन बार बन्दरों का वर्णन आया है और तीनों बार उन जातियों के संदर्भ में है जिन्होंने अल्लाह से विद्रोह किया और उसके आदेशों का उल्लंघन किया, तो अल्लाह ने उनको धिक्कारे और फिटकारे हुए बन्दर बना दिया। (देखिए: सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–65, सूरा–5, अल-माइदा, आयत–60, सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–166)

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

इसका अर्थ है 'अल्लाह के नाम से, जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान् है।' प्रत्येक महत्वपूर्ण काम करने से पूर्व बिस्मिल्लाह पढ़ना आवश्यक है। क़ुरआन में सूरा–9, अत-तौबा के अतिरिक्त प्रत्येक सूरा का आरम्भ इसी कलिमे से होता है। इसलिए कुछ विद्वानों का विचार है कि

'बिस्मिल्लाहि-र्रहमानिर्रहीम' प्रत्येक सूरा की पहली आयत है। इसलिए जब भी कोई नई सूरा पढ़ी जाए तो *'बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'* पढ़ना अनिवार्य है केवल सूरा–9, अत-तौबा के अतिरिक्त। और जो विद्वान इसे सूरा की आयत नहीं मानते, उनके विचार में *'बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'* को मन-ही-मन में पढ़ लेना चाहिए। हाँ, इस बात पर सभी लोग सहमत हैं कि *'बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'* सूरा–27, अन-नम्ल की एक आयत है, क्योंकि सुलैमान (عليه السلام) ने जो पत्र सबा की रानी के नाम लिखा था उसका प्रारम्भ *'बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'* ही से किया था–

«वह बोली ऐ सरदारो! मेरे पास एक बहुत ही प्रतिष्ठित पत्र आया है। वह सुलैमान की ओर से है। और वह यह है कि 'अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है।' (अर्थात *'बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'* से आरंभ किया गया है)» (सूरा–27, अन-नम्ल, आयतें–29,30)

इसी प्रकार नूह (عليه السلام) ने भी नौका बनाने के बाद लोगों से कहा–

«तथा नूह ने कहा, ''इस नाव में बैठ जाओ। अल्लाह ही के नाम से इसका चलना तथा ठहरना है।''» (सूरा–11, हूद, आयत–41)

सहीह हदीसों में आया है कि नबी (ﷺ) स्वयं भी किसी काम से पहले *'बिस्मिल्लाह'* कहा करते थे, और अपने साथियों को भी ऐसा करने का आदेश देते थे। एक बार आप (ﷺ) के पास कुछ खाना आया आपके साथ उमर-बिन-अबी सलमा बैठे थे। वे आप (ﷺ) की पत्नी उम्मे-सलमा के पुत्र थे। वे थाल में रखे हुए खाने को इधर-उधर से खा रहे थे। इस पर आप (ﷺ) ने आदेश दिया–

''ऐ बच्चे! अल्लाह का नाम ले, दाएँ हाथ से खा और जो तुझसे निकट है उसमें से खा।'' (बुख़ारी 5376 तथा मुस्लिम, 2022)

अल्लाह का नाम ले अर्थात् *'बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'* पढ़कर खाना शुरू कर।

इस हदीस से जहाँ यह पता चलता है कि हर काम से पहले *बिस्मिल्लाह* कहना चाहिए, वहीं खाने-पीने के आदाब का भी पता चलता है।

अगर कोई व्यक्ति किसी काम के प्रारम्भ में *बिस्मिल्लाह* कहना भूल जाए तो जब याद आए पढ़ ले। क्योंकि जो काम भी अल्लाह के नाम के साथ प्रारम्भ किया जाएगा उसमें बरकत होगी, परन्तु एक प्रसिद्ध हदीस में कहा गया है कि जो काम *बिस्मिल्लाह* से आरम्भ न किया जाए वह अधूरा और बेबरकत है।

इसी प्रकार अनिवार्य है कि पशु ज़िब्ह करते समय अल्लाह का नाम लिया जाए। और अगर अल्लाह का नाम न लिया गया तो उसका खाना वर्जित है –

«जिस (पशु) पर अल्लाह का नाम न लिया जाए उसे न खाओ, निश्चय ही उसका खाना आज्ञा का उल्लंघन है।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–121)

और इसी के साथ-साथ यह भी फ़रमाया गया–

«यदि तुम उसकी आयतों पर ईमान रखनेवाले हो तो फिर जिस (पशु) पर अल्लाह का नाम लिया गया हो उसे खाओ।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–118)

''मुसलमान पर अनिवार्य है कि ज़िब्ह करते समय बिस्मिल्लाह कहे। अगर अल्लाह का नाम नहीं लिया गया तो ऐसी दशा में वह जानवर हलाल नहीं रहेगा। परन्तु अगर इस बात में सन्देह हो गया हो कि अल्लाह का नाम लिया गया है या नहीं तो सन्देह की इस दशा में नबी (ﷺ) का आदेश है कि तुम अल्लाह का नाम लो और उसे खाओ।'' (सहीह बुख़ारी, 5507)

भ
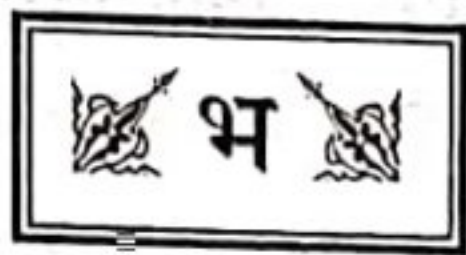
भिक्षावृत्ति

इस्लाम एक एकेश्वरवादी धर्म है। इसलिए सिवाय अल्लाह के किसी से कुछ माँगना ग़लत है। क्योंकि जब जीविका देनेवाला अल्लाह है तो फिर किसी और से क्यों माँगें। जो कुछ माँगना है केवल उसी से माँगना है। जब हम उसी से माँगेंगे तो देने का कोई प्रबन्ध वही करेगा। हमें तो केवल सत्यमार्ग अपनाने का हुक्म है। जीविका प्राप्त करने के लिए भी उचित मार्ग अपनाने का हुक्म है। ग़लत मार्ग के द्वारा जीविका प्राप्त करना निषिद्ध है। इसलिए क़ुरआन तथा सहीह हदीसों में भिक्षावृत्ति की कठोर निन्दा की गई है।

अल्लाह ने उन लोगों की प्रशंसा की है जो लोगों से चिमट चिमटकर नहीं माँगते और ज़कात उनका हक़ बताया है। ज़कात विशेष रूप से ऐसे लोगों को ढूँढ-ढूँढकर देनी चाहिए। वही इसके वास्तविक पात्र हैं।

«यह (ज़कात) तो उन निर्धनों के लिए है जो अल्लाह की राह में घिरे हुए हैं, जिसके कारण (जीविकोपार्जन के लिए) धरती में भाग-दौड़ नहीं कर सकते। उनके स्वाभिमान के कारण अपरिचित व्यक्ति उन्हें धनवान समझते हैं, जबकि तुम उन्हें उनके लक्षणों से पहचान सकते हो। वे लोगों से चिमट-चिमटकर नहीं माँगते। और जो माल भी तुम ख़र्च करोगे, तो निस्सन्देह अल्लाह उसका जाननेवाला है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–273)

एक सहीह हदीस में आया है–

"ऊँचा हाथ नीचेवाले हाथ से उत्तम है, ऊँचा हाथ देनेवाला होता है, और नीचा हाथ लेनेवाला होता है।" (सहीह बुख़ारी, 1429, सहीह मुस्लिम, 1033)

एक दूसरी हदीस में नबी (ﷺ) ने शपथ देकर कहा–

"कोई अपनी रस्सी लेकर लकड़ी इकट्ठा करे, फिर उसे बेचे और उससे खाए तथा दान करे तो यह इससे उत्तम है कि वह किसी के पास जाकर उससे माँगे। पता नहीं वह देता है या नहीं।" (बुख़ारी, 1470 तथा मुस्लिम, 1042)

सौबान नामक एक सहाबी का कथन है कि नबी (ﷺ) ने फ़रमाया–

"कौन है जो मुझे एक वचन दे जिसके बदले उसे जन्नत मिले?" सौबान ने कहा, "मैं वह वचन देता हूँ।" नबी (ﷺ) ने फ़रमाया, "किसी से कोई चीज़ न माँगना।"

सौबान के विषय में उल्लेख मिलता है कि अगर उनका कोड़ा भी गिर जाता था तो किसी से उठाने की माँग नहीं करते थे, बल्कि स्वयं घोड़े से उतरकर उठा लेते थे। (मुस्नद अहमद, 5:217, इब्ने-माजा–1837, नसई 5:96)

एक सहीह हदीस में आया है–

"जिसने अपने धन को बढ़ाने के लिए लोगों से भिक्षा (भीख) माँगी तो वास्तव में उसने आग का गोला माँगा। अब जो चाहे अपने धन को घटाए, और जो चाहे बढ़ाए।" (सहीह मुस्लिम 1041)

अर्थात् आग का गोला माँगकर अपना धन बढ़ाए, या न माँगकर घटाए और यह आग का गोला जहन्नम का गोला होगा।

परन्तु अगर किसी को माँगे बिना कुछ मिल रहा हो तो उसको स्वीकार करना उत्तम बताया गया है। जैसा कि एक सहीह हदीस में आया है कि नबी (ﷺ) ने उमर (ﷺ) को कुछ दान दिया, उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आप इसे किसी ऐसे व्यक्ति को दे दें, जो मुझसे अधिक निर्धन है।" इस पर नबी (ﷺ) ने फ़रमाया–

"इसको ले लो, जो धन तुम्हारे पास माँगे बिना तथा लालच के बग़ैर आए उसे स्वीकार कर लो, और जो न मिले उसका लालच न करो।" (बुख़ारी, 1473 तथा मुस्लिम, 1045)

एक दूसरी हदीस में नबी (ﷺ) ने हकीम-बिन-हिज़ाम को संबोधित करके फ़रमाया –

"ऐ हकीम! यह धन, ताज़ा हलवा है, तो जिसने इसे लालच के बिना लिया उसके धन में बरकत होगी और जो लालच से लेगा उसे बरकत प्राप्त नहीं होगी।" (बुख़ारी, 1472 तथा मुस्लिम 1035)

एक और हदीस में आया है–

"जिस किसी को उसके भाई की ओर से कोई भलाई पहुँची बग़ैर माँगे तथा बग़ैर लालच के तो वह अल्लाह की ओर से उसकी जीविका है।" (मुस्नद अहमद, 17936)

क़ुरआन और हदीस में जहाँ माँगनेवाले की निन्दा की गई है, वहीं भिक्षा देनेवाले के सम्बन्ध में भी कुछ शिक्षाएँ दी गई हैं। उनमें से कुछ ये हैं–

1. भिक्षुक को झिड़कने से मना किया गया है–

«जो माँगनेवाला हो उसे झिड़को नहीं।» (सूरा–93, अज़-ज़ुहा, आयत–10)

अर्थात् भीख माँगना तो ग़लत है ही परन्तु उससे भी बड़ी ग़लती यह है कि माँगनेवाले को झिड़का जाए।

2. किसी भिक्षुक को ख़ाली हाथ लौटाना पसन्दीदा नहीं।

एक हदीस में नबी (ﷺ) ने फ़रमाया–

"नरक की आग से बचो चाहे वह खजूर का एक टुकड़ा ही देकर क्यों न हो।" (बुख़ारी, 1417 तथा मुस्लिम, 1:16)

इस्लाम वास्तव में आपस में प्रेम तथा भाईचारा बढ़ाने पर बहुत अधिक बल देनेवाला धर्म है। इसलिए क़ुरआन में बार-बार अल्लाह के मार्ग में ख़र्च करने का आदेश आया है, बल्कि सलात (उपासना) के साथ-साथ ज़कात का भी वर्णन है। इसलिए नबी (ﷺ) ने जहन्नम की आग से बचने के लिए भिन्न-भिन्न उपाय बताए हैं। उनमें से एक यह भी है कि अपने रिश्तेदारों, अनाथों तथा निर्धनों पर धन ख़र्च किया जाए। इसके द्वारा अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त होती है और जिससे अल्लाह प्रसन्न हो गया उसका निवास स्वर्ग है।

अतः माँगनेवाले को ख़ाली हाथ नहीं लौटाना चाहिए, बल्कि कुछ न कुछ देकर लौटाना चाहिए, चाहे वह जानवर का भुना हुआ पाया ही क्यों न हो। (अबू दाऊद, 1666, तिरमिज़ी, 665, नसई, 257)

3. वास्तविक मोहताज वह है जो प्रश्न करने से बचता है।

सहीह हदीस में आया है–

"वास्तविक मोहताज वह नहीं है जो एक-एक, दो-दो लेनेवाले के लिए अथवा एक-एक, दो-दो खजूर के लिए लोगों के द्वार-द्वार फिरता है।" लोगों ने पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! फिर ग़रीब कौन है?" आप (ﷺ) ने उत्तर दिया, "ग़रीब वह है जो प्रश्न नहीं करता। उसकी दशा देखकर लोग यह नहीं समझते कि वह निर्धन है, और न ही वह लोगों के सामने हाथ फैलाता है।" (बुख़ारी, 1479 तथा मुस्लिम 1039)

इसलिए लोगों को चाहिए कि वे स्वयं ऐसे निर्धनों को तलाश करें जो उनकी ज़कात, दान आदि लेने के पात्र हों।

ये जो घूम-फिरकर माँगते रहते हैं वास्तव में सदक़ात व ज़कात आदि पाने के अधिकारी नहीं हैं। बल्कि इन लोगों ने काम से बचने के लिए माँगने का धंधा अपना लिया है। इस्लाम धर्म की शिक्षाओं में काम करने और अपनी जीविका हलाल काम द्वारा प्राप्त करने की बड़ी महत्ता है। इसके पश्चात् भी उसको पूरी जीविका नहीं मिल पाती है तो फिर उसको ज़कात या सदक़ात दिए जा सकते हैं।

भेड़िया

भेड़िया एक दरिन्दा (हिंसक पशु) है, जो अपने शिकार को चीर-फाड़ करने में प्रसिद्ध है। इसलिए लूट-मार करनेवाले तथा अत्याचारी व्यक्तियों की उपमा भेड़िये से दी जाती है। जैसे बाइबल में याक़ूब (عليه السلام) ने अपनी मृत्यु से पहले अपनी संतान को इकट्ठा किया और हर एक के विषय में बताया कि अन्तिम दिनों में उनपर क्या कुछ बीतेगा। बिनयामीन, जो यूसुफ़ (عليه السلام) के छोटे भाई थे, के विषय में फ़रमाया–

''बिनयामीन फाड़नेवाला भेड़िया है, वह सुबह को शिकार खाएगा, और शाम को लूट का माल बाँटेगा।'' (देखिए : उत्पत्ति, 49:27)

यहाँ बिनयामीन से अभिप्राय उनकी सन्तान है इसलिए स्वयं बाइबल से पता चलता है कि जब बनी-इसराईल आपस में लड़ पड़े तो बिनयामीन की सन्तान ने गिबा से निकलकर उसी दिन बाईस हज़ार इसराईली पुरुषों को मारकर मिट्टी में मिला दिया। (देखिए : न्याय, 20:21)

क़ुरआन की सूरा–12, यूसुफ़ में भेड़िया शब्द तीन बार प्रयुक्त हुआ है, जो यूसुफ़ (ﷺ) के वृत्तान्त के संदर्भ में है। पहली बार तो उस समय इस शब्द का प्रयोग हुआ है जब यूसुफ़ के भाइयों ने अपने पिता से कहा–

«हमारे साथ कल उसे भेज दीजिए, कि वह कुछ चर-चुग और खेल ले और उसकी रक्षा के लिए तो हम हैं ही। उस (याक़ूब) ने कहा, ''यह बात मुझे दुखी कर रही है कि तुम उसे ले जाओ। कहीं ऐसा न हो कि तुम उसका ध्यान न रख सको, और भेड़िया उसे खा जाए।''»

दूसरी बार–

«वे बोले, ''हमारे एक जत्थे के होते हुए अगर उसे भेड़िया खा जाए तो अवश्य ही हम सब कुछ गँवा देनेवाले हैं।''»

«फिर जब वे लोग उसे ले गए और इस बात पर सहमत हो गए कि उसे एक गहरे कुएँ की तह में डाल दें तो हमने उसे वह्य के द्वारा सचेत कर दिया कि (घबराओ नहीं) एक समय आएगा कि तू इन्हें इनकी यह बात जताएगा और इन्हें कुछ भी ख़बर न होगी।»

तीसरी बार–

«अन्धेरा हो जाने पर वे रोते हुए अपने पिता के पास आए, और कहने लगे, ''ऐ हमारे पिता, हम दौड़ का मुक़ाबला करने में लग गए, और यूसुफ़ को अपने सामान के पास छोड़ दिया कि इतने में भेड़िया उसे खा गया। आप तो हमारा विश्वास नहीं करेंगे, चाहे हम सच्चे ही क्यों न हों।''» (सूरा–12, यूसुफ़, आयतें–12-17)

(अधिक जानकारी के लिए यूसुफ़ (ﷺ) का वृत्तान्त देखिए।)

म

मीकाईल

मीकाईल एक फ़रिश्ते का नाम है, जिसका वर्णन कुरआन में केवल एक स्थान पर हुआ है –

«**जो अल्लाह के, उसके फ़रिश्तों के, उसके रसूलों के, जिबरील एवं मीकाईल के शत्रु हों तो ऐसे काफ़िरों का शत्रु अल्लाह है।**» (सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-98)

यहूदी मीकाईल को तो अपना मित्र समझते थे परन्तु जिबरील को अपना शत्रु समझते थे। अल्लाह इस विचार का खण्डन करते हुए कहता है कि ये सब मेरे दास हैं, जिनको मैंने विभिन्न कामों पर लगा रखा है। इसलिए इनमें से किसी की शत्रुता स्वयं मेरी शत्रुता है।

मीकाईल को इबरानी भाषा में मीख़ाईल कहते हैं जिसका अर्थ है 'कौन है अल्लाह जैसा?' बाइबल में मीख़ाईल को प्रधान स्वर्गदूत कहा गया है। (दानियाल 10:13, 12:1 तथा यहूद का पत्र-9)

और यही मीख़ाईल हैं जो क़ियामत के दिन मुर्दों को उठाएँगे। (देखें थिस्सलुनीकियों 4:16)

लेकिन कुछ इस्लामी-शास्त्रों में आता है कि इसराफ़ील क़ियामत के दिन सिंघा बजाएंगे और लोग अपनी क़ब्रों से निकल पड़ेंगे। लेकिन किसी भी हदीस की सनद सहीह नहीं है। परन्तु प्रसिद्ध यही है कि सिंघा बजानेवाले फ़रिश्ते का नाम इसराफ़ील है। हाँ इसराफ़ील का वर्णन सहीह हदीसों में आता तो है परन्तु सिंघा बजानेवाले फ़रिश्ते की हैसियत से नहीं, बल्कि किसी और हैसियत से। (उदाहरण के लिए देखें सहीह मुस्लिम 770)

मूसा (عليه السلام)

मूसा (عليه السلام) का वर्णन कुरआन में बहुत विस्तार से हुआ है क्योंकि उनके जीवन-चरित्र में भिन्न-भिन्न शिक्षाएँ पाई जाती हैं। हम आसानी के लिए उनके जीवन को तीन काल-खण्डों में बांट सकते हैं–

प्रथम काल खण्ड : पैदाइश से लेकर चालीस वर्ष की उम्र तक। हम इस विवरण में जो कुछ जानते हैं वह यह कि मूसा (عليه السلام) मिस्र में लगभग 1527 ईसा पूर्व पैदा हुए। यह फ़िरऔन रामसीस तृतीय का काल था, जिसको ज्योतिषियों ने बताया था कि तुम्हारी हत्या बनी- इसराईल के एक युवक के द्वारा होगी। इसलिए उसने 'सिफ़रा' और 'कुआ' नामक दो दाइयों को आदेश दिया कि बनी-इसराईल में जितने पुत्र पैदा हों, उनको क़त्ल कर दिया जाए–

«**हम तुम्हें मूसा और फ़िरऔन का कुछ वृत्तान्त ठीक-ठीक सुनाते हैं। उन लोगों के फ़ायदे के लिए, जो ईमान लाना चाहें। निस्सन्देह फ़िरऔन ने धरती में बड़ी सरकशी**

की। उसने धरती के निवासियों को विभिन्न गरोहों में बाँट दिया। उनमें से एक गरोह को कमज़ोर कर रखा था। वह उनके बेटों को अधिकतर ज़बूह करता और उनकी स्त्रियों को जीवित रहने देता। अवश्य ही वह बड़ा बिगाड़ पैदा करनेवालों में से था।» (क़ुरआन, सूरा–28, अल-क़सस, आयतें–3,4)

मूसा अलैहिस्सलाम
मिस्र से मदयन और मदयनसे मिस्र
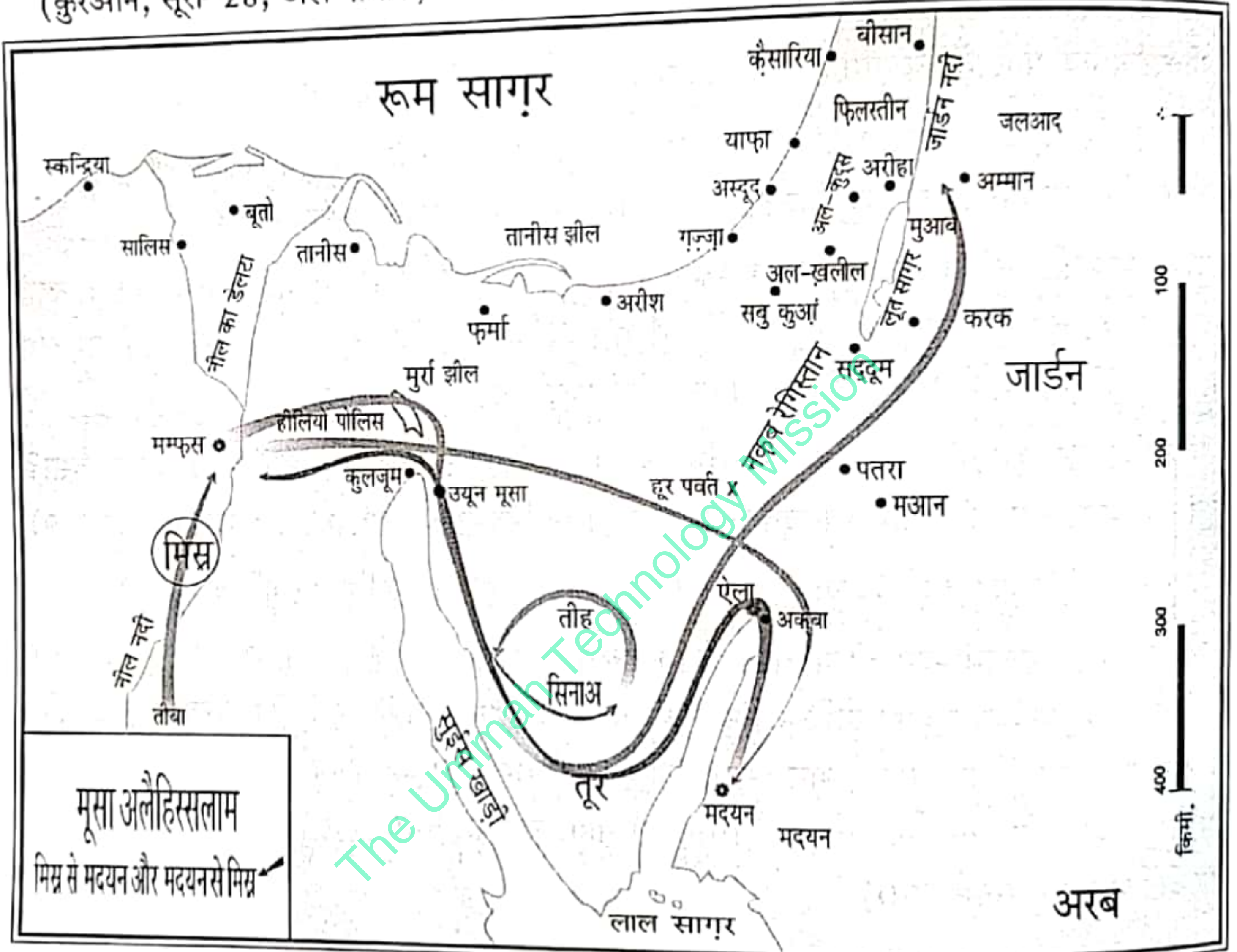
जब मूसा पैदा हुए तो उनकी माता तीन माह तक दूध पिलाती रहीं और उनको अपने पास रखा लेकिन जब भेद प्रकट हो गया तो अल्लाह के हुक्म से एक टोकरे में रख कर दरिया में डाल दिया। वह टोकरा बहते-बहते उस स्थान पर पहुँच गया, जहाँ फ़िरऔन के घरवाले स्नान किया करते थे। उन लोगों को उसपर प्यार आ गया, और उसको घर ले गए। कहा जाता है कि फ़िरऔन को उस बच्चे को घर में लाना कुछ अधिक पसंद नहीं आया इसलिए उसकी पत्नी ने समझाया कि यह बालक हमारी आँखों की ठंडक बनेगा। और हम इसे अपना बेटा बना लेंगे, क्योंकि उनके कोई पुत्र नहीं था। इधर मूसा की माता बेटे की जुदाई से दुखी थीं। अल्लाह ने ऐसा किया कि मूसा फ़िरऔन के घर में किसी का दूध नहीं पीते थे, इसलिए फ़िरऔन की स्त्री को इस बात की चिन्ता हुई। इतने में मूसा की बड़ी बहन मरयम ने, जो दरिया के किनारे-किनारे चल रही थी, देखा कि फ़िरऔन की स्त्री बच्चे को अपने घर ले गई है। वह भी वहाँ पहुँच गई और बच्चे को रोते देखा तो उसने कहा कि मैं कोई ऐसी स्त्री लाती

हूँ जिसका दूध यह पी ले। तब वह अपनी माँ को लेकर फ़िरऔन के घर चली गई। इस प्रकार मूसा अपनी माता का दूध पीते हुए फ़िरऔन के घर में पलने लगे। और माँ की चिन्ता भी दूर हो गई। क़ुरआन मजीद में आया है—
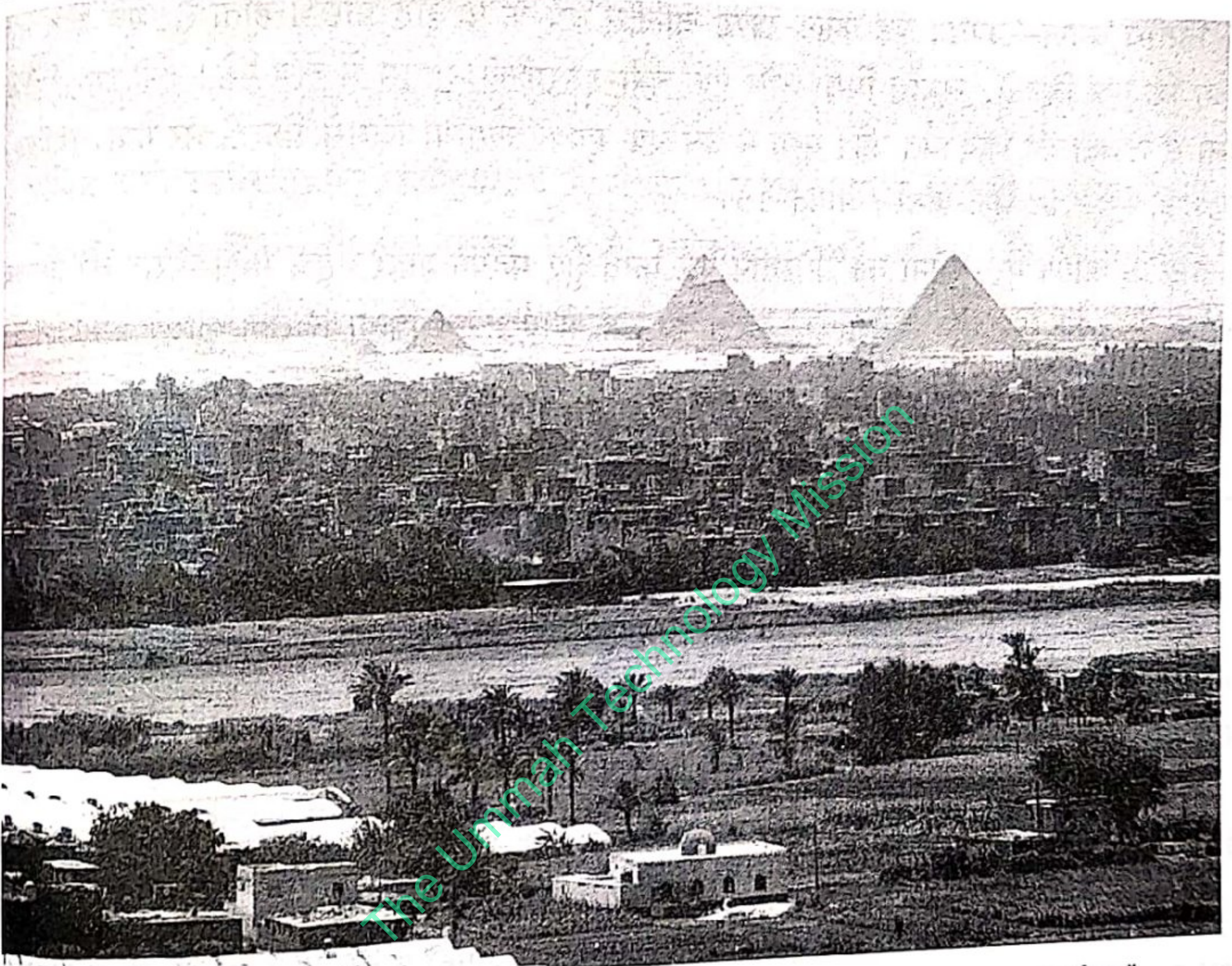
"दरिया नील (जिसमें मूसा عليه السلام को डाल दिया गया था) का एक खूबसूरत मंज़र"

«माँ की चिन्ता दूर करने के लिए अल्लाह ने कहा, ''हम उसको तुम्हारे पास लौटा देंगे और उसको रसूल बनाएंगे।''» (सूरा—28, अल-क़सस, आयत—7)

तौरात की किताब निर्गमन में भी इसका पूरा विवरण आया है। (देखिए : 2:5-10)

और मूसा फ़िरऔन के राज-भवन में पलते रहे, यहाँ तक कि हर प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर लिया। और आप लगभग चालीस वर्ष के हो गए तो आपको मिस्र से निकलना पड़ा, जिसका विवरण बाद में आ रहा है। उसके बाद आप को नबी और रसूल बनाया गया—

«जब वह अपनी युवावस्था को पहुँचा और भरपूर हो गया, तो हमने उसे निर्णय-शक्ति और ज्ञान प्रदान किया। और उत्तमकारों को हम इसी प्रकार बदला देते हैं।»

(सूरा—28, अल-क़सस, आयत—14)

इस आयत में यह वर्णन तो नहीं है कि मूसा (अलैहि॰) कितने वर्षों तक मिस्र में रहे, मगर बाइबल की कुछ आयतों से पता चलता है कि वे चालीस वर्ष तक मिस्र में रहे। परन्तु स्वयं बाइबल में इस काल का पूरा विवरण नहीं मिलता।

द्वितीय काल-खण्ड : यह काल-खण्ड चालीस वर्ष के पश्चात् प्रारम्भ होता है। एक दिन ऐसा हुआ कि एक क़िब्ती, अर्थात् मिस्री और एक बनी-इसराईली आपस में लड़ पड़े। बनी इसराईली ने मूसा से क़िब्ती की शिकायत की। मूसा ने उसे एक मुक्का लगाया जिससे क़िब्ती मर गया। (देखिए: क़ुरआन, सूरा–28, अल-क़सस, आयत-15)

भय के कारण मूसा सीना का रेगिस्तान पार करते हुए मदयन शहर पहुँच गए। तौरात की किताब निर्गमन में है कि फ़िरऔन ने मूसा को क़त्ल करने के लिए तलब किया जिसके कारण वे मदयन की ओर चले गए।

मदयन में एक कुएँ के पास वे ठहर गए, जहाँ चरवाहे अपनी भेड़-बकरियों को पानी पिलाने लाते थे। वहाँ देखा कि दो लड़कियाँ अपनी बकरियों को पानी पिलाने की प्रतीक्षा में खड़ी हैं। वे दोनों एक पुरोहित की पुत्रियाँ थीं। मूसा (अलैहि॰) आगे बढ़े और उनकी बकरियों को पानी पिला दिया। थोड़ी देर बाद उनमें से एक लजाती हुई आई और कहा, "मेरे पिता आपको बुला रहे हैं।" मूसा मदयन के पुरोहित के घर गए। कुछ विद्वानों का विचार है कि वे हज़रत शुऐब (अलैहि॰) थे। परन्तु यह विचार सही नहीं है। पुरोहित मूसा को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। और मूसा ने अपनी पूरी कहानी उसको सुना दी। पुरोहित ने कहा, "अगर तुम हमारी आठ वर्ष सेवा करो तो हम उसके बदले एक पुत्री से तुम्हारा विवाह कर देंगे। और अगर पूरे दस वर्ष तक रहो तो यह तुम्हारी ओर से होगा।" (सूरा–28, अल-क़सस, आयतें-24-29)

सेवा-काल पूरा करने के पश्चात् मूसा (अलैहि॰) एक दिन अपनी पत्नी को लेकर जा रहे थे कि तुवा नामक घाटी में तूर नामक पहाड़ी पर आग जलते देखी। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि मैं वहाँ से आग लेकर आता हूँ और रास्ता भी मालूम कर लूँगा। वे पत्नी को वहीं छोड़कर घाटी में चले गए, तो उनको यह आवाज़ सुनाई पड़ी–

«ऐ मूसा! मैं ही तेरा रब हूँ। अपने जूते उतार दे, तू पवित्र घाटी तुवा में है। और मैंने तुझे चुन लिया है (अर्थात् नबी बनाया है)। तो सुन, जो कुछ 'वह्य' की जाती है। निस्सन्देह मैं ही अल्लाह हूँ। मेरे अतिरिक्त कोई इलाह (पूज्य-प्रभु) नहीं। अतः तू मेरी ही इबादत कर। और मेरे ज़िक्र के लिए नमाज़ क़ायम कर।» (क़ुरआन, सूरा–20, ता-हा, आयतें-11-14)

इसी के साथ उनको हुक्म दिया गया कि वे फ़िरऔन के पास जाएँ, जो पृथ्वी पर बड़ा फ़साद मचाए हुए है। उसको अल्लाह से डराएँ। मूसा (अलैहि॰) ने अल्लाह से सिफ़ारिश की कि मेरे साथ मेरे भाई हारून को भी नबी बना दे, ताकि वह मेरी सहायता करे। अल्लाह ने उनकी सिफ़ारिश क़बूल कर ली

और हारून को भी नबी बना दिया। इसी के साथ मूसा (ﷺ) को अल्लाह ने नौ चमत्कार भी दिए जिनका वर्णन पवित्र क़ुरआन में इस प्रकार हुआ है –

«**हमने मूसा को नौ खुली निशानियाँ प्रदान की थीं।**» (सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–101)

इन निशानियों का विस्तृत वर्णन पवित्र क़ुरआन में एक जगह इस प्रकार किया गया है –

«**फिर हमने उनपर तूफ़ान, टिड्डियाँ, जुएँ, मेंढक और रक्त भेजा। कितनी ही निशानियाँ अलग-अलग करके भेजीं। परन्तु उन्होंने अहंकार किया। और वे थे ही अपराधी लोग।**» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–133)

इस आयत में पाँच चमत्कारों का वर्णन है –

1. **मूसलाधार वर्षा :** बहुत तेज़ हवा या समुद्रों में उठनेवाली तेज़ लहरों को तूफ़ान कहते हैं। उपर्युक्त आयत में जिस वर्षा का वर्णन है वह इतनी तेज़ थी कि नील नदी में भयंकर बाढ़ आ गई। और सारे खेत और जानवर पानी में डूब गए। मिस्र में बहुत बड़ी तबाही और आपदा आ गई। हर ओर मृत्यु का साम्राज्य स्थापित हो गया।

2. **टिड्डी :** अल्लाह ने मिस्रियों पर टिड्डी दल भेज दिया, जिन्होंने कोई भी हरियाली नहीं छोड़ी, सब कुछ चट कर गए या नष्ट कर दिया।

3. **जूँएं :** क़ुरआन में क़ुम्मल शब्द आया है जो प्रायः मनुष्य के सिर में पैदा होते हैं। इनसे मनुष्य विभिन्न प्रकार के कष्टों का शिकार हो जाता है।

   कुछ विद्वानों ने इस को घुन और सुरसुरी कहा है, जो गेहूँ खा जाता है।

4. **मेंढक :** कहते हैं कि मिस्र में इतने अधिक मेंढक पैदा हो गए कि वे हर स्थान पर दिखाई देने लगे, जिनके कारण लोगों को बड़ी कठिनाई उठानी पड़ी।

5. **रक्त :** कहते हैं कि नील नदी से पानी उठाते तो वह रक्त बन जाता। इसी प्रकार वह कोई और पानी पीते तो वह भी ख़ून बन जाता।

यह सब कुछ मिस्री लोगों के साथ हुआ। परन्तु बनी-इसराईल के साथ कुछ नहीं हुआ। यह अल्लाह की ओर से बहुत बड़ा चमत्कार था, ताकि वे लोग सत्य मार्ग ग्रहण कर लें और कुफ़्र से रुक जाएँ। बाक़ी चार चमत्कारों का वर्णन विभिन्न स्थानों पर हुआ है। वे ये हैं–

1. **असा :** अर्थात् लाठी। मूसा के पास एक लाठी थी। उससे वे भेड़-बकरियाँ चराया करते थे। मगर उनको ज्ञान नहीं था कि इसमें भी कोई चमत्कार है। जैसे ही लाठी पृथ्वी पर डालते तो भयंकर साँप

बन जाता। और जादूगरों के झूठे साँपों को खा जाती। परन्तु मूसा (ﷺ) को इसका ज्ञान नहीं था। क़ुरआन में आया है–

«ऐ मूसा! यह तुम्हारे दाहिने हाथ में क्या है? उसने कहा, "यह मेरी लाठी है। मैं इसपर टेक लगाता हूँ और इससे अपनी बकरियों के लिए पत्ते झाड़ता हूँ, और इससे मेरे अन्य काम भी निकलते हैं।" कहा, "ऐ मूसा, इसे (धरती पर) डाल दो।" तो उसने उसे डाल दिया तो क्या देखते हैं कि वह एक साँप बनकर दौड़ने लगा। कहा, "पकड़ लो उसको और डरो नहीं। हम उसको उसकी पहली हालत में लौटा देंगे।"» (सूरा–20, ता-हा, आयतें-17-21)

2. **यदे-बैज़ा :** अर्थात् चमकता हुआ हाथ। मूसा (ﷺ) को एक चमत्कार यह भी दिया गया था कि जब वे हाथ बग़ल में दबाकर निकालते तो उससे सूर्य के समान किरणें निकलने लगती थीं क़ुरआन में है–

«अपना हाथ अपनी बग़ल में दबा लो तो देखोगे कि वह किसी बीमारी के बग़ैर सफ़ेद (चमकता) हुआ दिखाई देगा।» (सूरा–20, ता-हा, आयत–22)

एक दूसरे स्थान पर इस तरह आया है–

«उसने अपना हाथ बाहर निकाला तो देखनेवालों ने देखा कि वह चमक रहा है।» (क़ुरआन, सूरा–26, अश-शुअरा, आयत–33)

3. **सिनीन :** अर्थात् क़हत (अकाल)। कई वर्ष तक मिस्र में क़हत पड़ा, जिसके कारण पृथ्वी ने अनाज पैदा करना छोड़ दिया और लोग भूखे मरने लगे–

«हमने फ़िरऔन के लोगों को कई वर्ष तक अकाल और पैदावार की कमी में ग्रस्त रखा।» (क़ुरआन, सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–130)

ये वे निशानियाँ हैं जिनको लेकर मूसा (ﷺ) फ़िरऔन और उसकी जाति के पास गए और उनको एक अल्लाह की इबादत करने की दावत दी। मगर फ़िरऔन और उसकी जातिवाले भी ख़ूब थे। जब भी उनपर किसी प्रकार की यातना आती तो तुरन्त मूसा के पास जाते और कहते–

«ऐ मूसा! अपने रब से हमारे लिए प्रार्थना कर। इसलिए कि उसने तुझसे प्रतिज्ञा कर रखी है। यदि तूने हम पर से यह यातना हटा दी तो हम अवश्य तेरी बात मान लेंगे। और बनी-इसराईल (मूसा की जाति) को तेरे साथ भेज देंगे।» (क़ुरआन, सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–134)

परन्तु ऐसा कभी नहीं हुआ। जब भी उनपर से यातना हट जाती वे फिर वैसे ही हो जाते, जैसे पहले थे–

«फिर जब हमने एक समय के लिए, जिस तक पहुँचना ही था, उनपर से यातना को हटा दिया तो उन्होंने प्रतिज्ञा भंग कर दी।» (क़ुरआन, सूरा–7, आल-आराफ़, आयत–135)

क़ुरआन में अल्लाह ने मूसा (ﷺ) और फ़िरऔन के बीच होनेवाली एक बातचीत का वर्णन किया है जो इस प्रकार है–

मूसा और हारून फ़िरऔन के पास इस्लाम की दावत लेकर गए तो फ़िरऔन ने कहा–

«"अच्छा बताओ, तुम दोनों का रब कौन है, ऐ मूसा?" उसने कहा, "हमारा रब तो वह है जिसने हर चीज़ को उसकी बनावट में पैदा किया। और फिर (सत्य) मार्ग दिखाया।" (फ़िरऔन ने) कहा, "अच्छा तो उन नस्लों का क्या हाल है, जो पहले थीं?" उसने कहा, "इसका ज्ञान तो मेरे रब के पास एक किताब (लौहे-महफ़ूज़) में सुरक्षित है। मेरा रब न तो ग़लती करता है और न ही भूलता है।"» (सूरा–20, ता-हा, आयतें–49-52)

जब फ़िरऔन को कुछ समझ नहीं आया तो धमकी देने लगा और कहा–

«ऐ मूसा! क्या तू हमारे पास इसलिए आया है कि अपने जादू से हमको हमारी भूमि से निकाल दे? अच्छा हम भी तेरे मुक़ाबले में वैसा ही जादू लाते हैं।» (सूरा–20, ता-हा, आयतें-57,58)

अन्त में दोनों पक्षों में मुक़ाबले के लिए मेले का दिन निश्चित हुआ। जादूगरों ने कहा, "ऐ मूसा! अपना जादू दिखाओ या फिर हम पहले अपना जादू दिखाते हैं।" मूसा ने कहा, "तुम लोग अपना जादू दिखाओ" तो मूसा क्या देखते हैं कि उनकी लाठियाँ और रस्सियाँ मैदान में इधर-उधर भाग रही हैं। अल्लाह के हुक्म से मूसा (ﷺ) ने भी अपनी लाठी फेंक दी तो क्या देखते हैं कि वह एक साँप बन गया और दौड़-दौड़कर जादूगरों की लाठियों और रस्सियों को खाने लगा। यह देखना था कि सारे जादूगर सजदे में गिर गए और पुकार उठे, "हम मूसा और हारून के रब पर ईमान लाते हैं।" यह देखते ही फ़िरऔन क्रोधित हो उठा और डाँटकर कहा, "मेरी आज्ञा से पहले ही तुम लोग उसपर ईमान ले आए? मैं तुम्हारे हाथ-पैर काटकर खजूर के तने में लटका दूँगा।" लेकिन वे भी पक्के मोमिन हो गए थे। उन्होंने दो टूक अन्दाज़ में कह दिया–

«जो स्पष्ट निशानियाँ हमारे सामने आ चुकी हैं उनके मुक़ाबले में और उसके मुक़ाबले में जिसने कि हमें पैदा किया है, हम कदापि तुझे प्राथमिकता नहीं दे सकते। जो कुछ तू

कर सकता है, कर ले। तू बस इसी सांसारिक जीवन का फ़ैसला कर सकता है।»
(क़ुरआन, सूरा–20, ता-हा, आयत–72)

और क़ुरआन में ही एक अन्य स्थान पर इसका वर्णन इस प्रकार आया है–

«हमने मूसा को वह्य (प्रकाशना) के द्वारा बताया कि अपनी लाठी (धरती पर) डाल दो। फिर क्या था वह (लाठी साँप बनकर) उनके साँपों को निगलने लगी। इस प्रकार सत्य प्रकट हो गया और जो कुछ वे करते थे मिथ्या होकर रहा। इस प्रकार वे वहाँ परास्त हो गए और अपमानित होकर रह गए और फिर तो जादूगर सहसा सजदे में गिर पड़े। कहने लगे, ''हम सारे संसार के रब पर ईमान ले आए, जो मूसा और हारून का रब है।''» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयतें–117-122)

लेकिन यह बात फ़िरऔन को पसंद नहीं आई और उसने उनको डराया-धमकाया और कहा कि तुम्हारे हाथ-पैर काटकर उल्टा लटका दूँगा। मगर सच्चाई यह है कि जब किसी के हृदय में ईमान प्रवेश कर जाता है तो वह किसी से भय भीत नहीं होता। परन्तु यह सब देखने के पश्चात् भी फ़िरऔन ईमान न लाया, बल्कि उसने झुठला दिया और बात न मानी। फिर पलट गया और उपाय करने लगा। और लोगों को इकट्ठा किया और पुकारकर कहने लगा, ''मैं ही तुम्हारा सर्वोच्च रब हूँ।'' तो अल्लाह ने उसे संसार और आख़िरत (दोनों) की यातना में पकड़ लिया। (सूरा–79, अन-नाज़िआत, आयतें–21-25)

फ़िरऔन का अत्याचार जब हद से बढ़ गया, तब अल्लाह ने मूसा (عليه السلام) को इस बात की आज्ञा दे दी कि वे बनी- इसराईल को लेकर मिस्र से निकल पड़ें। जब इसकी सूचना फ़िरऔन को हुई तो उसने एक बड़ी भयंकर सेना के साथ उनका पीछा किया और लाल सागर के तट पर जिसके दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं। मूसा (عليه السلام) और उनकी जातिवालों के पास पहुँच गया। यह देखकर मूसा (عليه السلام) के साथी घबरा गए और कहने लगे कि अब तो हमें पकड़ लिया जाएगा, क्योंकि एक ओर शत्रु-सेना है तो दूसरी ओर समुद्र। परन्तु मूसा (عليه السلام) का हृदय संतुष्ट था, क्योंकि वह अल्लाह की आज्ञा से उनको लेकर निकले थे। अब देखिए अल्लाह क्या चमत्कार दिखाता है–

«उस समय हमने मूसा को वह्य (प्रकाशना) के द्वारा बताया कि अपनी लाठी समुद्र पर मार। तो वह (समुद्र) फट गया। और हर टुकड़ा एक बड़े पर्वत जैसा हो गया। और हम दूसरों को भी निकट ले आए। और मूसा और उनके साथियों को बचा लिया। और दूसरों को डुबो दिया।» (सूरा–26, अश-शुअरा, आयतें-63-66)

एक और जगह है कि समुद्र में कुल बारह रास्ते बन गए क्योंकि बनी-इसराईल बारह गरोहों में बंटे हुए थे और हर गरोह के बीच पानी पर्वत की भाँति खड़ा था जिनसे सरलतापूर्वक बनी-इसराईल समुद्र

पार हो जाएँ। हुआ यह कि जब मूसा और उनके साथी समुद्र में पानी हट जाने से दाख़िल हो गए तो फ़िरऔन और उसकी सेना, जो उनके पीछे उनको पकड़ने के लिए आ रही थी, वे भी समुद्र में प्रवेश कर गए। परन्तु ज्यों ही मूसा और उनके साथी समुद्र पार करके दूसरी ओर पहुँचे समुद्र में फिर पानी आ गया और फ़िरऔन अपनी सेना के साथ डूब गया। क़ुरआन में है–

«तब फ़िरऔन अपनी सेना लेकर उनके पीछे चला तो समुद्र की मौजों ने उनपर चढ़ाई कर दी और उनको अपनी लपेट में ले लिया।» (सूरा–20, ता-हा, आयत–78)

अब फ़िरऔन को मूसा (عليه السلام) के नबी होने का विश्वास होने लगा और इस बात पर भी कि अल्लाह एक है, जिसकी ओर मूसा बुलाते थे। लेकिन सहीह हदीस में आया है कि जब मनुष्य अपनी मृत्यु को सामने देख ले तो उस समय क्षमा-याचना करके अपना सुधार कर ले और ईमान ले आए तो उस समय उसका ईमान स्वीकृत नहीं हो सकता। कुछ ऐसा ही फ़िरऔन के साथ हुआ। क़ुरआन में इसी बात को इस प्रकार कहा गया है–

«हमने बनी-इसराईल को समुद्र पार करा दिया तो फ़िरऔन और उसकी सेनाओं ने सरकशी और ज़्यादती के साथ उनका पीछा किया, यहाँ तक कि जब वह (फ़िरऔन) डूबने लगा तो पुकार उठा, ''मैं ईमान लाता हूँ कि उस (अल्लाह) के अतिरिक्त कोई पूज्य-प्रभु नहीं, जिसपर बनी-इसराईल ईमान लाए हैं। और अब मैं अल्लाह का आज्ञाकारी हूँ।'' कहा गया, क्या अब ईमान लाता है, जबकि इससे पहले तूने अवज्ञा की और बिगाड़ फैलानेवालों में से था। आज हम तेरे (मृत) शरीर को बचा लेंगे, ताकि तू अपने पश्चात् आनेवालों के लिए एक निशानी हो जाए और निस्सन्देह अधिकतर लोग हमारी निशानियों के प्रति असावधान हैं।» (सूरा–10, यूनुस, आयतें-90-92)

कुछ विद्वानों का विचार है कि बनी- इसराईल को फ़िरऔन की मृत्यु का विश्वास नहीं हो रहा था क्योंकि उसकी दासता में रहते हुए उनपर उसकी महानता का ऐसा असर पड़ गया था कि वे उसकी मृत्यु का विश्वास नहीं कर पा रहे थे। इसी प्रकार फ़िरऔन की जातिवालों में भी यह बात प्रचलित हो गई थी कि वह तो ईश्वर का अवतार है, वह हमारा पूज्य है, इसलिए उसको कभी मृत्यु नहीं आ सकती। इन अन्धविश्वासों का खंडन करने के लिए अल्लाह ने उसके शव को समुद्र के किनारे फेंक दिया, ताकि उसके बाद आनेवालों के लिए एक निशानी बन जाए कि आओ और जिसको तुमने ईश्वर बना रखा था, उसकी दशा को देखो।

अर्थात् फ़िरऔन और उसकी सेना समुद्र में डूबकर मर गई और अन्तिम समय का ईमान फ़िरऔन को डूबने से न बचा सका। इसके विस्तृत विवरण के लिए देखें 'फ़िरऔन'। इस घटना को यहूदियों ने त्योहार बना लिया।

सहीह बुख़ारी में अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास से उल्लिखित है कि जब नबी (ﷺ) मदीना पधारे तो देखा कि वहाँ के यहूदी 10 मुहर्रम को रोज़ा रखते हैं। आप (ﷺ) ने प्रश्न किया,

"यह कैसा रोज़ा है।" उन्होंने उत्तर दिया, "इस दिन अल्लाह ने बनी-इसराईल को फ़िरऔन के अत्याचार से मुक्त किया था।" उसपर आप (ﷺ) ने मुसलमानों को आदेश दिया, "तुम लोग भी इस दिन रोज़ा रखो। क्योंकि तुम उनसे अधिक इसके अधिकारी हो।" (देखिए: बुख़ारी-111)

इस प्रकार मूसा (عليه السلام) बनी- इसराईल को लेकर समुद्र के दूसरे पार रेगिस्तान की सीमा में प्रवेश कर गए। और उनके जीवन-काल का द्वितीय भाग समाप्त हो गया।

तृतीय काल-खण्ड : मूसा (عليه السلام) बनी-इसराईल को लेकर मिस्र से निकले और रेगिस्तान सीना में प्रवेश कर गए। बाइबल के अनुसार उनकी संख्या छह लाख से भी अधिक थी। परन्तु यह बात कुछ सत्य नहीं लगती क्योंकि याक़ूब (عليه السلام) नबी अपने जिन पुत्रों और पोतों को लेकर मिस्र गए उनकी संख्या सत्तर थी। उनके पोते क़ाहत से इमरान पैदा हुए। और इमरान से उनके पुत्र मूसा और हारून। इस प्रकार देखा जाए तो याक़ूब के पश्चात् केवल दो नस्लें मिस्र में पैदा हुई। तो सत्तर मनुष्यों की संख्या से छह लाख का वंश कैसे बन गया? यह सोचने की बात है।

इसलिए इन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ ब्रिटानिका के सम्पादक का विचार है कि इनकी संख्या पंद्रह हज़ार से अधिक नहीं थी। (भाग : 12, पृ.489) क़ुरआन भी इसी की पुष्टि करता है –

«तब फ़िरऔन ने भिन्न-भिन्न शहरों में लोगों को इकट्ठा करनेवालों को भेजा। और कहा कि ये लोग छोटी-सी टोली हैं, जो हमें ग़ुस्सा दिला रहे हैं।» (सूरा–26, अश-शुअरा, आयतें–53-55)

क़ुरआन ने उनके लिए 'शिरज़िमा' शब्द प्रयोग किया है जिसका अर्थ है छोटी सी टोली।

मूसा के मिस्र से निकलने की तिथि में भी कुछ मतभेद है। सीना की खुदाई में जो चिह्न मिले हैं, उनसे प्रतीत होता है कि ये लोग मिस्र के राजा मिन्फ़ताह, जो रामसेस द्वितीय का पुत्र था, के शासन-काल में निकले जिसका समय 1527-1427 ईसा पूर्व है। (देखिए अहमद बदावी : मौकिब शम्स-2, पृ.912)

अब देखते हैं कि रेगिस्तान सीना में कौन-कौन-सी प्रमुख घटनाएँ घटीं।

1. रेगिस्तान सीना बहुत गर्म है। वहाँ कुछ पैदा नहीं होता। इसलिए पहला चमत्कार तो यह हुआ कि बनी- इसराईलियों पर बादलों ने साया कर लिया और खाने के लिए अल्लाह ने आकाश से मन्न और सलवा नाम की दो वस्तुएँ उतारीं। (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–57)

2. पानी के लिए मूसा (عليه السلام) ने अल्लाह के आदेश से पत्थर पर अपनी लाठी मारी और पत्थर से बारह सोते फूट निकले, ताकि हर दल को एक धार मिल जाए, क्योंकि बनी-इसराईल बारह गरोहों में बंटे हुए थे। (देखिए : क़ुरआन, सूरा–अल-बक़रा, आयत–60)

3. बनी-इसराईल रेगिस्तान सीना में पहुँचे ही थे कि उन्होंने देखा कि कुछ लोग मूर्ति पूजा कर रहे हैं। उन्होंने मूसा (عليه السلام) से कहा कि ऐ मूसा, हमारे लिए भी इसी प्रकार की कोई मूर्ति बना दे ताकि हम भी उसकी पूजा करें। यह सुनकर मूसा (عليه السلام) को बहुत अफ़सोस हुआ, क्योंकि वे तो एक अल्लाह की इबादत का निमंत्रण लेकर आए थे, जो सारे नबियों की मूल शिक्षा थी। इसलिए मूसा (عليه السلام) ने उनसे कहा, "तुम लोग बड़े अज्ञानी हो, अज्ञान की बातें करते हो।" (देखिए : क़ुरआन, सूरा–7, आयत–138)

4. अल्लाह के आदेश से मूसा (عليه السلام) तूर नामक पर्वत पर पहुँचे और चालीस दिन तक ध्यान में लगे रहे और अपने रब से बातें करते रहे। अब उन्होंने अपने रब को एक झलक देखने की इच्छा प्रकट की। अल्लाह ने कहा, "तू मुझे नहीं देख सकता। पर्वत की ओर देख, अगर वह अपने स्थान पर स्थिर रहा तो देख सकता है।" फिर अल्लाह ने अपनी किरण पहाड़ पर आलोकित की तो वह चकनाचूर हो गया। और मूसा (عليه السلام) मूर्छित होकर गिर पड़े। जब उनकी चेतना वापस आई तो वे अल्लाह की महानता के गुण गाने लगे। और अपनी करनी पर पश्चाताप् करने लगे। (देखिए : क़ुरआन, सूरा–7, आयतें-143,144)

5. चालीस दिन के ज्ञान ध्यान के पश्चात् अल्लाह ने मूसा (عليه السلام) को वे तख़्तियाँ दीं, जिन पर बनी-इसराईल के लिए आवश्यक उपदेश लिखे हुए थे। (देखिए : क़ुरआन, सूरा–7, अल-आराफ़, आयत-145)

6. जब मूसा (عليه السلام) तख़्तियाँ लेकर अपनी जाति बनी-इसराईल की ओर वापस आए तो क्या देखते हैं कि लोगों ने सोने का एक बछड़ा बनाया है और उसकी पूजा करने लगे हैं। मूसा (عليه السلام) क्रोधित हो उठे। उन्होंने क्रोध में तख़्तियाँ भी फेंक दीं। जब क्रोध शान्त हुआ तो तख़्तियाँ उठाईं जिनमें उनके लिए मार्गदर्शन लिखे हुए थे।

7. अब समय आ गया कि बनी- इसराईल उस पवित्र भूमि की ओर बढ़ें जिसका अल्लाह ने उनसे वादा किया था। परन्तु बनी-इसराईल बड़े बुज़दिल निकले। उन्होंने फ़िलस्तीन में प्रवेश करने से इनकार कर दिया और कहा कि उसमें तो बड़े शक्तिशाली लोग रहते हैं जब तक वे नहीं निकलेंगे हम कदापि प्रवेश नहीं करेंगे। बस अल्लाह ने चालीस वर्ष तक उनको सीना में भटकने के लिए छोड़ दिया। वहीं, मूसा और उनके भाई हारून (عليه السلام) का देहान्त भी हो गया और मिस्र से आए हुए बनी- इसराईल के अधिकतर लोगों का देहान्त हो गया फिर जब नई पीढ़ी जवान हुई तो उनको

लेकर यूशा-बिन-नून ने पवित्र घाटी फ़िलस्तीन में प्रवेश किया और वहाँ के रहनेवालों को परास्त किया। इस प्रकार बनी-इसराईल के साथ अल्लाह का किया हुआ वादा पूरा हुआ।

मूसा (ﷺ) को बनी-इसराईल की ओर नबी बना कर भेजा गया था–

«याद करो जब मूसा ने अपनी जातिवालों से कहा, "ऐ मेरी जातिवालो! मुझे क्यों दुख देते हो, जबकि तुम जानते हो कि मुझे अल्लाह ने रसूल बनाकर तुम्हारे पास भेजा है।"» (क़ुरआन, सूरा–61, अस-सफ़्फ़, आयत–5)

मूसा (ﷺ) को उनकी जाति वालों ने बहुत सताया, जिसका वर्णन क़ुरआन में बार-बार आया है। इसकी पुष्टि स्वयं बाइबल से भी होती है। (देखिए: सूरा-2, अल-बक़रा, आयतें 51-55; सूरा-4, अन-निसा, आयत-153 और सूरा-61, अस-सफ़, आयत-5)। (निर्गमन, 5:2-12; गिनती, 11:1-15)।

ईसा (ﷺ) का संदेश भी केवल बनी-इसराईल के लिए था और आप बनी-इसराईल के अन्तिम नबी हैं–

«याद करो जबकि मरयम के बेटे ईसा ने कहा, "ऐ बनी-इसराईल, मुझे अल्लाह ने अपना रसूल बना कर तुम्हारे पास भेजा है और मुझसे पहले जो तौरात भेजी गई थी, उसकी पुष्टि करनेवाला हूँ।"» (क़ुरआन, सूरा–61, अस-सफ़्फ़, आयत–6)

इससे निम्न बातें स्पष्ट होती हैं–

1. ईसा (ﷺ) केवल बनी- इसराईल के नबी थे, सारे संसार के नहीं, जैसा कि आज ईसाई लोग समझते हैं और संसार के कोने-कोने में जाकर ईसाइयत की दावत देते हैं।
2. ईसा (ﷺ) नबी थे, कोई झूठे नहीं थे जैसा कि यहूदी समझते हैं।
3. ईसा (ﷺ) नबी और अल्लाह के बन्दे थे। वे पूज्य नहीं थे। जैसा कि ईसाई लोग विचार रखते हैं।
4. उन्होंने अपने पश्चात् एक नबी के आने की शुभ सूचना दी जिसका नाम अहमद बताया था, क्योंकि वे जिस तौरात की पुष्टि करने आए थे, उसमें जीवन के सभी नियम नहीं मिलते थे। इस लिए वे नए नबी, जिनकी ईसा (ﷺ) ने शुभ सूचना दी थी, मुहम्मद (ﷺ) ही हैं, जिनके लाए हुए धर्म में, संसार में रहनेवाले सभी व्यक्तियों के लिए मार्गदर्शन पाया जाता है।

इस प्रकार जहाँ ईसा (ﷺ) बनी- इसराईल के अन्तिम नबी हैं, वहीं मुहम्मद (ﷺ) सारे संसार के लिए अन्तिम नबी हैं और अब आप (ﷺ) के बाद कोई नबी नहीं आएगा।

मूसा की बहन

इनका वर्णन क़ुरआन में दो स्थानों पर हुआ है। परन्तु कहीं भी इनका नाम नहीं बताया गया है और न सहीह हदीसों से इनके नाम का पता चलता है।

इसका क़िस्सा यह है कि जब मूसा (ﷺ) पैदा हुए और फ़िरऔन के भय से उन्हें दरिया में डाल देने का अल्लाह की ओर से आदेश हुआ तो उनकी माता चिन्तित हो उठीं कि किस तरह अपने कलेजे के टुकड़े को अपने ही हाथों से दरिया में फेंक दें। लेकिन अल्लाह की इच्छा यही थी–

«हमने मूसा की माँ को वह्य की कि उसे दूध पिला, फिर जब तुझे उसके प्रति भय हो तो उसे दरिया में डाल दे, और न तू भय करना और न ही दुखी होना, हम उसे दोबारा तेरे पास पहुँचा देंगे। और उसे रसूलों में से बना देंगे।» (क़ुरआन, सूरा–28, अल-क़सस, आयत–7)

मूसा (ﷺ) की माँ ने अपने पुत्र को एक ताबूत में रख कर दरिया में डाल दिया और उसकी बहन से कहा–

«"तू इसके पीछे-पीछे जा" तो वह उसे दूर-दूर से ही देखती रही।» (क़ुरआन: सूरा–28, अल-क़सस, आयत–11, साथ ही देखिए: बाइबल, निर्गमन–2:4)

अल्लाह ने किसी और का दूध बच्चे पर वर्जित कर रखा था, इसलिए जब फ़िरऔन की स्त्री ने बच्चे को दरिया से निकाला और अपना पुत्र बनाकर रखने का विचार किया तो उसकी बहन ने फ़िरऔन की स्त्री से कहा–

«क्या मैं तुम्हें ऐसे घरवालों का पता बताऊँ जो तुम्हारे लिए इसके पालन-पोषण का ज़िम्मा लें और इसके शुभ-चिन्तक हों?» (क़ुरआन: सूरा–28, अल-क़सस, आयत–12, साथ ही देखें: बाइबल निर्गमन 2:7)

इस प्रकार फिर अल्लाह ने मूसा (ﷺ) को उसकी माँ के पास पलटा दिया, ताकि उसकी आँखें ठंडी हों और वह उसकी जुदाई से दुःखी न हो।

क़ुरआन में एक दूसरे स्थान पर इसी बात का वर्णन इस प्रकार आया है–

«याद कर जब तेरी बहन चलकर (फ़िरऔन के दरबार) गई, और कहा, "क्या मैं तुम्हें उसका पता बता दूँ जो उस बालक का भली-भाँति पालन-पोषण कर सके?"» (क़ुरआन: सूरा–20, ता-हा, आयत–40)

बाइबल में अम्राम (मूसा के पिता) की सन्तान की संख्या तीन बताई गई है। हारून, मरयम और मूसा। (बाइबल, इतिहास, 6:3)

बाइबल से यह तो पता नहीं चलता कि यह बहन अपने भाई मूसा से कितनी बड़ी थी। परन्तु उसके काम से अन्दाज़ा होता है कि कोई पंद्रह वर्ष बड़ी होगी।

जब फ़िरऔन मूसा (ﷺ) का पीछा करता हुआ मूसा (ﷺ) की तरह दरिया में प्रवेश कर गया और अपनी सेना के साथ डूब गया तो यही वह मरयम थी, जो दफ़ बजाते हुए बनी-इसराईल की स्त्रियों के साथ मिस्र से निकली–

"तब हारून की बहन मरयम नामक नबिया ने हाथ में दफ़ लिया और सब स्त्रियाँ दफ़ लिए नाचती हुई उसके पीछे हो लीं। मरयम उनके साथ यह टेक गाती गई; यहोवा का गीत गाओ क्योंकि वह महा प्रतापी ठहरा है, घोड़ों समेत सवारों को उसने समुद्र में डाल दिया है।" (बाइबल, निर्गमन, 15:20-21)

जब मूसा (ﷺ) ने एक कूशी स्त्री से विवाह कर लिया तो यही वह मरयम थी जो हारून के साथ मिलकर मूसा (ﷺ) की निन्दा करने लगी, जिसके कारण अल्लाह ने उसे कोढ़ग्रस्त बना दिया। जब मूसा (ﷺ) को बताया गया तो उसने अल्लाह से प्रार्थना की जिससे वह चंगी हो गई। (देखिए: बाइबल, गिनती, 12:1-13)

मिस्र से निकलने के बाद पहले महीने में सारी इसराईली मंडली के लोग सीना नामक निर्जन प्रदेश में आ गए और कादेश में रहने लगे। वहाँ मरयम मर गई, और वहीं उसको दफ़ना दिया गया। (देखिए: बाइबल, गिनती, 20:1)

मुहम्मद (ﷺ)

इस्लाम से पहले अरबों में विभिन्न विचारधाराओं के लोग पाए जाते थे। उनको दो दलों में बाँटा जा सकता है। एक नास्तिक जो अल्लाह ही का इनकार करते थे और कहते थे कि हमारे इस जीवन के पश्चात् कोई और जीवन नहीं है। हम तो केवल इस जीवन में ही खाएँगे-पिएँगे और फिर मर जाएँगे, न हमें दोबारा उठाया जाएगा और न हमसे हमारे कर्मों का बदला लिया जाएगा।

दूसरा दल धार्मिक लोगों का था। यह भी दो भागों में बँटा हुआ था। एक उनका जो एकेश्वरवाद पर विश्वास करते थे, जिनको 'हनफ़िया' कहा जाता था, परन्तु ये केवल चन्द लोग थे। दूसरा भाग उनका था जो मूर्तिपूजा करते थे। उनका विश्वास था कि फ़रिश्ते और पूर्वजों की आत्माएँ आध्यात्मिक शक्ति हैं। इनकी उपासना से अल्लाह को प्रसन्न किया जा सकता है। इसी लिए उन्होंने उनकी मूर्तियाँ बना रखी थीं, जिनके आगे वे सिर झुकाते थे और उनसे अपनी आवश्यकताओं की चीज़ें माँगा करते थे। और विश्वास रखते थे कि ये मूर्तियाँ अल्लाह के पास हमारी सिफ़ारिश करेंगी।

इन मूर्तियों में प्रसिद्ध मूर्तियाँ हुबल, वद्द, सुवाअ, यग़ूस, यऊक़, नसर, उज़्ज़ा, लात और मनात की थीं। इसी प्रकार इबराहीम और मरयम (عليه السلام) की मूर्तियाँ भी बना रखी थीं। बल्कि उनको तो काबे में रखा हुआ था।

ऐसी दशा में मुहम्मद (ﷺ) को अल्लाह ने नबी बनाकर भेजा, ताकि लोगों को मूर्ति-पूजा छोड़कर एक अल्लाह की उपासना का निमंत्रण दें और विधर्मियों को सत्य धर्म का मार्ग दिखाएं।

मुहम्मद (ﷺ) के जीवन को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं–

पहला भाग : आप (ﷺ) के जन्म से प्रारम्भ होता है और नुबूवत मिलने तक अर्थात् चालीस वर्ष की आयु तक फैला हुआ है।

दूसरा भाग : आप (ﷺ) की नुबूवत के पश्चात 40 वर्ष की अवस्था से प्रारम्भ होता है और आपके देहावसान पर समाप्त होता है।

❁ आप (ﷺ) के जीवन का पहला भाग :

आप (ﷺ) के जीवन-चरित्र पर कुछ लिखने से पहले यहाँ कुछ अरब देश और मक्का नगर की तत्कालीन, परिस्थितियों पर प्रकाश डालना बेहतर होगा। अरब की भूमि सीरिया से लेकर यमन और लाल सागर से लेकर अरब की खाड़ी तक फैली हुई है। यहाँ के निवासियों का वंश इसमाईल -बिन-इबराहीम से प्रारम्भ होता है। इस प्रकार मुहम्मद (ﷺ) इसमाईल (عليه السلام) की संतान से थे।

मुहम्मद (ﷺ) का जन्म 12 रबीउल-अव्वल, सोमवार तदानुसार 20 अथवा 22 अप्रैल 571 ई.[1] को मक्का में हुआ। आपके पिता अब्दुल्लाह का आपके जन्म से पहले ही देहान्त हो चुका था। सहीह हदीसों में आया है कि आपकी माता ने देखा कि आपके जन्म के बाद एक ऐसा प्रकाश निकला जिसने सीरिया तक के इलाक़े को जगमगा दिया। (हदीस : मुस्तदरक हाकिम, 2/600, मुसनद अहमद, 4/127) जब आप पैदा हुए तो अरब की तत्कालीन परम्परा के अनुसार आपको किसी निकट के गाँव में भेज दिया गया, जहाँ आपने हलीमा सादिया का दूध पिया और देहात के खुले वातावरण में पलते रहे। परन्तु यहाँ एक ऐसा चमत्कार घटित हुआ जिससे घबराकर हलीमा ने आप (ﷺ) को आपकी माता आमिना के पास वापस भेज दिया, जैसा कि सहीह मुस्लिम में वर्णन किया गया है –

> *"आप (ﷺ) कुछ मित्रों के संग खेल रहे थे कि इतने में जिबरील (عليه السلام) आए और आपको नीचे गिराकर आपके सीने को फाड़ा और उसमें से आपके हृदय को निकाला और फिर ज़मज़म के पानी से, जिसे वे एक सोने के बर्तन में लाए थे, उसको धोया, फिर उसको अपने स्थान पर वापस रख दिया।"* (हदीस : सहीह मुस्लिम, 1/147)

[1] इस वर्ष को आमुल-फ़ील (हाथी वर्ष) भी कहते हैं। इसलिए कि इसी वर्ष हबशा के बादशाह ने हाथियों के साथ काबे पर आक्रमण किया था, जिसका वर्णन क़ुरआन में भी आया है और अरब किसी महान घटना को ऐतिहासिक दिवस का चिह्न मानते थे।

उस समय आप पाँच वर्ष के थे। इस चमत्कार का अर्थ है कि अल्लाह ने आपके हृदय से हर प्रकार के ग़लत विचारों, शिर्क इत्यादि को निकाल दिया और एक प्रकार से आपको भविष्य में दी जानेवाली नुबूवत के लिए तैयार किया जाने लगा। अभी छह वर्ष के भी न हुए थे कि आपकी माता आमिना का भी देहान्त हो गया। अब आप एक अनाथ जीवन व्यतीत करने लगे। मगर आपके दादा अब्दुल-मुत्तलिब ने अब आपके पालन-पोषण की ज़िम्मेदारी ले ली। परन्तु जब आपकी आयु आठ वर्ष की हुई तो उनका भी देहान्त हो गया। उन्होंने अपने एक दूसरे पुत्र अबू-तालिब को आपका सरपरस्त बनाया। अबू तालिब को आपसे बहुत प्रेम था। वे हर प्रकार से आपका ख़्याल रखते थे। व्यापारिक तथा अन्य यात्राओं में भी आपको साथ रखते थे। आप (ﷺ) भी उनकी हर प्रकार से सेवा करते थे। सहीह बुख़ारी और सहीह मुस्लिम में है कि आप मक्कावालों की बकरियाँ चराया करते थे। (हदीस: सहीह बुख़ारी, 2262 तथा सहीह मुस्लिम, 2050) इससे स्पष्ट होता है कि अबू-तालिब की आर्थिक स्थिति कुछ अच्छी नहीं थी, इसलिए आप (ﷺ) बकरियाँ चराकर उनकी सहायता करते थे।

अभी आप पच्चीस वर्ष के एक युवक थे कि आपकी ख्याति पूरे क़ुरैश में फैल गई कि आप बड़े सच्चे और उच्च आदर्श के व्यक्ति हैं। क़ुरैश ही की एक प्रतिष्ठित महिला, ख़दीजा से आप (ﷺ) का विवाह हो गया। उस समय ख़दीजा की आयु 40 वर्ष की थी तथा वे दो बार विधवा हो चुकी थीं। विवाह के बाद आप ख़दीजा के घर में रहने लगे, जो मरवा पहाड़ से थोड़े फ़ासले पर था। आप हिजरत करने तक इसी घर में रहे।

मुहम्मद (ﷺ) की शादियों के विस्तृत विवरण के लिए देखिए 'मुहम्मद (ﷺ) की पत्नियाँ'

जब मुहम्मद (ﷺ) की आयु पैंतीस वर्ष की हुई तो क़ुरैश ने काबे को दोबारा बनाने की योजना बनाई, परन्तु जब हज्रे-अस्वद को अपने स्थान पर रखने का समय आया तो उनमें मतभेद पैदा हो गया और वे आपस में झगड़ने लगे, क्योंकि प्रत्येक कुटुम्ब की इच्छा थी कि वही इस पवित्र काम को करे। अन्त में सबसे अधिक उम्र के पुरुष ने यह परामर्श दिया कि कल जो व्यक्ति सबसे पहले काबे में प्रवेश करेगा वही हमारा इस मामले में मध्यस्थ होगा। दूसरे दिन मुहम्मद (ﷺ) ने सबसे पहले काबे में प्रवेश किया। आपको देखते ही सारे कुटुम्बवाले पुकार उठे कि ये तो बड़े न्यायप्रिय हैं। हम इनको पंच मान लेते हैं। जब यह समस्या आपके समक्ष रखी गई तो आपने एक चादर मँगवाई और उसमें हज्रे-अस्वद को रख दिया और सभी कुटुम्बवालों से कहा, "सब लोग चादर को पकड़कर ऊपर उठाइए।" फिर आपने हज्रे-अस्वद को चादर में से निकाला और उसके स्थान पर रख दिया। (देखिए: हदीस: मुस्नद अहमद 3/425, तथा हाकिम मुस्तदरक 3/458) इस प्रकार आपके इस उपाय से एक भयंकर युद्ध टल गया। इसमें जहाँ आपके बुद्धिमान होने का परिचय मिलता है, वहीं यह बात भी सिद्ध हो जाती है कि आप नुबूवत से पहले ही अपने समाज में न्यायप्रिय और निरपेक्ष प्रसिद्ध हो चुके थे।

चालीस वर्ष के होनेवाले थे कि आपको ऐसे स्वप्न दिखाई देने लगे जो जल्द ही सच साबित हो जाते। इस प्रकार आपको बताया जा रहा था कि आप पर 'वह्य' (ईश-वाणी) उतरनेवाली है। अब आपको जब भी अवसर मिलता आप 'हिरा' नामक पर्वत पर चले जाते और अल्लाह के स्मरण में लग जाते। अधिकतर तन्हा रहते और इस तन्हाई में अल्लाह और उसके बनाए हुए संसार पर विचार करते रहते। जब आप अपनी जाति को देखते जो मूर्ति-पूजा में लगी हुई थी तो आपको बड़ा दुख होता था। आप चाहते थे कि लोग शिर्क और मूर्ति-पूजा छोड़कर एक अल्लाह की उपासना करें, जिसने उनको और सारे संसार को बनाया है। इसलिए आपको जब भी अवसर मिलता हिरा नामक पर्वत की एक गुफा में चले जाते और अल्लाह के ध्यान और उपासना में लग जाते।

❋ आप (ﷺ) के जीवन का दूसरा भाग:

जब आपकी उम्र चालीस वर्ष हो गई तो सोमवार के दिन रमज़ान में एक चमत्कार प्रकट हुआ। आप अल्लाह की याद में लीन थे कि जिबरील (عليه السلام) आए और कहा, "मैं अल्लाह का फ़रिश्ता हूँ और उसी के आदेश से आपके पास वह्य लेकर आया हूँ, इसलिए आप पढ़िए।" आपने कहा, "मैं पढ़ना नहीं जानता", तब आपको उन्होंने पूरी शक्ति से अपनी ओर खींचकर भींचा और फिर छोड़ दिया और कहा, "पढ़िए!" आपने फिर कहा, "मैं पढ़ना नहीं जानता।" उन्होंने फिर अपनी ओर खींचकर भींचा और छोड़ दिया और फिर कहा, "पढ़िए!" आपने फिर कहा, "मैं पढ़ना नहीं जानता।" तीसरी बार फ़रिश्ते ने कहा –

«पढ़ो अपने रब के नाम से, जिसने मनुष्य को जमे हुए रक्त से पैदा किया, पढ़ो तुम्हारा रब बड़ा महान है, जिसने क़लम के द्वारा शिक्षा दी, मनुष्य को वह ज्ञान प्रदान किया जिसे वह नहीं जानता था।» (क़ुरआन, सूरा-96, अल-अलक़, आयतें–1-5)

यह पहली वह्य थी। इसके पश्चात् आप तुरन्त घर लौट आए। आपका हृदय बड़े ज़ोर से धड़क रहा था। आपने घर आते ही अपनी पत्नी ख़दीजा (رضي الله عنها) से कहा, "मुझे कम्बल ओढ़ा दो" जब आपका मन शान्त हुआ तब आपने सारा वृत्तान्त ख़दीजा को सुनाया और यह भी कहा, "मुझे अपनी जान का भय है।" आपकी पत्नी ने आपको तसल्ली दी और कहा, "उस ज़ात की क़सम जिसके हाथ में ख़दीजा की जान है। आप इस उम्मत के नबी होंगे। आप तो सच बोलते हैं, रिश्तों को जोड़ते हैं, अमानतों में ख़यानत नहीं करते। निर्धनों और बेसहारा लोगों को सहारा देते हैं। मेहमान की ख़ातिर करते हैं, भलाई के कामों में मदद करते हैं। भला अल्लाह आप को कैसे बर्बाद होने देगा।" फिर आपको वे अपने चचेरे भाई वरक़ा-बिन-नोफ़ल के पास ले गईं, जो ईसाई धर्म ग्रहण कर चुके थे और ईसाई धर्म की पुस्तकें भी पढ़ चुके थे तथा इंजील को अरबी भाषा में लिखते थे। उस समय उनकी उम्र 90 वर्ष थी। उन्होंने आपका सारा हाल सुनने के बाद कहा, "अल्लाह की क़सम, यह तो वही फ़रिश्ता है जो मूसा के पास आया था। मुझे विश्वास है कि आपको अल्लाह ने रसूल बनाया है।

काश! मैं उस समय तक जीवित रह सकता, जब आपकी जाति आपकी विरोधी बन जाएगी और आपको यहाँ से निकाल देगी।'' आपने आश्चर्य चकित होकर पूछा, ''क्या मुझे यहाँ से निकाल दिया जाएगा?'' उन्होंने कहा, ''हाँ।'' फिर कहा, ''काश, मैं उस समय जीवित रहता और आपकी सहायता करता।'' इसके कुछ समय बाद वरक़ा का देहान्त हो गया।

फिर छ: मास तक वह्य नहीं आई जिसके कारण आप बहुत दुखी दिखाई देने लगे। यह एक प्रकार से आपकी परीक्षा थी, कि आप वह्य, जो अल्लाह की ओर से आती है, और वे वसवसे जो शैतान की ओर से हृदय में डाले जाते हैं, दोनों में अन्तर कर सकें। फिर छ: मास के पश्चात् वह्य आई, जो यह थी –

«ऐ ओढ़-लपेटकर लेटनेवाले! उठो और लोगों को उनकी गुमराही से डराओ और अपने रब की बड़ाई बयान करो और अपने कपड़े पाक रखो और गन्दगी से दूर रहो और ज़्यादा वसूल करने के लिए एहसान न करो और अपने रब के लिए सब्र (संयम) से काम लो।» (क़ुरआन, सूरा-74, मुद्दस्सिर, आयतें–1-7)

अर्थात् वह गंदगी चाहे शिर्क की हो या मैल-कुचैल की। (देखिए : बुख़ारी, 8/678 तथा मुस्लिम, 1/143)

अब आपके कंधों पर भटकती हुई मानव-जाति को सत्य मार्ग दिखाने की महान ज़िम्मेदारी डाल दी गई। यहाँ से आपकी नुबूवत प्रारम्भ होती है। इसके दो काल-खण्ड हैं। एक मक्का-काल जो आप (ﷺ) की 40वर्ष की उम्र से 53 वर्ष की उम्र अर्थात तेरह वर्ष तक है। दूसरा मदीना-काल जो 53 वर्ष की उम्र से 63 वर्ष की उम्र अर्थात दस वर्ष तक आपके देहावसान पर समाप्त होता है।

✻ मक्का-काल :

जब मुहम्मद (ﷺ) ने इस्लाम धर्म का प्रचार आरम्भ किया तो सबसे पहले जो ईमान लाईं वे आपकी महान पत्नी ख़दीजा (رضي الله عنها) थीं, जिन्होंने आपकी भरपूर सहायता की। फिर अली (رضي الله عنه) ने, जो आपके चचा अबू तालिब के पुत्र थे, ईमान क़बूल किया। उनकी उम्र उस समय केवल दस वर्ष थी। अधिक उम्रवालों में ईमान लानेवालों में अबू बक्र (رضي الله عنه) थे जिनकी उम्र उस समय अड़तीस (38) वर्ष की थी। सेवकों में हज़रत ज़ैद-बिन-हारिस (رضي الله عنه) सबसे पहले ईमान लाए।

सहीह बुख़ारी की एक हदीस से प्रतीत होता है कि साद-बिन-अबी वक़्क़ास (رضي الله عنه) तीसरे व्यक्ति हैं जो ईमान लाए। (सहीह बुख़ारी : 71, 83, 170)

तीन वर्ष तक आप (ﷺ) इस्लाम का गुप्त रूप से निमंत्रण देते रहे और लोग इस्लाम में प्रवेश करते रहे।

तीन वर्ष व्यतीत होने के बाद अल्लाह ने यह आयत उतारी –

«और अपने सगे-संबंधियों को अल्लाह से डराओ।» (क़ुरआन, सूरा-26, अश-शूअरा, आयत-214)

अर्थात् अपने निकटतम नातेदारों को इस्लाम का निमंत्रण दो और उनको आनेवाली यातना से सचेत करो। वह यह कि मृत्यु के पश्चात् आनेवाले जीवन में केवल इस्लाम पर ईमान रखने से ही स्वर्ग में प्रवेश पा सकते हैं, दूसरी दशा में वे सदैव के लिए नरक में डाल दिए जाएंगे।

इस आयत के उतरने के बाद आप सफ़ा नामक एक पहाड़ी पर चढ़ गए और वहाँ खड़े होकर पुकारा, ''या सबाहा।''[1] यह सुनकर क़ुरैश-वंश के लोग इकट्ठा हो गए। अब आपने एक-एक समूह को पुकार-पुकार कर कहा,

''अगर मैं तुमसे यह कहूँ कि इस पहाड़ी के पीछे से तुम पर आक्रमण होनेवाला है तो क्या तुम मेरी बात को सत्य मानोगे?'' तो लोगों ने कहा, ''हमने कभी आपको झूठ बोलते हुए नहीं पाया है, इसलिए आपकी बात पर विश्वास करेंगे।'' तब आपने उनको संबोधित करके कहा, ''मैं तुमको अल्लाह की यातना से सचेत करता हूँ।'' (देखिए : बुख़ारी, 4971 तथा मुस्लिम, 208)

लोग ये बातें सुनकर बहुत झल्लाए और कहने लगे, ''क्या इसी लिए तुमने हमें इकट्ठा किया था?'' उनमें अबू लहब भी था, वह आप (ﷺ) का चचा था। उसने कहा, ''तुम्हारा नाश हो, क्या तुमने हमें इसलिए इकट्ठा किया था?'' वह जब तक ज़िन्दा रहा आप का दुश्मन बना रहा। उसकी पत्नी भी आपके रास्ते में हमेशा कांटे बिछाती रही। इसपर अल्लाह ने क़ुरआन में सूरा लहब अवतरित की। जिसका अनुवाद यह है –

«अबू-लहब के दोनों हाथ टूट गए, वह स्वयं भी विनष्ट हो गया। न उसका धन उसके काम आया, न कुछ जो उसने कमाया था। वह शीघ्र ही भड़कती हुई अग्नि में प्रवेश करेगा। और उसकी स्त्री भी जो ईंधन लादनेवाली है। उसकी गर्दन में खजूर के रेशों की रस्सी पड़ी होगी।» (सूरा-111, अल-लहब, आयतें –1-5)

अब मुहम्मद (ﷺ) ने प्रत्यक्ष रूप से इस्लाम का निमंत्रण देना प्रारम्भ कर दिया। और लोगों के सामने भिन्न-भिन्न अवसरों पर यह भाषण देने लगे कि इस संसार का रचयिता तो केवल एक अल्लाह है, इसलिए वही उपासना योग्य है, उसको छोड़कर किसी और की उपासना करना, किसी और से सहायता माँगना, किसी और के सामने सिर झुकाना सब हराम (निषिद्ध) है और अल्लाह ने मुझको अन्तिम नबी बनाकर भेजा है। मेरे नबी होने पर विश्वास किए बिना कोई सफलता नहीं प्राप्त कर सकता।

---

[1] इसका पारिभाषिक अर्थ है : भोर में आक्रमण करना। अरबों में यह रीति थी कि कि भीषण भय के समय कोई व्यक्ति ऊँची पहाड़ी पर चढ़कर यह शब्द कहता था और लोग इसको सुनकर इकट्ठा हो जाते थे।

एक तरफ़ आप (ﷺ) पूरी शक्ति से इस्लाम का निमंत्रण दे रहे थे तो दूसरी ओर पूरी शक्ति से क़ुरैश आपका विरोध कर रहे थे।

क़ुरआन बराबर उतरता जा रहा था जिसमें समय के अनुकूल ठीक-ठीक अनुदेश दिए जा रहे थे। जो लोगों के हृदय में उतरता चला जा रहा था और उनको एक होकर नए समाज की नींव रखने के लिए तैयार कर रहा था। आपकी चर्चा अब मक्का से निकलकर दूसरे शहरों में पहुँचने लगी और लोग समूह बनाकर आते, क़ुरआन सुनते और इस्लाम स्वीकार कर लेते। इधर क़ुरैश आपके विरुद्ध झूठी बातें फैलाने में लगे रहे। कभी आपको कवि कहा, कभी उन्मत्त। ज़िमाद, जो अज़्द शनोआ-वंश का था, एक बार मक्का आया और उसने सुना कि कोई नबी आया है, जिसको मक्कावाले उन्मत्त कहते हैं। वह जिन्नों को उतारना जानता था, इसलिए आपके पास पहुँच गया और कहने लगा, ''मैं आपका जिन्न उतार सकता हूँ। नबी (ﷺ) ने उसके जवाब में पढ़ा, ''सारी प्रशंसाए अल्लाह के लिए हैं। हम उसी की प्रशंसा करते हैं और उसी से सहायता माँगते हैं। जिसको अल्लाह सत्य मार्ग दिखा दे, उसको कोई गुमराह नहीं कर सकता और जिसको गुमराह कर दे उसे कोई सत्य मार्ग पर नहीं चला सकता। मैं गवाही देता हूँ कि उसके अतिरिक्त कोई पूज्य नहीं और मुहम्मद उसके दास तथा रसूल हैं।'' ज़िमाद ने कहा, ''आप इसको दोबारा सुनाएँ।'' इस प्रकार उसने तीन बार सुना और फिर कहने लगा, ''मैं अल्लाह की शपथ खाकर कहता हूँ कि मैंने पुरोहितों, जादूगरों और कवियों को बार-बार सुना है, परन्तु आपसे जो शब्द मैंने सुने हैं किसी और से कभी नहीं सुने।'' फिर उसने इस्लाम स्वीकार कर लिया।

देखिए; हदीस : सहीह मुस्लिम (2/593), इसी प्रकार अबू-ज़र के इस्लाम स्वीकार करने की घटना के लिए देखिए : सहीह बुख़ारी (7/173) तथा सहीह मुस्लिम (4/1923)

क़ुरआन और उसकी शिक्षा लोगों के दिलों में उतर रही थी और मक्का के विधर्मी विभिन्न जतनों से लोगों को इससे दूर रखने की कोशिश कर रहे थे। यहाँ तक कि जब उनकी कोई चाल सफल होती हुई दिखाई नहीं दी तो उन्होंने मुहम्मद (ﷺ) और आपके साथियों को, जो इस्लाम स्वीकार कर चुके थे, कष्ट पहुँचाने की ठान ली।

एक समय ऐसा आया कि आप काबा में नमाज़ पढ़ रहे थे। मक्का के कुछ विधर्मी आए। जब आप सजदे में गए, तो ऊँट की ओझड़ी तथा उसका रक्त इत्यादि डाल दिया, जिसके कारण आप सजदे से उठ नहीं पा रहे थे। इसकी सूचना आपकी छोटी पुत्री फ़ातिमा को हुई तो वे दौड़ी हुई आईं और आपके ऊपर से गंदगी साफ़ की। नबी (ﷺ) को इससे बड़ा कष्ट हुआ। आपने नमाज़ के पश्चात क़ुरैश को तीन बार शाप दिया और अम्र-बिन-हिशाम, उत्बा-बिन-रबीया, वलीद-बिन-उत्बा, उमैया-बिन-ख़लफ़, उक़बा-बिन-अबी मुईत और उमारा-बिन-वलीद के नष्ट होने का शाप दिया।

अब्दुल्लाह बिन मसऊद कहते हैं, ''बद्र के रण-क्षेत्र में मैंने इन सबको क़त्ल होते हुए देखा। बाद में इन सबको एक कुएँ में डाल दिया गया।''

इसी प्रकार आपने उनको मूर्ति-पूजा तथा शिर्क से मना किया। एक ईश्वर की उपासना की ओर बुलाया और यह भी बता दिया कि अगर तुमने मेरी बात न मानी तो तुम्हें कठोर तथा भयानक यातना घेर लेगी।

मक्का के विधर्मी नबी (ﷺ) को तथा आपके साथियों को विभिन्न प्रकार से कष्ट पहुँचाते रहे, नए मुसलमानों को तरह-तरह से सताते रहे, जिनका हाल पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। किसी को अरब के रेगिस्तानों में गर्म धूप में लिटा देते, उनके सीने पर गर्म पत्थर रखते, किसी को पानी में डुबकियाँ देते। किसी के गले में गर्म-गर्म लोहे की सलाख़ डाल देते। बिलाल नामक सेवक को तो बच्चों के हवाले कर देते जो आपके गले में रस्सी डालकर मक्का की गलियों में ऐसे फिरते थे, जैसे कोई भैंस और बकरी लेकर फिरता है। यह सब होने के बावजूद भी किसी ने इस्लाम धर्म नहीं छोड़ा। नबी (ﷺ) अपने साथियों के संग यह बरताव देखकर बहुत दुखी होते थे। अन्त में आपने निर्णय किया कि कुछ मुसलमानों को हबशा (इथोपिया) भेज दिया जाए, क्योंकि आपने वहाँ के राजा नज्जाशी के विषय में सुन रखा था कि वह बड़ा सदाचारी और न्यायशील है।
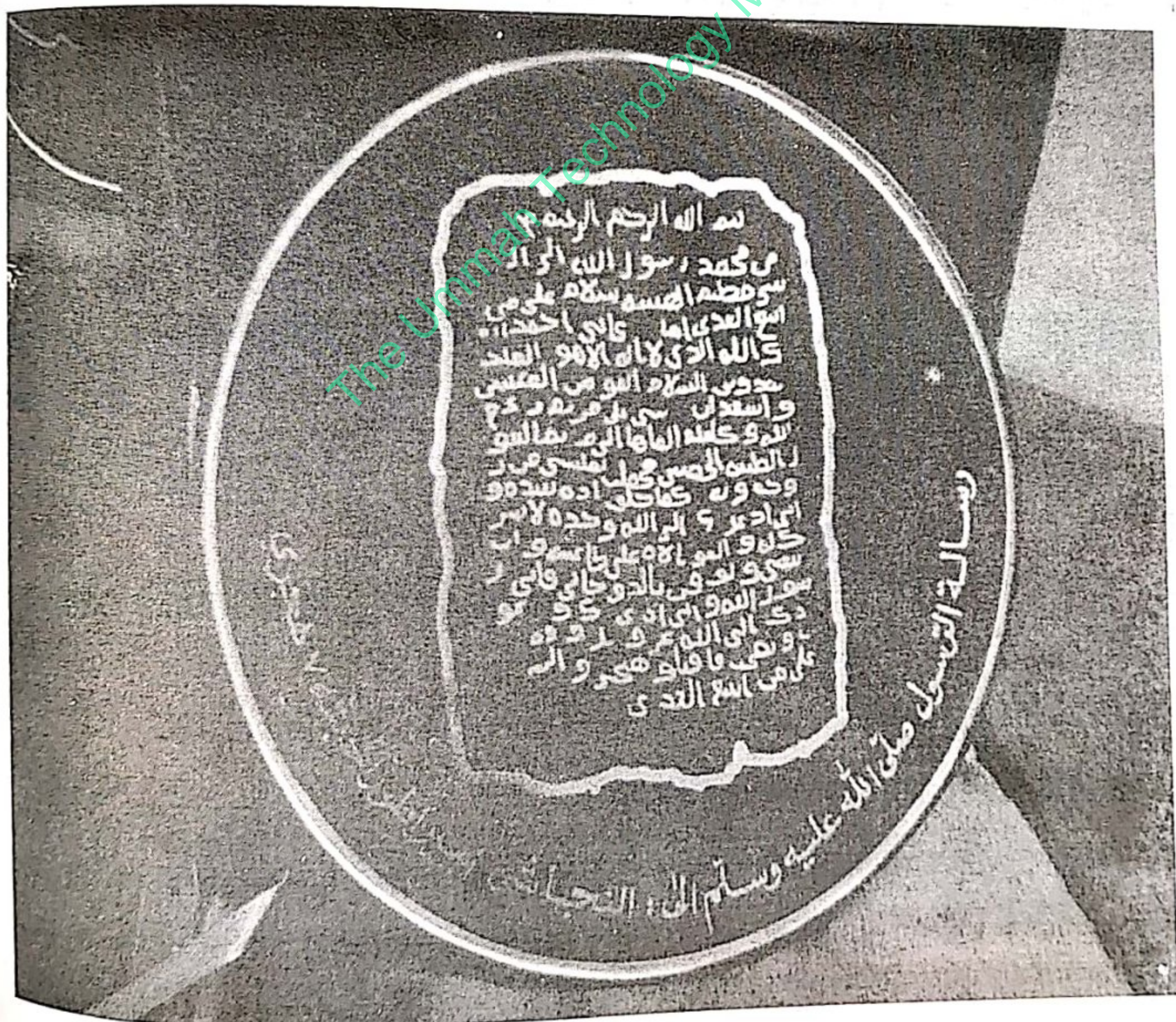
"नबी (ﷺ) का पत्र जो आप ने नजाशी के नाम लिखा था"

लेकिन मक्का के इस्लाम-विरोधियों ने मक्का छोड़नेवाले मुसलमानों का पीछा हबशा तक किया और वहाँ के राजा को इनके विरुद्ध भड़काया। राजा ने मुसलमानों को अपने दरबार में बुलाया और उनसे विभिन्न प्रकार के प्रश्न किए। उनमें से एक प्रश्न यह था कि तुम लोग ईसा के विषय में क्या विचार रखते हो? मुहाजिरों ने जाफ़र-बिन-अबू तालिब को अपना प्रतिनिधि बनाया। उन्होंने क़ुरआन की सूरा मरयम पढ़कर सुनाई जिसमें बताया गया है कि ईसा (ﷺ) अल्लाह के दास हैं। उन्होंने लोगों को अल्लाह ही की उपासना का संदेश दिया। उसमें इस बात का खंडन किया गया है कि अल्लाह ने किसी को अपना पुत्र बनाया। इसके अलावा भी आपने इस्लाम की शिक्षा संक्षिप्त शब्दों में प्रस्तुत की। यह सुनकर राजा नज्जाशी रो पड़ा यहाँ तक कि उसकी दाढ़ी आँसुओं से भीग गई और उसके पास जो ईसाई पादरी बैठे थे वे भी रो पड़े। फिर नज्जाशी ने कहा, "अल्लाह की क़सम! यह वाणी उसी दीप से निकली है, जिसको लेकर मूसा आए थे। तुम लोग मेरी सल्तनत में शान्तिपूर्वक रहो, तुम्हें यहाँ किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा।" सहीह हदीसों से यह भी मालूम होता है कि स्वयं राजा नज्जाशी ने भी गुप्त रूप से इस्लाम ग्रहण कर लिया और मुहम्मद (ﷺ)के नबी होने की पुष्टि की।

जब हबशा से मुसलमानों को वापस लाने में मक्का के विधर्मी विफल रहे तो उन्होंने एक और चाल चली। उन्होंने बनू-हाशिम से कह दिया कि जब तक तुम मुहम्मद की हत्या नहीं कर देते या उनको हमारे सुपुर्द नहीं कर देते, तुम्हारा हर प्रकार से सामाजिक बहिष्कार किया जाएगा। यह बड़ा ही कठिन समय था, मगर बनू-हाशिम ने आप (ﷺ) को नहीं छोड़ा। आपके चाचा अबू-तालिब बनू-हाशिम को लेकर एक घाटी में चले गए। जहाँ वे बकरियाँ चराकर अपना जीवन व्यतीत करते थे। खाने-पीने की कोई वस्तु उनको प्राप्त नहीं होती थी। सहीह हदीसों से स्पष्ट होता है कि वहाँ उन्हें वृक्ष के पत्ते भी खाने पड़े थे। तीन वर्ष तक वे इस सामाजिक बहिष्कार का शिकार रहे। क़ुरआन उतर रहा था और अल्लाह उनको पूरे धैर्य के साथ इन कठिनाइयों को बर्दाश्त करने का हुक्म दे रहा था। तीन वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् स्वयं मक्केवालों में फूट पड़ गई और उन्होंने स्वयं ही इस सामाजिक बहिष्कार को ख़त्म कर दिया। नबी (ﷺ) ने एक समय मक्कावालों के लिए शाप भी दिया, जिसके कारण ऐसा सूखा पड़ा कि लोगों को मुर्दार खाना पड़ा। अबू-सुफ़ियान जो मक्का के सरदारों में से थे और उस समय तक मुसलमान नहीं हुए थे, नबी (ﷺ) के पास भागते हुए आए और आपसे सूखा समाप्त होने की दुआ कराई। आपकी दुआ से सूखा समाप्त हो गया और आकाश में जो धुआँ दिखाई दे रहा था जिसको देखकर मक्कावाले भयभीत हो रहे थे, वह छँट गया। परन्तु वे फिर भी मुसलमान नहीं हुए।

❁ आपके चाचा अबू-तालिब का देहान्त :

सामाजिक बहिष्कार समाप्त होने के कुछ दिनों बाद अबू-तालिब का देहान्त हो गया। वे आपके लिए बहुत बड़े सहायक थे। उनके कारण मक्का के विधर्मी आप (ﷺ) को किसी प्रकार का कष्ट पहुँचाने से बचते थे। परन्तु निधन के बाद अब वे स्वतंत्र हो गए थे और अब तो और अधिक आपको एवं आपके साथियों को सताने लगे।

पत्नी ख़दीजा का निधन:

चचा के देहान्त के कुछ समय पश्चात् आपकी पत्नी ख़दीजा (رضي الله عنها) का भी निधन हो गया, जिसके कारण आप बहुत दुखी हुए।

मक्का से बाहर इस्लाम का प्रचार :

जब मुहम्मद (ﷺ) ने देखा कि मक्कावाले आपके प्रति अधिक कठोर बन गए हैं तो आपने मक्का से बाहर इस्लाम के प्रचार की योजना बनाई और वहाँ से निकटतम नगर ताइफ़ चले गए, जहाँ बनू-सक़ीफ़ का वंश रहता था। आपने उनको इस्लाम का संदेश सुनाया। परन्तु उन्होंने आपको पत्थर मारे, जिसके कारण आपके पाँव से रक्त बहने लगा। आप बहुत दुखी हुए, यहाँ तक कि अल्लाह की ओर से यह संदेश आया कि अगर आप कहें तो पर्वत चलने लगें और मक्कावालों को तथा उसके आसपास रहने वालों को कुचल कर रख दें। परन्तु आपके हृदय में प्रतिशोध की कोई ऐसी भावना पैदा नहीं हुई, बल्कि आपने दुआ की, ''ऐ अल्लाह। इनको सत्य-मार्ग दिखा।'' सहीह बुख़ारी और सहीह मुस्लिम की एक हदीस से यह भी ज्ञात होता है कि आपने कहा, ''(ऐ अल्लाह) मुझे विश्वास है कि इनकी संतान में से ऐसे लोग पैदा होंगे जो केवल तेरी ही उपासना करेंगे और किसी भी प्रकार का शिर्क नहीं करेंगे।'' (बुख़ारी, 3231 तथा मुस्लिम, 1795)

ताइफ़ में दस दिन बिताने के पश्चात् आप मक्का वापस आ गए। अल्लाह ने आपके हृदय को शान्ति प्रदान करने के लिए आपको सातों आकाशों की यात्रा कराई। वह इस प्रकार कि आपको मक्का से पहले बैतुल-मक़दिस ले जाया गया। फिर वहाँ से आपको आकाशों की यात्रा कराई गई। आपने इस यात्रा में बहुत कुछ देखा। (देखिए: क़ुरआन, सूरा बनी-इसराईल तथा सहीह बुख़ारी, 3207; सहीह मुस्लिम, 164)

इसी यात्रा में मुसलमानों पर पाँच समय की नमाज़ फ़र्ज़ की गई। आपने स्वर्ग और नरक को देखा। आपसे पूछा गया, ''क्या आपने अल्लाह को भी देखा है?'' उत्तर दिया, ''वह तो एक नूर (प्रकाश) है। उसे कैसे देखा जा सकता है?'' अर्थात् अल्लाह ने इस यात्रा के द्वारा नबी (ﷺ) को वह सब कुछ दिखा दिया जो हमारे नेत्रों से ओझल है। जिससे आपका हृदय प्रफुल्लित हो उठा और आप अधिक शक्ति के साथ इस्लाम के प्रचार-प्रसार में लग गए।

इस्लाम मदीना में :

यूँ तो इस्लाम की चर्चा मदीना तक पहुँच चुकी थी। परन्तु आप (ﷺ) हज के अवसर पर क़बीले के सरदारों के पास जाते और इस्लाम का संदेश पहुँचाते। यह आपकी नुबूवत का दसवाँ वर्ष था। आपने अक़बा नामक स्थान पर मदीना से आए हुए हाजियों से भेंट की। उनको इस्लाम का संदेश पहुँचाया जिसको सुनकर वे लोग मुसलमान हो गए। क्योंकि उन्होंने मदीना के यहूदियों से सुन रखा था कि

अन्तिम नबी आनेवाला है। जब उन्होंने नबी (ﷺ) की बातें सुनीं तो उनको विश्वास हो गया कि ये वही नबी हैं जिनकी सूचना यहूदी दिया करते थे।

दूसरे वर्ष आपने फिर हज के अवसर पर हाजियों के सामने इस्लाम का संदेश पेश किया। इस बार मदीना से 72 आदमी हज पर आए थे वे सब मुसलमान हो गए और उन्होंने हर प्रकार से आपकी रक्षा करने का वचन दिया और मदीना वापस चले गए। जहाँ उन्होंने इस्लाम का प्रचार प्रारम्भ कर दिया और नबी (ﷺ) के मदीना आने की प्रतीक्षा करने लगे। लेकिन आप हिजरत करने के लिए वह्य का इन्तिज़ार करने लगे। सहीह बुख़ारी तथा सहीह मुस्लिम में यह हदीस बयान की गई है कि आपको स्वप्न में दिखाया गया कि आप मक्का से एक ऐसे स्थान पर हिजरत करके गए हैं जो खजूर के बाग़ों से भरा हुआ है, तो आपने विचार किया कि शायद यह यमामा या हजर नाम का नगर है। फिर देखा तो यह यसरिब (मदीना का नाम) है। (देखिए : सहीह बुख़ारी 3622 तथा सहीह मुस्लिम 2272)

मक्का के विधर्मी चिन्ता में पड़ गए कि कहीं ऐसा न हो कि मक्का से बाहर मुहम्मद (ﷺ) के अनुयायियों की संख्या बढ़ जाए और बाद में हमारे लिए समस्या बन ज़ाए। इसलिए उन्होंने यह उपाय सोचा कि क्यों न मुहम्मद (ﷺ) को ही समाप्त कर दें। इसके लिए क़ुरैश वंश के सारे गोत्र जैसे–बनी-नौफ़ल, बनी-अब्द शम्स, बनी-अब्दुद्दार, बनी-असद, बनी-मख़्ज़ूम, बनी-सहम तथा बनी-जुम्ह 'दार-नंदवा' में इकट्ठा हुए। यह निर्णय हुआ कि हर गोत्र से एक-एक युवक लिया जाए। उन्हें चमकती हुई तलवार थमा दी जाए और भोर होते ही सब मुहम्मद (ﷺ) पर टूट पड़ें और उनकी हत्या कर दें। इस प्रकार हम उनसे मुक्ति पा जाएँगे और बनू-हाशिम हम सबसे बदला नहीं ले पाएँगे और हम सब मिलकर उनको इस हत्या के बदले में कुछ माल दे देंगे। अल्लाह ने उनकी योजना की सूचना नबी (ﷺ) को दे दी। क़ुरआन की सूरा–8, अल-अनफ़ाल की आयत 30 इसी ओर संकेत करती हैं –

«और (वह समय याद करो) जब विधर्मी तुम्हारे साथ चाल चल रहे थे कि तुमको क़ैद कर दें, या तुम्हारी हत्या कर दें, या तुम्हें देश से निकाल दें। वे अपनी चाल चल रहे थे, अल्लाह अपनी चाल चल रहा था और अल्लाह सबसे उत्तम चाल चलनेवाला है।»

आपको हुक्म दिया गया कि अब आप भी मदीना हिजरत कर जाएँ। आप (ﷺ) ने अली (رضي الله عنه) को बुलाया और इस्लाम-विरोधियों की जो अमानतें आपके पास थीं उनको अली के हवाले किया और आज्ञा दी कि मेरे जाने के बाद उनके मालिकों तक पहुँचा कर तुम मदीना आ जाना। आपने अली (رضي الله عنه) को अपने बिस्तर पर लिटा दिया और क़ुरआन की सूरा यासीन पढ़ते हुए घर से बाहर निकल गए। जब सूरा–36, या- सीन की आयत 9 पर पहुँचे –

«और हमने उनके आगे एक दीवार खड़ी कर दी और एक दीवार उनके पीछे, फिर उनपर परदा डाल दिया जिसके कारण उनको कुछ भी सुझाई नहीं देता।»

हिजरत नबवी

"और उस घटना का भी ज़िक्र कीजिए जबकि काफिर लोग आप के बारे में साजिश कर रहे थे कि आप को बंदी बनालें या आप को कत्ल कर दें या आप को देश निकाला दे दें, और वह अपनी साज़िश कर रहे थे और अल्लाह तआला अपनी योजना बना रहा था और अल्लाह तआला सब से बेहतर योजना बनाने वाला है।"

(अंफाल:30/8)

"अगर तुम उस (रसूल मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की मदद न करो तो अल्लाह ही ने उस की मदद की, उस वक़्त जब काफिरों ने उसे(देश से) निकाल दिया था, दो में से दूसरा जबकि वह दोनों गुफ़ा में थे, जब यह अपने साथी से कह रहे थे कि फ़िक्र न करो अल्लाह हमारे साथ है, तब अल्लाह ही ने अपनी तरफ़ से सकून उतारकर उन सेनाओं से उसकी मदद की जिन्हें तुम ने देखा भी भी नहीं।"

(तौबा: 40/9)

हिजरत का मार्ग
काफ़िलों का पुराना रास्ता

ज़ातल जैश
अतीक़
कुबा
मदीना मुनव्वारा
जुल-हुलैफ़ा
(आबार अली)
रुवेसा
अरज
हमरा असद
बद्र
जोहफ़ा
कुल्लिया
ख़ैमा
उम्मे मूबद
कुदय्येद
खुलैस
लाल सागर
कदीद
ग़दीर अश्तात
उस्फ़ान
सरफ
जिद्दा
हुदैबिया
मक्का मुकर्रमा
सौर पहाड़
तायेफ़

आपने एक मुट्ठी मिट्टी उठाई और उनके ऊपर फेंक दी। फिर वे नींद से न उठ सके। जब आप वहाँ से निकल गए, तो किसी ने आकर उन लोगों को सूचित किया कि हज़रत मुहम्मद (ﷺ) तो निकल गए। फिर उन्होंने घर के अन्दर प्रवेश किया तो देखा वहाँ अली (ؓ) सो रहे हैं। आप (ﷺ) अबू-बक्र (ؓ) के घर गए और वहाँ से दोनों मदीना के लिए निकल पड़े। यह 20 जून, 622 ई., सोमवार का दिन था। इसी दिन से मुसलमानों ने अपना हिजरी कैलेंडर शुरू किया।

जब मक्का के इस्लाम विरोधियों को आपके बचकर निकल जाने की सूचना मिली तो आपके पीछे लग गए। आप उनसे बचने के लिए सौर नामक पर्वत की एक गुफा में छिप गए। विधर्मी आप दोनों को खोजते हुए उस गुफा तक पहुँच गए, परन्तु यह देखकर कि गुफा के मुँह पर तो मकड़ी ने जाला लगा रखा है वापस लौट गए। (देखिए हदीस : मुसनद अहमद 1/348) यह आपकी रक्षा के लिए एक चमत्कार था जिसके कारण विधर्मी आपको गुफा में तलाश किए बिना लौट गए।

इस प्रकार दोनों, नबी (ﷺ) तथा अबू-बक्र (ؓ) गुफा में तीन दिन तक छिपे रहे। इसमें वह समय भी आया जब दुश्मन लोग गुफा के दहाने तक पहुँच गए। अबू-बक्र (ؓ) ने घबरा कर कहा, "ऐ अल्लाह के नबी! अगर ये लोग अपने पैरों के नीचे गुफा में झाँकेंगे तो हमें देख लेंगे।" नबी (ﷺ) ने कहा, "अबू बक्र (ؓ) हम दो ही नहीं हैं, बल्कि हमारे साथ हमारा अल्लाह भी है।" (हदीस : बुख़ारी : 3653 तथा मुस्लिम 2381)

क़ुरआन की सूरा–9, अत-तौबा की आयत 40 भी इसी ओर संकेत करती है –

«यदि तुम उसकी सहायता न भी करोगे तो (उसका कुछ भी नहीं बिगड़ेगा) अल्लाह ने तो उसकी सहायता उस समय की, जब इस्लाम-विरोधियों ने उसे निकाल दिया था। वह दो में से एक था (अर्थात दूसरे अबू-बक्र थे)। जब वे दोनों गुफा में थे, जब वह अपने साथी से कह रहा था, 'चिन्ता मत करो अल्लाह हमारे साथ है, तो अल्लाह ने उसपर अपनी ओर से शान्ति उतारी और उसकी सहायता ऐसी सेनाओं से की जिन्हें तुमने देखा नहीं और कुफ़्र करनेवालों को नीचा कर दिया और अल्लाह के बोल को ऊँचा रखा और अल्लाह प्रभुत्वशाली तथा तत्त्वदर्शी है।»

जब क़ुरैश को पूरा विश्वास हो गया कि मुहम्मद (ﷺ) अपने साथी अबू बक्र (ؓ) के साथ मक्का से निकलने में सफल हो गए तो उन्होंने यह घोषणा कर दी कि जो कोई उन दोनों की हत्या कर देगा या जीवित पकड़कर लाएगा उसको सौ ऊँट पुरस्कार के रूप में दिए जाएँगे। यह सुनकर एक दुश्मन, सुराक़ा-बिन-मालिक, आपको पकड़ने के लिए निकल पड़ा। जब वह उन दोनों के निकट पहुँचा तो उसके घोड़े के अगले दोनों पाँव धरती में गड़ गए और वह घोड़े से नीचे गिर पड़ा। फिर वह उठकर चिल्लाया और कहा, "मैं सुराक़ा-बिन-मालिक हूँ। मैं आपको कोई कष्ट नहीं देना चाहता और न ही आपका बुरा चाहता हूँ,

क्योंकि मुझे मालूम हो गया कि मुहम्मद का धर्म फैलकर रहेगा।'' नबी (ﷺ) ने अबू बक्र (رضي الله عنه) से कहा, ''इससे पूछो क्या चाहता है?'' जब अबू बक्र (رضي الله عنه) ने उससे पूछा तो उसने कहा, ''मुझे आप लिखकर दें।'' नबी (ﷺ) ने अबू- बक्र (رضي الله عنه) से कहा, ''लिखकर दे दो।'' तो उन्होंने उसे सलामती और अमान-नामा लिखकर दे दिया। वह उसको लेकर वापस चला आया। (देखें: सहीह बुख़ारी 3906)

फिर जब नबी (ﷺ) हुनैन और ताइफ़ के अभियान से वापस आ रहे थे तो सुराक़ा ने वह पुर्ज़ा दिखाया और मुसलमान हो गया।

मदीना के वासियों को पता चल गया था कि नबी (ﷺ) मक्का से निकल चुके हैं। इसलिए वे रोज़ाना मदीना से बाहर आप की प्रतीक्षा करते और जब गर्मी अधिक हो जाती तो वापस चले जाते। एक दिन ऐसा हुआ कि जब सब लोग अपने घरों को चले गए तो अल्लाह के नबी (ﷺ) ने क़ुबा में प्रवेश किया। वहाँ आप चौदह दिन ठहरे रहे। इस्लाम की सबसे पहली मस्जिद आपने यहीं बनाई जिसका वर्णन क़ुरआन में भी आया है। (देखिए: क़ुरआन, सूरा–9, अत-तौबा, आयत–108)

❁ मदीना काल :

नुबूवत के तेरह वर्ष बाद जब आप की उम्र 53 वर्ष हो गई थी, आप मदीना पहुँचे। मदीना का हर व्यक्ति इच्छा रखता था कि आप उसके यहाँ पधारें। आपके लिए यह निर्णय करना कठिन हो गया कि किसकी बात स्वीकार करें और किसकी न करें। इसलिए आपने फ़रमाया, ''मेरी ऊँटनी को छोड़ दो यह अल्लाह की आज्ञा से जहाँ बैठ जाएगी, मैं वहीं ठहरूँगा। (देखिए: इब्ने-हिशाम 1/495 तथा अलबिदाया व अन्निहाया 3/200)

ऊँटनी घूमती हुई अबू-अय्यूब के द्वार पर रुक गई। आप (ﷺ) उससे उतरे और वहाँ ठहर गए। वहाँ कुछ खुला मैदान था, जैसे खलियान होता है, जहाँ लोग खजूर सुखाया करते थे। आपने पूछा, ''यह खलियान किसका है?'' बताया गया बनू-नज्जार के दो अनाथ बच्चों का है। (देखिए: हदीस: सहीह बुख़ारी (7/265))

आप (ﷺ) ने उसको ख़रीदकर वहाँ मस्जिद बनाने का हुक्म दिया और मुसलमानों के साथ आपने स्वयं भी मस्जिद बनाने में सहयोग किया। मदीना के वासियों ने मक्का से आनेवाले मुसलमानों की पूरी सहायता की, जिसके कारण उनका नाम अनसार (मददगार) पड़ गया।

आप (ﷺ) ने मक्का से आने-वालों की समस्या इस प्रकार दूर की कि मक्का से आनेवालों को मदीनावालों को सौंप दिया और कहा, ''जाओ आज से तुम दोनों भाई-भाई हो।'' मदीनावाले अनसार (सहायता करनेवाले) कहलाए और मक्कावाले मुहाजिर (अल्लाह के मार्ग में घर-बार छोड़नेवाले) कहलाए। अनसार ने उन्हें बड़ी प्रसन्नता से अपना भाई बना लिया। वे उन्हें अपने घर ले गए और अपना घर, अपना सामान और खजूर के खेत सबका आधा अपने मुहाजिर भाई को सौंपने के

लिए तैयार हो गए। इतिहास में यह भी लिखा है कि एक अनसारी साद-बिन-रबीआ की दो पत्नियाँ थीं तो उन्होंने अपने मुहाजिर भाई से कहा, "इन दोनों में से तुम्हें जो पसन्द हो मैं उसे तलाक़ दे देता हूँ, तुम उससे विवाह कर लो।" लेकिन अब्दुर्रहमान ने दुआ देकर कहा, "मुझे तो तुम बस बाज़ार का रास्ता बता दिखा दो।" और फिर वे व्यापार करने लगे क्योंकि वे एक व्यापारी थे। बाद में उन्होंने अपनी कमाई से एक अनसारी स्त्री से विवाह किया।

नबी (ﷺ) ने जब उनके हाथ पर गेरुआ रंग देखा तो पूछा,

"यह क्या है?" उत्तर दिया, "एक अनसारी स्त्री से विवाह किया है।" आपने फ़रमाया, "फिर तो तुमको वलीमा (दावत) करना चाहिए, चाहे वह एक बकरी ही क्यों न हो।" (देखिए: सुनन नसई, 6/137)

इस प्रकार अनसार ने ऐसा आदर्श पेश किया जो प्रलय-दिवस तक प्रकाश दिखाता रहेगा। क़ुरआन ने उनकी प्रशंसा इस प्रकार की –

«जो लोग इनसे पहले से इस घर (मदीने) में बसे हुए हैं और ईमान रखते हैं, वे उनसे प्रेम करते हैं जो हिजरत करके उनके यहाँ आए और अपने दिलों में उससे कोई खटक नहीं पाते जो कुछ उनको दिया जाए और उन्हें अपने मुक़ाबले में प्राथमिकता देते हैं चाहे स्वयं उन्हें आवश्यकता ही क्यों न हो। और जो अपने मन के लोभ और कृपणता से बचा लिए जाएं वही सफलता प्राप्त करनेवाले हैं।» (क़ुरआन, सूरा-59, अल-हश्र, आयत-9)

मुहाजिर भाई भी कोई लालची नहीं थे। उन्होंने उनके बरताव का उत्तम बदला दिया।

❋ मदीना के यहूदियों के साथ संधि :

मदीना में अरब और यहूदी आबाद थे। इस्लाम अरबों में बड़ी तेज़ी से फैल रहा था। बल्कि अगर यह कहा जाए तो सही है कि कोई ऐसा घर नहीं था जिसमें कोई व्यक्ति मुसलमान न हो गया हो।

अब यह भय था कि मक्का के विधर्मी दूसरे अरबवासियों को नबी (ﷺ) तथा मुसलमानों के विरुद्ध भड़काकर कहीं युद्ध न छेड़ दें। इसलिए नबी (ﷺ) ने मदीना के यहूदियों से एक संधि करा ली। वह यह कि बाहर से आक्रमण होने की दशा में वे मुसलमानों की सहायता करेंगे और इस्लाम की बढ़ती हुई शक्ति से उनको कोई हानि नहीं पहुँचेगी। और मदीना पर किसी ने चढ़ाई की तो मुसलमान उनकी सुरक्षा करेंगे।

❋ बद्र का युद्ध :

बद्र उस गाँव का नाम है जो मदीना से 80 मील दूर दक्षिण-पश्चिम की ओर है। मुसलमानों और विधर्मियों के बीच प्रथम युद्ध इसी स्थान पर सन् 2 हिजरी में हुआ, मक्का के इस्लाम-विरोधियों ने इस्लाम और मुसलमानों को नष्ट करने के लिए मदीने पर हमला कर दिया। मुसलमान इस युद्ध में

विजयी हुए। परन्तु इस युद्ध ने दूसरे अरबों को चौकन्ना कर दिया और इस्लाम की बढ़ती हुई शक्ति से वे लोग बौखला गए।

उहुद का युद्ध :

उहुद मदीना के निकट एक पहाड़ी का नाम है। इस युद्ध का कारण मक्का के मुशरिकों की यह दुर्भावना थी कि बद्र में जो सरदार मारे गए उनका बदला लिया जाए। इसलिए सन् 3 हिजरी में उन्होंने मदीने पर आक्रमण कर दिया, लेकिन अभी वे उहुद तक पहुँचे थे कि नबी (ﷺ) और मुसलमानों ने उन्हें वहीं घेर लिया, परन्तु इस युद्ध में मुसलमानों को बहुत क्षति हुई। स्वयं नबी (ﷺ) भी घायल हो गए।

नबी (ﷺ) दस वर्ष तक मदीने में रहे। इस बीच आपको अनेक युद्ध करने पड़े जिनमें प्रसिद्ध ये हैं : बद्र, उहुद, ख़न्दक़, हुदैबिया, ख़ैबर, मक्का की विजय, हुनैन और तबूक। हिजरत के दसवें वर्ष आपने हज किया जिसमें एक लाख बीस हज़ार मुसलमान सम्मिलित हुए। आपने 9 ज़िलहिज्जा को अरफ़ात के मैदान में एक ऐतिहासिक भाषण दिया, जिसमें आपने अत्यन्त महत्वपूर्ण आदेश दिए, उनमें से कुछ ये हैं :

1. अरबी और ग़ैर-अरबी (जिनको अजमी कहते हैं) में कोई भेदभाव नहीं, हम एक आदम की संतान हैं और आदम को अल्लाह ने मिट्टी से बनाया।
2. मुसलमान परस्पर भाई-भाई हैं।
3. अपने ग़ुलामों के साथ अच्छा बरताव करो, जो स्वयं खाओ वही उनको खिलाओ और जो स्वयं पहनो वही उनको भी पहनाओ।
4. औरत के विषय में अल्लाह से डरो, तुम्हारा उनपर और उनका तुमपर अधिकार है।
5. मैं तुम्हारे लिए दो चीज़ें छोड़े जा रहा हूँ, तुम उनको मज़बूती के साथ पकड़े रहोगे तो कभी भी सत्य मार्ग से नहीं भटकोगे, उनमें से एक अल्लाह का ग्रन्थ क़ुरआन और दूसरी नबी की सुन्नत है।

फिर आप (ﷺ) ने लोगों को सम्बोधित करके फ़रमाया, ''तुमसे अल्लाह के यहाँ मेरे विषय में पूछा जाएगा तो क्या कहोगे?'' लोगों ने उत्तर दिया, ''हम यही कहेंगे कि आपने अल्लाह का संदेश, हम तक पहुँचा दिया।'' फिर आप (ﷺ) ने आकाश की ओर उँगली उठाकर फ़रमाया, ''ऐ अल्लाह! तू साक्षी रहना।''

अल्लाह ने आप (ﷺ) को जिस कार्य के लिए नियुक्त किया था उसे आप (ﷺ) ने पूरा कर दिया। आपका लाया हुआ धर्म अरब प्रायद्वीप से निकलकर निकटतम देशों तक फैल गया और अल्लाह ने भी इस्लाम धर्म के पूर्ण होने की घोषणा कर दी –

«आज मैंने तुम्हारे लिए तुम्हारा धर्म पूर्ण कर दिया और तुमपर अपनी नेमत (अनुकम्पा) पूरी कर दी, और मैंने तुम्हारे लिए इस्लाम धर्म को पसन्द किया।» (क़ुरआन, सूरा-5, अल-माइदा, आयत-4)

इस आयत के उतरने से कुछ लोगों को विश्वास हो गया कि अब आप (ﷺ) हमसे विदा होनेवाले हैं और ऐसा ही हुआ। हज से आने के बाद आप बीमार हो गए और 12 रबीउल-अव्वल सन् 11 हिजरी अर्थात् 642 ई. को आपका निधन हो गया आपका जहाँ देहान्त हुआ था वहीं आपको दफ़न कर दिया गया, जो अब मस्जिदे-नबवी के अन्दर ही आ गया है।

आप (ﷺ) के देहान्त से पहले पूरा क़ुरआन लिपिबद्ध हो चुका था और बहुत-से मुसलमानों ने उसे कंठस्थ भी कर लिया था। क़ुरआन इस समय हमारे सामने जिस क्रम और जिस रूप में मौजूद है यह वही है जिसको नबी (ﷺ) छोड़कर गए थे। आज भी संसार में लाखों मुसलमान हैं जिनको क़ुरआन स्मरण है।

अब आइए संक्षेप में यह ज्ञात करें कि क़ुरआन आप (ﷺ) के विषय में क्या कहता है –

1. आपको अल्लाह ने रसूल बनाकर भेजा :

«वही है जिसने अपने रसूल (अर्थात् मुहम्मद) को मार्गदर्शन तथा सत्य-धर्म के साथ भेजा ताकि वह उसे दूसरे धर्मों पर प्रभुत्व प्रदान करे चाहे मुशरिकों को कितना ही बुरा क्यों न लगे।» (सूरा-61, अस-सफ़्फ़, आयत-9)

«हमने तुम्हें सत्य धर्म के साथ (मोमिनों के लिए) शुभ सूचना देनेवाला (इनकार करने वालों के लिए) डरानेवाला बनाकर भेजा है। और तुमसे भड़कती हुई आगवालों (जहन्नमी लोगों) के विषय में कुछ भी पूछा नहीं जाएगा।» (सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-119)

«हमने तुम्हारी ओर एक रसूल भेजा जो तुमपर साक्षी होगा, जैसा कि हमने फ़िरऔन की ओर एक रसूल भेजा था।» (सूरा-73, मुज़्ज़म्मिल, आयत-15)

2. मुहम्मद (ﷺ) अन्तिम नबी बनाकर भेजे गए हैं। अतः आपके पश्चात अब कोई नबी नहीं आएगा। अब प्रलय-दिवस तक संसार के कल्याण का एक मात्र साधन आप (ﷺ) पर ईमान लाना और आपके आदेशों का पालन करना है, क्योंकि अल्लाह ने सम्पूर्ण संसार के लिए आपको अन्तिम रसूल बनाकर भेजा है।

क़ुरआन में है –

«मुहम्मद तुम्हारे पुरुषों में से किसी के पिता नहीं हैं, परन्तु वे अल्लाह के रसूल और नबियों के समापक हैं। और अल्लाह हर वस्तु का ज्ञान रखनेवाला है।» (सूरा-33, अल-अहज़ाब, आयत-40)

क़ुरआन ने 'ख़ातम' शब्द प्रयुक्त किया है जिसका अर्थ मुहर (Seal) भी होता है और अन्तिम भी। इस प्रकार आप अन्तिम नबी हैं और आपके जाने के पश्चात् अल्लाह ने नबियों के सिलसिले पर मुहर लगा दी, इसलिए अब कोई नबी नहीं आएगा। नबी (ﷺ) ने इसकी घोषणा कर दी कि मेरे बाद कोई नबी नहीं आएगा।

3. अल्लाह ने आप (ﷺ) के उच्च स्वभाव की प्रशंसा की है। आप नुबूवत से पहले अपनी जाति में अमीन (अमानतदार) कहलाते थे। नुबूवत के बाद आपका स्वभाव और उच्च हो गया। इसी ओर क़ुरआन संकेत करता है–

«गवाह है क़लम और जो वे उससे लिखते हैं। तुम अपने रब की कृपा से दीवाने (उन्मत्त) नहीं हो। निश्चय ही तुम्हारे लिए ऐसा बदला है जो कभी समाप्त नहीं होगा और निस्सन्देह तुम उच्च स्वभाववाले हो तुम और ये विधर्मी जल्द ही देख लेंगे कि तुम में से कौन भ्रम में पड़ा हुआ है।» (सूरा-68, अल-क़लम, आयतें 1-6)

4. आप (ﷺ) के हाथ पर बैअ्त करना अल्लाह से बैअ्त करना है–

«जो लोग तुमसे बैअ्त करते हैं वे अल्लाह ही से बैअ्त करते हैं। अल्लाह का हाथ उनके हाथों पर है। अब जिसने (इस बैअ्त) को तोड़ दिया तो वह तोड़कर अपना ही बुरा करेगा। और जिसने उसे पूरा किया जिसकी प्रतिज्ञा अल्लाह से की है उसे वह बहुत बड़ा बदला प्रदान करेगा।» (क़ुरआन, सूरा-48, अल-फ़तह, आयत-10)

अरब लोग जब किसी बात का संकल्प करते थे तो एक-दूसरे का हाथ पकड़कर अल्लाह की शपथ लेते थे जिसको 'बैअ्त' कहते हैं। और फिर इसको तोड़ना बहुत बुरा समझते थे। ऊपर की आयत में इसी की ओर संकेत किया गया है कि जो लोग मुहम्मद (ﷺ) के हाथ पर बैअ्त करते हैं वे वास्तव में अल्लाह से बैअ्त करते हैं। इसलिए इसके तोड़ने से बचना चाहिए, इसमें जहाँ बैअ्त का महत्त्व बताया गया है वहीं नबी (ﷺ) के पद की ओर संकेत किया गया है।

5. आप (ﷺ) वह्य अर्थात ईश-प्रकाशना के अनुसार ही धर्म प्रचार करते थे–

«शपथ है तारे की जब वह नीचे आया। तुम्हारा साथी न तो भटका है और न मार्ग से फिरा है। और ऐसा नहीं कि जो चाहता है कह देता है, वह तो बस वह्य होती है जो उसपर की जाती है।» (क़ुरआन, सूरा-53, अन-नज्म, आयतें–1-4)

«मेरी ओर तो केवल इसलिए वह्य की जाती है कि मैं खुला-खुला सचेत करनेवाला हूँ।» (क़ुरआन, सूरा-46, अल-अहक़ाफ़, आयत-9)

«कहो, सबसे बड़ी गवाही किसकी है? कहो, अल्लाह मेरे और तुम्हारे बीच साक्षी है। और यह क़ुरआन मेरी ओर वह्य किया गया है, ताकि मैं इसके द्वारा तुम्हें और जिस किसी को यह पहुँचे सचेत करूँ।» (क़ुरआन, सूरा-6, अल-अनआम, आयत-19)

«कहो, मैं तो तुम ही जैसा केवल एक मनुष्य हूँ (अर्थात् पूज्य नहीं हूँ) परन्तु मेरी ओर वह्य आती है कि तुम्हारा पूज्य तो बस एक ही है।» (क़ुरआन, सूरा-18, अल-कहफ़, आयत-110)

6. आपको अल्लाह ने सारे संसार वालों के लिए नबी बनाकर भेजा –

«और (ऐ मुहम्मद) हमने तो तुम्हें सारे मनुष्यों के लिए शुभ-सूचक और सचेत करनेवाला बनाकर भेजा है। परन्तु अधिकतर लोग जानते नहीं।» (क़ुरआन, सूरा-34, सबा, आयत-28)

नबी (ﷺ) ने इसकी पुष्टि की है। आपने फ़रमाया :

"(मुझसे पहले) नबी केवल अपनी जाति के लिए भेजे जाते थे परन्तु मुझे सारे मनुष्यों के लिए भेजा गया है।" (सहीह हदीस : बुख़ारी, 335)

दूसरी हदीस में है –

"मैं सारे मनुष्यों की ओर भेजा गया हूँ और मेरे द्वारा नुबूवत समाप्त कर दी गई।" (सहीह मुस्लिम, 523)

इसी लिए इस्लाम धर्म स्वीकार करने के बाद एक मुसलमान का किसी से कोई भेदभाव नहीं होता है। रंग, जाति, भाषा तथा देश के पृथक होने का इस्लामी समाज पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कोई भी मुसलमान किसी भी मुसलमान से इस्लामी विधान के अनुसार विवाह कर सकता है, मस्जिद में एक-दूसरे के साथ मिलकर नमाज़ पढ़ सकता है और क़ुरआन का विद्वान बन सकता है। अर्थात् सामान्य रूप से एक-दूसरे में कोई भेदभाव नहीं रहता और अगर कहीं भेदभाव पाया जाता है तो वह इस्लामी शिक्षा के विरुद्ध है।

7. आप (ﷺ) के चमत्कार : वैसे तो नबी (ﷺ) के हाथों बहुत-से चमत्कार प्रकट हुए जिनका वर्णन हदीस की किताबों में आया है। जैसे चाँद के दो टुकड़े हो जाना। (देखिए हदीस : सहीह बुख़ारी, 4864 तथा मुस्लिम 2800) नबी (ﷺ) की उंगलियों से पानी के सोते बह निकलना। (देखिए हदीस : सहीह बुख़ारी, 3579) ख़ंदक़ के युद्ध में दो-तीन आदमियों का भोजन एक हज़ार आदमियों के लिए काफ़ी हो जाना। (देखिए, सहीह बुख़ारी, 4101) साइब बिन-यज़ीद जो बचपन से ही किसी रोग से ग्रस्त थे, उनकी मौसी उन्हें लेकर नबी (ﷺ) के पास गईं और आप (ﷺ) ने अल्लाह से दुआ एवं प्रार्थना की जिससे साइब-बिन-यज़ीद सदैव के लिए स्वस्थ हो गए। यहाँ तक कि चौरानवे वर्ष तक जीवित रहे मगर फिर कभी बीमार नहीं हुए। (देखिए : सहीह बुख़ारी, 190 तथा सहीह मुस्लिम 2345) इस प्रकार के बहुत सारे चमत्कार हदीस की किताबों में वर्णित हुए हैं। परन्तु यहाँ एक ऐसे चमत्कार का वर्णन किया जा रहा है जो महाप्रलय-दिवस तक रहनेवाला है। और वह है क़ुरआन। क्योंकि इससे पूर्व बताया जा चुका है कि जब हिरा नामक गुफा

में जिबरील क़ुरआन की वह्य लेकर आए और आपसे कहा, "पढ़", तो आपने उत्तर दिया, "मुझे पढ़ना नहीं आता।" इसकी पुष्टि क़ुरआन भी करता है कि आपको पढ़ना-लिखना नहीं आता था –

«कहो, ऐ लोगो ! मैं तुम सब की ओर उस अल्लाह का रसूल बनाकर भेजा गया हूँ जो आकाशों और धरती का स्वामी है। उसके अतिरिक्त कोई पूज्य नहीं, वही जीवन प्रदान करता है और वही मृत्यु देता है। अतः अल्लाह और उसके रसूल, जो उम्मी हैं, पर ईमान लाओ।" (क़ुरआन, सूरा-7, अल-आराफ़, आयत-158)

उम्मी का एक अर्थ अनपढ़ भी है, अर्थात जिसको पढ़ना-लिखना न आता हो। नबी (ﷺ) जिस नगर और समाज में पैदा हुए थे वे उम्मी लोग थे। इसलिए आप (ﷺ) भी उम्मी रह गए। फिर ऐसे व्यक्ति पर क़ुरआन जैसा महान ग्रन्थ उतरना इतना बड़ा चमत्कार है जिसका संसार में कोई उदाहरण नहीं है। इसलिए क़ुरआन ने स्वयं बार-बार चैलेंज किया है कि अगर तुमको इसकेअल्लाह की ओर से होने में सन्देह है तो इस जैसा दूसरा ग्रंथ लाकर दिखाओ –

«कह दो ! यदि मनुष्य और जिन्न इस बात के लिए इकट्ठा हो जाएँ कि इस क़ुरआन जैसा कोई ग्रन्थ लाएँ तो वे इस जैसा ग्रन्थ नहीं ला सकेंगे चाहे वे परस्पर एक-दूसरे के सहायक ही क्यों न बन जाएँ।» (सूरा-17, बनी-इसराईल, आयत-88)

मक्का के विधर्मी और मुशरिक ऐसा ग्रन्थ लाने में असमर्थ रहे। जबकि वे अपने आपको अरबी भाषा का महान विद्वान समझते थे।

फिर क़ुरआन ने दोबारा चैलेंज किया कि अगर पूर्ण क़ुरआन जैसा ग्रन्थ नहीं ला सकते तो उस जैसी सूरतें ही लाकर दिखा दो –

«क्या ये कहते हैं कि उसने इसे स्वयं गढ़ लिया है। कह दो, अच्छा तो तुम इस जैसी गढ़ी हुई दस सूरतें ले आओ और अल्लाह के अतिरिक्त जिस किसी को बुला सकते हो बुला लो यदि तुम सच्चे हो।» (सूरा-11, हूद, आयत-13)

जब वे दस सूरतें भी लाने में असमर्थ रहे तो उसने तीसरी बार चैलेंज किया –

«क्या ये लोग कहते हैं कि इसने उसे स्वयं गढ़ लिया है ? कहो ! यदि तुम सच्चे हो तो एक ही सूरा उसके समान बनाकर ले आओ, और अल्लाह के अतिरिक्त जिसको बुला सकते हो बुला लो।» (क़ुरआन, सूरा-10, यूनुस, आयत-38)

अगर तुम्हें इस बात में सन्देह है कि यह किताब जो हमने अपने बन्दे पर उतारी है, हमारी है या नहीं, तो इस जैसी एक ही सूरा बना लाओ। एक अल्लाह को छोड़कर बाक़ी जिसको चाहो बुला लो। अगर तुम सच्चे हो तो यह काम करके दिखाओ।

मगर जब ऐसा भी करने में वे असमर्थ रहे। तो फिर क़ुरआन ने एक और चैलेंज दिया कि अगर यह क़ुरआन गढ़ा हुआ है तो इस जैसा कलाम (ईशवाणी) लाकर दिखा दो।

«क्या ये कहते हैं कि इसने यह बात अपनी ओर से बना ली है? नहीं, बल्कि ये ईमान नहीं लाना चाहते। अच्छा, यदि ये सच्चे हैं तो इस जैसा कलाम (वाणी) लाकर दिखाएँ।» (सूरा-52, अत-तूर, आयतें-33-34)

«और अगर उसके विषय में, जो हमने अपने बन्दे पर उतारा है, तुम किसी सन्देह में हो तो उस जैसी कोई सूरा ले आओ और अल्लाह से हटकर अपने सहायकों को बुला लो जिनके आ मौजूद होने पर तुम्हें विश्वास है, यदि तुम सच्चे हो।» (सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-23)

नबी (ﷺ) का सबसे बड़ा चमत्कार यह क़ुरआन है जो आपपर उतरा, जबकि आप 'उम्मी' थे, परन्तु आपका लाया हुआ क़ुरआन करोड़ों मनुष्यों को प्रभावित कर गया और करता रहेगा और प्रलय दिवस तक कोई भी उस जैसी वाणी लाने में समर्थ नहीं हो सकता।

नबी (ﷺ) का दावती पत्र राजाओं के नाम

यहाँ नबी (ﷺ) का एक दावती पत्र, जो आप (ﷺ) ने मिस्र के राजा के नाम लिखा था, और उसका उत्तर दिया जा रहा है।

नबी (ﷺ) ने सन् 9 हिजरी में बहुत सारे राजाओं के नाम पत्र लिखे। इन्हीं राजाओं में मिस्र का राजा 'मुक़ौक़िस' भी था, जिसको आप (ﷺ) ने यह पत्र लिखा –

"मुहम्मद, अल्लाह के बन्दे और रसूल, की ओर से मिस्र के सम्राट् मुक़ोक़िस के नाम; उसपर सलामती हो, जो सत्य धर्म ग्रहण करे।

इसके बाद मैं तुम्हें इस्लाम ग्रहण करने का संदेश देता हूँ। अगर इस्लाम ग्रहण कर लोगे तो तुम सुरक्षित रहोगे और अल्लाह तुम्हारे पुण्य को दुगुना कर देगा और अगर तुमने इनकार किया तो तुम पर क़िब्तियों (अर्थात् मिस्रियों) का पाप होगा।" फिर क़ुरआन की निम्न आयत लिखी –

«ऐ अहले-किताब! आइए, एक ऐसी बात पर समझौता कर लें, जिसे हमारे और तुम्हारे बीच समान रूप से मान्यता प्राप्त है, यह कि हम अल्लाह के अतिरिक्त किसी की बन्दगी न करें, और न उसके साथ किसी को साझी ठहराएँ और न हममें से कोई परस्पर एक-दूसरे को अल्लाह से हट कर 'रब' बनाए। परन्तु यदि वे इन बातों से मुँह मोड़ें तो कह दो : साक्षी रहो, हम तो मुसलमान (अर्थात् अल्लाह के आज्ञाकारी) हैं।» (सूरा-29, अल-अनकबूत, आयत-46)
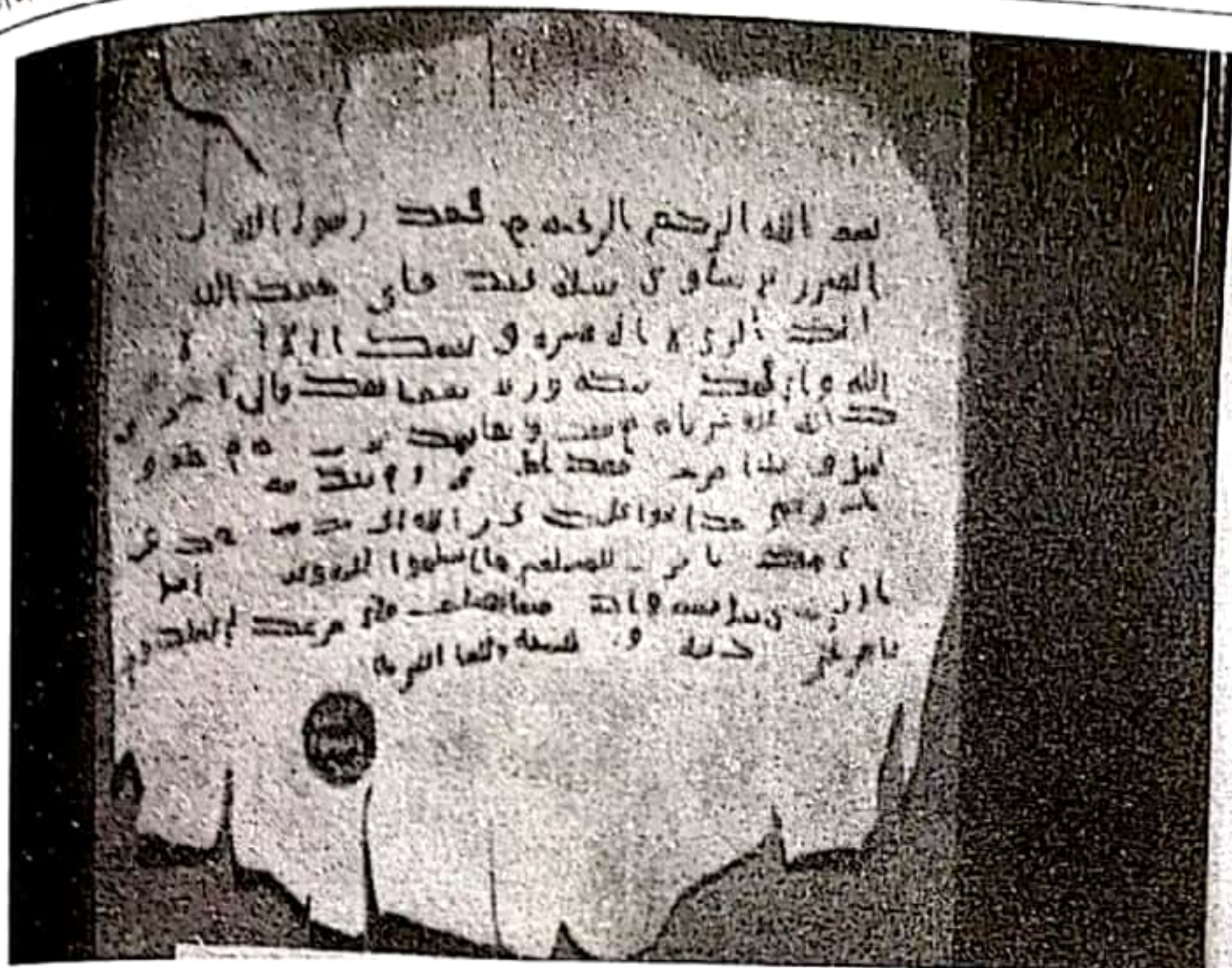
"नबी (ﷺ) का पत्र जो आप ने मुंज़िर बिन सावी को लिखा था"

"नबी (ﷺ) की मुहर"

मिस्र के राजा मुक़ौक़िस का उत्तर –

मुहम्मद-बिन-अब्दुल्लाह के नाम मुक़ौक़िस की ओर से सलाम। मैंने आपका पत्र पढ़ा उसमें जो कुछ आपने वर्णन किया है और आप जो संदेश देते हैं, सब समझ गया। मुझे इस बात का ज्ञान था कि एक नबी आनेवाला है, परन्तु मेरा विचार था कि वह शाम (सीरिया) में आएगा। मैंने आपके दूत का स्वागत किया। मैं आपको दो सुन्दर लड़कियाँ भेंट कर रहा हूँ, जिनका मिस्री जाति में बड़ा महत्त्व और नाम है। और उन्हीं के साथ कुछ कपड़े और एक ख़च्चर भी भेज रहा हूँ, ताकि आप उसपर सवारी कर सकें। वस्सलाम

कुछ यूरोपीय विद्वानों का विचार है कि मिस्र के राजा मुक़ौक़िस का उत्तर इन शब्दों में था –

''अल्लाह के नाम से, मुक़ौक़िस की ओर से मुहम्मद के नाम। तत्पश्चात, मुझे आपका पत्र मिला। उसको पढ़ा और जो कुछ उसमें लिखा था समझ गया। आप कहते हैं कि अल्लाह ने आपको रसूल बना कर भेजा है और आपपर क़ुरआन उतारा है। ऐ मुहम्मद हमें अपने ज्ञान के प्रकाश में इस बात का स्पष्टीकरण हो गया कि आप अल्लाह की ओर बुलानेवाले हैं, आप सत्य बात करनेवाले हैं। अगर मैं एक महान देश का राजा न होता तो मैं प्रथम व्यक्ति होता जो आपके पास पहुँचता। मुझे इस बात का भी ज्ञान है कि आप नबियों के ख़ातिम हैं (अर्थात् आपके बाद कोई नबी नहीं आएगा।) और आप नबियों के सरदार और सदाचारियों के नायक हैं।

आपपर अल्लाह की सलामती और रहमत प्रलय-दिवस तक जारी रहे।'' (अधिक जानकारी के लिए देखिए : वसाइक़ सियासिया; लेखक : डॉ. मुहम्मद हमीदुल्लाह, पेज–106-108)

ऊपर जिन दो स्त्रियों का वर्णन हुआ है उनमें से एक से, जिनका नाम मारिया क़िब्तीया था, नबी (ﷺ) ने निकाह किया और इन्हीं मारिया से इबराहीम-बिन-मुहम्मद पैदा हुए। परन्तु बहुत जल्द इबराहीम का देहान्त हो गया। इसी अवसर पर नबी (ﷺ) ने फ़रमाया था –

"आँखें रो रही हैं, दिल दुख से भर उठा है, परन्तु ऐसे समय में भी हम कोई ऐसी बात नहीं कहेंगे जो हमारे रब को नापसन्द हो।"

मुक़ौक़िस तो मुसलमान नहीं हुआ, परन्तु उमर-बिन-ख़त्ताब के समय में सन् 21 हिजरी में मुसलमानों ने अब्दुल्लाह- बिन-अम्र-बिन-आस के नेतृत्व में मिस्र पर विजय प्राप्त कर ली और कुछ ही वर्ष पश्चात् पूरे मिस्र में इस्लाम फैल गया।

इस्लामी इतिहास में मिस्र का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। वहाँ बड़े-बड़े विद्वान पैदा हुए। वह क़ुरआन तथा हदीस की व्याख्या करनेवालों का केन्द्र बन गया। संसार का सबसे पहला विश्वविद्यालय मिस्र ही में लगभग एक हज़ार वर्ष पूर्व स्थापित किया गया, जिसको आजकल 'जामिआ अज़हर' कहते हैं। और आज भी इस विश्वविद्यालय के पढ़े हुए हज़ारों विद्वान इस्लाम के प्रचार में लगे हुए हैं।

मिस्र के राजा मुक़ौक़िस के नाम नबी (ﷺ) के पत्र की छायाप्रति इस्तम्बूल के किसी अजाइब घर में मौजूद है।

मुहम्मद (ﷺ) की पत्नियाँ

अरबी भाषा में नबी (ﷺ) की पत्नियों को 'अज़वाज मुतहरात' कहते हैं।

नबी (ﷺ) की पत्नियों को मुस्लिम-समाज में बहुत ही ऊँचा एवं विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

1. क़ुरआन ने बड़े स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा की है कि नबी (ﷺ) की पत्नियाँ साधारण स्त्रियों के समान नहीं हैं–

«ऐ नबी की पत्नियो ! तुम साधारण स्त्रियों के समान नहीं हो। यदि तुम अल्लाह का डर रखो। अत : तुम्हारी बातों में लोच (कोमल भाव) न हो कि वह व्यक्ति जिसके दिल में रोग है लालच में पड़ जाए। तुम सामान्य ढंग से बात करो।» (सूरा–33, अल-अहज़ाब, आयत–32)

2. क़ुरआन में नबी (ﷺ) की पत्नियों को यह चेतावनी दी गई है–

«ऐ नबी की पत्नियो ! तुम में से जो भी प्रत्यक्ष अश्लील कर्म करेगी, उसे दोहरी यातना दी जाएगी। और अल्लाह के लिए यह बहुत सरल है।» (सूरा–33, अल-अहज़ाब, आयत–30)

3. नबी की पत्नियाँ मुसलमानों के लिए माँ के समान हैं। क़ुरआन में है –

«नबी का हक़ ईमानवालों पर स्वयं उनके अपने प्राणों से बढ़कर है। और उसकी पत्नियाँ उनकी माताएँ हैं।» (सूरा–33, अल-अहज़ाब, आयत–6)

4. इसलिए नबी की पत्नियों से विवाह करना सदैव के लिए वर्जित कर दिया गया है–

«तुम्हारे लिए यह कदापि उचित नहीं कि अल्लाह के रसूल को कष्ट पहुँचाओ, और न तुम्हारे लिए यह जायज़ (उचित) है कि उनके बाद उनकी पत्नियों से विवाह करो। निश्चय ही यह अल्लाह की दृष्टि में महापाप है।» (सूरा–33, अल-अहज़ाब, आयत–53)

नबी (ﷺ) की पत्नियों का माँ के समान होने का अर्थ यह है कि उनका आदर सत्कार किया जाए। परन्तु उनसे पर्दा किया जाएगा। इस प्रकार आप (ﷺ) की पत्नियों को दूसरा विवाह करना जायज़ नहीं था।

नबी (ﷺ) की बारह पत्नियाँ थीं।

वेदों और पुराणों में अन्तिम महर्षि के विषय में आया है कि उनकी बारह पत्नियाँ होंगी। और इतिहास से सिद्ध होता है कि मुहम्मद (ﷺ) के अतिरिक्त बारह पत्नियोंवाला कोई दूसरा ऋषि नहीं आया। (देखिए: अन्तिम अवतार, परिचय: विकाशनन्द ब्रहमचारी)

संक्षेप में उन बारह पत्नियों का वर्णन प्रस्तुत किया जाता है–

1. ख़दीजा (رضي الله عنها) :

जब नबी (ﷺ) की उम्र पच्चीस वर्ष थी तो आप (ﷺ) ने ख़दीजा से विवाह किया, जो चालीस वर्ष की एक विधवा थीं। उनके पहले पति का नाम अबू-हाला, और दूसरे का अतीक़ था।

जब अल्लाह ने आप (ﷺ) को नबी बनाया तो ये पहली स्त्री थीं जो आप (ﷺ) पर ईमान लाईं। जब आप (ﷺ) हिरा की गुफाओं में अल्लाह के ध्यान में मग्न थे, तो जिबरील (عليه السلام) पहली वह्य (प्रकाशना) लेकर आए। उस समय आप (ﷺ) घबरा उठे। घर आए तो आप (ﷺ) भयभीत थे, आप (ﷺ) ने जब इसका वर्णन अपनी पत्नी ख़दीजा (رضي الله عنها) से किया तो उन्होंने आप (ﷺ) को ढाढ़स बँधाते हुए कहा, "उस ज़ात की क़सम जिसके हाथ में ख़दीजा की जान है। आप इस उम्मत के नबी होंगे। आप तो सच बोलते हैं, रिश्तों को जोड़ते हैं, अमानतों में ख़यानत नहीं करते। निर्धनों और बेसहारा लोगों को सहारा देते हैं। मेहमान की ख़ातिर करते हैं, भलाई के कामों में मदद करते हैं। भला अल्लाह आप को कैसे बर्बाद होने देगा।" और फिर आप (ﷺ) को लेकर अपने चचेरे भाई वरक़ा-बिन-नोफ़ल के पास गईं, जिन्होंने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था और इबरानी भाषा में इंजील का अध्ययन किया करते थे। जब ख़दीजा (رضي الله عنها) ने उनसे बताया कि इनके साथ ऐसा-ऐसा हुआ है, तो वरक़ा बोल उठे, "यह तो वही रसूल है, जो मूसा के पास आया था। काश मैं उस समय तक

जीवित रहता, जब तुम्हारी जाति तुम्हें यहाँ से निकाल देगी।" अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने कहा, "क्या ये लोग मुझे यहाँ से निकाल देंगे?" वरक़ा ने कहा, "हाँ, तुम्हारी तरह जो भी आया, उसको उसकी जातिवालों ने कष्ट दिया। अगर मैं उस समय तक जीवित रहा तो तुम्हारी सहायता करूँगा।" परन्तु कुछ ही दिनों बाद उनका देहान्त हो गया। (देखिए : सहीह बुख़ारी :3)

ख़दीजा (رضي الله عنها) से आप (ﷺ) की जो औलादें पैदा हुईं उनके नाम इस प्रकार हैं–

लड़कों में क़ासिम, तैयिब और ताहिर (इन तीनों का देहान्त बचपन ही में हो गया था), लड़कियों में रुक़ैया, ज़ैनब, उम्मे-कुल्सूम और फ़ातिमा (رضي الله عنهن)।

मक्का-त्याग से तीन वर्ष पूर्व ख़दीजा का देहान्त हो गया।

ख़दीजा (رضي الله عنها) की बहुत-सी श्रेष्ठताओं में से एक यह है कि एक बार जिबरील (عليه السلام) आए और उन्होंने नबी (ﷺ) से कहा–

"ऐ मुहम्मद, अगर आपके पास ख़दीजा आएँ तो उनके रब और मेरी ओर से उनको सलाम पहुँचाना, और उनको यह शुभ समाचार सुना देना कि स्वर्ग में उनके लिए एक ऐसा घर है जिसमें न किसी प्रकार का शोरगुल होगा, न कभी उनको उसमें कोई थकान होगी।" (सहीह बुख़ारी, 3820, सहीह मुस्लिम, 2432)

2. सौदा (رضي الله عنها) :

ये जमआ-बिन-क़ैस क़ुरैशी की पुत्री थीं। इनके पहले पति का नाम सक्रान-बिन-अम्र था। दोनों इस्लाम ग्रहण करने के पश्चात् हब्शा चले गए। सक्रान का वहीं देहान्त हो गया। इधर नबी (ﷺ) की पत्नी ख़दीजा (رضي الله عنها) का भी देहान्त हो गया, जिसके कारण सन् दस नबवी में नबी (ﷺ) ने इनसे विवाह कर लिया। इनका देहान्त सन् 54 हिजरी में हुआ। (तबक़ात इब्ने-साद, 8:53)

कुछ लोगों का विचार है कि इनका देहान्त उमर (رضي الله عنه) की ख़िलाफ़त के अन्तिम दिनों में हुआ। (तारीख़ कबीर, 1:49-50)

3. आइशा (رضي الله عنها):

नबी (ﷺ) ने जिन स्त्रियों से विवाह किया वे सब विधवा या तलाक़ पाई हुई थीं, सिवाय आइशा (رضي الله عنها) के। नबी (ﷺ) इनसे बहुत प्रेम करते थे। एक सहीह हदीस में आया है कि आइशा (رضي الله عنها) की श्रेष्ठता सारी स्त्रियों पर ऐसी है जैसे सरीद नामक भोजन सब भोजनों में श्रेष्ठ है। (बुख़ारी : 3770 तथा मुस्लिम : 2446)

सरीद नामक भोजन आज भी अरबों में प्रसिद्ध है। यह खजूर, तथा गेहूँ को आपस में पीस कर घी में पकाया जाता है।

आइशा (رضي الله عنها) मुस्लिम जगत में अत्यन्त प्रसिद्ध स्त्री हैं, जिनके द्वारा हम तक बहुत सारी हदीसें पहुँची हैं। हदीसें बयान करनेवाले दस बड़े महान सहाबा (ﷺ) में से आप (رضي الله عنها) भी एक हैं, जिनकी हदीसों की संख्या दो हज़ार दो सौ दस बताई जाती है। इन्हीं के पास नबी (ﷺ) का देहान्त हुआ। आप (ﷺ) ही के घर में आप (رضي الله عنها) को दफ़न किया गया। नबी (ﷺ) के बाद आप ने हदीसों का काफ़ी प्रचार-प्रसार किया, विशेषकर वे हदीसें जिनका सम्बन्ध नबी (ﷺ) के घरेलू जीवन से था। अर्थात् आप (ﷺ) का अपने घरवालों के साथ व्यवहार कैसा था, चाहे वह शिक्षा-दीक्षा के विषय में हो अथवा दाम्पत्य सम्बन्ध के विषय में ? आप (رضي الله عنها) ने नबी (ﷺ) के जीवन के एक-एक पहलू को अत्यन्त विस्तार पूर्वक बयान किया है, जो मुसलमानों के लिए एक उत्तम नमूना है।

सन सत्तावन (57) हिजरी में उनका देहान्त हुआ, और बक़ीअ़ में आप को दफ़न किया गया।

4. हफ़्सा (رضي الله عنها) :

ये उमर (ﷺ) की पुत्री थीं। इनके पहले पति खुनैस-बिन-हुज़ाफ़ा थे। बद्र के युद्ध में शहीद हो गए। उसके बाद नबी (ﷺ) से इनका विवाह हुआ। एक बार नबी (ﷺ) ने किसी वजह से हफ़्सा (رضي الله عنها) को तलाक़ दे दी तो जिबरील (عليه السلام) आए और कहा कि आप तलाक़ से रुजू कर लें, क्योंकि हफ़्सा बहुत अधिक रोज़ेदार, रातों को नमाज़ पढ़नेवाली स्त्री हैं। ये स्वर्ग में भी आपकी पत्नी रहेंगी। (देखिए: अबू दाऊद, 2282; नसई, 6:213)

इनका देहान्त सन् इकतालीस (41) हिजरी में हुआ।

5. ज़ैनब (رضي الله عنها) :

ये ख़ुज़ैमा-बिन- हारिस की पुत्री थीं। इनके पहले पति का नाम उबैदा-बिन-हारिस था, जो बद्र के युद्ध में शहीद हो गए। हारिस की मृत्यु के बाद ज़ैनब (رضي الله عنها) का विवाह नबी (ﷺ) से हुआ। लेकिन विवाह के चार महीने बाद ही सन् चार (4) हिजरी में ज़ैनब का देहान्त हो गया।

6. उम्मे सलमा (رضي الله عنها) :

ये अबू-सलमा-बिन-अब्दुल-असद की पत्नी थीं। उनके देहान्त के बाद सन चार (4) हिजरी में उनका विवाह नबी (ﷺ) से हुआ। इस प्रकार वे विधवा थीं और तीन बच्चों की माँ थीं। आप (ﷺ) स्त्रियों से विवाह करके उनकी सहायता करना चाहते थे। और इन विवाहों के द्वारा आप उनके ख़ानदानों में इस्लाम का प्रचार-प्रसार करना चाहते थे, क्योंकि अरब के लोग अपने परिवार में, जिससे विवाह करते थे, उसकी पूरी सहायता करते थे। इसलिए आप (ﷺ) का विवाह करना भी इस्लाम के हित एवं प्रचार-प्रसार के लिए था। उम्मे सलमा (رضي الله عنها) का देहान्त सन् 59 हिजरी में हुआ। और उन्हें बक़ीअ में दफ़न किया गया।

7. जैनब (رضي الله عنها) :

ये नबी (ﷺ) के लेपालक ज़ैद की पत्नी थीं। परन्तु आपस में एक-दूसरे के साथ जीवन बिताना दूभर हो गया, जिसके कारण ज़ैद (رضي الله عنه) ने उनको तलाक़ दे दी। अरब में प्रचलित परम्परा के अनुसार व्यक्ति अपने लेपालक की विधवा या तलाक़शुदा पत्नी से विवाह नहीं कर सकता था। लेपालक उसके अपने पुत्र-समान समझा जाता था, परन्तु इस्लाम को इस परम्परा का खंडन करना था। इसलिए अल्लाह की आज्ञा से नबी (ﷺ) ने ज़ैनब (رضي الله عنها) से विवाह कर लिया, जिसके कारण प्रारम्भ में बड़ा विरोध किया गया। परन्तु जब अल्लाह की ओर से यह आयत उतरी–

«तो जब ज़ैद ने उससे अपना रिश्ता काट लिया तो हमने उसे तेरे विवाह में दे दिया ताकि मुसलमानों में अपने लेपालकों की पत्नियों के विषय में किसी प्रकार का संकोच न रहे।» (सूरा–33, अल-अहज़ाब, आयत–37)

तो यह विरोध समाप्त हो गया। और लेपालक की विधवा से विवाह करना इस्लाम में जायज़ कर दिया गया। इसलिए ज़ैनब (رضي الله عنها) इस बात पर गर्व करती थीं कि तुम लोगों का विवाह तो तुम्हारे घरवालों ने करवाया, परन्तु मेरा विवाह अल्लाह ने करवाया।

एक सहीह हदीस में आया है कि पत्नियों में सबसे अधिक दान करनेवाली, सबसे पहले मुझसे मिलेगी। आइशा (رضي الله عنها) कहा करती थीं कि ज़ैनब में दो ख़ूबियाँ थीं। एक यह कि इनका विवाह अल्लाह ने करवाया, दूसरे यह कि नबी (ﷺ) का फ़रमान है कि 'अधिक' दान करनेवाली सब से पहले मुझसे मिलेगी' और वे यही ज़ैनब थीं, जिनका देहान्त सन बीस हिजरी में हुआ।

8. जुवैरिया (رضي الله عنها) :

ये हारिस-बिन-अबी-ज़रार की पुत्री थीं। इनके पहले पति का नाम 'सफ़वान-बिन-ज़ी शक़र' था। नबी (ﷺ) ने सन छः (6) हिजरी में इनसे विवाह किया। इनका देहान्त सन छप्पन हिजरी में हुआ।

9. उम्मे-हबीबा (رضي الله عنها) :

ये मक्का के सरदार अबू-सुफ़यान की पुत्री थीं। इनके पहले पति का नाम उबैदुल्लाह-बिन-जहश था। दोनों मुसलमान होने के बाद देश त्याग कर हब्शा चले गए। परन्तु उबैदुल्लाह वहाँ जाकर नसरानी (ईसाई) बन गया और शराब पीने लगा। उसी देश में उसका देहान्त हो गया। हब्शा के राजा नजाशी ने चार सौ दीनार महर के बदले नबी (ﷺ) का उम्मे-हबीबा (رضي الله عنها) से विवाह कर दिया। जब इसकी सूचना उम्मे-हबीबा (رضي الله عنها) के पिता अबू-सुफ़यान को दी गई, जिन्होंने अभी तक इस्लाम क़बूल नहीं किया था, तो उसने कहा–

"वह तो ऐसा सरदार है जिसका नाम काटा नहीं जा सकता" अर्थात् ऐसा महान व्यक्ति मेरी पुत्री से विवाह करने योग्य है।

अबू-सुफ़यान, जो मक्का का सरदार था और इस्लाम-विरोधियों का नेता भी, नबी (ﷺ) की महानता से इनकार नहीं कर सका।

उम्मे-हबीबा (رضي الله عنها) का देहान्त सन 44 हिजरी में हुआ। उस समय उनके भाई मुआविया (رضي الله عنها) मुसलमानों के ख़लीफ़ा थे।

10. सफ़ीया (رضي الله عنها) :

ये यहूदियों के सरदार हुई-बिन-अख़्तब की पुत्री थीं। ख़ैबर के युद्ध में ये लौंडी बना कर लाई गई थीं। इनके पहले पति का नाम कनाना था, जो किसी युद्ध में मारा गया था। तत्पश्चात् नबी (ﷺ) ने इनसे विवाह किया। ये बड़ी बुद्धिमान और समझ-बूझ वाली स्त्री साबित हुईं। एक बार नबी (ﷺ) की पत्नी हफ़्सा (رضي الله عنها) ने उनको ताना दिया कि तुम यहूदी की पुत्री हो, जिसके कारण वे बहुत दुखी हो गईं और रोने लगीं। जब नबी (ﷺ) को इसकी सूचना मिली तो आप (ﷺ) ने हज़रत सफ़ीया (رضي الله عنها) को सम्बोधित करके कहा, तुम नबी की बेटी हो, तुम्हारे चचा नबी थे और अब तुम नबी की पत्नी हो। फिर ये तुम्हारे मुक़ाबले में किस प्रकार घमंड कर सकती हैं। और हफ़्सा, तुम्हें चाहिए कि अल्लाह से डरो।" (मुस्नद अहमद, 3:135)

क्योंकि ये हुई-बिन-अख़तब की बेटी थीं जो हारून (عليه السلام) के वंश से था।

इनका देहान्त सन पचास हिजरी में हुआ और उन्हें बक़ीअ में दफ़न किया गया।

11. मैमूना (رضي الله عنها) :

इनका पहला विवाह मसऊद-बिन-अम्र से हुआ था। उसने इनको तलाक़ दे दी। फिर इनका विवाह 'अबू-रहम-बिन-अब्दुल-उज़्ज़ा' से हुआ जिसकी मृत्यु हो गई, इसके बाद इनका विवाह सन् सात (7) हिजरी में नबी (ﷺ) से हुआ। अस्सी (80) वर्ष की उम्र में, सन् इकसठ (61) हिजरी में उनका देहान्त हुआ, और मक्का के निकट 'सरिफ़' नामक स्थान पर उनको दफ़न किया गया।

12. मारिया क़िब्तिया (رضي الله عنها) :

ये शमऊन मिस्री की पुत्री थीं, जो बड़ी सुन्दर थीं। इस्कन्दरिया के नवाब ने नबी (ﷺ) को भेंट में इनको दिया था। नबी (ﷺ) को इनसे बड़ा प्यार था, क्योंकि ये आप (ﷺ) के पुत्र इबराहीम की माता थीं, जिनका बचपन में ही देहान्त हो गया था।

इनका देहान्त सन चौदह (14) हिजरी में हुआ और उन्हें बक़ीअ में दफ़न किया गया।

ये वे बारह पत्नियाँ हैं, जिनसे नबी (ﷺ) ने विवाह किया था।

'रैहाना-बिन्त-ज़ैद' नामक एक पत्नी का नाम भी आता है जो बनू-कुरेज़ा नामक यहूदी के ख़ानदान की थीं। बनी-क़ुरैज़ा-युद्ध के पश्चात् ये आपके पास आ गईं और इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। इसके बाद आप (ﷺ) ने इनसे निकाह किया। सन् दस हिजरी में इनका देहान्त हो गया। कुछ और पत्नियों का वर्णन भी इतिहास की पुस्तकों में आता है, परन्तु आपके घर आने के पहले ही उनको या तो तलाक़ हो गई या फिर उनका देहान्त हो गया। जैसे : आलिया-बिन्त-ज़मआन, उमैमा-बिन्त-नोमान, ख़ौला-बिन्त-हुज़ैल, अमूरा-बिन्त-ज़ैद, इत्यादि। एक से अधिक विवाह करना एक प्राचीन रीति रही है। बाइबल के अधिकतर नबी एक से अधिक स्त्रियों के पति थे। यशू चूँकि विवाह ही न कर सके, इसलिए न तो पादरी और न ही ईसाई ननें विवाह करती हैं। उनका विश्वास कुछ इस प्रकार है कि प्रलय के बाद ये सब यशू से विवाह करेंगी अर्थात् जिस नबी ने जीवन भर विवाह नहीं किया, वह भी दूसरे जीवन में सहस्र स्त्रियों का पति बनेगा। इस विषय में इस्लाम ने कुछ नहीं बताया है।

अब अगर हम सामाजिक दृष्टि से देखें तो बहु-विवाह एक आवश्यकता है। कभी स्वयं मनुष्य की आवश्यकता है तो कभी समाज की। इसी लिए देखा यह गया है कि जिन समाजों या धर्मों में बहु-विवाह निषिद्ध है उनमें व्यभिचार अधिक फैलता है। क्योंकि मनुष्य जब अपनी इच्छाओं को उचित तरीक़े से पूरी नहीं कर सकता तो अधर्म का मार्ग अपनाता है। यदि उन समाजों का अध्ययन करें जिनमें विधवाओं का विवाह नहीं होता तो पता चलेगा कि उनके सतीत्व को धर्म के नाम पर किस प्रकार लूटा जाता है, और धर्मस्थानों में उनके साथ कैसा व्यवहार होता है। इसी प्रकार कुछ ऐसे भी समाज हैं, जहाँ स्त्रियों की संख्या मर्दों से अधिक है। सामाजिक बंधन भी ऐसे हैं कि एक बाप, जिसकी चार-छः पुत्रियाँ हो जाएँ, सरलतापूर्वक उनका विवाह नहीं कर सकता। इन परिस्थितियों में बहु-विवाह ही उचित माध्यम है, क्योंकि बहु-विवाह प्रथा में कन्याओं से कुछ लिया नहीं जाता बल्कि कन्या को मेहर के रूप में धन दिया जाता है।

इन परिस्थितियों के कारण इस्लाम ने बहु-विवाह की अनुमति दी है। परन्तु इसके लिए भी कुछ नियम निर्धारित किए गए हैं। उनमें से एक यह है कि कोई व्यक्ति एक ही समय में चार से अधिक विवाह नहीं कर सकता। (क़ुरआन, सूरा–4, अन-निसा, आयत–3)

दूसरा यह कि सबके साथ न्याय करना अनिवार्य है। (देखिए: क़ुरआन, सूरा–4, अन-निसा, आयत–3)

जो खाने-पीने और रहने-सहने से लेकर रात्रि बिताने तक सभी बातों में करना होगा। और अगर कोई व्यक्ति अपने अन्दर इसकी शक्ति नहीं रखता तो फिर उसके लिए यही उत्तम है कि एक ही स्त्री के साथ जीवन व्यतीत करे, क्योंकि पत्नियों में न्याय न करने से समाज का सुधार नहीं होगा, बल्कि समाज में बिगाड़ फैलेगा, जो बहु-विवाह के उद्देश्य के प्रतिकूल है।

मुहम्मद (ﷺ) की पुत्रियाँ

क़ुरआन में अल्लाह ने नबी (ﷺ) की पुत्रियों का भी वर्णन किया है, जिनको यह आदेश दिया गया है कि जब बाहर निकलें तो पर्दा कर लिया करें–

«ऐ नबी ! अपनी पत्नियों और अपनी बेटियों और ईमानवाली स्त्रियों से कह दो कि वे (बाहर निकलें तो) अपने ऊपर अपनी चादरों का कुछ हिस्सा लटका लिया करें।» (सूरा–33, अल-अहज़ाब, आयत–59)

नबी (ﷺ) की कुल चार बेटियाँ थीं। उनके नाम ये हैं –

1. ज़ैनब :

ये अपनी बहनों में सबसे बड़ी थीं। अपनी माँ ख़दीजा के जीवन ही में इनका विवाह अपनी ख़ाला के पुत्र अबुलआस से हो गया था। उनसे उमामा नाम की एक पुत्री थी। (जिनसे फ़ातिमा (رضي الله عنها) के देहान्त के बाद अली ﷺ ने विवाह किया) और अली नाम का एक पुत्र पैदा हुआ था, जिसका बचपन ही में देहान्त हो गया।

ज़ैनब (رضي الله عنها) मुसलमान होने के पश्चात्, मदीना हिजरत कर गईं, परन्तु उनके पति बाद में मुसलमान हुए। पति-पत्नी दोनों के इस्लाम लाने में कोई सात वर्ष का अन्तर है। परन्तु सहीह हदीसों से ऐसा प्रतीत होता है कि नबी (ﷺ) ने उनके पुराने विवाह को ही बाक़ी रखा। इससे मालूम हुआ कि अगर पति-पत्नी एक साथ मुसलमान न हों, बल्कि दोनों के इस्लाम लाने के बीच में कुछ समय भी लग जाए तो पहले वाला निकाह काफ़ी समझा जाएगा। दोबारा निकाह की आवश्यकता नहीं है। लेकिन कुछ विद्वान इससे सहमत नहीं हैं। उनका विचार है कि अगर पुरुष स्त्री की 'इद्दत' समाप्त होने से पहले मुसलमान हो जाए तो दोबारा निकाह की आवश्यकता नहीं, और अगर 'इद्दत' समाप्त होने के बाद इस्लाम स्वीकार किया तो दोबारा निकाह करना पड़ेगा। जैसा कि तिर्मिज़ी और इब्ने-माजा में आया है कि नबी (ﷺ) ने ज़ैनब का अबुल-आस से दोबारा निकाह किया, जिसके लिए दोबारा 'मेहर' रखा गया। (तिर्मिज़ी : 1142 तथा इब्ने माजा : 2010) परन्तु इसकी पुष्टि में एक रावी 'हज्जाज-बिन-अर्ता' का कथन काफ़ी कमज़ोर है। ज़ैनब का नबी (ﷺ) के जीवन काल ही में सन आठ हिजरी में देहान्त हो गया।

2. रुक़ैया :

इनका पहला विवाह अबू-लहब के बेटे उतबा से हुआ था लेकिन जब हज़रत मुहम्मद (ﷺ) को अल्लाह ने नबी बनाया तो अबू-लहब आप (ﷺ) का सबसे बड़ा शत्रु बन गया, यहाँ तक कि उसकी निन्दा में एक सूरा भी उतरी जिसको सूरा 'लहब' कहते हैं। अबू लहब ने अपने बेटे से शपथ देकर कहा

कि तुम रुक़ैया को तुरन्त तलाक़ दे दो। इसके बाद इनका विवाह उस्मान (رضي الله عنه) से हुआ, और इनसे एक पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम अब्दुल्लाह रखा गया, परन्तु वह छोटी उम्र ही में चल बसा।

नबी (ﷺ) अभी बद्र के युद्ध से मदीना वापस नहीं आए थे कि रुक़ैया का भी देहान्त हो गया।

3. उम्मे-कुलसूम :

ये नबी (ﷺ) की तीसरी पुत्री थीं। पहले इनका विवाह अबू-लहब के बेटे उतैबा से हुआ था। परन्तु उम्र छोटी थी, इसलिए उसके यहाँ विदा नहीं हुई थीं। जब नबी (ﷺ) को अल्लाह ने नबी बनाया, तो अबू-लहब ने शपथ लेकर तलाक़ दिलवा दी।

जब इनकी बहन रुक़ैया का देहान्त हो गया, तो इनका विवाह उस्मान (رضي الله عنه) से सन तीन हिजरी में हुआ। परन्तु छह वर्ष बाद अर्थात् सन नौ हिजरी में इनका भी देहान्त हो गया। इनसे कोई सन्तान नहीं हुई। अनस (رضي الله عنه) से उल्लिखित है कि मैंने नबी (ﷺ) को उम्मे-कुलसूम की क़ब्र के पास बैठे देखा। उस समय आप (ﷺ) के नेत्र आँसुओं से भीगे हुए थे।

4. फ़ातिमा :

ये नबी (ﷺ) की चौथी और सबसे छोटी पुत्री थीं। इनकी माँ भी ख़दीजा (رضي الله عنها) थीं। मुहम्मद (ﷺ) के नबी बनने से कुछ समय पहले पैदा हुईं। सन दो हिजरी में इनका विवाह अली (رضي الله عنه) से हुआ। इनकी संतान हसन, हुसैन, मुहसिन, उम्मे-कुलसूम और ज़ैनब (رضي الله عنها) हैं।

नबी (ﷺ) को अपनी पुत्री फ़ातिमा से बड़ा प्रेम था। जब वे आप (ﷺ) के पास आती थीं तो आप खड़े हो कर उनका स्वागत करते थे और मेरी पुत्री कहते हुए सिर पर हाथ फेरते थे।

जब नबी (ﷺ) का देहावसान निकट था तो फ़ातिमा (رضي الله عنها) आईं जिनको देखते ही नबी (ﷺ) प्रसन्न हो उठे, मेरी पुत्री कहते हुए आप (ﷺ) ने उनका स्वागत किया और अपने पास बैठा लिया, और उनसे कोई ऐसी बात कही कि वे रोने लगीं और बहुत देर तक रोती रहीं। फिर आप (ﷺ) ने कोई ऐसी बात कही कि वे प्रसन्न हो उठीं और प्रसन्नता से हँसने लगीं। जब नबी (ﷺ) वहाँ से उठकर चले गए तो आइशा (رضي الله عنها) ने कहा, ''फ़ातिमा क्या तुम मुझे बता सकती हो कि तुम पहले तो रोती रहीं और फिर प्रसन्न हो उठीं और हँसने लगीं? नबी (ﷺ) ने तुम से क्या कहा था? फ़ातिमा (رضي الله عنها) ने कहा, ''यह एक रहस्य है मैं नबी (ﷺ) के इस रहस्य को नहीं बता सकती, क्योंकि उन्होंने मुझे छिपाकर बताया था।'' परन्तु जब नबी (ﷺ) का देहान्त हो गया तो आइशा (رضي الله عنها) ने दोबारा पूछा कि फ़ातिमा तुम अब तो बता दो कि तुमसे नबी (ﷺ) ने क्या कहा था, जिसके कारण तुम पहले रोने लगीं और फिर हँसने लगीं।

फ़ातिमा (رضي الله عنها) ने कहा, ''हाँ, अब मैं उस रहस्य को बता सकती हूँ, क्योंकि अब नबी (ﷺ) का देहान्त हो गया है। वह यह था कि पहले आप (ﷺ) ने निकट भविष्य में अपनी मृत्यु की

ख़बर सुनाई तो मैं रोने लगी। फिर आप (ﷺ) ने मुझे दुखी देखकर फ़रमाया कि मेरे परिवार में तुम सब से पहले मुझ से आ मिलोगी, तो मैं प्रसन्न हो उठी और हंसने लगी।'' (बुख़ारी: 6285, 6286; मुस्लिम: 2450)

नबी (ﷺ) के देहान्त के छह माह बाद ही फ़ातिमा (رضي الله عنها) का भी देहान्त हो गया। उस समय उनकी उम्र तेईस वर्ष के लगभग थी।

मुरदार

अर्थात् मरे हुए पशु। इनको खाना हराम है। हाँ, वे लोग इसके अपवाद हैं, जो किसी मजबूरी के कारण खा लें। (देखें: क़ुरआन, सूरा-2, अल-बक़रा, आयत–173)

जैसे उनके पास खाने को कुछ न हो और उन्हें अपनी मृत्यु का भय हो। परन्तु इनके लिए आवश्यक है कि वे इसकी स्वयं इच्छा न करें, और न ही खाने में हद से बढ़ जाएँ।

मनात

क़ुरआन की सूरा–53, अन-नज्म आयत-20 में जिन तीन बुतों का नाम आया है उनमें तीसरा बुत मनात है, जो कुदैद नामक स्थान पर रखा हुआ था। कुदैद जो मक्का तथा मदीना के बीच लाल समुद्र के किनारे एक नगर का नाम है। अरब उसपर चढ़ावे चढ़ाते, बकरे तथा ऊँट की बलि देते, काबे की तरह मनात का तवाफ़ (परिक्रमा) करते। उससे अपनी मन्नतें मानते, अर्थात् इससे वही आशाएँ कर बैठे थे, जो अल्लाह से की जाती हैं, इसलिए जब नबी (ﷺ) ने मक्का विजय कर लिया तो उन मूर्तिगृहों की मूर्तियाँ हटा दी गईं। वृक्षों को कटवा दिया ताकि अरब में एक अल्लाह के अतिरिक्त किसी और की पूजा न की जाए। सारी आशाएँ उसी एक से रखी जाएं। एक अवसर पर आप (ﷺ) ने कहा था–

''अब शैतान इस बात से निराश हो चुका है कि यहाँ अल्लाह के अतिरिक्त किसी और की उपासना की जाएगी।''

यह भविष्यवाणी सदैव सच्ची होती रही, क्योंकि जब भी शैतान यहाँ किसी और की उपासना पर लोगों को उकसाया, तो अल्लाह का कोई बन्दा उठता और उसके सारे षडयंत्रों को विफल कर देता।

यही कारण है कि वर्तमान काल में सऊदी अरब एक ऐसा देश है जहाँ न कोई मज़ार है, और न ही ख़ानक़ाह। यहाँ हर तरफ़ केवल मस्जिदें हैं, जिनमें अल्लाह के अतिरिक्त किसी और को नहीं पुकारा जाता। जैसा कि अल्लाह ने कहा है–

«मस्जिदें अल्लाह के लिए हैं, तो अल्लाह के साथ किसी और को न पुकारो।»

(क़ुरआन: सूरा–72, अल-जिन्न, आयत–18)

मुआख़ात (बन्धुत्व)

इसका अर्थ है किसी को भाई बनाना। यह इस्लामी इतिहास का ऐसा सुनहरा पन्ना है, जिसका उदाहरण विश्व-इतिहास में नहीं मिलता। इसका विवरण यह है कि जब नबी (ﷺ) मक्का से हिजरत करके मदीना आ गए तो मक्का के दूसरे मुसलमान भी हिजरत करके मदीना आने लगे, क्योंकि मक्का में मुसलमानों पर इस्लाम-विरोधियों के अत्याचार ने उनको विवश कर दिया कि वे अपना घर-द्वार, व्यापार आदि छोड़कर अपने ईमान की रक्षा के लिए हिजरत कर जाएँ। परन्तु हिजरत करनेवालों के सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह था कि नए स्थान पर वे अपने आप को कैसे एडजस्ट (समाहित) करें। इसके लिए नबी (ﷺ) ने मदीना-वासियों के साथ, जिनको अनसार कहा गया, मुहाजिर भाइयों की मुआख़ात कराई। अर्थात् जब कोई मुहाजिर आता तो आप (ﷺ) एक अनसारी को बुलाते और उन दोनों को भाई-भाई बना देते। मदीनावाले भी अपने मुहाजिर भाई को हृदय से स्वीकार करते और अपनी आधी संपत्ति का उसको मालिक बनाने के लिए तैयार हो जाते। यहाँ तक कि अगर किसी के पास दो पत्नियाँ होतीं तो वह अपने मुहाजिर भाई से कहता, "इनमें से तुम जिसको पसन्द करो, मैं तलाक़ दे देता हूँ। और इद्दत पूरी होने के बाद तुम निकाह करलो।"

साद-बिन-रबीअ अनसारी और अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ मुहाजिर के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। साद-बिन-रबीअ़ ने अब्दुर्रहमान से कहा, "देखो जो मेरे पास धन है उसको हम दोनों आधा-आधा बाँट लेते हैं, और मेरे पास दो स्त्रियाँ हैं उनमें से जो तुम्हें अधिक पसन्द हो, उसको मैं तलाक़ दे देता हूँ, और जब वह 'वैध' हो जाए तो तुम उससे विवाह कर लो।"

इसपर अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ ने कहा, "अल्लाह तुम्हारे धन और परिवार में बरकत दे। तुम तो मुझे बाज़ार का मार्ग बता दो।"

इस प्रकार वे बाज़ार गए और व्यापार करना आरम्भ कर दिया। अल्लाह ने उनके व्यापार में बरकत दी और बहुत जल्द उन्होंने एक मदनी स्त्री से निकाह कर लिया। (देखिए : बुख़ारी, 3781)

इस प्रकार नबी (ﷺ) ने नव्वे व्यक्तियों (45 मुहाजिर और 45 अनसार) के बीच 'मुआख़ात' कराई। कुछ विद्वानों का विचार है कि इस प्रकार की मुआख़ात नबी (ﷺ) ने मक्कावालों में भी हिजरत से पूर्व कराई थी। परन्तु तीसरी शताब्दी हिजरी से पहले की पुस्तकों में इसका उल्लेख नहीं मिलता। इसलिए शैख़ुल-इस्लाम इब्ने-तैमिया ने इस बात का खण्डन किया है।

यह मुआख़ात कुछ समय तक चलती रही जब तक मुहाजिर भाई अपने पैरों पर खड़े नहीं हो गए। सूरा–8, अल-अनफ़ाल, जो बद्र के बाद अवतरित हुई, इसमें मुहाजिरों और अनसार के बीच मुआख़ात द्वारा जो संपत्ति में विरासत पाने का अधिकार प्राप्त हो गया था, उसको निरस्त कर दिया गया–

«जो लोग बाद में ईमान लाए और उन्होंने हिजरत की, और तुम्हारे साथ मिलकर जिहाद किया, तो वे भी तुममें से ही हैं, परन्तु अल्लाह की किताब में ख़ून के रिश्तेदार

एक-दूसरे से अधिक हक़दार हैं। निश्चय ही अल्लाह हर चीज़ को जानता है।»,
(सूरा–8, अल-अनफ़ाल, आयत–75)

﴾ मासिक धर्म ﴿

औरतों को हर महीने आनेवाले मासिक धर्म को 'हैज़' कहते हैं। इस विषय में क़ुरआन में आया है–

«वे तुमसे स्त्रियों की माहवारी (मासिक धर्म) के विषय में पूछते हैं। कह दो, ''वह एक तकलीफ़ और गन्दगी की चीज़ है। अत: माहवारी के दिनों में स्त्रियों से अलग रहो और (संभोग के लिए) उनके निकट न जाओ, यहाँ तक कि वे पवित्र हो जाएँ। जब वे अच्छी तरह पाक-साफ़ हो जाएं तो उनसे उस स्थान पर संभोग करो, जहाँ करने की अल्लाह ने आज्ञा प्रदान की है। निस्सन्देह अल्लाह क्षमा माँगनेवालों और पवित्र रहनेवालों से प्रेम करता है।'' तुम्हारी स्त्रियाँ तुम्हारे लिए खेती समान हैं, तो जिस प्रकार चाहो अपनी खेती में जाओ।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–222,223)

अर्थात् मासिक धर्मवाली स्त्रियों से संभोग करना निषिद्व है और जब वे पवित्र हो जाएँ और स्नान कर लें तो उनके सामने की योनि से संभोग किया जा सकता है, जिसके द्वारा संतान उत्पन्न होती है। स्त्री के मलद्वार का प्रयोग निषिद्ध है, क्योंकि उसके द्वारा संतान उत्पन्न नहीं की जा सकती जो संभोग का विशेष उद्देश्य है। अब यहाँ मासिक धर्मवाली स्त्रियों के विषय में कुछ इस्लामी आदेश प्रस्तुत किए जा रहे हैं–

1. ऐसी स्त्री को नमाज़ पढ़ना मना है।
2. ऐसी स्त्री पर रमज़ान के रोज़े रखना निषिद्ध हैं। परन्तु जब वह पवित्र हो जाए तो जितने रोज़े छूटे हैं उन्हें पूरा करना अनिवार्य है, जिनको क़ज़ा कहते हैं।
3. ऐसी स्त्री पर मक्का में काबे का तवाफ़ करना निषिद्ध है। अगर वह हज करने गई है तो इसी दशा में रुकी रहे, जब पवित्र हो जाए तो तवाफ़ करे और उमरे के दूसरे काम पूरे करे।
4. ऐसी दशा में वह अराफ़ात के मैदान में जा सकती है, परन्तु 'तवाफ़े-इफ़ाज़ा', जो हज का स्तम्भ है, नहीं कर सकती बल्कि अपने पाक-साफ़ होने की प्रतीक्षा करेगी। ऐसी दशा में कि उसके साथी वापस जा रहे हों और वह अकेली नहीं रह सकती हो, तो 'तवाफ़े-इफ़ाज़ा' कर सकती है क्योंकि इस तवाफ़ के बिना उसका हज पूरा नहीं होगा।
5. ऐसी स्त्री न क़ुरआन को छू सकती है और न ही पढ़ सकती है। परन्तु यदि स्त्री क़ुरआन की अध्यापिका हो तो उसको चाहिए कि हाथ में दस्ताना पहन ले और क़ुरआन के पन्ने को किसी क़लम आदि से पलटे। इसी प्रकार अगर वह छात्रा है तो वह भी दस्ताना पहनकर क़ुरआन को छू सकती है और उसे पढ़ सकती है। क्योंकि यह एक आवश्यकता है। अन्यथा ऐसी दशा में क़ुरआन को छूना और पढ़ना वर्जित है।

6. ऐसी दशा में स्त्री को तलाक़ नहीं दी जा सकती, परन्तु अगर कोई तलाक़ दे दे तो क्या तलाक़ हो जाएगी? इस विषय में विद्वान एकमत नहीं हैं।
7. माहवारी समाप्त होते ही स्नान करना अनिवार्य है। अगर वह पानी न पा सके या पानी तो हो, परन्तु उसके प्रयोग से उसे कष्ट हो तो तयम्मुम कर ले। और जैसे ही यह कष्ट दूर हो, स्नान करे।
8. ऐसी स्त्री से केवल संभोग करना निषिद्ध है। परन्तु उसके साथ रहना-सहना, उठना-बैठना, खाना-पीना उसको छूना, चूमना, चिमटना, प्यार करना और साथ लेटना सब जायज़ है, परन्तु योनि का प्रयोग कदापि न करे।

कुछ हदीसों में यह आया है कि ऐसी दशा में संभोग करनेवाला एक दीनार दान करे। लेकिन विद्वानों का कहना है कि वे हदीसें सहीह नहीं हैं।

मदिरा

क़ुरआन ने मदिरा को सदा के लिए वर्जित कर दिया है। इस्लाम पाँच वस्तुओं की सुरक्षा का आदेश देता है जो ये हैं; प्राण की सुरक्षा, धन की सुरक्षा, सतीत्व की सुरक्षा, मान-मर्यादा की सुरक्षा और बुद्धि की सुरक्षा। इनके विरुद्ध चलनेवालों के लिए कठोर दंड निर्धारित किया गया है। अब बुद्धि की सुरक्षा के लिए आवश्यक था कि मदिरापान को सदैव के लिए वर्जित कर दिया जाए। परन्तु जिस देश में क़ुरआन उतर रहा था, वहाँ स्थान-स्थान पर मदिरालय खुले हुए थे, जहाँ लोग मदिरापान किया करते थे। ऐसी दशा में मदिरा को वर्जित कर देना बहुत कठिन था। इस लिए क़ुरआन में पहले यह आयत उतरी—

«वे तुमसे मदिरा तथा जुए के विषय में पूछते हैं। कह दो, ''इन दोनों में बड़ा गुनाह है और लोगों के लिए थोड़े-बहुत फ़ायदे भी हैं, परन्तु इनका गुनाह इनके फ़ायदे से कहीं बढ़ कर है।''» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–219)

मदिरा के विषय में यह पहला आदेश है। इसमें केवल यह संकेत किया गया है कि इसकी हानि इसके लाभ से अधिक है। कुछ समझदार लोग विचार करने लगे थे कि शायद अब मदिरा को हराम (वर्जित) किया जानेवाला है। इसके बाद यह आयत उतरी—

«ऐ ईमानवालो, जब तुम नशे में हो तो नमाज़ के निकट न जाओ, जब तक कि तुम यह न जान लो कि तुम क्या कह रहे हो। शैतान तो यह चाहता है कि शराब और जुए द्वारा तुम्हारे दरमियान दुश्मनी और क्लेश पैदा कर दे और नमाज़ से रोक दे। फिर क्या तुम इन चीज़ों से नहीं रुकोगे? अल्लाह और उसके रसूल की बात मानो और इन बातों से बचो। लेकिन अगर तुमने नाफ़रमानी की तो जान लो कि हमारे रसूल पर केवल साफ़-साफ़ बात पहुँचा देने की ज़िम्मेदारी है।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–43)

अर्थात् मदिरापान करनेवालों को नमाज़ पढ़ने से रोक दिया गया। और इसके बाद यह आयत उतरी–

«ऐ ईमानवालो! यह मदिरा और जुआ और देवस्थान और पाँसे तो गंदे शैतानी काम हैं। अतः तुम इनसे अलग रहो, ताकि तुम सफल हो सको। शैतान तो यह चाहता है कि शराब और जुए के द्वारा तुम्हारे दरमियान दुश्मनी और क्लेश पैदा कर दे और तुम्हें अल्लाह की याद से और नमाज़ से रोक दे। फिर क्या तुम इन चीज़ों से नहीं रुकोगे? अल्लाह और उसके रसूल की बात मानो और इन बातों से बचो। लेकिन अगर तुमने नाफ़रमानी की तो जान लो कि हमारे रसूल पर केवल साफ़-साफ़ बात पहुँचा देने की ज़िम्मेदारी है।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–90)

इस आयत के उतरते ही मदिरा मदीना की गलियों में पानी की तरह बहने लगी। लोगों ने उसे सदैव के लिए त्याग दिया। यह क़ुरआन और नबी (ﷺ) का आश्चर्यजनक चमत्कार है, जिसने ऐसी जाति को, जिसकी घुट्टी में मदिरा प्रवेश कर गई थी, क्षण भर में उससे मुक्ति दिला दी।

आज मदिरा और जुआ तथाकथित सभ्य जातियों की दो बड़ी बुराइयाँ हैं, जिनसे उनके समझदार लोग छुटकारा चाहते हैं, परन्तु इस्लाम के सिवा किसी और धर्म में उनका कोई उपचार नहीं है। कुछ देश तो उसको वर्जित करने के लिए अनेक प्रकार के उपाय सोचते हैं, परन्तु उनके उन उपायों से अब तक कोई लाभ नहीं हुआ।

मस्जिद

मस्जिद वह पवित्र स्थान है जहाँ मुसलमान एक अल्लाह की इबादत के लिए इकट्ठा होते हैं। यूँ तो दूसरी जातियों के लिए भी उपासना-गृह होते हैं, परन्तु अन्तर यह है कि मस्जिद में केवल एक अल्लाह की ही इबादत की जाती है। जैसा कि क़ुरआन में आया है–

«मस्जिदें अल्लाह के लिए हैं। अतः अल्लाह के साथ किसी और को न पुकारो।» (सूरा–72, अल-जिन्न, आयत–18)

इस आयत के प्रकाश में अगर मस्जिद में अल्लाह के अतिरिक्त किसी और को पुकारा जाता हो, उसके नाम के कतबे लगाए जाते हों, तो वह मस्जिद नहीं बल्कि मूर्तिगृह है, जो इस्लाम की मूल शिक्षा तौहीद (एकेश्वरवाद) के विरुद्ध है। इस्लाम से पहले की जातियों ने अपने इबादत-घरों में नबियों, फ़रिश्तों, जिन्नों तथा महापुरुषों की प्रतिमाएँ बना रखी थीं। इसलिए नबी (ﷺ) ने मक्का विजय होते ही काबा में रखे हुए सारे बुतों को हटा दिया। उन्हीं बुतों में इबराहीम (عليه السلام) के भी बुत थे। मस्जिदों को आबाद करना ईमान का प्रतीक है।

«अल्लाह की मस्जिदों को तो वही लोग आबाद करते हैं, जो अल्लाह पर तथा प्रलय-दिवस पर ईमान रखते हैं।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयत–18)

यहाँ आबाद करने से अभिप्राय नमाज़ पढ़ना है, क्योंकि इससे पहलेवाली आयत में आया है–

«असम्भव है कि मुशरिक (मूर्ति-पूजक) अल्लाह की मस्जिद को आबाद करें।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयत–17)

वे लोग कितने अत्याचारी हैं जो अल्लाह की मस्जिदों में लोगों को अल्लाह की इबादत से रोकते हैं–

«तथा उससे बड़ा अत्याचारी कौन है, जो अल्लाह की मस्जिदों में (लोगों को) अल्लाह की इबादत से रोके, तथा उसे नष्ट करने का प्रयत्न करे।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–114)

❋ मस्जिद-क़ुबा (इस्लाम में सबसे पहली मस्जिद)

हिजरत करके जब नबी (ﷺ) मदीना पहुँचे तो मदीना में प्रवेश करने से पहले आप (ﷺ) ने क़ुबा नामक स्थान पर कुछ दिनों के लिए विश्राम किया और वहीं आप (ﷺ) ने सबसे पहली मस्जिद की नींव डाली। इसमें दो रकअत नमाज़ पढ़ना एक उमरा करने के बराबर है।

"मस्जिद क़ुबा"

❋ मस्जिद-ज़िरार

यह वह मस्जिद है जिसको मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) ने मुसलमानों में फूट डालने और इस्लाम के विरुद्ध षडयंत्र रचने के लिए बनाया था और चाहते थे कि एक बार नबी (ﷺ) उसमें नमाज़ पढ़ लें। अल्लाह ने नबी (ﷺ) को उनके इस षडयंत्र से अवगत करा दिया और इस अवसर पर ये आयतें उतरीं–

«कुछ लोग ऐसे हैं जिन्होंने इसलिए एक मस्जिद बनाई कि हानि पहुँचाएँ और कुफ़्र करें, और ईमानवालों के बीच फूट डालें, और उस व्यक्ति के लिए थाँग (घातस्थल) बनाएँ जो इससे पहले अल्लाह और उसके रसूल से लड़ चुका है, और वे अवश्य क़समें खाएँगे कि भलाई के सिवा हमने कोई दूसरा इरादा नहीं किया था। परन्तु अल्लाह गवाही देता है कि वे झूठे हैं। तुम कदापि उस (मस्जिद) में न खड़े होना। हाँ, वह मस्जिद जिसकी बुनियाद पहले दिन से ईश-भय पर रखी गई है वही इसका ज़्यादा हक़ रखती है कि तुम उसमें खड़े हो, उसमें ऐसे पुरुष हैं जो पाक रहना पसन्द करते हैं। और अल्लाह पाक रहनेवालों ही को पसन्द करता है। क्या वह मनुष्य अच्छा है जिसने अपनी इमारत की बुनियाद अल्लाह के भय (तक़वा) और (उसकी) ख़ुशी और रज़ामन्दी पर रखी; या वह जिसने अपनी इमारत की बुनियाद किसी खाई के खोखले कगार पर उठाई जो गिरने ही को है। फिर वह उसे लेकर जहन्नम की आग में जा गिरा? ऐसे ज़ालिमों को अल्लाह मार्ग नहीं दिखाता।»
(सूरा–9, अत-तौबा, आयतें–107-109)

इन आयतों के उतरने के पश्चात् नबी (ﷺ) ने अपने कुछ साथियों को भेजा कि वे उस मस्जिद को ढा दें।

❋ तीन प्रमुख मस्जिदें–

1. अल-मस्जिदुलहराम : मक्का
2. अल-मस्जिदुन्नबवी : मदीना
3. अल-मस्जिदुलअक़्सा : फ़िलस्तीन

पहली मस्जिद में एक नमाज़ का पुण्य (सवाब) एक लाख नमाज़ों के बराबर है, दूसरी मस्जिद में एक नमाज़ का पुण्य एक हज़ार नमाज़ों के बराबर है, तीसरी मस्जिद में एक नमाज़ का पुण्य पाँच सौ नमाज़ों के बराबर है। इसलिए इन तीन मस्जिदों के लिए यात्रा करने और इन मस्जिदों में नमाज़ पढ़ने का आदेश है। इनके अतिरिक्त किसी और मस्जिद के लिए, या किसी स्थान के लिए यात्रा करना वर्जित है। जैसा कि सहीह हदीस में आया है। (देखिए : बुख़ारी, 1863 तथा मुस्लिम 827)

❁ मस्जिद-जुमा

यह मदीना की वह मस्जिद है जिसमें नबी (ﷺ) ने सबसे पहली जुमा की नमाज़ पढ़ी। जब कुबा से मदीना आते हुए जुमा का समय हो गया तो आप (ﷺ) ने यहाँ जुमा की नमाज़ पढ़ी, और बाद में लोगों ने यहाँ मस्जिद बना ली। परन्तु इसकी यात्रा करने या इसमें नमाज़ पढ़ने से कोई विशेष पुण्य नहीं मिलता, बल्कि सामान्य मस्जिदों की भाँति ही पुण्य मिलता है।

❁ मस्जिद-क़िबलतैन

यह भी मदीना की प्रसिद्ध मस्जिदों में से एक है। इसको क़िबलतैन अर्थात् दो क़िबलोंवाली इसलिए कहते हैं कि इस मस्जिद में एक ही नमाज़ दो किबलों की ओर मुँह करके पढ़ी गई। वह इस प्रकार कि नबी (ﷺ) मदीना में शुरू में बैतुल-मक़दिस की ओर मुंह करके नमाज़ पढ़ते थे, परन्तु जब मक्का को क़िबला बना दिया गया तो एक व्यक्ति नमाज़ पढ़ कर बनी-सुलैम की ओर आया और देखा कि लोग बैतुल-मक़दिस की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ रहे हैं। उसने ऊँचे स्वर में कहा, "लोगो अब क़िबला बदल गया है", तो इमाम और नमाज़ी नमाज़ ही की दशा में बैतुल-मक़दिस से काबा की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ने लगे। इसलिए इसको मस्जिदे-क़िबलतैन कहते हैं। इसमें नमाज़ पढ़ने में सामान्य मस्जिदों की तरह ही पुण्य मिलता है।

"मदीना में मस्जिद-क़िबलतैन"

मस्जिदुल-हराम

देखें : काबा।

मस्जिदे-नववी
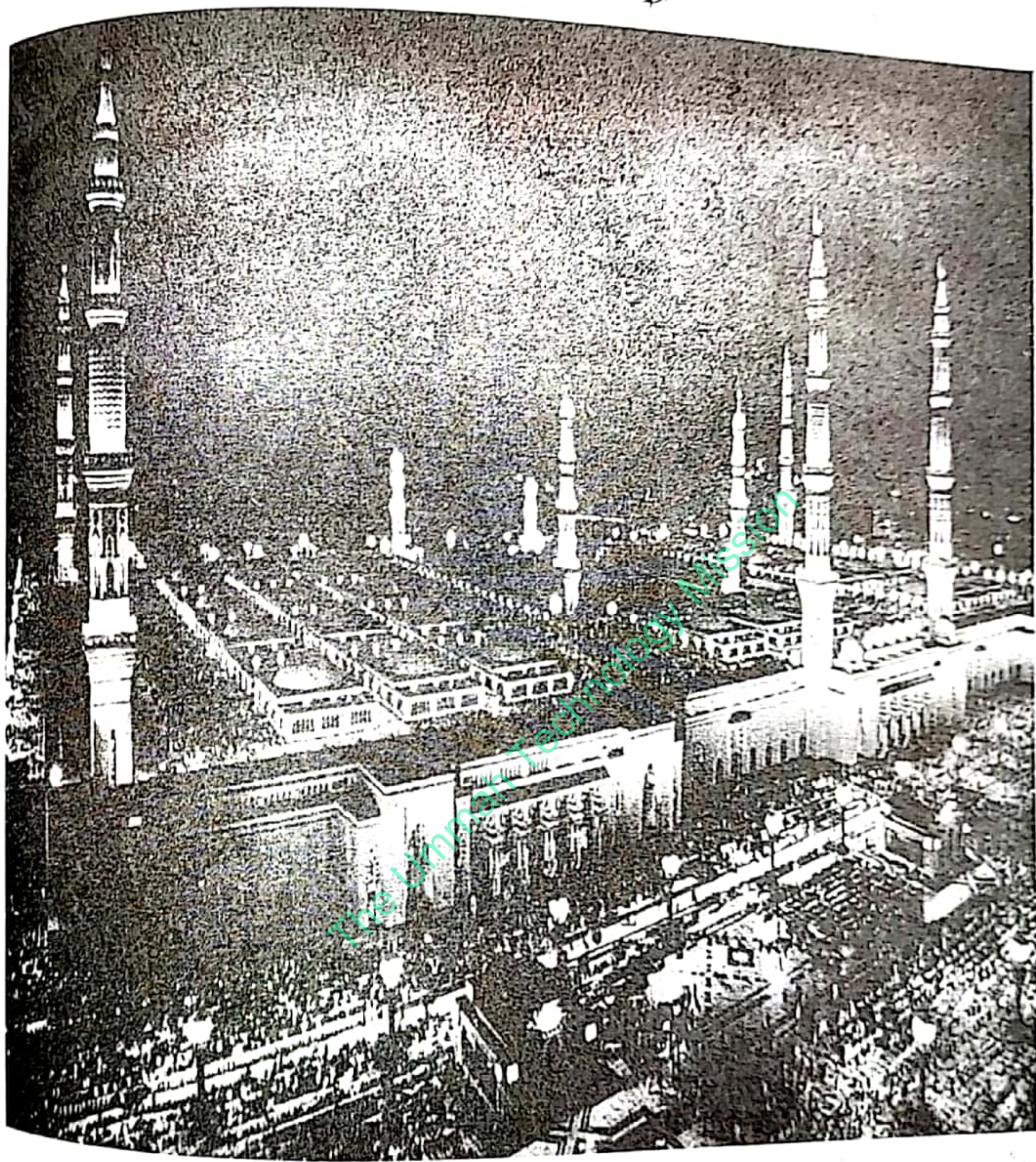
"मस्जिदे-नबवी"

देखें : मदीना।

मस्जिदे-अक़्सा

मस्जिदे-अक़्सा का अर्थ है दूरवाली मस्जिद। इसका वर्णन कुरआन में केवल एक बार आया है—**«महिमावान है वह (अल्लाह) जो एक रात अपने भक्त (मुहम्मद) को मस्जिदे-हराम से मस्जिदे-अक़्सा तक ले गया।»** (सूरा-17, बनी-इसराईल, आयत-1)
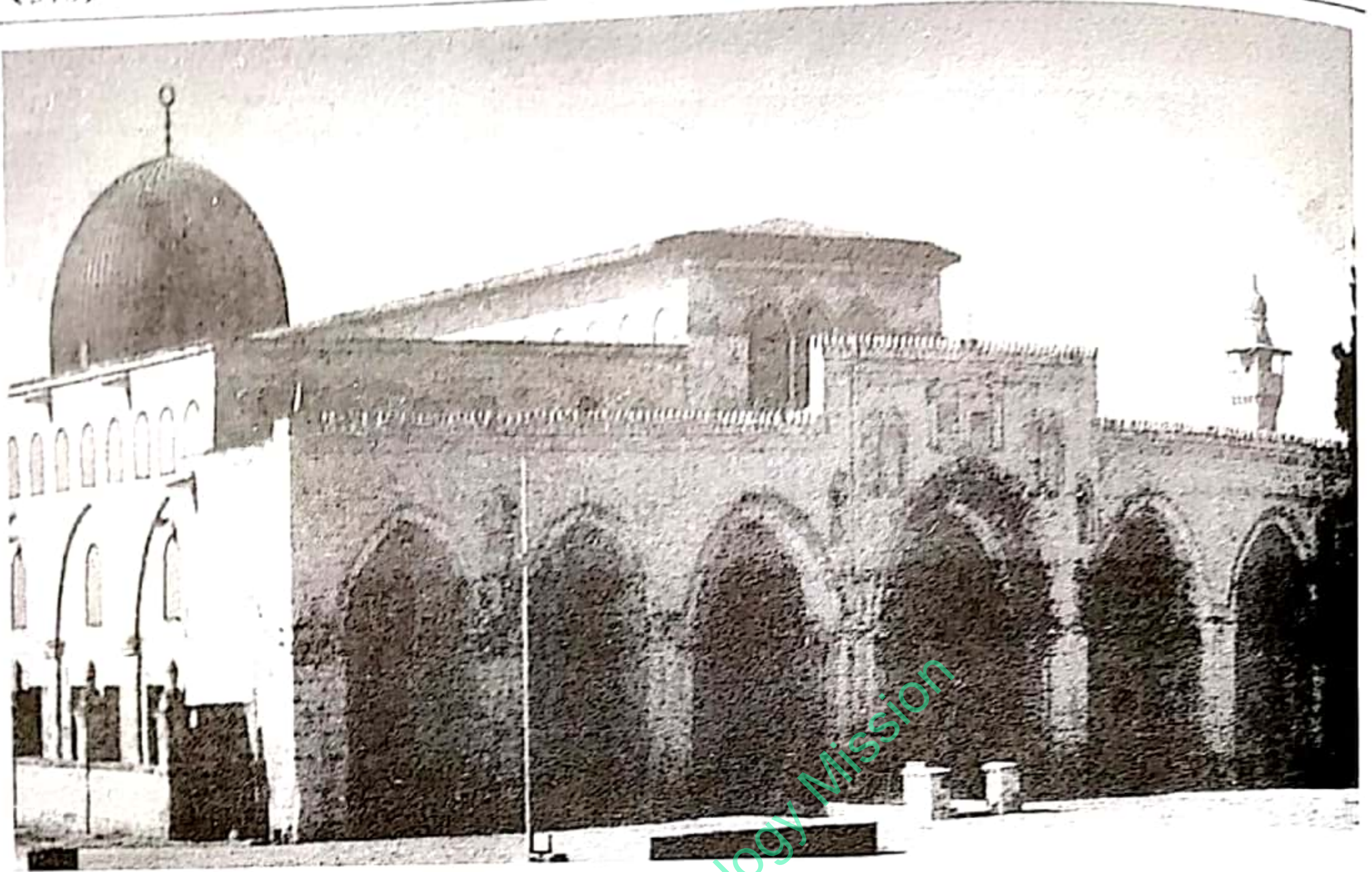
"मस्जिदे-अक़्सा"

यहाँ मस्जिदे-हराम अर्थात बैतुल्लाह जो मक्का में है, और मस्जिदे-अक़्सा से अभिप्रेत है बैतुल-मक़दिस जो नगर फ़िलस्तीन में है। इसको क़ुद्स और शलीम तथा ईलिया भी कहते हैं, जो मक्का से 1300 किलोमीटर दूर है।

एक सहीह हदीस से पता चलता है कि मस्जिदे-हराम और मस्जिदे-अक़्सा की निर्माण अवधि में चालीस वर्ष का अन्तर है। (देखें सहीह बुख़ारी 3366, तथा सहीह मुस्लिम 520) और यह बात सब को मालूम है कि मस्जिदे-हराम को इबराहीम तथा इसमाईल (عليه السلام) ने बनाया था। (देखें सूरा-2, अल्-बक़रा, आयत-127) और फिर चालीस वर्ष बाद मस्जिदे-अक़्सा बनाई गई, अब या तो उसको बनानेवाले भी इबराहीम (عليه السلام) होंगे, या आपकी संतान में से किसी ने इसको बनाया होगा, क्योंकि इबराहीम (عليه السلام) ने अपनी पत्नी और अपने पुत्र इसमाईल (عليه السلام) के लिए बैतुल्लाह बनाया जो मक्का में है, ताकि एक अल्लाह की इबादत कर सकें तो अपने दूसरे पुत्र इसहाक़ (عليه السلام) के लिए भी कोई मस्जिद बनाई होगी ताकि वे भी एक अल्लाह की इबादत कर सकें जो फ़िलस्तीन में रह गए थे। या फिर अधिक से अधिक यह हो सकता है कि आपके पुत्र इसहाक़ (عليه السلام) ने ही यह मस्जिद बनाई हो। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि आपकी बनाई हुई वही मस्जिद नबी (ﷺ) के समय तक सुरक्षित रही हो, क्योंकि छठी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर पहली शताब्दी ईसा पूर्व तक बैतुल-मक़दिस नगर को बार-बार उजाड़ा गया, उपासनागृहों तथा गिरजों को नष्ट-भ्रष्ट किया गया। बल्कि जब रोमन बादशाह ने चौथी शताब्दी में ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया तो उसने भी बैतुल-मक़दिस को तहस-नहस कर दिया।

उसके बाद भी ईसाई यहूदियों पर विभिन्न प्रकार के अत्याचार करते रहे। उनके उपासनागृहों को गिराते रहे। यह तो ईसाइयों ही से पूछा जा सकता है कि उनके बादशाह बार-बार ऐसा क्यों करते रहे? और यहूदियों की इबादतगाहों को क्यों गिराते रहे?

मुसलमानों ने तो ऐसा कभी नहीं किया, बल्कि मुहम्मद (ﷺ) को एक रात में अल्लाह ने उस मस्जिदे-अक़सा की सैर भी कराई जो बैतुल्लाह यानी काबे से चालीस साल बाद बनाई गई थी। मुहम्मद (ﷺ) ने उस रात को मस्जिदे-अक़सा में तमाम नबियों (अर्थात् उनकी आत्माओं) को नमाज़ भी पढ़ाई।
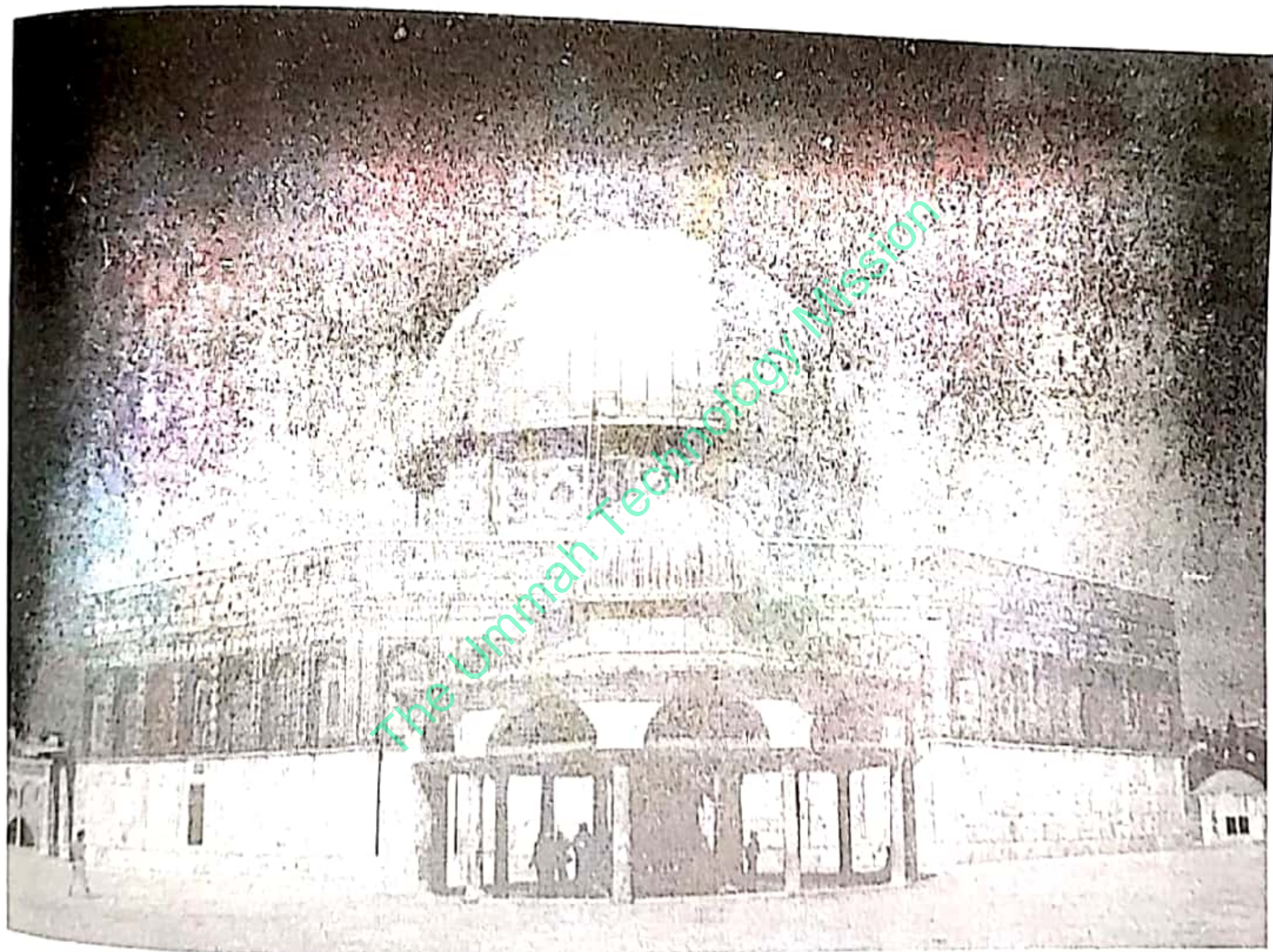
"मस्जिद सख़रा का एक ख़ूबसूरत चित्र"

और जब मक्का के काफ़िरों ने आप (ﷺ) के इसरा (अर्थात मुहम्मद (ﷺ) की मस्जिदे-अक़सा की यात्रा) को झुठलाया तो आपने उसकी निशानियाँ इस प्रकार बताईं जैसे बैतुल-मक़दिस को आपके सामने कर दिया गया हो। (दे. सहीह बुख़ारी 3886, तथा सहीह मुस्लिम 17) बल्कि एक दूसरी सहीह हदीस में यह भी आया है कि नबी (ﷺ) ने कहा, "जब मैं बैतुल-मक़दिस के विषय में लोगों को बता रहा था तो पूरी मस्जिद मेरे सामने कर दी गई। मैं उसको देखकर लोगों को बता रहा था।" (देखें मुस्नद अहमद 2819) सन् 17 हिजरी (637 ईसवी) को जब बैतुल-मक़दिस पर मुसलमानों को विजय प्राप्त हुई तो मुसलमानों के ख़लीफ़ा उमर-बिन-ख़त्ताब बैतुल-मक़दिस गए, और मस्जिदे-

अक़्सा में दो रकअत नमाज़ पढ़ी और वहाँ दुबारा मस्जिद बनाने का हुक्म दिया। क्योंकि ईसाइयों ने उसको कूड़ाघर बना लिया था। फिर हिजरी वर्ष 65 में ख़लीफ़ा अब्दुल-मलिक और उनके पुत्र वलीद बिन अब्दुल-मलिक ने उसको दुबारा बनाया। इस समय 35 एकड़ के परिसर में मस्जिदे-अक़्सा के अतिरिक्त क़ुब्बतुस-सख़रा तथा मस्जिदे-उमर मौजूद है और सबका सम्बन्ध इस्लामी इतिहास से है। रहा सुलैमान (عليه السلام) का बनाया हुआ हैकल तो इसका कुछ पता नहीं कि वह कहाँ है। क्योंकि ईसाइयों ही ने यहूदियों के उपासना-गृहों को बार-बार गिराया और बैतुल-मक़दिस नगर को बार-बार नष्ट किया। जबकि मुसलमानों के द्वीतीय ख़लीफ़ा उमर बिन ख़त्ताब जब बैतुल-मक़दिस पहुँचे और गिरजा क़ियामा (Church of the holy sepulcher) से गुज़र रहे थे कि इतने में अज़ान की आवज़ आई तो गिरजा क़ियामा के पुरोहित (पादरी) ने नमाज़ पढ़ने के लिए द्वार खोल दिया परन्तु उन्होंने यह कहकर उसमें नमाज़ पढ़ने से इनकार कर दिया कि कल मुसलमान इस गिरजा पर अपना अधिकार न प्रकट करने लगें कि उमर ने इसमें नमाज़ पढ़ी है। बल्कि आपने बैतुल-मक़दिस पर ईसाइयों से जो समझौता किया था उसमें यह भी था कि किसी गिरजा को गिराया नहीं जाएगा।

इसलिए यहूदियों का यह कहना कि मस्जिदे-अक़्सा सुलैमान (عليه السلام) के हैकल पर बनाई गई है यह बात सही नहीं है। इतिहास से इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

यहाँ यह बात भी जान लेनी चाहिए कि क़ुरआन ने उसको उस समय मस्जिदे-अक़्सा कहा जब इस्लाम की दूसरी मस्जिद का कुछ पता नहीं था कि वह कहाँ होगी। वह तो नबी (ﷺ) के हिजरत के बाद बनी जिसको मस्जिदे- नबवी कहते हैं जो मदीना में है। इस प्रकार की तीन प्रमुख मस्जिदें हैं जिनमें नमाज़ पढ़ने के लिए यात्रा की जा सकती है। उनमें पहली मस्जिदे-हराम है जो मक्का में है, दूसरी मस्जिदे-नबवी है जो मदीना में है, और तीसरी मस्जिदे-अक़्सा है जो बैतुल-मक़दिस में है, और यह मदीना से अपेक्षाकृत सबसे अधिक दूरी पर है।

मदीना

मदीना का पुराना नाम यसरिब था, जैसा कि क़ुरआन में आया है–

«जबकि उसमें से एक गरोह ने कहा, ''ऐ यसरिबवालो! तुम्हारे लिए ठहरने का कोई मौक़ा नहीं। अत: लौट चलो।''» (सूरा–33, अल-अहज़ाब, आयत–13)

लेकिन नबी (ﷺ) ने इसका नाम बदलकर तैबा रख दिया, क्योंकि यसरिब का अर्थ है उपद्रव या पापों पर पकड़नेवाला, नबी (ﷺ) ऐसा नाम पसन्द नहीं करते थे, जिसका अर्थ सुन्दर न हो। इसलिए आपने इसका नाम तैबा रख दिया, जिसका अर्थ है उत्तम।

एक सहीह हदीस में आया है कि आप (ﷺ) ने ज़ोर देकर कहा –
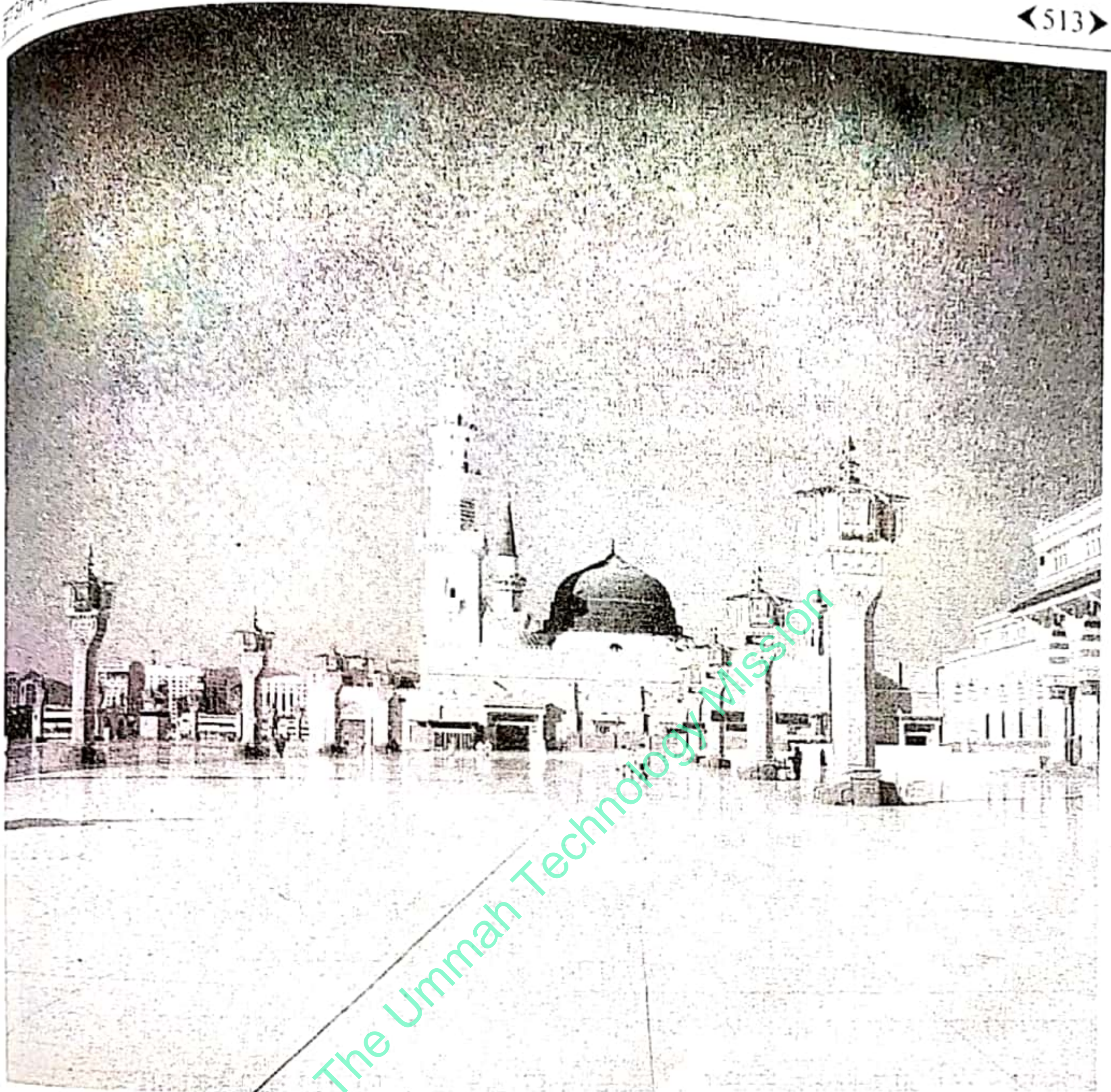
"मस्जिदे नबवी का एक खूबसूरत मंज़र"

"यह तैबा है, यह तैबा है, यह तैबा है।" (मुस्लिम 2942)

एक दूसरी हदीस में आया है कि नबी (ﷺ) ने कहा–

"अल्लाह ने मदीना का नाम तैबा रखा है।" (मुस्लिम 1385)

तैबा और ताबा दोनों का अर्थ एक ही है – उत्तम तथा पवित्र।

मदीना के और बहुत सारे नाम हैं। कुछ लोगों ने तो इन नामों की संख्या 94 तक बताई है, जो वास्तव में सही नहीं है। इन लोगों का आधार ज़ईफ़ हदीसों पर है।

रहा मदीना, तो यह वास्तव में मदीनतुर्रसूल था, जिसका अर्थ है रसूल का नगर। संक्षेप में इसे मदीना कहने लगे। बाद में यही नाम प्रचलित हो गया। क़ुरआन में मदीना शब्द का चार बार प्रयोग हुआ है। (देखिए: सूरा–9, अत-तौबा, आयतें–101, 120; सूरा–33, अल-अहज़ाब, आयत–60; सूरा–63, अल-मुनाफ़िक़ून, आयत–8)

मदीनावासी

जब यमन में सबा नामक जाति इरम नामक बाढ़ के कारण इधर-उधर भागने लगी तो दो अरबी क़बीले जिनका नाम औस तथा ख़ज़रज था, हिजरत करते हुए मदीना पहुँच गए और यहीं आबाद हो गए। फिर कुछ यहूदी अन्तिम नबी, की खोज में जिसका वर्णन तौरात में है, फ़िलस्तीन से निकले। जब वे तैमा शहर पहुँचे तो यह विचार करके कि यही नबी का शरण-स्थान है, वहीं आबाद हो गए। कुछ लोग और आगे बढ़े और ख़ैबर शहर में बस गए और समझा कि वह नबी यहीं आएगा।

कुछ इतिहासकारों का विचार है कि मदीना में पहले यहूदी आबाद हुए थे। फिर औस और ख़ज़रज आबाद हुए। परन्तु सही वही है जो ऊपर बताया गया है।

अर्थात् तैमा से लेकर मदीना तक यहूदी आबाद हो गए। व्यापार उनके हाथों में चला गया। खजूरों के उत्तम बाग़ों पर उनका अधिकार हो गया और अरबवासी उनके अधीन हो गए। अरबों ने इन्हीं यहूदियों से सुना था कि अन्तिम नबी हिजरत करके यहीं आएँगे। फिर हम उनके साथ मिलकर तुम्हें अरब क्षेत्र से निकाल देंगे।

परन्तु जब नबी (ﷺ) हिजरत करके मदीना आए तो यहूदियों ने, यह जानते हुए भी कि यही वे नबी हैं जिनके विषय में मूसा (عليه السلام) ने शुभ-सूचना दी थी, यह कहकर आप (ﷺ) के नबी होने का इनकार कर दिया कि यह नबी तो बनी-इसमाईल से है, जब कि हम बनी- इसराईल से हैं, जिनको अल्लाह ने सारे जगत में श्रेष्ठ बनाया है, तो भला हम एक ऐसे नबी को कैसे स्वीकार कर सकते हैं जो बनी-इसराईल से न हो। क़ुरआन में इसी की ओर संकेत किया गया है–

«जिन लोगों को हमने किताब दी है वे उसे उसी प्रकार पहचानते हैं, जैसे अपने बेटों को पहचानते हैं, और उनमें से कुछ सत्य को जान-बूझकर छिपा रहे हैं।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–146; सूरा–6, अल-अनआम, आयत–20)

मदीना के दो अरब क़बीले औस और खज़रज मुसलमान हो गए, और नबी (ﷺ) तथा हिजरत करके आनेवाले मुसलमानों की सहायता करने के कारण उनको अनसार की उपाधि मिली।

❋ मदीना की श्रेष्ठता

मदीना की श्रेष्ठता के विषय में एक सहीह हदीस में आया है –

"मदीना लोहार की भट्ठी की तरह है, जो गन्दी चीज़ को निकाल देती है, और विशुद्ध को बाक़ी रखती है।" (बुख़ारी, 7211 तथा मुस्लिम, 1383)

❀ मदीना में मरने की महत्ता –

हदीस में है –

"जो मदीना में मर सकता है, मरने का यत्न करे, क्योंकि मैं उसकी शफ़ाअत करूँगा।" (तिरमिज़ी 3917 तथा अहमद 2:74)

एक सहीह हदीस में आया है कि –

"ईमान मदीना की ओर पलटकर आएगा, जैसे साँप अपने बिल में पलटकर आता है।" (बुख़ारी 1876 तथा मुस्लिम 147)

मदीना के लिए बरकत की दुआ –

"ऐ अल्लाह! मदीना से हमें प्रेम करा दे, जैसा हमें मक्का से प्रेम है, बल्कि उससे अधिक। ऐ अल्लाह! हमारे नाप-तौल में बरकत दे और हमें स्वस्थ रख और मदीना के रोगों को 'जुहफ़ा' की ओर कर दे।" (बख़ारी 1888 तथा मुस्लिम 1376)

मदीना में बसने की श्रेष्ठता : एक हदीस में आया है –

"यमन विजय किया जाएगा तो लोग अपने परिवार को लेकर वहाँ चले जाएँगे, जबकि मदीना उनके लिए श्रेष्ठ होगा, अगर उनको पता होता; शाम विजय होगा तो लोग अपने परिवार को लेकर वहाँ चले जाएँगे, जबकि मदीना उनके लिए श्रेष्ठ होगा अगर उनको पता होता। इराक़ विजय होगा; तो लोग अपने परिवार को लेकर वहाँ चले जाएँगे, जबकि मदीना उनके लिए श्रेष्ठ होगा अगर उनको पता होता।" (बुख़ारी 1875 तथा मुस्लिम 1388)

एक दूसरी हदीस में आया है –

"जो कोई मदीना से घृणा करता हुआ निकलेगा, अल्लाह उससे उत्तम लोगों को लाकर बसा देगा। मदीना तो एक भट्टी है जो गन्दे लोगों को निकाल दिया करती है। क़ियामत उस समय तक नहीं आएगी जब तक मदीना अप्रसन्न लोगों को निकालकर बाहर न कर दे, जैसे लोहे की भट्टी लोहे के गन्दे पदार्थ को निकाल देती है।" (मुस्लिम 1381)

नबी (ﷺ) का कथन है –

"ऐर (पर्वत) से सौर (पर्वत) तक मदीना हरम है। जिसने वहाँ अत्याचार किया या किसी अत्याचारी को शरण दी उसपर अल्लाह, फ़रिश्तों तथा लोगों की लानत (फटकार) होगी। अल्लाह की यातना से बचने के लिए क़ियामत के दिन कोई बदला (फ़िदिया) स्वीकार नहीं होगा।"» (बुख़ारी 1870 तथा मुस्लिम 1370)

एक दूसरी हदीस में आया है –

"जिसने मदीना के वासियों के लिए दुष्कृत्य का विचार भी किया, अल्लाह उसको ऐसे घुला देगा जैसे पानी में नमक घुलता है।" (मुस्लिम 1387)

❋ **मदीना के प्रसिद्ध स्थान –**

1. **मस्जिदे-नबवी :** इसमें एक नमाज़ का सवाब एक हज़ार नमाज़ों के बराबर है।
2. **रौज़ा-ए-नबी (ﷺ) :** मस्जिदे-नबवी में नमाज़ पढ़ने के पश्चात् चाहे वह फ़र्ज़ हो या नफ़्ल, नबी (ﷺ) की क़ब्र पर जाए और यह कहते हुए आपको सलाम करे –
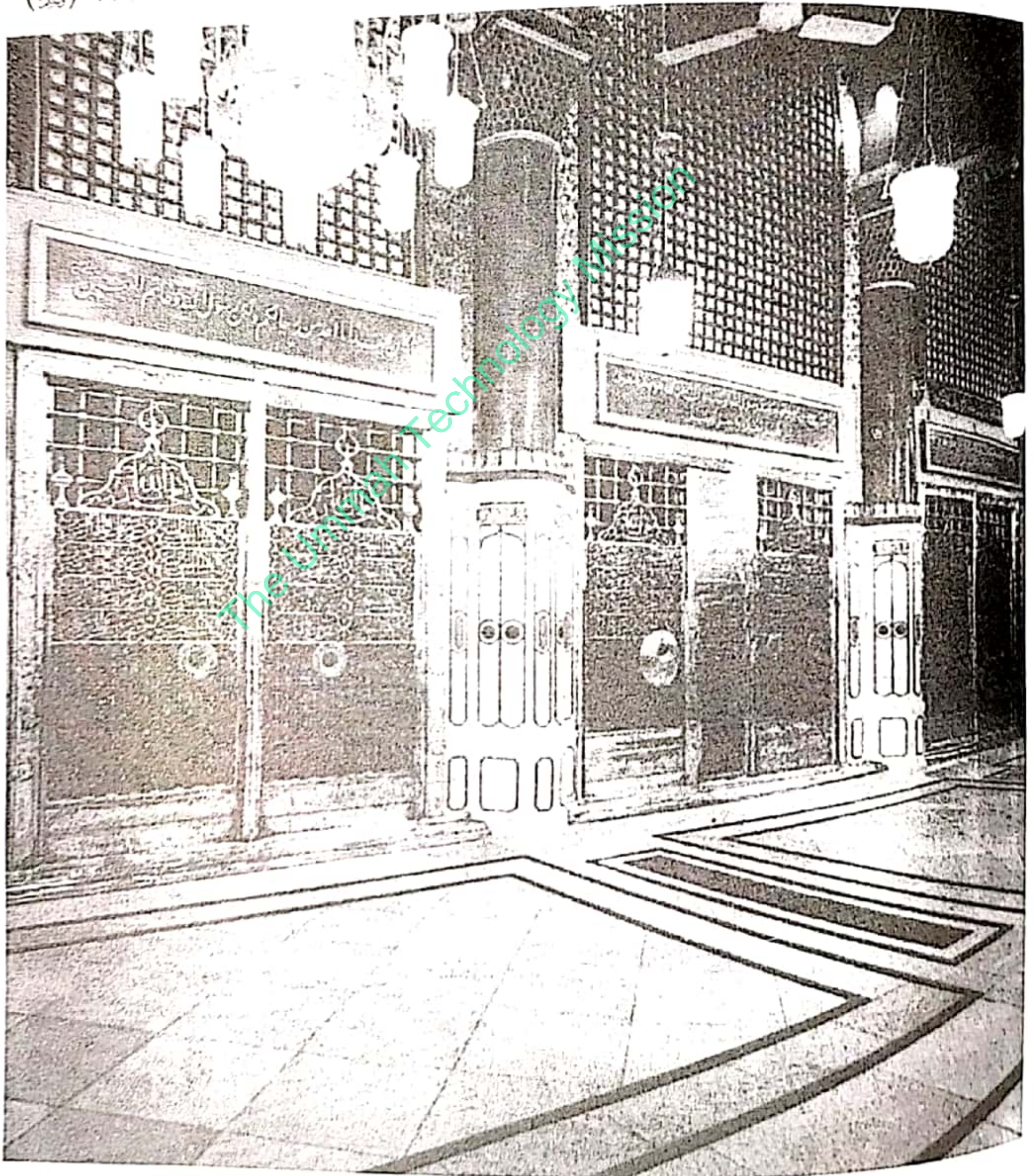
"रसुल अल्लाह ﷺ की कब्र मुबारक का सामने वाला हिस्सा"

"अस्सलामु अलै-क या रसूलल्लाह!"

फिर आप (ﷺ) के दोनों साथी अबू बक्र तथा उमर (رضي الله عنهما) की क़ब्र पर जाए। ये दोनों क़ब्रें नबी (ﷺ) की क़ब्र से मिली हुई हैं और उनको सलाम करे।

3. **रियाज़ुल-जन्नत :** यह स्थान नबी (ﷺ) के घर तथा आप (ﷺ) के मिम्बर के बीच में है। (बुख़ारी 1196 तथा मुस्लिम 1391)
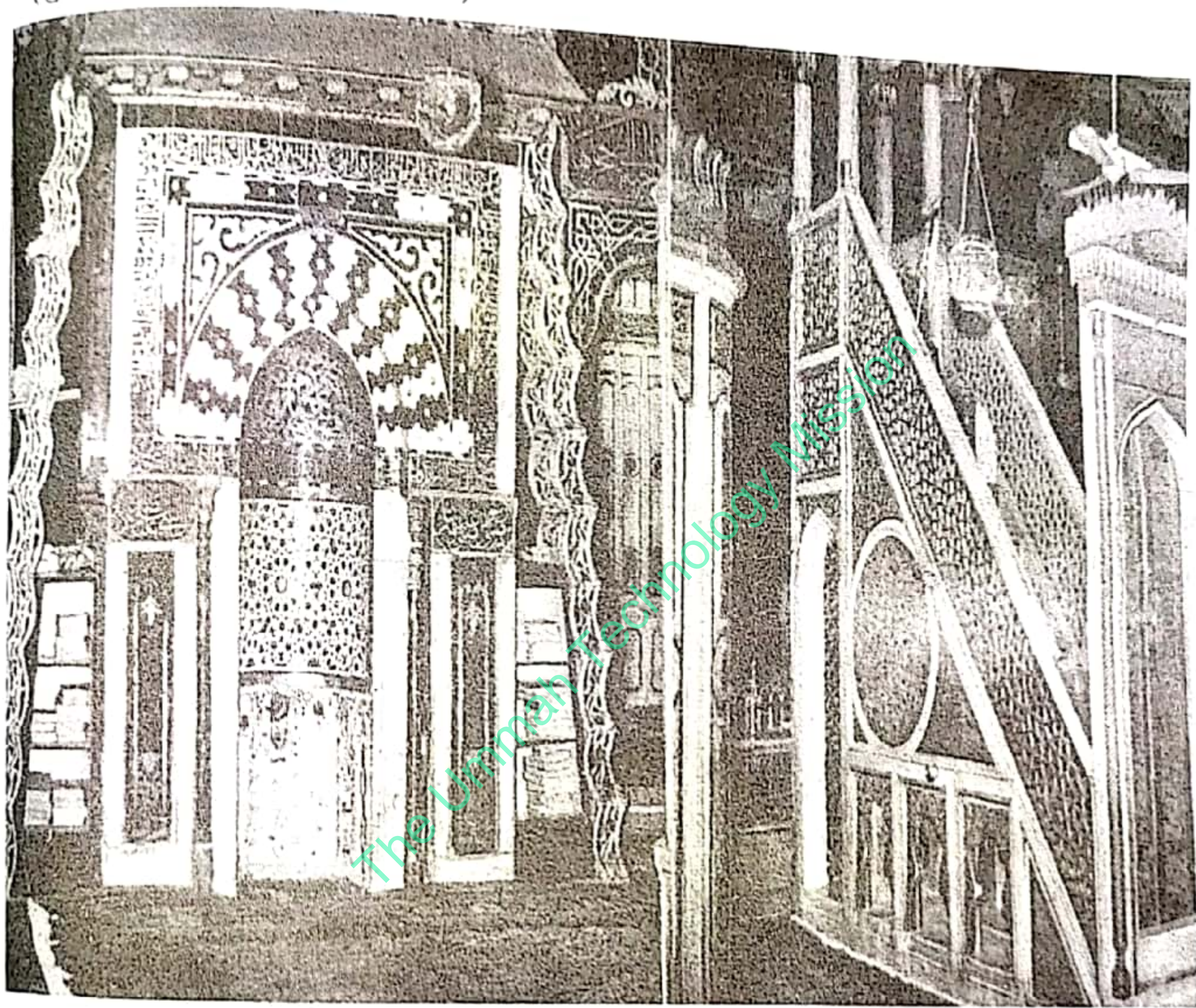
"रियाजुल जन्नत का एक ख़ूबसूरत दृश्य"

4. **रियाज़ुल जन्नत के सुतून :** इन सुतूनों के पास नमाज़ पढ़ना नबी (ﷺ) बहुत पसन्द करते थे। (बुख़ारी 502 तथा मुस्लिम 509)

5. **मस्जिदे-क़ुबा :** यह वह पहली मस्जिद है जिसकी नींव नबी (ﷺ) ने उस समय डाली जब आप मक्का से हिजरत करके क़ुबा में बनी अम्र बिन औफ़ के यहाँ ठहरे थे। इसमें एक नमाज़ पढ़ने का सवाब एक उमरा के बराबर है। (नसई 2:37; इब्ने माजा 1412; मुसनद अहमद 3:487)

6. **उहुद नामक पर्वत :** जब नबी (ﷺ) तबूक के युद्ध से वापस आ रहे थे, उस समय उहुद नामक इस पर्वत को देखकर फ़रमाया –

"यह वह पहाड़ है जो हमसे प्रेम करता है और जिससे हम प्रेम करते हैं।" (बुख़ारी 4422 तथा मुस्लिम 1392)

7. मक़बरा बक़ीअ : फिर 'बक़ीअ' नामक क़ब्रिस्तान जाए और यह दुआ पढ़े –

"अस्सलामु अलैकुम दार कौमिममुमिनीन, अन्तुम साबिक़ून, व नहनु इंशा अल्लाहु बिकुम लाहिक़ून।"

"तुम आगे जानेवालों में हो और हम अगर अल्लाह ने चाहा तो तुमसे मिलनेवाले हैं।"

मदीना में और भी प्रसिद्ध स्थान हैं जैसे, मस्जिदे-क़िबलतैन, मस्जिदे-फ़तूह, शुहदाए-उहुद, मस्जिदे-जुमा इत्यादि जिनका दर्शन करना अनिवार्य नहीं है, परन्तु नबी (ﷺ) की जीवनी का अध्ययन करनेवालों के लिए इतिहास के छिपे हुए पन्ने हैं। इसलिए सवाब की नीयत के बिना इन स्थानों का दर्शन किया जा सकता है।

"मदीना का इस्लामिक विश्वविद्यालय"
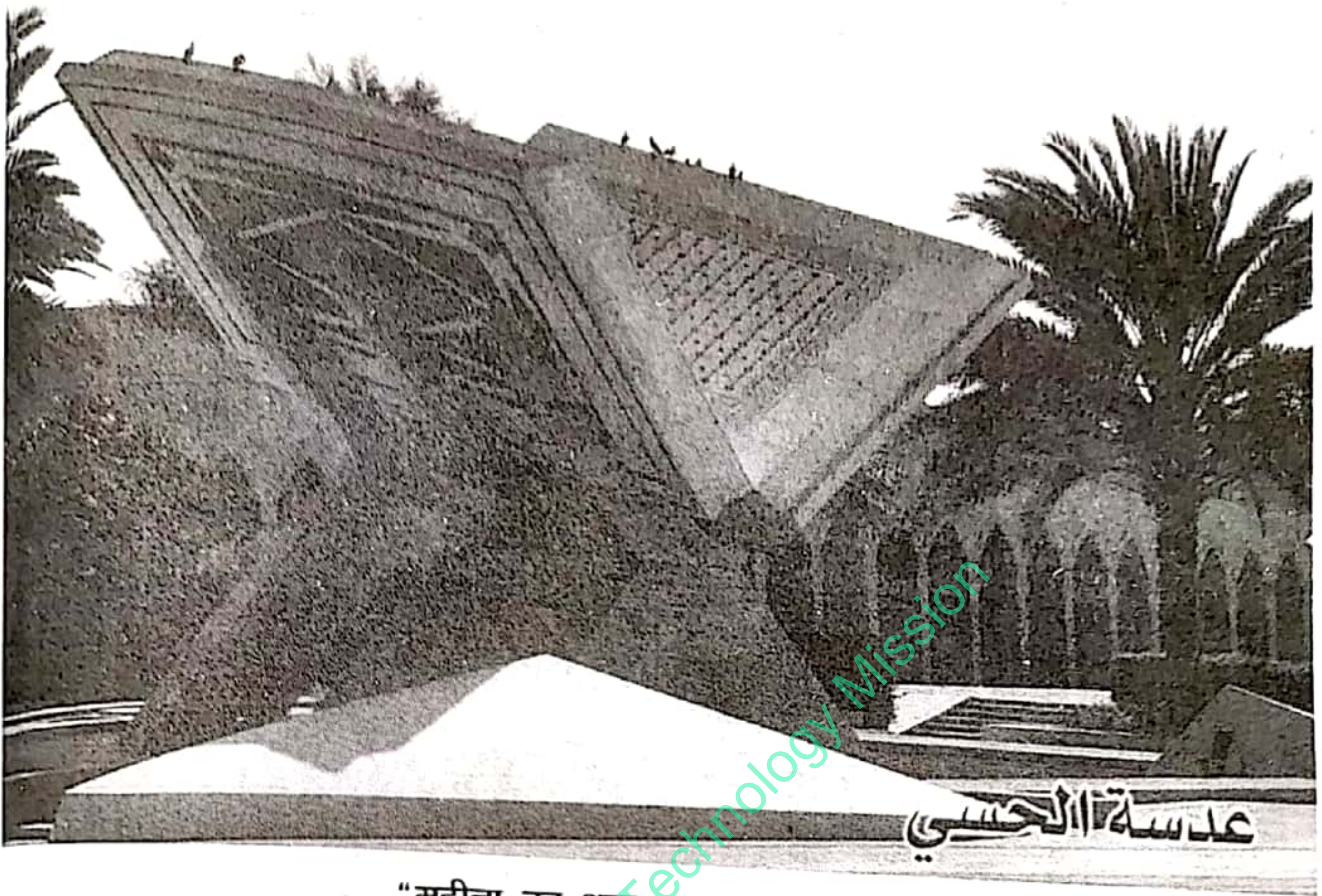
"मदीना का शाह फ़हद क़ुरआन प्रेस"

मरयम

क़ुरआन में केवल एक मरयम, जो ईसा (ﷺ) की माता थीं, का वर्णन आया है। इनके जीवन को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं –

पहला भाग : जब मरयम की माँ ने मन्नत मानी कि जो भी उसके गर्भ में होगा वह उसे 'हैकल' (बैतुल-मक़दिस) की सेवा के लिए अर्पित कर देंगी। लेकिन जब बालक के बजाय बालिका पैदा हुई तो वह चिन्तित हो उठी –

«जब इमरान की पत्नी ने कहा, "मेरे पालनहार! मेरे गर्भ में जो है उसे तुझे भेंटस्वरूप अर्पित करती हूँ, वह तेरे ही कार्य के लिए अर्पित होगा। तू इस भेंट को स्वीकार कर। निस्सन्देह तू सुनने और जाननेवाला है।" फिर जब उसके यहाँ बच्ची पैदा हुई तो वह कहने लगी, "ऐ 'रब'! मेरे यहाँ तो कन्या पैदा हो गई।"– जबकि अल्लाह को ज्ञान है कि उसके यहाँ क्या जन्मा– "और लड़का लड़की की तरह नहीं होता। मैंने उसका नाम मरयम रखा है, और मैं उसे और उसकी भावी सन्तान को तिरस्कृत (मरदूद) शैतान से (बचने के लिए) तेरी शरण में देती हूँ।"» (सूरा–3, आले-इमरान, आयतें–35,36)

क़ुरआन से इतना पता चला कि मरयम के पिता का नाम इमरान था, परन्तु बाइबल में मरयम के माता-पिता दोनों में से किसी का नाम नहीं है। मत्ती, मरक़ुस, लूक़ा तथा यूहन्ना चारों ने अपनी इंजीलों का प्रारम्भ ईसा (عليه السلام) के जन्म से किया है। मुस्लिम विद्वानों ने अपनी व्याख्याओं में मरयम की माँ का नाम हन्ना-बिनते-फ़ाक़ूज़ बताया है। हो सकता है उन्होंने मसीही विद्वानों से ऐसा ही सुना हो, परन्तु बाइबल में हन्ना नाम की जिन दो स्त्रियों का वर्णन आता है उनमें से एक शमूएल की माँ हैं, दूसरी कोई और है जिसको हन्ना-बिनते-फ़नोइल कहते हैं। इनमें से कोई मरयम की माँ नहीं है।

आश्चर्य की बात है कि आज तक मसीही विद्वान मरयम के माता-पिता के विषय में कोई ठोस बात नहीं बता सके। बाइबल से केवल हमें इतना ही पता चलता है कि आप दाऊद (عليه السلام) की वंशज थीं।

चूँकि मरयम यतीम थीं, इसलिए उनके ख़ालू (मौसा) ज़करीया (عليه السلام) ने उनके पालन-पोषण की ज़िम्मेदारी उठा ली –

«और ज़करीया को उसका संरक्षक बनाया गया।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–37)

मरयम के जीवन में यह चमत्कार प्रकट हुआ कि अल्लाह की ओर से उनको तरह-तरह के और बेमौसम के फल प्राप्त होते थे –

«जब कभी ज़करीया उसके पास मेहराब (इबादतगाह) में जाता तो उसके पास कुछ न कुछ खाने-पीने की चीज़ पाता। उसने कहा, ''ऐ मरयम ये चीज़ें तुझे कहाँ से मिलती हैं?'' उसने कहा, ''ये अल्लाह के पास से हैं। निस्सन्देह अल्लाह जिसे चाहता है बेहिसाब रोज़ी देता है।''» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–37)

दूसरा भाग : इस दूसरे भाग में मरयम एक पूर्ण स्त्री के रूप में नज़र आती हैं। इस जीवन में उनको अल्लाह की ओर से एक शुभ सूचना मिलती है –

«जब फ़रिश्तों ने कहा, ''ऐ मरयम! अल्लाह ने तुझे चुन लिया तथा पवित्र कर दिया, और सारे संसार की स्त्रियों में तेरा चुनाव कर लिया। ऐ मरयम! तू अपने रब की इबादत कर, और उसको सजदा कर और रुकू करनेवालों के साथ मिलकर रुकू कर।''» (सूरा–3, आले-इमरान, आयतें–42,43)

अर्थात तू अपने रब की आज्ञाओं का पालन कर। अल्लाह ने तुझे बहुत उच्च पद प्रदान किया है, क्योंकि तू भविष्य में ईसा (عليه السلام) की माता बननेवाली है। सहीह हदीस में आया है –

''पुरुषों में तो बहुत सारे लोग सिद्ध पुरुष होने में सफल हो चुके हैं, परन्तु स्त्रियों में पूर्ण स्त्री बननेवाली तीन हैं; मरयम-बिन्ते-इमरान, आसिया (फ़िरऔन की पत्नी) और आइशा (رضي الله عنها)। इनका स्थान स्त्रियों में ऐसा है जैसे सरीद नामक भोजन सारे भोजनों में श्रेष्ठ है।'' (बुख़ारी, 3411 तथा मुस्लिम, 2431)

एक दूसरी सहीह हदीस में केवल दो श्रेष्ठ स्त्रियों का वर्णन है। मरयम-बिन्ते-इमरान तथा ख़दीजा-बिन्ते-ख़ुवैलिद। (बुख़ारी, 3815 तथा मुस्लिम, 2130)

दोनों हदीसों के मिलाने से श्रेष्ठ स्त्रियाँ चार हो जाती हैं, मरयम, आसिया, आइशा और ख़दीजा (ﷺ)।

तीसरा भाग : मरयम अपने गर्भ से अल्लाह के शब्द 'कुन' (अर्थात् हो जा) से ईसा (ﷺ) को जन्म देती हैं। इसका विस्तृत विवरण ईसा (ﷺ) के जीवन- चरित्र में देखिए।

मरयम और उनके पुत्र ईसा (ﷺ) दोनों ही इनसान थे। इनमें से किसी में भी 'उलूहियत' (अर्थात् ईश्वरत्व का अंश) नहीं थी।

«मरयम का पुत्र मसीह पैग़म्बर होने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था, जैसे उससे पूर्व पैग़म्बर थे। उसकी माँ एक सत्यवती (सिद्दीक़ा) स्त्री थी। दोनों (माता तथा पुत्र) भोजन खाते थे।» (क़ुरआन, सूरा–5, माइदा, आयत–75)

तात्पर्य यह है कि जो भोजन का मुहताज हो, वह ईश्वर कैसे बन सकता है ?

लूक़ा ने अपनी इंजील में मरयम की एक प्रार्थना का उल्लेख किया है जिससे उनका मानव होना सिद्ध होता है –

"मेरे प्राण प्रभु की बड़ाई करते हैं। मेरी आत्मा मेरे उद्धार करनेवाले परमेश्वर से आनन्दित हुई; क्योंकि उसने अपनी दासी की दीनता पर दृष्टि की है। इसलिए देखो, अब से युग-युग के लोग मुझे धन्य कहेंगे, क्योंकि उस शक्तिमान (परमेश्वर) ने मेरे लिए बड़े-बड़े काम किए हैं। उसका नाम पवित्र है और उसकी कृपा उनपर, जो उससे डरते हैं, पीढ़ी से पीढ़ी तक बनी रहती है। उसने अपना भुजबल दिखाया और जो अपने आपको बड़ा समझते थे, उसने उन्हें तितर-बितर किया। उसने बलवानों को सिंहासनों से गिरा दिया; किन्तु दीनों को ऊँचा किया। उसने भूखों को अच्छी वस्तुओं से तृप्त किया; किन्तु धनवानों को ख़ाली हाथ निकाल दिया। उसने अपने सेवक इसराईल को संभाल लिया कि अपनी उस दया को स्मरण करे जो अब्राहम और उसके वंश पर सदा रहेगी, जैसा उसने हमारे बाप-दादों से कहा था।" (देखिए : लूक़ा, 1:46 55)

ईसा (ﷺ) के नबी होने के बाद मरयम ओझल हो जाती हैं बल्कि लूक़ा ने तो एक स्थान पर ईसा (ﷺ) से यह बात सम्बद्ध की है कि उन्होंने अपनी माता को पहचानने से ही इनकार कर दिया –

"ईसा भीड़ से बातें कर रहे थे। उनकी माता और भाई बाहर खड़े थे। वे ईसा से बातें करना चाहते थे। किसी ने ईसा से कहा, 'देखिए, आपकी माता और आपके भाई बाहर खड़े हैं। वे आपसे बातें करना चाहते हैं'। यह सुनकर ईसा ने कहनेवाले को उत्तर दिया, 'कौन है मेरी माता और कौन है मेरा भाई?' ईसा ने अपने चेलों की ओर अपना हाथ बढ़ाकर कहा, "देखो मेरी माता और मेरे भाई ये हैं।"» (देखिए : लूक़ा, 12:46-49)

यह बात बड़ी आश्चर्यजनक है कि ईसा (عليه السلام) अपनी माँ को यह उत्तर दें और उनसे मिलने से इनकार कर दें।

इसके विपरीत क़ुरआन ने ईसा (عليه السلام) के विषय में कहा कि –

«मैं अल्लाह का बन्दा हूँ। उसने मुझे किताब दी और मुझे नबी बनाया। और मुझे बरकतवाला किया जहाँ भी मैं रहूँ और मुझे नमाज़ और ज़कात की ताकीद की, जब तक कि मैं जीवित रहूँ। और अपनी माँ का हक़ अदा करनेवाला बनाया। और उसने मुझे सरकश और बेनसीब नहीं बनाया ।।» (सूरा–19, मरयम, आयतें–30-32)

इन आयतों से मालूम होता है कि क़ुरआन ने ईसा (عليه السلام) को उच्च श्रेणी पर पहुँचा दिया और इस भ्रम को दूर कर दिया कि ईसा (عليه السلام) अपनी माता के साथ कठोर बर्ताव करते थे।

हमारे पास इस बात का कोई ज्ञान नहीं कि ईसा (عليه السلام) को आसमान पर उठा लेने के पश्चात् मरयम कहाँ गईं और उनका देहान्त कब हुआ। कुछ विद्वानों का विचार है कि ईसा (عليه السلام) के बाद मरयम उनके एक चेले के घर चली गईं, और वहीं ईसवी सन 48 में उनका देहान्त हुआ।

मास

एक वर्ष में बारह मास होते हैं।

«निस्सन्देह महीनों की गिनती अल्लाह के निकट उसकी किताब में बारह मास है उस दिन से जिस दिन आकाशों और धरती को पैदा किया। इनमें से चार 'हराम' (सम्मान तथा आदर के) हैं ।।» (सूरा-9, अत-तौबा, आयत-36)

यहाँ 'किताब' से आशय 'लौहे-महफ़ूज़' है जहाँ सम्पूर्ण सृष्टि के विषय में सब कुछ लिखकर रखा हुआ है। अरबों में तथा इसी प्रकार यहूदी तथा भारतीय संस्कृति में चन्द्रमा की परिक्रमा के आधार पर बारह मासों के नाम निर्धारित किए गए हैं। अरबी महीनों के नाम इस प्रकार हैं–

1. मुहर्रम 2. सफ़र 3. रबीउल-अव्वल 4. रबीउस्सानी 5. जुमादुल-ऊला 6. जुमादुल-उख़रा 7. रजब 8. शाबान 9. रमज़ान 10. शव्वाल 11. ज़ुलक़अ्दा 12. ज़ुलहिज्जा

इनमें चार मास 'हराम' (सम्मान तथा आदर के) कहे जाते हैं और वे ये हैं– ज़ुलक़अ्दा, ज़िलहिज्जा, मुहर्रम, तथा रजब। इन मासों में युद्ध करना हराम था, परन्तु इस्लाम से पहले जाहिली युग में लोग अपनी इच्छानुसार इन मासों को आगे-पीछे कर लिया करते थे, ताकि युद्ध करने में हराम मास की समस्या न रहे। इसी को क़ुरआन में 'नसी' कहा गया है। नसी का अर्थ है महीनों को आगे-पीछे कर देना। (देखें सूरा-9, अत-तौबा, आयत-37) उनके इस हेर-फेर के कारण अल्लाह के

निर्धारित मासों में परिवर्तन हो गया। नबी (ﷺ) के चमत्कारों में से एक यह भी है कि आपके नबी बनाने के कुछ वर्ष बाद ये मास अपनी पहली दशा में आ गए अर्थात वे चार मास उसी प्रकार हराम हो गए जिस प्रकार पहले थे और अब यह दशा उसी प्रकार क़ियामत तक रहेगी। कुछ लोगों ने प्राचीन काल से ही वर्ष के बारह मास निर्धारित करने के लिए सूर्य को अपना आधार बनाया। जो प्रसिद्ध है कि बारह राशियों में भ्रमण करता है। और ये बारह मास सुरयानी तथा लातीनी में इस प्रकार हैं –

क्रम	सुरयानी	लातीनी	क्रम	सुरयानी	लातीनी
1	क़ानून	जनवरी	2	शुबात	फ़रवरी
3	आज़ार	मार्च	4	नीसान	अप्रैल
5	अय्यार	मई	6	हज़ीरान	जून
7	तमूज़	जुलाई	8	आब	अगस्त
9	ऐलूल	सितम्बर	10	1 तशूरीन	अक्तूबर
11	2 तशूरीन	नवम्बर	12	1 क़ानून	दिसम्बर

जैसे –

'नीसान' (नहेम्याह 2 : 1)

'ऐलूल' (नहेम्याह 6 : 15)

'आज़ार' (एस्तेर 3 : 7)

'शबात' (ज़कर्याह 1 : 7)

कुछ अरब देश जैसे सीरिया, लेबनान, इराक़, यमन इत्यादि में आज भी सुरयानी नामों का प्रयोग होता है। वे लातीनी नामों को नहीं जानते।

चूँकि चन्द्रमा के बारह मास कुल 354 दिन के होते थे, और सूर्य के बारह मास 365 दिन के होते थे इसलिए यहूदी भी प्रत्येक तीन वर्ष के पश्चात् एक मास बढ़ा लिया करते थे ताकि सूर्य मास के समान हो जाए। कुछ विद्वानों ने इसको भी 'नसी' कहा है। क्योंकि इससे अल्लाह के निर्धारित किए हुए बारह मास में परिवर्तन हो जाता है जिसके कारण ईदों का ठीक-ठीक दिवस नियुक्त करना असम्भव है।

इस प्रकार इस्लाम की सारी इबादतों जैसे : रमज़ान का रोज़ा, हज, ईद, इत्यादि को चन्द्रमा-परिक्रमा पर ही रखा गया है। सूर्य के द्वारा केवल पाँच समय की नमाज़ों को निर्धारित किया जाता है।

मीरास (मृतक-सम्पत्ति)

मीरास अथवा मृतक-सम्पत्ति के विषय में इस्लाम ने दो विशेष सिद्धान्त बताए हैं।

पहला : मीरास वितरित करने से पूर्व मृतक के वे अधिकार और ज़िम्मेदारियाँ, जो मृत्यु के बाद भी बाक़ी रहते हैं, और उसकी छोड़ी हुई सम्पत्ति से सबसे पहले इनको अदा किया जाएगा। जैसे –

1. मृतक के कफ़न-दफ़न के ख़र्चे।
2. मृतक पर किसी का क़र्ज़।
3. मृतक ने अपने जीवन में ज़कात नहीं दी, या उसपर किसी प्रकार का कफ़्फ़ारा था या उसने कोई जायज़ 'नज़्र' मानी थी।
4. अगर मृतक ने अपने जीवन में किसी के लिए कोई वसीयत की हो, या सदक़ा-जारिया की वसीयत की हो, जो कुल छोड़े हुए धन का एक तिहाई से अधिक न हो। (अधिक जानकारी के लिए देखिए: वसीयत)

दूसरा : इनके पश्चात् जो धन बचेगा वह निम्नलिखित नियमों के अनुसार मृतक के रिश्तेदारों में वितरित किया जाएगा –

पुरुषों का भाग स्त्रियों के भाग से दुगना होगा, क्योंकि इस्लामी शिक्षानुसार पुरुष ही हर दशा में स्त्री के भरण-पोषण आदि का ज़िम्मेदार है। पुत्री हो तो पिता, बहन हो तो भाई, पत्नी हो तो पति, माँ हो तो पुत्र। अर्थात् प्रत्येक दशा में पुरुष ही ज़िम्मेदार है। फिर विवाह की दशा में स्त्री को महर मिलता है, जिसकी वह स्वयं स्वामिनी है। घर बसाने की ज़िम्मेदारी पति पर है। इस्लाम में दहेज नाम की कोई चीज़ नहीं है। अगर माता-पिता या कोई और अपनी लड़की को अपनी ओर से कुछ वस्त्र इत्यादि अपनी प्रसन्नता से दे तो उसकी स्वामिनी भी स्त्री होगी।

इसलिए इस्लाम ने मीरास में से पुरुष को दो भाग और स्त्री को एक भाग दिया है। अगर ऐसा न होता बल्कि स्त्री को पुरुष के समान मीरास मिल जाती तो यह पुरुषों पर बहुत बड़ा अत्याचार होता और स्त्री को कुछ न मिलता तो यह स्त्री पर अत्याचार होता।

इस्लाम के इन सिद्धान्तों पर आप जितना भी विचार करेंगे आपको इनकी हिकमतें समझ में आती जाएँगी।

❋ मीरास-वितरण के नियम

पवित्र क़ुरआन में मीरास-वितरण के निम्नलिखित नियम बताए गए हैं –

«अल्लाह तुम्हारी औलाद के बारे में तुम्हें वसीयत करता है कि पुरुष का हिस्सा दो स्त्रियों के हिस्से के बराबर है, यदि केवल दो से अधिक लड़कियाँ ही हों, तो उनका

हिस्सा उस माल का दो तिहाई है जो (मरनेवाले ने) छोड़ा हो, और यदि अकेली हो तो उसके लिए आधा है। यदि उसके (मरनेवाले के) औलाद हो तो उसके माता-पिता में से हर एक के लिए उसके छोड़े हुए माल का छठा भाग है; और यदि उसके औलाद न हो और उसके माता-पिता ही उसके वारिस हों, तो उसकी माता का हिस्सा तिहाई होगा; और यदि उसके भाई-बहिन भी हों, तो उसकी माता का छठा हिस्सा होगा। ये हिस्से, वसीयत जो वह कर जाए, पूरी करने या ऋण (जो उसपर हो) चुका देने के बाद हैं। तुम नहीं जानते कि फ़ायदा पहुँचाने में तुम्हारे बाप और तुम्हारे बेटों में से कौन तुमसे ज़्यादा क़रीब है। ये हिस्से अल्लाह ने निश्चित किए हैं। निस्सन्देह अल्लाह जाननेवाला और तत्त्वदर्शी है।

और तुम्हारी पत्नियों ने जो कुछ छोड़ा हो उसमें तुम्हारा आधा है, यदि उनके औलाद न हो; यदि उनके औलाद हो तो तुम्हारा चौथाई होगा, इसके बाद कि जो वसीयत वे कर जाएँ वह पूरी कर दी जाए, या ऋण (जो उनपर हो) चुका दिया जाए। और जो कुछ तुम छोड़ जाओ उसमें उनका (बीवियों का) हिस्सा चौथाई होगा यदि तुम्हारे कोई औलाद नहीं है, और यदि तुम्हारे औलाद है तो उनका (बीवियों का) हिस्सा आठवाँ होगा, इसके बाद कि जो वसीयत तुम कर जाओ पूरी कर दी जाए, या ऋण (जो तुम पर रह गया हो, उसे) अदा कर दिया जाए। और यदि ऐसा हो कि किसी पुरुष या स्त्री के न तो औलाद हो और न उसके माता-पिता ही जीवित हों, और उसके एक भाई या एक बहिन हो तो उन दोनों में से प्रत्येक का छठा हिस्सा होगा, और यदि वे (भाई-बहन) इससे अधिक हों, तो फिर एक तिहाई में वे सब शरीक होंगे, इसके बाद कि जो वसीयत की गई हो पूरी कर दी जाए और जो ऋण हो उसे चुका दिया जाए कि वह हानि पहुँचानेवाला न हो। यह वसीयत अल्लाह की ओर से है। और अल्लाह जाननेवाला और सहनशील है।» (सूरा-4, अन-निसा, आयतें-11,12)

एक अन्य स्थान पर कहा गया –

«यदि कोई मर जाए जिसके औलाद न हो (न माता-पिता ही हों) और उसके एक बहिन हो, तो जो कुछ उसने छोड़ा है उसका आधा उस बहिन का होगा (यदि बहिन) की कोई औलाद न हो और वह (भाई) उस बहिन का वारिस होगा। और यदि दो बहिनें हों (या दो से अधिक), तो जो कुछ उसने छोड़ा है उसमें से उनके लिए दो तिहाई होगा और यदि कई भाई-बहिन (वारिस) हैं, तो एक पुरुष का हिस्सा दो स्त्रियों के बराबर होगा। अल्लाह तुम्हारे लिए ये आदेश खोलकर बयान करता है, ताकि तुम भटकते न फिरो। और अल्लाह हर चीज़ का जाननेवाला है। (सूरा-4, अन-निसा, आयत-176)

दादी की मीरास :

सहीह हदीस में आया है कि दादी को छटा भाग मिलेगा। (देखिए : अबू दाऊद, 2894 तथा तिरमिज़ी 2101 तथा इब्ने-माजा, 2724 सनद सहीह है।)

मीरास के बारे में यहाँ बहुत ही संक्षेप में कुछ बयान किया गया है और केवल आयतों की ओर ही संकेत कर दिया गया है, जिनसे बदलती हुई दशा के अनुसार मीरास निश्चित की गई है। अधिक जानकारी के लिए मेरी पुस्तक 'नबी (ﷺ) के फ़ैसले' देखें।

मिस्र

मिस्र, जिसको Egypt भी कहते हैं, इबरानी भाषा 'मिस्राएम' से बना है। जो नूह के पुत्र 'हाम' का बेटा था। मिस्र का इतिहास लगभग 5000 पूर्व मसीह से प्रारम्भ होता है। इनके पत्थरों पर जो चित्र पाए जाते हैं वे मोहनजोदाड़ो के पत्थरों पर बने चित्रों के समान हैं। ऐसा लगता है कि दोनों जातियाँ अपने विचारों को प्रकट करने के लिए पशुओं के चित्र बनाया करती थीं, जिसको मिस्री 'हीरोगिलीफ़ी' भाषा का नाम देते थे। प्राचीन काल में मिस्रियों में अन्धविश्वास बहुत अधिक फैला हुआ था, इसलिए उन्होंने सूर्य, चाँद तथा इसी प्रकार की दूसरी चीज़ों और नक्षत्रों को देवी-देवता बना लिया था। सूर्य को 'राअ', पृथ्वी को 'जब' कहते थे और उनकी पूजा किया करते थे। उनका विचार था कि शव को भी जीवित रहनेवालों की तरह खाने-पीने, सेवक तथा बर्तन इत्यादि की आवश्यकता होती है। इसलिए वे शवों को पृथ्वी में दफ़न नहीं करते थे, बल्कि कमरे बनाकर उनमें रख देते थे और उसी के साथ बर्तन, वस्त्र इत्यादि वस्तुएँ भी रख देते थे ताकि मृतक अपनी आवश्यकतानुसार उनका प्रयोग कर सके। मिस्रियों का विश्वास था कि रूह (आत्मा) मुर्दे के शरीर में दोबारा वापस आती है। इसलिए उन्होंने शरीर को गलने से बचाने के लिए विभिन्न प्रकार के हुनूत (लेपों) का आविष्कार कर लिया था। अहराम (पिरामिड) में जो मुर्दे मिले हैं, वे लगभग पाँच हज़ार वर्ष पूर्व के हैं। और हुनूत (लेपों) के कारण उनका शरीर अब भी बाक़ी है। परन्तु ये सब पुरानी बातें हैं। अब वे मुसलमान हैं और इन अन्धविश्वासों पर विश्वास नहीं करते हैं। मिस्र में चूँकि नबियों के साथ असंख्य घटनाएँ घटी हैं। इसलिए क़ुरआन तथा सहीह हदीसों में मिस्र का बार-बार वर्णन आया है, इबराहीम (عليه السلام) हिजरत करके मिस्र पहुँचे तो पता चला कि वहाँ का राजा बहुत अत्याचारी है। सुन्दर स्त्रियों को हर लेता है। इसलिए उसने इबराहीम की पत्नी सारा को हर लिया। परन्तु अल्लाह ने यह चमत्कार दिखाया कि वह उनके निकट नहीं जा पाया, यहाँ तक कि एक सेविका हाजरा को सारा के साथ इबराहीम के पास वापस कर दिया और यही वे हाजरा हैं जिनके पेट से इसमाईल (عليه السلام) ने जन्म लिया और उन्हीं के वंश में नबी मुहम्मद (ﷺ) ने जन्म लिया और अल्लाह ने आपको अन्तिम नबी बनाया। (देखिए : बुख़ारी, 2217 तथा मुस्लिम, 2371)
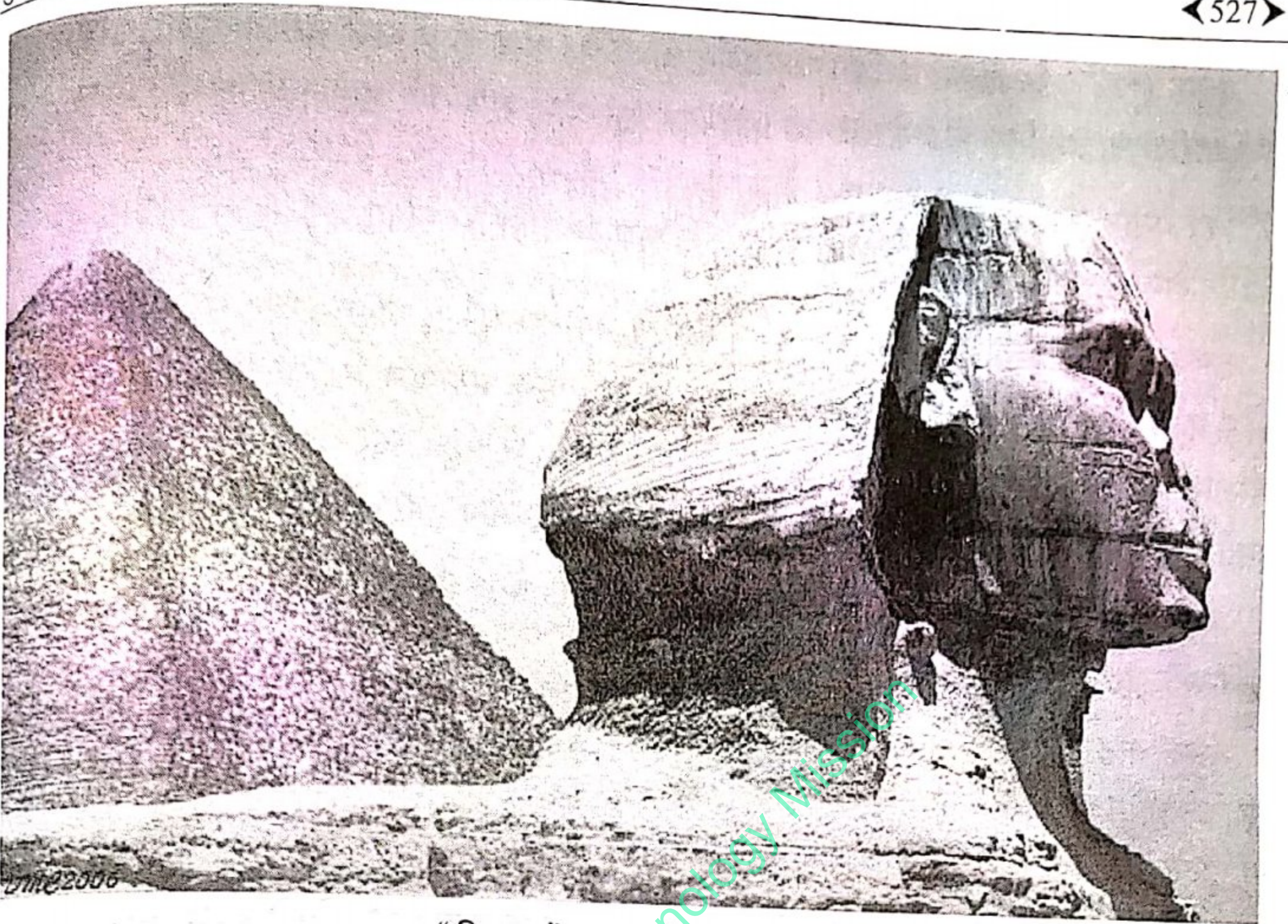
"मिस्र में अबल होल का चित्र"

"एहराम का चित्र"

यूसुफ़ (ﷺ) के क़िस्से में मिस्र का वर्णन आता है। मिस्र ही में उन्हें बेचा गया था, और जिसने उन्हें ख़रीदा था वह मिस्र ही का राजा था। (देखिए : क़ुरआन, सूरा–12, यूसुफ़, आयत–21)

फिर यूसुफ़ (ﷺ) के माता-पिता मिस्र आते हैं और यूसुफ़ (ﷺ) उनको ऊँचे स्थान पर बिठाते हैं। (देखिए : क़ुरआन, सूरा–12, यूसुफ़, आयत–99)

इसके पश्चात् याक़ूब (ﷺ) की संतान अर्थात बनी-इसराईल, लगभग तीन सौ वर्ष मिस्र में रही और मूसा (ﷺ) के साथ वहाँ से निकलकर सीना नामक मरुस्थल में, जो मिस्र ही का भाग है, चालीस वर्ष व्यतीत करते हैं। नबी (ﷺ) ने हिजरी सन 9 में बहुत सारे राजाओं के नाम पत्र लिखे। इन्हीं राजाओं में मिस्र का राजा 'मुक़ौकिस' भी था, जिसको आप (ﷺ) ने यह पत्र लिखा –

''मुहम्मद, अल्लाह के बन्दे और रसूल, की ओर से मिस्र के सम्राट् मुक़ौकिस के नाम; उसपर सलामती हो, जो सत्य धर्म ग्रहण करे।

इसके बाद मैं तुम्हें इस्लाम ग्रहण करने का संदेश देता हूँ। अगर इस्लाम ग्रहण कर लोगे तो तुम सुरक्षित रहोगे और अल्लाह तुम्हारे सवाब (पुण्य) को दुगुना कर देगा और अगर तुमने इनकार किया तो तुमपर क़िब्तियों (अर्थात् मिस्रियों) का पाप होगा।'' फिर क़ुरआन की निम्न आयत लिखी –

«ऐ अहले-किताब! आइए, एक ऐसी बात पर समझौता कर लें, जिसे हमारे और तुम्हारे बीच समान रूप से मान्यता प्राप्त है, यह कि हम अल्लाह के अतिरिक्त किसी की बन्दगी न करें, और न उसके साथ किसी को साझी ठहराएँ और न हममें से कोई परस्पर एक-दूसरे को अल्लाह से हटकर 'रब' बनाए। परन्तु यदि वे इन बातों से मुँह मोड़ें तो कह दो : साक्षी रहो, हम तो मुसलमान (अर्थात् अल्लाह के आज्ञाकारी) हैं।»'' (सूरा 3, आले-इमरान, आयत 64)

मजूस

मजूस का वर्णन क़ुरआन में केवल एक बार हुआ है –

«जो लोग ईमान लाए और जो यहूदी बने और साबिई और ईसाई और मजूस और जिन लोगों ने शिर्क किया–इन सबके बीच क़ियामत के दिन अल्लाह निर्णय कर देगा। निस्सन्देह हर चीज़ अल्लाह की दृष्टि में है।» (सूरा–22, अल-हज, आयत–17)

अधिकतर विद्वानों ने मजूस का अर्थ अग्नि पूजक बताया है। इनको पारसी भी कहते हैं। इनका सम्बन्ध ईरान से था। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में इनमें पैग़म्बरी का दावा करनेवाले व्यक्ति ज़रदुश्त पैदा हुआ, जिसने दो ख़ुदाओं का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। एक भलाई का ख़ुदा यज़दाँ और दूसरा बुराई का ख़ुदा जिसे अहरमन कहा गया। इनका धर्मशास्त्र दसातीर है। जब ईरान में इस्लाम का प्रकाश फैला तो मजूसियों द्वारा फैलाया गया अंधकार मिट गया। अब पारसी बहुत थोड़ी संख्या में भारत में पाए जाते हैं।

क़ुरआन की इस आयत में बताया गया है कि ये छः समुदाय यानी ईमानवाले, यहूदी, साबिई, नसारा, मजूस तथा मुशरिक अब तक आपस में सत्य के विषय में लड़ रहे हैं। अब क़ियामत के दिन ही अल्लाह निर्णय करेगा कि कौन सत्य-मार्ग पर है। इस आयत में संसार में पाए जानेवाले धर्मों को छः भागों में विभाजित किया है। धार्मिक इतिहास के पाठकों के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण विषय है। उसके आधार पर वे इसपर रिसर्च कर सकते हैं। इस्लामी धर्मशास्त्र में मजूसियों के साथ वही बर्ताव किया जाएगा जैसा मुशरिकों से किया जाता है। परन्तु जिज़या के विषय में वे अहले-किताब की तरह हैं, जैसा कि सहीह हदीसों में आया है।

मदयन

इबराहीम (عليه السلام) की एक पत्नी का नाम क़तूरा था, जिससे छः बच्चे पैदा हुए। उनमें से एक बच्चे का नाम मिदयान था और इसी मिदयान की औलाद अक़बा नामक खाड़ी के पूर्व में फैल गई और इस पूरे क्षेत्र को मदयन कहा जाने लगा। इनको अस्हाबे-ऐका अर्थात् बागवाले भी कहते हैं।

क़ुरआन में मदयन का वर्णन दो बातों के लिए हुआ है। एक यह कि मद्यन की ओर शुऐब (عليه السلام) को अल्लाह ने अपना नबी बनाकर भेजा था। (देखिए: सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–85, सूरा–11, हूद, आयत–84, सूरा–29, अल-अनकबूत, आयत–36)

दूसरी बात यह कि जब मूसा (عليه السلام) ने एक मिस्री को क़त्ल कर दिया तो पकड़े जाने के भय से वे मिस्र से भागकर मदयन चले गए। (देखिए: सूरा–20, ता-हा, आयत–40, सूरा–28, अल-कसस, आयत–22)

जब बनी-इसराईल फ़िलस्तीन में बस गए तो मदयनवालों के साथ उनकी बार-बार झड़प होती रहती थी। एक बार मदयनवालों ने बनी-इसराईल को सात वर्ष तक अपनी क़ैद में रखा। फिर उनके एक न्यायाधीश ने, जिसका नाम जीदान था, उन्हें क़ैद से छुड़ाया।

मदयन के लोग खेती-बाड़ी के साथ-साथ व्यापार भी करते थे। इसलिए उनके व्यापारिक काफ़िले मिस्र, इराक़, यमन वग़ैरह तक घूमते फिरते थे। मदयन के लोग नाप-तौल में कमी किया करते थे, जिसके कारण नबी शुऐब (عليه السلام) ने उनको टोका और ऐसा करने से मना किया। (देखिए: सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–85)

परन्तु कुछ लोगों ने शुऐब (عليه السلام) को यह धमकी दी कि अगर तुमने हमारे देवी-देवताओं के विरुद्ध बोलना बन्द नहीं किया और हमारी नाप-तौल में कमी की निन्दा करते रहे तो हम तुम्हें और तुम्हारे अनुयायियों को अपने क्षेत्र अर्थात् मदयन से निकाल देंगे। इसपर अल्लाह के अज़ाब ने उन्हें आ पकड़ा। वह एक दिल दहला देनेवाली आपदा थी, जिसके कारण वे अपने घरों में औंधे पड़े रह गए। (देखिए: सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–91)

मरवा

मरवा एक छोटी-सी पहाड़ी का नाम है, जो काबा से लगभग तीन सौ मीटर के फ़ासले पर है। क़ुरआन में इसका वर्णन केवल एक बार आया है –

«निस्संदेह सफ़ा तथा मरवा अल्लाह की विशेष निशानियों में से हैं। इसलिए जो इस घर (काबा) का हज या उमरा करे उसके लिए इसमें कोई दोष नहीं कि वह दोनों (पहाड़ियों) के बीच सई करे।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–158)

सई का अर्थ है कोशिश करना। हज और उमरे की सई से अभिप्राय वह दौड़ है जो सफ़ा तथा मरवा के बीच की जाती है। यह सई एक प्राचीन घटना की याद ताज़ा करने के लिए की जाती है। वह घटना यह है कि जब इबराहीम (عليه السلام) अपनी पत्नी 'हाजरा' और पुत्र इसमाईल (عليه السلام) को मक्का में छोड़कर चले गए जो उस समय एक रेगिस्तान था। न कोई वहाँ रहता था और न खाने-पीने की कोई सामग्री मिलती थी। हाजरा के पास जो कुछ था, समाप्त हो गया और उनको तथा उनके पुत्र इसमाईल (عليه السلام) को प्यास लगी तो हाजरा निकट की पहाड़ी सफ़ा पर चढ़ गईं ताकि इधर-उधर देखें कि कोई है या नहीं, जब कोई नहीं दिखा तो घाटी में दौड़ती हुई दूसरी पहाड़ी, जिसको मरवा कहते हैं, पर चढ़ गईं और इसी प्रकार सात बार सफ़ा से मरवा तक और मरवा से सफ़ा तक चक्कर लगाए। नबी (ﷺ) ने फ़रमाया, "इसी की याद में हम सफ़ा तथा मरवा के बीच सई करते हैं।"

इतने में हाजरा ने एक आवाज़ सुनी और चौंक पड़ीं। उन्होंने दोबारा वही आवाज़ सुनी। सहसा उन्होंने देखा कि एक फ़रिश्ता अपने पैरों या परों को पृथ्वी पर मार रहा है। देखते-देखते उस स्थान से पानी का सोता फूट पड़ा, जिसको ज़मज़म कहते हैं। हाजरा और उनके पुत्र ने जी भर कर ज़मज़म का पानी पिया, और फ़रिश्ते ने उनको धीरज बंधाया कि आप चिन्तित और परेशान न हों। यह बालक अपने पिता के साथ मिलकर यहाँ अल्लाह का घर बनाएगा। (देखिए: सहीह बुख़ारी, 3364)

सफ़ा और मरवा के बीच लगभग दो फ़र्लांग की दूरी है।

मजमउल-बहरैन

'मजमउल-बहरैन' अर्थात् दो समुद्रों का संगम। इस संगम का वर्णन मूसा (عليه السلام) के क़िस्से में आया है। जब वे अल्लाह के एक भक्त से मिलने के लिए निकल पड़ते हैं –

«जब मूसा ने अपने सेवक से कहा, "मैं तो चलता ही रहूँगा, यहाँ तक कि दो समुद्रों के संगम पर पहुँच जाऊँ। चाहे मुझे वर्षों चलना पड़े।"» (सूरा–18, अल-कहफ़, आयत–60)

इन दो समुद्रों का संगम कहाँ है? विद्वानों ने जो विचार प्रकट किए हैं, उनमें अधिक सही वह विचार है जिसके अनुसार यह कहा जा सकता है कि यह संगम रेगिस्तान सीना का दक्षिणी भाग है, जहाँ अक़बा नामक खाड़ी तथा सुवेस नामक खाड़ी आपस में मिलती हैं और फिर दोनों लाल सागर में विलीन हो जाती हैं। और यह घटना उस समय की है जब बनी-इसराईल रेगिस्तान सीना में रहने लगे थे तो एक दिन मूसा (عليه السلام) भाषण देने खड़े हुए तो आप से पूछा गया, ''सबसे बड़ा ज्ञानी कौन है?'' तो आपने कहा, ''मैं।'' यह बात अल्लाह को पसन्द नहीं आई और उसने कहा, ''तुम से अधिक ज्ञानी मेरा एक भक्त मजमउल बहरैन मैं है। तुम उसके पास जाओ। (अधिक जानकारी के लिए देखें बुख़ारी 4726,4727)'' (विस्तृत जानकारी के लिए देखिए : मूसा)

मुहारबा

देखिए : 'संघर्ष'।

मध्य-मार्ग

'मध्यम' शब्द अरबी शब्द 'वस्त' का अनुवाद है, जिसका एक अर्थ उत्तम भी आता है और उत्तम में भी 'मध्यम' का अर्थ पाया जाता है। इसलिए कहा गया कि तुम एक मध्यम अर्थात् उत्तम समुदाय हो।

«इसी प्रकार हमने तुम्हें बीच का एक उत्तम समुदाय बनाया, ताकि तुम सारे मनुष्यों पर गवाह हो, और रसूल तुमपर गवाह हो।» (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–143)

इस्लाम की असंख्य विशेषताओं में से एक विशेषता यह भी है कि यह मध्यमार्गी धर्म है–

इस्लाम से पूर्व अहले-किताब, विशेषकर ईसाइयों ने धर्म में विभिन्न प्रकार के विचारों को दाख़िल कर दिया था और फिर उसपर अमल करते हुए अतिक्रमण कर बैठे जिसकी ओर संकेत करके क़ुरआन में कहा गया है–

«कह दो, ऐ किताबवालो! अपने धर्म में नाहक़ हद से न बढ़ जाओ। और उन लोगों की इच्छाओं का पालन न करो जो इससे पहले स्वयं पथभ्रष्ट हुए, और बहुतों को पथभ्रष्ट किया, और सीधे मार्ग से भटक गए।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–77)

«ऐ किताबवालो! अपने धर्म में हद से न बढ़ो, और अल्लाह के बारे में सत्य के सिवा कुछ न कहो। मसीह, मरयम का पुत्र, इसके सिवा कुछ नहीं कि अल्लाह का रसूल और एक कलमा है, जिसे उसने मरयम की ओर डाल दिया, और उसकी ओर से एक

आत्मा है। तो तुम अल्लाह और उसके रसूलों पर ईमान लाओ, और यह न कहो कि तीन हैं। इससे रुक जाओ तो तुम्हारे लिए अच्छा है। अल्लाह तो केवल अकेला इलाह (पूज्य) है।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–171)

यहाँ कलमा से अभिप्राय अरबी शब्द कुन है जिसके द्वारा अल्लाह ने इस पूरी कायनात की सृष्टि की। 'कुन' का अर्थ है 'हो जा'। अल्लाह को यह शक्ति प्राप्त है कि वह किसी काम के बारे में कहता है कुन (हो जा) तो काम तुरन्त हो जाता है। 'आत्मा' से अभिप्रेत वह फूँक है जिसे जिबरील (ﷺ) ने अल्लाह के आदेश से मरयम की ओर फूँका। यहीं से धोखा खाकर ईसाइयों ने मसीह (ﷺ) को अल्लाह का बेटा बना दिया, जबकि इंजीलों में जो बाप और बेटे के विषय में आया है वह वास्तव में अल्लाह और बन्दे के आपस के सम्बन्ध की उपमा है। न कि वास्तव में बाप के वीर्य से बेटे के पैदा होने के अर्थ में। अल्लाह के विषय में प्राचीन काल से ही लोग अतिशयोक्ति और अतिक्रमण का शिकार हैं। कोई कहता था कि अल्लाह निर्गुण है। न वह सुनता है न देखता है, न चलता है न बोलता है, न ऊपर है न नीचे है, न आगे है न पीछे है, न दाएँ है न बाएँ है। वह तो एक काल्पनिक शक्ति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। और किसी ने उसे तीन भागों में बाँट दिया और कहा कि वह तीन में एक है, और एक में तीन। और किसी ने उसके गुणों के आधार पर उसे अलग अलग देवी-देवता बना डाला, जो तैंतीस से 33 करोड़ बन गए। और कहा कि ये देवी-देवता और सृष्टि उसी की विभूति (ज़ुहूर) हैं। इस प्रकार एकेश्वरवाद की शुद्ध अवधारणा ही लुप्त हो गई। क़ुरआन चूँकि अल्लाह का अन्तिम धर्मशास्त्र है, इसलिए इसने इन ग़लत अवधारणाओं का विभिन्न प्रकार से खंडन करते हुए तौहीद (एकेश्वरवाद) की सही अवधारणा (अक़ीदा) प्रस्तुत की।

आप ध्यानपूर्वक केवल सूरा–112, अल-इख़लास, का अध्ययन कर लें, जिसमें केवल चार आयतें हैं, तो अल्लाह की महिमा, और उसके एकत्त्व का सही बोध हो जाएगा–

«कह दो : अल्लाह तो एक ही है, अल्लाह निरपेक्ष (एवं सर्वाधार) है, न किसी का बाप है, न किसी का बेटा है और न कोई उसके बराबर है।» (सूरा–112, अल-इख़लास, आयतें–1-4)

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि इस्लाम सम्पूर्ण जीवन के लिए संविधान देता है। इसलिए उसकी शिक्षाओं में मध्यमार्गीय पक्ष प्रभावी है।

नबी (ﷺ) के जीवन-चरित्र में भी इसी मध्यमार्ग की झलक मिलती है। एक सहीह हदीस में आया है कि–

"जब नबी (ﷺ) को किन्हीं दो समस्याओं में से एक को ग्रहण करने का अधिकार दिया जाता तो जो सबसे आसान होता आप उसको ग्रहण करते, अगर उसको करने में कोई पाप न होता

और अगर पाप होता तो आप (ﷺ) उससे सर्वाधिक दूर रहनेवालों में से होते। नबी (ﷺ) ने कभी अपने लिए किसी से बदला नहीं लिया। लेकिन अगर कोई अल्लाह द्वारा निर्धारित सीमाओं को तोड़ता तो आप (ﷺ) अल्लाह के लिए अवश्य सज़ा देते।" (बुख़ारी, 3560 तथा मुस्लिम, 2327)

एक दूसरी सहीह हदीस में फ़रमाया–

"अल्लाह ने मुझे अध्यापक बनाकर और आसानी पैदा करनेवाला बनाकर भेजा है।" (सहीह मुस्लिम, 1478)

जब नबी (ﷺ) किसी को गवर्नर या अधिकारी बनाकर भेजते तो उसको आसानी पैदा करने का आदेश देते। जैसे अबू-मूसा तथा मुआज़ को यमन भेजते हुए आप (ﷺ) ने फ़रमाया–

"आसानी पैदा करो कठोरता नहीं, शुभ सूचनाएँ सुनाओ, घृणा न दिलाओ।" (बुख़ारी 4341 तथा मुस्लिम 1733)

❋ इबादत में मध्यमार्ग अपनाना–

अल्लाह ने मनुष्य को अपनी बन्दगी के लिए पैदा किया है। क़ुरआन में है –

«मैंने जिन्नों और इनसानों को इसलिए पैदा किया कि वे केवल मेरी ही बन्दगी करें।» (सूरा–51, अज़-ज़ारियात, आयत–56)

अर्थात् किसी और की बन्दगी के लिए नहीं पैदा किया। यहाँ इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि अल्लाह की यह इच्छा नैसर्गिक है कि बन्दों से अपनी इबादत चाहता है। इसका सम्बन्ध बलात् इच्छा से नहीं है, क्योंकि अगर यह बलात् इच्छा होती तो उसकी बन्दगी करना तथा उसके आज्ञा पालन के लिए विवश हो जाना पड़ता, जैसे फ़रिश्तों के विषय में आया है–

«ऐ ईमानवालो! तुम स्वयं अपने को तथा अपने परिवार को उस आग से बचाओ, जिसका ईंधन मनुष्य तथा पत्थर होंगे। जिसपर कठोर हृदयवाले शक्तिशाली फ़रिश्ते नियुक्त हैं, जो अल्लाह के आदेश की अवहेलना नहीं करते, और उनको जो आदेश दिया जाता है उसका पालन करते हैं।» (सूरा–66, अत-तहरीम, आयत–6)

क्योंकि अल्लाह की बलात् इच्छा पूरी हो कर रहती है–

«वह आकाशों तथा धरती का सृष्टिकर्ता है। वह जिस कार्य का निर्णय करता है कह देता है, हो जा, वह हो जाता है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–117)

परन्तु उसने अपनी इच्छा के पालन में मनुष्य को स्वतंत्रता दी है, और इसी स्वतंत्रता के कारण क़ियामत में उसका हिसाब होगा।

चूँकि मनुष्य को इस संसार का निर्माण भी करना है, इसलिए अल्लाह ने उससे अपनी बन्दगी अपनी इच्छानुसार चाही, और हद से बढ़ने से मना किया–

«रहा संन्यास, तो उसे उन्होंने स्वयं घड़ा था। हमने उसे उनके लिए अनिवार्य नहीं किया था, यदि अनिवार्य की थी तो केवल अल्लाह की प्रसन्नता की चाहत। फिर वे उसका निर्वाह न कर सके, जैसा कि उसका निर्वाह करना चाहिए था।» (सूरा–57, अल-हदीद, आयत–27)

इसलिए इस्लाम ने जहाँ दूसरे आदेशों में मध्यमार्ग को अपनाए रखा है, वहीं अल्लाह की इबादत में भी वह उसी को अपनाने का आदेश देता है।

एक सहीह हदीस में आया है–

''तीन व्यक्ति नबी (ﷺ) के घर आए। उन्होंने नबी (ﷺ) की इबादत के विषय में पूछा। जो उनको बताया गया उन्होंने उसे बहुत कम समझा और कहा, ''हम नबी (ﷺ) की श्रेणी तक कैसे पहुँच सकते हैं। अल्लाह ने तो आप (ﷺ) के पिछले और भविष्य में होनेवाले सारे गुनाहों को क्षमा कर दिया है।'' फिर उनमें से एक ने कहा, ''मैं तो सदैव पूरी रात नमाज़ पढ़ूँगा।'' दूसरे ने कहा, ''मैं सदैव रोज़े (उपवास) रखूँगा।'' तीसरे ने कहा, ''मैं स्त्रियों से दूर रहूँगा, कभी विवाह नहीं करूँगा।''

जब नबी (ﷺ) घर आए और आपको उनकी बातों की सूचना दी गई तो आप (ﷺ) ने फ़रमाया–

''क्या तुम लोगों ने ऐसा-ऐसा कहा? अल्लाह की क़सम मैं तुममें सबसे अधिक अल्लाह से डरनेवाला हूँ, लेकिन मैं रोज़े (उपवास) भी रखता हूँ और छोड़ भी देता हूँ। रात में नमाज़ें भी पढ़ता हूँ और सोता भी हूँ और विवाह भी करता हूँ, तो जो मेरे मार्ग से हटेगा वह हममें से नहीं।'' (बुख़ारी, 5063 तथा मुस्लिम 1401)

❀ जीवन व्यवहार में मध्यमार्ग पर चलना

1. खाने-पीने में मध्यमार्ग अपनाना –

क़ुरआन में है –

«ऐ आदम की संतान! इबादत के प्रत्येक अवसर पर अपनी शोभा का वस्त्र धारण करो, और खाओ और पियो, परन्तु हद से आगे न बढ़ो, निस्सन्देह अल्लाह हद से आगे बढ़नेवालों से प्रेम नहीं करता।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–31)

«जब ये (पेड़) फलें तो इनका फल खाओ, और फ़सल की कटाई के दिन इसका हक़ अदा करो। और हद से आगे न बढ़ो, निस्सन्देह वह हद से आगे बढ़नेवालों को पसन्द नहीं करता।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–141)

2. दान-पुण्य में मध्यमार्ग–

«जो ख़र्च करते हैं तो न हद से बढ़ जाते हैं, और न तंगी से काम लेते हैं। बल्कि दोनों के बीच मध्यमार्ग पर रहते हैं।» (सूरा–25, अल-फ़ुरक़ान, आयत–67)

अल्लाह के आदेश के अनुसार अल्लाह के मार्ग में ख़र्च करना उत्तम है, परन्तु हद से बढ़ जाने में असंख्य समस्याएँ पैदा हो सकती हैं। इसी की ओर एक दूसरे स्थान पर इस प्रकार कहा गया है–

«अपना हाथ न तो अपनी गरदन से बाँधे रखो (कि किसी को कुछ न दो) और न उसे बिलकुल खुला छोड़ दो, जिसके कारण निन्दित और पछताते हुए बैठ जाओ।» (सूरा–17, बनी इसराईल, आयत–29)

3. बदला लेने में मध्यमार्ग–

«बुराई का बदला उसी जैसी बुराई है, परन्तु जो क्षमा कर दे और समझौता कर ले, तो उसका बदला अल्लाह देगा। निस्संदेह वह अत्याचारियों को पसन्द नहीं करता।» (सूरा–42, अश-शूरा, आयत–40)

अर्थात् अगर किसी पर अत्याचार किया गया हो तो उसको अनुमति है कि उसका बदला ले, परन्तु इसमें हद से नहीं बढ़ना चाहिए, बल्कि मध्यमार्ग अपनाते हुए उसपर जितना अत्याचार किया गया है उतना ही बदला ले, और अगर क्षमा कर दे तो यह बहुत ही अच्छा है।

«यदि तुम बदला लो तो बिलकुल उतना ही जितना तुम्हें कष्ट पहुँचा हो। परन्तु यदि धैर्य रखो तो निश्चय ही धैर्यवानों के लिए ज़्यादा अच्छा है।» (सूरा–16, अन-नह्ल, आयत–126)

अर्थात् तुमपर जो अत्याचार हुआ है उसका बदला ले सकते हो, परन्तु उतना ही जितना तुम्हें कष्ट पहुँचाया गया। अगर तुमने उससे अधिक बदला लिया तो तुम अत्याचारी बन जाओगे।

यह प्राचीनकाल के बदलों की ओर संकेत है। जो एक के बदले दस या उससे अधिक लोगों को मारते थे।

एक दूसरे स्थान पर आया है–

«जो व्यक्ति निर्दोष मारा जाए, हमने उसके उत्तराधिकारी को अधिकार दिया है (कि वह बदला ले), परन्तु उसे चाहिए कि हत्या करने में हद से न बढ़े। निस्सन्देह उसकी सहायता की जाएगी।» (सूरा–17, बनी इसराईल, आयत–33)

अर्थात् एक के स्थान पर दो-तीन या दस-दस लोगों को क़त्ल न करे और न ही यातना दे, और सर्वोत्तम बात तो यह है कि क्षमा कर दे, या समझौता कर ले। यही मध्यमार्ग है।

4. ग़ैर-मुस्लिमों के साथ मध्यम व्यवहार–

इस्लाम शान्ति प्रदान करनेवाला धर्म है। इसी लिए अल्लाह ने मुहम्मद (ﷺ) को रहमतुल्लिलआलमीन (सारे संसार के लिए दयानिधि) बनाकर भेजा। आप (ﷺ) ने मक्का विजय होने के बाद अपने उन शत्रुओं को भी माफ़ कर दिया जो आपको क़त्ल करने का षडयंत्र रच रहे थे और जिनके कारण आपको मक्का से हिजरत (देश-त्याग) करनी पड़ी। आप (ﷺ) ने एक से अधिक अवसरों पर अपने शत्रुओं को क्षमा कर दिया, जिससे आपके जीवन-चरित्र की महानता के रूप को देखा जा सकता है।

कुरआन भी इस बात की पुष्टि करता है कि ग़ैर-मुस्लिमों के साथ अच्छा बर्ताव किया जाए–

«जिन लोगों ने तुमसे धर्म के विषय में युद्ध नहीं किया तथा तुम्हें देश से नहीं निकाला उनके साथ अच्छा व्यवहार करने और उनके साथ न्याय करने से अल्लाह तुम्हें नहीं रोकता। अल्लाह न्याय करनेवालों से प्रेम करता है।» (सूरा–60, अल-मुम्तहिना, आयत–8)

यहाँ तक कि अगर कोई मुसलमान हो जाए और उसके माता-पिता विधर्मी ही रह जाएँ तो भी उनके साथ अच्छा व्यवहार करने का आदेश है–

«यदि वे तुझपर दबाव डालें कि तू किसी को मेरा साझी बना, जिसका तुझे कुछ भी ज्ञान नहीं तो उनका कहना न मानना, और दुनिया में उनके संग अच्छा व्यवहार करना।» (सूरा–31, लुक़मान, आयत–15)

सार यह कि न तो सारे ग़ैर-मुस्लिम हमारे शत्रु हैं, न हम उनके शत्रु हैं, बल्कि वे तो इस्लामी संदेश के प्रथम संबोधित हैं, और हम पर यह बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है कि उन तक सही इस्लामी संदेश पहुँचाएँ।

रह गया ग़ैर-मुस्लिम के विरुद्ध जिहाद तो यह वास्तव में मानव-समाज से उपद्रव, अत्याचार और अन्याय को मिटाने के लिए है न कि उपद्रव फैलाने के लिए–

«निस्सन्देह अल्लाह न्याय और भलाई करने, और नातेदारों को (उनका हक़) देने का हुक्म देता है। और निर्लज्जता के कर्मों तथा बुराई और सरकशी से रोकता है। वह तुम्हें सदुपदेश देता है, ताकि तुम ध्यान दो।» (सूरा–16, अन-नह्ल, आयत–90)

आप जिहाद का मुक़ाबला परमाणु युग के युद्धों से करके देख लें जिनमें पलक झपकते पचासों हज़ार स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े मारे जाते हैं। इस्लाम कदापि इसकी इजाज़त नहीं देता। नबी (ﷺ) ने कुछ ही वर्षों में पूरे अरब देशों में यमन से इराक़ तक शान्ति स्थापित कर दी। इसलिए जिहाद को उपद्रव कहनेवाले क़ुरआन का अध्ययन करें। वे दुनिया में शान्ति स्थापित करने के नाम पर जो कुछ कर रहे हैं, उससे अशान्ति ही फैल रही है। शान्ति तो शुद्ध हृदयता के साथ निस्वार्थभाव से इस्लामी जीवन-व्यवस्था को लागू करने पर ही स्थापित हो सकती है।

इस प्रकार इस्लाम जीवन के हर क्षेत्र में मध्यमार्ग अपनाने का आदेश देता है और इससे इतर मार्ग को अपनाने से कठोरता से मना करता है, ताकि एक ऐसे समाज का निर्माण किया जा सके, जहाँ मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम और स्वयं मुस्लिम समुदाय के सभी लोग मिल-जुलकर जीवन व्यतीत कर सकें, और किसी को किसी से भय न हो।

इसलिए हर मुसलमान पर अनिवार्य है कि इस मध्यमार्ग को अपनाए, ताकि दूसरों के लिए इस्लाम का उत्तम आदर्श बन सके।

मेंढक

मेंढक पृथ्वी पर और पानी में रहनेवाला एक जीवधारी है। अल्लाह ने फ़िरऔन और उसकी जाति पर जो आपदाएँ भेजीं उनमें मेंढक की आपदा भी थी। मेंढक झुंड के झुंड सारे मिस्र में फैल गए थे। क़ुरआन में है –

«फिर हमने उनपर तूफ़ान, टिड्डियाँ, कुम्मल, मेंढक, रक्त की निशानियाँ प्रत्यक्ष रूप से भेजीं। परन्तु उन्होंने सरकशी ही की और वे थे ही अपराधी लोग।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–133)

बाइबल में मेंढकों की आपदा का बहुत विस्तार से वर्णन आया है। (देखिए: बाइबल, निर्गमन 8:1-14)

मछली

मछली के लिए क़ुरआन में 'हूत' शब्द का प्रयोग हुआ है। यूँ तो अरबी में हूत व्हेल मछली को कहते हैं और दूसरी मछलियों को समक कहते हैं, परन्तु हूत का प्रयोग क़ुरआन में व्हेल और अन्य मछलियों के लिए हुआ है।

✻ व्हेल के अर्थ में प्रयोग :

«निश्चय ही यूनुस नबियों में से था, जब भाग कर भरी नौका के पास पहुँचा। फिर (गोटी में) उसका नाम निकल गया, तो वह पराजित हो गया। तो उसे हूत (अर्थात् व्हेल) ने निगल लिया।» (सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयतें–139-142)

एक दूसरे स्थान पर नबी (ﷺ) को धैर्य रखने के लिए कहा जा रहा है–

«तो तू अपने रब के आदेश पर धैर्य ग्रहण कर और मछलीवाले की तरह न हो जा।» (सूरा–68, अल-क़लम, आयत–48)

यहाँ बताया जा रहा है कि ऐ मुहम्मद! तुम मछलीवाले यूनुस की भाँति न हो जाना, जो अल्लाह के आदेश से पहले ही अपने गाँव से निकल पड़े। (अधिक जानकारी के लिए देखिए : यूनुस)

✻ मछली के अर्थ में प्रयोग :

मूसा (عليه السلام) की कहानी में हूत शब्द का प्रयोग किसी छोटी मछली के लिए ही हुआ है, क्योंकि व्हेल जैसी मछली को तो कोई साथ लेकर नहीं चल सकता।

«जब वे दोनों (अर्थात् मूसा और उनका सेवक) पहुँचे तो दो नदियों के संगम पर अपनी मछली भूल गए, जो नदी में छलांग लगाकर भाग निकली। जब दोनों वहाँ से आगे बढ़े तो मूसा ने अपने सेवक से कहा, "हमारा भोजन लाओ। हम इस यात्रा में बहुत थक गए हैं।" उसने उत्तर दिया, "ज़रा देखिए तो सही जब हम पत्थर से टेक लगाकर विश्राम कर रहे थे तो मैं मछली वहीं भूल गया। वास्तव में शैतान ने मुझे भुला दिया कि मैं आपको यह बता दूँ। वह मछली एक विचित्र रूप से नदी में मार्ग बनाते हुए भाग निकली।"» (सूरा–18, अल-कह्फ़, आयतें–61-63)

मछली एक स्वादिष्ट भोजन है, जिसको अल्लाह ने मनुष्यों के लिए बनाया है। प्राचीन काल से ही लोग मछली का शिकार करते चले आ रहे हैं। परन्तु बनी-इसराईल, जिनके यहाँ शनिवार आराम और इबादत के लिए निर्धारित कर दिया गया था, इस दिन कोई काम करना, जैसे शिकार इत्यादि बिलकुल वर्जित था, परन्तु जब उनपर नैतिक तथा धार्मिक पतन के दिन आए तो वे खुल्लम-खुल्ला इस दिन की मर्यादा भंग करने लगे। क़ुरआन में उनकी एक घटना की ओर संकेत किया गया है–

«उनसे उस बस्ती के विषय में पूछो, जो समुद्र के किनारे पर थी। जबकि वे शनिवार की मर्यादा का उल्लंघन करते थे, जब शनिवार का दिन होता तो मछलियाँ पानी के ऊपर उभर-उभर कर उनके सामने आ जाती थीं, और जब उनके शनिवार का दिन न

होता तो वे उनके पास न आती थीं। इस प्रकार हम उन्हें उनकी नाफ़रमानियों के कारण परीक्षा में डाल रहे थे।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–163)

इस परीक्षा में वे पूरे न उतरे, इसलिए उन्होंने एक बहाना बनाया। वह यह कि समुद्र के किनारे गढ़े खोद देते, जिसमें तैरती हुई मछलियाँ आकर फँस जातीं और जब शनिवार का दिन बीत जाता तो उनको पकड़ लेते।

मच्छर

मच्छर एक तुच्छ जीव है। इसकी तुच्छता की उपमा दी जाती है। बाइबल में है कि ईसा (عليه السلام) ने फ़रीसियों के विषय में कहा था,

"ऐ अंधे अगुओ, तुम मच्छर को छानते हो, और ऊँट निगल जाते हो।" (मत्ता, 23:24)

क़ुरआन में भी केवल एक बार इसका वर्णन उपमा ही के रूप में हुआ है–

«वास्तव में अल्लाह किसी उपमा का वर्णन करने से शरमाता नहीं चाहे वह मच्छर ही क्यों न हो, या उससे भी तुच्छ कोई चीज़ हो।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–26)

मक्का के इस्लाम-विरोधियों ने यह कहकर क़ुरआन का इनकार कर दिया कि अगर यह अल्लाह का कलाम (ईशवाणी) है, तो ऐसे महाशास्त्र में मच्छर तथा मक्खियों जैसे तुच्छ कीड़े-मकोड़ों का उल्लेख क्यों किया गया है?

इसपर अल्लाह फ़रमाता है कि उदाहरण के लिए मच्छर जैसे तुच्छ जीव (कीड़े) के उल्लेख से अल्लाह नहीं शरमाता। क्योंकि उद्देश्य तो बात को समझाना है। अगर इसके लिए मच्छर का प्रयोग करना पड़ जाए, तो इसमें शरमाने की क्या बात है ?

वास्तव में इस्लाम-विरोधियों को तो क़ुरआन का इनकार करना था और लोगों को उसपर ईमान लाने से रोकना था, इस लिए उन्होंने इस प्रकार के हीले-बहाने तलाश करने शुरू कर दिए थे।

मक्खी

मक्खी बहुत ही तुच्छ कीड़े-मकोड़ों में से एक है। अधिकतर पूर्वी देशों में, जहाँ गर्मी अधिक पड़ती है, यह पाई जाती है। जहाँ यह लोगों को परेशान करती है, वहीं इसकी कुछ क़िस्में ज़हरीली भी होती हैं।

क़ुरआन में एक ही आयत में दो बार इसका वर्णन आया है, और दोनों बार इसकी तुच्छता की उपमा दी गई है–

«ऐ लोगो! एक उदाहरण दिया जा रहा है, जिसको ध्यान से सुनो। अल्लाह के अतिरिक्त तुम जिन-जिन को पुकारते हो, वे एक मक्खी भी तो पैदा नहीं कर सकते, चाहे सारे के सारे एकत्र हो जाएँ, बल्कि मक्खी उनसे कोई चीज़ ले भागे, तो ये तो उससे छीन भी नहीं सकते। माँगनेवाला और जिससे माँगा जाए दोनों ही कितने निर्बल हैं।» (सूरा–22, अल-हज, आयत–73)

जो लोग अल्लाह को छोड़कर किसी देवी, देवता, क़ब्र, ईंट, पत्थर, इत्यादि को अपना ईष्ट-पूज्य और कष्ट निवारक बना बैठे हैं, उनके लिए इस उदाहरण में बड़ी शिक्षा है।

मकड़ी

मकड़ी को अरबी में अनकबूत कहते हैं। क़ुरआन मजीद में इस नाम की एक सूरा भी है, जिसमें कुल उनहत्तर (69) आयतें हैं, और यह मक्का में अवतरित हुई।

प्राचीन काल से कमज़ोर चीज़ का उदाहरण मकड़ी के घर या जाले से दिया जाता रहा है, जो हवा के एक झोंके से नष्ट हो सकता है। इसी प्रकार मनुष्य के सांसारिक जीवन का भी उदाहरण मकड़ी के घर से दिया जाता है, जो किसी समय भी समाप्त हो सकता है। परन्तु क़ुरआन ने मकड़ी के घर की निर्बलता की तुलना शिर्क से की है–

«जिन लोगों ने अल्लाह को छोड़कर अपने दूसरे संरक्षक बना लिए हैं, उनकी मिसाल मकड़ी के समान है, जिसने एक घर बनाया, और सबसे अधिक कमज़ोर घरों में मकड़ी का घर है। काश कि वे लोग इसे जान लेते।» (सूरा–29, अनकबूत, आयत–41)

अल्लाह को छोड़कर किसी और को अपना पूज्य, कार्यसाधक और कठिनाइयों में काम आनेवाला समझना या उसका सहारा लेना ऐसे ही है जैसे मकड़ी के घर को अपना संरक्षक या शरण-स्थल समझना।

यह आयत बहुत व्यापक है, अपने अन्दर बहुत सारे अर्थों को समेटे हुए है। इसी लिए तो इसको पढ़कर अनगिनत लोग एक अल्लाह को माननेवाले (एकेश्वरवादी) हो गए और इस्लाम की शीतल छाया में आ गए।

महापाप

पाप तो सब पाप ही होते हैं, परन्तु उनमें कुछ महापाप होते हैं। महापाप को अरबी भाषा में कबाइर कहा जाता है, जो कबीरा अर्थात 'गुनाहे-कबीरा' का बहुवचन है।

महापाप का परिचय :

हर वह पाप जिसके लिए संसार तथा परलोक में दण्ड निर्धारित हो, या नबी (ﷺ) ने उसको करनेवाले पर लानत की हो, या उसके ईमान को नकार दिया हो, महापाप कहलाता है।

केवल एक सहीह हदीस में महापापों के सात प्रकारों का वर्णन हुआ है। नबी (ﷺ) ने फ़रमाया– "सात विनष्ट करनेवाले कामों से बचो। लोगों ने कहा, "वे क्या हैं, ऐ अल्लाह के रसूल ?" आपने फ़रमाया–

1. अल्लाह के साथ किसी को शरीक करना,
2. जादू करना,
3. अवैध ढंग से किसी की हत्या करना,
4. ब्याज खाना,
5. अनाथ का धन खाना,
6. युद्ध के मैदान से पीठ फेरकर भाग जाना,
7. पाक-साफ़ ईमानवाली स्त्रियों पर लांछन लगाना।" (सहीह बुख़ारी, 2766 तथा सहीह मुस्लिम, 89)

इन्हीं महापापों में एक महापाप यह भी है कि कोई व्यक्ति अपने माता-पिता को लानत (धिक्कार) करे।

लोगों ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल (ﷺ), भला कोई अपने माता-पिता को लानत करता है?" आप (ﷺ) ने फ़रमाया,

"क्यों नहीं, जब कोई व्यक्ति किसी के पिता को लानत करेगा, तो वह भी उसके पिता को लानत करेगा। इसी प्रकार जब कोई किसी की माता को लानत करेगा तो वह भी उसकी माता को लानत करेगा।" (सहीह बुख़ारी, 5973)

इन्हीं महापापों में से यह भी है कि अगर पति अपनी पत्नी को अपनी इच्छापूर्ति के लिए बुलाए, परन्तु वह इसके लिए तैयार न हो, और उसका पति क्रोधित होकर सो जाए, ऐसी पत्नी पर फ़रिश्ते भोर तक लानत भेजते रहते हैं। (देखिए : सहीह बुख़ारी, 5193 तथा सहीह मुस्लिम, 1436)

महापापों में से एक यह भी है कि –

व्यक्ति अपने भाई की ओर हथियार से संकेत करे, अर्थात् डराए। उसपर फ़रिश्ते लानत भेजते हैं, चाहे वह उसका सगा भाई ही क्यों न हो। (देखिए : सहीह मुस्लिम, 2616)

विचार कीजिए कि यदि हथियार से केवल डराना ही महापाप है, तो उसकी हत्या करना कितना बड़ा पाप होगा।

इन्हीं पापों में से एक यह भी है, जिसके बारे में नबी ने फ़रमाया,

"लोगो! दो लानतों से बचो।" लोगों ने पूछा, "वे क्या हैं?"

आप (ﷺ) ने फ़रमाया,

"लोगों के चलने के मार्ग में तथा उस वृक्ष के साए में शौच करना जहाँ लोग विश्राम करते हों।" (देखिए : सहीह मुस्लिम, 269)

अर्थात् जिन कर्मों पर नबी (ﷺ) ने लानत भेजी है, वे सब महापाप हैं। इसलिए एक मुसलमान पर अनिवार्य है कि वह इन महापापों का ज्ञान रखे और इनसे बचने का प्रयत्न करता रहे।

इन महापापों की सूची तो बहुत लम्बी है, परन्तु उनमें से कुछ ये हैं–

झूठी गवाही देना, जुआ खेलना, चोरी करना, डाका डालना, किसी पर अत्याचार करना, पत्नी से योनि के बजाय पीछे (अर्थात) मलद्वार से संभोग करना, रिश्वत लेना, ज्ञान छिपाना, किसी पर उपकार करके जताना, पड़ोसी को कष्ट पहुँचाना इत्यादि।

परन्तु यह बात भी ध्यान में रहनी चाहिए कि किसी व्यक्ति को, जो इनमें से किसी महापाप को कर बैठा हो, लानत नहीं करनी चाहिए। क्योंकि हो सकता है उसने तौबा कर ली हो या उसने कुछ ऐसे कर्म किए हों जिनके कारण उसके बहुत सारे दूसरे गुनाह मिटा दिए गए हों।

इसी प्रकार इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि ये सारे महापाप एक ही श्रेणी के नहीं हैं। कुछ इनमें से ऐसे हैं जिनके करने से सदैव नरक की यातना भुगतनी पड़ेगी। जैसे– अल्लाह के साथ किसी को शरीक करना। ऐसे व्यक्ति को अल्लाह कदापि माफ़ नहीं करेगा जो उसकी सत्ता में किसी को साझी ठहराता है–

«निस्सन्देह अल्लाह इसको क्षमा नहीं करेगा कि उसका साझी ठहराया जाए किन्तु उससे नीचे दर्जे के अपराध को जिसके लिए चाहेगा क्षमा कर देगा।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–48)

«जो कोई अल्लाह के साथ किसी को साझी ठहराएगा, उसपर अल्लाह ने स्वर्ग को हराम कर दिया, और उसका ठिकाना नरक है।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–72)

लुक़मान अपने पुत्र को सदुपदेश देते हुए कहते हैं–

«ऐ मेरे बेटे! अल्लाह के साथ किसी को साझी न ठहराना, साझी ठहराना बहुत बड़ा ज़ुल्म है।» (सूरा–31, लुक़मान, आयत–13)

अरबी भाषा में ज़ुल्म इसको कहते हैं कि किसी चीज़ को उसके वास्तविक स्थान से हटाकर किसी ग़लत स्थान पर रख दिया जाए। इसलिए इससे बड़ा ज़ुल्म और क्या हो सकता है कि जिस अल्लाह ने हमें पैदा किया, जीविका दी, स्वास्थ्य के साथ बड़ा किया, उसको छोड़कर हम किसी और की उपासना करने लगें। उसकी सत्ता में किसी और को साझी बना लें।

महापापों की संख्या के विषय में इब्ने-अब्बास (ﷺ) का विचार है कि इनकी संख्या सत्तर के लगभग है।

महापापों में से इस्लामी धार्मिक कर्तव्यों को समय पर अदा न करना भी है। जैसे नमाज़, ज़कात, हज, रमज़ान के रोज़े इत्यादि। इनको छोड़नेवालों के लिए कठोर यातना है।

जैसे नरकवालों से पूछा जाएगा–

«क्या चीज़ तुम्हें 'सक़र' (नरक) में खींच लाई? वे कहेंगे, ''हम नमाज़ियों में से नहीं थे, और निर्धनों को भोजन नहीं कराते थे, और इधर-उधर की बातें बनानेवालों के साथ हम भी बातें बनाते थे, और हम बदला पाने के दिन को झुठलाते थे, यहाँ तक कि हमें मृत्यु आ गई।'' अब सिफ़ारिश करनेवालों की सिफ़ारिश उनके काम नहीं आएगी।» (सूरा–74, मुद्दस्सिर, आयतें–42-48)

सहीह हदीसों में आया है कि मोमिन और इस्लाम-विरोधियों के बीच जो अन्तर है वह नमाज़ है। (देखिए : सहीह मुस्लिम, 82)

और एक दूसरी हदीस में आया है–

''हमारे और उनके बीच नमाज़ है, जिसने नमाज़ छोड़ी उसने कुफ़्र किया।'' (देखिए : मुस्नद अहमद, 5:346 तथा सुनन)

इसी प्रकार ज़कात न देनेवालों के विषय में आया है–

«जो लोग सोना-चाँदी एकत्र करते हैं, और उन्हें अल्लाह के मार्ग में ख़र्च नहीं करते (अर्थात् ज़कात नहीं देते) उन्हें दुखद यातना की सूचना दे दो।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयत–34)

अर्थात् महापाप दो प्रकार के हैं। एक वे जिनके करने पर कठोर दण्ड है। दूसरे वे जिनके न करने पर कठोर दण्ड है। बाक़ी कुछ ऐसे पाप हैं कि अगर महापापों से बचा जाए तो अल्लाह उनको क्षमा कर देगा–

«जो लोग महापापों तथा अश्लील बातों से बचते हैं, यह अलग बात है कि कोई छोटा पाप संयोगवश हो जाए, तो जान लो कि तुम्हारा 'रब' बहुत अधिक क्षमा करनेवाला है।» (सूरा–53, अन-नज्म, आयत–32)

दूसरी जगह कहा गया है–

«यदि तुम महापापों से बचते रहो, जिनसे तुम्हें रोका जा रहा है, तो हम तुम्हारी छोटी-छोटी बुराइयों को तुमसे दूर कर देंगे, और तुम्हें आदरणीय स्थान में निवास देंगे।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–31)

इस आयत में तो अल्लाह ने महापाप से बचनेवालों के लिए जन्नत की शुभ सूचना दी है, क्योंकि अच्छे काम बुरे कामों के परिणाम को मिटा देते हैं। (देखिए: सूरा–11, हूद, आयत–114)

एक सहीह हदीस में भी आता है–

"पाँच समय की नमाज़ें, एक जुमा से दूसरे जुमा तक तथा एक रमज़ान से दूसरे रमज़ान तक, सब पापों को मिटानेवाली हैं, अगर महापापों से बचा जाए।" (सहीह मुस्लिम 233)

हर मुसलमान पर अनिवार्य है कि वह इन महापापों का ज्ञान रखे, और इनसे बचने का प्रयत्न करे। कहीं अपनी मूर्खता के कारण वह किसी महापाप में न पड़ जाए और अपनी अन्तिम मंज़िल आख़िरत को न गँवा बैठे–

«दुनिया भी गई, और आख़िरत भी। यही खुला हुआ घाटा (हानि) है।» (सूरा–22, अल-हज्ज, आयत–11)

और वे ग़ैर-मुस्लिम जो इस्लाम को आतंकवाद समर्थक धर्म कहते हैं, उनके लिए भी इसमें बड़ी शिक्षा है, अगर वे शिक्षा ग्रहण करें।

मक़ामे-महमूद

यों तो अल्लाह ने नबी मुहम्मद (ﷺ) को बहुत सारी विशेषताएँ प्रदान की हैं, जिनका पूर्ण विवरण असम्भव है। विद्वानों ने इस विषय पर असंख्य पुस्तकें लिखी हैं। इमाम सुयूती की विश्व प्रसिद्ध पुस्तक 'ख़साइस-कुबरा' (महान गुण) है। इन्हीं गुणों में से एक गुण यह है कि नबी (ﷺ) को अल्लाह मक़ामे-महमूद (प्रशंसित उच्चासन) प्रदान करेगा।

क़ुरआन में इसका वर्णन इस प्रकार हुआ है –

«रात के कुछ हिस्से में तहज्जुद की नमाज़ पढ़ा करो, जो आपके लिए है तो नफ़्ल परन्तु निकट है कि आपको आपका रब मक़ामे-महमूद प्रदान करे।» (सूरा–17, बनी इसराईल, आयत-79)

यह मक़ामे-महमूद क्या है? इसका वर्णन सहीह हदीसों में आया है कि यह वह प्रशंसित स्थान है, जहाँ से नबी (ﷺ) क़ियामत के दिन अपने अनुयायियों की शफ़ाअत करेंगे। (देखिए: शफ़ाअत)

होगा यह कि क़ियामत (प्रलय) के दिन जब लोग दोबारा उठाए जाएँगे तो बहुत ही उथल-पुथल मची होगी। लोग इधर-उधर भागे फिर रहे होंगे और अपने नबियों के पीछे भाग रहे होंगे, परन्तु वे कहेंगे, "आज मेरा रब बहुत क्रोध में है। इसलिए मुझे अपनी पड़ी है। तुम सब उस नबी के पास जाओ।" वे लोग नबी मुहम्मद (ﷺ) के पास आएँगे। आप (ﷺ) सज्दे में गिर जाएँगे, अल्लाह कहेगा –

"मुहम्मद! उठो और माँगो क्या माँगते हो। आप (ﷺ) उम्मती-उम्मती कहेंगे। अल्लाह आपकी शफ़ाअत स्वीकार कर लेगा और फ़रिश्तों से कहेगा, "जाओ जिसके हृदय में कण भर भी ईमान है, उसको जन्नत में प्रविष्ट करा दो।"

तो यह है वह 'मक़ामे-महमूद', जिसका वादा अल्लाह ने किया है कि मैं आप को मक़ामे-महमूद प्रदान करूँगा। यह है वह उच्च स्थान जहाँ से नबी (ﷺ) अपने अनुयायियों के लिए शफ़ाअत करेंगे। (देखिए: बुख़ारी, 1474, 1475 तथा 1040)

कुरआन के व्याख्याकारों ने इस विषय में बहुत कुछ लिखा है, परन्तु सहीह वही है जो हदीसों से सिद्ध हो। क्योंकि क़ुरआन की सहीह व्याख्या वह है जो स्वयं क़ुरआन से की गई हो या फिर सहीह हदीसों से। इसके बाद दूसरे साधनों का नम्बर आता है। विस्तृत जानकारी के लिए देखिए: 'क़ुरआन'।

मसूर की दाल

रेगिस्तान सीना में बनी-इसराईल मन्न तथा सलवा (बटेर) खाते खाते उकता गए थे। उन्होंने मूसा (عليه السلام) से कहा–

«ऐ मूसा, हम एक ही प्रकार के भोजन पर सन्तोष नहीं कर सकते, इसलिए अपने रब से प्रार्थना करो कि हमारे लिए धरती से साग, ककड़ी, लहसुन, मसूर की दाल और प्याज़ पैदा करे।" उसने कहा, "क्या तुम उत्तम चीज़ों को छोड़ कर तुच्छ चीज़ें लेना चाहते हो। अच्छा तुम लोग किसी नगर में जा रहो। तुमने जो कुछ माँगा है मिल जाएगा।"» (क़ुरआन, सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-61)

अर्थात मूसा (عليه السلام) की ओर से यह एक प्रकार की धमकी थी कि तुम्हें जिस काम के लिए मिस्र से निकालकर यहाँ लाया गया है उस उद्देश्य को छोड़कर खाने-पीने में लग गए हो तो जाओ किसी नगर में आबाद हो जाओ वहाँ तुम्हें यह सब कुछ मिल जाएगा।

«इसी कारण अपमान, अनुत्साह तथा दशाहीनता उनपर थोप दी गई और वे अल्लाह के प्रकोप में घिर गए।» (क़ुरआन, सूरा-2, अल-बक़रा, आयत- 61)

मन्न

मन्न एक विशेष प्रकार का भोजन था, जो अल्लाह ने अपनी कृपा से बनी- इसराईल के लिए उस समय उतारा था, जब वे सीना के रेगिस्तान में मारे-मारे फिर रहे थे –

«हमने तुम्हारे ऊपर बादलों की छाया की, और तुमपर मन्न और सलवा उतारा। हमारी ओर से प्रदान की हुई पवित्र वस्तुएँ खाओ।» (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–57

साथ ही देखिए : सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–160; सूरा–20, ता-हा, आयत–80)

इस प्रकार मन्न एक प्रकार की खाद्य-सामग्री थी, जो सुबह को वृक्षों पर जमकर एक प्रकार का मीठा, स्वादिष्ट लड्डू बन जाता था। और आज भी मन्न नाम का एक लड्डू सीरिया में बहुत प्रसिद्ध है।

मेराज

देखें : इसरा।

मुसाफ़िर

देखें : आतिथ्य

मसजिदे-ज़िरार

देखें : मसजिद

मूर्ति स्थान

देखें : देव-स्थान

य
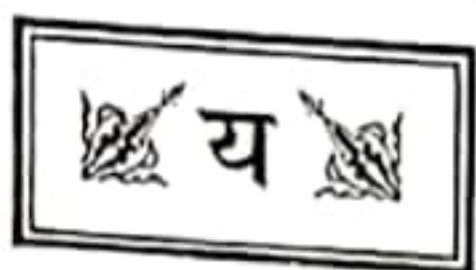
याजूज-माजूज

यह एक उपद्रवी जाति थी। इसका वर्णन क़ुरआन में दो स्थानों पर आया है। पहली बार सूरा–18, अल-कहफ़ में इसका वर्णन इस प्रकार हुआ है–

«उन्होंने कहा, "ऐ ज़ुलक़रनैन! याजूज और माजूज पृथ्वी पर उपद्रव मचाते हैं, तो क्या हम तुम्हारे लिए धन इकट्ठा कर दें, ताकि तुम हमारे और उनके बीच एक अवरोध निर्मित कर दो।"

उस (ज़ुलक़रनैन) ने कहा, "मेरे प्रभु ने जो कुछ मुझे दे रखा है वह बहुत है। बस तुम लोग शक्तिशाली व्यक्तियों के द्वारा मेरी सहायता करो। मैं तुम्हारे और उनके बीच एक दीवार खड़ी कर देता हूँ। मेरे पास लोहे के टुकड़े लाओ।"

यहाँ तक कि जब उसने दोनों पर्वतों के बीच के रिक्त स्थान को भर दिया तो कहा, "धुनकी दो" और जब वह दहकती हुई आग हो गई तो कहा, "अब ताँबा लाओ, ताकि मैं उसपर उँडेल दूँ।" बस अब न तो वे इस पर चढ़ ही सकते थे और न इसमें सेंध लगा सकते थे। उस (ज़ुलक़रनैन) ने कहा, "यह मेरे रब की दयालुता है, किन्तु जब मेरे रब के वचन का समय आ जाएगा। वह उसे ढाकर बराबर कर देगा। और मेरे रब का वचन सत्य है।"» (सूरा–18, अल-कहफ़, आयतें–94-98)

दूसरे स्थान पर इस प्रकार आया है–

«यहाँ तक कि वह समय आ जाए जब याजूज और माजूज खोल दिए जाएँगे। और वे हर ऊँचे स्थान से निकल पड़ेंगे।» (सूरा–21, अल-अंबिया, आयत–96)

ये याजूज-माजूज कौन हैं? इस सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न विचार हैं। चूँकि इनका वर्णन बाइबल में भी आया है। इसलिए आइए पहले बाइबल को देखते हैं कि उसमें क्या कहा गया है –

"येपेत के पुत्र : गोमेर, मागोग, मादै, यावान, तूलब, मेशेक और तीरास हुए।" (बाइबल, उत्पत्ति, 10-2 तथा इतिहास, 1:5)

"और मैं मागोग पर और उनपर जो समुद्री स्थानों पर आबाद हैं आग भेजूँगा, और वे जान जाएँगे कि मैं ख़ुदावन्द हूँ।" (बाइबल, यहेजकेल, 39:76)

और फिर उनके स्थान को मागोग कहा जाने लगा। (देखिए: यहेजकेल, 38:2)

याजूज माजूज का क्षेत्र
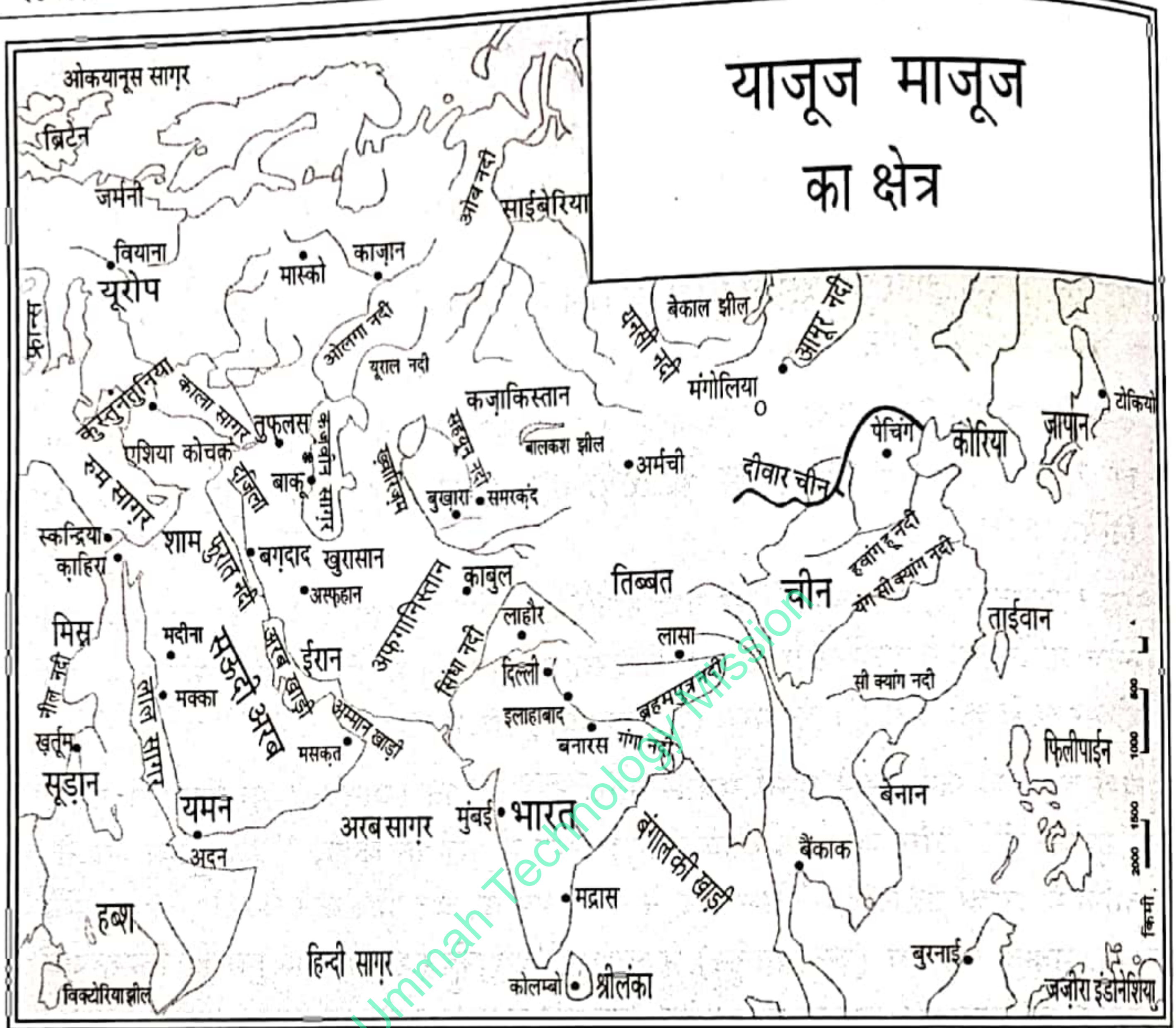
बाइबल से भी उस जाति की तथा उसके निवास-स्थान का सही पता नहीं लग सका।

जब क़ुरआन की शिक्षा के प्रकाश में इतिहास पर दृष्टि डालते हैं तो प्रतीत होता है कि यह कोई उपद्रवी और चरमपंथी जाति थी जिसके कारण पड़ोस में रहनेवाले उनके उपद्रव एवं अत्याचार से व्याकुल हो उठे थे। इसी लिए उन्होंने ज़ुलक़रनैन से बाँध बाँधने का निवेदन किया। अब तक जिन बाँधों का पता चल पाया है उनमें से एक तो वह है जो क़ज़वीन महासागर के पूर्व में क़फ़क़ाज़ के भूखंड में पाया गया है। और दूसरा बाँध बुख़ारा से एक सौ पचास मील दक्षिण की ओर एशिया में पाया गया है, जिसका वर्णन यूरोपीय पर्यटक 'मारको पोलो' ने किया है जिसकी तफ़सील इंसाइक्लो-पीडिया ऑफ़ ब्रिटानिका, भाग 13, पृ. 526 में देखी जा सकती है। मौलाना अबुल- कलाम आज़ाद का विचार है कि यह कोई मंगोल जाति है जिसको चीनी भाषा में 'गोग' कहा जाता है। यही 'गोग' छः सौ वर्ष ईसा पूर्व यूनानियों के यहाँ 'मोग' प्रसिद्ध हो गया, और उसे 'मॉगोग' पुकारा जाने लगा। और यही इबरानी भाषा में 'माजूज' बन गया। और इन्हें आज भी यूरोप में गोग (GOG) तथा मॉगोग (MOGOG) कहा जाता है।

इसी प्रकार चीन के एक गोत्र का नाम 'यूचाची' (YUCH-CHI) है और हो सकता है यही 'यूचाची' बदलते-बदलते 'याजूज' बन गया हो। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि यह उत्तरी एशिया की कोई असभ्य जाति थी जो सभ्य देशों पर आक्रमण किया करती थी। जब विजय प्राप्त करते हुए 'ज़ुलक़रनैन' साइरस तक पहुँचा और उसने देखा कि यह तो बड़ा दयालु राजा है तो उन्होंने उससे बाँध बाँधने की प्रार्थना की, जो उसने स्वीकार कर ली, जिसके कारण सभ्य जातियाँ शान्तिपूर्वक रहने लगीं।

अब क़ुरआन यह बताना चाहता है कि प्रलय की निशानियों में से एक यह है कि यह बाँध टूट जाएगा। और 'याजूज-माजूज' दोबारा उपद्रव करते हुए चारों ओर फैल जाएँगे। फिर अल्लाह एक ऐसा पशु भेजेगा, जो उनकी गर्दनों में लिपट जाएगा और उनकी हत्या इस प्रकार होगी जैसे 'जराद' की होती है। लेकिन इनके दुष्कृत्य तथा उपद्रव से ईमानवाले बचे रहेंगे जैसा कि सहीह बुख़ारी में आया है कि याजूज-माजूज के निकलने के बाद भी ईमानवाले बैतुल्लाह का हज और उमरा करेंगे। (देखिए: बुख़ारी : 1598)

क़ुरआन ने याजूज-माजूज का जो वर्णन किया है उससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं –

1. ज़ुलक़रनैन ने, जिसके विषय में यहूदियों ने प्रश्न किया था और वे भली-भाँति उससे परिचित थे, कितनी आसानी से कहा था कि यह जो कुछ मेरे पास है बस अल्लाह का दिया हुआ है। (देखिए: सूरा–18, अल-कहफ़, आयत–98)

उसने किसी प्रकार का घमंड नहीं दिखाया, जैसा कि मक्का के कुफ़्फ़ार दिखा रहे थे।

दूसरे यह कि उसने जो बाँध बनाया था उसने कभी यह नहीं कहा कि अब यह टूट नहीं सकता, बल्कि यह कहा कि जब मेरे अल्लाह का आदेश आएगा तो यह चूर-चूर हो जाएगा, जिस प्रकार पूरा भूमण्डल बिखर जाएगा। इसमें हितोपदेश है उन लोगों के लिए जो अपने किए पर घमंड करने लगते हैं और कहते हैं अब इसको कोई नष्ट नहीं कर सकता, परन्तु अल्लाह की शक्ति बहुत असीम है, वह तो आकाश तथा पृथ्वी को चूर-चूर कर सकता है, तो इस बांध की क्या हैसियत है।

बल्कि सहीह हदीसों से पता चलता है कि उसमें सूराख़ पड़ चुका है। (देखिए: बुख़ारी : 3346 तथा मुस्लिम 2880)

और उसमें सूराख़ पड़ जाना क़ियामत की छोटी निशानियों में से एक है। क़ियामत से पहले वह चकनाचूर हो जाएगा। फिर याजूज-माजूज पृथ्वी पर फैल जाएंगे।

ये सब ग़ैब (परोक्ष) की बातें हैं जिनपर ईमान लाने के अलावा कोई दूसरा मार्ग नहीं है। क्योंकि हम अपने सीमित ज्ञान के द्वारा असीमित तथ्यों को नहीं पा सकते।

यूनुस (عليه السلام)

आप बनी-इसराईल के एक महान नबी थे। क़ुरआन में है –

«**निस्संदेह यूनुस भी रसूलों में से था।**» (सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयत–139)

उनका जन्म-स्थान शाम (सीरया) था। परन्तु अल्लाह ने उनको एक ऐसी जाति की ओर जाने का आदेश दिया जिनकी जनसंख्या एक लाख से अधिक थी। (क़ुरआन : सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयत–147) क़ुरआन से तो पता नहीं चलता कि वह जाति कौन थी? और उसका निवास-स्थान कहाँ था? परन्तु बाइबल के अनुसार वह इराक़ में दजला नदी के पूर्व में 'नीनवा' नामक शहर था, जो उस समय 'आशोरी' शासन की राजधानी था। बाइबल में यूनुस (عليه السلام) के हालात पर एक किताब है। (देखिए : योना, 1:2, 3:2-5)

Nineveh. Mashki Gate. View from west. Reconstructed.
Lower parts of stone retaining wall are original. (photo April 1990)

"नीनवा शहर का मशकी गेट"

इसकी पुष्टि एक हदीस से भी होती है। वह यह कि जब नबी (ﷺ) ताइफ़ गए और वहाँ लोगों ने आप (ﷺ) को पत्थर मारे तो आप (ﷺ) ने विश्राम करने के लिए उत्बा और शैबा-बिन-रबीआ के बाग़ में प्रवेश किया। आप (ﷺ) के पैरों से रक्त बह रहा था। उत्बा और शैबा ने अपने सेवक अद्दास से कहा कि जाओ उस व्यक्ति को कुछ खाने-पीने की वस्तुएं दे आओ। नबी (ﷺ) ने खाने से पहले 'बिस्मिल्लाह' पढ़ा। अद्दास को बड़ा आश्चर्य हुआ, और उसने कहा, "यह आपने जो 'बिस्मिल्लाह' कहा, तो यहाँ के लोग तो यह नहीं कहते।" नबी (ﷺ) ने उससे पूछा, "तुम किस देश के हो? और तुम्हारा धर्म क्या है?"

अद्दास ने कहा, "मेरा धर्म ईसाई है, और मैं नीनवा का रहनेवाला हूँ।" आप (ﷺ) ने फ़रमाया, "अच्छा, तुम मेरे भाई यूनुस-बिन-मत्ता के शहर के हो।" अद्दास ने कहा, "आपको क्या पता यूनुस-बिन-मत्ता कौन है?" आप (ﷺ) ने फ़रमाया, "वह मेरा भाई है जो नबी था, और मैं भी नबी हूँ।" यह सुनते ही अद्दास आप (ﷺ) के पैरों पर गिर पड़ा और आप (ﷺ) का हाथ, पाँव तथा सिर चूमने लगा और मुसलमान हो गया। (देखिए: अबू नुऐम की 'मोअजमुस्सहाबा 2377 और सीरत इब्ने हिशाम 1:419-422), लेकिन इसकी सनद मुरसल है।

यह प्रश्न उठता है कि बनी-इसराईल के एक नबी को नीनवा की ओर क्यों भेजा गया? अगर बाइबल की बात सत्य मान ली जाए तो इसका उत्तर यह हो सकता है कि सम्भव है वहाँ बनी-इसराईल के कुछ लोग आबाद हो गए हों। और अपनी प्रकृति के अनुसार आशूरियों के देवी-देवताओं की पूजा-पाठ करने लगे हों, क्योंकि बनी-इसराईल के इतिहास से पता चलता है कि यह जाति बड़ी शीघ्रता से एकेश्वरवाद को छोड़कर बहुदेववाद ग्रहण कर लेती थी। यह तो अल्लाह की कृपा थी कि वह बार-बार नबियों को भेजकर सचेत कराता रहता था।
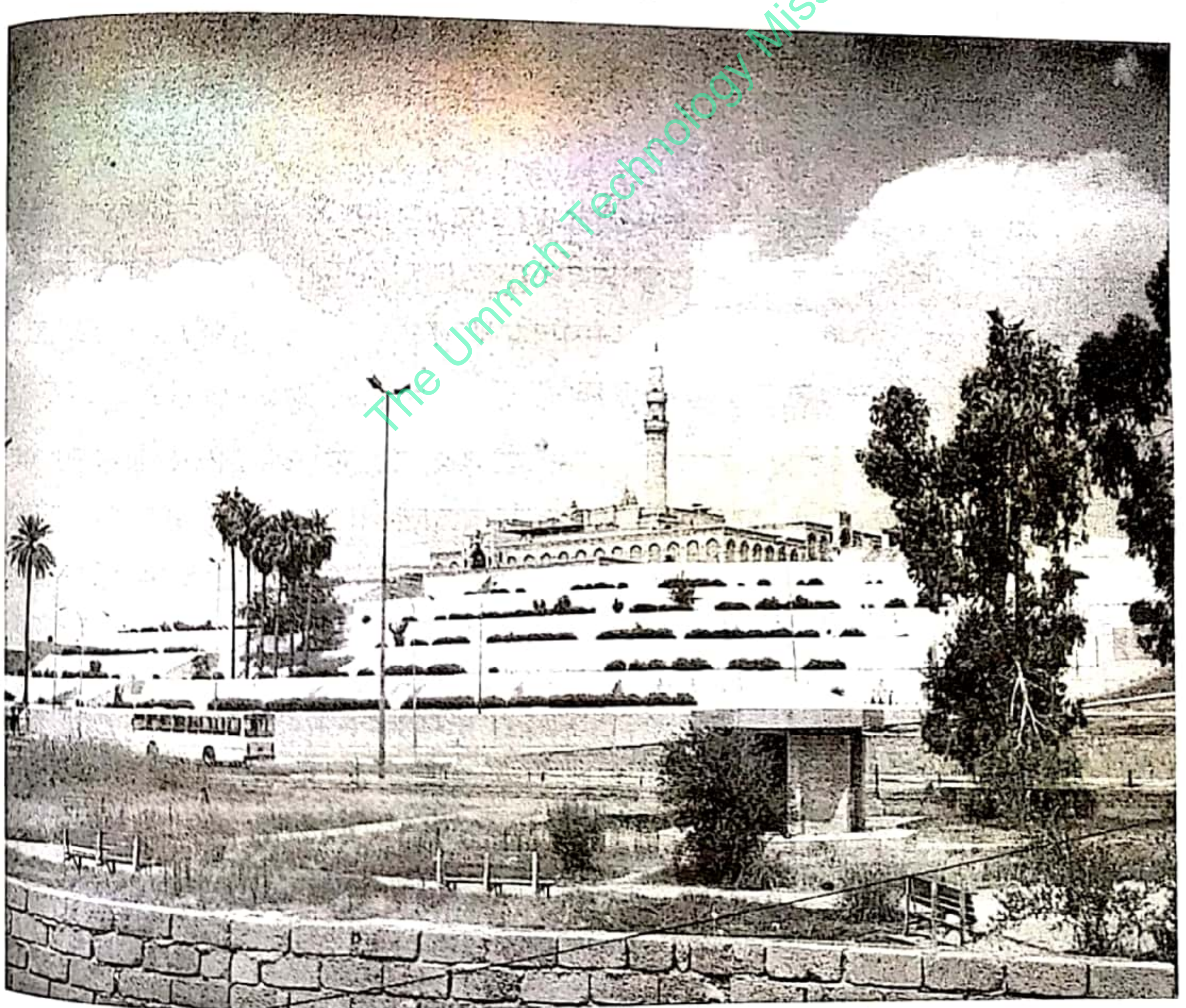
"मस्जिदे यूनुस عليه السلام (अल-तौबा पहाड़ पर)"

और यह भी हो सकता है कि यद्यपि यूनुस (अलैहि०) बनी-इसराईल से थे। परन्तु फ़िलस्तीन से पाँच सौ मील की दूरी पर एक महान आशोरी शासन था, जहाँ के लोग अल्लाह को छोड़कर मूर्ति-पूजा में लग गए थे, और इसी के साथ विभिन्न प्रकार की बुराइयों में घिर गए थे। इस लिए अल्लाह ने अपने नियमानुसार उनकी दीक्षा के लिए यूनुस (अलैहि०) को वहाँ जाने का आदेश दिया। क़ुरआन में है–

«तुम तो बस एक चेतावनी देनेवाले हो, और हर क़ौम के लिए एक मार्गदर्शक हुआ है।» (सूरा–13, अर-रअद, आयत–7)

«तुम तो बस एक सचेतकर्ता हो। हमने तुम्हें सत्य के साथ भेजा है, शुभ सूचना देनेवाला और सचेतकर्ता बनाकर। और जो भी समुदाय गुज़रा है, उसमें अनिवार्यत: एक सचेतकर्ता हुआ है।» (सूरा–35, अल-फ़ातिर, आयतें–23-24)

इसी लिए आशोरियों को यूनुस (अलैहि०) की जाति के नाम से याद किया जाता है। जिनके खंडहर आज भी दजला नहर के पूर्व में पाए जाते हैं।

बाइबल में एक बहुत बड़ी त्रुटि यह पैदा कर दी गई है कि यूनुस (अलैहि०) नीनवा नहीं गए, बल्कि अल्लाह के आदेश को ठुकराकर तरशीश की ओर भाग खड़े हुए और समुद्र में तूफ़ान के कारण उनको मछली ने निगल लिया।

यह बात एक नबी के योग्य नहीं कि वह अल्लाह का आदेश ठुकरा दे। इसलिए सच यही है कि आप नीनवा गए। वहाँ के लोगों को अल्लाह का आदेश सुनाया। मूर्ति-पूजा को वर्जित किया परन्तु वे हठधर्मी करने लगे। यूनुस (अलैहि०) के आदेश को अस्वीकार कर दिया, बल्कि विभिन्न प्रकार से उनको कष्ट पहुँचाने लगे। यह कोई लगभग 790 ईसा पूर्व की घटना है।

अब यूनुस (अलैहि०) ने उनके लिए अल्लाह से यातना की दुआ की और यह विचार करके कि अब यातना उनको घेर लेगी; नीनवा से निकल पड़े। बाद में नीनवावाले भी भयभीत हो गए, और उनको विश्वास हो गया कि अब यातना आने ही वाली है। इसलिए सारे लोग अल्लाह से पश्चाताप करने लगे। और इस्लाम धर्म अपना लिया। इस प्रकार वे अल्लाह की यातना से बच गए। देखिए क़ुरआन में अल्लाह का फ़रमान–

«फिर ऐसी कोई बस्ती नहीं जो (यातना देखकर) ईमान लाई हो, और उसका ईमान लाना उसके लिए लाभदायक हुआ हो, सिवाय यूनुस की जातिवालों के, जब वे ईमान लाए तो हमने अपमानजनक यातना को उनपर से संसारिक जीवन में टाल दिया, और एक अवधि तक उनको जीवन प्रदान किया।» (सूरा–10, यूनुस, आयत–98)

अर्थात् यह अल्लाह का नियम रहा है कि यातना देखने के बाद किसी का ईमान स्वीकार नहीं किया जाता। क्योंकि परीक्षा का समय व्यतीत हो जाने के बाद ईमान लाना या न लाना दोनों बराबर हैं। परन्तु

अल्लाह ने यह नियम यूनुस (अलैहि॰) की जाति पर लागू नहीं किया, क्योंकि यूनुस (अलैहि॰) अल्लाह की आज्ञा से पहले ही अपनी जाति पर बद्दुआ करने के बाद बस्ती से निकल पड़े, इसलिए जहाँ अल्लाह ने बस्तीवालों से यातना दूर कर दी, वहीं चेतावनी के लिए यूनुस (अलैहि॰) को मछली के पेट में डाल दिया–

«याद करो जब वह भरी नौका की ओर भाग निकला, जब क़ुरआ[1] डाला गया तो वह पराजित हो गया। फिर मछली ने उसे निगल लिया, और वह स्वयं दोषी था।[2] अगर वह अल्लाह की प्रशंसा करनेवाला न होता तो, मछली के पेट में प्रलय-दिवस तक पड़ा रहता। अन्ततः हमने उसे एक चटियल मैदान में डाल दिया, इस दशा में कि वह बहुत ही निर्बल हो गया था। हमने उसपर एक बेलदार वृक्ष उगा दिया।» (सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयतें–140-146)

यह बेलदार वृक्ष इसलिए उगाया गया था कि उनसे उसको छाया मिले और हो सकता है कि वह फल भी देता हो जिसको खाकर स्वस्थ हो जाएँ। अब यह प्रश्न उठता है कि वह कौन-सी मछली थी जो एक व्यक्ति को निगल गई और यह घटना किस समुद्र की है? तो इसका उत्तर यह है कि यह व्हेल मछली होगी, जो बीस फ़ुट से भी अधिक लम्बी होती है। मनुष्य को खाती तो नहीं, परन्तु निगल सकती है। कुछ वर्ष पूर्व एक ऐसी ही घटना में व्हेल ने एक मछेरे को निगल लिया था। जो सात घंटे तक उसके पेट में जीवित रहा।

दूसरा प्रश्न यह है कि यह घटना किस समुद्र में घटित हुई तो मालूम होता है कि यूनुस नीनवावालों से क्रोधित होकर अपने देश फ़िलस्तीन चले गए। फिर किसी कारण याफ़ा के बन्दरगाह से तुर्की के बन्दरगाह तर्शीश जो मरसीन के निकट है कश्ती से जा रहे थे कि रूम सागर में तूफ़ान आ गया और वहीं यह घटना घटी। इसकी पुष्टि बाइबल से भी होती है। (देखिए: बाइबल, याहेना, 1:3)

यह कष्ट यूनुस (अलैहि॰) को क्यों उठाना पड़ा? इस बारे में क़ुरआन कहता है –

«ज़ुन्नून (अर्थात् मछलीवाले) को याद करो जब वह क्रोध में आकर चला गया। उसका विचार था कि हम उसकी पकड़ नहीं करेंगे।[3] फिर उसने अंधेरों में से पुकारा, "तेरे अतिरिक्त कोई भी इष्ट-पूज्य नहीं। महिमावान् है तू! निस्सन्देह मैं ही अन्यायियों में से था।" तो हमने उसकी प्रार्थना सुन ली। और उसे कष्ट से छुटकारा दिया। और इसी प्रकार हम ईमानवालों को छुटकारा देते हैं।» (सूरा–21, अल-अंबिया, आयतें– 87,88)

---

[1] अर्थात भंवर में जब नौका डूबने लगी तो उस समय की रीति के अनुसार परची डाली गई जिसमें यूनुस (अलैहि॰) का नाम निकला और उन्हें दरिया में फेंक दिया गया।

[2] क्योंकि अल्लाह के आदेश से पहले ही बस्ती छोड़कर निकल पड़े थे।

[3] अर्थात् वह क्यों अल्लाह की आज्ञा से पहले बस्ती छोड़कर चल पड़ा? यूनुस (अलैहि॰) ने सोचा कि अब जब मैंने यातना की प्रार्थना कर ही दी है तो मुझे तुरन्त निकल जाना चाहिए। इस भूल पर अल्लाह ने उनको मछली के पेट में डाल दिया। क्योंकि वे अल्लाह की आज्ञा के बिना निकल पड़े थे।

अल्लाह यूनुस (ﷺ) का क़िस्सा सुनाकर अपने नबी मुहम्मद (ﷺ) को सांत्वना देता है कि आप (ﷺ) को आपकी जाति जो कष्ट पहुँचा रही है उसपर धैर्य से काम लें। किसी प्रकार की जल्दी न करें –

«तो अपने रब के फ़ैसले तक धैर्य से काम लो और मछलीवाले की तरह न हो जाओ। जबकि उसने पुकारा था इस दशा में कि वह ग़म में घुट रहा था।» (सूरा–68, अल-क़लम, आयत–48)

इससे तो यूनुस (ﷺ) की महानता घट जाती है, जब कि वे भी एक नबी थे। अल्लाह ने तुरन्त ही इसका उत्तर यह दिया–

«फिर उसके रब ने उसे चुन लिया और उसे सदाचारी लोगों में से बना दिया।» (सूरा–68, अल-क़लम, आयत–50)

क्योंकि उसने अल्लाह से पश्चात्ताप किया, और उसकी महानता बयान करने लगा। अल्लाह ने तो केवल चेतावनी के लिए उसे यह कष्ट दिया था, क्योंकि अल्लाह के किसी नबी को यह शोभा नहीं देता कि अल्लाह की आज्ञा के बिना कोई काम करे। लेकिन इस भूल के कारण उसकी महानता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसकी पुष्टि एक सहीह हदीस से भी होती है, जिसमें नबी (ﷺ) का आदेश है–

"किसी व्यक्ति के लिए उचित नहीं कि वह कहे कि मैं यूनुस-बिन-मत्ती से उत्तम हूँ।" (बुख़ारी, अंबिया, 24, 35; मुस्लिम, 166)

बाइबल से मालूम होता है कि यूनुस (ﷺ) नीनवा वापस आए जहाँ के लोगों ने यूनुस (ﷺ) का लाया हुआ ईश-धर्म स्वीकार कर लिया था। वे उनके साथ रहे उनको धर्म-उपदेश देते रहे, यहाँ तक कि वहीं आपका देहान्त हो गया। आज भी एक क़ब्र के विषय में मशहूर है कि यह यूनुस (ﷺ) की है। जबकि अल्लाह ही को भली-भाँति मालूम है कि यह क़ब्र किसकी है।

यूनुस (ﷺ) के क़िस्से से हमें निम्नलिखित शिक्षाएँ मिलती हैं–

1. कष्ट से मुक्ति एक मात्र अल्लाह की उपासना ही पर निर्भर है। जैसा कि क़ुरआन में अल्लाह ने फ़रमाया–

«अगर वह अल्लाह की महिमा बयान करनेवालों में न होता तो प्रलय-दिवस तक उस (मछली) के पेट में पड़ा रहता।» (सूरा-37, अस-साफ़्फ़ात, आयत-144)

यूनुस (ﷺ) एक नबी थे, जो सदैव अल्लाह की याद में लगे रहते थे। इसलिए जब उनपर दुर्दिन और कठिन समय आया तो अल्लाह ने उनकी सहायता की।
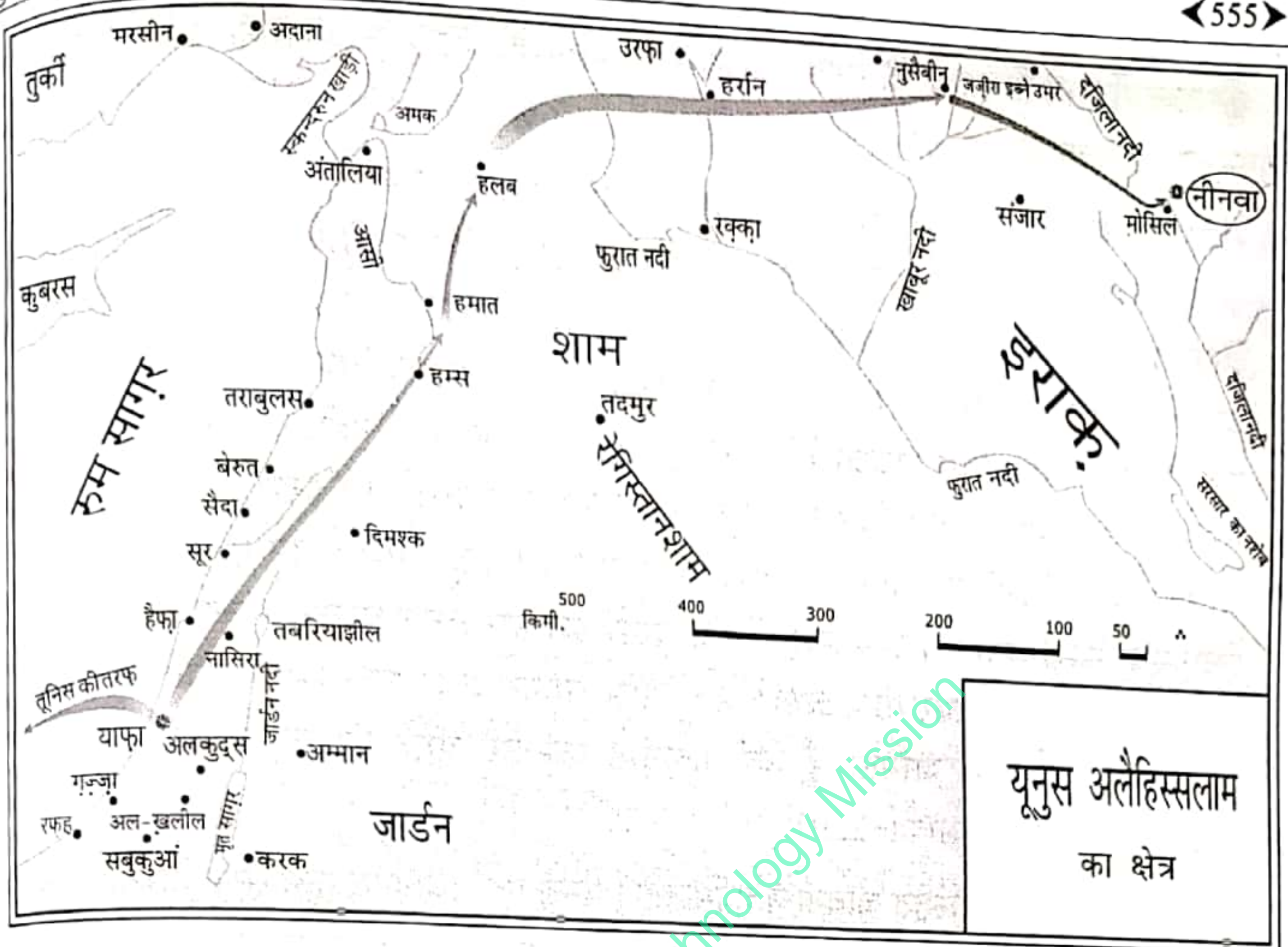
2. संकट काल और दुर्दिनों में अल्लाह से प्रार्थना करनी चाहिए, किसी और की उपासना नहीं करनी चाहिए। जब यूनुस (ﷺ) मछली के पेट में चले गए तो उन्होंने केवल अल्लाह से प्रार्थना की और उन्होंने वह दुआ पढ़ी जिसको स्वच्छ हृदय से पूरे विश्वास के साथ पढ़ा जाए तो अल्लाह स्वीकार कर लेता है। वह दुआ यह –

«ऐ अल्लाह केवल तू ही उपासना (इबादत) के योग्य है, तेरा कोई साझी नहीं, तू बड़ा महिमावान है, निस्सन्देह मैं तो बड़ा दोषी हूँ।» (सूरा-21, अल-अंबिया, आयत-87)

3. धर्म-मार्ग पर चलते हुए जो कष्ट आए, उसपर धैर्य रखना चाहिए। अल्लाह मुहम्मद (ﷺ) को नसीहत करता है कि कहीं तुम भी मछलीवाले की तरह न हो जाना, अर्थात् लोगों को इस्लाम की शिक्षा देने में कष्ट आए तो उसपर धैर्य से काम लेना। जल्दी में कोई निर्णय स्वयं नहीं लेना कि मछलीवाले की तरह भाग खड़े हो, बल्कि मेरे आदेश और निर्देश की प्रतीक्षा करना। इस क़िस्से में उन लोगों के लिए भी आदर्श है, जो इस्लाम धर्म के प्रचार-प्रसार में लगे हुए हैं।

यहेजकेल

ये बनी-इसराईल के एक प्रसिद्ध नबी थे। इनका काल यिर्मयाह नबी के काल से मिलता है। जो लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व में थे।

क़ुरआन में नाम के साथ तो इनका वर्णन नहीं आया है, परन्तु क़ुरआन का एक वृत्तान्त इनके जीवन-चरित्र से काफ़ी मिलता-जुलता है। देखिए–

«उस व्यक्ति का उदाहरण लो, जिसका एक ऐसी बस्ती से गुज़र हुआ, जो छतों के बल औंधी पड़ी हुई थी। वह कह उठा, "अल्लाह इसके विनष्ट हो जाने के पश्चात् इसे किस प्रकार जीवन प्रदान करेगा?" तो अल्लाह ने उसे सौ वर्ष की मृत्यु दे दी। फिर उसे उठा खड़ा किया, और पूछा, "तुम कितने वर्ष तक इस अवस्था में रहे?" उसने उत्तर दिया, "एक दिन अथवा दिन का कुछ भाग।" कहा, "नहीं, बल्कि तुम सौ वर्ष तक इस अवस्था में रहे। फिर अब तुम अपने भोज्य पदार्थों को देखो, उनपर वर्षों के बीतने का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। और अपने गधे को देखो! ताकि हम तुमको लोगों के लिए एक चिह्न बना दें। और हड्डियों को देखो कि हम किस प्रकार उनका ढाँचा खड़ा करते हैं और फिर उनपर मांस चढ़ाते हैं।" इस प्रकार जब उसके सामने बात खुल गई तो पुकार उठा, "मैं जानता हूँ कि अल्लाह को हर चीज़ पर प्रभुत्व प्राप्त है।"»
(सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–259)

बाइबल में भी उनकी विस्तृत जीवनी नहीं मिलती। परन्तु एक स्थान पर कुछ सूखी हड्डियों का वर्णन आता है, जिसके विषय में प्रश्न किया गया कि क्या ये हड्डियाँ जीवित हो सकती हैं? तो उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह इसका ज्ञान तो तुझको ही है।" तब अल्लाह ने कहा, "तुम इन हड्डियों से कहो कि ऐ सूखी हड्डियो! अल्लाह का वचन सुनो।" वह तुमसे यूँ कहता है–

"देखो, मैं तुममें साँस समवाऊँगा, और तुम जी उठोगी और मैं तुम्हारी नसें उपजाकर मांस चढ़ाऊँगा और तुमको चमड़े से ढाँपूंगा, और तुममें साँस समवाऊँगा, और तुम जी जाओगी। और तुम जान लोगी कि मैं अल्लाह हूँ।"

इस वर्णन में और क़ुरआन के वर्णन में हड्डियों के विषय में जो कुछ आया है उसमें बहुत अधिक समानता पाई जाती है। यद्यपि ये हड्डियाँ बनी-इसराईल की थीं ।

अब सौ वर्ष तक मरने और उस बस्ती के नाम के बारे में जो उजड़ी हुई थी बाइबल में यह संकेत मिलता है कि बैतुल-मक़दिस को सौ वर्ष तक किस प्रकार खंडहर बनाया गया, ईरानी राजा और फिर बुख़्त-नसर ने किस प्रकार उसको नष्ट किया कि एक घर भी सुरक्षित न रह सका, जिसको देखने के पश्चात् यह कहना कठिन हो गया कि भला यह दोबारा भी आबाद हो सकता है? बाइबल में जो बातें रह गई थीं क़ुरआन ने उनको पूरा कर दिया, क्योंकि अल्लाह ने क़ुरआन को सारी पूर्ववर्ती पुस्तकों का सरदार बनाकर उतारा है जो उनकी पुष्टि भी करता है और जो कुछ उनमें रह गया है उनको पूरा भी करता है, तथा जहाँ कहीं लोगों ने अपनी ओर से कुछ घटा-बढ़ा दिया है, उनका संशोधन भी करता है। क़ुरआन में कहा गया है–

«हमने सत्य के साथ यह किताब उतारी है, जो अपनी पूर्ववर्ती समस्त धार्मिक पुस्तकों की पुष्टि करती है तथा उनके लिए यह एक कसौटी भी है।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–48)

अर्थात् जो पहली किताबों में परिवर्तन हो गया था, या कर दिया गया था, यह पुस्तक उनका सुधार करती है। इसलिए अब पिछली किताबों की मूल शिक्षाओं को जानने का एक मूल साधन केवल क़ुरआन ही है। और यही अर्थ है शब्द 'मुहैमिन' का जिसका प्रयोग क़ुरआन के लिए किया गया है।

याक़ूब (अलैहिस्सलाम)

याक़ूब (अलैहिस्सलाम) इबराहीम (अलैहिस्सलाम) के पोते और इसहाक़ (अलैहिस्सलाम) के पुत्र थे। याक़ूब (अलैहिस्सलाम) शहर हबरून, जिसको अब ख़लील कहते हैं, में लगभग 1836 ईसा पूर्व पैदा हुए। ये दो भाई थे। बड़े भाई का नाम ईशू था। आपस में मेल-मिलाप न होने की वजह से याक़ूब (अलैहिस्सलाम) हबरून छोड़कर अपने मामू के पास फ़दान आराम, जो हर्रान नगर के क़रीब है, चले गए। वहीं उन्होंने विवाह किया। आपकी कुल चार पत्नियाँ थीं, जिनके नाम ये हैं : लिआह, राहेल, ज़िल्पे और बिल्हा। इनसे इनके कुल बारह पुत्र पैदा हुए, जिनके नाम ये हैं : रूबेन, शिमोन, लेवी, यहूदा, दान, इस्साकार, ज़बूलून, नप्ताली, आशेर, यूसुफ़, बिनयामीन, गाद तथा एक पुत्री दीना। फिर वे बैतुल-मक़दिस चले गए। कुछ समय वहाँ ठहरे और जब फ़िलस्तीन में सूखा पड़ गया तो वे अपने परिवार के साथ मिस्र चले गए। उस समय उनकी उम्र 130 वर्ष थी। सतरह वर्ष तक वे मिस्र में रहे। और वहीं उनका देहान्त हुआ। उस समय उनकी उम्र 147 वर्ष की थी। उनके शव को हुनूत किया गया और उनके बेटों ने उनको हबरून (ख़लील) में लाकर दफ़न किया गया। मृत्यु से पहले उन्होंने यूसुफ़ और उनकी संतान के लिए दुआ की और फिर सारी सन्तान के लिए दुआ की।

याक़ूब (अलैहिस्सलाम) को अल्लाह ने नबी बनाकर लोगों की तरफ़ भेजा। इसका विवरण क़ुरआन में इस प्रकार है–

«हमने तुम्हारी ओर उसी प्रकार वह्य (प्रकाशना) की है जिस प्रकार नूह और उसके बाद के नबियों की ओर वह्य की। और हमने इबराहीम और इसमाईल और इसहाक़ और याक़ूब और उसकी संतान और ईसा और अय्यूब और यूनुस और हारून और सुलैमान की ओर वह्य की।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–163)

याक़ूब (अलैहिस्सलाम) की दावत भी दूसरे नबियों की भाँति एकेश्वरवाद की दावत थी। वह यह कि अल्लाह के अतिरिक्त किसी और की इबादत न करो। और स्वयं याक़ूब (अलैहिस्सलाम) भी अल्लाह की इबादत में लीन रहा करते थे। और लोगों को देवी-देवताओं की पूजा से रोकते थे। उन्होंने अपने पुत्रों से अल्लाह की इबादत की वसीयत की–

याक़ूब अलैहिस्सलाम का क्षेत्र
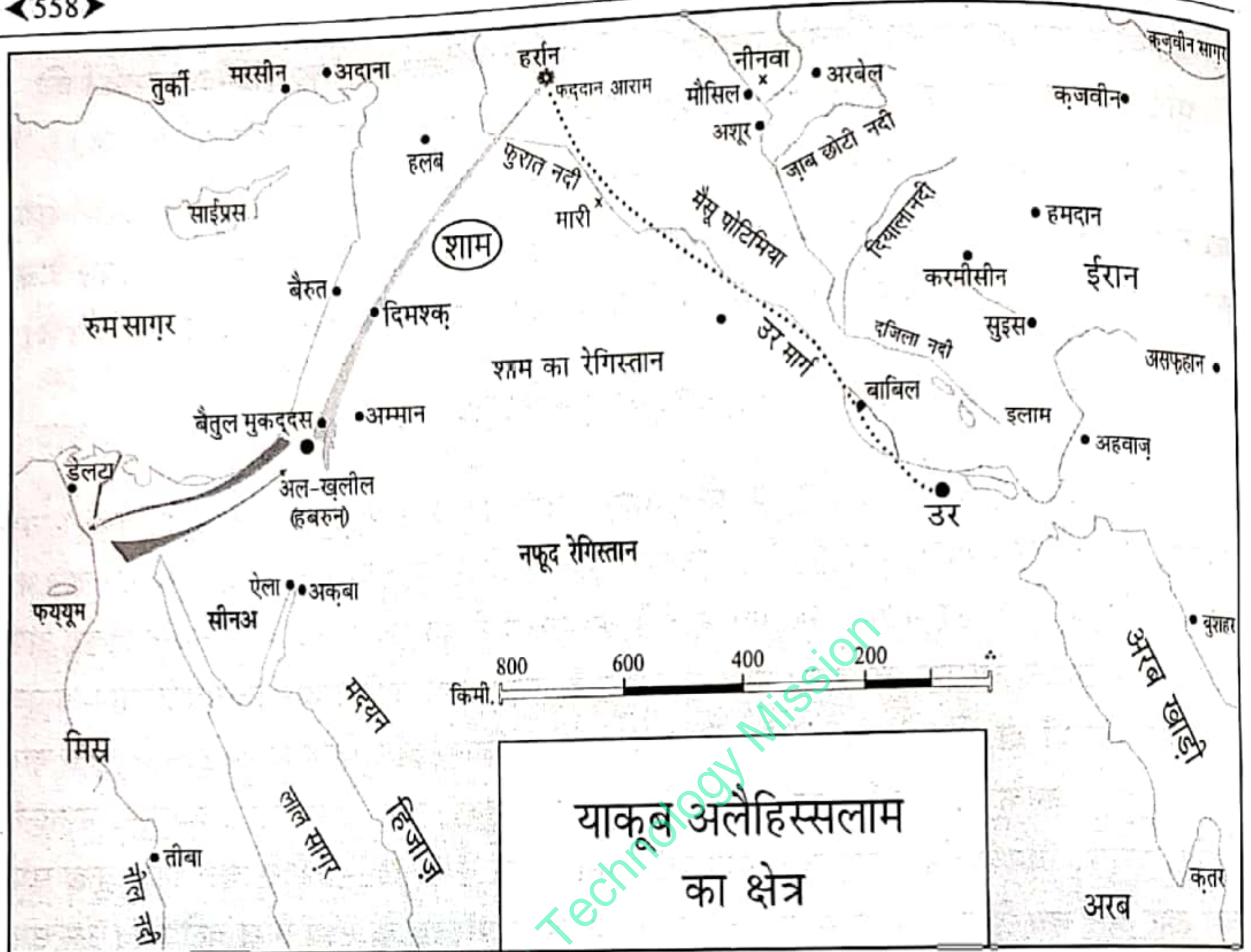
«(क्या तुम इबराहीम के वसीयत करते समय मौजूद थे?) या तुम मौजूद थे जब याक़ूब की मृत्यु का समय आया? जब उसने अपने बेटों से कहा, "मेरे बाद तुम किस की बन्दगी करोगे?" वे बोले, "हम आपके इलाह (इष्ट-पूज्य) और आपके पूर्वज इबराहीम और इसमाईल और इसहाक़ के इलाह (इष्ट-पूज्य) की इबादत करेंगे। जो अकेला इलाह है। और हम सब उसी के आज्ञाकारी (मुस्लिम) हैं।"» (क़ुरआन : सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–133)

अल्लाह ने याक़ूब के वंश पर बड़ी कृपा की–

«तेरा रब तुझे चुन लेगा और तुझे बातों के तथ्य तक पहुँचना सिखाएगा और अपना अनुग्रह तुझपर और याक़ूब के घरवालों पर उसी प्रकार पूरा करेगा, जिस प्रकार इससे पहले वह तेरे पूर्वज इबराहीम और इसहाक़ पर पूरा कर चुका है।» (क़ुरआन : सूरा–12, यूसुफ़, आयत–6)

और वह नेमत इस प्रकार पूरी की कि इसहाक़ और याक़ूब के वंश में नुबूवत का सिलसिला जारी कर दिया।

क़ुरआन में है –

«हमने उसे (यानी इबराहीम को) इसहाक़ और याक़ूब दिए। और उसकी संतान में नुबूवत और किताब जारी कर दी।» (सूरा–29, अल-अनकबूत, आयत–27)

इन्हीं के वंश में बनी-इसराईल के प्रसिद्ध नबी यूसुफ़ (عليه السلام) थे। अर्थात् नबी यूसुफ़, पुत्र नबी याक़ूब, पुत्र नबी इसहाक़, पुत्र नबी इबराहीम। सम्भवत: संसार में कोई ऐसा नबी नहीं आया जिसकी चार संतान लगातार नबी रही हों।

याक़ूब (عليه السلام) को इसराईल भी कहते हैं और इसलिए उनकी संतान को बनी- इसराईल कहा जाता है। इनका वर्णन क़ुरआन में बड़ी तफ़सील से आया है। तौरात से पता चलता है कि इसराईल नाम रखने का हुक्म अल्लाह ही ने दिया था।

या-सीन

देखें : अलिफ़-लाम-मीम।

यतीम

देखें : अनाथ।

यऊक़

यऊक़ हमदान क़बीले का बुत था। (अधिक जानकारी के लिए देखिए : वद्द।)

यग़ूस

यग़ूस एक बुत का नाम था जो क़बीला तय की शाख़ अनउम और क़बीला मज़हिज की बहुत सी शाख़ों का पूज्य था। मज़हिजवालों ने यमन और हिजाज़ के बीच जुरश के स्थान पर यह बुत स्थापित कर रखा था। इस बुत की शक्ल शेर की-सी थी। (अधिक जानकारी के लिए देखिए : 'वद्द'।)

यह्या (عليه السلام)

यह्या (عليه السلام) एक महान नबी थे और संयमी थे। (देखिए : क़ुरआन, सूरा-3, आले-इमरान, आयत-40)

यह्या और ईसा (عليه السلام) दोनों का जन्म एक ही वर्ष में हुआ था। यह्या ईसा से छ: माह बड़े थे। उनके पिता का नाम ज़क़रीया था, जो इबराहीम (عليه السلام) की संतान में से थे। माता का नाम शिवय था जो हारून (عليه السلام) के माध्यम से इबराहीम के वंश से थीं। परन्तु शिवय बाँझ थीं। (देखिए : इंजील, लूका 1:5-7)

यह शिवय मरयम की मौसी थीं। एक दूसरे कथन में है कि बहन थीं।

यह्या (अलैहिस्सलाम) का जन्म एक चमत्कार है, क्योंकि उनकी माता बाँझ थीं, पिता बूढ़े हो गए थे। फिर ऐसा हुआ कि आपके पिता ज़करीया को मरयम का संरक्षक नियुक्त किया गया। क्योंकि मरयम की माता ने उन्हें मस्जिदे-अक़्सा की सेवा के लिए भेंट कर दिया था। अब क़ुरआन में है –

«जब कभी ज़करीया मरयम की उपासना-कोठरी में जाता तो उसके पास जीविका पाता। उसने कहा, "मरयम ये वस्तुएँ तुझे कहाँ से मिलती हैं?" उसने कहा, "ये अल्लाह के पास से हैं। निस्संदेह अल्लाह जिसे चाहता है अनगिनत जीविका देता है।" उस समय ज़करीया ने अपने रब को पुकारा। रब! तू मुझे अपने पास से अच्छी सन्तान प्रदान कर। निस्संदेह तू प्रार्थना सुननेवाला है।» (सूरा-3, आले-इमरान, आयत 37-38)

ज़करीया की इच्छा थी की अल्लाह उन्हे कोई ऐसा पुत्र दे दे जो उनके बाद उनकी जाति को उपदेश देता रहे, क्योंकि वे देखते थे कि इस समय बनी-इसराईल विभिन्न प्रकार की बुराइयों में घिर गए हैं। एकेश्वरवाद को, जो उनके पूर्वजों तथा सारे नबियों का धर्म-सिद्धान्त था, छोड़कर मूर्ति-पूजा में लग गए हैं। लेकिन वे अपनी आयु और अपनी पत्नी के बाँझपन पर विचार करके अपनी इच्छा को दबाए हुए थे। परन्तु जब देखा कि मरयम के पास ऐसी जीविका पहुँच रही है, जिसका समय नहीं था तो उनको पुत्र के लिए प्रार्थना का साहस हो गया।

क़ुरआन में एक दूसरे स्थान पर ज़करीया (अलैहिस्सलाम) का क़िस्सा इस प्रकार बयान हुआ है –

«वर्णन है तेरे रब की दयालुता का, जो उसने अपने बन्दे ज़करीया पर दर्शाया। जबकि उसने अपने रब को चुपके-चुपके पुकारा –

उसने कहा, "मेरे रब! मेरी हड्डियाँ कमज़ोर और निर्बल हो गईं और सिर बुढ़ापे से भड़क उठा। रब! तुझे पुकारकर मैं कभी बेनसीब नहीं रहा। मैं अपने पीछे अपने भाई-बन्धुओं (की अवज्ञा) से डरता हूँ और मेरी पत्नी बाँझ है। अत: तू मुझे अपने पास से एक उत्तराधिकारी प्रदान कर। जो मेरा वारिस हो और याक़ूब के कुल का भी वारिस हो। और उसे ऐ मेरे रब! वांछनीय बना।"

(कहा गया) "ऐ ज़करिया! हम तुझे एक लड़के की शुभ सूचना देते हैं। जिसका नाम यह्या होगा। हमने उससे पहले किसी को उस जैसा नहीं बनाया।"

उसने कहा, "मेरे यहाँ लड़का कैसे होगा जब कि मेरी स्त्री बाँझ है और मैं बुढ़ापे की अन्तिम अवस्था को पहुँच चुका हूँ?"

कहा, "ऐसे ही होगा। तेरे रब ने कहा है कि यह तो मेरे लिए सहज है, इससे पहले मैं तुझे पैदा कर चुका हूँ, जबकि तू कोई चीज़ न था।
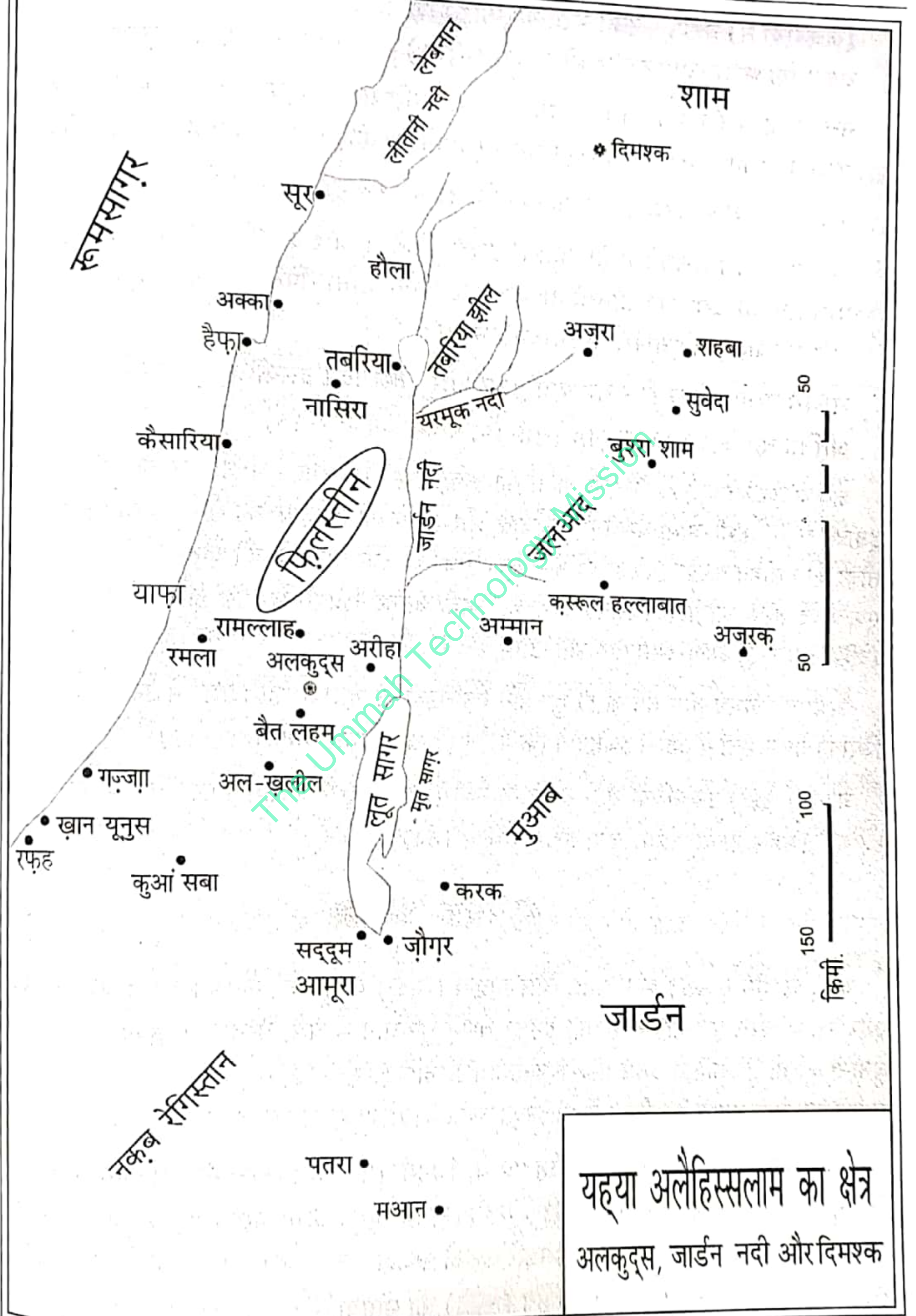
(ज़करीया ने) कहा, "रब ! मेरे लिए कोई निशानी ठहरा दे।" कहा, "तेरे लिए निशानी यह है कि भला-चंगा रहकर भी तीन रात (दिन) तू लोगों से बात न कर सकेगा।"

तब वह हुजरे (कमरे) से निकलकर अपनी जातिवालों के पास आया और उनसे संकेतों में कहा : प्रात:काल और सन्ध्या समय (अपने रब की) तसबीह (महिमागान) करो।

(उसके बेटे से कहा गया) "ऐ यह्या ! किताब को मज़बूत-थाम ले।"

और हमने उसे बचपन में ही 'हुक्म' प्रदान किया। और अपनी ओर से अनुकम्पा और पवित्रता भी और वह डरनेवाला था और अपने माता-पिता का हक़ पहचानता था। और वह जब्र करनेवाला, अवज्ञाकारी न था।

सलाम उसपर जिस दिन वह पैदा हुआ और जिस दिन उसकी मृत्यु हो और जिस दिन जीवित कर के उठाया जाए।» (सूरा-19, मरयम, आयतें 2-15)

जब यहया बड़े हुए तो ऊँट के बालों का कपड़ा पहनकर जंगलों में चले जाते। वहीं अल्लाह की इबादत करते, कभी-कभी बस्ती में आ जाते और लोगों को अल्लाह का सन्देश सुनाते। उन्हें पापों से तौबा की नसीहत करते, (देखिए : इंजील लूका 3:4-5) और अल्लाह की यातना से डराते। क़ुरआन में एक शब्द हसूर आया है जिसका अर्थ है, उनके अन्दर स्त्रियों के पास जाने की इच्छा नहीं थी। (देखिए : सूरा-3, आले-इमरान, आयत-39)

अभी वे लगभग तीस वर्ष के ही हुए होंगे कि यहूदा के शासक 'हीरोदीस' ने उनकी हत्या करा दी, जिसका वर्णन मत्ती ने अपनी इंजील में किया है। (देखिए : इंजील मत्ती 14:1-11)

यहया (عليه السلام) उन नबियों में से थे जिनसे नबी (ﷺ) से दूसरे आसमान पर मेराज की रात मुलाक़ात हुई थी। (सहीह बुख़ारी 3207 तथा सहीह मुस्लिम 164)

यूसुफ़ (عليه السلام)

यह इबराहीम (عليه السلام) के परपोते, और याक़ूब (عليه السلام) के पुत्र थे। लगभग 1745 ईसा पूर्व पैदा हुए और 1635 ईसा पूर्व देहान्त हुआ। इनका वर्णन क़ुरआन में बड़े विस्तार से हुआ है, बल्कि उनके वृत्तान्त को तो क़ुरआन ने उत्तम क़िस्सा बताया है। (देखिए : सूरा-12, यूसुफ़, आयत-3) और उनके नाम से पूरी एक सूरत उतारी है। तौरात में भी इनका वर्णन है। संक्षेप में इनका वृत्तान्त प्रस्तुत किया जाता है—

हज़रत याक़ूब (عليه السلام) के कुल बारह पुत्र थे, जिनमें यूसुफ़ और बिनयामीन आपकी पत्नी राहील से पैदा हुए, जिनका बिनयामीन की पैदाइश में देहान्त हो गया। अभी यूसुफ़ छोटे ही थे कि उन्होंने एक स्वप्न देखा। सूर्य, चाँद तथा ग्यारह सितारे उनको सजदा कर रहे हैं। क़ुरआन में है कि उन्होंने अपने स्वप्न के बारे में केवल अपने पिता याक़ूब (عليه السلام) को बताया—

«उसने कहा, "ऐ मेरे बेटे! अपना स्वप्न अपने भाइयों को न बताना, नहीं तो वे तेरे विरुद्ध कोई चाल चलेंगे। निश्चय ही शैतान मनुष्य का खुल्लम खुल्ला शत्रु है।» (सूरा-12, यूसुफ़- आयत-5)

लेकिन बाइबल की किताब उत्पत्ति में है कि आपने अपना यह स्वप्न अपने पिता तथा भाइयों को बताया (देखिए: उत्पत्ति 37:5) और स्पष्ट है कि यह सहीह नहीं है, क्योंकि याक़ूब (अलैहिस्सलाम) दूसरे पुत्रों की अपेक्षा यूसुफ़ को अधिक चाहते थे, जिसके कारण उनके दूसरे भाई उनसे घृणा करते थे। इसलिए अगर उनको यह स्वप्न बता देते तो यह उनके लिए अत्यन्त कष्टदायक होता। और उनसे और अधिक घृणा करने लगते। यहाँ सूर्य और चाँद से अभिप्राय आपके माता-पिता हैं और ग्यारह सितारों से अभिप्राय आपके ग्यारह भाई हैं, जिनमें दस दूसरी माँओं से थे। और यूसुफ़ (अलैहिस्सलाम) और बिनयामीन एक माँ से थे। क़ुरआन ने उनके भाइयों की घृणा का इस प्रकार वर्णन किया है –

«वास्तव में यूसुफ़ और उसके भाइयों की कथा में इन सवाल करनेवालों के लिए निशानियाँ हैं।[1] जबकि उन्होंने कहा: यूसुफ़ और उसका भाई (बिनयामीन) हमारे पिता को हमसे अधिक प्रिय हैं। जबकि हम सब एक पूरा जत्था हैं। वास्तव में हमारे पिता स्पष्टत: बहक गए हैं। यूसुफ़ की हत्या कर डालो, या किसी भू-भाग में फेंक आओ, ताकि तुम्हारे पिता केवल तुम्हारा ध्यान रखें और उसके बाद फिर हम एक भली जाति बनकर रहेंगे। उनमें से एक बोलनेवाला कहने लगा: यूसुफ़ की हत्या मत करो, बल्कि उसे किसी गहरे कुएँ में डाल दो, कोई यात्री उसे उठा ले जाएगा।» (सूरा–12, यूसुफ़, आयत–7-10)

बाइबल की किताब उत्पत्ति में है कि यह कहनेवाला उनका भाई रोबीन था। उसका विचार था कि जब ये लोग यहाँ से चले जाएँगे तो यूसुफ़ को जीवित निकालकर अपने पिता के पास पहुँचा दिया जाएगा। (उत्पत्ति 37/21)

लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि यह कहनेवाला यूसुफ़ (अलैहिस्सलाम) का सगा छोटा भाई बिनयामीन होगा, जिसके जन्म के समय उनकी माता का देहान्त हो गया था। इसलिए याक़ूब इन दोनों भाइयों पर अधिक ध्यान देते थे जिसके कारण उनके दूसरे भाई ईर्ष्या करते थे।

इस प्रकार जब उन्होंने यह निर्णय कर लिया कि यूसुफ़ को किसी बहाने बाहर ले जाकर कुएँ में डाल दिया जाए, तो उन्होंने अपने पिता से कहा –

---

[1] सूरा यूसुफ़ मक्के में उतरी जहाँ यहूदी नहीं थे, इसलिए यह प्रश्न करनेवाले मक्के के काफ़िर ही होंगे, जिन्होंने यूसुफ़ के विषय में कहीं से कुछ सुन रखा था, इसलिए उनका प्रश्न यह था कि अगर तुम सच्चे नबी हो और दावा करते हो कि तुम पर वह्य उतरती है तो यूसुफ़ की कथा विस्तारपूर्वक सुनाओ। आप तो जानते हैं कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को लिखना पढ़ना नहीं आता था। फिर यूसुफ़ (अलैहिस्सलाम) की कहानी इस प्रकार पूरे विस्तार के साथ बता देना इस बात का प्रमाण है कि यह 'वह्य' है, जिसका वर्णन सूरा-12, यूसुफ़ में बहुत विस्तार से हुआ है।

«वे बोले : ऐ हमारे बाप ! क्या बात है कि यूसुफ़ के विषय में आप हमपर विश्वास नहीं करते, जबकि हम उसका हित चाहनेवाले हैं। कल उसे हमारे साथ भेज दीजिए, ताकि जंगल में खूब खाए- पिए, और खेले-कूदे। हम उसकी रक्षा करनेवाले हैं।

उसने कहा : तुम्हारे साथ उसके जाने से मुझे दुःख होगा, (मुझे) डर है कि कहीं उसे कोई भेड़िया न खा ले और तुम उससे ग़ाफ़िल रहो।

उन्होंने कहा : हमारे इतने बड़े जत्थे के होते हुए भी यदि उसे भेड़िए ने खा लिया तब तो निश्चय ही हम सब कुछ गँवा बैठे।» (सूरा–12, यूसुफ़, आयत–11-14)

उनके आग्रह पर याक़ूब (عليه السلام) ने यूसुफ (عليه السلام) को साथ भेज दिया, परन्तु उनका हृदय व्याकुल रहा कि यूसुफ़ के साथ कुछ अशुभ न हो जाए।

«फिर जब ये लोग उसे ले गए और इस बात पर सहमत हो गए कि उसे एक गहरे कुएँ की तह में डाल दें, (तो उन्होंने वही किया जो वे करना चाहते थे, अर्थात कुएँ में डाल दिया) और हमने यूसुफ़ की ओर 'वह्य' की कि एक समय आएगा जब तू उनको इस कर्म से अवगत कराएगा और वे तुझको न जान पाएँगे।» (सूरा–12, यूसुफ़, आयत–15)

क़ुरआन जिस प्रकार यूसुफ़ (عليه السلام) का वृत्तान्त बयान करता है, उसमें निरंतरता पाई जाती है। परन्तु बाइबल की किताब उत्पत्ति में यह बताया गया है कि स्वयं याक़ूब (عليه السلام) ने यूसुफ़ (عليه السلام) के भाइयों को ढूँढने के लिए भेजा, जो मार्ग में भटक गए और किसी के बताने पर उन तक पहुँच सके। जब भाइयों ने उनको देखा तो उनकी हत्या का प्रोग्राम बनाया। (देखिए : उत्पत्ति 37/14-22) भला यह बात कैसे सत्य हो सकती है। जबकि याक़ूब (عليه السلام) तो स्वयं डरते थे कि कहीं यूसुफ़ के भाई उसको हानि न पहुचाएँ, इसलिए यह बात संभव नहीं है कि वे यूसुफ़ को तलाश करने के लिए स्वयं उनके भाइयों को भेजते। क़ुरआन में है–

«और अंधेरा हो जाने पर वे रोते हुए अपने पिता के पास पहुँचे। कहने लगे : ऐ हमारे बाप ! हम परस्पर दौड़ में मुक़ाबला करते हुए दूर निकल गए और यूसुफ़ को हमने अपने सामान के पास छोड़ दिया था कि इतने में भेड़िया उसे खा गया। आप तो हमपर विश्वास नहीं करेंगे, यद्यपि हम सच्चे ही क्यों न हों। और वे उसके कपड़े पर झूठ-मूठ का रक्त लगा लाए थे। उसने कहा : बल्कि तुम्हारे जी ने यह बात गढ़ ली है। बस अब तो धैर्य से ही काम लेना है। और अल्लाह ही सहायता करनेवाला है।» (सूरा–12, यूसुफ़, आयत–16,17)

कहते हैं कि उन्होंने एक बकरा ज़िबूह किया, और उसका रक्त यूसुफ़ की क़मीज़ पर लगाकर अपने पिता को दिखाया। वे समझ गए कि यह सब एक चाल है, क्योंकि अगर यूसुफ़ को भेड़िया चीर-फाड़कर खाता तो उसकी क़मीज़ भी फटी होती, परन्तु वह तो बिल्कुल ठीक-ठाक थी।

अब आगे का क़िस्सा सुनिए –

«और एक क़ाफ़िला आया और यात्रियों ने पानी भरने के लिए अपने एक व्यक्ति को भेजा। ज्यों ही उसने अपना डोल कुएँ में डाला तो पुकार उठा : क्या ही प्रसन्नता की बात है कि यहाँ एक बालक है। फिर उन्होंने उसे व्यापार का सामान समझ कर छुपा लिया। किन्तु जो कुछ वे कर रहे थे अल्लाह तो उसे जानता ही था।» (सूरा–12, यूसुफ़, आयत–19)

इस वृत्तान्त में एक बड़ा संदेश छुपा हुआ है। वह यह कि अल्लाह अपने अन्तिम नबी मुहम्मद (ﷺ) को बताना चाहता है कि जिस प्रकार यूसुफ़ राज सिंहासन पर विराजमान हुए और उनके भाई विवश होकर उनके दरबार में हाज़िर हुए उसी प्रकार आप भी विजयी होंगे और मक्का के विधर्मी अपमानित तथा विवश आपके सामने खड़े होंगे। और फिर मक्का युद्ध के पश्चात् ऐसा ही हुआ।

जब यात्री क़ाफ़िला यूसुफ़ को निकालकर ले गया तो उनके भाइयों ने उनका पीछा किया और कहा कि यह हमारा सेवक है, हमसे बिछड़ गया था, परन्तु हम इससे परेशान हैं, तुम इसको ख़रीद लो। उन्होंने उसे बीस दिरहम में ख़रीद लिया। दस भाइयों ने दो-दो दिरहम बाँट लिए। ग्यारहवाँ भाई यहूदा ने अपना हिस्सा नहीं लिया। क़ुरआन में यूँ आया है –

«और उन्होंने उसे कम दामों पर कुछ दिरहमों में बेच दिया और उससे उन्हें कोई विशेष लगाव नहीं था» (सूरा-12, यूसुफ़, आयत-20)

ये बेचनेवाले कौन थे ? यूसुफ़ के भाई या क़ाफ़िलेवाले ? तौरात की किताब उत्पत्ति से पता चलता है कि वे यूसुफ़ के भाई थे जिन्होंने यूसुफ़ को बेच दिया था और फिर क़ाफ़िले ने उन्हें मिस्र के एक व्यक्ति के हाथ बेच दिया। जिसका नाम बाइबल में फ़ोतीफ़ार लिखा है, जो मिस्र का दारोग़ा था। क़ुरआन ने उसको 'अज़ीज़' कहा है जो उसकी उपाधि हो सकती है अर्थात प्रमुख अधिकारी।

दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि क़ाफ़िले के लोग यूसुफ़ को कुएँ से निकालकर मिस्र ले गए, और वहाँ उन्होंने उनको सस्ते दामों में बेच दिया। परन्तु इसमें संदेह पैदा होता है कि इतने प्रिय बालक को उन्होंने सस्ते दामों क्यों बेचा और उनको इससे लगाव क्यों नहीं था ? जबकि अभी उनकी उम्र केवल सत्तरह वर्ष की थी। इसलिए सस्ते दामों में बेचना और उनसे विशेष लगाव न होना आदि सब बातें यूसुफ़ के भाइयों की ओर संकेत कर रही हैं, क्योंकि उनको तो उससे छुटकारा चाहिए था। यही विचार अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास का है। और इसी को क़ुरआन के प्रमुख भाष्यकार इब्ने-जरीर-तबरी ने भी प्राथमिकता दी है।

हाँ, तौरात में एक और अद्भुत बात कही गई है कि जिस क़ाफ़िले ने यूसुफ़ को कुएँ से निकाला और मिस्र में किसी व्यक्ति के हाथ बेच दिया वह हज़रत इसमाईल के वंश से सम्बन्ध रखता था, जो जिलआद से गर्म मसाला, तेल, इत्यादि सामग्री लेकर बेचने के लिए मिस्र जा रहा था।

यूसुफ़ अलैहिस्सलाम का क्षेत्र

यह बात सब जानते हैं कि इसमाईल (عليه السلام) की संतान मक्का में आबाद थी और मक्का से मिस्र जाने के दो मार्ग हैं। एक जिद्दा या यंबूअ से समुद्र के द्वारा, दूसरा रेगिस्तान सीना के द्वारा। और इन दोनों मार्गों में वह स्थान नहीं आता जहाँ यूसुफ़ को कुएँ में फेंका गया था, अर्थात् दोसान जो शाम में शुकेम के निकट, समिरा से नौ मील की दूरी पर है, तो फिर इसमाईली वहाँ कैसे पहुँचे ?

इससे स्पष्ट होता है कि बनी-इसराईल ने जो हाजरा और उनके पुत्र इसमाईल से जिस प्रकार बिल्कुल प्रारम्भ में घृणा की थी वह अभी तक बाक़ी है और हर अवसर पर अपनी घृणा का प्रदर्शन करते रहते हैं। यही कारण है कि जब मुहम्मद (ﷺ) ने जो बनी-इसमाईल से थे, नुबूवत की घोषणा की तो यहूदी तुरन्त आपका विरोध करने लगे।

आगे का क़िस्सा यह है कि क़ाफ़िले ने यूसुफ़ को मिस्र के दारोग़ा के हाथ बेच दिया, जिसको क़ुरआन ने अज़ीज़ की उपाधि प्रदान की है, जिसका अर्थ है–प्रमुख अधिकारी। जिसका नाम पोतीफार था, उसकी स्त्री, जिसका नाम ज़ुलेखा या राईल था (परन्तु तौरात में इन दोनों में से कोई नाम नहीं आया है। हो सकता है यह नाम इसराईली शास्त्र ग्रन्थों में पाया जाता हो।) यूसुफ़ के सौन्दर्य पर

मोहित हो गई, और भिन्न-भिन्न प्रकार से उनको रिझाने लगी। एक बार तो उसने अन्दर से द्वार बंद कर लिया जिससे यूसुफ़ घबरा उठे और भागने लगे। स्त्री के हाथ में उनकी क़मीज़ आ गई। जब दारोग़ा आया तो उसकी पत्नी ने उसे भड़काया और झूठ बोलते हुए यूसुफ़ पर तुहमत लगाई, दारोग़ा अपनी पत्नी की बातों में आ गया। अन्त में उसी के घर के एक व्यक्ति ने यह सुझाव दिया कि अगर उसकी कमीज़ सामने से फटी है तो यूसुफ़ अपराधी है और अगर पीछे से फटी है तो तुम्हारी पत्नी। दारोग़ा ने देखा कि उसकी क़मीज़ पीछे से फटी है। इसलिए उसे विश्वास हो गया कि यूसुफ़ सच्चा है, उसकी पत्नी झूठी है। यह समाचार मिस्र में फैल गया कि दारोग़ा (अज़ीज़) की पत्नी अपने सेवक पर मोहित हो गई है। शहर की औरतें इस बारे में तरह-तरह की बातें करने लगीं। एक दिन उसने अपने भवन में नगर की विशिष्ट महिलाओं के लिए भोज का आयोजन किया। उन्हें आमंत्रित किया और सबके आगे छुरी रख दी, ताकि उसके द्वारा वे फल इत्यादि काटकर खाएँ, और यूसुफ़ (عليه السلام) से कहा कि तू इनके सामने निकलकर आ। जब महिलाओं ने उनको देखा तो वे सभी उनपर मोहित हो गईं और मोहितावस्था में फल काटते हुए उन्होंने अपने हाथ काट डाले और पुकार उठीं कि यह मनुष्य नहीं, बल्कि यह तो कोई भला फ़रिश्ता है। फिर अज़ीज़ की स्त्री ने कहा कि यह वही है जिसके विषय में तुमने निन्दा की थी। जब तुम उसकी सुन्दरता के दर्शन मात्र से निश्चेष्ट हो उठीं और अपना यह हाल बनाया कि अपने हाथ घायल कर डाले, तो मुझे उसके प्रेम में फँसने पर क्यों दोष दे रही हो। वास्तव में मैंने इसे रिझाने का बहुत प्रयास किया था, परन्तु यह बच निकला। अब तो मैं इससे साफ़-साफ़ कहती हूँ: यदि इसने मेरी न मानी तो मैं इसे कारागार में डलवा दूँगी, जहाँ यह अपमानित होगा। अज़ीज़ की पत्नी की यह चाल सफल रही। स्वाभिमान तथा लज्जा छोड़कर उन्होंने फिर अपने बुरे विचार प्रकट किए। यूसुफ़ ने यह सुनकर कहा कि ऐ मेरे रब, जिस बात की ओर ये मुझे बुला रही हैं, उसके मुकाबले में तो मुझे कारागार पसन्द है। ऐ मेरे रब, यदि तूने उनके दाँव-घात से मुझे न बचाया तो मैं उनकी ओर झुक जाऊँगा और मूर्खों में हो रहूँगा।

अल्लाह ने उनकी प्रार्थना सुन ली और उनको उन स्त्रियों के दाँव-घात से दूर रखा। अज़ीज़ और उसके सम्बन्धियों ने यूसुफ़ को कारागार में बन्द कर दिया। वह कारागार तो यूसुफ़ (عليه السلام) के लिए अल्लाह का संदेश फैलाने के लिए अच्छा मैदान सिद्ध हुआ। अब वे वहाँ लोगों को तौहीद की दावत देने लगे, जो (एकेश्वरवादी) इबराहीम, इसहाक़ तथा याक़ूब (عليهم السلام) की भी दावत थी। और इसी के साथ आप लोगों को उनके स्वप्न का अर्थ भी बताने लगे। एक दिन एक क़ैदी ने स्वप्न देखा कि मैं शराब निचोड़ रहा हूँ और दूसरे ने देखा कि मैं अपने सिर पर रोटियाँ उठाए हुए हूँ, जिनको पक्षी खा रहे हैं। उन दोनों क़ैदियों ने यूसुफ़ से अपने स्वप्न का अर्थ पूछा। पहले तो उन्होंने उन दोनों को तौहीद का संदेश दिया और शिर्क (बहुदेववाद) से मना किया और बताया कि यही सारे नबियों का संदेश था और फिर उनको संबोधित करके फ़रमाया—

«ऐ क़ैदख़ाने के मेरे साथियो! क्या अलग-अलग बहुत-से रब अच्छे हैं या अकेला अल्लाह, जो प्रभुत्वशाली है?» (सूरा–21, यूसुफ़, आयत–36)

स्पष्ट है कि बहुत सारे देवी-देवताओं पर विश्वास करने के बजाय एक ऐसे अल्लाह पर विश्वास करना उत्तम है जो बड़ा शक्तिशाली है।

फिर फ़रमाया –

«तुम उसके सिवा जिसकी भी बन्दगी करते हो वे तो बस निरे नाम हैं, जो तुमने और तुम्हारे पूर्वजों ने रख लिए हैं। उनके लिए अल्लाह ने कोई प्रमाण नहीं उतारा (इसलिए उनकी कोई वास्तविकता नहीं है।) सत्ता और अधिकार तो बस अल्लाह का है। उसने आदेश दिया है कि उसके अतिरिक्त किसी और की उपासना न करो। यही सीधा और सत्य धर्म है। किन्तु अधिकतर लोग इसे नहीं जानते।» (सूरा–12, यूसुफ़, आयत–40)

और फिर उन्होंने उनके स्वप्न का अर्थ बताया कि जिसने शराब निचोड़ी है वह छूट जाएगा और अपने स्वामी को शराब पिलाएगा और जिसके सर से चिड़ियाँ रोटियाँ खा रही थीं, उसको सूली पर चढ़ा दिया जाएगा और चिड़ियाँ उस का सर नोचकर खाएँगी। ऐसा ही हुआ, परन्तु यूसुफ़ (अलैहिस्सलाम) कई वर्षों तक कारागार में पड़े रहे क्योंकि वह क़ैदी यूसुफ़ (अलैहिस्सलाम) की कही बात सम्राट से कहना भूल गया। फिर ऐसा हुआ कि एक बार मिस्र के सम्राट ने एक अद्भुत स्वप्न देखा। वह यह कि सात मोटी गायों को सात दुर्बल गाएँ खा रही हैं। और अनाज की सात बालें हरी हैं और सात सूखी। उसने अपने दरबारियों को बुलाया और उनसे इस स्वप्न का अर्थ पूछा, परन्तु कोई कुछ न बता सका। अब साक़ी (शराब पिलानेवाला), जो कारागार से छूटकर वापस आया था, ने कहा कि मैं इसका अर्थ आप लोगों को बता सकता हूँ, मुझे यूसुफ़ के पास ले चलिए। आगे का क़िस्सा क़ुरआन में इस प्रकार है –

«उसने कहा, ''यूसुफ़! ऐ सत्यवान! हमें इसका अर्थ बताइए कि सात मोटी गायों को सात दुर्बल गाएँ खा रही हैं और सात बालें हरी हैं और सात सूखी हैं, ताकि मैं उन लोगों के पास लौटकर जाऊँ, कदाचित् वे जान लें।''

उसने कहा, ''सात वर्ष तक तुम लगातार खेती-बाड़ी करते रहो, तो जो कुछ काटो, उसे उसकी बालियों ही में रहने देना, सिवाय थोड़े हिस्से के जिसे तुम खाओ।

फिर इसके बाद सात (वर्ष) बड़े कठिन आएँगे तो वे सब खा जाएँगे जो पहले से तुमने उनके लिए इकट्ठा कर रखा होगा, सिवाय उस थोड़े-से हिस्से के जो तुम सुरक्षित कर लोगे।

फिर, उसके बाद एक साल ऐसा आएगा जिसमें लोगों की फ़रियाद सुन ली जाएगी (ईश्वर की दया से उनपर घोर वर्षा होगी) और वे उसमें से रस निचोड़ेंगे।»

और (स्वप्न का मतलब सुनकर) बादशाह ने कहा, ''उसे मेरे पास लाओ।'' जब दूत उसके पास पहुँचा तो उसने कहा, ''अपने स्वामी के पास लौट जा और उससे पूछ कि उन स्त्रियों का क्या मामला है जिन्होंने अपने हाथ घायल कर डाले थे।[1] निस्संदेह मेरा रब उनकी मक्कारी को भली-भाँति जानता है।

उसने पूछा, ''तुम्हें क्या मामला पेश आया जब तुमने यूसुफ़ को रिझाना चाहा ?'' वे बोल उठीं, ''धन्य है अल्लाह! हमने तो उसमें कोई बुराई नहीं पाई।'' अज़ीज़ की स्त्री ने कहा, ''अब सच्ची बात खुल गई है। वह मैं ही थी जिसने उसे फुसलाना चाहा था, और निस्संदेह वह सच्चों में से है।''

कहा, ''इससे अभीष्ट यह था कि वह (अज़ीज़) जान ले कि मैंने उसके पीठ पीछे उसके साथ कोई विश्वासघात नहीं किया है और यह कि अल्लाह विश्वासघात करनेवालों की चाल को चलने नहीं देता।

मैं यह तो नहीं कहता कि मैं बरी हूँ। जी तो बुराई पर उभारता ही है, यह और बात है कि मेरा रब ही दया करे। निस्संदेह मेरा रब बड़ा क्षमाशील और दया करनेवाला है।''

और बादशाह ने कहा, ''उसे मेरे पास ले आओ, मैं उसे अपने लिए ख़ास कर लूँगा। जब उससे बात-चीत की तो उसने कहा कि अब तू हमारे यहाँ बड़ा ही मरतबेवाला और अमानतदार है।''

उसने कहा, ''धरती के ख़ज़ाने मुझे सौंप दीजिए। निश्चय ही मैं रक्षक और ज्ञान रखनेवाला हूँ।''

और इस प्रकार हमने उसे (मिस्र की) धरती में सत्ता-अधिकार प्रदान किया कि वह स्वतंत्रतापूर्वक उसमें जहाँ चाहे, रहे-सहे। हम जिसपर चाहते हैं अपनी दया करते हैं और हम उत्तमकारों का बदला कभी अकारथ नहीं करते।

और जो लोग ईमान लाए और डरते रहे, उनके लिए आख़िरत का बदला ज़्यादा अच्छा है।» (क़ुरआन, सूरा-12, आयतें 43-57)

बाइबल के हिसाब से उस समय यूसुफ़ (अलैहिस्सलाम) की आयु कोई तीस वर्ष हो चुकी थी। इसमें कुल तेरह वर्ष उन्होंने बड़ी कठिनाइयों से काटे। बादशाह ने उनका विवाह भी करा दिया। उनकी पत्नी का

---

1. अर्थात् जो कुछ यूसुफ़ के साथ अज़ीज़ के घर में हुआ था उसकी सूचना सम्राट को हो गई थी। परन्तु अब यूसुफ़ चाहते थे कि स्त्रियाँ स्वयं सम्राट के समक्ष उनकी पवित्रता प्रकट करें ताकि संसारवालों के समक्ष आपकी पवित्रता सिद्ध हो जाए, इसलिए सम्राट ने उन स्त्रियों को बुलाया और उनसे पूछा कि यह हाथ घायल करने की क्या घटना है। तब उन सबने यूसुफ़ (अलैहिस्सलाम) के पवित्र होने की गवाही दी। और अज़ीज़ की पत्नी भी बोल उठी कि वह तो मैंने उसे फुसलाना चाहा, जबकि वह सच्चा है। इस प्रकार अल्लाह ने उनके संयम का वृत्तान्त क़ुरआन में बयान करके प्रलय-दिवस तक के लिए सुरक्षित कर लिया।

नाम आसनत था जो ओन के पुजारी की पुत्री थी, जिससे उनके दो पुत्र पैदा हुए: मनश्शे और एप्रम। (देखिए: उत्पत्ति 41/51)

अब बड़ी शान के साथ यूसुफ़ (अलैहिस्सलाम) मिस्र में रहने लगे, बादशाह के बाद यूसुफ़ (अलैहिस्सलाम) ही सर्वाधिक शक्तिशाली पदाधिकारी थे। इस प्रकार वह बालक, जिसको उसके भाइयों ने कुएँ में डाल दिया था, आज मिस्र राज्य में विशेष पद पर विराजमान था। उसके न्याय की दूर-दूर चर्चा होने लगी थी। मिस्र में सूखे का समय बीत गया। फिर वहाँ बहुत तेज़ी से उन्नति होने लगी। फिर ऐसा हुआ कि शाम-फ़िलस्तीन में भी सूखा पड़ गया और लोग वहाँ से मिस्र की ओर जाने लगे कि वहाँ का बादशाह बड़ा न्यायशील और रहमदिल है। इन आनेवालों में यूसुफ़ के भाई भी थे, जिनको उन्होंने पहचान लिया, परन्तु उनपर प्रकट नहीं होने दिया, वहाँ के हालात पूछते रहे। उनके माता-पिता और दूसरे भाइयों के विषय में भी पूछा और इस प्रकार अपने घर के विषय में सब कुछ मालूम कर लिया। वापस जाते हुए यूसुफ़ ने उनसे आग्रह किया कि जब तुम दुबारा आना तो अपने भाई बिनयामीन को भी साथ लाना, नहीं तो मैं तुम्हें कुछ नहीं दूँगा। (देखें कुरआन, सूरा-12, यूसुफ़, आयतें 59-61)

जब वे फ़िलस्तीन पहुँचे तो उन्होंने पिता से कहा कि इस बार हमारे साथ बिनयामीन को भी भेज दीजिए, परन्तु याक़ूब (अलैहिस्सलाम) जो एक बार अपने प्रिय पुत्र यूसुफ़ को गँवा चुके थे, अब दूसरे पुत्र को भी गँवाने का साहस नहीं रखते थे। परन्तु बेटों के आग्रह के सामने विवश हो गए। आपने चलते हुए कुछ आवश्यक उपदेश दिए जो क़ुरआन में इस प्रकार बयान हुआ है–

«और उसने कहा, "मेरे बच्चो! (मिस्र पहुँचकर) एक ही दरवाज़े से प्रवेश न करना; बल्कि विभिन्न दरवाज़ों से प्रवेश करना। यद्यपि मैं तुम्हें अल्लाह के मुक़ाबले में किसी चीज़ से बचा नहीं सकता। हुक्म तो बस अल्लाह का ही चलता है और उसी पर मेरा भरोसा है और भरोसा करनेवालों को उसी पर भरोसा करना चाहिए।

जब उन्होंने (नगर में) प्रवेश किया, जिस तरह उनके पिता ने उन्हें हुक्म दिया था, तो यह चीज़ अल्लाह के मुक़ाबले में कुछ भी उनके काम आनेवाली न थी; बस याक़ूब के जी की एक इच्छा थी जिसे उसने पूरी कर ली; निश्चय ही वह ज्ञानवाला था। इसलिए कि हमने उसे ज्ञान प्रदान किया था; परन्तु अधिकतर लोग नहीं जानते।

और ये लोग यूसुफ़ के पास हाज़िर हुए, तो उसने अपने भाई (बिनयामीन) को अपने पास ठहराया और कहा, "निश्चय ही मैं तेरा भाई हूँ, जो कुछ ये लोग करते रहे हैं तू उसपर दुखी न हो।"

फिर जब उनका सामान तैयार करा दिया, तो अपने भाई के सामान में पानी पीने का बरतन रख दिया और फिर पुकारनेवाले ने पुकारकर कहा, "ऐ काफ़िलेवालो! तुम लोग निश्चय ही चोर हो!"

वे उसकी ओर पलटते हुए बोले, "तुम्हारी क्या चीज़ खो गई है ?"

बोले, "बादशाह का पैमाना हमें नहीं मिल रहा है, जो व्यक्ति उसे ला दे उसे एक ऊँट का बोझ (अनाज इनाम में) मिलेगा, और मैं इसका ज़िम्मेदार हूँ।"

वे बोले, "अल्लाह की क़सम, तुम्हें मालूम है कि हम इसलिए नहीं आए हैं कि इस देश में बिगाड़ पैदा करें और न हम चोर हैं।"

उसने कहा, "यदि तुम झूठे निकले, तो उस (चोर) की सज़ा क्या है ?"

वे बोले, "उसकी सज़ा यह है कि जिसके सामान में वह निकले वही उसका बदला ठहराया जाए, हम ज़ालिमों को इसी तरह दण्ड देते हैं।"

पहले उनके सामान से (तलाश करना) शुरू किया, फिर उसके भाई (बिनयामीन) के सामान से उसे निकाल लिया। इस तरह हमने यूसुफ़ के लिए उपाय किया। वह बादशाह के क़ानून से अपने भाई को हासिल नहीं कर सकता था। यह और बात है कि अल्लाह ऐसा चाहता। हम जिसके चाहते हैं दरजे ऊँचे कर देते हैं, और एक जाननेवाला ऐसा भी है जो हर जाननेवाले से उच्च है।

उन्होंने कहा, "यदि यह चोरी करता है, तो इस से पहले इसका एक भाई भी चोरी कर चुका है।"

यूसुफ़ ने इसे अपने जी में ही रखा और इसे उन पर प्रकट नहीं किया, कहा, "तुम लोग बड़े ही बुरे हो। और जो कुछ तुम बयान करते हो अल्लाह उसे भली-भाँति जानता है।"

उन्होंने कहा, "ऐ अज़ीज़ (अधिकारी पुरुष)! इसका बाप बहुत बूढ़ा है, इसकी जगह हममें से किसी को रख लीजिए। हम तो देखते हैं कि आप उत्तमकारों में से हैं।"

उसने कहा, "इस बात से अल्लाह बचाए कि जिसके पास हमने अपना माल पाया, उसे छोड़कर किसी और को हम पकड़ लें। यदि हम ऐसा करें तो निश्चय ही हम ज़ालिम होंगे।"

फिर जब वे उससे निराश हो गए, तो विचार-विमर्श के लिए अलग हो बैठे। उनमें जो बड़ा था, उसने कहा, "क्या तुम नहीं जानते कि किस तरह तुम्हारा बाप तुमसे अल्लाह का वचन ले चुका है और इससे पहले तुम यूसुफ़ के मामले में कोताही कर चुके हो ? तो मैं तो इस जगह से कदापि नहीं जा सकता जब तक कि मेरे पिता मुझे इजाज़त न दें, या अल्लाह ही मेरे हक़ में कोई फ़ैसला न करे। और वह सब से अच्छा फ़ैसला करनेवाला है।

तुम अपने बाप के पास लौटकर जाओ और कहो, "ऐ हमारे पिता! आपके बेटे ने चोरी की है। हमने तो वही बयान किया जो हमें मालूम हो सका है; हम कोई परोक्ष की निगहबानी करनेवाले तो हैं नहीं।

उस बस्ती से पूछ लीजिए जहाँ हम थे और उस क़ाफ़िले से भी जिसके साथ होकर हम आए हैं। और निस्संदेह हम बिलकुल सच्चे हैं।"

(बाप से ये बातें कहीं तो) उसने कहा, "नहीं, बल्कि तुम्हारे जी ने तुम्हें पट्टी पढ़ाकर एक बात बना दी है, अब धैर्य से काम लेना ही उत्तम है! बहुत सम्भव है कि अल्लाह उन सब को मुझ से मिला दे। वह तो जाननेवाला और तत्त्वदर्शी है।"

और उसने उन लोगों की ओर से मुँह फेर लिया और कहने लगा, "हाय अफ़सोस यूसुफ़ की जुदाई पर!" ग़म के मारे उस की दोनों आँखें सफ़ेद पड़ गईं और वह घुटता जा रहा था।

कहने लगे, "अल्लाह की क़सम, आप तो यूसुफ़ ही की याद में लगे रहेंगे, यहाँ तक कि अपने आपको घुला देंगे या प्राण ही दे देंगे।"

उसने कहा, "मैं तो अपनी परेशानी और अपने ग़म की शिकायत अल्लाह ही से करता हूँ और अल्लाह की ओर से मैं वह कुछ जानता हूँ जो तुम नहीं जानते।

मेरे बेटो! जाओ, यूसुफ़ और उसके भाई की टोह लगाओ और अल्लाह की दयालुता से निराश न हो। अल्लाह की दयालुता से तो काफिर लोग ही निराश होते हैं।"

फिर जब ये लोग उसके पास हाज़िर हुए, तो कहा, "ऐ अज़ीज़! हमें और हमारे घरवालों को बड़ी तकलीफ़ पहुँची है और हम कुछ थोड़ी-सी पूँजी लेकर आए हैं, किन्तु आप हमें पूरी माप से दे दीजिए। और हम पर सदक़ा कीजिए। निस्संदेह अल्लाह सदक़ा करनेवालों को बदला देता है।"

उसने कहा, "तुम्हें यह भी मालूम है कि तुमने यूसुफ़ और उसके भाई के साथ क्या किया था, जब तुम नादान थे।"

वे बोल पड़े, "क्या यूसुफ़ तुम ही हो?" उसने कहा, "मैं ही यूसुफ़ हूँ और यह (बिनयामीन) मेरा भाई है। अल्लाह ने हम पर बड़ा एहसान किया। सच तो यह है कि जो कोई डर रखता है और धैर्य से काम लेता है, अल्लाह ऐसे उत्तमकारों का बदला अकारथ नहीं करता।"

उन्होंने कहा, "अल्लाह की क़सम, तुम्हें अल्लाह ने हमारे मुक़ाबले में पसन्द किया और निश्चय ही ग़लती पर हम ही थे।"

उस ने कहा, "आज तुम्हारी कोई पकड़ नहीं ! अल्लाह तुम्हें क्षमा करे, वह सब दया करनेवालों से बढ़कर दया करनेवाला है।

मेरा यह कुरता लेकर जाओ और इसे मेरे बाप के मुँह पर डाल दो, वे देखने लगेंगे; और अपने सब घरवालों को मेरे पास ले आओ।"

जब क़ाफ़िला चला तो उनके बाप ने कहा, "यदि तुम मुझे सठियाया हुआ न समझो तो मुझे तो यूसुफ़ की महक आ रही है।"

लोग बोले, "अल्लाह की क़सम, आप तो अभी तक अपने पुराने भ्रम में पड़े हुए हैं।"

फिर जब शुभ सूचना देनेवाला आया तो उसने उस (कुरते) को उसके मुँह पर डाल दिया तो वह देखने लगा। उसने कहा, "क्या मैंने तुमसे कहा न था कि मैं अल्लाह की ओर से वह कुछ जानता हूँ जो तुम नहीं जानते ?"

वे बोले, "ऐ हमारे बाप ! आप हमारे गुनाहों के लिए क्षमा की प्रार्थना कीजिए, हम सचमुच ग़लती पर थे।"

उसने कहा, "मैं अपने रब से तुम्हारे लिए क्षमा की प्रार्थना करूँगा। निस्संदेह वह बड़ा क्षमाशील और दया करनेवाला है।"

फिर जब वे यूसुफ़ के पास पहुँचे, तो उसने अपने माता-पिता को अपने पास जगह दी, और कहा, "तुम सब नगर में प्रवेश करो। अल्लाह ने चाहा ! तो तुम्हारे लिए हर तरह की सलामती है।

और (नगर में पहुँचे तो) उसने अपने माता-पिता को सिंहासन पर बिठाया और सब उसके आगे सजदे में गिर पड़े।[1]

उसने कहा, "मेरे रब ने उसे सच्चा कर दिया, उसने मुझ पर एहसान किया, जबकि मुझे क़ैद से निकाला और आप लोगों को देहात से लाया, यद्यपि शैतान ने मेरे और मेरे भाइयों के बीच उकसाहट डाल दी थी। निस्संदेह मेरा रब जो चाहता है, उसके लिए उत्तम उपाय करता है। निस्संदेह वह जाननेवाला और तत्वदर्शी है।

रब ! तूने मुझे राज्य प्रदान किया और मुझे बातों की तह तक पहुँचने की सीख दी। आकाशों और धरती के पैदा करनेवाले ! तू ही दुनिया और आख़िरत में मेरा संरक्षक-मित्र है। मुझे इस अवस्था में उठा कि मैं मुस्लिम (आज्ञाकारी) हूँ और मुझे अच्छे लोगों के साथ मिला।"

---

[1]. अर्थात् आपके पिता और सौतेली माँ, क्योंकि आपकी सगी माता का तो पहले ही देहान्त हो चुका था।

(ऐ मुहम्मद !) यह (यूसुफ़ का वृत्तान्त) परोक्ष की ख़बरों में से है, जिसे हम तुम्हारी ओर वह्य कर रहे हैं। तुम उनके पास तो नहीं थे, जब उन्होंने छिपी तदबीरें करते हुए एक मत होकर अपना फ़ैसला किया।» (सूरा-12, यूसुफ़, आयतें 63-102)

यह जो कुछ क़ुरआन में बयान हुआ है यह वह्य है, क्योंकि न तो नबी (ﷺ) लिखना-पढ़ना जानते थे कि पढ़कर बयान करें और न ही आप उस समय मौजूद थे जब यूसुफ़ के साथ यह सब कुछ हो रहा था। बल्कि वे छिप-छिपकर विभिन्न प्रकार की तदबीरें कर रहे थे। इससे मुहम्मद (ﷺ) की नुबूवत का प्रमाण मिलता है और इस बात की भी पुष्टि होती है कि क़ुरआन अल्लाह की ओर से भेजी हुई किताब है, जिसमें कोई संदेह नहीं है।

इस प्रकार यूसुफ़ (عليه السلام) के कारण याक़ूब (عليه السلام) की संतान मिस्र में बस गई, जहाँ उनको ख़ूब फलने-फूलने का अवसर मिला। परन्तु फिर वहाँ से निकलना पड़ा।

बाइबल के अनुसार जब यूसुफ़ (عليه السلام) एक सौ दस वर्ष के हो गए तो उनका देहान्त हो गया। मिस्रियों की परम्परा के अनुसार उनके शव को मोमियाया गया। और जब बनी इसराईल मिस्र से निकले तो वे यूसुफ़ (عليه السلام) का ताबूत भी साथ लाए, और शकीम में दफ़न कर दिया। (देखिए: ख़ुरूज 13/19 तथा यशूअ 24/32)

इसमें कोई शक नहीं है कि अल्लाह ने यूसुफ़ (عليه السلام) को अपना नबी बनाकर भेजा। क़ुरआन में है–

«इससे पहले तुम्हारे पास यूसुफ़ खुले प्रमाण लेकर आया परन्तु वह जो कुछ लेकर तुम्हारे पास आया तुम उसके बारे में बराबर संदेह में पड़े रहे, यहाँ तक कि जब उसकी मृत्यु हो गई तो तुम कहने लगे कि अल्लाह उनके पश्चात् कदापि कोई रसूल नहीं भेजेगा, इस प्रकार अल्लाह उस व्यक्ति को पथ-भ्रष्ट कर देता है जो बहुत अधिक संदेह में पड़ जाता है।» (सूरा–40, अल-मोमिन, आयत–34)

यूसुफ़ (عليه السلام), का संदेश भी वही था, जो दूसरे नबियों तथा रसूलों का था। वह यह कि अल्लाह एक है, उसी ने इस संसार को पैदा किया है इसलिए वही पूजनीय है, उसके अतिरिक्त कोई पूज्य नहीं। और जिनकी लोग पूजा-पाठ करते हैं, ये तो स्वयं लोगों के बनाए हुए हैं, जिनको उन्होंने विभिन्न नाम दे रखे हैं, ये पूज्य कैसे हो सकते हैं ? (देखिए: सूरा- 12, यूसुफ़, आयत-37-40)

र

रूम

रूम क़ुरआन में एक सूरा का नाम है, जिसकी क्रम संख्या तीस है। इस सूरा में और बातों के अतिरिक्त एक भविष्यवाणी की गई है –

«अलिफ़-लाम-मीम। रूमी निकटवर्ती क्षेत्र में पराभूत हो गए हैं, और वे अपने पराभव के पश्चात् कुछ ही वर्षों में फिर प्रभावी हो जाएँगे । अल्लाह ही का अधिकार चलता है पहले भी और बाद में भी। और उस दिन ईमान लानेवाले प्रसन्न हो उठेंगे।» (सूरा-30, अर-रूम, आयतें 1-4)

इन आयतों को समझने के लिए हमें रूमी शासन पर एक दृष्टि डालनी होगी।

रूमी शासन की राजधानी रूम थी जिसकी नींव 753 ईसा पूर्व में पड़ी और कुछ ही दिनों में यह एक बहुत बड़ा राज्य बन गया। यह साम्राज्य इटली से लेकर उरदुन, शाम, फ़िलस्तीन तथा तुर्की तक फैल गया। तत्पश्चात् यह कई भागों में बँट गया। एक पश्चिमी रूम, जिसको बाद में इटली कहा जाने लगा और दूसरा पूर्वी रूम, यह श्वेत सागर के पूर्वी तथा उत्तरी भागों पर फैला हुआ था, और इसकी राजधानी क़ुस्तनतीनिया थी।

अल्लाह के रसूल मुहम्मद (ﷺ) को पैग़म्बरी मिले हुए अभी आठ ही वर्ष हुए थे कि रूमियों का ईरानियों से युद्ध छिड़ गया। हज़ारों लोगों को क़त्ल कर दिया गया। इस प्रकार 613 ईसवी में ईरानियों ने दमिश्क़ पर विजय प्राप्त कर ली और 614 ईसवी में बैतुल-मक़दिस भी ईसाइयों के हाथ से जाता रहा। 90 हज़ार ईसाई मारे गये, जब इसकी सूचना मक्केवालों तक पहुँची तो वे बहुत प्रसन्न हुए। उनका कहना था कि जिस प्रकार ईरान के मूर्तिपूजक ईसाइयों पर विजयी हुए, उसी प्रकार हम भी मुहम्मद (ﷺ) पर विजय प्राप्त कर लेंगे और उनको तथा उनके धर्म को नष्ट कर देंगे। क्योंकि वे ईसाई भी वह्य और तौहीद की बात करते हैं और यह मुहम्मद भी।

ऐसी परिस्थिति में सूरा रूम अवतरित होती है और भविष्य के प्रति यह सूचना देती है कि कुछ ही समय बाद रूमियों को विजय प्राप्त होगी। और उस दिन ईमानवाले अल्लाह की उस सहायता से प्रसन्न हो उठेंगे।

क़ुरआन यह सूचना ऐसी परिस्थिति में दे रहा है जिसकी उस समय कल्पना भी नहीं की जा सकती थी क्योंकि रूमी सेना निरन्तर परास्त हो रही थी और ईरानी आगे बढ़ रहे थे। इसलिए क़ुरआन की इस सूचना पर मक्का के इस्लाम- विरोधियों ने क़ुरआन, नबी (ﷺ) तथा मुसलमानों की हँसी उड़ाई।

परन्तु मुसलमानों का विश्वास था कि कुछ ही वर्षों में रूमी फिर विजयी हो जाएँगे, क्योंकि यह सूचना स्वयं अल्लाह ने अपने ग्रन्थ में दी है। इसलिए अबू-बक्र (ﷺ) ने उबई-बिन-ख़लफ़ से यह शर्त भी लगा ली कि अगर रूमी विजयी नहीं हुए तो मैं तुम्हें इतने ऊँट दूँगा, और अगर रूमी विजयी हो गए तो तुम मुझको देना। (देखिए : सुनन तिर्मिज़ी : 3193)

और फिर ऐसा ही हुआ। नबी (ﷺ) 622 ई. में मक्का से हिजरत करके मदीना पहुँचते हैं और सन 624 ई. को रूमी सम्राट हिरक़्ल आज़र-बैजान पहुँचता है और ईरानियों के सबसे बड़े अग्नि-कुंड को नष्ट कर देता है। और ईरानियों को परास्त कर देता है। यहाँ के सम्राट परवेज़ और उसके अठारह पुत्रों को क़त्ल कर दिया जाता है। और यह ठीक वही वर्ष था जब इधर बद्र के युद्ध में 313 मुसलमानों को एक हज़ार इस्लाम विरोधियों पर विजय प्राप्त होती है। अर्थात् क़ुरआन की भविष्यवाणी के दस वर्ष के अन्दर रूमी ईरान पर विजय प्राप्त करते हैं और मुसलमान मक्का के इस्लाम विरोधियों पर –

«और उस दिन ईमानवाले अल्लाह की सहायता से प्रसन्न हो जाएँगे।» (सूरा-30, अर-रूम, आयत-5)

वह युद्ध सन् 602 ई. में प्रारम्भ हुआ और सन 615 ई. में ईरानियों के आधिपत्य पर समाप्त हुआ। इस बीच रूमियों के पवित्र नगर बैतुल-मक़दिस और उनके पवित्र सलीब को भी नष्ट कर दिया गया। विचार कीजिए कि उस समय क्या कोई सोच भी सकता था कि दस वर्षों के अन्दर रूमी न केवल अपने साम्राज्य को वापस ले लेंगे, बल्कि ईरानी साम्राज्य की ईंट से ईंट बजा देंगे ? और इसी प्रकार क्या कोई यह सोच सकता था कि वे मुसलमान, जो मक्का में अत्याचार सह रहे थे और जिनके पास कोई शक्ति नहीं थी, क्या वे दस वर्षों के अन्दर मक्का के इस्लाम-विरोधियों पर विजय प्राप्त कर लेंगे ? लेकिन सबसे बड़ा शक्तिशाली तो अल्लाह है। वह जिसको चाहे विजय दे, जिसको चाहे परास्त कर दे। भला इससे भी बढ़कर कोई भविष्यवाणी हो सकती है जो इस प्रकार शत-प्रतिशत पूरी हुई हो। यह तो क़ुरआन का ऐसा चमत्कार है जिससे प्रलय दिवस तक लोग मार्गदर्शन और प्रकाश प्राप्त करते रहेंगे।

रहबानियत
(Monasticism)

तपस्या और संन्यास अर्थात् विषय-भोग का परित्याग करके शरीर और मन को दृढ़तापूर्वक सन्तुलन और समाधि की अवस्था में स्थिर रखना तप है। (देखिए : हिन्दू धर्म कोश, पृ. 294) साधना की दृष्टि से तप के तीन प्रकार है : शारीरिक, वाचिक, मानसिक।

क़ुरआन में रहबानियत का केवल एक बार उल्लेख मिलता है –

«जिन लोगों ने उसका अनुसरण किया, उनके दिलों में हमने करुणा तथा दया भर दी। रही रहबानियत (संन्यास), तो उसे उन्होंने स्वयं घड़ लिया। हमने उसे उनके लिए

अनिवार्य नहीं किया था, अनिवार्य किया था तो केवल अल्लाह की प्रसन्नता की चाहत। फिर वे उसका निर्वाह न कर सके जैसा कि उसका निर्वाह करना चाहिए था।»
(सूरा–57, अल-हदीद, आयत–27)

रहबानियत (Monasticism) अरबी शब्द 'रहब' से बना है, जिसका अर्थ है भय और डर। अर्थात् अल्लाह की यातना के भय से संसार को त्याग देना और संन्यास ले लेना रहबानियत है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी इन्द्रियों का दमन नहीं कर सकता, इसलिए वह संसार को त्याग कर तप में लग जाता है।

ईसाई धर्म में रहबानियत क्यों और कैसे आई और फिर ईसाई धर्म को मानने वाले लोग उसको क्यों निभा न सके, जिसकी ओर क़ुरआन संकेत करता है? यहाँ इस विषय का संक्षेप में वर्णन किया जाता है।

पहली बात तो यह है कि ईसा (ﷺ) की शिक्षा में रहबानियत का पता नहीं चलता, परन्तु ईसाइयों पर तीसरी शताब्दी तक जो अत्याचार होता रहा, उससे डर कर बहुत-से ईसाई अपना ईमान बचाने के लिए जंगलों की ओर भाग निकले, या पहाड़ों की गुफाओं में छिप गए। अब उनके पास जीवन व्यतीत करने की बहुत कम सामग्री थी। इसलिए कम खाने और कम पीने पर जीवन बिताने लगे, जो धीरे-धीरे संन्यास का रूप धारण करता गया।

दूसरी बात यह कि जो लोग अपना पुराना धर्म छोड़ कर ईसाइयत में दाख़िल हुए उनके हृदयों में संसार के भोग-विलास के प्रति घृणा पैदा हो गई। उनके विद्वानों ने समता का मार्ग छोड़कर कठोर जीवन व्यवस्था को अपनाने का आदेश दे दिया और इस जीवन-व्यवस्था के लिए कठोर नियम निर्धारित कर दिया। और कोई आश्चर्य नहीं कि उन्होंने बौद्ध भिक्षुओं तथा हिन्दू जोगियों से भी बहुत कुछ ग्रहण किया हो, क्योंकि ईसाई राहिबों के संन्यास के जो नियम उनकी पुस्तकों में पाए जाते हैं, वे हिन्दू जोगियों के नियमों से मिलते-जुलते हैं। जैसे : स्त्री-पुरुष के मिलाप का निषिद्ध होना, शरीर को विभिन्न प्रकार से कष्ट देना, माता-पिता तथा पुत्र के प्यार को काट फेंकना, सांसारिक जीवन को छोड़कर जंगलों तथा पहाड़ की गुफाओं में आश्रम बना कर रहना इत्यादि। ईसाइयत में रहबानियत मिस्र तथा फ़िलस्तीन से आरम्भ हुई और चौथी शताब्दी तक पूरे यूरोप में फैल गई। सेन बेनेडिक्ट (BENEDICT) ने, जो स्वयं एक बहुत बड़ा संन्यासी था, संन्यास के नियम निश्चित किए और जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि आरंभ में तो संन्यास एक आवश्यकता थी क्योंकि अत्याचार से डरकर भागनेवाले लोग संन्यासी बन गए, परन्तु कालान्तर में संन्यास ही को अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने का एक मात्र साधन बना लिया। फिर तो हालत यह हो गई कि अल्लाह की प्रसन्नता के लिए संन्यास ग्रहण करना अनिवार्य बन गया। इसके लिए उन्होंने कुछ नियम निर्धारित कर लिए, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं –

1. अपने शरीर को कष्ट पहुँचाना, जैसे कि इस्कन्दरिया का सेंट मकारियोस हर समय 40 पौंड का बोझ अपने शरीर पर लादे रखता था। छह मास तक वह एक दलदल में पड़ा रहा, मक्खी-मच्छर उसके शरीर को काटते रहे। सेन्ट बिसारियोन चालीस दिन तक एक काँटे वाले जंगल में पड़ा रहा और चालीस वर्ष तक पृथ्वी पर सोया ही नहीं। सेन्ट जॉन तीन वर्ष तक तपस्या करते हुए खड़ा रहा। इसी प्रकार सेन्ट सिमयोन जो अपने समय का महा संन्यासी था चालीस-चालीस दिन तक रोज़े रखता था। वह एक वर्ष तक एक ही पाँव पर खड़ा रहा, कुछ ऐसे भी सेंट थे जो तीस वर्ष तक मौन व्रत रखे रहे। कुछ ऐसे थे जो गुफाओं तथा जंगलों में फिरा करते थे। घास इत्यादि खाया करते थे।
2. तपस्वी के लिए यह भी एक नियम था कि वह गंदा रहे। स्नान न करे, क्योंकि उनका विचार था कि शरीर की सफ़ाई से आत्मा गंदी होती है।
3. सेंट के लिए आवश्यक था कि वह विवाह न करे, स्त्री से दूर रहे। अगर वह पहले विवाह कर भी चुका हो तो अपनी पत्नी के निकट न जाए। उनके विचार में स्त्रियों से भोग करना महा पाप है। इसी प्रकार स्त्री राहिबा के लिए भी आवश्यक था कि वह विवाह न करे बल्कि नियम के अनुसार अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करे। इसके लिए उसे विभिन्न प्रकार की परीक्षाओं से गुज़रना पड़ता था। जैसे कभी-कभी एक राहिब (संन्यासी) और राहिबा (संन्यासिन) एक चारपाई पर सोते थे, परन्तु अपनी इन्द्रियों पर पूरा-पूरा कंट्रोल रखते थे। सेंट इवाग्रेस (St. Evagrius) फ़िलस्तीन के उन संन्यासियों का वर्णन करता है जो स्त्रियों के साथ एक ही स्नानागार में स्नान करते थे। परन्तु उनकी इन्द्रियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। अन्त में ये सब ज्ञान, ध्यान, तपस्या इत्यादि प्रकृति का सामना न कर सके, और मनुष्य अपनी इन्द्रियों से पराजित हो गया, और वही आश्रम जहाँ संन्यासी विभिन्न प्रकार से तप किया करते थे, अब अश्लीलता के अड्डे बन गए। ईसाई संन्यासी अपने लिए अनिवार्य ठहराए हुए संन्यास को निभा न सके और आज भी इन आश्रमों में जो कुछ होता है उसको सुनकर घृणा आती है। इसी ओर क़ुरआन संकेत करते हुए कहता है –

«रहा संन्यास तो उसे उन्होंने स्वयं गढ़ लिया। हमने उसे उनके लिए अनिवार्य नहीं किया था। यदि अनिवार्य किया था तो केवल अल्लाह की प्रसन्नता की चाहत। फिर वे उसका निर्वाह न कर सके जैसा कि उनका निर्वाह करना चाहिए था।» (देखिए: सूरा–57, अल-हदीद, आयत–27, इस विषय पर विस्तृत जानकारी के लिए देखिए: तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-57, अल-हदीद आयत-2, टिप्पणी-54)

हिन्दू जोगियों तथा ईसाई राहिबों की तरह मुसलमानों ने भी ख़ानक़ाहें बना लीं जिनमें विभिन्न प्रकार की तपस्याएं की जाने लगीं और इस तरह की बातें किताबों में लिखी जाने लगीं जो न केवल असम्भव हैं बल्कि इस्लामी शिक्षाओं के विरुद्ध भी हैं। जैसे इशा के वुज़ु से चालीस वर्ष तक फ़ज्र की नमाज़ पढ़ना, विवाह न करना और अगर कर लिया तो पत्नी से संभोग न करना, विभिन्न प्रकार की

करामातों का दावा करना, पैर मारने से पृथ्वी का फट जाना, मलकुल मौत से आत्माएं छीन लेना, ताकि मृत्यु पानेवाले दोबारा जीवित हो उठें, हज़ारों मील दूर बैठे-बैठे पाँच नमाज़ों का बैतुल्लाह में पढ़ना, काबे का स्वयं वहाँ आ जाना जहाँ वे बैठे हुए हैं और तवाफ़ करने के पश्चात वापस चले जाना, मदीना आते ही नबी (ﷺ) से हाथ मिलाना, आप (ﷺ) को मुश्क भेंट करना जिसकी सुगन्ध आप को बहुत प्रिय थी इत्यादि। ये सब मिथ्यावाद की बातें हैं जिनसे इस्लाम धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं है।

रावी

हदीसों के बयान करनेवाले को रावी कहा जाता है। और इन्हीं रावियों की जाँच–पड़ताल के बाद हदीस पर सहीह या ज़ईफ़ का हुक्म लगाया जाता है, क्योंकि सूरा अल-हुजुरात की आयत-6 में हमें यही उपदेश दिया गया है कि यदि तुम्हारे पास कोई दुराचारी कोई ख़बर लाए तो छान-बीन कर लो। वैसे सहीह तथा ज़ईफ़ का हुक्म लगाते हुए और बहुत सारी बातें देखनी पड़ती हैं। परन्तु रावी का सच्चा होना हदीस के सहीह होने के लिए अनिवार्य है। किसी झूठे रावी की हदीस कभी सहीह नहीं हो सकती। रावियों के सच्चे और झूठे होने की भी बहुत सारी श्रेणियाँ हैं। जिनको हदीस के महान विद्वान हाफ़िज़ इब्ने-हजर (देहान्त 852 हिजरी) ने बारह श्रेणियों में बाँटा है। यहाँ इनको इसलिए बयान किया जा रहा है कि इस बात का कुछ अन्दाज़ा हो जाए कि हदीसों की जाँज-पड़ताल में कितने कठोर परिश्रम से काम लिया गया है।

रावियों की बारह श्रेणियाँ

पहली श्रेणी

जब रावी का सहाबी होना प्रमाणित हो जाए तो फिर उसके विषय में अधिक जाँच-पड़ताल की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि हमारा विश्वास है कि सब सहाबी सच्चे थे, जिसका प्रमाण स्वयं क़ुरआन तथा सहीह हदीसों में पाया जाता है।

दूसरी श्रेणी

इस श्रेणी के रावी के सच्चे होने के लिए सर्वोत्तम शब्द का प्रयोग किया जाए। अर्थात् रावी सच्चा भी हो और उसकी स्मरण शक्ति मज़बूत भी हो, जैसे कहा जाए कि वह तो बहुत सच्चा रावी है। या यह कहा जाए कि वह सच्चा है, सच्चा।

तीसरी श्रेणी

यह वह श्रेणी है जिसमें रिवायत करनेवाला व्यक्ति सच्चा तो अवश्य है परन्तु उसकी स्मरणशक्ति कुछ कम है। उसके लिए केवल एक शब्द का प्रयोग होगा, जैसे : वह सच्चा है, याद करने वाला है, ठीक है इत्यादि।

चौथी श्रेणी

यह वह श्रेणी है जिसमें रावी की स्मरण शक्ति तीसरी श्रेणीवाले से कुछ कम हो। इसके लिए 'सदूक़' शब्द का प्रयोग करते हैं, या यह कहते हैं कि इसमें कोई हरज नहीं।

पाँचवीं श्रेणी

यह वह श्रेणी है जिसमें रावी की स्मरण शक्ति चौथी श्रेणीवाले से भी कुछ कम हो। इसके लिए 'सदूक़' शब्द के साथ यह बढ़ा देते हैं कि उसकी स्मरण-शक्ति कमज़ोर है। या उसको हदीस बयान करने में कुछ भ्रम हो जाता है। या वह अन्त में भ्रमग्रस्त हो गया, या वह धर्म में सत्य सिद्धान्तों को छोड़कर बिदअत में पड़ गया। (बिदअत क्या है? इसके लिए देखिए : बिदअत।)

छठी श्रेणी

यह वह श्रेणी है जिसमें रावी की हदीसें बहुत कम हों परन्तु उसके विषय में हमारे पास कोई ऐसा ज्ञान नहीं है जिसके कारण उसकी हदीसों को छोड़ दिया जाए। तो उसके लिए 'मक़बूल' शब्द का प्रयोग किया जाता है, अर्थात ऐसे रावी को स्वीकार तो कर लेंगे, परन्तु आवश्यक है कि उसके अतिरिक्त कोई दूसरा रावी भी उस हदीस को बयान करनेवाला हो। अगर ऐसा नहीं है तो यह रावी भी स्वीकार्य नहीं। और उसकी हदीस सहीह तथा ज़ईफ़ के बीच की होगी। हदीसों का विद्वान ही इस विषय में कोई निर्णय कर सकता है। ये छः श्रेणियाँ हैं जिनके रावियों की हदीसें स्वीकार की जाएँगी। इनमें प्रथम तीन श्रेणियों की हदीस को सहीह तथा बाद की तीन श्रेणियों के रावियों की हदीस को हसन कहा जाएगा।

शेष छः श्रेणियों के रावियों की हदीस को ज़ईफ़ कहा जाएगा। फिर ज़ईफ़ हदीस की भी श्रेणियाँ हैं। जैसे : ज़ईफ़, ज़ईफ़ ज़िद्दन, मोज़ूअ, मुनकर इत्यादि।

इस प्रकार रावियों की गहन छान-बीन करने के बाद ही उनपर हुक्म लगाया जाता है। यह बहुत कठिन काम है परन्तु अल्लाह ने हर युग में ऐसे विद्वान पैदा किए जो हदीसों को परखने की पूरी योग्यता रखते थे। यहाँ एक क़िस्सा बयान किया जा रहा है जिसके पढ़ने से भली-भाँति ज्ञान हो जाएगा कि ये विद्वान किस प्रकार के होते थे।

ख़लीफ़ा हारून रशीद ने एक ज़िन्दीक़ (पथ भ्रष्ट) की हत्या करने का हुक्म दिया। उसने कहा, "ऐ अमीरुल-मोमिनीन! आपने मेरी हत्या करने का क्यों हुक्म दिया?" ख़लीफ़ा ने कहा, "ताकि अल्लाह के बन्दों को तेरे दुष्कृत्य से बचा सकूँ।" उसने कहा, "आप कैसे बचाएँगे जबकि मैंने एक हज़ार हदीसें अपनी ओर से गढ़कर लोगों में फैला दी हैं।" ख़लीफ़ा ने कहा, "ऐ अल्लाह के शत्रु! तू अबू-इस्हाक़ फ़िज़ारी तथा अब्दुल्लाह-बिन-मुबारक जैसे हदीस के विद्वानों का क्या मुक़ाबला कर सकेगा जो एक-एक अक्षर को छलनी में छानकर साफ़ कर देंगे। (देखिए : तारीख़ दमिश्क़, 7:127)

अर्थात् तेरी गढ़ी हुई हदीसों को बता देंगे कि ये मोज़ूअ हैं। इससे पूर्व बताया जा चुका है कि रावियों की संख्या पाँच लाख तक पहुँचती है, जिनके जीवन चरित्र को जानने के लिए तीन प्रकार की पुस्तकें लिखी गईं :

1. वे पुस्तकें जो सिक़ा (सच्चे) रावियों के विषय में हैं। जैसे : अस्सिक़ात
   लेखक : इजली (देहान्त : 261 हिजरी)
   – अस्सिक़ात, लेखक : इब्ने-हिब्बान (देहान्त : 354 हिजरी)
   – अस्सिक़ात, लेखक : इब्ने-शाहीन (385 हिजरी)
2. वे पुस्तकें जो ज़ईफ़ रावियों के विषय में लिखी गईं, उनके नाम ये हैं –
   – ज़ुअफ़ाए-कबीर, लेखक : बुख़ारी (देहान्त 256 हिजरी)
   – अहवाले-रिजाल, लेखक : ज़ोज़जानी (देहान्त : 259 हिजरी)
   – ज़ुअफ़ा व मतरूकीन, लेखक : नसई (देहान्त : 303 हिजरी)
   – ज़ुअफ़ाए-कबीर, लेखक : उक़ैली (देहान्त : 322 हिजरी)
   – मारिफ़तुल-मजरूहीन, लेखक : इब्ने-हिब्बान (देहान्त : 354 हिजरी)
   – अलकामिल फ़ी ज़ुअफ़ाअ, लेखक : इब्ने-अदी (देहान्त : 365 हिजरी)
3. वे पुस्तकें जो सिक़ात (सच्चे) तथा ज़ुअफ़ा (कमज़ोर) रावियों के जीवन और कृतित्व पर हैं, वे ये हैं :
   – तबक़ात कुबरा, लेखक : इब्ने-साद (देहान्त : 230 हिजरी)
   – तारीख़ कबीर, लेखक : बुख़ारी (देहान्त : 256 हिजरी)
   – तारीख़ कबीर, लेखक : इब्ने-अबी ख़ैसमा (देहान्त : 279 हिजरी)
   – जरह व तादील, लेखक : इब्ने-अबी-हातिम (देहान्त : 327 हिजरी)
   – तहज़ीबुल-कमाल फ़ी-असमाउर्रिजाल, लेखक : जमालुद्दीन मिज़्ज़ी (देहान्त 752 हिजरी)

   इस किताब में आठ हज़ार से अधिक लोगों की जीवनियाँ हैं, जो तीस भागों में प्रकाशित हुई हैं।

   – तहज़ीबुत्तहज़ीब, लेखक : हाफ़िज़ इब्ने-हजर (देहान्त 852 हिजरी)

   यह वास्तव में मिज़्ज़ी की किताब का संक्षेप है, जो बारह भागों में प्रकाशित हुई है।

   जिसमें लेखक ने अपने विचारों को भी शामिल कर दिया है। और चूँकि हाफ़िज़ इब्ने-हजर हदीस के महान विद्वान माने जाते हैं इसलिए उनके विचारों का बड़ा महत्व है।

   – तक़रीबुत्तहज़ीब, लेखक : हाफ़िज़ इब्ने-हजर (देहान्त 852 हि.)

यह तहज़ीबुत्तहज़ीब का सारांश है, जिसमें रावी के विषय में लेखक ने एक या दो शब्दों में उसकी श्रेणी को बताया है, जिसके कारण हदीस पर काम करनेवाले को बड़ी सरलता हो गई है। इन पुस्तकों के अतिरिक्त और भी विभिन्न प्रकार की पुस्तकें लिखी गई हैं। जिनमें हदीस बयान करनेवाले रावियों की जीवनियाँ हैं। ये प्रसिद्ध पुस्तकें वे हैं जो शहरों या देशों के नाम पर लिखी गई हैं। जैसे : तारीख़े-बग़दाद, तारीख़े-इस्फ़हान, तारीख़े-नेशापूर, तारीख़े-दमिश्क़, तारीख़े-मिस्र, तारीख़े-हिन्द व सिन्ध इत्यादि पुस्तकें।

❋ रावियों की परख करनेवाले विद्वान–

रावियों की परख करनेवाले (अर्थात् उनपर जरह करनेवाले) विद्वानों की संख्या लगभग पाँच सौ है, जिनके अनुसंधान एवं कथनों ही के आधार पर ये किताबें लिखी गई हैं। इन विद्वानों में सुप्रसिद्ध ये हैं।

– औज़ाई (देहान्त 158 हिजरी), शोबा (देहान्त 160 हिजरी), सौरी (देहान्त 101 हिजरी), मालिक (देहान्त 179 हिजरी), इब्ने-मुबारक (देहान्त 181 हिजरी), इब्ने-उयैना (देहान्त 197 हिजरी), यहया क़त्तान (देहान्त 198 हिजरी), यहया-इब्ने-मुईन (देहान्त 233 हिजरी), अहमद-बिन-हम्बल (देहान्त 241 हिजरी), बुख़ारी (देहान्त 256 हिजरी) मुस्लिम (देहान्त 261 हिजरी), अबू-ज़ुरआ (देहान्त 264 हिजरी), अबू हातिम (देहान्त 277 हिजरी), नसई (देहान्त 303 हिजरी), उक़ैली (देहान्त 322 हिजरी), दारक़ुतनी (देहान्त 385 हिजरी) इत्यादि। वास्तव में हदीसशास्त्र बहुत ही व्यापक साहित्य है।

रोज़ा (उपवास)

इसको अरबी में सौम कहते हैं, जिसका अर्थ है रुक जाना अर्थात् रोज़ा रखनेवाला भोर से लेकर सूर्यास्त तक खाने-पीने तथा संभोग से रुक जाता है। रोज़ा वास्तव में अपनी इंद्रियों को अपने वश में रखने का उत्तम साधन है।

अधिक खाने-पीने से मनुष्य की भोगेच्छा (शहवत) बढ़ती रहती है। और शैतान जो हमारे रक्त के साथ-साथ घूमता रहता है हमें सरलतापूर्वक पथभ्रष्ट कर सकता है। इस लिए रोज़ा ही भोगेच्छा को वश में रखने का उत्तम साधन है।

इस्लाम से पहले भी लोगों पर रोज़ा अनिवार्य किया गया था परन्तु उन्होंने रोज़े को ही अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया और फिर वे रहबानियत अथवा संन्यास की ओर निकल गए। इस्लाम चूँकि एक मध्यमार्गी धर्म है इसलिए इसने रोज़े को साधन तो बनाया, उद्देश्य नहीं, इसलिए जहाँ सदैव रोज़ा रखने से मना फ़रमाया, वहीं भिन्न-भिन्न अवसरों पर रोज़ा रखने का हुक्म भी दिया। यद्यपि अनिवार्य रोज़ा केवल रमज़ान के महीने का ही है –

«ऐ ईमानवालो! तुमपर रोज़े अनिवार्य किए गए हैं। जिस प्रकार तुमसे पहले लोगों पर अनिवार्य किए गए थे।» (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–183)

यहाँ रोज़े से अभिप्राय रमज़ान के रोज़े हैं, क्योंकि रमज़ान वह शुभ महीना है जिसमें क़ुरआन उतारा गया। इसलिए इस महीने को रोज़े जैसी महान इबादत का महीना बना दिया गया।

«रमज़ान वह महीना है जिसमें क़ुरआन उतारा गया जो लोगों के लिए सर्वथा मार्गदर्शन है, और जो ऐसी स्पष्ट शिक्षाओं पर आधारित है जो सीधा मार्ग दिखानेवाली और सत्य एवं असत्य का अन्तर खोल कर रख देनेवाली हैं। अतः अब से तुममें से जो भी इस महीने को पाए, उसके लिए अनिवार्य है कि इस पूरे महीने के रोज़े रखे। हाँ, जो रोगी हो अथवा यात्रा में हो तो वह दूसरे दिनों में यह गणना पूरी करे। अल्लाह की इच्छा तुम्हारे साथ आसानी की है, कठोरता की नहीं, (वह तुम्हारे लिए आसानी पैदा कर रहा है) और चाहता है कि तुम गणना पूरी कर लो, और अल्लाह के प्रदान किए गए मार्गदर्शन के अनुसार उसकी महिमा का वर्णन करो एवं उसके कृतज्ञ रहो।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–185)

रोज़ा क्या है? अल्लाह की प्रसन्नता के लिए भोर से लेकर सूर्यास्त तक खाने-पीने तथा सम्भोग करने से अपने आपको बचाकर रखना रोज़ा कहलाता है। इस इबादत से इन्द्रियों को शुद्ध करने और उनको अपने वश में रखने में सहायता मिलती है। इसलिए उन लोगों की निन्दा की गई है जो भोर से सूर्यास्त तक भूखे प्यासे रहकर भी अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं कर पाते।

नबी (ﷺ) का फ़रमान है–

"जिसने झूठ बोलना और उसपर अमल करना न छोड़ा, तो अल्लाह उसके भूखे-प्यासे रहने का मोहताज नहीं।"» (सहीह बुख़ारी, 1903)

एक सहीह हदीस में रोज़े का महत्त्व बताते हुए नबी (ﷺ) ने फ़रमाया–

"अल्लाह का कहना है कि हर कर्म का बदला मनुष्य को मिलता है सिवाय रोज़े के। चूँकि वह मेरे लिए (अर्थात् मेरी प्रसन्नता के लिए) खाना-पीना छोड़ देता है, इसलिए इसका प्रतिफल मैं स्वयं दूँगा। रोज़ा (बुराइयों से रोकने की) एक ढाल है तो जिसका रोज़ा हो उसे चाहिए कि निर्लज्जता की बातें और बकवास न करे, और अगर उसे कोई गाली दे तो कह दे कि भाई मैं रोज़े से हूँ। अल्लाह की क़सम, रोज़ेदार के मुँह से जो दुर्गन्ध निकलती है वह अल्लाह की नज़र में मुश्क की सुगन्ध से भी अच्छी है। रोज़ेदार के लिए दो ख़ुशियाँ हैं, एक जब वह रोज़ा खोलता है (अर्थात् शाम को), दूसरी जब वह अल्लाह से मिलेगा।"» (सहीह बुख़ारी 1904 तथा सहीह मुस्लिम 1151)

रमज़ान का रोज़ा बग़ैर उचित कारण के छोड़ना निषिद्ध है। परन्तु यह हदीस जिसमें कहा गया है कि अगर कोई व्यक्ति रमज़ान में बग़ैर कारण रोज़ा छोड़ दे तो पूरे जीवन के रोज़े भी उसका बदला नहीं हो सकते। यह हदीस सुनन की किताबों जैसे अबू-दाऊद 2396, तिर्मिज़ी 723, इब्ने-माजा 1672 इत्यादि हदीस ग्रन्थों में पाई जाती है, परन्तु एक मुहद्दिस के विचार में यह ज़ईफ़ है।

यद्यपि रोज़े की हालत में खाना-पीना तथा संभोग आदि करना निषिद्ध है परन्तु यदि कोई खा-पी ले या संभोग कर ले तो उसे एक ग़ुलाम आज़ाद करना पड़ेगा, ऐसा न कर सके तो दो महीने के रोज़े रखने पड़ेंगे। अगर यह भी न कर सके तो साठ मुहताजों को भोजन कराना पड़ेगा। (देखिए: बुख़ारी 1936 तथा मुस्लिम 1111)

यह उस दशा में है जबकि पति ने पत्नी की इच्छा के विरुद्ध संभोग किया हो। परन्तु दोनों ने अपनी इच्छा से संभोग किया हो तो दोनों पर कफ़्फ़ारा अनिवार्य होगा।

परन्तु रात्रि में पति-पत्नी संभोग कर सकते हैं।

अब कुछ ऐसे रोज़ों का वर्णन किया जाता है जो अनिवार्य नहीं हैं।

1. **रमज़ान के बाद शव्वाल के छह रोज़े :** सहीह हदीस में आया है कि जिसने रमज़ान के रोज़े रखे, और इसके बाद शव्वाल के छः रोज़े रखे तो वह ऐसा है जैसे कि उसने पूरे जीवन रोज़े रखे। (देखिए: सहीह मुस्लिम 1164)

2. **अरफ़ात का रोज़ा :** अर्थात् उस दिन का रोज़ा जिस दिन हाजी अरफ़ात के मैदान में अल्लाह की इबादत के लिए इकट्ठा होते हैं, जो मक्का के अनुसार 9 ज़िलहिज्जा होता है। इस दिन का रोज़ा रखनेवाले के एक वर्ष पिछले और एक वर्ष आनेवाले में सारे गुनाह माफ़ हो जाते हैं। (देखें सहीह मुस्लिम 1162)

   परन्तु हाजियों के लिए उत्तम यही है कि वे यह रोज़ा न रखें।

3. **आशूरा का रोज़ा :** अर्थात् मुहर्रम की दस तारीख़ का रोज़ा। पहले तो यह रोज़ा अनिवार्य था, परन्तु जब रमज़ान का रोज़ा फ़र्ज़ हो गया तो यह नफ़्ल हो गया।

4. **प्रत्येक अरबी महीने की 13, 14 और 15वीं तारीख़ का रोज़ा :** सहीह हदीसों में आता है कि नबी (ﷺ) इन तीन दिनों के रोज़े रखना कभी नहीं छोड़ते थे।

5. **शाबान के रोज़े :** नबी (ﷺ) रमज़ान के अतिरिक्त जिस महीने सबसे अधिक रोज़े रखते थे वह शाबान का महीना था। (देखिए: बुख़ारी, 1969 तथा मुस्लिम, 1156)

6. **सोमवार तथा बृहस्पतिवार का रोज़ा :** नबी (ﷺ) इन दोनों दिनों के रोज़े अवश्य रखते थे, क्योंकि इन दो दिनों में मनुष्य के कार्य का लेखा-जोखा अल्लाह के पास भेजा जाता है। एक दूसरी

हदीस में आया है कि चूँकि मैं सोमवार को पैदा हुआ और उसी दिन मुझ पर क़ुरआन उतारा गया इसलिए मैं इस दिन रोज़ा रखता हूँ। (देखिए: सहीह मुस्लिम, 1162)

7. **दाऊद का रोज़ा :** एक दिन रोज़ा रखना एक दिन रोज़ा छोड़ना इसको सौमे-दाऊद कहते हैं। (देखिए: बुख़ारी, 1153, तथा मुस्लिम, 1159)

ये कुछ वे रोज़े हैं जो अनिवार्य तो नहीं हैं, परन्तु इन रोज़ों का सवाब और पुण्य बहुत है। इसमें पुरुष तथा स्त्री दोनों सम्मिलित हैं। परन्तु स्त्री को चाहिए कि अगर वह नफ़्ल रोज़े रखती है तो अपने पति से अनुमति ले ले। क्योंकि सहीह हदीस में आया है–

"किसी पत्नी के लिए उचित नहीं है कि पति के घर में होते हुए उससे अनुमति के बिना (नफ़्ल) रोज़ा रखे।" (देखिए: बुख़ारी, 5192, मुस्लिम, 1026)

अब कुछ ऐसे रोज़ों का वर्णन किया जाता है जिनका रखना मकरूह (नापसन्दीदा) है।

1. **जीवन के रोज़े :** अर्थात् पूरे जीवन रोज़े रखना। इसको नापसन्दीदा (अप्रिय) कहा गया है। एक सहीह हदीस में आया है कि जिसने जीवन भर रोज़े रखे तो समझ लो उसने रोज़े रखे ही नहीं। (बुख़ारी, 1979, तथा मुस्लिम, 1159)

2. **केवल शुक्रवार का रोज़ा रखना :** जाबिर (رضي الله عنه) से प्रश्न किया गया कि क्या नबी (ﷺ) ने शुक्रवार के रोज़े से मना फ़रमाया है? तो उन्होंने कहा, "हाँ"। (देखिए: बुख़ारी, 1984 तथा मुस्लिम, 1143)

एक दूसरी हदीस में है कि केवल शुक्रवार का रोज़ा मत रखो। उससे पहले का दिन मिला लो, या उसके बाद का दिन मिला लो। (बुख़ारी, 1986 तथा मुस्लिम, 1144)

इसके नापसन्दीदा (अप्रिय) होने का एक कारण यह बताया गया है कि शुक्रवार ईद का दिन है, इसलिए अपने ईद के दिन को रोज़े का दिन मत बना लो। हाँ अगर उससे पहले एक दिन का रोज़ा रखना हो, या बाद के एक दिन का रोज़ा रखना हो तो कोई हरज नहीं।

3. **रमज़ान के स्वागत के लिए एक या दो दिन पहले रोज़ा रखना :** नबी (ﷺ) ने इससे मना फ़रमाया है। (देखिए: बुख़ारी, 1914 तथा मुस्लिम, 1082)

4. **ईदैन (अर्थात् ईदुल-फ़ित्र तथा ईदुल अज़्हा) को रोज़ा रखना :** नबी (ﷺ) ने इन दोनों ईदों के दिन रोज़ा रखने से मना फ़रमाया है। (देखिए: बुख़ारी, 1197 तथा मुस्लिम, 827)

5. **तशरीक़ के दिनों के रोज़े :** ज़िलहिज्जा की 11, 12 और 13 तिथियों को तशरीक़ के दिन कहा जाता है। जिनमें क़ुरबानी की जाती है। इसलिए एक हदीस में नबी (ﷺ) ने फ़रमाया–

"ये खाने-पीने और अल्लाह को स्मरण करने के दिन हैं। अर्थात् रोज़ा रखने के नहीं।" (देखिए: मुस्लिम 1042)

साद-बिन-अबी वक़्क़ास का कहना है कि नबी (ﷺ) ने मुझे हुक्म दिया कि मिना में मैं यह घोषणा कर दूँ–

"ये खाने-पीने के दिन हैं। इन दिनों में रोज़ा नहीं होता।" (मुस्नद अहमद, 1:169)

इन दिनों में केवल वह हाजी रोज़ा रख सकता है जिस पर क़ुरबानी अनिवार्य हो, परन्तु वह कर न सकता हो, जिसकी ओर क़ुरआन संकेत करता है–

«तो जो कोई हज तक उमरे से लाभ उठाए (अर्थात् तमत्तो हज करे) तो, वह जो क़ुरबानी कर सकता हो, करे और जिसे क़ुरबानी सुलभ न हो तो हज के दिनों में तीन दिनों के रोज़े रखे, और सात दिन के रोज़े जब तुम वापस हो, ये पूरे दस दिन हुए।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत-196)

अर्थात् अगर वह तीन दिन हज से पहले रोज़ा न रख सका हो और तशरीक़ के दिनों में रखना चाहता हो तो रख सकता है। (देखिए: बुख़ारी, 1999) यह विचार इब्ने-उमर तथा आइशा (رضي الله عنها) का है और यही विचार दूसरे विद्वानों का भी है। नबी (ﷺ) से इस विषय में कोई सहीह हदीस नहीं आई है।

रुकूअ

रुकूअ का अर्थ है झुकना, अर्थात् किसी निर्बल के किसी शक्तिशाली के सामने झुकने को अरबी भाषा में रुकूअ कहते हैं। परन्तु इस्लाम धर्म तौहीद (एकेश्वरवाद) का संदेश देता है। इसलिए अल्लाह के अतिरिक्त किसी और को रुकूअ करना उसकी शिक्षा के विरुद्ध है। और यही सारे नबियों का धर्म रहा है। जैसा कि बार-बार उल्लेख किया गया है कि सारे नबियों का संदेश तौहीद ही था, इसलिए उन्होंने केवल अल्लाह के सामने रुकूअ किया।

अल्लाह ने इबराहीम तथा इसमाईल को हुक्म दिया –

«तुम मेरे इस घर को तवाफ़ करनेवालों और एतिकाफ़ करनेवालों के लिए और रुकूअ और सजदा करनेवालों के लिए पाक-साफ़ रखो।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–125)

अर्थात् मेरे घर में किसी बुत को कदापि न रखना कि लोग उसको रुकूअ और सजदा करने लगें, यह तो केवल मेरे लिए है। दाऊद (عليه السلام) के विषय में भी आता है कि जब उनको पता चला कि हमने उसे परीक्षा में डाला है तो –

«उसने अपने रब से क्षमा-याचना की, और रुकूअ करते हुए सजदे में गिर पड़ा।» (सूरा–38, साद, आयत–24)

इसी प्रकार अल्लाह ने ईसा (ﷺ) की माता मरयम को आदेश दिया –

«**ऐ मरयम ! पूरी निष्ठा के साथ अपने रब के आदेश का पालन करती रह। और सजदा कर तथा रुकूअ करनेवालों के साथ तू भी रुकूअ कर।**» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–43)

अल्लाह ने ईमानवालों को बार-बार यह हुक्म दिया –

«**ऐ ईमानवालो ! रुकूअ और सजदा करो, और अपने रब की बंदगी करो, और भलाई करो, ताकि तुम्हें सफलता प्राप्त हो।**» (सूरा–22, अल-हज, आयत–77)

मुहम्मद (ﷺ) के सहाबा की अल्लाह यह विशेषता बताता है कि तुम उनको –

« **रुकूअ की दशा में तथा सजदे की दशा में, अल्लाह का उदार अनुग्रह और उसकी प्रसन्नता चाहते हुए देखोगे।**» (सूरा–48, अल-फ़त्ह, आयत–29)

और इस्लाम-विरोधियों के विषय में अल्लाह फ़रमाता है –

«**जब उनसे रुकूअ करने के लिए कहा जाता है तो रुकूअ नहीं करते।**» (सूरा–77, अल-मुरसलात, आयत–48)

अर्थात् घमंड करते हैं।

✻ रुकूअ करने का तरीक़ा :

दोनों हाथों द्वारा घुटनों को शक्ति के साथ इस प्रकार पकड़ना कि पीठ बिलकुल सीधी हो जाए। अर्थात् न सर की ओर से पीठ उठी हो, न कमर की ओर हो, और फिर पूरे इत्मीनान के साथ रुकूअ की दशा में कुछ देर झुके रहना। रुकूअ नमाज़ का विशेष स्तंभ है, जिसके बिना नमाज़ नहीं होती क्योंकि रुकूअ के द्वारा बन्दा अपने रब के सामने झुककर अपनी विनम्रता प्रकट करता है और अल्लाह की बड़ाई की प्रतिज्ञा करता है, इसलिए रुकूअ केवल अल्लाह के लिए किया जा सकता है। किसी बादशाह, बलवान, बुत, पीर, क़ब्र इत्यादि को रुकूअ करना वर्जित है और अगर कोई अल्लाह के अतिरिक्त किसी और को रुकूअ करता है तो वह इस्लामी शिक्षा के विरुद्ध कर्म करता है, जिसका इस्लाम से कोई सम्बन्ध नहीं है। किसी मख़लूक़ को रुकूअ करना इस्लाम की दृष्टि में इतना बड़ा शिर्क है कि ऐसा करनेवाला व्यक्ति इस्लाम की परिधि से ही बाहर हो जाता है।

रसूल

ये अल्लाह के वे बन्दे होते हैं जिनको अल्लाह अपना पैग़ाम बन्दों तक पहुँचाने के लिए चुनता है, ताकि लोग क़ियामत के दिन अल्लाह से यह न कह सकें कि हम तक तेरा पैग़ाम नहीं पहुँचा था। (देखिए : सूरा–4, अन-निसा, आयत–165)

अल्लाह ने रसूलों को स्पष्ट प्रमाणों के साथ भेजा, और उनपर किताबें उतारीं ताकि लोग सत्यमार्ग पर स्थिर रहें। (देखिए: सूरा–57, अल-हदीद, आयत–25)

नबियों के साथ उनकी जातिवालों ने कैसा बर्ताव किया? क़ुरआन ने उनके वृत्तान्त को बड़े विस्तार रूप से बयान किया है और इसके उद्देश्य पर इस प्रकार रौशनी डाली है –

«निश्चय ही उनके वृत्तान्त में बुद्धि और समझ रखनेवालों के लिए एक शिक्षाप्रद सामग्री है।» (सूरा–12, यूसुफ़, आयत–111)

रसूलों के विषय में क़ुरआन ने जो सिद्धान्त बताए हैं, उनमें से कुछ ये हैं –

1. हर जाति के लिए रसूल भेजे गए। (देखिए: सूरा–13, अर-रअद, आयत–7)
2. जो रसूल जिस जाति में भेजा गया उसने उसी जाति की भाषा में अल्लाह का पैग़ाम सुनाया। (देखिए: सूरा–14, इबराहीम, आयत–4)
3. अगर अल्लाह चाहता तो हर बस्ती में रसूल भेज सकता था। (देखिए: सूरा–25, अल-फ़ुरक़ान, आयत–51)

   परन्तु ऐसा नहीं किया क्योंकि उसको मालूम था कि जो नबियों को झुठलानेवाले हैं वे तब भी झुठलाएँगे।
4. सारे नबियों की दावत एक थी। सभी नबियों ने यह सन्देश दिया कि केवल अल्लाह की इबादत करो। किसी को उसका साझी मत बनाओ। (देखिए: सूरा–21, अल-अंबिया, आयत–25)
5. कुछ रसूलों का वर्णन अल्लाह ने क़ुरआन में कर दिया है और बहुत सों का नहीं किया। (देखिए: सूरा–4, अन-निसा, आयत–164)
6. रसूलों का चुनना अल्लाह के हाथ में है। (देखिए: सूरा–22, अल-हज्ज, आयत–75)

अर्थात कोई सन्यासी, जोगी, पीर, फ़क़ीर, मलंग अपनी तपस्या के बल पर रसूल नहीं बन सकता। रिसालत अल्लाह की देन है। वह जिसको चाहता है अपना नबी या रसूल घोषित कर देता है। चूँकि अब नुबूवत समाप्त हो चुकी है इसलिए अब नुबूवत का दावा करनेवाला महापाखंडी माना जाएगा।

जिन रसूलों का वर्णन क़ुरआन में आया है उनकी संख्या 24 है।

अब यहाँ उन चौबीस नबियों के नाम, समयावधि और क़ुरआन में उनकी वर्णन संख्या का उल्लेख किया जाता है। यहाँ जो समयावधि बताई जा रही है, वह बाइबल तथा दूसरे ग्रथों से ली गई है। हालाँकि कुछ नबियों के विषय में निश्चयपूर्वक कुछ कहना कठिन है। विशेष रूप से आदम (عليه السلام) के विषय में, जिनका समयकाल दूसरे प्रमाणों के द्वारा उससे बहुत पहले है जो तौरात में आया है।

क्रम.	नबियों के नाम	समय	कुरआन में वर्णन
1.	आदम (عليه السلام)	5872-4942 ई.पू.	25 बार
2.	इदरीस (عليه السلام)	4533-4188 ई.पू.	2 बार
3.	नूह (عليه السلام)	3993-3043 ई.पू.	43 बार
4.	हूद (عليه السلام)	2450-2320 ई.पू.	7 बार
5.	सालेह (عليه السلام)	2150-2080 ई.पू.	9 बार
6.	इबराहीम (عليه السلام)	1997-1822 ई.पू.	69 बार
7.	लूत (عليه السلام)	1950-1870 ई.पू.	27 बार
8.	इसमाईल (عليه السلام)	1911-1774 ई.पू.	12 बार
9.	इसहाक़ (عليه السلام)	1897-1717 ई.पू.	17 बार
10.	याकूब (عليه السلام)	1837-1690 ई.पू.	16 बार
11.	यूसुफ़ (عليه السلام)	1745-1635 ई.पू.	27 बार
12.	शुऐब (عليه السلام)	1600-1490 ई.पू.	11 बार
13.	अय्यूब (عليه السلام)	1540-1420 ई.पू.	4 बार
14.	मूसा (عليه السلام)	1527-1407 ई.पू.	136 बार
15.	हारून (عليه السلام)	1531-1408 ई.पू.	19 बार
16.	दाऊद (عليه السلام)	1041-971 ई.पू.	16 बार
17.	सुलैमान (عليه السلام)	989-931 ई.पू.	17 बार
18.	इलयास (عليه السلام)	910-850 ई.पू.	3 बार
19.	अल यसअ (عليه السلام)	885-795 ई.पू.	2 बार
20.	यूनुस (عليه السلام)	820-750 ई.पू.	5 बार
21.	ज़करीया (عليه السلام)	91-31 ई,पू.	8 बार
22.	यह्या (عليه السلام)	1-31 ई.पू.	4 बार
23.	ईसा (عليه السلام)	1-32 ई.पू.	25 बार
24.	मुहम्मद (ﷺ)	571-632 ई.	नाम के साथ 5 बार
25.	ज़ुलकिफ़्ल	1500-1425 ई.पू.	2 बार

ज़ुलकिफ़्ल के विषय में विद्वानों में मतभेद है कि वे नबी थे या नहीं।

क़ुरआन से इनका नबी होना सिद्ध नहीं होता। परन्तु कुछ विद्वानों ने बाइबल के आधार पर इनका नबी होना सिद्ध किया है। इन नबियों के सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन उनके नामों के साथ देखें।

❃ नबियों की संख्या :

यहाँ केवल उन नबियों का वर्णन किया गया है जिनका उल्लेख पवित्र क़ुरआन में हुआ है। जिन नबियों के नामों का उल्लेख पवित्र क़ुरआन में नहीं हुआ है उनकी संख्या कुछ हदीसों में 316 बताई गई है, और कुछ में एक लाख बीस हज़ार। परन्तु ये हदीसें ज़ईफ़ हैं। इसके लिए मेरी किताब अल-जामिउल-कामिल देखिए।

रिज़ाअत

रिज़ाअत का अर्थ है औरत का अपने बच्चे को अपना दूध पिलाना। एक आयत से पता चलता है कि दूध पिलाने की अवधि दो वर्ष है। (देखिए: सूरा-2, अल-बक़रा, आयत–233) चाहे यह दूध माँ अपने बच्चे को पिलाए, या दूसरे के बच्चे को पहली दशा में या तो वह अपने पति के संग होगी, या उससे तलाक़ लेकर अलग हो गई होगी। इस दूसरी दशा में दूध पिलाने के विषय में पवित्र क़ुरआन में विस्तृत वर्णन मिलता है–

«जो चाहे कि बच्चा दूध पीने की पूरी अवधि तक दूध पिए, तो माँएँ पूरे दो वर्ष अपने बच्चों को दूध पिलाएँ। और वह, जिसका बच्चा है, सामान्य नियम के अनुसार उन स्त्रियों के खाने और उनके कपड़े का ज़िम्मेदार है। किसी पर उसकी समाई से बढ़कर ज़िम्मेदारी नहीं। न किसी माँ को उसके बच्चे के कारण तकलीफ़ देनी चाहिए और न किसी बाप को उसके बच्चे के कारण–उसके उत्तराधिकारी पर भी इसी तरह की ज़िम्मेदारी है–और यदि दोनों अपनी ख़ुशी और सम्मति से (दो वर्ष से पूर्व ही) दूध छुड़ाना चाहें तो उनके लिए कोई दोष नहीं; और यदि तुम अपने बच्चों को किसी अन्य स्त्री से दूध पिलवाना चाहो तो इसमें भी कोई दोष नहीं, जब कि तुम्हें जो कुछ देना है सामान्य नियम के अनुसार चुका दो। और अल्लाह का डर रखो। और जान लो कि जो कुछ तुम करते हो अल्लाह देखता है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–233)

इस आयत में रिज़ाअत की कई समस्याओं की ओर संकेत किया गया है उनमें से कुछ ये हैं :

1. ऐसी माँएँ जो तलाक़ के कारण अपने पति से अलग हो गई हों, परन्तु उनका बच्चा अभी दूध पीने की अवस्था में ही हो तो माँ को अपने बच्चे को दूध पिलाने का अधिक अधिकार है।

2. अगर माता-पिता के बीच दूध पिलाने की अवधि में मतभेद हो जाए तो इसकी अधिक से अधिक अवधि दो वर्ष है।

3. पवित्र क़ुरआन में है–

«उसके गर्भ की अवस्था में रहने और फिर दूध छुड़ाने की अवधि तीस माह है।» (सूरा–46, अल-अहक़ाफ़, आयत–15)

अगर इसमें दो वर्ष दूध पिलाने का मान लें तो गर्भ की अवधि छह महीने बनती है। इसलिए अगर कोई स्त्री ब्याह के छह माह बाद बच्चे को जन्म दे, तो यह बच्चा सही माना जाएगा। और उस स्त्री पर कोई आरोप नहीं लगाया जाएगा।

4. माता-पिता दो वर्ष दूध पिलाने से पहले ही आपस की साझेदारी से दूध छुड़ाना चाहें तो ऐसा कर सकते हैं। और इसमें कोई दोष नहीं।

5. अगर किसी स्त्री ने किसी दूसरे के बच्चे को दो वर्ष की उम्र के बाद दूध पिलाया, तो इससे रिज़ाअत सिद्ध नहीं होगी। अर्थात् वह बच्चा दूध पिलानेवाली स्त्री के बच्चों का भाई, या बहन नहीं बन सकता। जबकि सहीह हदीस में आया है–

"रिज़ाअत (दूध पिलाने) से भी रिश्ते (निकाह के लिए) हराम हो जाते हैं जैसे वंश से हराम होते हैं।" (बुख़ारी, 2645; तथा मुस्लिम 1447)

यह आप (ﷺ) ने उस समय फ़रमाया जब आपके चचा हमज़ा (رضي الله عنه) की पुत्री से लोगों ने विवाह करने को कहा, तो आपने फ़रमाया–

"यह मेरे लिए हलाल नहीं है क्योंकि रिज़ाअत से भी रिश्ते उसी तरह हराम हो जाते हैं जिस तरह वंश से होते हैं। यह मेरे रिज़ाई भाई की पुत्री है।"

अर्थात् आप (ﷺ) ने और आपके चचा हमज़ा (رضي الله عنه) ने एक स्त्री का दूध पिया था, जिसके कारण आप दोनों दूध शरीक भाई बन गए। इसी प्रकार की एक घटना का और वर्णन आता है। नबी (ﷺ) की पत्नी उम्मे-हबीबा ने, जो अबू-सुफ़यान की बेटी थीं, कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल क्या आप अबू-सुफ़यान की बेटी से विवाह करना पसन्द करेंगे?" नबी (ﷺ) ने पूछा, "क्या तुम ऐसा चाहती हो?" उन्होंने कहा, "क्यों नहीं, मैं चाहती हूँ कि मेरी बहन भी मेरे साथ आपकी पत्नियों में से हो।" आपने फ़रमाया, "यह मेरे लिए जायज़ नहीं है।" (अर्थात दो बहनों को एक साथ निकाह में रखना इस्लाम में जायज़ नहीं) उन्होंने कहा, "मैंने सुना है कि आप उम्मे-सलमा (जो नबी ﷺ की पत्नी थीं) की बेटी से विवाह करनेवाले हैं।"

इसपर नबी (ﷺ) ने फ़रमाया–

"उम्मे-सलमा की बेटी अगर मेरी गोद में न पलती (अर्थात रबीबा न होती) तब भी वह मुझ पर हराम है, क्योंकि यह मेरे रिज़ाई भाई की बेटी है। मुझे और इसके पिता को सुवैबा ने दूध पिलाया है।"

फिर आप (ﷺ) ने फ़रमाया–

"अपनी बेटियों और बहनों से विवाह करने को मत कहो।" (बुख़ारी, 5106 तथा मुस्लिम, 1449)

परन्तु जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि यह दूध दोनों ने दो वर्ष की अवस्था से पहले पिया हो। और अगर दो वर्ष की अवस्था के बाद किसी ने दूध पिया हो तो उससे रिज़ाअत सिद्ध नहीं होती।

जैसा कि एक हदीस में आया है–

"उसी रिज़ाअत से हुरमत सिद्ध होती है जो छाती से निकलकर सीधे मेदे में चला जाए, और यह दूध छुड़ाने से पहले हो।" (तिरमिज़ी, 1152)

यह हदीस उम्मे-सलमा से उल्लिखित है, परन्तु फ़ातिमा-बिन्त-मुंज़िर ने उम्मे-सलमा से कुछ नहीं सुना क्योंकि उस समय उसकी उम्र बहुत कम थी। परन्तु इसी भावार्थ की और दूसरी हदीसें भी हैं जिनको मिलाकर देखने से यही सिद्ध होता है जो इस हदीस में बताया गया है। अधिकतर विद्वानों का यही विचार है। केवल एक दशा इससे अलग है वह यह कि कोई ऐसा व्यक्ति जो बड़ा हो गया हो, परन्तु उससे परदा करने या अजनबियों की तरह रहने में कष्ट हो रहा हो तो शैख़ुल-इस्लाम इब्ने-तैमिया जैसे कुछ विद्वानों ने इजाज़त दी है कि उसको दूध पिला दिया जाए, ताकि दूध पिलाने वाली स्त्री उसकी माँ, और उसके बच्चे उसके भाई बहन बन जाएँ।

इसी प्रकार की एक घटना का वर्णन सहीह हदीसों में आता है। अबू-हुज़ैफा (ﷺ) की पत्नी सहला-बिन्ते-सुहैल नबी (ﷺ) के पास आई, और कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल सालिम, जिसको हमने अपना बेटा बना लिया है, अब नौजवान हो चुका है और मेरे पास आता रहता है जिसके कारण अबू-हुज़ैफ़ा कुछ अप्रसन्न दिखाई देते हैं।" तो आप (ﷺ) ने फ़रमाया–

उसको दूध पिला दो। उसने कहा, "कैसे पिलाऊँ? वह तो बड़ा हो गया है।" इसपर नबी (ﷺ) मुस्कुराये और कहा, "मुझे पता है वह बड़ा हो गया है।" (सहीह मुस्लिम, 1453)

अर्थात् दूध बर्तन में निकालकर पिला दो। फिर सहला ने ऐसा ही किया जिसके कारण अबू-हुज़ैफ़ा की अप्रसन्नता दूर हो गई। परन्तु कुछ विद्वानों ने इसको सहला-बिन्ते-सुहेल के लिए ख़ास माना है। यह दूसरों के लिए नहीं है।

6. एक या दो बार दूध पिलाने से रिज़ाअत सिद्ध नहीं होती जैसा कि एक सहीह हदीस में आया है। (देखिए : सहीह मुस्लिम 1450) बल्कि सहीह यह है कि पाँच बार या कम से कम तीन बार, दूध पिलाया जाए तब रिज़ाअत सिद्ध होगी। जैसा कि सहीह मुस्लिम (1452) में आया है। इसके लिए यह आवश्यक है कि बच्चा रिज़ाई माँ की छाती से उसका दूध पिए। एक सहीह हदीस में आया है–
"रिज़ाअत उस समय सिद्ध होगी जब भूख की दशा में बच्चे को दूध पिलाया जाए।" (ताकि वह भर पेट दूध पी ले।) (बुख़ारी 2647 तथा मुस्लिम 1455)

7. जिस प्रकार रिज़ाई बाप अपनी रिज़ाई बेटी से विवाह नहीं कर सकता उसी प्रकार रिज़ाई बाप का भाई भी अपनी रिज़ाई भतीजी से विवाह नहीं कर सकता क्योंकि वह रिज़ाई चचा कहलाएगा।

एक सहीह हदीस में आता है कि अबू क़ुएस नामक व्यक्ति की पत्नी ने आइशा (رضي الله عنہا) को दूध पिलाया था। अबू क़ुएस का भाई अफ़लह आइशा (رضي الله عنہا) के पास आया, उस समय परदे का आदेश आ चुका था। इसलिए आइशा (رضي الله عنہا) ने उसके सामने आने से मना कर दिया, ताकि इस विषय में पहले नबी (ﷺ) से पूछें।

नबी (ﷺ) के आने के बाद उन्होंने अफ़लह के विषय में पूछा तो नबी (ﷺ) ने फ़रमाया –
"यह तुम्हारा चचा है, इसके तुम्हारे पास आने में कोई हरज नहीं है।" (बुख़ारी 2644 तथा मुस्लिम 1445)

8. अगर तलाक़ या किसी अन्य कारण से स्त्री अपने पति से अलग हो जाती है तो बच्चे को दूध पिलाने के बदले पति को दूध का मुआवज़ा देना पड़ेगा, उस अवधि में औरत के लिए रोटी, कपड़ा और मकान का भी प्रबन्ध करना पड़ेगा। इसका नियम यह होगा कि जो जितना धनवाला होगा, उसी स्तर के अनुसार उसे ख़र्च देना पड़ेगा।

9. बच्चे के माता-पिता दोनों पर हराम है कि बच्चे के कारण एक-दूसरे को कष्ट पहुँचाएँ जैसे माँ अपने बच्चे को दूध पिलाना चाहती है, परन्तु उसका बाप दूध पिलाने से रोक रहा है जो माँ की ममता के विरुद्ध है। इसके कारण माँ को हार्दिक और शारीरिक कष्ट उठाना पड़ता है।

इसी प्रकार बाप चाहता है कि माँ अपने बच्चे को दूध पिलाए परन्तु माँ ऐसा करने से इनकार कर देती है और बच्चे को दूध पिलवाने के लिए अन्ना या दूध पिलानेवाली औरत तलाशना बच्चे के बाप के लिए कठिन काम साबित हो रहा है। इसी प्रकार अगर माँ बच्चे को दूध पिलाने के बदले उतनी उजरत लेने पर तैयार है जितनी कोई और लेती है, फिर भी बाप बच्चे को माँ से छीन कर किसी दूसरी स्त्री को दूध पिलाने के लिए नियुक्त कर देता है, तो यह भी हराम है, क्योंकि इससे माँ को बहुत कष्ट पहुँचेगा। इसी प्रकार पिता नियम के अनुसार माँ को उजरत देने के लिए तैयार है, परन्तु बाप को कष्ट पहुँचाने के लिए माँ बच्चे को बाप के घर छोड़कर चली जाती है, जिससे बाप को बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। ये दोनों दशाएँ हराम हैं।

10. अगर बाप का देहान्त हो जाता है तो बच्चे के अभिभावकों पर अनिवार्य है कि बच्चे को दूध पिलाने के सम्बन्ध में वही करें जो बच्चे का बाप होते हुए किया जा सकता था, जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है, ताकि न तो बच्चे की माता को कोई कष्ट पहुँचे और न ही माता की ओर से अभिभावकों को कोई कष्ट पहुँचे।
11. अगर माता-पिता अपनी सहमति से बच्चे का दूध दो वर्ष से पहले छुड़ाना चाहें, और दूध के स्थान पर अन्य भोज्य पदार्थ देना चाहें, तो इसमें कोई हरज नहीं है। लेकिन अगर दोनों इसपर सहमत न हो सकें तो दो वर्ष से पहले दूध छुड़ाना वर्जित है।
12. इसी प्रकार अगर दोनों अपनी सहमति से किसी और से दूध पिलवाना चाहें तो इसमें भी कोई हरज नहीं है, विशेषकर ऐसी दशा में जब माँ कहे "मेरा दूध आना बन्द हो गया है।" परन्तु पिता के लिए यह अनिवार्य है कि जितने दिनों तक माँ ने दूध पिलाया है, उसकी उजरत नियमानुसार दे।

सूरा 2, अल-बक़रा, आयत 233 से जो बातें सिद्ध हुई हैं, उनका यहाँ वर्णन कर दिया गया है। अब माता-पिता के लिए यह अनिवार्य है कि इन आदेशों को ध्यान में रखें और अल्लाह से डरते रहें अर्थात् दोनों में से कोई भी किसी पर अत्याचार न करे, ताकि उसके कारण बच्चे को कोई नुक़सान न पहुँचे।

ल
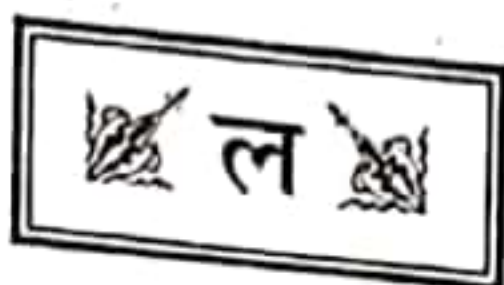
लहसुन

लहसुन एक प्रकार की भाजी है, जो कच्ची तथा पकाकर खाई जाती है। इसे कच्चा खाने के बाद मुख से दुर्गन्ध निकलती है, इसलिए इसे खाकर मस्जिद में आना मना है। देखें ''प्याज़''

लिबास (वस्त्र)

लिबास अल्लाह की नेमतों में से एक नेमत है कि उसने मनुष्य को लिबास पहनना सिखाया, और लिबास का पहनना हमारी प्रकृति में डाल दिया तभी तो जब आदम और उनकी पत्नी ने शैतान के बहकाए में आकर उस वृक्ष का मज़ा चख लिया जिससे मना किया गया था तो उनकी शर्मगाहें एक-दूसरे के सामने खुल गईं, और वे दोनों अपने ऊपर जन्नत के पत्तों को जोड़-जोड़कर रखने लगे। (क़ुरआन, सूरा-7 अल-आराफ़, आयत-22 तथा सूरा-20, ता-हा, आयत-121)

अल्लाह की रहमतों में से है कि उसने लिबास बनाने के साधन धरती में पैदा किए।

«ऐ आदम की सन्तान, हमने तुम्हारे लिए लिबास उतारा जो तुम्हारे गुप्तांग को ढांक ले, और रक्षा व शोभा का साधन हो।» (सूरा-7, अल-आराफ़, आयत-26)

यहाँ लिबास उतारने का अर्थ है साधन जुटाना; जैसे धरती से कपास उगाना, रेशम के कीड़ों से रेशम बनाना, और अब जो नए-नए साधन पैदा होते जा रहे हैं, वे सब। और स्वर्ग में भी स्वर्गवासियों को लिबास दिया जाएगा जो रेशम का होगा। (देखें. क़ुरआन, सूरा-22, अल-हज, आयत-23)

लिबास के विषय में इस्लाम की शिक्षाओं का सारांश यह है –

1. इस्लाम में कोई विशिष्ट प्रकार का लिबास नहीं है, बल्कि हर देश के लोग अपने देश के नियमानुसार और मौसम के हिसाब से जो उचित लिबास हो उसे प्रयोग कर सकते हैं। परन्तु आवश्यक है कि वह लिबास मर्द के बदन को नाफ़ से लेकर घुटने तक छिपानेवाला हो और औरत के पूरे बदन को ढाँपनेवाला हो सिवाय चेहरे, हाथ और पाँव के।
2. किसी प्रकार पुरुष का लिबास टख़ने से नीचे नहीं होना चाहिए। क्योंकि एक सहीह हदीस मे आता है।

''*जिसका लिबास टख़ने से नीचे होगा उसका वह भाग नरक में होगा।*'' (सहीह बुख़ारी 5887)

3. लिबास ऐसा हो जिसमें घमंड पैदा न हो। एक सहीह हदीस में आता है, *"जो व्यक्ति कपड़ों को घमंड के साथ पृथ्वी पर घसीटता फिरेगा, क़ियामत के दिन अल्लाह उसकी ओर नहीं देखेगा।"* (बुख़ारी 5783 तथा मुस्लिम 2085)
4. मर्दों के लिए रेशमी लिबास पहनना हराम है। एक सहीह हदीस में मर्दों को सम्बोधित करते हुए कहा गया है, *"रेशमी लिबास न पहनो, जिसने उसे संसार में पहना वह जन्नत में नहीं पहन पाएगा।"* (बुख़ारी 5833 तथा मुसलिम 2069)
5. *नबी (ﷺ) ने उन लोगों पर लानत भेजी है जो स्त्रियों का लिबास पहनते हैं। इसी प्रकार उन स्त्रियों पर भी लानत भेजी है जो पुरुषों का लिबास पहनती हैं।* (सहीह बुख़ारी 5885)
6. एक हदीस में आता है कि *सफ़ेद लिबास पहना करो जो उत्तम है। और इसी में अपने मुर्दों को दफ़न करो।* (देखें, अबू-दाऊद 3878 तथा तिर्मिज़ी 994)
7. *वे स्त्रियाँ जो ऐसा लिबास पहनती हैं जिसमें नंगापन हो, जन्नत में नहीं जा सकतीं, जबकि उसकी सुगन्ध बहुत दूर से आती है।* (देखें, सहीह मुस्लिम 2128)
8. स्त्रियाँ बाहर निकलते समय अपनी चादरों के पल्लू लटका लिया करें। देखें (सूरा-33, अल-अहज़ाब, आयत-59) इससे सिर और चेहरे को छिपाने की ओर संकेत है।
9. स्त्रियाँ अपने शृंगार को छिपाए रखें, किसी पर ज़ाहिर न होने दें सिवाय उन लोगों के जिनका वर्णन सूरा-24, अन-नूर, आयत-31 में आया है और वे ये हैं – पति, पिता, पति के पिता, अपने पुत्र, पति के पुत्र, भाई, भाइयों के पुत्र, बहनों के पुत्र, अपनी स्त्रियाँ (जैसे सहेलियाँ या दासियाँ) अपने गुलाम, अधीन पुरुष (जैसे नौकर) जो उस अवस्था को पार कर चुके हों जिसमें औरतों की ज़रूरत होती है, वे बालक जो स्त्रियों की छिपी बातों से परिचित न हों। इन लोगों के सामने शृंगार प्रदर्शन में कोई हरज नहीं है।
10. और फिर इस लिबास के साथ स्त्री-पुरुष दोनों को आँखे नीची करने का आदेश दिया गया है। घूर-घूरकर देखना किसी प्रकार उचित नहीं है।

    "ऐ नबी! ईमानवालों से कहो कि वे अपनी निगाहें नीची रखें, और अपनी शर्मगाहों की रक्षा करें, यह उनके लिए अधिक अच्छी बात है। निस्सन्देह अल्लाह उसकी ख़बर रखता है जो कुछ वे करते हैं। और ऐ नबी! ईमान वाली स्त्रियों से कहो कि वे निगाहों को नीची रखें, और अपनी शर्मगाहों की रक्षा करें।" (सूरा-24, नूर, आयतें 3-31)
11. और अगर किसी की निगाह किसी अजनबी पर पड़ जाए तो उसे चाहिए कि तुरन्त निगाह फेर ले। (देखें सहीह मुस्लिम 2159)

12. किसी ऐसी स्त्री के साथ अकेले में नहीं रहना चाहिए जिसके साथ उसका कोई "महरम" (जैसे, पिता, भाई, इत्यादि) न हो। (बुख़ारी 5233 तथा मुस्लिम 1341)

कुछ लोगों ने नबी (ﷺ) से प्रश्न किया,

"क्या देवर के साथ भी स्त्री अकेली नहीं रह सकती?" तो आपने फ़रमाया, *"देवर तो मौत है।"* (बुखारी, 5233 तथा मुस्लिम, 2172)

लवाक़िह

क़ुरआन में इसका प्रयोग एक स्थान पर आया है। (देखिए: सूरा-15, हिज्र, आयत-22) यह लाक़िह का बहुवचन है। इसका अर्थ है : गर्भवती ऊँटनी। क़ुरआन ने जिस अर्थ में इसका प्रयोग किया है वह बहुत बड़ा चमत्कार है। इसकी वास्तविकता को आज हम साइंस की रौशनी में भली-भाँति समझ सकते हैं।

क़ुरआन में पौधों का वर्णन बार-बार आया है। लेकिन जिस चमत्कार की ओर क़ुरआन ने सब से अधिक संकेत किया है वह पौधों का जोड़ा है, जिसको आज साइंसी शोधों ने बड़ा महत्वपूर्ण बताया है, क्योंकि क़ुरआन उतरते समय लोगों को इससे अधिक कोई ज्ञान नहीं था कि वह खजूर के वृक्षों में तलक़ीह करें, जिसके कारण अधिक पैदावार हो। परन्तु आज की साइंस ने सिद्ध कर दिया कि खजूरों के अतिरिक्त भी पौधे विभिन्न प्रकार के भोग से गुज़रते हैं और प्रत्येक पौधे का अपना जोड़ा होता है, जो तलक़ीह के अमल से गुज़रता है जिनको हवाएँ उड़ाकर ले जाती हैं और उनसे भोग करने के पश्चात् फूल-पत्तियाँ या फल निकलने शुरू हो जाते हैं।

क़ुरआन ने इस वैज्ञानिक सत्य की ओर बड़े स्पष्ट रूप में संकेत कर दिया है –

«महिमावान है वह जिसने सबके जोड़े पैदा किए, धरती जो चीज़ें उगाती है उनमें से भी और स्वयं उनकी अपनी जाति में से भी और उन चीज़ों में से भी जिनको तुम जानते नहीं।» (सूरा–36, या-सीन, आयत–36)

«और हर एक पैदावार की दो-दो क़िस्में बनाईं।» (सूरा–13, अर-रअद, आयत–3)

«तथा हम ही वर्षा लानेवाली हवाएँ भेजते हैं।» (सूरा–15, अल-हिज्र, आयत–22)

अर्थात् ये हवाएँ फूलों तथा दूसरे पौधों के वीर्य (परागकणों) को लेकर उड़ती फिरती हैं। और जब किसी मादा प्राणी के गर्भ में डाल देती हैं तो उससे फूल-पत्तियाँ तथा फल निकल पड़ते हैं। यह वह चमत्कार है जिसको क़ुरआन वर्णन करके बताना चाहता है कि यह सब कुछ उस प्रभु की देन है जिसने इस ब्रहमांड को पैदा किया। बस तुम्हें चाहिए कि उसपर ईमान लाओ।

लिआन

लिआ़न एक इस्लामी पारिभाषिक शब्द है, जिसका वर्णन क़ुरआन में इस प्रकार आया है –

«जो लोग अपनी पत्नियों पर व्यभिचार का आरोप लगाएँ तथा उनके पास स्वयं उनके अपने सिवा कोई गवाह मौजूद न हो, तो उनमें से एक (अर्थात् पति) चार बार अल्लाह की क़सम खाकर यह गवाही दे कि वह बिलकुल सच्चा है।

तथा पाँचवी बार यह गवाही दे कि उसपर अल्लाह की फिटकार हो यदि वह झूठों में से हो।

तथा स्त्री से दण्ड इस प्रकार समाप्त किया जा सकता है कि वह चार बार अल्लाह की क़सम खाकर कहे कि निस्संदेह उसका पति झूठ बोल रहा है। तथा पाँचवी बार कहे कि उसपर अल्लाह का प्रकोप हो, यदि उसका पति सच बोल बोल रहा हो।»
(सूरा–24, अन-नूर, आयतें – 6-9)

इन आयतों का अर्थ यह है कि चार गवाह न होने के कारण स्त्री दंड से बच जाएगी और चूँकि पति ने स्वयं अपनी आँखों से उसको व्यभिचार करते हुए देखा है इसलिए वह कज़्फ़ की यातना से बच जाएगा, परन्तु ऐसी दशा में दोनों का इकट्ठा रहना असम्भव है, इसलिए न्यायालय के निर्णय के अनुसार दोनों में सदा के लिए संबंध-विच्छेद हो जाएगा। इसको इस्लाम की परिभाषा में 'लिआन' कहते हैं, क्योंकि दोनों ही अपने आपको झूठे होने की अवस्था में फिटकार (लानत) योग्य समझते हैं, जबकि उनमें से एक अवश्य झूठा होगा, जिसपर फिटकार अथवा लानत होगी। इस्लाम से पहले और इस्लाम के बाद आज तक इस मामले में इससे अच्छा नियम प्रस्तुत नहीं किया जा सका।

लात

क़ुरआन में तीन बुतों (मूर्तियों) के नाम आते हैं, जिनकी अरब, इस्लाम से पहले उपासना किया करते थे–

«क्या तुमने लात और उज़्ज़ा को देखा, और तीसरी (देवी) मनात की वास्तविकता पर कुछ विचार किया है? क्या बेटे तुम्हारे लिए और अल्लाह के लिए बेटियाँ? तब तो यह बहुत बेढंगा और अन्यायपूर्ण बँटवारा हुआ! वास्तव में ये तो केवल नाम हैं, जो तुमने और तुम्हारे पूर्वजों ने रख लिए हैं। अल्लाह ने तो इनके लिए कोई प्रमाण नहीं उतारा।» (सूरा–53, अन-नज्म, आयतें-19-23)

इन तीन देवियों में पहली लात है जिसे वे अल्लाह की पत्नी या बेटी कहते थे। वास्तव में यह एक सफ़ेद पत्थर था जिसपर विभिन्न प्रकार के चित्र खोदे गए थे। यह ताइफ़ नगर में एक घर में रखा हुआ

था। उसपर चादर चढ़ाई जाती थी, उसके पुजारी चारों ओर बैठे रहते थे। घर के हर ओर बड़ा मैदान था, जहाँ लोग आकर इसका दर्शन करते और काबे की तरह इसकी भी परिक्रमा करते। इसके माननेवाले क़ुरैश के अतिरिक्त, सारे अरबों पर अपनी श्रेष्ठता जताते थे।

याक़ूत हमवी का विचार है कि लात बनू-सक़ीफ़ा के एक व्यक्ति का नाम था, जो बड़ा बहादुर और निडर था जब वह मर गया तो लोगों ने यह प्रसिद्ध कर दिया कि उसकी आत्मा एक स्थान विशेष का भ्रमण कर रही थी और अब इस स्थान को उसने अपना निवास स्थान बना लिया है, फिर लोगों ने वहाँ एक पत्थर की मूर्ति बनाकर रख दी। शुरु में तो सब उसकी उपासना करते रहे, फिर यह केवल क़बीला हवाज़िन की मूर्ति (बुत) रह गई।

मक्का की विजय के बाद नबी (ﷺ) ने इसे हटाने का आदेश दिया, ताकि सदैव के लिए वहाँ से मूर्ति पूजा समाप्त हो जाए।

लूत (عليه السلام)

लूत (عليه السلام) इबराहीम (عليه السلام) के भाई हारून के पुत्र थे। वे इबराहीम (عليه السلام) की नुबूवत पर ईमान लाए। अभी वे अपने शहर उर में ही थे कि उनके पिता का देहान्त हो गया और उनके दादा, इबराहीम (عليه السلام) के पिता आज़र ने उनकी देख-भाल की ज़िम्मेदारी ले ली। लेकिन जब इबराहीम (عليه السلام) ने अपनी दावत प्रारम्भ की और बुतों की पूजा से लोगों को मना किया तो लोगों ने उनका प्रबल विरोध किया, तरह-तरह की यातनाएँ दीं और उनको जान से मार डालने का प्रयास किया, लेकिन दयावान अल्लाह ने उनको बचा लिया और उनको हिजरत का आदेश दिया, इसलिए उनको हिजरत करनी पड़ी। लूत (عليه السلام) भी उनके साथ निकल पड़े। क़ुरआन में आया है–

«तो लूत ईमान लाया और कहा : मैं अपने रब की ओर हिजरत करता हूँ। निस्सन्देह वह प्रभु शक्तिशाली और तत्त्वदर्शी है।» (सूरा–29, अल-अनकबूत, आयत–26)

फिर लूत (عليه السلام) इबराहीम (عليه السلام) के साथ मिस्र गए। वहाँ से दोनों काफ़ी धन लेकर वापस फ़िलस्तीन आए। दोनों के पास बकरियाँ और दूसरे जानवर अधिक थे, इस कारण इबराहीम (عليه السلام) तो हबरून ही में रुक गए और हज़रत लूत (عليه السلام) को इबराहीम (عليه السلام) ने धर्म-प्रचार के लिए और भेड़-बकरियों को चराने के लिए जार्डन के शहर सदूम और अमूरा भेज दिया। यहाँ के लोग विभिन्न प्रकार की बुराइयों में पड़े हुए थे। कुछ का वर्णन क़ुरआन में आया है। उनमें से एक यह है कि ये लोग स्त्रियों को छोड़कर मर्दों से अपनी कामेच्छा पूरी करते थे। (देखिए: सूरा–27, अन-नम्ल, आयत–55)

दूसरी यह कि वे आनेवाले मुसाफ़िरों को लूट लिया करते थे। (देखिए: सूरा–29, अल-अनकबूत, आयत–29)

तीसरी यह कि ये लोग बुराई छिप-कर नहीं बल्कि खुले आम करते थे।

लूत (ﷺ) ने उनको इन बुराइयों से मना किया और कहा– (देखिए: सूरा–29, अल-अनकबूत, आयत–29)

« **तुम लोग (अल्लाह) से क्यों नहीं डरते ? निश्चय ही मैं तुम्हारा अमानतदार रसूल हूँ। तो तुम अल्लाह से डरो और मेरी आज्ञा का पालन करो।**» (सूरा–26, अश-शुअरा, आयतें-161-163)

मगर उन लोगों ने न तो मूर्ति-पूजा को छोड़ा और न ही बुराइयों को, बल्कि उन्होंने लूत (ﷺ) ही को डराया और धमकाया–

«**उन्होंने कहा, ऐ लूत ! यदि तू (हमें रोकने से) बाज़ न आया तो हम तुझे (अपने शहर से) निकाल देंगे।**» (सूरा–26, अश-शुअरा, आयत–167)

क़ुरआन में एक दूसरे स्थान पर इस प्रकार आया है –

«**लूत को भी भेजा, जब उसने अपनी जाति के लोगों से कहा–**

"तुम बुराई का काम इस प्रकार करते हो कि लोग तुम्हें देख रहे होते हैं। क्या तुम स्त्रियों को छोड़कर पुरुषों से अपनी काम-इच्छा पूरी करते हो ? तुम तो बड़े जाहिल और अहमक़ लोग हो।" परन्तु उसकी जाति का उत्तर इसके अतिरिक्त कुछ नहीं था कि उन्होंने कहा, "लूत के घरवालों को अपने शहर से निकाल बाहर करो। ये लोग बड़े पाक-साफ़ (पवित्राचारी) बनते हैं।"» (सूरा–27, अन-नम्ल, आयतें-54-56)

बल्कि एक समय तो ऐसा भी आ गया जब लूत (ﷺ) की जाति ने कहा–

«**ले आ हमपर अल्लाह का अज़ाब (यातना), अगर तू सच्चा है।**» (सूरा–29, अल-अनकबूत, आयत–29)

अन्त में जब ये लोग हद से आगे बढ़ गए तो आख़िर अल्लाह का अज़ाब आ ही गया–

«**हमने उन लोगों पर बुरी वर्षा की। वह क्या ही बुरी वर्षा थी।**» (सूरा–27, अल-अनकबूत, आयत–58)

एक दूसरे स्थान पर है –

«**निश्चय ही हम इस बस्तीवालों पर आकाश से अज़ाब उतारने वाले हैं, क्योंकि ये लोग बुराई करते हैं।**» (सूरा–27, अल-अनकबूत, आयत–34)

यह अज़ाब पत्थरों और गंधक की बारिश के साथ-साथ एक ऐसी भयंकर चीख़ की शक्ल में था जिसने बस्ती को उलट-पलट कर दिया। (देखिए: सूरा–15, अल-हिज्र, आयतें-73,74)

शाम
रूम सागर
अक्का
सफ़द
हौला
हैफ़ा
तबरिया
झील तबरिया
अज़रा
शहबा
नासिरा
बेसान
यरमूक नदी
अज़रआत
सुवेदा
क़ैसारिया
अरबद
बुस्रा अश्शाम
जार्डन दरिया
तूल करम
अजलून
ओजा
नाबुलस
जुरका वादी
हल्लबात भवन
याफ़ा
फ़िलस्तीन
सलत
रमला
अरीहा
अम्मान
जार्डन
अरज़क़
अल-कुद्स
उमरह भवन
मादबा
प्रदार
ग़ज़्ज़ा
हबरून
लूत सागर
सबु कूवा
ग़ज़्ज़ा वादी
करक
सद्दूम
ज़ौग़र
आमूरा
जार्डन
औजा
50
50
100
150
किमी.
शौबक
नक़ब रेगिस्तान
पतरा
जफ़र
मआन
ऐला
अक़बा
अक़बा घाटी
सीनअ
अरब

लूत अलैहिस्सलाम का क्षेत्र

मृत्य साग़र, सद्दूम, आमूरा और ज़ौगर
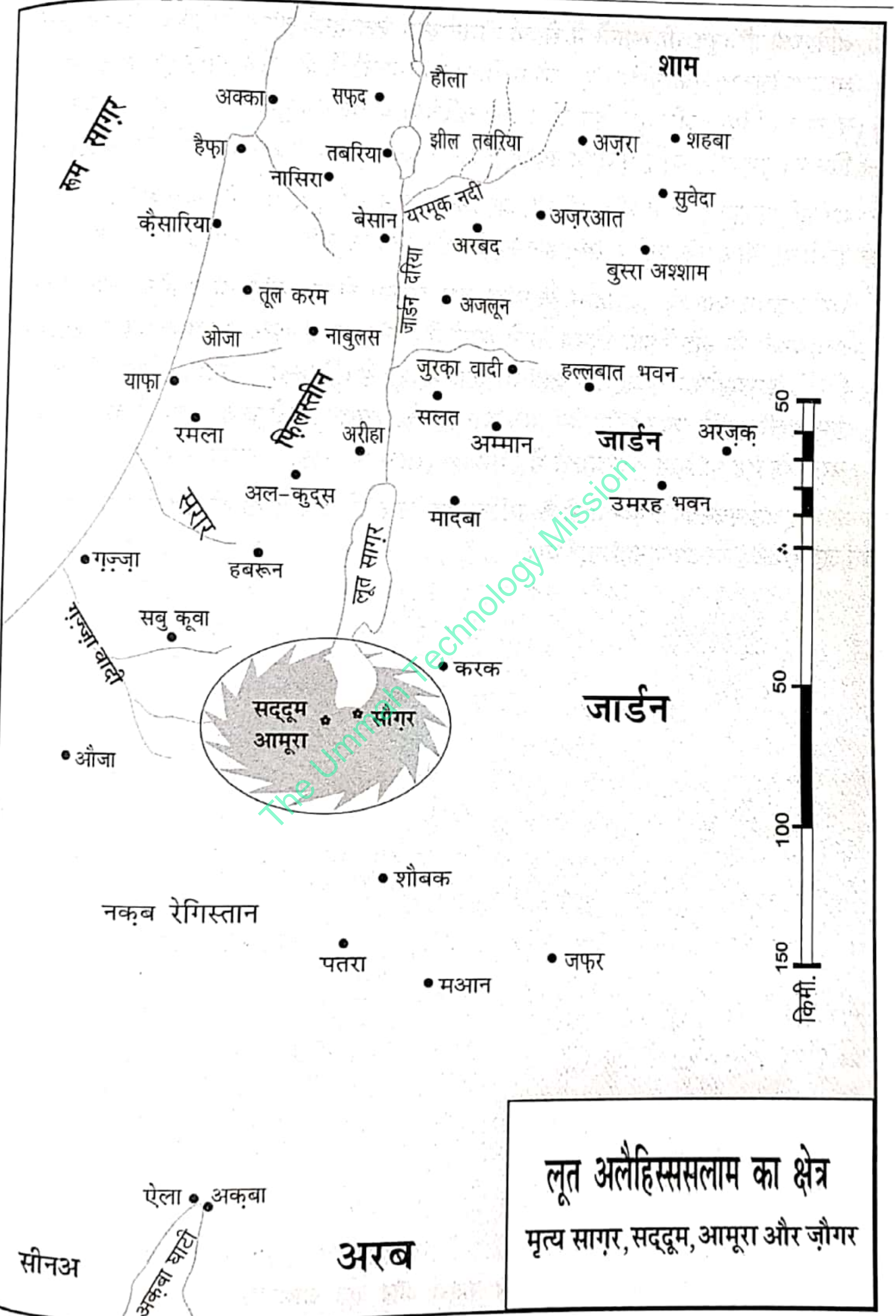
«निश्चय ही लूत भी रसूलों में से था। याद करो जब हमने उसे और उसके घरवालों को बचाया सिवाय एक बुढ़िया के, जो पीछे रह जानेवालों में थी। फिर हमने दूसरों को तहस-नहस कर दिया। और तुम दिन को उनकी बस्तियों के पास से गुज़रते हो। और रात को भी। फिर भी तुम लोग बुद्धि से काम नहीं लेते।» (सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयतें-133-138)

यह बुढ़िया लूत (عليه السلام) की पत्नी थी, जो उनपर ईमान नहीं लाई थी और जब अल्लाह का अज़ाब आया तो यह भी बस्तीवालों के साथ हलाक हो गई। क़ुरआन में है–

«जब हमारे फ़रिश्ते इबराहीम के पास शुभ सूचना लेकर पहुँचे तो उन्होंने कहा, ''हम इस बस्ती के लोगों को विनष्ट करने वाले हैं। निश्चय ही इस बस्ती के लोग ज़ालिम हैं।'' (इबराहीम ने) कहा, ''वहाँ तो लूत मौजूद है।'' उन्हों ने कहा, ''जो भी वहाँ है हम भली-भाँति जानते हैं। हम उसे और उसके घरवालों को बचा लेंगे सिवाय उसकी पत्नी के वह पीछे रह जानेवालों में होगी।» (सूरा–29, अल-अनकबूत, आयतें-31,32)

अर्थात् वह बचनेवालों में नहीं होगी, बल्कि वह उन लोगों में से होगी जो नष्ट होने वाले हैं, क्योंकि वह लूत (عليه السلام) पर ईमान नहीं लाई थी।

''सरसब्ज सहरा और मृत सागर''

तौरात में है कि जब लूत (अलैहि०) अपने परिवार को लेकर सुबह-सवेरे निकट की एक बस्ती सोअर में पहुँचे तो सदूम और अमूरा पर आग और गंधक बरसने लगी। और पूरी बस्ती उलट-पलट हो गई। उसकी स्त्री ने पीछे मुड़कर देखा और नमक का सुतून बन गई। (बाइबल, उत्पत्ति, 19:23-26) कुछ विद्वानों का विचार है कि बहरे-मैयत (मृत सागर) जिसे बहरे-लूत भी कहते हैं इसी अज़ाब के कारण बना है। क्योंकि यह समुद्र से चार सौ मीटर गहरा है। ऐसा लगता है कि पृथ्वी को उलट-पलट करने से यह गढ़ा बन गया, क्योंकि इसी समुद्र के किनारे लूत की जाति के कुछ खँडहर मिले हैं। (देखिए: क़सस-अंबिया : नज्जार पृ. 4:113)

यह है उन जातियों का भयंकर अंजाम जो अल्लाह से बग़ावत करती हैं। उसकी इबादत को छोड़कर देवी-देवताओं और उसके द्वारा रची गई वस्तुओं की पूजा-पाठ करती हैं। उनसे अपनी इच्छाएँ तलब करती हैं। उसके बताए हुए मार्ग को त्यागकर अपने मन की पैरवी करती हैं। अल्लाह के भेजे हुए नबियों और रसूलों का मज़ाक़ उड़ाती हैं। और उनको अपनी बस्तियों से निकालने की धमकी देती हैं। और विभिन्न प्रकार से उनको सताती हैं। फलस्वरूप अल्लाह का ग़ुस्सा भड़क उठता है और अल्लाह के हुक्म से बस्तियाँ की बस्तियाँ तहस-नहस कर दी जाती हैं। बस बुद्धिमानों के लिए यह खुला हुआ उपदेश है।

क़ुरआन ने नबियों और रसूलों के जीवन-चरित्र का जो विस्तृत वर्णन किया है उससे उसका उद्देश्य लोगों को सचेत करना और उन्हें शिक्षा प्रदान करना है–

«निस्सन्देह उनकी कहानियों में बुद्धि और समझ रखनेवालों के लिए एक शिक्षा-सामग्री है। यह कोई गढ़ी हुई बात नहीं है, बल्कि यह अपने से पूर्व की पुष्टि में है और हर चीज़ का विस्तार और ईमानवाले लोगों के लिए मार्गदर्शन और दयालुता है।» (सूरा–12, यूसुफ़, आयत–111)

लैलतुल-क़द्र

लैलतुल-क़द्र अर्थात् शुभ रात। यही वह शुभ रात है जिसमें क़ुरआन को अल्लाह ने लौहे-महफ़ूज़ से बैतुल-इज़्ज़त (जो पहले आकाश पर है) पर उतारा, और फिर वहाँ से आवश्यकता-नुसार जिबरील (अलैहि०) के द्वारा नबी (सल्ल०) पर 23 वर्ष तक थोड़ा-थोड़ा उतरता रहा।

लैलतुल-क़द्र का महत्त्व यह है कि इस रात की इबादत एक हज़ार महीनों से भी श्रेष्ठ है। इस रात अल्लाह की आज्ञा से फ़रिश्ते तथा जिबरील (अलैहि०) पृथ्वी पर उतरते हैं, ताकि उन कामों को पूरा किया जा सके, जिनका निर्णय अल्लाह ने कर दिया है। और यह शुभ रात भोर होने तक रहती है। (सूरा 97, अल-क़द्र, आयतें 1-5) चूँकि सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–185 में इस बात की ओर

संकेत कर दिया गया है कि क़ुरआन उतरने का प्रारम्भ रमज़ान में हुआ। इसलिए यह शुभ रात रमज़ान में ही होगी। और सहीह हदीसों में विस्तारपूर्वक बता दिया गया है कि यह शुभ रात रमज़ान की अन्तिम दस रातों में से कोई एक ताक़ (विषम) रात है। इसके निश्चित रूप से न बताने का कारण यह है कि लोग इन पाँच रातों में उसको पाने के लिए कोशिश करें।

सहीह हदीसों में आता है कि जो व्यक्ति इस शुभ रात में पुण्य की नीयत से इबादत करेगा, अल्लाह उसके सारे पाप मिटा देगा। (बुख़ारी, 1901 तथा मुस्लिम, 760)

इसलिए रमज़ान के अन्तिम दस दिनों के विषय में आइशा (رضي الله عنہا) कहती हैं कि नबी (ﷺ) पूरी रात इबादत में बिताते थे। अपने घरवालों को भी उठाते थे ताकि वे भी इस शुभ रात्रि से लाभ उठा सकें। (देखिए: बुख़ारी, 2024 तथा मुस्लिम, 1174)

आइशा (رضي الله عنہا) ही ने नबी (ﷺ) से पूछा, ''ऐ अल्लाह के रसूल (ﷺ)! अगर मुझे यह शुभ रात मिल जाए तो मैं क्या दुआ करूँ?'' आप (ﷺ) ने फ़रमाया,

''कहो! ऐ अल्लाह तू क्षमा करनेवाला है और क्षमा करना पसन्द करता है, इसलिए मुझे क्षमा कर दे।'' (तिर्मिज़ी 3513, इब्ने-माजा 3850 तथा अहमद 6:182)

व
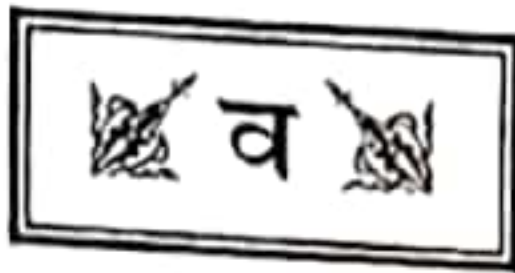
व्यापार

व्यापार को इस्लामी जीवन-व्यवस्था में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, क्योंकि इसे अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी माना जाता है। इस्लामी शिक्षाओं में व्यापार करने की जो प्रेरणा दी गई है इसकी महत्ता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि एक स्थान पर इसे जिहाद के बराबर बताया गया है –

«उसे मालूम था कि तुममें से कुछ बीमार होंगे, और कुछ लोग व्यापार के लिए धरती में यात्रा करेंगे, और कुछ लोग अल्लाह के मार्ग में जिहाद करेंगे।» (सूरा–73, अल-मुज़्ज़म्मिल, आयत–20)

एक सहीह हदीस में आया है–

"सबसे उत्तम जीविका वह है जो मनुष्य स्वयं अपनी कमाई से प्राप्त करे।" (मुस्नद अहमद, 6:42)

और दूसरी ओर उन लोगों की कठोर निन्दा की गई है, जो भीख माँगकर अपनी जीविका प्राप्त करते हैं, चाहे वे सड़कों पर भीख माँगनेवाले हों या मज़ारों के मुजाविर हों, और अपने आपको इस धोखे में रखते हों कि हम तो अल्लाह पर तवक्कुल करनेवाले हैं। ऐसे लोग क़ियामत के दिन अपने चेहरों को इस प्रकार नोचेंगे कि उनमें से सारा माँस निकल जाएगा।

लेकिन इसी के साथ इस्लामी शिक्षाओं में इस बात की भी ताकीद की गई है कि मनुष्य को चाहिए कि वह सही मार्ग से धन कमाए और ग़लत मार्ग को न अपनाए, बल्कि यह विश्वास भी रखे कि जो उसके भाग्य में लिखा हुआ है वह मिलकर रहेगा। (देखिए : इब्ने-माजा : 2142 तथा हाकिम, 2:3)

क्योंकि इस्लामी व्यापार के मूल सिद्धान्तों में से एक यह भी है कि पैसा कैसे कमाया जाए, और कहाँ ख़र्च किया जाए। अर्थात् कमाई का साधन भी सही हो, जो निर्धारित किए गए नियमानुसार हो, अगर ऐसा नहीं है तो वह व्यापार हराम कहलाएगा। इसी प्रकार एक मुसलमान का परम कर्तव्य है कि वह धन को सही स्थान पर ख़र्च करे, जो इस्लाम के सिद्धान्तों के अनुसार हो। अगर ऐसा नहीं किया तो प्रलय के दिन उसको ख़र्च का भी हिसाब देना पड़ेगा।

यूँ तो इस्लाम ने निश्चित रूप से हर प्रकार के व्यापार को जायज़ बताया है। परन्तु कुछ ऐसे भी व्यापार हैं जिनको उसने हराम बताया है, क्योंकि वे मानव-समाज के लिए हानिकारक हैं। वे व्यापार जिनके द्वारा एक धनी तो धनवान बन जाता है परन्तु एक निर्धन, और निर्धन होने लगता है, ऐसे व्यापारों को इस्लाम ने हराम बताया है। इन हानिकारक व्यापारों को दो भागों में बाँटा जा सकता है–

1. एक वे व्यापार जो ब्याज के सिद्धान्तों पर किए जाएँ। इस प्रकार के व्यापार इस्लाम धर्म में हराम हैं। चाहे वे किसी भी प्रकार से किए जाएँ। इसी लिए तो इस्लाम विरोधियों ने कहा था–

«वे कहते हैं कि व्यापार भी तो ब्याज ही जैसा है। जबकि अल्लाह ने व्यापार को हलाल ठहराया है और ब्याज को हराम।» (क़ुरआन, सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–275)

2. दूसरे वे व्यापार जिनसे समाज को हानि होती हो। इस प्रकार के व्यापार भी इस्लाम में बिल्कुल हराम हैं।

वास्तव में अरब के विधर्मी हर प्रकार के व्यापार को जायज़ समझते थे, चाहे उससे समाज में कितना ही बिगाड़ पैदा हो। उनको केवल अपनी भलाई चाहिए थी, समाज की नहीं। व्यापार के विषय में इस्लामी शिक्षाओं के विशेषज्ञों का विचार है कि आर्थिक व्यवस्था पर ही समाज की स्थापना होती है। इसलिए हर वह व्यापार जो समाज के लिए हानिकारक हो, हराम है। जैसे : ब्याज, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। (अधिक जानकारी के लिए देखिए 'ब्याज'।)

वे व्यापार जिनको इस्लाम ने हराम बताया है, उनका वर्णन यहाँ संक्षेप में किया जा रहा है–

(i) नाप-तौल में कमी करना : प्राचीनकाल से नाप-तौल में कमी करने की आदत चली आ रही थी। अरबों में भी यह रोग लग गया था। क़ुरआन ऐसे लोगों की निन्दा करते हुए उस दिन से डराता है जब मनुष्य अपने रब के सामने हिसाब देने के लिए खड़ा होगा। क़ुरआन में है –

«तबाही है नाप-तौल में कमी करनेवालों के लिए, जो नापकर लोगों से तो पूरा लेते हैं, परन्तु जब उन्हें नापकर या तौलकर देते हैं तो घटा देते हैं, क्या ये लोग समझते नहीं कि उन्हें दोबारा उठाया जाएगा? एक बड़े दिन के लिए, जिस दिन लोग सारे संसार के रब के सम्मुख अपने कर्मों का हिसाब देने के लिए खड़े होंगे।» (सूरा–83, अल-मुतफ़्फ़िफ़ीन, आयतें-1-6)

(ii) प्रत्येक वह व्यापार हराम है जिसमें धोखा हो। एक सहीह हदीस में आता है कि नबी (ﷺ) ने धोखेवाले व्यापार से मना किया। (देखिए : मुस्लिम, 1513)

यह हदीस व्यापार के सिद्धान्तों को निश्चित करती है। बस जिस व्यापार में भी धोखे का कोई पहलू पाया जाएगा वह इस्लामी शिक्षानुसार हराम होगा जैसे फल की टोकरी में ऊपर अच्छे फल रख दिए जाएँ और नीचे ख़राब, ऊपर अच्छा अनाज रख दिया जाए नीचे ख़राब। ऐसा व्यापार जिसमें ख़रीदी जानेवाली वस्तु 'मजहूल' हो अर्थात् उसके परिमाण का सही पता न हो, गिनतीवाली है तो सही गिनती का पता न हो; इसी प्रकार ऐसी वस्तु का व्यापार करना जो अब तक तैयार न हो, या जिसको तुरन्त ख़रीदनेवाले के हवाले करना असम्भव हो, इत्यादि – ये सब व्यापार हराम हैं क्योंकि इनमें धोखा पाया जाता है। बेचनेवाला जो वस्तु दे रहा है, ख़रीदनेवाला उसको सही नहीं समझ रहा है। बेचने और ख़रीदनेवाले जब तक किसी वस्तु पर पूरी तरह सहमत नहीं हो जाते, उस समय तक वह धोखेवाला व्यापार होगा और जब सहमत हो जाएँ तो फिर सही व्यापार होगा।

(iii) व्यापार में कोई ऐसी शर्त न लगाई जाए जिससे व्यापार का उद्देश्य ही समाप्त हो जाए। अगर किसी ने ऐसी शर्त लगाई तो व्यापार सही होगा, परन्तु वह शर्त लागू नहीं होगी। जैसे ज़मीन बेचनेवाला ज़मीन लेनेवाले पर यह शर्त लगा दे कि इस ज़मीन पर कोई मकान नहीं बनाया जा सकता या विवाह के समय यह शर्त लगा दी जाए कि दो बच्चों से अधिक बच्चे पैदा नहीं होने चाहिएं। इस तरह की बातों में मामला ठीक होगा परन्तु शर्त ठीक न होगी। एक सहीह हदीस में आया है–

"हर वह शर्त जो अल्लाह की किताब में नहीं है, मिथ्या है, चाहे वह सौ शर्तें क्यों न लगा ले।" (देखिए: बुख़ारी, 456 तथा मुस्लिम, 1504)

(iv) अगर कोई व्यक्ति कोई वस्तु ख़रीद रहा है तो किसी दूसरे के लिए जायज़ नहीं कि वह भी उसे ख़रीदने लगे जब तक पहला व्यक्ति उसको छोड़ न दे। (देखिए: बुख़ारी, 2139 तथा मुस्लिम, 1413)

कुछ उन चीज़ों का वर्णन जिनका व्यापार वर्जित (हराम) है –

1. मदिरा, मरा हुआ जानवर, सूअर तथा बुतों का व्यापार। (देखिए: बुख़ारी, 2236 तथा मुस्लिम, 1581)

मरे हुए जानवर के चमड़े का व्यापार उचित है, जब उसको पक्का (दबाग़त) कर लिया जाए। (देखिए: बुख़ारी, 5531)

2. कुत्ते तथा रक्त का व्यापार (देखिए: बुख़ारी, 2238)
3. व्यभिचार तथा पूजा-पाठ की कमाई हराम है। (देखिए: बुख़ारी, 2282 तथा मुस्लिम, 1567)
4. किसी स्वतंत्र व्यक्ति को बेचना हराम है एक सहीह हदीस में आया है–

"अल्लाह का कहना है कि तीन प्रकार के लोगों का मैं प्रलय के दिन शत्रु बनूँगा – एक वह जिसने मेरे नाम से कोई समझौता किया, फिर तोड़ दिया, दूसरा वह जिसने किसी स्वतंत्र व्यक्ति को पकड़कर बेच दिया और उसका मूल्य खाया; तीसरा वह जिसने मज़दूर से तो पूरा काम लिया परन्तु उसकी मज़दूरी नहीं दी।" (देखिए: बुख़ारी, 2227)

5. वह पानी जो अपनी आवश्यकता से अधिक हो, उसका बेचना हराम है। (देखिए: बुख़ारी, 2354 तथा मुस्लिम, 1566)
6. साँड का वीर्य बेचना हराम है।
7. फल को पेड़ पर कच्चा ही बेच देना हराम है। (देखिए: बुख़ारी, 2381 तथा मुस्लिम 1536)

एक दूसरी हदीस में उसको 'काला' कहा गया है। अर्थात् फल जब तक न बेचा चाए जब तक वह काला न हो जाए।

चूँकि अरब में अधिकतर व्यापार खजूर के फलों का होता था इसलिए उसको 'काला' कहा गया है, क्योंकि जब खजूर काला होने लगता है तो फिर वह हवाओं या वर्षा से गिरता नहीं।

इसके अतिरिक्त और भी ऐसे व्यापार हैं जिनको इस्लाम में हराम बताया गया है क्योंकि वह मानव-समाज के लिए हानिकारक हैं, परन्तु संक्षेप के कारण यहाँ केवल उन महत्वपूर्ण व्यापारों का वर्णन किया गया है, जो हराम हैं। बाक़ी वह व्यापार जो ख़रीदने और बेचनेवाले के बीच परस्पर सहमति से होगा, जायज़ माना जाएगा जैसा कि पवित्र क़ुरआन में आया है–

«ऐ ईमानवालो, परस्पर एक-दूसरे के धन को अवैध रूप से न खाओ, सिवाय इसके कि तुम्हारा आपस में सहमति से सौदा हो जाए।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–29)

यह इस्लामी व्यापार के सिद्धान्तों में सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसलिए हर वह व्यापार हराम होगा जिसमें बेचने और ख़रीदनेवाले आपस में सहमत न हों।

वुज़ू

वुज़ू नमाज़ के लिए अनिवार्य है। इसके बिना नमाज़ नहीं होती। जैसा कि सहीह हदीसों में आया है कि वुज़ू के बिना नमाज़ नहीं।

❁ वुज़ू करने का तरीक़ा

«ऐ ईमानवालो! जब तुम नमाज़ के लिए खड़े हो तो अपने मुँह और हाथ कुहनियों तक धो लिया करो और अपने सिरों पर हाथ फेर लो और अपने दोनों पाँव टख़नों तक धो लो।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–6)

सहीह हदीसों से सिद्ध होता है कि हाथ को पानी में डालने से पहले तीन बार धो लिया जाए, फिर तीन बार कुल्ली की जाए और मुँह में पानी लेकर ग़रारा किया जाए, फिर तीन बार नाक में पानी डालकर नाक की गन्दगी साफ़ की जाए, फिर तीन बार मुँह को धोया जाए, फिर तीन बार हाथों को कुहनियों तक धोया जाए, फिर हाथों में पानी लेकर सिर पर फेरा जाए, जिसे 'मस्ह' कहते हैं। फिर तीन बार पैरों को धोया जाए। इस प्रकार वुज़ू मुकम्मल हो जाएगा।

यह वह वुज़ू है जिसके बिना नमाज़ नहीं होती। परन्तु एक बार वुज़ू करने के बाद अगर वह बाक़ी है, तो दूसरी नमाज़ उसी वुज़ू से पढ़ सकते हैं।

❁ जिन कारणों से वुज़ू टूट जाता है, वे ये हैं–

1. सम्भोग से,
2. पाख़ाना-पेशाब करने से,

3. सोने से,

4. अधोवायु निकलने से

5. मासिक-धर्म और इस्तिहाज़ा आने से

6. बेहोशी की दशा में

7. नशे की दशा में

8. ऊँट का मास खाने की दशा में

कुछ उलमा के निकट क़ै आने और लिंग छूने से भी वुज़ू टूट जाता है। परन्तु इस विषय की हदीसें बहुत सहीह नहीं हैं।

विवाह

इस्लामी धर्मशास्त्र में विवाह को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। नबी (ﷺ) ने स्वयं विवाह किए और दूसरे नौजवानों को भी विवाह करने का हुक्म दिया, जैसा कि एक सहीह हदीस में आया है–

"ऐ नौजवानो, अगर तुम विवाह कर सकते हो तो अवश्य करो, क्योंकि यह आँखों की चोरी से बचाता है, और शर्मगाहों को सुरक्षित रखता है। और जो किसी कारण न कर सके, उसे चाहिए कि उपवास रखे, क्योंकि यह भोगेच्छा को कम करता है।" (देखिए: बुख़ारी-1905, तथा मुस्लिम-1400)

नबी (ﷺ) से पूर्व जो नबी या रसूल भेजे गए थे, उन्होंने भी विवाह किए थे, जिसका क़ुरआन में वर्णन इस प्रकार आया है–

«तथा हम आपसे पूर्व भी बहुत-से रसूल भेज चुके हैं, जिनको हमने पत्नियों तथा सन्तानवाला बनाया।» (सूरा–13, अर-रअद, आयत–38)

इस आयत में उन लोगों के मत का खंडन है जो नबियों को मनुष्य नहीं, बल्कि कोई और प्राणी समझते हैं। जैसे ज्योति जीव, या अल्लाह का रूपान्तर इत्यादि, जिनको विवाह की आवश्यकता नहीं होती। इस लिए कुछ धर्मपुरुष अपने आप को विवाह से बचाए रखते हैं, जो वास्तव में रसूलों की शिक्षाओं के विरुद्ध है। इस्लाम में धर्मपुरुष अपवाद नहीं है। जो अनिवार्य है वह सब पर अनिवार्य है और जो निषेध है वह सब पर निषेध है, अगर कोई अन्तर है तो वह केवल ज्ञानी तथा अज्ञानी का है जिसकी ओर क़ुरआन इस प्रकार संकेत करता है–

«अल्लाह तुममें से उन लोगों को जो ईमान लाए तथा जिनको ज्ञान दिया गया ऊँचा पद प्रदान करेगा।» (सूरा–58, अल-मुजादिला, आयत–11)

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि विवाह करना रसूलों का मार्ग है।

नबी (ﷺ) के एक साथी अनस (رضي الله عنه) कहते हैं कि एक बार कुछ सहाबा जमा हुए। उनमें से एक ने कहा, ''मैं विवाह नहीं करूँगा।'' किसी ने कहा, ''मैं रात में सोऊँगा नहीं, बल्कि नमाज़ पढ़ूँगा।'' किसी ने कहा, ''मैं रोज़े (उपवास) रखूँगा और कभी नहीं छोड़ूंगा।'' जब इसकी सूचना नबी (ﷺ) को दी गई तो आपने फ़रमाया,

''क्या हो गया है कुछ लोगों को जो ऐसा-ऐसा कहते हैं। क्या देखते नहीं मैं रोज़ा (उपवास) भी रखता हूँ और छोड़ भी देता हूँ, रात में सोता भी हूँ और नमाज़ भी पढ़ता हूँ। और विवाह भी करता हूँ, तो जो मेरे मार्ग से हटेगा वह हममें से नहीं है।'' (देखिए: बुख़ारी-5063, तथा मुस्लिम-1401)

एक सहाबी ने, जिनका नाम उस्मान-बिन-मज़ऊन था, स्त्री भोग से अपने आपको अलग करने का विचार किया, जिससे नबी (ﷺ) ने रोक दिया। अगर नबी (ﷺ) उनको ऐसा करने की आज्ञा दे देते तो बहुत सारे लोग खस्सी (बधिया) हो जाते।» (देखिए: बुख़ारी-5073, तथा मुस्लिम-1402)

विवाह करने का एक उद्देश्य मानव-जाति की नस्ल को बाक़ी रखना और बढ़ाना है। इसलिए ऐसी स्त्रियों से विवाह करने का हुक्म दिया गया है, जो अधिक बच्चे पैदा कर सकें ताकि नबी (ﷺ) प्रलय के दिन दूसरी उम्मतों पर गर्व कर सकें। (देखिए: मुस्नद अहमद, 3:158)

इस्लाम में एक से लेकर चार विवाह तक करने की इजाज़त है, परन्तु इसके लिए अनिवार्य है कि पति सभी पत्नियों के साथ एक जैसा व्यवहार करे। अगर वह सबके साथ न्याय करने की स्थिति में अपने को नहीं पाता तो फिर एक ही पत्नी पर बस करना चाहिए। (देखिए: सूरा–4, अन-निसा, आयत–3)

कुछ लोग एक से अधिक विवाह करने की हिकमत नहीं समझ पाते, जिसके कारण वे आक्षेप करते हैं। परन्तु अगर वे मनुष्य के स्वभाव और स्त्रियों के अधिक होने पर विचार कर लेते तो यह बात उनकी समझ में आ जाती कि इस्लाम में एक से अधिक विवाह की अनुमति क्यों दी गई है। अगर आप ऐसा नहीं करेंगे तो फिर या तो आप चोरी छिपे व्यभिचार करेंगे (अर्थात् सब लोग नहीं कुछ लोग) या फिर ये स्त्रियाँ किसी की दूसरी पत्नी बनने के बजाय समाज पर बोझ बनेंगी जिनका कोई संरक्षक नहीं। इन सामाजिक बुराइयों को रोकने के लिए इस्लाम ने इस समस्या का यह हल निकाला है। परन्तु ऐसे लोगों की कठोर निन्दा भी की गई है जो एक से अधिक विवाह करते हैं, परन्तु अपनी सभी पत्नियों के बीच न्याय नहीं कर पाते। ऐसे लोगों से कहा गया है कि वे एक ही विवाह करें। एक से अधिक नहीं।

❁ विवाह की कुछ विशेष हिकमतें

1. **सतीत्व की रक्षा :** मनुष्य की सृष्टि सतीत्व पर हुई है। इसलिए उसके रब ने लालसा की रक्षा के लिए विवाह की प्रथा जारी की, ताकि सतीत्व की रक्षा की जा सके अगर ऐसा न होता तो फिर मनुष्य में और दूसरे पशुओं में कोई अन्तर न होता।

2. **पति तथा पत्नी के बीच प्रेम भावना :**

«उसकी निशानियों में से यह है कि उसने तुम्हारे लिए स्वयं तुम ही में से जोड़े पैदा किए, ताकि तुम उनके पास आराम और चैन पाओ और तुम्हारे बीच प्रेम और दयालुता रख दी। निस्सन्देह इसमें बहुत-सी निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो सोच-विचार करते हैं।» (क़ुरआन, सूरा–30, अर-रूम, आयत–21)

3. **मानव-वंश की रक्षा :** विवाह ही एक मात्र ऐसा साधन है, जो मनुष्यों के अस्तित्व को पृथ्वी पर शेष रखने में सहायक है। अगर ऐसा न हो तो इस धरती से मनुष्य का अस्तित्व ही समाप्त हो जाए।

4. **चरित्र की रक्षा :** अर्थात् विवाह द्वारा ही अपने चरित्र की रक्षा की जा सकती है। अगर ऐसा न होता तो फिर दुराचार ही दुराचार होता।

❁ विवाह के कुछ नियम और धर्मादेश :

1. वे स्त्रियाँ जिनसे विवाह करना हराम है – माँ, बेटी, बहन, फूफी, मौसी, भाई की बेटी, बहन की बेटी, वह स्त्री जिसने दूध पिलाया हो, दूध पीने में साझी बहनें, सगी सास, तुम्हारी गोद में पलनेवाली बालिका – अर्थात् जिसको तुम्हारी पत्नी लेकर आई हो परन्तु अगर अभी तुमने अपनी पत्नी से सम्भोग नहीं किया और उसको तलाक़ दे दी, या उसकी मृत्यु हो गई तो उस लड़की से विवाह किया जा सकता है। और इसी प्रकार सगे पुत्रों की पत्नियाँ तथा दो बहनों से एक साथ विवाह करना ये सब हराम हैं। (देखिए : सूरा–4, अन-निसा, आयत–23)

और सहीह हदीसों में पत्नी तथा उसकी फूफी, को एक साथ निकाह में रखना, पत्नी तथा उसकी मौसी से एक साथ विवाह करना भी हराम बताया गया है। (देखिए : बुख़ारी, 5109 तथा मुस्लिम 1408)

2. ब्याह शिग़ार : शिग़ार उस विवाह को कहते हैं कि एक व्यक्ति अपनी बहन या बेटी का विवाह दूसरे की बहन या बेटी के बदले करे, और उनके लिए महर निर्धारित न किया जाए। इस विवाह से नबी (ﷺ) ने मना फ़रमाया है। (देखिए : बुख़ारी, 5112 तथा मुस्लिम 1415)

परन्तु अगर दोनों ओर से महर निर्धारित कर दिया जाए तो यह शिग़ार नहीं कहलाएगा।

3. मुशरिक स्त्रियों से विवाह नहीं किया जा सकता, जब तक वे मुसलमान न हो जाएँ–

«मुशरिक स्त्रियों से उस समय तक विवाह न करो जब तक वे ईमान न ले आएँ, ईमानवाली लौंडी (दासी) आज़ाद मुशरिक स्त्री से उत्तम है, चाहे मुशरिक स्त्री कितनी ही सुन्दर क्यों न लगती हो, और इसी प्रकार अपनी स्त्रियों का विवाह मुशरिक पुरुषों से न करो जब तक कि वे ईमान न ले आएँ, ईमानवाला ग़ुलाम (दास) मुशरिक से उत्तम है चाहे तुम्हें मुशरिक पुरुष कितने ही सुन्दर क्यों न लगते हों। ये वे लोग हैं जो नरक की ओर बुलाते हैं। और अल्लाह स्वर्ग और मोक्ष की ओर बुलाता है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–221)

अहले-किताब (अर्थात यहूदी तथा ईसाई) की स्त्रियों से विवाह किया जा सकता है। (देखिए: सूरा–5, अल-माइदा, आयत–5)

परन्तु इसके लिए अनिवार्य है कि वे स्त्रियाँ व्यभिचार करनेवाली न हों और न अपना प्रेम-मित्र रखनेवाली हों। चूँकि अहले-किताब में प्रेम-मित्र रखने की प्रथा प्राचीनकाल से चली आ रही है। इसलिए उमर (ﷺ) जब ख़लीफ़ा बने तो उन्होंने अहले-किताब की स्त्रियों से विवाह-निषेध कर दिया। जब उनसे पूछा गया कि क्या यह हराम है तो उन्होंने कहा, "मैं हराम तो नहीं कहता, परन्तु डर है कि कहीं तुम व्यभिचार करने वाली स्त्रियों को न अपनाने लगो।" (देखिए: इब्ने-जरीर तबरी 4:366)

व्यभिचार इस्लाम की दृष्टि में अत्यन्त घृणित अपराध है। इसलिए ईमानवाले स्त्री-पुरुषों को व्यभिचारी स्त्री-पुरुषों से विवाह करने से रोका गया है। क़ुरआन में है–

«व्यभिचारी किसी व्यभिचारिणी या शिर्क करनेवाली स्त्री से ही विवाह कर सकता है। और (इसी प्रकार) व्यभिचारिणी किसी व्यभिचारी या शिर्क करनेवाले पुरुष से ही विवाह कर सकती है। और यह ईमानवालों पर हराम कर दिया गया है।» (सूरा–24, अन-नूर, आयत-3)

4. जिस स्त्री से विवाह करना हो, अगर अवसर मिल जाए तो उसे देख लेना चाहिए जैसा कि एक हदीस में आया है–

जाबिर (ﷺ) कहते हैं कि नबी (ﷺ) ने फ़रमाया –

"मंगनी करनेवाले के लिए अगर संभव हो तो स्त्री को देख ले।"

जाबिर (ﷺ) कहते हैं कि मैंने एक स्त्री से मंगनी की और छिप-छिपकर देखने का प्रयत्न करता रहा, यहाँ तक कि मैंने उसे देख लिया। (देखिए: अबू-दाऊद 2082 तथा मुस्तदरक 2: 165)

एक दूसरी हदीस में आता है कि इससे तुम दोनों के बीच प्यार बढ़ेगा। (देखिए: तिरमिज़ी, 1087 तथा इब्ने-माजा 1885)

5. अगर कोई पुरुष किसी स्त्री से मंगनी करना चाहता है तो दूसरे के लिए जायज़ नहीं कि वह भी उससे मंगनी करने का पैग़ाम भेज दे। यहाँ तक कि पहला व्यक्ति या तो मंगनी कर ले, या छोड़ दे। फिर छोड़ने की दशा में दूसरा मंगनी कर सकता है। (देखिए : बुख़ारी, 5144 तथा मुस्लिम 1412)

6. विवाह के बंधन में बंधते ही महर् देना अनिवार्य हो जाता है, जैसा कि क़ुरआन में आया है–

«**स्त्रियों की महर् अपनी हैसियत से दो, फिर यदि वे अपनी इच्छा से उसमें से कुछ छोड़ दें तो तुम सुख-चैन से उसे खाओ।**» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–4)

«**फिर उनसे तुमने जो भोग किया, उसके बदले उनका निश्चित किया हुआ महर् दो, और अगर निश्चित किए हुए महर् के बारे में तुमने आपस में अपनी प्रसन्नता से कोई समझौता कर लिया तो इसमें तुमपर कोई गुनाह नहीं है। निस्सन्देह अल्लाह सब कुछ जाननेवाला और तत्त्वदर्शी है।**» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–24)

यह महर् किसी कारण विलम्ब से भी दिया जा सकता है, परन्तु इसके लिए आवश्यक है कि समय निर्धारित कर दिया जाए। अर्थात् महर् की अदायगी अनिवार्य है, चाहे महर् तुरन्त दी जाए, या देर से। यह किसी प्रकार से ख़त्म नहीं हो सकता।

7. माता-पिता अपनी प्रसन्नता से अपनी बेटी को वस्त्र, आभूषण तथा घरेलू प्रयोग की वस्तुएँ दे सकते हैं, परन्तु लड़के को न कुछ लेना चाहिए, और न ही माँगना चाहिए। अगर वह ऐसा करता है तो यह हराम है। क़ुरआन में कहा गया है–

«**ऐ ईमानवालो! परस्पर एक-दूसरे का धन अवैध रूप से न खाओ, सिवाय इसके कि अपनी रज़ामन्दी से कोई सौदा हो।**» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–29)

इसलिए अगर किसी ने अनजाने में लड़की के माता-पिता से कुछ माँगकर ले लिया हो तो उसे चाहिए तुरन्त वापस कर दे, ताकि हराम की कमाई से पला हुआ जिस्म नरक की आग से बच जाए।

8. बारात ले जाना : यह एक ग़ैर- इस्लामी रीति है। इसके द्वारा लड़कीवालों पर अनावश्यक बोझ पड़ता है। हाँ, अगर किसी का विवाह किसी दूसरे नगर में हो रहा हो, तो कुछ लोगों के साथ जाकर विवाह कर लेना उचित है।

9. वलीमा करना : यह सुन्नत है। जैसा कि सहीह हदीसों में आया है–

"*अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (ﷺ) ने विवाह किया तो नबी (ﷺ) ने फ़रमाया : वलीमा करो चाहे एक बकरी ही क्यों न हो।*" (बुख़ारी, 5168 तथा मुस्लिम 1428)

नबी (ﷺ) ने जब 'ज़ैनब' (رضي الله عنها) से विवाह किया तो रोटी और गोश्त से वलीमा किया। (देखिए : बुख़ारी, 5154 तथा मुस्लिम 1428)

नबी (ﷺ) ने कुछ पत्नियों का वलीमा केवल चन्द मुट्ठी जौ से किया। (देखिए: बुख़ारी, 5172)

अर्थात् वलीमा करना सुन्नत है। हर व्यक्ति अपने सामर्थ्य के अनुसार वलीमा कर सकता है, जिसमें धनवानों के साथ-साथ निर्धनों को भी भोजन कराना चाहिए

10. विवाह में दफ़ बजाना : विवाह की ख़ुशी में लड़कियाँ चाहें तो दफ़ बजाकर और स्वर के द्वारा अपनी प्रसन्नता प्रकट कर सकती हैं, जैसा कि एक हदीस में आया है–

"हलाल और हराम में जो अन्तर है वह विवाह में दफ़ बजाना तथा स्वर निकालना है।"

अर्थात विवाह का दफ़ बजाकर या किसी और तरीक़े से एलान किया जाता है, परन्तु व्यभिचार छिपाकर किया जाता है। हलाल अर्थात विवाह और हराम अर्थात व्यभिचार में यही अन्तर है। (देखिए: तिरमिज़ी-1088 नसई, 6:1270, इब्ने- माजा, 1897)

दफ़ एक बाजे का नाम है जिसको जफ़ाली बजाते फिरते हैं। इस बाजे के द्वारा एक प्रकार से विवाह का एलान भी होता है। दूसरे लड़कियाँ अपनी-अपनी प्रसन्नता भी प्रकट करती हैं। और यह एक स्वाभाविक बात है जिससे इस्लाम मना नहीं करता, परन्तु नाच, गाना, बैंड बाजा, इत्यादि इस्लामी शिक्षाओं के अनुकूल नहीं है।

11. दुल्हा दुल्हन को कोई तोहफ़ा दे; जैसा कि हदीस में आया है–

"दुल्हे को चाहिए कि जब वह सुहागरात को अपनी पत्नी के पास जाए तो उसे कुछ भेंट में दे। इससे आपस में प्रेम बढ़ता है। और यह सदैव याद रखे कि यह एक निर्बल मख़लूक़ है, जिसको एक बोल के द्वारा अल्लाह ने उसके हवाले कर दिया। इसलिए उसके साथ नर्म बर्ताव करे। किसी प्रकार का कष्ट न दे। नबी (ﷺ) सदैव स्त्रियों के विषय में यह ताकीद किया करते थे कि उनके साथ अच्छा बर्ताव करो।" (देखिए: बुख़ारी, 3331 तथा मुस्लिम, 1468)

एक अवसर पर फ़रमाया –

"पूर्ण ईमानवाला वह है जो सबसे अधिक सदाचारी हो और सबसे उत्तम वह है जो अपनी पत्नी के साथ सदव्यवहार करनेवाला हो।" (देखिए: तिर्मिज़ी, 1162)

विश्वासघात

इसको ग़द्दारी भी कह सकते हैं। अल्लाह विश्वासघातियों को पसन्द नहीं करता, चाहे वे मुसलमान हों या ग़ैर- मुस्लिम। जब आपस में कोई सन्धि हो जाए तो एक तरफ़ से उसे तोड़ना विश्वासघात कहलाएगा। यह अनिवार्य है कि दोनों ओर से उसे भंग किया जाए और अगर ऐसा नहीं किया, तो वह अल्लाह को पसन्द नहीं होगा। (देखिए: सूरा–8, अल-अनफ़ाल, आयत–58)

इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि क़ुरआन हर मामले में, यहाँ तक कि युद्ध और लड़ाई में भी सच्चाई अपनाने को कितना महत्व देता है।

❮ वली ❯

वली शब्द का अनुवाद हम संरक्षक या मित्र कर सकते हैं। क़ुरआन ने अल्लाह के शुभ नामों में से एक नाम वली भी बताया है और बार-बार इस बात की चेतावनी दी है कि जो लोग अल्लाह को छोड़कर किसी और को पूजते हैं, पुकारते हैं, उससे सहायता माँगते हैं, उनका कोई वली नहीं है अर्थात् अल्लाह केवल उन लोगों का वली है जो उसकी अद्वितीयता और एकत्व पर विश्वास करते हैं, उसको अपना संरक्षक मित्र समझते हैं और उसी से अपनी आशाएँ लगाते हैं–

«जिस व्यक्ति को अल्लाह पथभ्रष्ट कर दे तो उसके बाद उसका कोई संरक्षक-मित्र नहीं।» (सूरा–42, अश-शुरा, आयत–44)

फिर शब्द वली बन्दों के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। इसका बहुवचन औलिया है। क़ुरआन में दो प्रकार के औलिया बयान किए गए हैं–

1. एक औलिया-ए-शैतान अर्थात् शैतान के दोस्त, जिनका काम लोगों को पथभ्रष्ट करना और इस्लाम के विरुद्ध षड्यंत्र रचना है। इनके विषय में आया है–

   «निश्चय ही हमने शैतानों को उन लोगों का वली बना दिया जो ईमान नहीं लाते।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–27)

   «इसलिए कि उन्होंने अल्लाह को छोड़कर शैतान को अपना वली बना लिया है। और समझते हैं कि हम सीधे मार्ग पर हैं।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–30)

2. दूसरे औलिया वे हैं जिन्होंने केवल अल्लाह को अपना वली बनाया है। इनके विषय में आता है–

   «सुनो! अल्लाह के औलिया को न तो कोई भय होगा और न वे दुखी होंगे।» (सूरा–10, यूनुस, आयत–62)

   और इन्हीं की विशेषता यह बताई गई है –

   «ये वे लोग हैं जो ईमान लाए, और सदाचारी बने रहे। उनके लिए संसार में भी शुभ सूचना है, और आख़िरत में भी।» (सूरा–10, यूनुस, आयतें–63,64)

   अर्थात् प्रलय के दिन जब विधर्मी और मुशरिक लोग घबराए हुए इधर-उधर भाग रहे होंगे तो अल्लाह के ये औलिया अत्यन्त शान्तिपूर्वक अपने कर्मपत्र देख रहे होंगे–

   «सबसे बड़ी घबराहट उन्हें दुखी नहीं करेगी, बल्कि फ़रिश्ते उनका स्वागत करेंगे, और (उनसे कहेंगे) कि यह तुम्हारा वही दिन है जिसका तुम से वादा किया गया था।» (सूरा–21, अल-अंबिया, आयत–103)

जबकि उस दिन इस्लाम विरोधियों की दशा यह होगी कि वे मारे-मारे इधर-उधर फिरेंगे, लेकिन कहीं भी उनको शान्ति नहीं मिलेगी।

औलिया के विषय में कुछ सहाबा का कथन है कि अगर तुम उनको देखो तो अल्लाह याद आएगा। अर्थात् उनका रहन-सहन, मेल-मिलाप, लेन-देन, आन्तरिक और बाह्य आचरण इस प्रकार का होगा कि अल्लाह की सत्ता याद आएगी और ज़बान से सुब्हानल्लाह जारी हो जाएगा।

अब जब अल्लाह के सहीह वली की पहचान हो गई तो मुसलमानों को चाहिए कि वे शैतान के वली बनने से बचें, जो शिर्क, बिदअत और अंधविश्वासों की ओर बुलाते हैं, उनको इस्लाम की कसौटी – क़ुरआन तथा सहीह हदीस – पर परखकर देखें। अगर इस पर खरे नहीं उतरते हों तो उनसे दूर हो जाएँ, ताकि कहीं वे अपने बहुमूल्य धन ईमान से ही हाथ न धो बैठें।

फिर अल्लाह के औलिया की दूसरी विशेषता यह बताई गई है कि वे संसार में दुखी नहीं होंगे, बल्कि अपने भाग्य पर प्रसन्नतापूर्वक जीवन बिताएँगे। संसार के कष्टों से घबराएँगे नहीं, बल्कि वे यह विचार करके कि यहाँ जो कुछ भी हो रहा है सब अल्लाह की ओर से है, धैर्य से काम लेंगे। एक सहीह हदीस में अल्लाह के औलिया की यह विशेषता बताई गई है–

"अल्लाह के बन्दों में कुछ ऐसे बन्दे भी हैं जो नबी तो नहीं हैं, परन्तु नबी और शहीद उनपर रश्क करेंगे। लोगों ने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल! हमें बताएँ वे कौन लोग हैं, ऐ अल्लाह के रसूल! हमें बताएँ वे कौन लोग हैं, ताकि हम उनसे प्रेम करें?"

आप (ﷺ) ने फ़रमाया – "ये वे लोग हैं जिन्होंने बग़ैर रिश्ते-नाते तथा बग़ैर परिवार के केवल अल्लाह के लिए एक दूसरे से प्रेम किया। उनके मुख प्रकाश से जगमगा रहे होंगे। जब लोग भयभीत होंगे तो उनको कोई भय नहीं होगा और जब लोग दुखी और शोक में होंगे तो उनको कोई दुख नहीं होगा।" फिर आपने सूरा–10, यूनुस की आयत–62 पढ़ी। (देखिए : सहीह इब्ने-हिब्बान, 573)

संक्षेप यह कि औलिया अल्लाह वे लोग हैं जो क़ुरआन तथा सहीह हदीसों पर अमल करते हों, सहाबा तथा ताबईन के जीवन को अपना आदर्श बनाते हों। औलिया-ए-शैतान वे हैं जो क़ुरआन तथा सहीह हदीस के बजाय ज़ईफ़, और मौज़ूअ हदीसों का सहारा लेते हैं, बग़ैर सोचे-समझे करामातों पर ईमान लाते हैं, चाहे वे इस्लामी शिक्षा के विरुद्ध ही क्यों न हों, और विभिन्न प्रकार की बिदअतों का सहारा लेकर समाज में अपनी मर्यादा बढ़ाने की चेष्टा करते हैं। इनसे बचकर रहना हर सच्चे मुसलमान पर अनिवार्य है।

वद्द

सूरा–71, नूह में पाँच बुतों के नाम आए हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं : वद्द, सुवाअ, यग़ूस, यऊक़, तथा नस्र। अरब के इतिहासकारों का विचार है कि ये नूह (عليه السلام) की जाति के सदाचारी लोग थे। जब

इनका देहान्त हो गया तो किसी ने कहा कि इनकी मूर्ति बनाकर रख लें, ताकि सदैव याद रखे जाएँ। कालान्तर में लोगों ने इन्हीं मूर्तियों की पूजा-पाठ करनी आरम्भ कर दी, और फिर शैतान ने भी उनकी सहायता की और विभिन्न प्रकार से उनको इन मूर्तियों की उपासना करने का रास्ता दिखाया। इस प्रकार ये सदाचारी जो स्वयं अल्लाह की इबादत करते थे पूज्य बन गए। मूर्तियों को पूजनेवाले लोग इस बात को कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई लाभ तथा हानि पहुँचानेवाला नहीं है समझने के योग्य नहीं रहे। इसी की ओर नूह (ﷺ) ने संकेत करते हुए कहा था–

«नूह ने कहा : ऐ रब इन्होंने मेरी अवज्ञा की, और ऐसे लोगों के पीछे चले जिन्हें उनके माल और उनकी औलाद ने बस घाटा ही घाटा दिया और बहुत बड़ी-बड़ी चालें चले और कहा कि कभी भी अपने पूज्यों को न छोड़ना, और न वद्द को छोड़ना, और न सुवाअ को और न यग़ूस और यऊक़ और नस्र को।» (सूरा–71, नूह, आयतें–21-23)

इमाम बुख़ारी ने इब्ने-अब्बास (رضي الله عنه) का यह वचन उद्धृत किया है कि नूह (ﷺ) की जाति के बुत अरबों में प्रवेश कर गए जैसे वद्द, दौमतुलजन्दल के कल्ब नामक क़बीले का बुत बन गया। सुवाअ हुज़ैल क़बीले का, यग़ूस, मुराद क़बीले का और यऊक़ 'बनीग़ुतैफ़ क़बीले का, नस्र हिम्यर क़बीले का। (देखिए : सहीह बुख़ारी, 4920)

हो सकता है दूसरे देशों में भी बुतों की पूजा इसी प्रकार प्रारम्भ हुई हो, क्योंकि मनुष्य नैसर्गिक रूप से तो तौहीद (एकेश्वरवाद) पर जन्म लेता है। परन्तु उसके माता-पिता तथा समाज के लोग उसको अपनी तरह से ढाल लेते हैं।

वसीयत

वसीयत को उत्तरदान भी कह सकते हैं। यह प्रारम्भ में अनिवार्य थी, जैसा कि सूरा अल-बक़रा में आया है –

«तुमपर वसीयत करना अनिवार्य कर दिया गया, जब तुममें से किसी की मौत का समय निकट आ जाए और वह बहुत धन छोड़ रहा हो, तो माता-पिता तथा नातेदारों को भलाई की नसीहत करना तुमपर अनिवार्य है। यह हक़ है डर रखनेवालों पर।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–180)

परन्तु जब मीरास का नियम आ गया तो वसीयत करना अनिवार्य नहीं रह गया। दूसरे यह कि अब वारिसों के लिए वसीयत नहीं की जा सकती, जैसा कि एक सहीह हदीस में आया है –

"अल्लाह ने हर वारिस का भाग निश्चित कर दिया, इसलिए वारिस के लिए वसीयत नहीं की जा सकती।" (अबू दाऊद, 2853, तिरमिज़ी, 2203 इब्ने-माजा, 2713)

✻ वसीयत का महत्त्व :

अब वारिसों के लिए तो वसीयत करना निषेध है, परन्तु कुछ ऐसे नातेदार जिनको मरनेवाला वसीयत करना चाहता है, या किसी पुण्य कार्य में कुछ धन लगाना चाहता है, इसकी आज्ञा है, बल्कि इसकी इतनी महत्ता है कि एक सहीह हदीस में आया है–

"एक मुसलमान को दो रात्रि भी इस प्रकार नहीं बितानी चाहिएं कि उसका वसीयतनामा उसके तकिए के नीचे लिखा हुआ न हो, अगर वह वसीयत करना चाहता है।" (बुख़ारी 2738 तथा मुस्लिम 1627)

वसीयत की महत्ता के कारण पोते को वारिस नहीं बनाया गया, ताकि दादा मृत्यु से पूर्व उसको अपने जीवन में जितना चाहे हिबा (दान) कर दे, और मृत्यु के पश्चात् जितना देना चाहे उसकी वसीयत कर दे, क्योंकि अगर अनाथ पोते को वारिस बना दिया जाता तो फिर उसको वसीयत करना निषिद्ध हो जाता।

✻ वसीयत का परिमाण :

वसीयत करने का यह अभिप्राय कदापि नहीं होना चाहिए की वारिसों को मीरास से वंचित कर दिया जाए, जिसकी ओर सूरा–4, अन-निसा, आयत–12 में संकेत किया गया है कि वसीयत हानि पहुँचानेवाली न हो। इसी कारण इस्लाम ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित कर दिया कि केवल एक तिहाई भाग ही वसीयत किया जा सकता है। शेष दो तिहाई भाग वारिसों में वितरित किया जाएगा, जैसा कि एक सहीह हदीस में आया है–

«एक तिहाई वसीयत कर सकते हो और एक तिहाई भी अधिक है।» (बुख़ारी, 1295 और मुस्लिम, 1628)

क्योंकि इसी हदीस में यह भी आया है कि अपने वारिसों को धनवान छोड़ना इससे उत्तम है कि वे भीख माँगते फिरें।

इसलिए अगर किसी के पास बहुत धन न हो तो वह वसीयत न करे, बल्कि अपने बाद वारिसों के लिए छोड़ दे। क्योंकि बहुत सारे सहाबा के बारे में हमें मालूम है कि उन्होंने वसीयत नहीं की।

❮ वह्य ❯

वह्य का अर्थ है गुप्त सूचना, क्योंकि वह्य की दशा में सूचना देनेवाले को देखना अनिवार्य नहीं है, बल्कि सही बात यह है कि जिनपर वह्य आती है उसके अतिरिक्त वह्य लानेवाले को कोई देखता भी नहीं। केवल वह्य के प्रभाव को देखा जा सकता है, जैसा कि एक सहीह हदीस में आइशा (رضي الله عنها) कहती हैं–

"मैंने देखा कि सख़्त सर्दी में भी नबी (ﷺ) पर जब वह्य उतर चुकती तो आप (ﷺ) के माथे से पसीना निकलने लगता था।" (सहीह बुख़ारी, 2 तथा सहीह मुस्लिम, 2333)

क़ुरआन में अल्लाह ने तीन प्रकार से वह्य भेजने का वर्णन किया है–

«**किसी मनुष्य के लिए यह सम्भव नहीं कि अल्लाह उससे बात करे सिवाय इसके कि वह्य के द्वारा या परदे के पीछे से या यह कि एक रसूल भेज दे और उसके द्वारा जो चाहे वह्य करे, निश्चय ही वह सर्वोच्च तथा अत्यन्त तत्त्वदर्शी है।**» (सूरा–42, अश-शूरा, आयत–51)

पहली वह्य यह है कि अल्लाह कोई बात नबी के दिल में डाल दे, या स्वप्न में दिखा दे क्योंकि नबियों का स्वप्न सच्चा होता है। इसी लिए तो इबराहीम (عليه السلام) ने अपने इकलौते पुत्र इसमाईल (عليه السلام) को क़ुरबानी करने के लिए पृथ्वी पर लिटा दिया, क्योंकि स्वप्न में उनको ऐसा ही आदेश दिया गया था। परन्तु नबी के अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्ति के लिए स्वप्न पर अमल करना उचित नहीं है।

अपनी पहली वह्य के विषय में नबी (عليه السلام) फ़रमाते हैं,

"मैं जो कुछ रात को स्वप्न में देखता हूँ प्रातःकाल में वैसा होता हुआ पाता हूँ।" (देखिए : सहीह बुख़ारी, 3)

दूसरे प्रकार की वह्य यह है कि अल्लाह स्वयं नबी से परदे के पीछे से बात करे, और उसको अपने आदेशों से अवगत कराए, जैसे अल्लाह ने मूसा (عليه السلام) से बात की, जिसके कारण मूसा (عليه السلام) तड़प उठे और देखने का आग्रह किया।

अल्लाह ने कहा –

«**तू मुझे कदापि न देख सकेगा। हाँ, पहाड़ की ओर देख। यदि वह अपने स्थान पर स्थिर रह जाए तो फिर तू मुझे देख सकेगा। अतएव जब उसके रब की आभा पहाड़ पर प्रकट हुई तो उसे चकनाचूर कर दिया, और मूसा मूर्छित होकर गिर पड़ा। फिर जब होश में आया तो कहने लगा : महिमा है तेरी! मैं तेरे समक्ष तौबा करता हूँ, और सबसे पहले ईमान लानेवालों में मैं हूँ।**» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–143)

तीसरे प्रकार की वह्य जिसको जिबरील (عليه السلام) या दूसरे फ़रिश्ते लेकर नबियों के पास आया करते थे।

क़ुरआन इसी तीसरे प्रकार की वह्य के द्वारा उतरा, जिसको जिबरील (عليه السلام) लेकर आते थे, पहली वह्य आप (ﷺ) पर उस समय उतरी जब आप हिरा नामक पहाड़ी पर इबादत करने गए थे कि एक फ़रिश्ता आया और कहने लगा, "पढ़ो!" आप (ﷺ) ने कहा, "मुझे पढ़ना नहीं आता।" उसने शक्ति के साथ आपको पकड़ कर भींचा, फिर छोड़ दिया और कहा, "पढ़ो!" आप (ﷺ) ने कहा,

''मुझे पढ़ना नहीं आता।'' उसने दोबारा शक्ति के साथ पकड़ कर भींचा। फिर छोड़ दिया। ऐसा तीन बार हुआ। फिर फ़रिश्ते ने क़ुरआन की ये आयतें पढ़ीं –

«पढ़ो अपने रब के नाम से, जिसने पैदा किया, पैदा किया मनुष्य को चिपकनेवाली वस्तु से। पढ़ो : यह जान लो कि तुम्हारा रब बड़ा ही उदार है। जिसने क़लम के द्वारा शिक्षा दी, मनुष्य को वह ज्ञान प्रदान किया जिसे वह न जानता था।» (सूरा–96, अल-अलक़, आयतें–1-5) (देखिए: बुख़ारी, 3, तथा मुस्लिम, 160)

यह सबसे पहली वह्य है जिसको लेकर जिबरील (ﷺ) नबी (ﷺ) के पास आए।

एक बार आप (ﷺ) कहीं जा रहे थे कि आकाश से एक स्वर सुनाई दिया। आपने अपनी निगाह ऊपर उठाकर देखा तो पता चला कि यह तो वही फ़रिश्ता है जो हिरा में आया था। परन्तु आज वह अपने वास्तविक रूप में था। वह एक ऐसी कुर्सी पर विराजमान था जो पृथ्वी तथा आकाश को घेरे हुए थी। इसके पश्चात् जब भी वह्य आती आप (ﷺ) स्मरण करने के लिए जल्दी-जल्दी अपने होंटों को हिलाते। इसपर यह आयत उतरी–

«तू उसे शीघ्र पाने के लिए उसके प्रति अपनी जीभ को न हिला, उसको एकत्र करना तथा पढ़ाना हमारा दायित्व है। अत: हम जब उसे पढ़ लें तो तुम उसे पढ़ने का अनुकरण करो।» (सूरा–75, अल-क़ियामह, आयतें–16-18)

जब जिबरील (ﷺ) क़ुरआन लेकर आते तो नबी (ﷺ) याद करने के लिए साथ-साथ पढ़ते जाते कि कहीं कोई शब्द भूल न जाएँ। अल्लाह ने फ़रिश्ते के साथ आपको जल्दी-जल्दी पढ़ने से रोक दिया और यह शुभ सूचना दी कि क़ुरआन को इकट्ठा करना और फिर आपके हृदय पर नक़्श कर देना हमारा काम है। इस प्रकार तेईस वर्षों तक क़ुरआन वह्य के द्वारा उतरता रहा। और आप (ﷺ) के हृदय पर नक़्श होता रहा। आप (ﷺ) को याद करने की कदापि आवश्यकता नहीं पड़ी जिस प्रकार हमें करनी पड़ती है। फिर आप (ﷺ) लिखनेवालों को बुलाकर लिखवा देते थे।

व्यक्तिगत स्वतंत्रता

मनुष्य के मूल अधिकारों में उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बड़ी महत्ता है। इस्लाम ने उसकी स्वतंत्रता को स्वीकार किया है, और इस बात को नापसन्द किया है कि उसके व्यक्तिगत जीवन की टोह लगाई जाए, या उसके कामों की टोह में पड़ा जाए –

«ऐ ईमानवालो! अधिकांश बुरे गुमानों से बचो, क्योंकि कुछ बुरे गुमान पाप होते हैं। तथा किसी के भेद की टोह में न पड़ो और न तुममें से कोई किसी की पीठ पीछे बुराई करे। क्या तुममें से कोई इसको पसन्द करेगा कि अपने भाई का मांस खाए? बल्कि

तुमको तो इससे घृणा होगी और अल्लाह से डरो निस्संदेह अल्लाह क्षमा स्वीकार करनेवाला तथा कृपाशाली है।» (सूरा–49, अल-हुजुरात, आयत–12)

इस आयत में प्रत्यक्ष रूप से व्यक्तिगत स्वतंत्रता को उजागर किया गया है। सहीह हदीसों में इस बात की ओर भी संकेत किया गया है कि अगर तुमको किसी के दोष का भी पता चल जाए तो उसको छिपाओ, न कि फैलाओ। क्योंकि अगर किसी ने अपनी स्वतंत्रता का ग़लत लाभ भी उठाया तो भी उसको फैलाना न केवल उसकी स्वतंत्रता के विरुद्ध है, बल्कि उसके द्वारा समाज में बुराइयों को फैलने का अवसर मिलेगा। क़ुरआन में इसकी ओर इस प्रकार संकेत किया गया है–

«जो लोग ईमानवालों में बुराई फैलाने की कामना रखते हैं, उनके लिए दुनिया तथा आख़िरत में दुखदायी यातनाएँ हैं।» (सूरा–24, अन-नूर, आयत–19)

अर्थात् किसी की ग़लतियों को फैलाना भी वास्तव में समाज में बुराई फैलाने के समान है। इस लिए नबी (ﷺ) अपने भाषणों में किसी का नाम लिए बिना कहते थे कि लोगों को क्या हो गया है कि ऐसा-ऐसा कहते हैं या करते हैं। परन्तु यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता असीमित नहीं है। अगर किसी की स्वतंत्रता से दूसरों की स्वतंत्रता प्रभावित होती हो तो वह स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार किसी की स्वतंत्रता से दूसरों के धर्म या विश्वास को क्षति पहुँचती हो तो भी वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता के विरुद्ध है। जैसा कि क़ुरआन में संकेत किया गया है–

«अल्लाह को छोड़कर जिन्हें ये पुकारते हैं, तुम लोग उनके प्रति अपशब्द का प्रयोग न करो। कहीं ऐसा न हो कि वे लोग हद से आगे बढ़कर अज्ञान के कारण स्वयं अल्लाह के प्रति अपशब्द का प्रयोग करने लगें। (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–108)

यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता अगर माता-पिता की आज्ञा के अनुसार न हो तो वहाँ भी स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है।

और माता-पिता की स्वतंत्रता भी वहाँ समाप्त हो जाती है जब वे शिर्क का आदेश दें–

«हमने मनुष्य को उसके माँ-बाप के मामले में ताकीद की है – उसकी माँ ने निढाल पर निढाल होकर उसे पेट में रखा और दो वर्ष उसके दूध छूटने में लगे – कि मेरे प्रति कृतज्ञ हो और अपने माँ-बाप के प्रति भी। अन्ततः आना मेरी ही ओर है। किन्तु यदि वे तुझपर दबाव डालें कि तू किसी को मेरे साथ साझी ठहराए, जिसका तुझे ज्ञान नहीं, तो उनकी बात न मानना और (फिर भी) दुनिया में उनके साथ भले तरीक़े से रहना।» (सूरा–31, लुक़मान, आयत–14,15)

अर्थात् माता-पिता को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वे अपनी संतान को शिर्क का आदेश दें। अगर ऐसा करते हैं तो उनकी स्वतंत्रता की सीमा भी समाप्त हो जाती है।

संक्षेप में यह कि क़ुरआन तथा सहीह हदीसों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बहुत-से उदाहरण पाए जाते हैं, और इस्लाम पहला धर्म है जिसने इस स्वतंत्रता को स्वीकार किया है और उसके लिए मूल सिद्धान्त निर्धारित किए हैं जिनके द्वारा एक ऐसे समाज का निर्माण किया जा सकता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपना अधिकार प्राप्त हो सकता है और फिर सब मिलकर एक अच्छे समाज की नींव डाल सकते हैं। परन्तु वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता जिसके द्वारा समाज में बुराइयाँ फैलती हैं, वह कभी भी उत्तम समाज के निर्माण का आधार नहीं हो सकती। इसलिए इस्लाम ने जहाँ व्यक्तिगत स्वतंत्रता को स्वीकार किया है वहीं उसने भलाई फैलाने तथा बुराई से रोकने का भी सिद्धान्त बनाया है।

«तुममें एक ऐसा समुदाय होना चाहिए जो लोगों को पुण्य की ओर बुलाए और भलाई का आदेश दे, और बुराई से रोके। यही सफलता प्राप्त करनेवाले लोग हैं।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–104)

एक उत्तम इस्लामी शासक की जो विशेषताएँ बताई गई हैं, वे इस प्रकार हैं–

«अगर इनको धरती में सत्ता प्रदान करेंगे, तो ये नमाज़ का आयोजन करेंगे, और ज़कात देंगे, और भलाई का आदेश देंगे और बुराई से रोकेंगे।» (सूरा–22, अल-हज, आयत–41)

वसीला

वसीला का अर्थ है निकट होना, किसी की सहायता ढूँढना, किसी को माध्यम या साधन बनाना। इस्लाम से पूर्व और आज भी कुछ ऐसे लोग हैं जो अल्लाह को छोड़कर दूसरों की बन्दगी करते हैं, और जब उनको इससे रोका जाए तो कहने लगते हैं कि हम इनकी इबादत केवल इनको प्रसन्न करने के लिए करते हैं, ताकि हम अल्लाह के निकट पहुँचने के लिए इनको वसीला बना सकें।

क़ुरआन में इसी की ओर संकेत करके कहा गया है–

«सावधान! बन्दगी तो केवल अल्लाह के लिए है। और जिन लोगों ने उसके अतिरिक्त किसी और को अपना मित्र बना रखा है (और कहते हैं), हम तो उनकी बंदगी केवल इसलिए करते हैं, ताकि वे हमें अल्लाह से अधिक से अधिक समीप कर दें।'' निश्चय ही अल्लाह उनके बीच उस बात का फ़ैसला कर देगा जिसमें वे विभेद कर रहे हैं।» (सूरा–39, अज़-ज़ुमर, आयत–3)

क़ुरआन ने इस प्रकार के सारे अंधविश्वासों को समाप्त कर दिया और साफ़-साफ़ बता दिया कि बन्दगी तो केवल अल्लाह की होनी चाहिए और उसके लिए किसी देवी-देवता, पीर-फ़क़ीर, नबी-वली, क़ब्र इत्यादि की पूजा की आवश्यकता नहीं है। हाँ, अगर अल्लाह तक पहुँचने का सहीह वसीला चाहते हो तो वह तीन प्रकार से प्राप्त हो सकता है–

1. एक यह कि पुण्य कर्म को अल्लाह के निकट पहुँचने का वसीला बनाया जा सकता है जैसा कि क़ुरआन में आया है–

«ऐ ईमानवालो! अल्लाह से डरते रहो और उस तक पहुँचने का वसीला (साधन) ढूँढो और उसके मार्ग में जिहाद करो, ताकि तुम सफल हो जाओ।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–35)

इस आयत में अल्लाह से डरने तथा जिहाद करने का आदेश दिया गया है, जो अत्यन्त पुण्य कर्म है। इसी प्रकार दूसरे पुण्य कर्मों को भी वसीला बनाया जा सकता है। क़ुरआन में एक और जगह आया है–

«कहो! तुम उसके सिवा जिनको भी (अपना कार्यसाधक) समझ बैठे हो पुकारकर देखो वे न तो कोई दुख दूर कर सकते हैं, और न ही उसे बदलने का अधिकार रखते हैं। जिनको ये लोग पुकारते हैं वे स्वयं अपने रब तक पहुँचने का वसीला (साधन) ढूँढते हैं।» (सूरा–17, बनी-इसराईल, आयतें–56-57)

इस आयत के विषय में सहीह हदीसों में अब्दुल्लाह बिन-मसऊद का यह कथन आया है कि इसके उतरने का कारण यह था कि कुछ लोग जिन्नों की बंदगी करते थे। परन्तु ये जिन्न मुसलमान हो गए। और अब वे स्वयं पुण्य कर्मों द्वारा अल्लाह के निकट पहुँचने का वसीला तलाश करने लगे और वे लोग जो उनकी बंदगी करते थे उनको इसका पता ही नहीं चला, और वे उनकी बंदगी ही करते जा रहे थे। (बुख़ारी 4714 तथा मुस्लिम 3030)

पुण्य कर्मों को वसीला बनानेवाली वह सुप्रसिद्ध हदीस है जिसको हदीसे-ग़ार कहते हैं। उसमें तीन व्यक्ति एक घाटी में फँस जाते हैं और ऊपर से उसका मुँह बन्द हो जाता है। तीनों ने बारी-बारी अपने किसी ऐसे पुण्य कर्म को स्मरण किया जो उन्होंने केवल अल्लाह की प्रसन्नता के लिए किया था। और उस पुण्य कर्म के वसीले से अल्लाह से प्रार्थना की कि ऐ रब! अगर हमने यह पुण्य कर्म केवल तेरी प्रसन्नता के लिए किया था तो हमें इस ग़ार से निकाल दे। वह पत्थर जिसके द्वारा ग़ार का मुँह बन्द हो गया था, अपने स्थान से हट गया, और तीनों उससे बाहर आ गए। (देखिए: बुख़ारी 2215 तथा मुस्लिम 2742)

2. दूसरा सही वसीला अल्लाह के शुभ नामों को बनाया जाए, जैसा कि क़ुरआन में आया है–

«और शुभ नाम (अस्माए-हुस्ना) अल्लाह ही के लिए हैं। तो तुम उन्हीं के द्वारा उसे पुकारो और उन लोगों को छोड़ दो जो उसके नामों के विषय में कुटिलता ग्रहण करते हैं।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–180)

सहीह हदीसों में अल्लाह के शुभ नाम, तथा उसके गुणों के द्वारा प्रार्थना करने का आदेश आया है, जो वास्तव में प्रार्थना स्वीकार करने का वसीला है।

3. तीसरा सही वसीला यह है कि किसी सदाचारी व्यक्ति के द्वारा अल्लाह से प्रार्थना कराई जाए कि ऐ अल्लाह, इस सदाचारी व्यक्ति की दुआओं के वसीले से मेरा यह काम पूर्ण हो जाए।

जब तक नबी (ﷺ) जीवित थे, लोग आपके पास अल्लाह से दुआ कराने के लिए आया करते। परन्तु जब आपका देहान्त हो गया तो एक बार अमीरुल मोमिनीन उमर-बिन-ख़त्ताब' (رضي الله عنه) ने नबी (ﷺ) के चाचा अब्बास के वसीले से दुआ की और कहा, "ऐ रब! हम नबी (ﷺ) के वसीले से दुआ करते थे तो वर्षा बरसने लगती थी। परन्तु अब हम नबी (ﷺ) के चाचा अब्बास (رضي الله عنه) के द्वारा दुआ करते हैं कि वर्षा बरसा दे।" तो बारिश हो गई। (देखिए : सहीह बुख़ारी 1010)

इन तीन प्रकार के वसीलों के अतिरिक्त कोई और वसीला सही नहीं है। जैसे किसी नबी, वली, या सदाचारी व्यक्ति के उच्च स्थान को वसीला बनाना, या किसी क़ब्र को वसीला बनाना। इसी प्रकार किसी मृत व्यक्ति को वसीला बनाना भी सही नहीं है, क्योंकि नबी (ﷺ) ने अपने जीवन में तथा सहाबा ने आप (ﷺ) के बाद इस प्रकार का कोई वसीला नहीं बनाया। और वसीले का सम्बन्ध विश्वास (ईमान) से है। इसलिए इस विषय में पूरी खोज के बाद ही किसी बात को स्वीकार करना चाहिए और यह बात सुप्रसिद्ध है कि बिदअत करनेवालों के पास अपनी बिदअत का कोई प्रमाण नहीं है।

वसीला उस ऊँटनी को भी कहते हैं जो एक बार में मादा तथा नर दोनों को जन्म दे। उस ऊँटनी को भी कहते हैं जो दो बार मादा पैदा करे और उसे किसी देवी या देवता के नाम छोड़ दिया जाए।

क़ुरआन में इसी की ओर संकेत किया गया है –

«अल्लाह ने न कोई बहीरा ठहराया है और न सायबा न वसीला, तथा न हाम। परन्तु इनकार करनेवाले अल्लाह पर झूठ का आरोपण करते हैं और उनमें से अधिकतर बुद्धि से काम नहीं लेते।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–103)

श
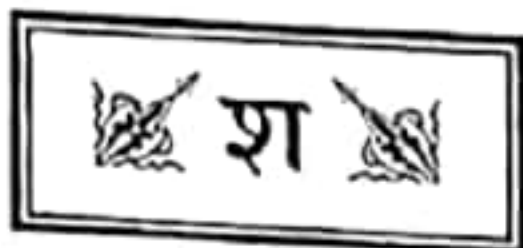
शहवत

शहवत जिसका अर्थ है– चाह, इच्छा जैसे –

«और तुम्हें (जन्नत में) हर वह चीज़ मिलेगी जिसकी तुम इच्छा करोगे।» (सूरा-41, हा-मीम अस-सजदा, आयत-31)

«और जिस प्रकार के मेवे और मांस जो उनका जी चाहेगा हम उनको देंगे।» (सूरा-52, अत-तूर, आयत-22)

परन्तु क़ुरआन तथा सहीह हदीसों में इसका अधिकतर प्रयोग भोगेच्छा (नफ़सानी ख़ाहिश) के लिए हुआ है।

«लोगों के लिए उनकी चाह की चीज़ों–स्त्रियाँ, बेटे, सोने-चाँदी के ढेर, निशान लगे घोड़े, चौपाए और खेती-बाड़ी को शोभायमान बना दिया गया है, ये सब सांसारिक जीवन में बरतने की चीज़ें हैं। और अल्लाह ही के पास अच्छा ठिकाना है।» (सूरा-3, आले-इमरान, आयत-14)

«लूत ने अपनी जाति से कहा – तुम कामेच्छा की पूर्ति के लिए स्त्रियों को छोड़कर पुरुषों (लौंडों) के पास आते हो, वास्तव में तुम मर्यादाहीन लोग हो।» (सूरा-7, अल-आराफ़, आयत-81)

नबियों के वर्णन के पश्चात् इन लोगों का ज़िक्र आता है :

«जिन्होंने नमाज़ छोड़ दी, और इच्छाओं के पीछे भागते रहे, तो जल्दी ही गुमराही की सज़ा उन्हें मिलेगी।» (सूरा-19, मरयम, आयत-59)

«और वे लोग जो अपनी इच्छाओं के पीछे चलते हैं, चाहते हैं कि तुम सीधे रास्ते से भटककर कजी में पड़ जाओ।» (सूरा-4, अन-निसा, आयत-27)

क़ुरआन से पहले के धार्मिक ग्रन्थों में भी शहवत की निन्दा की गई है। क्योंकि इसी के द्वारा तो मनुष्य गुनाहों में पड़ जाता है। (दे. बाइबल-याक़ूब 1:14-15)

परन्तु इस्लाम ने दूसरे धर्मों की तरह शहवत की जड़ को सदैव के लिए काट नहीं दिया, बल्कि उसको संतुलित करने के लिए विवाह करने का हुक्म दिया, और फिर नाचना, गाना, मदिरा-पान इत्यादि जैसे कर्मों को हराम ठहराकर शहवत को भड़कानेवाले सभी रास्तों को बन्द कर दिया।

शुद्धता

देखें पवित्रता।

शुऐब (अलैहिस्सलाम)

शुऐब (अलैहिस्सलाम) को अल्लाह ने नबी बनाकर मदयन वालों की ओर भेजा। इनकी जाति मदयन में आबाद थी, मदयन का नाम इबराहीम के पुत्र मदयन के नाम पर रखा गया था। मदयन इबराहीम (अलैहिस्सलाम) की पत्नी कतूरा से पैदा हुआ था। मदयन जाति अक़बा खाड़ी के पूर्वी और पश्चिमी किनारे पर अबाद थी। शुऐब (अलैहिस्सलाम) उनकी चौथी पीढ़ी में से थे। इसी लिए क़ुरआन ने उनको 'अख़ा' अर्थात् भाई के नाम से संबोधित किया।

«मदयन की ओर उनके भाई शुऐब को भेजा।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–85)

«मदयनवालों की ओर उनके भाई शुऐब को भेजा।» (सूरा–11, हूद, आयत–84)

शुऐब ने भी दूसरे नबियों की तरह अपनी जाति को एक अल्लाह की इबादत की ओर बुलाया, क्योंकि यही समस्त नबियों की दावत का आधार था। इसी के साथ उनकी जाति बहुत सारी दूसरी बुराइयों में भी पड़ गई थी। वह नाप-तौल में गड़बड़ करने लगी थी। लेने में ज़्यादा तौलती थी और देने में कम –

«उसने कहा, "ऐ मेरी जातिवालो, अल्लाह की इबादत करो। उसके अतिरिक्त तुम्हारा कोई इलाह (इष्ट-पूज्य) नहीं। तुम्हारे पास तुम्हारे रब की खुली दलील आ चुकी है। तो तुम पूरा-पूरा नापो और तौलो, और लोगों को उनकी चीज़ों में घाटा न दो। और धरती में फ़साद न मचाओ जब कि उसका सुधार हो चुका हो।"» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–85)

नाप-तौल में कमी से धरती में फ़साद फैलता है, क्योंकि लोगों के दिल एक दूसरे से फिर जाते हैं, जिससे प्रेम-भावना समाप्त हो जाती है, जो फ़साद का कारण बन जाता है।

«उसने कहा, "ऐ मेरी जातिवालो, अल्लाह की इबादत करो, उसके अतिरिक्त तुम्हारा कोई इलाह (इष्ट-पूज्य) नहीं और तुम नाप-तौल में कमी भी न किया करो।"» (सूरा–11, हूद, आयत–84)

लेकिन शुऐब की जाति भी अपने बनाए हुए बुतों की पूजा से न रुकी, बल्कि उल्टा उन्हीं ने नबी को डराया धमकाया –

«वे बोले, "ऐ शुऐब! क्या तेरी नमाज़ तुझे यही हुक्म देती है कि हम उसे छोड़ दें जिसे हमारे पूर्वज पूजते रहे हैं।"» (सूरा–11, हूद, आयत–87)

मुशरिक लोग उस बात पर बड़ी दृढ़ता से जमे रहते हैं जिसपर उन्होंने अपने पूर्वजों को पाया है। उनको लाख समझाएँ कि यह काम ग़लत है, ईश-विधान और ख़ुदा के पैग़म्बरों के विरुद्ध है, मगर वे किसी प्रकार छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते, बल्कि उनकी भी वही दलील होती है कि जो काम हमारे बाप-दादा करते आए हैं, उसे कैसे छोड़ें। क्या तुम ही सबसे बड़े ज्ञानी हो! शुऐब की जाति ने कहा–

शुऐब अलैहिस्सलाम का क्षेत्र
मदयन और ऐका
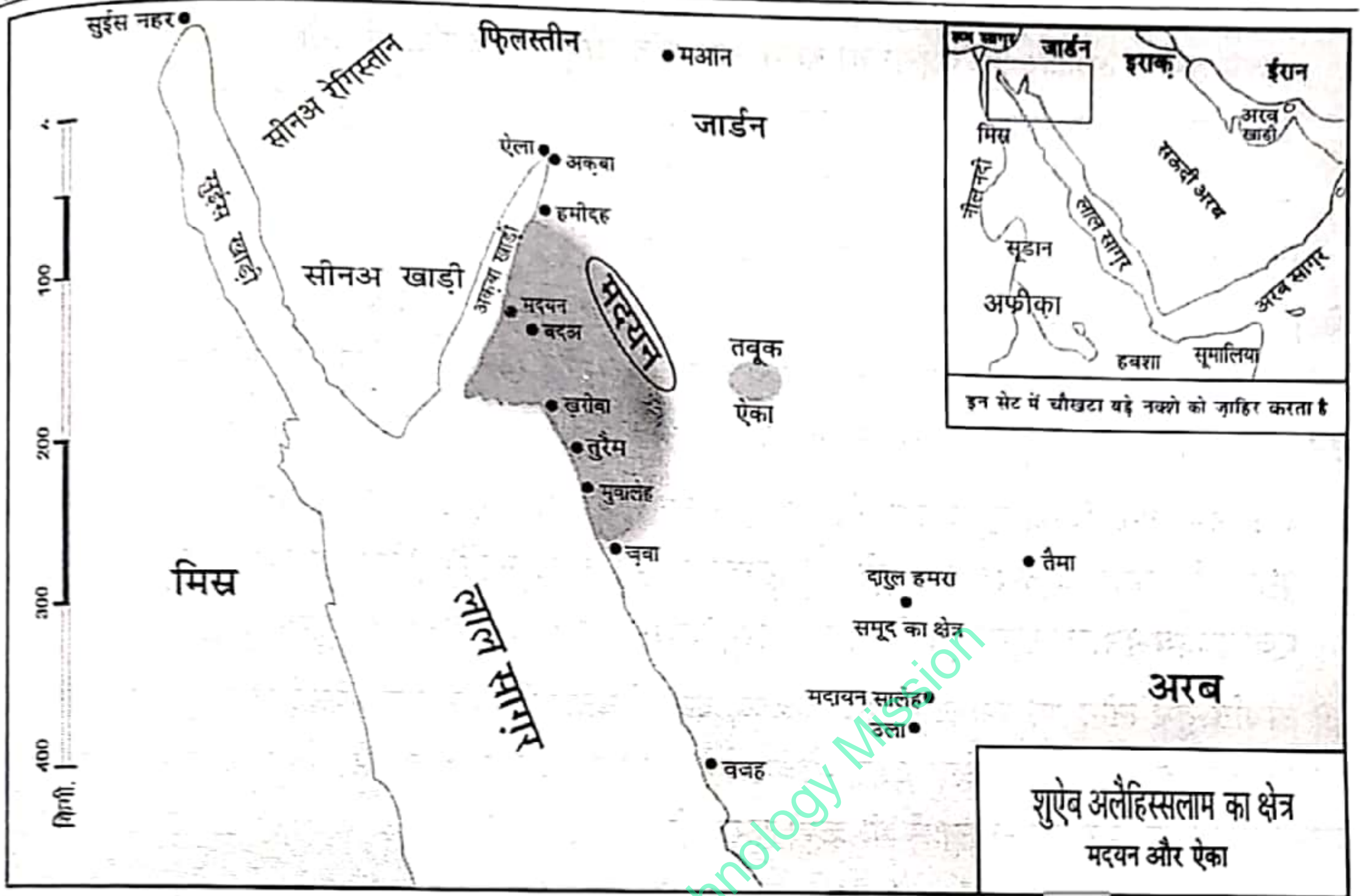
«(क्या) एक तू ही सही और भला पुरुष रह गया है !» (सूरा–11, हूद, आयत–87)

और फिर वे धमकी पर उतर आए–

«उसकी जाति के सरदारों ने, जो अपने आप को बड़ा समझते थे, कहा, ''ऐ शुऐब ! हम तुझे और उन लोगों को जो तुम्हारे साथ ईमान लाए हैं अपनी बस्ती से निकाल देंगे। या फिर तुम हमारे पंथ में लौट आओ।''» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत-88)

और फिर उन्होंने अपनी जातिवालों से भी कहा–

«उसकी जाति के सरदारों ने, जिन्होंने इनकार किया था, अपनी जातिवालों से कहा, ''यदि तुम शुऐब के अनुयायी बने तो निश्चय ही तुम घाटे में पड़ जाओगे।''» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–90)

शुऐब की जाति का भी वैसा ही अंत हुआ जैसा उससे पहले दूसरी जातियों का हो चुका था, अर्थात् उनको भी अल्लाह के अज़ाब ने पकड़ लिया–

«अन्ततः एक दहशत देनेवाली आपदा ने उन्हें आ लिया। और वे अपने घरों में औंधे पड़े रह गए। जिन लोगों ने शुऐब को झुठलाया, उनकी दशा ऐसी हो गई मानो वे कभी यहाँ बसे ही नहीं थे। शुऐब को झुठलाने- वाले ही घाटे में रहे।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयतें–91,92)

«जब हमारा आदेश आ पहुँचा तो हमने अपनी दयालुता से शुऐब को और उन लोगों को, जो उसके साथ ईमान लाए थे, बचा लिया। और जिन लोगों ने ज़ुल्म किया था, उन्हें एक भयंकर चीख़ ने आ लिया और वे अपने घरों में औंधे पड़े रह गए।» (सूरा–11, हूद, आयत–94)

फिर शुऐब (ﷺ) मदयन से निकलकर ऐका की ओर चले गए। जो एक जंगल था, और क़ुलज़ुम के किनारे फैला हुआ था उन लोगों को भी शुऐब ने अल्लाह का पैग़ाम पहुँचाया। इस जाति के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता, परन्तु इतनी बात अवश्य है कि ये शुऐब (ﷺ) के वंश के लोग नहीं थे, इसलिए उनको भाई कहकर नहीं पुकारा, लेकिन इन लोगों ने भी शुऐब (ﷺ) की दावत का इनकार कर दिया–

«अल-ऐका (अर्थात् जंगल के रहने) वालों ने भी रसूलों को झुठलाया, जब उनसे शुऐब ने कहा, "क्या तुम लोग (अल्लाह से) डरते नहीं? निश्चय ही मैं तुम्हारे लिए एक विश्वसनीय रसूल हूँ।"» (सूरा–26, अश-शुअरा, आयतें-176-178)

अर्थात् तुम लोग भी अल्लाह को छोड़कर देवी-देवताओं और पीरों-फ़क़ीरों की पूजा करते हो, जबकि तुम को पैदा करनेवाला और भोजन देनेवाला तो अल्लाह ही है, जिसको तुम भली-भाँति जानते हो। और फिर नाप-तौल में भी कमी करते हो–

«तो तुम पूरा-पूरा पैमाना भरो और घाटा न दो और ठीक तराज़ू से तौलो, और लोगों को उनकी चीज़ों में घाटा न दो और धरती में फ़साद न फैलाते फिरो।» (सूरा–26, अश-शुअरा, आयतें-181-183)

मगर ऐकावालों ने भी शुऐब की बात न मानी और उन्होंने भी उनको झुठला दिया, जिसके कारण उनको भी अल्लाह के अज़ाब ने पकड़ लिया–

«उन्होंने उसे झुठला दिया, तो साएवाले दिन के अज़ाब ने उन्हें आ लिया।» (सूरा–26, अश-शुअरा, आयत–189)

इस प्रकार क़ुरआन एक-एक जाति का वर्णन करता है, जिनकी ओर रसूल भेजे गए और उन्होंने रसूलों को झुठलाया, फिर उनका अंजाम बहुत बुरा हुआ।

नबी मुहम्मद (ﷺ) भी अल्लाह के सच्चे रसूल हैं जो क़ुरआन लेकर आए। अब अगर तुम लोगों ने इनको और इनकी लाई हुई पुस्तक क़ुरआन को झुठलाया तो तुम्हारा अंजाम भी वैसा ही होगा, जैसा पिछली जातियों का हुआ। शुऐब (ﷺ) ऐका के अज़ाब के पश्चात् कहाँ गए इस विषय में क़ुरआन और सहीह हदीसों में कुछ नहीं आया है, लेकिन जैसा कि इससे पहले कहा जा चुका है कि कुछ विद्वानों का विचार है कि वे भी दूसरे नबियों की तरह मक्का चले गए और वहीं उनका देहान्त हुआ। परन्तु इस विचार पर पूरा विश्वास नहीं किया जा सकता। कुछ का विचार है कि वे ऐका की तबाही के पश्चात् भी ऐका के जंगलों में अल्लाह की इबादत करते रहे और वहीं आप का देहान्त हुआ और दफ़न कर दिए गए।

रही यह बात कि वे किस काल में पैग़म्बर बनाए गए? तो इस बारे में कुछ विद्वानों का विचार है कि वे वही शुऐब (ﷺ) हैं जिनकी मुलाक़ात मदयन में मूसा (ﷺ) से हुई थी, और अपनी एक पुत्री से उनका विवाह किया था। जिसका वर्णन 'मूसा' में देखिए। कुछ दूसरे विद्वानों का विचार है कि शुऐब कोई और नबी हैं। उनका मूसा (ﷺ) से कोई संबंध नहीं है। मदयन के जिस पुरोहित से मूसा (ﷺ) की मुलाक़ात हुई थी वह कोई दूसरा भला पुरुष था, जैसा कि तौरात में आया है कि वह मदयन का महान पुरोहित था जिसका नाम पसरोन था। और यही विचार इब्ने-अब्बास और दूसरे विद्वानों का है। (देखिए: इब्ने तैमिया, जामए रसाईल, 1:6) रहे शुऐब तो उनका समय मूसा (ﷺ) से पहले का है। और क़ुरआन भी इसी की ओर संकेत करता है। सूरा आराफ़ में मूसा (ﷺ) का वर्णन नूह, हूद, सालेह, लूत और शुऐब (ﷺ) के वर्णन के पश्चात् आया है–

«फिर उनके बाद हमने मूसा को अपनी निशानियों के साथ फ़िरऔन और उसके सरदारों के पास भेजा।» (सूरा-7, आराफ़, आयत 103)

इसी प्रकार सूरा हूद में अल्लाह ने पहले तो हज़रत नूह का वर्णन किया है। (देखिए: आयत–25) फिर हूद का (देखिए: आयत–50) और फिर सालेह का (देखिए: आयत–61), फिर इब्राहीम का (देखिए: आयत–69), फिर लूत का (देखिए: आयत–77), फिर शुऐब का (देखिए: आयत–84) और फिर मूसा का (देखिए: आयत–96) इस अनुक्रम से मालूम होता है कि शुऐब मूसा से पहले नबी हुए, जो मदयन की तबाही के बाद ऐका के जंगलों में चले गए। और वहीं उनका देहान्त हो गया। फिर मदयन दोबारा आबाद हुआ। तत्पश्चात् मूसा मिस्र से निकल कर वहाँ चले गए। (विस्तृत विवरण के लिए देखिए 'मूसा')

शैतान

शैतान का अर्थ है दुष्टात्मा, जो लोगों को बहकाकर कुमार्ग पर चलाता है। यह कोई स्थायी जीव नहीं है। बल्कि मनुष्यों और जिन्नों में जो दुष्टात्मा लोग हैं, उन्हीं को शैतान कहा गया है- क़ुरआन में आया है–

«इसी तरह हमने मनुष्यों तथा जिन्नों में से शैतानों को प्रत्येक नबी का शत्रु बनाया, जो चिकनी-चुपड़ी बात एक-दूसरे के मन में डालकर धोखा देते थे।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–112)

शैतान तथा मनुष्य में क्या संबंध है? इस विषय में क़ुरआन तथा सहीह हदीसों में विस्तृत वर्णन आया है–

1. शैतान मनुष्य का खुला शत्रु है इसलिए क़ुरआन ने चेतावनी दी है कि उसके पदचिह्नों का अनुसरण न किया जाए। (सूरा–2, अल-बकरा, आयतें–168-208)

«तो वह (शैतान) तो उसे अश्लीलता तथा बुराई का ही आदेश देगा।» (सूरा–24, अन-नूर, आयत–21)

2. शैतान जहन्नम की आग की ओर बुलाता है–

«निश्चय ही शैतान तुम्हारा शत्रु है। अत: तुम भी उसे शत्रु ही समझो। वह तो अपने अनुयायियों को बुलाता है ताकि वे दहकती आग (जहन्नम) वालों में से हो जाएँ।» (सूरा–35, फ़ातिर, आयत–6)

3. शैतान के कुछ काम : हर बुरे काम को शैतानी काम कहा जा सकता है। जैसे : मदिरा पान, जुआ, इत्यादि। क़ुरआन में है–

«ऐ ईमानवालो, यह मदिरा, जुआ, देवस्थान, तथा पासे शैतान के गन्दे काम हैं तो इनसे बचो ताकि तुम सफल हो सको।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–90)

शैतान निर्धनता से डराता है ताकि तुम अल्लाह के मार्ग में दान न करो, और गन्दें कामों का आदेश देता है–

«शैतान तुम्हें निर्धनता से डराता है, तथा निर्लज्जता के कामों पर उकसाता है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–268)

शैतान कुफ़्र करने पर उभारता है, और फिर स्वयं दूर हट जाता है।

«मुनाफ़िक़ों की मिसाल शैतान जैसी है, जो मनुष्य से कहता है कि कुफ़्र कर, जब वह कुफ़्र कर बैठता है तो कहता है, "मैं तुझ से अलग हूँ। मैं अल्लाह से डरता हूँ, जो सारे संसार का रब है।"» (सूरा–59, अल-हश्र, आयत–16)

शैतान जिस प्रकार मुसलमानों को बहकाता है, उसी प्रकार विधर्मियों को भी बहकाता है, और उनको भी धोखा देता है। बद्र के युद्ध के अवसर पर ऐसा ही तो हुआ, जिसको क़ुरआन ने इस प्रकार वर्णन किया है–

«जब शैतान ने उनके करतूतों को उनके लिए शोभायमान बना दिया था, और कहा था कि आज लोगों में से कोई भी तुम पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता, और मैं तुम्हारे निकट हूँ। जब दोनों दलों का आमना-सामना हुआ तो वह उलटे पाँव भाग निकला और कहने लगा, "मेरा तुम से कोई नाता नहीं। मैं जो कुछ देख रहा हूँ तुम नहीं देख सकते। मैं अल्लाह से डरता हूँ। और अल्लाह कड़ी यातना देने वाला है"।» (सूरा–8, अल-अनफ़ाल, आयत–47)

शैतान ने मक्का के इस्लाम-विरोधियों को पहले तो मुसलमानों के विरुद्ध लड़ने पर उभारा। परन्तु जब उसने देखा की आकाश से फ़रिश्ते उतर रहे हैं ताकि मुसलमानों की सहायता करें, जिसका वर्णन क़ुरआन में हुआ है, तो वह भाग खड़ा हुआ। और विधर्मियों को युद्ध क्षेत्र में तनहा छोड़ दिया। उनको यह भी नहीं बताया कि आकाश से फ़रिश्ते उतर रहे हैं, ताकि वे मैदान छोड़कर चले जाएँ और अपना जीवन बचा लें। बल्कि वह तो उनको युद्ध क्षेत्र में मरते हुए देखकर भाग निकला।

इब्ने-अब्बास (ﷺ) की एक रिवायत में आया है कि एक मुसलमान एक विधर्मी का पीछा कर रहा था कि उसने कोड़े की आवाज़ सुनी फिर घोड़े के टाप की आवाज़ सुनी, फिर सुना कोई 'चैज़ूम-चैज़ूम' कह रहा है (हो सकता है यह घोड़े का नाम हो)। फिर मुसलमान ने देखा कि वह विधर्मी पृथ्वी पर गिरा पड़ा है। उसने यह वृत्तांत नबी (ﷺ) को सुनाया तो आप (ﷺ) ने फ़रमाया, ''तुम सच कहते हो, फ़रिश्ते तीसरे आकाश से सहायता के लिए आए थे।'' (सहीह मुस्लिम)

शैतान का एक बड़ा काम यह भी है कि वह मनुष्य को अल्लाह के विषय में भ्रम में डाल देता है। जैसा कि अबू-हुरैरा (ﷺ) की एक रिवायत में आया है कि नबी (ﷺ) का फ़रमान है –

''तुममें से किसी के पास शैतान आए और यह कहे कि इसको किसने पैदा किया? इसको किसने पैदा किया? इसको किसने पैदा किया? यहाँ तक कि यह कहे कि तुम्हारे रब को किसने पैदा किया? तो उसको चाहिए कि अल्लाह से शरण माँगे, और फिर बार-बार शरण मांगता रहे।'' (सहीह बुख़ारी : 3276)

शैतान से बचने के लिए अनिवार्य है कि मुसलमान हर समय उससे अल्लाह की शरण माँगे। क़ुरआन में इसी की ओर संकेत किया गया है –

«कहो, ''मैं शरण लेता हूँ लोगों के रब की, लोगों के सम्राट की, लोगों के इलाह (उपास्य) की उसकी बुराई से जो वसवसा डालता है, जो जिन्नों में से भी होता है और मनुष्यों में से भी।''» (सूरा–114, अन-नास, आयतें–1-6)

इसकी पुष्टि एक सहीह हदीस से भी होती है। अबू ज़र (ﷺ) ने इसका वर्णन किया है वे कहते हैं :

''मैं अल्लाह के रसूल (ﷺ) के पास मस्जिद में आया, और आप (ﷺ) के पास बैठ गया, आप (ﷺ) ने फ़रमाया, 'क्या तुमने नमाज़ पढ़ ली?' मैंने कहा, 'नहीं' तो आप ने फ़रमाया, 'जाओ पहले नमाज़ पढ़ो।' जब नमाज़ पढ़कर आया तो आप (ﷺ) ने फ़रमाया, 'ऐ अबू-ज़र, मनुष्यों और जिन्नों में जो शैतान हैं उनसे अल्लाह की शरण माँगो।' मैंने कहा, 'क्या मनुष्यों में भी शैतान होते हैं?' आप ने फरमाया, 'हाँ।''' (मुसनद अहमद 5:258)

शमुएल

यह बनी-इसराईल के एक नबी का नाम है। क़ुरआन में इनका वर्णन नहीं आया है, परन्तु अधिकतर विद्वानों का विचार है कि सूरा-2, अल-बक़रा आयत 246 में जिस नबी की ओर संकेत किया गया है, वे यही शमुएल हैं –

«क्या तुमने मूसा के पश्चात् बनी-इसराईल के सरदारों को नहीं देखा, जब उन्होंने अपने एक नबी से कहा, ''हमारे लिए एक सम्राट नियुक्त कर दो, ताकि हम अल्लाह के मार्ग में युद्ध करें।''»

क़ुरआन और सहीह हदीसों में इनके विषय में कुछ और नहीं है। परन्तु बाइबल में इनके नाम की दो पुस्तकें हैं जो वास्तव में एक ही पुस्तक थी। लगभग सन् 1516 ईसवी में इसको दो भागों में बाँट दिया गया। इससे पता चलता है कि वे नबी तथा न्यायाधीश भी थे। आप रामा शहर में रहते थे और बैते-ईल, जलजाल तथा मिस्फ़ात इत्यादि में घूमा करते थे। और रामा ही में एक मस्जिद भी बनवाई थी। एक बार फ़िलस्तीनियों ने आक्रमण कर दिया तो बनी-इसराईल को लेकर अल्लाह से प्रार्थना करने लगे और आपको विजय प्राप्त हुई। (देखिए : शमुएल 7:3-14) जब आप बूढ़े हो गए तो बनी-इसराईल ने इच्छा प्रकट की कि हमारे लिए कोई शासक नियुक्त कर दें तो आपने तालूत नामक एक व्यक्ति को बनी-इसराईल का शासक नियुक्त किया और उसके बाद बनी-इसराईल में यह सिलसिला चल पड़ा।

शेर

जिसको अरबी भाषा में असद कहते हैं। यह नाम तो क़ुरआन में नहीं आया है। परन्तु सूरा-74, अल-मुद्दस्सिर आयत नम्बर 51 में एक शब्द क़स्वरह आया है, जिसका अर्थ शेर ही है, जिसमें कहा गया है—

«उन्हें क्या हो गया है कि वे शिक्षा से मुख मोड़ रहे हैं। जैसे कि वे बिदके हुए गधे हैं, जो शेर से भागे हों।»

इन आयतों में सत्य से मुख मोड़कर असत्य का अनुसरण करनेवालों की तुलना ऐसे गधे से की जा रही है जो जंगल में शेर को देखते ही भागने की चेष्टा करने लगता है। परन्तु यह शेर से नहीं बच सकता। इसी प्रकार सत्य से मुख मोड़कर असत्य का अनुसरण करनेवाले अल्लाह की यातना से नहीं बच सकते।

शराब

शराब अर्थात् मदिरा का पीना, बनाना, बेचना सब इस्लाम में निषिद्ध है—

«ऐ ईमानवालो ! शराब, जुआ, मूर्तिस्थान तथा पाँसे ये सब गंदे शैतानी काम हैं। अत: तुम इनसे अलग रहो, ताकि सफलता पा सको। शैतान तो यही चाहता है कि शराब और जुए के द्वारा तुम्हारे बीच शत्रुता और द्वेष पैदा कर दे, और तुम्हें अल्लाह की याद से, तथा नमाज़ से रोक दे। तो क्या तुम (इन चीज़ों से) रुक नहीं जाओगे?» (सूरा–5, अल-माइदा, आयतें-90-91)

जब ये आयतें उतरीं तो उमर (ﷺ) ने कहा –

"ऐ हमारे रब ! हम रुक गए, हम रुक गए।" और फिर लोगों ने मटकों में भरी हुई शराब को इस प्रकार उँड़ेल दिया कि मदीना की गलियों में शराब की नहरें बहने लगीं। इसलिए अब मुस्लिम विद्वानों का इस बात पर मतैक्य है कि शराब बनाना, शराब बेचना, तथा शराब पीना सब निषिद्ध है।

इसी प्रकार मुस्लिम विद्वानों का इस बात पर भी मतैक्य है कि शराब पीनेवाले को चालीस कोड़े लगाए जाएँगे, परन्तु वह फिर भी नहीं रुकता तो अस्सी कोड़े भी लगाए जा सकते हैं। जैसा कि एक सहीह हदीस में है जो कि अली (ﷺ) से उल्लिखित है कि नबी (ﷺ) ने शराबी को चालीस कोड़े लगाए, अबू-बक्र (ﷺ) ने चालीस कोड़े लगाए तथा हज़रत उमर (ﷺ) ने अस्सी कोड़े लगाए। यह सब सुन्नत है। परन्तु यह मुझे अतिप्रिय है (अर्थात चालिस कोड़े)। (सहीह मुस्लिम, 1707)

यह दंड न्यायालय ही दे सकता है। दंड देने के लिए आवश्यक है कि या तो शराब पीनेवाला स्वयं अपने अपराध को स्वीकार करे, या फिर दो साक्षी लाए जाएँ और दोनों गवाही दें कि हमने शराब पीते देखा है। अगर ऐसा नहीं हो सका तो शंका का लाभ सदैव आरोपी को पहुँचता है।

शहीद

शहीद अल्लाह के गुणों में से एक गुण है जिसका अर्थ है : गवाह। क़ुरआन में है–

«ऐ किताबवालो ! तुम अल्लाह की आयतों का क्यों इनकार करते हो, जबकि जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उसका गवाह है।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–98)

और इसी अर्थ में यह शब्द अल्लाह के अतिरिक्त लोगों के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। जैसे नबी (ﷺ) के विषय में आया है–

«फिर क्या हाल होगा जब हम प्रत्येक समुदाय में से एक गवाह लाएँगे, और स्वयं तुम्हें इन लोगों के मुक़ाबले में गवाह बनाकर पेश करेंगे।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–41)

अर्थात् हर नबी अपनी जाति पर गवाही देगा कि ऐ अल्लाह ! हमने तेरा संदेश इनको पहुँचा दिया। अब अगर इन्होंने नहीं माना तो इसमें हमारा क्या दोष है। इसी प्रकार नबी (ﷺ) मक्का के विधर्मियों पर गवाह बनाकर लाए जाएँगे। और आप (ﷺ) उनके विरुद्ध गवाही देंगे कि ऐ अल्लाह! इन्होंने तेरे संदेश को ठुकरा दिया था।

कुछ भाष्यकारों ने लिखा है कि नबी (ﷺ) अन्य नबियों पर गवाही देंगे कि ये जो कुछ कह रहे हैं सत्य है, इन्होंने अपनी-अपनी उम्मतों को अल्लाह का संदेश पहुँचाया, परन्तु कुछ लोग ही इनपर ईमान लाए।

नबी (ﷺ) को इसका ज्ञान क़ुरआन से हुआ जिसमें नबियों और उनकी उम्मत के बीच जो कुछ घटना घटित हुई उसका वर्णन है। वह बड़ा कठिन समय होगा जब नबी (ﷺ) को गवाह बनाकर लाया जाएगा। इसी लिए आप (ﷺ) की इच्छा पर जब अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद ने क़ुरआन पढ़कर सुनाया, और इस आयत पर पहुँचे तो आप (ﷺ) ने कहा, "बस करो"।

अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद का कथन है कि मैंने आपकी ओर देखा। आपकी आँखों से आँसू बह रहे थे। (सहीह बुख़ारी, 4582)

शहीद का एक दूसरा अर्थ है : अल्लाह के मार्ग में जान देनेवाला, जिसका बहुवचन शुहदा है, जैसा कि क़ुरआन में आया है–

«जो लोग अल्लाह तथा रसूल का आज्ञापालन करते हैं, तो ऐसे ही लोग उन लोगों के साथ हैं जिनपर अल्लाह की कृपा-दृष्टि रही है – वे नबी, सिद्दीक़, एवं सदाचारी लोग हैं। और ये कैसे अच्छे साथी हैं !» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–69)

क़ुरआन में एक अन्य स्थान पर आया है –

«जो लोग अल्लाह और उसके रसूलों पर ईमान लाए, वही लोग अपने रब के पास सिद्दीक़ और शुहदा (की श्रेणी में) होंगे। उनके लिए बदला (स्वंय उनके कर्मों का) प्रकाश है। और जिन लोगों ने इनकार किया, और हमारी आयतों को झुठलाया वही नरक के वासी हैं।» (सूरा–57, अल-हदीद, आयत–19)

अर्थात् सिद्दीक़ और शहीद अपने कर्मों के प्रकाश में चलते हुए स्वर्ग में प्रवेश कर जाएँगे। इन शहीदों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये अपने रब के पास जीवित हैं–

«जो अल्लाह के मार्ग में मारे गए हैं तुम उन लोगों को मुर्दा न समझो, बल्कि वे तो अपने रब के पास जीवित हैं, जीविका पा रहे हैं।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–169)

«जो लोग अल्लाह के मार्ग में मारे जाएँ उन्हें मुर्दा न कहो, बल्कि वे जीवित हैं। परन्तु तुम्हें इसका अनुभव नहीं है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–154)

«जिन लोगों ने अल्लाह के मार्ग में घर-बार छोड़ा फिर मारे गए या मर गए। अल्लाह अवश्य ही उन्हें अच्छी जीविका प्रदान करेगा, और निस्सन्देह अल्लाह ही अच्छी जीविका प्रदान करनेवाला है। वह उन्हें ऐसे स्थान में प्रवेश कराएगा जिससे वे प्रसन्न हो उठेंगे। और निश्चय ही अल्लाह सर्वज्ञ, तथा अत्यन्त सहनशील है।» (सूरा–22, अल-हज, आयतें-58-59)

इसी कारण शहीद को न स्नान कराया जाता है,न कफ़न पहनाया जाता है, न नमाज़े जनाज़ा पढ़ी जाती है, क्योंकि नमाज़े जनाज़ा मुर्दे की पढ़ी जाती है। जीवित की नहीं।

❀ शहीद की श्रेष्ठता

एक सहीह हदीस में, जो अनस (ﷺ) से उल्लिखित है, अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने फ़रमाया है–

"जो व्यक्ति स्वर्ग में प्रवेश कर जाएगा वह दोबारा संसार में आने की इच्छा नहीं करेगा। चाहे सारा संसार उसके चरणों में डाल दिया जाए सिवाय शहीद के, जो शहादत की श्रेष्ठता को देखते हुए यह इच्छा करेगा कि संसार में वापस जाए, और दस बार अल्लाह के मार्ग में मारा जाए।"

एक दूसरी रिवायत में आया है कि शहीद को जो वहाँ महिमा प्राप्त होगी, उसके कारण वह ऐसी इच्छा प्रकट करेगा। (बुख़ारी, 2817 तथा मुस्लिम, 1877)

एक दूसरी सहीह हदीस में आया है कि नबी (ﷺ) ने फ़रमाया –

"अगर मेरी उम्मत को कठिन न होता तो मैं हर उस दल के साथ जाता जो जिहाद करने जाता है, और फिर मेरी इच्छा होती कि मैं अल्लाह के मार्ग में क़त्ल किया जाऊँ। फिर जीवित किया जाऊँ, फिर क़त्ल किया जाऊँ। फिर जीवित किया जाऊँ, फिर क़त्ल किया जाऊँ।" (बुख़ारी, 36 तथा मुस्लिम, 1876)

❁ शहीदों की क़िस्में

शहीद की उपाधि कुछ अन्य कारणों से मरनेवालों को भी दी गई है, जैसे –

1. ताऊन (महामारी) में मरनेवाले
2. पेट के रोग में मरनेवाले
3. पानी में डूब कर मरनेवाले
4. किसी चीज़ के गिर जाने से मरनेवाले
5. अल्लाह के मार्ग में मरनेवाले (देखिए : मुस्लिम 1914, बुख़ारी 652)
6. अपने धन की रक्षा करते हुए मरनेवाले, (देखिए : बुख़ारी, 2480 तथा मुस्लिम 226)
7. अपने परिवार की रक्षा करते हुए मरनेवाले,
8. अपने धर्म की रक्षा करते हुए मरनेवाले, (देखिए : अबू-दाऊद 4772 तथा तिर्मीज़ी 1455)
9. आग की लपेट में आकर मरनेवाले,
10. गर्भ की दशा में मरनेवाली स्त्री,
11. अन्दरूनी फोड़े-फुन्सी के फूटने और कैंसर से मरनेवाले। (जिसको अरबी भाषा में ज़ातुलजम्ब कहते हैं)।
12. दुर्घटना में मरनेवाले,
13. साम्प्रदायिक दंगों में मरनेवाले, (देखिए : अबू-दाऊद 3111, नसई 3194, इब्ने-माजा 2803)

इन सबको शहीद कहा गया है। परन्तु सबसे उच्च श्रेणी उनकी है जो अल्लाह के मार्ग में अपनी जान क़ुरबान कर देते हैं। इसलिए शहीद से सम्बन्धित आदेश और नियम केवल उन्हीं पर लागू होंगे जो अल्लाह के मार्ग में शहीद होंगे। बाक़ी शहीदों के लिए भी अल्लाह के पास विभिन्न प्रकार की श्रेणियाँ हैं।

शफ़ाअत

शफ़ाअत को हिन्दुस्तानी भाषा में सिफ़ारिश कहते हैं। मक्का के मूर्तिपूजक यह विश्वास रखते थे कि उनके मिट्टी और पत्थर के बुत अल्लाह के पास सिफ़ारिश करेंगे। क़ुरआन में है –

«ये लोग अल्लाह के सिवा ऐसी चीज़ों को पूजते हैं जो न इन्हें हानि पहुँचा सकती हैं, और न कुछ लाभ ही पहुँचा सकती हैं। और कहते हैं, "ये अल्लाह के यहाँ हमारे सिफ़ारिशी हैं।" कह दो, "क्या तुम अल्लाह को इस बात की सूचना दे रहे हो जिसे न वह आकाशों में जानता है, न धरती में। महिमावान है वह, और उच्च है उस शिर्क से जो ये लोग करते हैं।» (सूरा–10, यूनुस, आयत–18)

फिर क़ुरआन ने शफ़ाअत के लिए यह सिद्धान्त बताया है कि–

1. अगर सिफ़ारिश कर सकते हैं तो केवल वे लोग जिनको अल्लाह ने सिफ़ारिश का अधिकार दे रखा होगा। अर्थात् सिफ़ारिश करनेवाले भी अल्लाह की आज्ञा से ही सिफ़ारिश करेंगे।
2. दूसरे जिनकी सिफ़ारिश की जाएगी, केवल वे लोग होंगे जिनसे अल्लाह प्रसन्न होगा। अर्थात् एक अल्लाह की बंदगी करनेवाले। इसलिए न तो उनकी सिफ़ारिश की जाएगी जो अल्लाह का इनकार करते हैं, और न उनकी जो उसके साथ शिर्क करते हैं, क्योंकि ये लोग अल्लाह के प्रिय बंदे नहीं हैं।

क़ुरआन में कहा गया है –

«कितने ही फ़रिश्ते हैं आकाशों में, जिनकी सिफ़ारिश कुछ काम नहीं दे सकती, यदि काम दे सकती है तो इसके बाद ही कि अल्लाह इजाज़त दे जिसे चाहे, और पसन्द भी करे।» (सूरा–53, अन-नज्म, आयत–26)

ये कौन लोग हैं जिनको अल्लाह सिफ़ारिश का अधिकार देगा? उनमें से एक तो वे हैं जिनकी बात (सिफ़ारिश) को अल्लाह पसन्द करे–

«उस दिन सिफ़ारिश काम नहीं आएगी सिवाय इसके कि किसी को रहमान आज्ञा दे, और उसकी बात को पसन्द करे।» (सूरा–20, ता-हा, आयत–109)

इन सिफ़ारिश करनेवालों में सबसे बड़ी शफ़ाअत (सिफ़ारिश) नबी मुहम्मद (ﷺ) की होगी, जो आप (ﷺ) अपनी उम्मत के लिए हश्र के मैदान में करेंगे।

जब सूर्य पृथ्वी के निकट हो जाएगा और लोग घबराहट में इधर-उधर भाग रहे होंगे, और उनकी इच्छा होगी कि कोई सिफ़ारिश कर दे ताकि इस कठिन दशा से उनको मुक्ति मिले। वे प्रत्येक नबी के पास जाएंगे जैसे आदम, नूह, इबराहीम, मूसा, ईसा (عليهم السلام) परन्तु सब यह कहकर किनारा कर लेंगे कि आज हमारा रब बहुत क्रोध में है, हममें इतना साहस नहीं कि उसके पास

जाएँ, क्योंकि हमसे दुनिया में फ़लाँ ग़लती हो गई थी। फिर लोग नबी (ﷺ) के पास आएँगे, तो आप (ﷺ) सजदे में गिर जाएँगे। आप (ﷺ) से कहा जाएगा, "ऐ मुहम्मद, सर उठाओ। माँगों क्या माँगते हो?" आप (ﷺ) कहेंगे, "मेरी उम्मत, मेरी उम्मत।" हुक्म होगा, "अपनी उम्मत को स्वर्ग में प्रवेश कर दो। उनका कोई हिसाब नहीं होगा।" (बुख़ारी, 4712, तथा मुस्लिम, 194)

मोमिनों की सिफ़ारिश करनेवालों में फ़रिश्ते और दूसरे रसूल भी होंगे। (देखिए: बुख़ारी, 7439, तथा मुस्लिम, 183)

सिफ़ारिश करनेवालों में शहीद भी होंगे जो अपने परिवार के सत्तर व्यक्तियों की सिफ़ारिश करेंगे। (देखिए: अबू दाऊद, 2522)

क्योंकि ये वे लोग हैं, जिनसे अल्लाह प्रसन्न है और ये लोग केवल उनकी सिफ़ारिश करेंगे, जिन्होंने किसी प्रकार का शिर्क नहीं किया, क्योंकि मुशरिकों के विषय में अल्लाह ने अपना अटल निर्णय सुना दिया है –

«अल्लाह उसको कदापि क्षमा नहीं करेगा जिसने उसका साझी ठहराया, और उसके अतिरिक्त जिसको चाहे क्षमा कर देगा, और जिस किसी ने उसका साझी ठहराया तो उसने एक बहुत बड़ा झूठ घड़ लिया।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–48)

«निस्संदेह अल्लाह कदापि क्षमा नहीं करेगा कि उसके साथ उसका साझी ठहराया जाए। परन्तु उसके अतिरिक्त जिसको चाहे क्षमा कर देगा, जिस किसी ने अल्लाह के साथ साझी ठहराया तो वह भटककर बहुत दूर जा गिरा।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–116)

इसलिए मुशरिकों के लिए सिफ़ारिश करना और न करना दोनों बराबर है।

शासक

इस्लाम धर्म मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन के लिए अल्लाह का भेजा हुआ संविधान है। व्यक्तिगत जीवन से लेकर सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समस्त क्षेत्र इसमें सम्मिलित हैं, चूँकि समाज की सुव्यवस्था और प्रगति में शासक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है इसलिए क़ुरआन में अच्छे शासक के विषय में बताया गया है कि –

«ये वे लोग हैं कि अगर हम धरती पर इन्हें अधिकार प्रदान करें तो ये नमाज़ क़ायम करते हैं, ज़कात देते हैं और भलाई का हुक्म देते हैं और बुराई से रोकते हैं। और सभी कर्मों का अन्तिम परिणाम अल्लाह के अधिकार में है।» (सूरा–22, अल-हज, आयत–41)

इस आयत में इस्लामी शासक के द्वारा स्थापित तीन सिद्धान्तों की ओर संकेत किया गया है–

1. **नमाज़ के आयोजन का सिद्धान्त :** इसके द्वारा मुसलमान अपने को अल्लाह से जोड़ता है, ताकि उसकी आत्मा शुद्ध रहे।

2. **ज़कात का सिद्धान्त :** इसके द्वारा समाज से निर्धनता को समाप्त किया जाता है। क्योंकि बैतुल-माल (जहाँ ज़कात इकट्ठा होती है) से निर्धनों में राशि और सामग्रियाँ वितरित कर दी जाती हैं।

3. **भलाई का हुक्म देना और बुराई से रोकना :** इस सिद्धान्त के द्वारा समाज से बुराइयाँ ख़त्म की जाती हैं और भलाइयाँ फैलाई जाती हैं, ताकि एक शान्तिमय समाज का निर्माण हो सके।

इन सिद्धान्तों के आधार पर जिस इस्लामी समाज का निर्माण होगा वह एक अनुपम, उत्तम, शान्तिपूर्ण तथा आदर्श समाज बनेगा, जहाँ मुस्लिम और ग़ैर- मुस्लिम दोनों मिलकर सुख-चैन से जीवन व्यतीत कर सकेंगे।

जहाँ शासक पर देश में शान्ति की स्थापना की ज़िम्मेदारी है वहीं प्रजा का भी यह उत्तरदायित्व होता है कि वह अपने शासक का आज्ञापालन करे। कुरआन में आया है–

«ऐ ईमानवालो! अल्लाह की आज्ञा का पालन करो तथा रसूल की आज्ञा का पालन करो और अपने शासक का आज्ञापालन करो।» (सूरा-4, अन-निसा, आयत–59)

शासक की आज्ञा का पालन करना इस्लामी कर्त्तव्यों में से एक कर्त्तव्य है। जो इसके विरुद्ध आचरण करेगा वह पापी और विद्रोही ठहरेगा।

सहीह हदीसों में भी शासक के आज्ञा-पालन पर बहुत अधिक ज़ोर दिया गया है, क्योंकि उनके आज्ञापालन से ही देश में शान्ति स्थापित हो सकती है और देश उन्नति कर सकता है। एक हदीस में आया है–

"जिसने मेरी आज्ञा का पालन किया उसने अल्लाह का आज्ञापालन किया और जिसने मेरी अवज्ञा की, उसने अल्लाह की अवज्ञा की और जिसने शासक की आज्ञा का पालन किया उसने मेरी आज्ञा का पालन किया और जिसने शासक की अवज्ञा की उसने मेरी अवज्ञा की।" (बुख़ारी, 7137 तथा मुस्लिम, 1835)

एक दूसरी हदीस में है–

"तुमपर आज्ञा का पालन करना अनिवार्य है। चाहे तुम निर्धनता की दशा में हो या धन-सम्पन्नता की दशा में। चाहे पसन्द करो, चाहे पसन्द न करो, चाहे तुम्हारे मुक़ाबले में दूसरों ही को क्यों न प्रधानता दी जाए।" (सहीह मुस्लिम 1836)

एक और हदीस में आया है–

"एक मुसलमान के लिए आज्ञा-पालन अनिवार्य है। चाहे वह पसन्द करे या न करे। परन्तु जब अपकर्म करने का हुक्म दिया जाए तो आज्ञा पालन नहीं।" (बुख़ारी 7144 तथा मुस्लिम 1839)

एक और हदीस में है –

"अगर किसी ने शासक को कुछ ऐसे काम करते देखा जो उसे पसन्द नहीं, तो इसपर धैर्य रखे, क्योंकि जो कोई भी शासक के विरुद्ध एक बालिश्त की भी बग़ावत करेगा, और इसी दशा में उसका देहान्त हो जाए तो उसकी मौत जाहिलियत की मौत होगी। (अर्थात् जैसे इस्लाम से पूर्व काल की मौत।)" (बुख़ारी, 7053 तथा मुस्लिम, 1849)

इस प्रकार की और बहुत सारी हदीसों में शासक की आज्ञा के पालन का आदेश आया है। और यह मुसलमानों के ईमान (आस्था) का एक विशेष अंग है। सहाबा, ताबिईन और उनके बाद के विद्वान सब इस बात पर सहमत हैं कि शासक की आज्ञा का पालन करना अनिवार्य है। और जो ऐसा नहीं करेगा वह ख़ारिजी कहलाएगा, जिसकी सहीह हदीसों में निन्दा की गई है।

इमाम अहमद-बिन-हम्बल ने तो यहाँ तक कहा है कि अगर मेरे पास कोई ऐसी दुआ हो जिसके स्वीकार होने का मुझे निश्चित ज्ञान प्राप्त हो जाए तो वह दुआ मैं शासक के लिए करूँगा, क्योंकि शासक की भलाई का प्रभाव उसकी जनता और पूरे देश पर पड़ता है।

शूरा

शूरा जिसको सलाह-मशविरा भी कहा जाता है। इस्लाम पहला धर्म है जो दुनिया चलाने के लिए शूरा का हुक्म देता है। क़ुरआन में है –

«जिन्होंने अपने रब की सुनी और नमाज़ क़ायम की, उनके काम सलाह-मशविरों से होते हैं, और जो कुछ हमने उन्हें दिया है, उसमें से ख़र्च करते हैं।» (सूरा–42, अश-शूरा, आयत–38)

स्वयं नबी (ﷺ) को अल्लाह का हुक्म था–

«मामलों में इनसे सलाह-मशविरा कर लिया करो।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–159)

लेकिन यह हुक्म केवल सांसारिक मामलों में था। परन्तु जहाँ अल्लाह तथा नबी (ﷺ) का हुक्म आ जाए, वहाँ किसी प्रकार के सलाह और मशविरे की आवश्यकता नहीं होती। बल्कि अल्लाह, और उसके रसूल (ﷺ) के हुक्म के अनुसार कर्म करना अनिवार्य हो जाता है। फिर यह जो सांसारिक मामलों में सलाह-मशविरों का हुक्म है इसके लिए कोई विशेष नियम निर्धारित नहीं किया गया, बल्कि मुसलमानों को यह स्वतंत्रता दी गई है कि वे जिस प्रकार चाहें सलाह-मशविरा करें। उसमें से एक तरीक़ा तो यह है कि शासक एक ऐसी सलाहकार परिषद् बना ले जिसमें विभिन्न प्रकार के विद्वान और विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ सम्मिलित हों और शासक की ओर से अगर किसी समस्या के विषय में परामर्श माँगा जाए तो दें। इस समिति के कर्त्तव्यों को शासक अपने फ़रमान द्वारा निर्धारित कर सकता है। परन्तु उसके लिए अनिवार्य नहीं होगा कि वह समिति के परामर्श पर अमल करे, क्योंकि उसे देश के बारे में जितना विस्तृत और गहरा ज्ञान होता है उतना किसी और को प्रायः नहीं होता। मामले की

गंभीरता और उसके रहस्यों को वह समझता है। इस बात का भी उसे ज्ञान होता है कि देश और देश की जनता पर किस काम का क्या प्रभाव पड़ सकता है। वह तो समिति के परामर्श के आधार पर कोई उचित और समयानुकूल निर्णय कर सकता है। नबी (ﷺ) को सलाह-मशविरे का तो हुक्म दिया गया था, परन्तु उसपर अमल करना आप (ﷺ) पर अनिवार्य नहीं था। आप लोगों से सलाह-मशविरे के बाद जो उचित होता, उसको अपनाते, क्योंकि किसी समस्या को हल करने के लिए जैसी बुद्धिमत्ता विवेक, और सूझ-बूझ ईश्वर ने आप (ﷺ) को प्रदान की थी, वैसी किसी को भी प्राप्त नहीं थी।

शिर्क

अल्लाह ने इनसान को तौहीद (एकेश्वरवाद) की प्रकृति पर पैदा किया। परन्तु जैसे-जैसे समय आगे बढ़ता रहा, तौहीद पर विश्वास निर्बल पड़ता गया और मानव जीवन में शिर्क प्रवेश करने लगा। तब अल्लाह ने इस भूले हुए पाठ को याद दिलाने के लिए और शिर्क के नुक़सान और अंजाम से लोगों को सूचित करने के लिए विभिन्न प्रकार के साधनों का प्रयोग किया, ताकि क़ियामत में कोई यह न कह सके कि हमारे पास कोई याद दिलानेवाला नहीं आया। उन साधनों में से कुछ महत्त्वपूर्ण साधन निम्नलिखित हैं–

1. नबियों का लगातार भेजना –

«ऐ जिन्नो और मनुष्यों के गरोह! क्या तुम्हारे पास स्वयं तुम्हीं में से रसूल नहीं आए, जो तुम्हें मेरी आयतें सुनाते और इस दिन के आ जाने से तुम्हें डराते। वे कहेंगे, ''क्यों नहीं! (रसूल तो आए थे) हम स्वयं अपने विरुद्ध गवाह हैं।'' उन्हें तो सांसारिक जीवन ने धोखे में रखा। मगर अब वे स्वयं अपने विरुद्ध गवाही देंगे कि वे इनकार करनेवाले थे।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–131)

«फिर हमने लगातार अपने रसूल भेजे।» (सूरा–23, अल-मोमिनून, आयत–44)

इन नबियों ने भूले हुए पाठ को याद दिलाया –

«ऐ आदम की सन्तान! क्या मैंने तुम्हें ताकीद नहीं की थी कि तुम शैतान की उपासना न करना। वह तुम्हारा खुला हुआ शत्रु है तथा मेरी ही इबादत करना, सीधा मार्ग यही है।» (सूरा–36, या-सीन, आयतें–60,61)

2. हर नबी ने अपनी जाति को शिर्क (बहुदेववाद) से रोका–

«नूह ने कहा : ऐ मेरी जातिवालो, अल्लाह की इबादत करो। उसके सिवा तुम्हारा कोई इलाह (उपास्य) नहीं। मुझे तुम्हारे बारे में एक भारी दिन की यातना का भय है।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–59)

हूद (عليه السلام) ने कहा –

«ऐ मेरी जातिवालो! अल्लाह की इबादत करो, उसके सिवा तुम्हारा कोई इलाह (पूज्य) नहीं, तो क्या तुम डरते नहीं?» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–65)

अर्थात् तुम अल्लाह के साथ दूसरों को साझी बनाने से डरते नहीं।

सालेह (عليه السلام) ने कहा –

«ऐ मेरी जातिवालो! अल्लाह की इबादत करो, उसके सिवा तुम्हारा कोई इलाह (पूज्य) नहीं। तुम्हारे पास तुम्हारे रब की ओर से स्पष्ट प्रमाण आ चुका है।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–73)

शुऐब (عليه السلام) ने कहा–

«ऐ मेरी जातिवालो! अल्लाह की इबादत करो, उसके सिवा तुम्हारा कोई इलाह (पूज्य) नहीं, तुम्हारे पास तुम्हारे रब की खुली दलील आ चुकी है।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–85)

और यही सभी नबियों की दावत थी।

«हमने हर समुदाय में कोई-न-कोई रसूल भेजा (इस संदेश के साथ) कि अल्लाह की इबादत करो और ताग़ूत से बचो, तो उनमें किसी को अल्लाह ने मार्ग दिखा दिया, और उनमें से किसी पर पथभ्रष्ट होना प्रमाणित हो गया, तो धरती में चल फिरकर देखो कि झुठलानेवालों का कैसा परिणाम हुआ।» (सूरा–16, अन-नह्ल, आयत–36)

लुक़मान ने भी अपने पुत्र को शिर्क से रोका –

«याद करो जब लुक़मान ने अपने बेटे से कहा, जबकि वह उसे उपदेश दे रहा था : ऐ मेरे पुत्र! अल्लाह के साथ शिर्क न करना। निश्चय ही शिर्क बहुत बड़ा ज़ुल्म है।» (सूरा–31, लुक़मान, आयत–13)

3. अल्लाह ने अपने एक होने के लिए इस सृष्टि में असंख्य प्रमाण छोड़ रखे हैं, जिनके द्वारा कोई भी बुद्धिमान अल्लाह की तौहीद तक पहुँच सकता है, और उसके साथ किसी प्रकार की साझेदारी का इनकार कर सकता है।

«वही है जिसने तुम्हारे लिए धरती को बिछौना और आकाश को छत बनाया, और आकाश की ओर से पानी उतारा, और उसके द्वारा तुम्हारी जीविका के लिए हर प्रकार के खाद्य-पदार्थ पैदा किए, तो अल्लाह का समकक्ष न बनाओ और तुम (इस बात को) तो जानते हो।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–22)

4. अन्त में उसने अन्तिम रसूल मुहम्मद (ﷺ) को भेजकर हर प्रकार के शिर्क के दरवाज़े बन्द कर दिए। इसलिए अब शिर्क करनेवालों के लिए कोई बहाना नहीं है, जबकि मुशरिक यातना के भय से यही कहेंगे–

«अल्लाह की क़सम, जो हमारा रब है, हम मुशरिक नहीं थे।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–23)

लेकिन वे अपने इस दावे में झूठे होंगे। इसलिए क़ियामत के दिन उनके मुँह पर मुहर लगा दी जाएगी, ताकि उनके हाथ-पैर गवाही दें।

«हम आज के दिन उनके मुँह पर मुहर लगा देंगे। इसलिए उनके हाथ हमसे बातें करेंगे तथा उनके पैर गवाही देंगे जो कुछ वे करते थे।» (सूरा–36, या-सीन, आयत–65)

इसलिए अल्लाह शिर्क करनेवालों को कदापि क्षमा नहीं करेगा :

«निस्सन्देह अल्लाह इसको क्षमा नहीं करेगा कि उसका साझी ठहराया जाए। और इसके सिवा जो कुछ है, उसे जिसके लिए चाहेगा क्षमा कर देगा और जिसने अल्लाह का साझी ठहराया, उसने बहुत बड़ा पाप किया।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–48)

एक दूसरे स्थान पर है–

«निस्सन्देह अल्लाह उसको क्षमा नहीं करेगा जिसने उसके साथ किसी को साझी बनाया और इसके अतिरिक्त जिसे चाहे क्षमा कर दे, और जिसने अल्लाह के साथ किसी को साझी ठहराया वह पथभ्रष्ट हो कर बहुत दूर जा पड़ा।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–116)

सहीह हदीसों में आता है कि नबी (ﷺ) से पूछा गया, "महापाप क्या है?" आप (ﷺ) ने फ़रमाया :

तुम किसी को अल्लाह का समकक्ष ठहराओ, जबकि उसी ने तुमको पैदा किया। (सहीह बुख़ारी, 4477 तथा सहीह मुस्लिम, 86)

एक दूसरी सहीह हदीस में नबी (ﷺ) ने फ़रमाया–

"क्या मैं तुम लोगों को बताऊँ कि महापाप क्या है? लोगों ने कहा, "हाँ! ऐ अल्लाह के रसूल!" आपने फ़रमाया, "अल्लाह के साथ किसी को साझी बनाना, माता-पिता की आज्ञा न मानना, और झूठी गवाही देना।" (सहीह बुख़ारी, 2654 तथा सहीह मुस्लिम, 87)

एक और सहीह हदीस में नबी (ﷺ) ने फ़रमाया–

"सात तबाह करनेवाली चीज़ों से बचे रहो।" लोगों ने पूछा, "वे क्या हैं?" आप (ﷺ) ने फ़रमाया, "अल्लाह के साथ किसी को साझी बनाना, जादू करना, किसी की नाहक़ हत्या

करना, ब्याज खाना, अनाथ का धन खाना, जिहाद में मुँह मोड़कर भागना और मोमिन पाकदामन स्त्रियों पर मिथ्यारोप लगाना।" (सहीह बुख़ारी, 2766 तथा सहीह मुस्लिम 89)

जब सूरा–60, अल-मुम्तहिना की आयत–12 उतरी तो आप (ﷺ) ने स्त्रियों से जिन बातों की बैअ़त ली उनमें एक यह भी थी कि वे अल्लाह के साथ किसी को साझीदार नहीं बनाएंगी।

और जरीर-बिन-अब्दुल्लाह कहते हैं कि मैंने नबी (ﷺ) के हाथ पर जो बैअ़त की उसमें यह भी थी, *"अल्लाह के अतिरिक्त कोई पूज्य नहीं और मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं।"* (सहीह बुख़ारी, 2157 तथा सहीह मुस्लिम, 56)

❁ शिर्क कैसे पैदा हुआ ?

शिर्क का सबसे बड़ा कारण शैतान का बहकाना है। जब किसी नबी या महान पुरुष का देहान्त हो जाता था तो उनके अनुयायी बड़े दुख और ग़म में पड़ जाते थे। ऐसी दशा में उनके सोचने समझने की सारी शक्ति जाती रहती थी। बस उस समय को शैतान ग़नीमत समझकर यह कहता कि आओ मैं तुम लोगों का ग़म दूर करने के कुछ उपाय बताता हूँ। उनमें से एक यह कि मरनेवाले की क़ब्र पर एक उपासना-स्थल बना लो ताकि क़ब्र पृथ्वी के बराबर न हो जाए। और जब उपासना-स्थल बन जाता तो फिर उसमें इबादत करते-करते कभी क़ब्र को भी सज्दा कर लेते, कभी उसका तवाफ़ (परिक्रमा) करने लगते, और फिर धीरे-धीरे इसी क़ब्र से अपनी आवश्यकताएँ बयान करने लगते यहाँ तक कि वह बन्दा जो स्वयं पूरे जीवन अल्लाह की इबादत में बिता कर इस संसार से विदा हो गया था अब वही स्वयं माबूद (उपास्य) बन जाता, इसी लिए नबी (ﷺ) ने क़ब्रों को पक्की करने से मना फ़रमाया। (देखिए : सहीह मुसलिम 968)

अब एक ओर नबी (ﷺ) का यह हुक्म देखिए, और दूसरी ओर क़ब्रों पर चढ़ावे चढ़ाना उनको पक्की करना और उनपर मस्जिदें बनाना और फिर विभिन्न प्रकार की बिदअतें करना। ये सब शैतान के बहकावे नहीं तो और क्या हैं? शैतान के बहकावे में से एक यह भी था कि जब कोई नबी, महान पुरुष, ऋषि इत्यादि का देहान्त हो जाता था तो उनके अनुयायियों से वह कहता कि आप इतने दुखी न हों मैं उनकी मूर्ति बना देता हूँ। उसको सामने रखकर अपने गुरुदेव का ध्यान करो, आपका दुख दूर हो जाएगा। इस इनसान के हाथ की बनाई हुई मूर्ती की पूजा होने लगी। क़ुरआन ने इसकी ओर कितनी सुन्दर शैली में संकेत किया है –

«पूजनेवाला, और जिसकी पूजा की जाए दोनों कितने कमज़ोर हैं» (क़ुरआन, सूरा–22, हज्ज, आयत–73)

वास्तव में शैतान का काम ही है कि नित नए-नए उपाय सोचकर मनुष्य को अल्लाह की वन्दना से दूर करता रहे।

शेअरा

शेअरा एक सितारे का नाम है, जो गर्मियों में निकलता है। अरब के एक क़बीले बनू-ख़ुज़ाआ के लोग इसकी इबादत करते थे। इसके नाम पर क़ुरबानी देते थे। इससे अपनी हाजतें माँगते थे। जबकि इस सितारे तथा समस्त सृष्टि का रब तो केवल अल्लाह है। क़ुरआन में एक स्थान पर इसी की ओर संकेत किया गया है –

«और यह कि वही है जो शेअरा (सितारे) का रब है।» (सूरा–53,अन-नज्म, आयत–49)

अर्थात् जैसे समस्त सृष्टि का रब अल्लाह है उसी प्रकार शेअरा का भी रब वही है। तो फिर उसकी इबादत क्यों?

शहद

यह एक प्रकार की मक्खियों द्वारा फूलों से चूसा हुआ वह मीठा रस है जिसमें अल्लाह ने बहुत सारे रोगों से शिफ़ा (रोग-मुक्ति) रखी है। आज कल तो समाचार पत्रों में शहद की विशेषताओं पर विभिन्न प्रकार के रिसर्च आर्टिकल छपते रहते हैं। ध्यान दीजिए आज से डेढ़ हज़ार वर्ष पूर्व क़ुरआन इसकी ओर संकेत करते हुए कितने स्पष्ट रूप में कह चुका है–

«तेरे रब ने शहद की मक्खी के दिल में यह बात डाल दी कि पहाड़ों में और पेड़ों पर तथा ऊँची-ऊँची टट्टियों में, जिन्हें लोग बनाते हैं, घर बना। फिर हर प्रकार के फल-फूलों का रस चूस और अपने रब के ठहराए हुए मार्गों पर चल। उसके पेट से एक ऐसा रस निकलता है जिसके रंग विभिन्न होते हैं, जिसमें लोगों के लिए शिफ़ा है। निस्सन्देह इसमें सोचने-समझनेवालों के लिए बड़ी निशानी है।» (सूरा–16, अन-नह्ल, आयतें–68,69)

क़ुरआन के चमत्कारों में से यह भी एक चमत्कार है। शहद की इस विशेषता के कारण एक सूरा का नाम ही सुरा अन-नहल है। शहद का वर्णन क़ुरआन में इसी सूरा में केवल एक बार आया है। और सूरा के अधिकतर भाग में एकेश्वरवाद के प्राकृतिक प्रमाण प्रस्तुत किए गए हैं और स्वयं शहद की मक्खी का जीवन एकेश्वरवाद का खुला प्रमाण है।

स
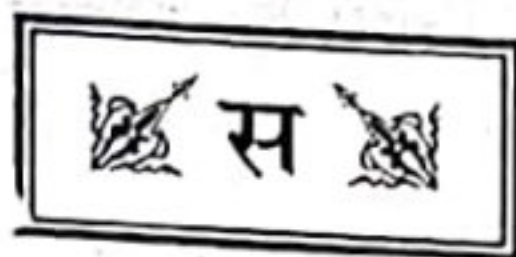
सदाचार (सत्कर्म)

क़ुरआन में सदाचार तथा अच्छे व्यवहार पर बहुत अधिक बल दिया गया है और सदाचार तथा सत्कर्म को लोक और परलोक दोनों में सफलता की कुँजी बताया है। क़ुरआन में है–

«तुम लोग नेकी (सदाचार) और वफ़ादारी के दर्जे तक कभी नहीं पहुँच सकते, जब तक कि अपनी उन वस्तुओं में से जो तुम्हें बहुत प्रिय हैं (अल्लाह के मार्ग में) कुछ ख़र्च न करो।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–92)

एक हदीस में यों आता है–

"तुम उस समय तक सच्चे मोमिन नहीं बन सकते जब तक तुम अपने भाई के लिए वही वस्तु पसन्द न करो जो अपने लिए पसंद करते हो।"

यह सदाचार और सत्कर्म की शिक्षा की श्रेष्ठतम और व्यापकतम सीमा है। इससे बढ़कर किसी और सदाचार और सत्कर्म की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पवित्र क़ुरआन में एक अन्य स्थान पर आया है–

«नेकी और तक़्वा (ईश-परायणता) में एक दूसरे को सहयोग दो और गुनाह और अत्याचार के काम में सहयोग मत दो।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–2)

कभी ऐसा भी होता है कि लोग दूसरों को तो नेकी करने का उपदेश देते हैं, लेकिन स्वयं नेकी पर अमल नहीं करते। क़ुरआन में ऐसे लोगों की घोर निन्दा की गई है–

«(ऐ इसराईल की संतान) तुम दूसरों को नेक कार्य करने का उपदेश देते हो और अपने आप को भूल जाते हो, यद्यपि तुम किताब पढ़ते हो। फिर क्या तुम समझ से काम नहीं लेते!» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–44)

सूर्य

प्राचीन काल के देवताओं में से यह भी एक देवता था, आकाश के अनगिनत तारों में से यह भी एक तारा है। चूँकि यह सबसे बड़ा और सबसे अधिक लाभ दायक है, इसलिए इसकी उपासना करने वालों ने भिन्न-भिन्न नामों और कामों से इसका वर्णन किया है। कभी इसको अग्नि देवता का अवतार कहा, तो कहीं सारे ब्रह्मांड का स्वामी बताया। इन सारे अंधविश्वासों का खंडन करते हुए क़ुरआन ने

इबराहीम (अलैहि०) के उस कथन का वर्णन किया है, जिसमें वे सूर्य पूजकों को संकेत करते हुए कहते हैं–

«जब रात उस पर छा गई तो उस ने एक तारा देखा। उसने कहा, ''यह मेरा रब है।'' परन्तु जब वह डूब गया, तो बोला, ''डूब जानेवालों से मुझे प्रेम नहीं।''

फिर जब उसने चाँद चमकता देखा तो कहा, ''यह मेरा रब है।'' परन्तु जब वह डूब गया तो कहा, यदि मेरा रब मुझे मार्ग न दिखाए तो मैं भटके हुए लोगों में से हो जाऊँ।

फिर जब सूरज को चमकते हुए देखा, तो कहने लगा, ''यह मेरा रब है! यह सब से बड़ा है!'' फिर जब वह डूब गया तो कहा, ''ऐ मेरी जाति! मैं उनसे विरक्त हूँ जिन्हें तुम (अल्लाह का) सहभागी ठहराते हो।''

मैंने तो हर ओर से कटकर अपना रुख़ उसकी ओर कर लिया है जिसने आकाशों और धरती को पैदा किया, और मैं शिर्क करनेवालों में से नहीं हूँ।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयतें-76-79)

अल्लाह ने वास्तव में सूर्य तथा चन्द्रमा को अपने अस्तित्व की निशानियाँ बनाया है, न कि अपने समान पूज्य, इसलिए उनको सजदा करने से रोका है और उसको सजदा करने का आदेश दिया है, जिसने इनको बनाया है। (सूरा–41, हा-मीम अस-सजदा, आयत–37)

सालेह (अलैहि०)

सालेह (अलैहि०), हज़रत नूह (अलैहि०) के वंश में से थे। उनके दादा का नाम समूद था उन्हीं के वंश के लोग तत्पश्चात् समूद जाति कहलाई।

कुछ विद्वानों का विचार है कि उनका समय काल इबराहीम (अलैहि०) से कोई तीन सौ वर्ष पूर्व है। उनका निवास-स्थान हिज्र था, जो हिजाज़ और तबूक के बीच में पड़ता है।

इसी की ओर क़ुरआन इशारा करता है–

«हिज्र के लोगों ने भी रसूलों को झुठलाया।» (सूरा–15, अल-हिज्र, आयत–80)

समूद जाति का वर्णन अरस्तू और बतलीमूस की पुस्तकों में भी आता है। और यह भी मिलता है कि ये लोग दोमा (DOMATHA) के निकट आबाद थे जिसको आज दोमतुल-जंदल कहते हैं।

बाइबल की पुस्तक उत्पत्ति (10:11) में नूह (अलैहि०) से इबराहीम (अलैहि०) का गोत्र इस प्रकार बयान हुआ है–

नूह (ﷺ)

याफ़त | साम | हाम

साम → अर्फ़क्शाद → शालेह → आबिर → फ़ल्ज → रऊ → सरोज → नहूर → आज़र (तारह) → इबराहीम (ﷺ)
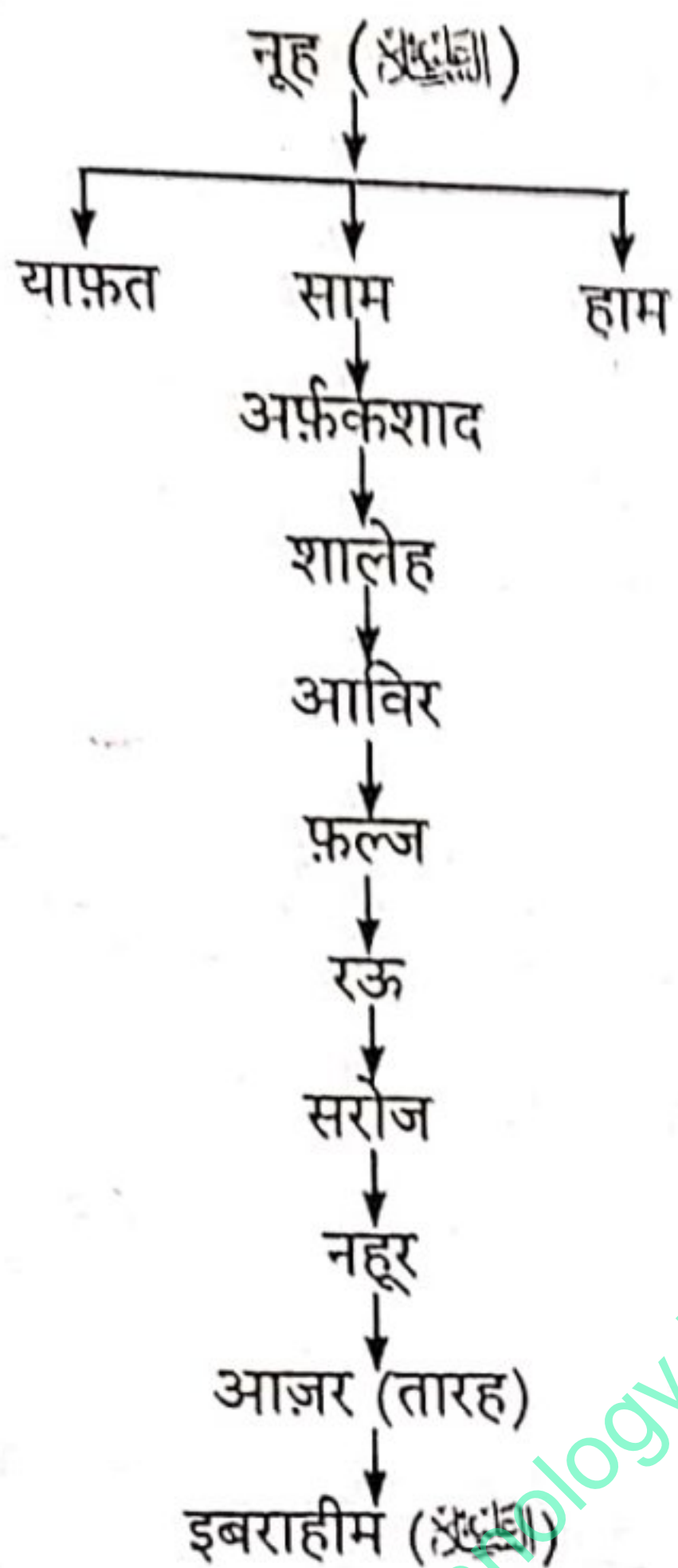
कुछ विद्वानों का विचार है कि आबिर के पुत्र फ़ल्ज को सालेह कहते हैं, क्योंकि समूद का समय हज़रत इबराहीम (ﷺ) से कोई तीन सौ वर्ष पूर्व था, कुछ दूसरे विद्वान शालेह को ही, जो अर्फ़कशाद के पुत्र थे, समूद का सालेह कहते हैं। परन्तु इसको मानने में यह कठिनाई है कि जिस जाति (समूद) की ओर उनको भेजा गया, वह अर्फ़कशद के पुत्र सालेह के बाद की कोई जाति है! कुछ विद्वानों ने समूद और सालेह का गोत्र इस प्रकार बयान किया है–

हज़रत 'नूह' (अलैहि.)

याफ़्त | साम | हाम

याफ़्त — अर्फ़कशाद — शालेह — आबिर — फ़ल्ज — रऊ — सरोज — नहूर — आज़र (तारह) — इबराहीम (अलैहि.)

हाम — इरम — जासर — समूद — हादर — उबैद — मासेह — उबैद — सालेह (अलैहि.)
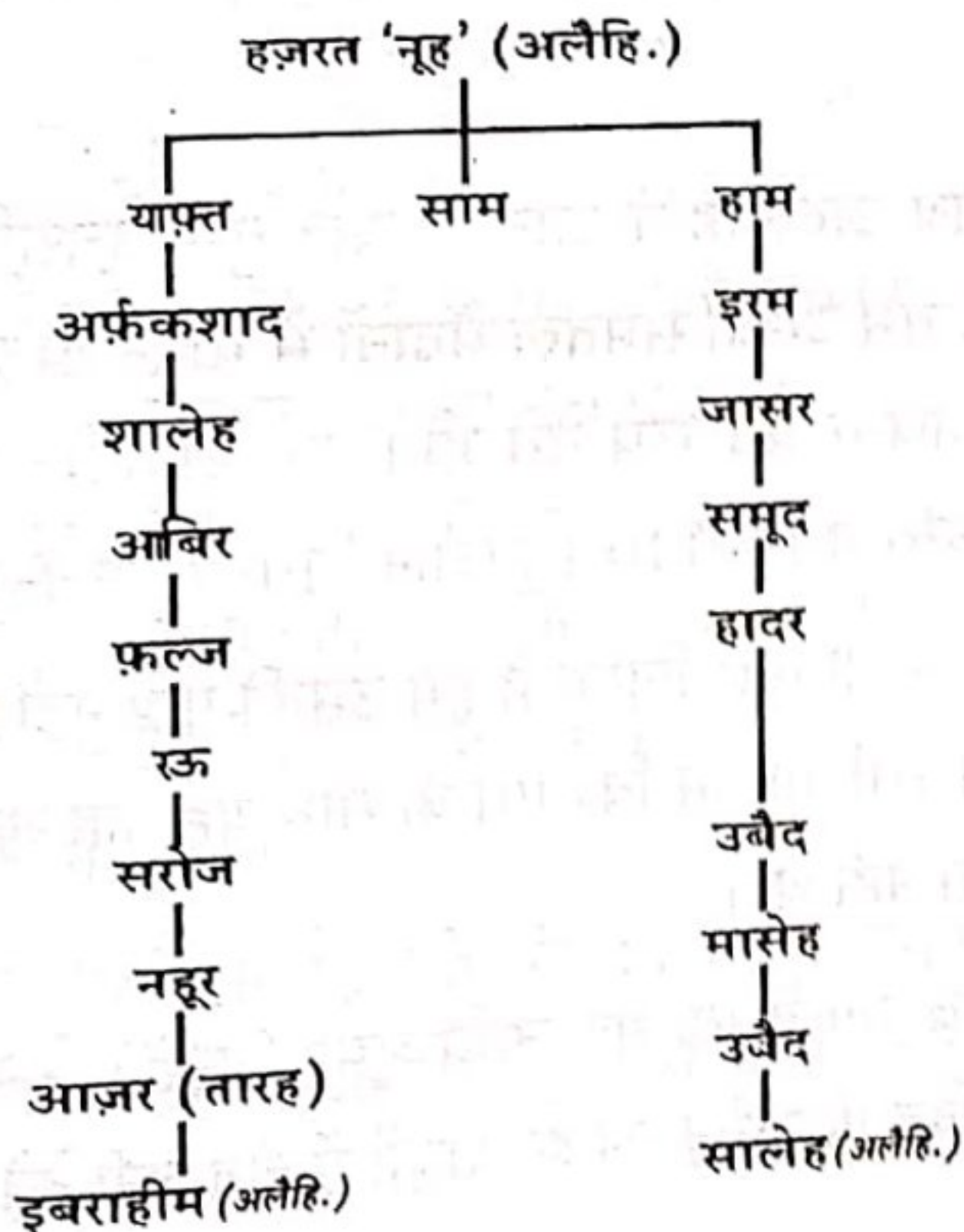
"सालेह (अलैहि०) जिस क़ौम की ओर भेजे गये"

इरम (आराम) का नाम तौरात में साम के पुत्रों में मिलता है और इरम के पुत्र जासर का नाम भी आता है। परन्तु जिस गोत्र का ऊपर वर्णन हुआ है इबरानी धर्म-ग्रन्थों और प्रमाणिक इस्लामी इतिहास में नहीं मिलता। इसलिए उसके विषय में कोई निश्चित बात नहीं कही जा सकती। समूद जाति, जिसकी ओर सालेह भेजे गए थे, आद के बाद की कोई जाति है जो पहाड़ों को काट-छाँटकर घर बनाती थी–

«वह समय याद करो जब अल्लाह ने आद के बाद तुम्हें उत्तराधिकारी बनाया, और तुम्हें धरती पर आबाद किया, तुम उसके समतल मैदानों में महल खड़े करते हो, और पहाड़ों को काँट-छाँट कर उनको भवनों का रूप देते हो। बस अल्लाह की नेमतों को याद रखो और धरती पर फ़साद करते न फिरो।» (क़ुरआन, सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–74)

समूद के विषय में विद्वानों ने जो कुछ लिखा है हम उसकी पुष्टि नहीं कर सकते क्योंकि उनकी बातों का कोई प्रमाण नहीं मिलता। इसलिए हम विश्वास के साथ यह कह सकते हैं कि नबी (ﷺ) के समय समूद जाति का कोई गोत्र बचा नहीं था।

क़ुरआन से यह भी पता चलता है कि यह जाति मूसा (अलैहि०) से पहले थी, क्योंकि फ़िरऔन के दरबार में ईमानवाला एक व्यक्ति फ़िरऔन को इन शब्दों में चेतावनी देते हुए कहता है–

«उस व्यक्ति ने, जो ईमान लाया था, कहा, ''ऐ मेरी जाति वालो! मुझे भय है कि कहीं तुम पर वह दिन न आ जाए जो दूसरे समुदायों पर आ चुका है। कहीं वही हाल न हो जो नूह की जाति, आद और समूद और उनके बादवालों का हुआ। अल्लाह बन्दों पर अत्याचार करना नहीं चाहता।» (सूरा–40, अल-मोमिन, आयतें-30-31)

निस्सन्देह यह एक बड़ी जाति थी। पहाड़ों को काटकर घर बनाया करती थी। (देखिए: क़ुरआन, सूरा-15, हिज्र, आयत-81)

"पहाड़ खोदकर बनाये गये घर"

लेखक को उनके घरों को देखने का अवसर मिला। उनको देखकर ऐसा लगता है कि हर परिवार के लिए एक पहाड़ था। उसने उन्हें खोदकर अपनी आवश्यकता अनुसार कमरे बना लिए हैं। इनमें क़सरुल-बिन्त और दीवान बहुत प्रसिद्ध हैं। उनके दरवाज़ों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के जानवरों और पशु-पक्षियों के चित्र बनाए गए हैं। ऐसा लगता है कि वे लोग इनकी पूजा किया करते थे और अपनी शक्ति पर उन्हें बड़ा गर्व था। अल्लाह ने एकेश्वरवाद के प्रचार और अपनी इबादत के लिए सालेह (عليه السلام) को नबी बनाकर उनके पास भेजा –

«समूद की ओर उसके भाई सालेह को भेजा। उसने कहा, ''मेरी जाति वालो! अल्लाह की इबादत करो। उसके अतिरिक्त तुम्हारा कोई इलाह (उपास्य) नहीं है।''» (क़ुरआन, सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–73)

लेकिन समूद जाति ने उनकी बात न मानी, बल्कि यह कहा कि अगर तुम सच्चे हो तो कोई निशानी दिखाओ। (देखिए: सूरा–26, अश-शुअरा, आयत–154)

बस चमत्कार के रूप में अल्लाह ने सालेह को एक ऊँटनी दी और कहा –

«हम उनकी परीक्षा के लिए एक ऊँटनी भेजने वाले हैं। तो तुम उन्हें देखते रहो, और धैर्य से काम लो।» (सूरा–54, अल-क़मर, आयत–27)

सालेह (عليه السلام) ने कहा –

«यह एक ऊँटनी है एक दिन पानी पीने की इसकी बारी होगी। और एक दिन तुम लोगों की बारी होगी।» (सूरा–26, अश-शुअरा, आयत–155)

«ऐ मेरी जाति वालो! यह अल्लाह की ऊँटनी तुम्हारे लिए एक निशानी है। इसे छोड़ दो कि अल्लाह की धरती पर जहाँ चाहे जाए और खाए-पिए।» (सूरा–11, हूद, आयत–64)

और यह भी कहा कि उसको किसी प्रकार की हानि मत पहुँचाना, नहीं तो तुम लोगों को यातना घेर लेगी। (देखिए: सूरा–11, हूद, आयत–64) लेकिन उन लोगों ने अत्याचार किया और एक स्थान पर इकट्ठा हो कर ऊँटनी को मारने का प्रयत्न करने लगे –

«फिर उन्होंने उस ऊँटनी की कूँचों को काटकर उसे मार डाला, और पूरी ढिटाई के साथ अपने रब की आज्ञा की अवहेलना की और कहने लगे : ऐ सालेह! तू हमें जिस (अज़ाब) की धमकी देता है, यदि तू रसूलों में से है तो उसे हमपर ले आ।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–77)

«समूद ने अपनी सरकशी के कारण झुठलाया, जब उनमें एक बदनसीब उठ खड़ा हुआ, तो अल्लाह के रसूल ने कहा, ''ख़बरदार, अल्लाह की ऊँटनी और उसके पानी पीने की बारी (के बीच मत आना)'' परन्तु उन्होंने उसको झुठलाया, और उस ऊँटनी को उसकी कूँचें काटकर मार डाला, तो उनके रब ने उनके गुनाह के कारण उनपर तबाही डाली और उनकी (बस्ती) को बराबर कर दिया। और वह उनके परिणाम से डरता नहीं।» (सूरा–91, अश-शम्स, आयतें–11-15)

आख़िरी आयत ने इस बात का स्पष्टीकरण किया है कि अल्लाह अपने कामों पर न तो पछताता है और न ही डरता है, बल्कि वह तो सर्वशक्तिमान है। वह यहूदियों के उस ख़ुदा की तरह नहीं जो कभी-कभी अपने करने पर पछताता है। जैसा की तौरात की किताब उत्पत्ति 6:7-6 और 8:21 में आया है।

आगे का क़िस्सा क़ुरआन में इस प्रकार बयान हुआ है–

«परन्तु उन्होंने उसकी कूँचें काटकर उसे मार डाला, तो उसने कहा, ''अपने घरों में तीन दिन और आनंद कर लो। यह एक ऐसा वादा है जो किसी प्रकार झूठा नहीं होगा। फिर जब हमारा आदेश आ गया तो हमने अपनी दयालुता से सालेह और उन लोगों को, जो उन पर ईमान लाए थे, बचा लिया, और उस दिन की रुसवाई से उन्हें बचाए रखा (अर्थात् आख़िरत की रुसवाई से)। निस्सन्देह तेरा रब बड़ा शक्तिशाली और प्रभुत्वशाली है। और उन लोगों को, जिन्होंने अत्याचार किया, एक भयंकर चीख़ ने आ लिया। और वे अपने घरों में औंधे पड़े रह गए। और फिर ऐसे मिटे मानो वे वहाँ कभी बसे ही न थे। सुन रखो कि समूद ने अपने रब से कुफ़्र किया। सुन रखो समूद को अल्लाह ने अपनी रहमत से दूर कर दिया। (अर्थात् अब वे जहन्नमी हो गए।) (सूरा–11, हूद, आयतें-65-68)

दूसरे स्थान पर आया है–

«तो समूद कड़क से विनष्ट कर दिए गए।) (सूरा–69, अल-हाक़्क़ा, आयत–5)

एक अन्य स्थान पर है–

«यह कि उसने पहले आद को विनष्ट कर दिया और समूद को भी बाक़ी न छोड़ा।» (सूरा–53, अन-नज्म, आयतें-50,51)

यह उस जाति का परिणाम है, जिसने नबी को झुठलाया, उनकी दावत का इनकार किया, उसकी लाई हुई निशानियों को देखकर भी ईमान नहीं लाए। इसलिए वे इस पृथ्वी से मिटा दिए गए, क्योंकि उन्होंने पृथ्वी के रचयिता की बात नहीं मानी, बल्कि उसका इनकार किया। फिर उनको इस धरती पर रहने का अधिकार नहीं रहा और वे ईश्वरीय प्रकोप के द्वारा मिटा दिए गए। सहीह हदीस में आया है कि नबी (ﷺ) तबूक जाते हुए सालेह के इलाक़े से गुज़रे तो कुछ लोग समूद के बनाए हुए घरों में घुस गए तब आप ने फ़रमाया –

''ये वे लोग हैं जिनपर अल्लाह का अज़ाब आया, इसलिए इनके घरों में रोते हुए दाख़िल हो। (इबरत के लिए), कहीं तुम भी अल्लाह के आज़ाब में न घिर जाओ।'' (बुख़ारी 3381 तथा मुस्लिम 2980)

एक दूसरी हदीस में आता है कि लोग उस कुंए के पास उतर गए, जिससे समूद की जाति के लोग पानी पीते थे। और लोगों ने आग जलाकर खाना पकाना शुरू कर दिया। जब नबी (ﷺ) को इसकी सूचना मिली तो आप (ﷺ) ने फ़रमाया–

''देगचियाँ उलट दो, और जो आटा तुम ने गूँध रखा है उसे ऊँटों को खिला दो।'' और फिर आप ने वहाँ से चलने का हुक्म दिया और उस कुएँ पर पड़ाव डालने का हुक्म दिया जिससे सालेह (عليه السلام)

की ऊँटनी पानी पीती थी। और कहा, "उन लोगों के घरों की तरफ़ मत जाओ जिन पर अल्लाह का अज़ाब आ चुका है, क्योंकि मुझे भय है कि तुम्हें भी वैसा ही अज़ाब न घेर ले!"

अर्थात् ऐसे स्थानों को मनोरंजन स्थल नहीं बनाना चाहिए, क्योंकि ये स्थान तो इबरत (शिक्षा) के लिए होते हैं कि अगर हम भी अल्लाह का इनकार और उसकी अवज्ञा करते रहे, उसके बताए हुए मार्ग को नहीं अपनाया और उसके भेजे हुए रसूल को झुठलाया तो हम भी कहीं अज़ाब में न घिर जाएँ। सालेह (عليه السلام) और उनपर ईमान लानेवाले एकेश्वरवादी अज़ाब के बाद कहाँ गए? इस विषय में क़ुरआन और सहीह हदीसों में कुछ नहीं आया है। इसलिए इतिहासकारों ने भिन्न-भिन्न बातें लिखी हैं। किसी ने कहा कि वे फ़िलस्तीन की ओर चले गए क्योंकि वह उनके पशुओं के लिए सब से बेहतर स्थान था। कुछ का विचार है कि वे हज़रमौत चले गए थे, क्योंकि वह उनका असली मक़ाम था। वहाँ एक क़ब्र आज भी पाई जाती है, जिसके बारे में प्रसिद्ध है कि हज़रत सालेह की है। कुछ का विचार है कि अज़ाब के बाद सारे नबी मक्का चले आते थे, ताकि अल्लाह की इबादत कर सकें और वहीं उनका देहान्त हो जाता था। उनका विचार है कि इस समय मक्का में एक सौ बीस नबियों की क़ब्रें हैं। परन्तु इस बात को मानने में कठिनाई है। अगर ऐसा होता तो नबी (ﷺ) अवश्य उन क़ब्रों का वर्णन करते, मगर हमें किसी सहीह हदीस में इस विषय में कुछ नहीं मिलता।

सुलैमान (عليه السلام)

सुलैमान (عليه السلام) बनी-इसराईल के महान नबियों में से थे। अल्लाह ने उनको दाऊद (عليه السلام), जो उनके पिता थे, का वारिस (अर्थात् नुबूवत और शासन का उत्तराधिकारी) बनाया, क्योंकि धन का तन्हा वारिस तो नहीं बनाया जा सकता था। दाऊद (عليه السلام) के और भी तो पुत्र थे। (देखिए: सूरा–27, अन-नम्ल, आयत–16)

आप लगभग 1045-1020 ईसा पूर्व पैदा हुए। ऐसा लगता है कि उनके पिता हज़रत दाऊद (عليه السلام) ने उनके अन्दर कुछ लक्षण देखे थे जिसके कारण उनको राज-पाट के कामों में अपने साथ रखते थे। यह बात क़ुरआन की इस आयत से सही मालूम होती है–

«जबकि दाऊद और सुलैमान खेती के बारे में निर्णय कर रहे थे, जब कुछ लोगों की बकरियाँ रात को चर गई थीं।» (सूरा–21, अल-अंबिया, आयत–78)

बाइबल से पता चलता है कि सुलैमान (عليه السلام) के पिता दाऊद (عليه السلام) उनसे अधिक प्रेम करते थे, क्योंकि उनकी माता बंतशेबा दाऊद (عليه السلام) की चहेती पत्नी थीं, जिन्हें एक बार दाऊद (عليه السلام) ने वचन दिया था कि उनका पुत्र सुलैमान ही राज-पाट का मालिक बनेगा। लेकिन जब दाऊद का बड़ा पुत्र अदोनिय्याह राज गद्दी पर बैठने का प्रयत्न करने लगा तो आप की पत्नी बतशेबा ने उनको अपना

वचन याद दिलाया। फलस्वरूप दाऊद (ﷺ) और अदोनिय्याह में युद्ध हुआ। अदोनिय्याह मारा गया। इस प्रकार दाऊद (ﷺ) ने अपने प्यारे पुत्र सुलैमान को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। (देखिए : बाइबल, प्रथम शासक 1:10 और उसके बाद)

कारण कुछ भी हो दाऊद (ﷺ) ने अपने पुत्र सुलैमान (ﷺ) को अपने राज का उत्तराधिकारी बना दिया। बाइबल ही के अनुसार सर्वप्रथम सुलैमान ने जो काम किया वह यह था कि मिस्र के राजा (फ़िरऔन) की पुत्री से विवाह कर लिया। (देखिए : बाइबल, प्रथम शासक, 4:24)

इस प्रकार उन्होंने अपने पड़ोस की सबसे बड़ी हुकूमत से दोस्ती कर ली। जिसके कारण पूरे चालीस वर्ष तक उन्होंने राज चलाया और इस अवधि में बनी-इसराईल पूरी शान्ति के साथ जीवन व्यतीत करते रहे।

* सुलैमान (ﷺ) की विशिष्टताएँ–

1. अल्लाह ने हवा को उनके अधीन कर दिया था। क़ुरआन में है –

«और सुलैमान के लिए हमने प्रचंड वायु को वशीभूत कर दिया था, जो उसके आदेश से उस भूभाग की ओर चलती थी जिसे हमने बरकत दी थी और हम हर चीज़ का ज्ञान रखते हैं।» (सूरा–21, अल-अंबिया, आयत–81)

एक दूसरे स्थान पर है–

«हमने सुलैमान के लिए हवा को वशीभूत कर दिया था। प्रातः समय उसका चलना एक महीने की राह तक और सांयकाल उसका चलना एक महीने की राह तक।» (सूरा–34, सबा, आयत–12)

एक तीसरे स्थान पर है –

«फिर हमने उसके लिए वायु को वशीभूत कर दिया, जो उसके आदेश से जहाँ वह जाना चाहता सरलतापूर्वक चलती।» (सूरा–38, सॉद, आयत–36)

क़ुरआन तथा सहीह हदीसों में इसका विवरण नहीं आया है कि सुलैमान (ﷺ) हवा के द्वारा किस प्रकार जहाँ चाहते चले जाते थे। कुछ विद्वानों ने क़ुरआन की व्याख्या में लिखा है कि उनके पास लकड़ी का एक सिंहासन था। जिस पर वे आवश्यक सामान लेकर बैठ जाते थे। आपकी इच्छा के अनुसार वायु उस सिंहासन को लेकर, वे जहाँ चाहते उड़ा ले जाती थी। उसके द्वारा एक महीने की यात्रा आप प्रातः काल में पूरा कर लेते थे। इसी प्रकार एक महीने की यात्रा सांयकाल में कर लेते थे। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि हवा जहाँ जाना चाहती जाती। सूरा-21, अल-अंबिया में है कि एक महीने की यात्रा सांयकाल में कर लेती थी। परन्तु इसी सूरा अल-अंबिया में यह भी बताया गया है

कि उनकी यात्रा उस धरती पर होती थी, जिसको अल्लाह ने बरकत दी थी। इससे पता चलता है कि वह यात्रा फ़िलस्तीन तथा उसके इधर-उधर तक ही सीमित थी। इसलिए कि यही भूखंड उनके शासन-क्षेत्र में सम्मिलित था।

कुछ विद्वानों ने एक दूसरा अर्थ यह लिया है कि सुलैमान (अलैहि०) के पास समुद्री जहाज़ थे, जिनके द्वारा वे विभिन्न प्रकार की आवश्यकताएँ पूरी करते थे जैसे व्यापार, युद्ध इत्यादि परन्तु उस समय जहाज़ों का समुद्र में चलना एकमात्र हवाओं पर निर्भर करता था। अल्लाह ने सुलैमान (अलैहि०) के लिए इन हवाओं को अधीन कर दिया था वे जिस प्रकार चाहते उनको आज्ञा देते और वे चलने लगतीं। कभी तेज़ आंधी की तरह, जब उनको कहीं जाने की जल्दी होती। और कभी आराम के साथ, जब आप व्यापार या सैर-तफ़रीह के लिए जाते। इसी को क़ुरआन ने शब्द 'असीफ़ा' अर्थात् तेज़ आंधी, और शक 'रखा' अर्थात् आराम-आराम से कहकर संकेत किया। बाइबल से भी इस अर्थ की पुष्टि होती है। जिसके अनुसार उनके पास ऐसे जहाज़ थे, जो रोम सागर में घूमते रहते। (देखिए: बाइबल, प्रथम शासन, दसवाँ अध्याय) अनुकूल वायु न होने पर भी उनको कोई कठिनाई नहीं होती थी, क्योंकि आपको उनपर अधिकार दिया गया था। परन्तु इस बात को मानने में एक प्रश्न यह पैदा होता है कि क़ुरआन में प्रात: काल एक मास की यात्रा, और सायंकाल एक मास की यात्रा का वर्णन है और वह समुद्र जो उनके शासन काल में था उसकी यात्रा एक मास से कम में की जा सकती थी। इसका उत्तर यह दिया जा सकता है कि कभी-कभी वे अपने शासन क्षेत्र से निकलकर दूसरे क्षेत्रों में भी चले जाते थे जिसकी यात्रा एक मास के निकट होती थी। जैसे सागर में तरशीश तक जिसका वर्णन बाइबल में आया है। यह तरशीश कहाँ है ? जहाँ तक की यात्रा में तीन वर्ष लगते थे, जैसा कि बाइबल में आया है। (प्रथम शासक, 10:22) कुछ लोगों का विचार है कि यह जिब्राल्टर के निकट कोई शहर है। (देखिए: क़ामूस मुक़द्दस, पृ. 217) लेकिन यह केवल लेखक का विचार है। कुछ ऐसा लगता है कि बाइबल में भी यह ग़लती हो गई है कि जहाज़ तीन वर्ष तक यात्रा करते रहते थे। जिसके कारण तरशीश को स्पेन के निकट सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। जब कि यह तरशीश वही तरतूश है, जो रोम सागर में सीढ़ियों के एक तट का नाम है। और याफ़ा घाट से तरतूश तक एक मास लग सकता है जैसा कि क़ुरआन में बताया गया है।

2. अल्लाह ने उनको पक्षियों की बोली सिखाई थी–

«सुलैमान दाऊद का वारिस हुआ। और उसने कहा, ''ऐ लोगो ! हमें पक्षियों की बोली सिखाई गई है।''» (क़ुरआन, सूरा–27, अन-नम्ल, आयत–16)

सुलैमान (अलैहि०) के पास हुदहुद नामक एक पक्षी था जिससे वे बात करते थे। एक बार वे पक्षियों की जाँच पड़ताल कर रहे थे तो देखा की हुदहुद अनुपस्थित है तो उन्होंने पूछा–
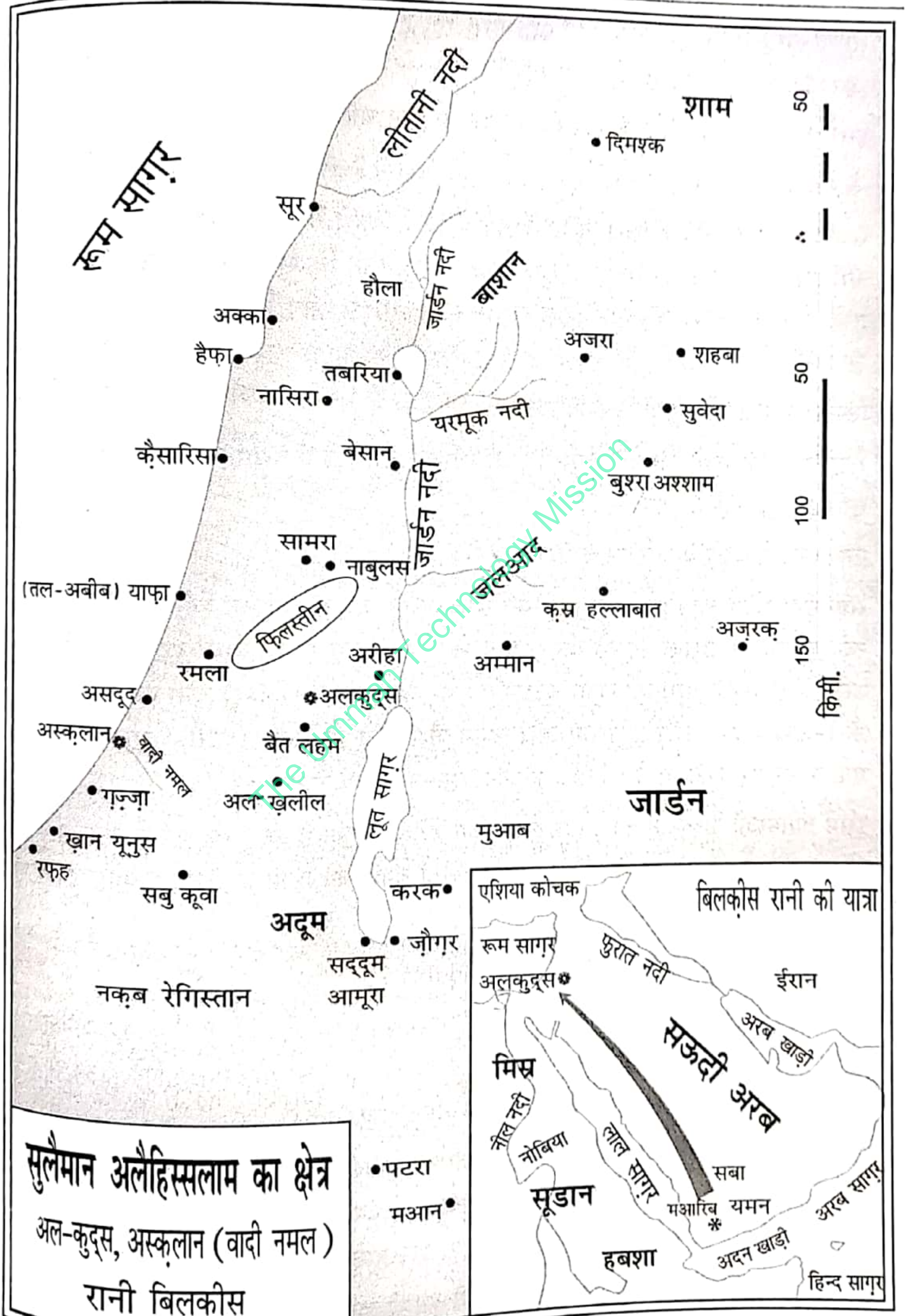
«क्या बात है कि मैं हुदहुद को नहीं देख रहा हूँ, क्या वह अनुपस्थित हो गया है?» (क़ुरआन, सूरा–27, अन-नम्ल, आयत–20)

इससे मालूम होता है कि वे पक्षियों की प्रत्येक दिन जाँच पड़ताल किया करते थे।

3. वे पशुओं की भी बोली समझते थे, जैसा कि क़ुरआन में है–

«यहाँ तक कि जब वे सब चींटियों की घाटी में पहुँचे तो एक चींटी बोल उठी, ''ऐ चींटियो, अपने घरों (बिलों) में घुस जाओ ऐसा न हो कि सुलैमान और उसकी सेनाएँ तुम्हें कुचल डालें और उन्हें इसका एहसास भी न हो।''» (सूरा–27, अन-नम्ल, आयत–18)

4. उनके अधिकार में मनुष्यों के अतिरिक्त जिन्न भी थे–

«सुलैमान के लिए जिन्नों, मनुष्यों तथा पक्षियों की सेनाएँ तैयार की गईं।» (क़ुरआन, सूरा–27, अन-नम्ल, आयत–17)

उन जिन्नों से वे विभिन्न प्रकार के काम लेते थे।

«हमने उसके लिए पिघले हुए ताँबे का स्रोत बहा दिया और कितने जिन्न थे, जो उसके रब के हुक्म से उसके सामने काम करते थे। और उनमें से जो हमारे हुक्म से फिरेगा, उसे हम दहकती आग का मज़ा चखाएँगे। वह जो चाहता (जिन्न) बना देते थे। जैसे: ऊँचे-ऊँचे भवन, और प्रतिमाएँ और लगन जैसे हौज़ हों, और (भारी-भारी) देगें, जो एक स्थान पर जमी रहती थीं।» (क़ुरआन, सूरा–34, सबा, आयतें–12-13)

इसमें प्रतिमाओं के बनाने का जो उल्लेख हुआ है, हो सकता है कि उनके धर्म में प्रतिमाएं बनाना जायज़ रहा हो। परन्तु इस्लाम ने प्रतिमाएं और मुर्तियाँ बनाने को हराम कर दिया, क्योंकि इनके द्वारा शिर्क फैलने की आशंका है।

इन जिन्नों के द्वारा उन्होंने बड़े-बड़े राजभवन बनवाए।

हो सकता है मस्जिदे-अक़्सा भी जिन्नों ही के द्वारा बनाई गई हो। जिन्नों में से एक शक्तिशाली जिन्न ने यह भी कहा कि अगर आप कहें तो मैं सबा की रानी का सिंहासन आपके उठने से पहले उपस्थित कर दूँगा। (देखें : क़ुरआन, सूरा–27, अन-नम्ल आयत–39)

ऐसा लगता है कि कोई एक दूसरा जिन्न, जो बहुत शक्तिशाली तो नहीं था, परन्तु उसको अल्लाह की पुरानी पुस्तकों का ज्ञान था, उसने तो यहाँ तक कह दिया कि मैं उसका सिंहासन आपके पलक झपकने से पहले ला दूँगा। (देखें : क़ुरआन, सूरा–27, अन-नम्ल, आयत–40)

जब सुलैमान (عليه السلام) ने देखा कि सिंहासन उनके सामने उपस्थित है तो तुरन्त बोल उठे–

«यह मेरे रब का अनुग्रह है। ताकि वह मेरी परीक्षा करे कि मैं कृतज्ञता दिखलाता हूँ या कुफ़्र करता हूँ।» (क़ुरआन, सूरा–38, सॉद, आयत–39)

5. शैतान को भी उनके अधिकार में दे दिया गया था–

«शैतानों को (तुम्हारे) अधीन किया। तथा हर प्रकार का निर्माण करनेवाले एवं ग़ोता लगानेवाले को तथा अन्य दूसरे जिन्नों को भी जो ज़ंजीरों में जकड़े हुए थे।» (क़ुरआन, सूरा–38, सॉद, आयतें-37,38)

अर्थात् कुछ जिन्न तो वे थे जो बड़े-बड़े राजमहल बनाते थे। और कुछ वे थे जो सागर से बहुमूल्य मोती निकालते थे और जो उनका आज्ञा-पालन नहीं करते थे, उनको दो-दो की टोलियों में ज़ंजीर से बाँध दिया जाता था। इस प्रकार अल्लाह ने सुलैमान (ﷺ) को एक ऐसा राज्य दे दिया था, जो न उनसे पहले किसी को दिया गया और न उनके बाद किसी को दिया जाएगा, क्योंकि उन्होंने अल्लाह से दुआ माँगी थी कि मुझे ऐसा राज्य दे दे जो मेरे बाद किसी और के लिए शोभनीय न हो। (देखिए: क़ुरआन, सूरा–38, सॉद्, आयत–35)

.शैतान जिन्न ही के वंश से होते हैं। परन्तु जिन्नों में मुसलमान तथा विधर्मी दोनों होते हैं। परन्तु शैतान केवल इस्लाम विरोधियों में होता है, जो अल्लाह की आज्ञा का उल्लंघन करता रहता है। एक सहीह हदीस में आया है कि एक बार नबी (ﷺ) नमाज़ पढ़ रहे थे। शैतान आपकी नमाज़ ख़राब करने की चेष्टा करता रहा, यहाँ तक कि आप(ﷺ) उसपर प्रभावी हो गए। चाहा कि उसको मस्जिद के किसी खंभे से बाँध दें, परन्तु आप (ﷺ) को सुलैमान (ﷺ) की यह दुआ याद आ गई

«उसने कहा : मेरे रब! मुझे क्षमा कर दे, और मुझे वह राज्य प्रदान कर जो मेरे बाद किसी और के लिए शोभनीय न हो। निस्सन्देह तू ही बड़ा दाता है।» (क़ुरआन: सूरा–38, सॉद, आयत–35)

तो आप ने उसको छोड़ दिया। (देखिए: बुख़ारी, तथा मुस्लिम, 1:102)

चालीस वर्ष शासन करने के बाद लगभग 975 ईसा पूर्व सुलैमान (ﷺ) का देहान्त हो गया। देहान्त से पूर्व उन्होंने मस्जिद-अक़्सा का काम पूरा कर लिया, जिसे उनके परदादा याक़ूब (ﷺ) ने अल्लाह की इबादत के लिए बनवाया था। परन्तु समय के साथ साथ वह खंडहर बन गया था। चूँकि सुलैमान (ﷺ) से पहले बनी-इसराईल विभिन्न प्रकार के युद्धों में लगे हुए थे। दाऊद (ﷺ) ने उस स्थान को दोबारा ख़रीदा, और कुछ भाग बनवाया। लेकिन पूरा काम सुलैमान (ﷺ) के शासन काल में सम्पन्न हुआ। इसलिए यह कहना कि मस्जिदे- अक़्सा सुलैमान (ﷺ) ने बनवाई सही नहीं है, बल्कि सही यह है कि उन्होंने दोबारा निर्माण करवाया, क्योंकि एक सहीह हदीस में आया है कि मस्जिदे- हराम और मस्जिदे-अक़्सा में चालीस वर्ष का अन्तर है। (देखिए: बुख़ारी: 3115, तथा

मुस्लिम, 808) और यह सब जानते हैं कि मस्जिदे-हराम इब्राहीम (ﷺ) ने बनवाई, और इबराहीम और सुलैमान (ﷺ) के समय में लगभग एक हज़ार वर्ष का अन्तर है। इसलिए सही यही है कि याक़ूब (ﷺ) ने अल्लाह की इबादत के लिए मस्जिदे अक़्सा बनवाई। फिर सुलैमान (ﷺ) ने दोबारा उसका निर्माण करवाया।

सुलैमान (ﷺ) एक महान नबी थे, जो यहूदियों के सुधार के लिए भेजे गए थे। नबी कोई बड़ा गुनाह नहीं करता, छोटी-छोटी ग़लती या चूक होना अलग बात है। परन्तु बाइबल के अध्ययन से पता चलता है कि वे केवल एक राजा थे, जिनका शासन फ़ुरात से नील तक फैला हुआ था। इसी के साथ उनके विषय में बहुत ही अतिशयोक्ति से काम लिया गया है, वहाँ उनके विषय में ऐसी बातें भी बताई हैं जो एक नबी की महानता के विरुद्ध हैं, जिनका वर्णन करना व्यर्थ है – (देखिए : बाइबल, प्रथम शासक, 11:1-8)

यह तो क़ुरआन है जिसने सुलैमान (ﷺ) को एक महान नबी बताया और उनको अल्लाह ने जिन विशेष गुणों से विभूषित किया था, उनका वर्णन किया। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि नबी से कोई छोटी ग़लती भी नहीं होती। अन्तर यह है कि नबी छोटी ग़लती पर भी अल्लाह से तौबा करता है और पश्चात्ताप् करता है, जैसा कि क़ुरआन में आया है–

«याद करो जब सन्ध्या समय उसके सामने सधे हुए द्रुतगामी घोड़े उपस्थित किए गए। तो उसने कहा, "मैंने इनके प्रति प्रेम अपने रब की याद के कारण अपनाया है।" यहाँ तक कि वे घोड़े ओट में छिप गए (अर्थात् घोड़े निगाहों से ओझल हो गए।) उसने कहा, "उन्हें मेरे पास वापस लाओ।" फिर वह उनकी पिंडलियों और गरदनों पर हाथ फेरने लगा।» (सूरा–38, सॉद, आयतें–31-33)

अर्थात् इन घोड़ों के कारण वे अल्लाह की इबादत न कर सके यहाँ तक कि सूर्य डूब गया। इसलिए पश्चाताप् करने के लिए उन्होंने घोड़ों की हत्या कर दी। क्योंकि इनके प्रेम के कारण ही वे अल्लाह की इबादत न कर सके थे। इसलिए हर उस वस्तु को अपने से दूर कर देना चाहिए जो अल्लाह के ज्ञान-ध्यान में बाधा डाले। यही अर्थ सही लगता है। कुछ विद्वानों ने दूसरा अर्थ भी निकाला है, जो सही नहीं है। एक दूसरी कोताही जो सुलैमान (ﷺ) से हो गई थी, जिसका वर्णन क़ुरआन में आया है–

«हमने सुलैमान को परीक्षा में डाला। वह यह कि उसकी कुर्सी पर एक शरीर डाल दिया फिर वह हमारी ओर ध्यान करनेवाला बन गया।» (सूरा-38, सॉद, आयत–34)

इस परीक्षा की सही व्याख्या हदीस में इस प्रकार आई है कि एक रात सुलैमान ने सोचा कि आज मैं अपनी सारी पत्नियों से संभोग करूँगा, जिनकी संख्या लगभग सत्तर से नब्बे थी, ताकि सब के यहाँ एक-एक पुत्र पैदा हो और सब अल्लाह के मार्ग में जिहाद करें। परन्तु उन्होंने यह नहीं कहा कि अगर अल्लाह की इच्छा हुई तो ऐसा होगा। इस लिए केवल एक पत्नी गर्भवती हुई और उससे एक बालक

पैदा हुआ। वह आधे शरीर का था। जब उस बालक को उनकी राजगद्दी पर डाला गया तो तुरन्त आपको अपनी भूल का एहसास हो गया और वे अल्लाह से तौबा और पश्चात्ताप करने लगे। उसी हदीस में बताया गया है कि अगर वे यह कह देते कि इंशाअल्लाह अर्थात 'अगर अल्लाह ने चाहा' तो उनकी सारी पत्नियाँ गर्भ से हो जातीं। और सब अल्लाह के मार्ग में जिहाद करते। (देखिए: बुख़ारी, 2819)

सलाम

किसी से मिलते समय एक-दूसरे का अभिनन्दन करते हुए जो शब्द कहे जाते हैं उन्हें 'सलाम' कहा जाता है। इस्लाम में सलाम करने का तरीक़ा भी बताया गया है और उसका महत्व भी। सलाम में एक-दूसरे के लिए दुआ और शुभ कामना की जाती है।

स्वर्गवासी जब आपस में मिलेंगे तो एक-दूसरे को सलाम करेंगे। (सूरा-10, यूनुस, आयत-10)

स्वर्ग के द्वारपाल जन्नत में आने वाले को सलाम करेंगे। (सूरा-39, अज़-ज़ुमर, आयत-73)

प्राण निकालने वाले फ़रिश्ते पाक-साफ़ लोगों को पहले सलाम कहते हैं। और फिर स्वर्ग में प्रवेश होने की शुभ सूचना देते हैं। (सूरा-16, नह्ल, आयत-32)

इस्लाम में सलाम की बड़ी महत्वता है। बल्कि एक मुसलमान पर अनिवार्य है कि जब वह किसी मुसलमान से मिले तो उसे सलाम करे। (सहीह बुख़ारी 124 तथा सहीह मुस्लिम 2162)

एक व्यक्ति ने नबी (ﷺ) से पूछा कि इस्लामी दृष्टि से कौन-सा अमल सबसे अच्छा है?

आप (ﷺ) ने उत्तर दिया –

"भोजन कराना और सलाम करना उसको भी जिसको तुम जानते हो, और उसको भी जिसको नहीं जानते।" (सहीह बुख़ारी 12 तथा सहीह मुस्लिम 39)

एक दूसरी हदीस में आपने फ़रमाया–

"ऐ लोगो! आपस में सलाम करो। एक-दूसरे को भोजन कराओ। उस समय नमाज़ पढ़ो जब लोग सो रहे हों (अर्थात् तहज्जुद की नमाज़), स्वर्ग में सलामती के साथ प्रवेश कर जाओगे।" (तिरमिज़ी : 2485)

सबसे अच्छा वह है जो सलाम में पहल करे। (दे. अबू-दाऊद 5197 तथा तिरमिज़ी 2694)

सवार पैदल चलनेवाले को सलाम करे, और पैदल चलनेवाला बैठे हुए व्यक्ति को सलाम करे, और दो चलने वालों में अच्छा वह है जो पहले सलाम करे। (दे. सहीह इब्ने-हिब्बान 498)

एक व्यक्ति नबी (ﷺ) के पास आया और कहा –

"अस्सलामु अलैकुम!" आपने उसका उत्तर दिया और वह बैठ गया। आपने फ़रमाया, "दस" अर्थात दस नेकियाँ तुझे मिलीं। एक दूसरा व्यक्ति आया और उसने कहा: "अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाह!" आपने उसका उत्तर दिया और वह बैठ गया। आपने फ़रमाया, "बीस" अर्थात तुझे बीस नेकियाँ मिलीं। एक तीसरा व्यक्ति आया और उसने कहा, "अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि व बरकातुह!" आपने उसका उत्तर दिया और फ़रमाया, "तीस" अर्थात तुझे तीस नेकियाँ मिलीं।" (अबु दाऊद 5195 तथा तिरमिज़ी 2689)

सबा

सबा एक अरब जाति थी जिसका निवास स्थान यमन था।

इनके विषय में आठवीं शताब्दी पूर्व के आशूरियों के भग्नावशेषों में वर्णन पाया जाता है। बाइबल में कभी इनको कोश की सन्तान बताया गया है, जो हाम के पुत्र तथा नूह के पोते थे, और कभी यकशान की सन्तान बताया गया है जो इबराहीम (ﷺ) की स्त्री कतूरा का पुत्र था। लेकिन ये लोग जिनका निवास-स्थान तो अरब के उत्तर शाम में था यमन कैसे पहुँच गए, जो अरब का दक्षिणी भाग है। इसके उत्तर में यह कह सकते हैं कि ये लोग ख़ानाबदोश थे। इनका कोई ठिकाना नहीं था, घूमते-फिरते दक्षिणी अरब पहुँच गए! वहाँ के दुर्बल राजाओं से युद्ध किया, उनपर विजय प्राप्त की और अपना शासन क़ायम कर लिया। यही कारण है कि जब हब्शी राजाओं ने यमन पर आक्रमण किया तो ये लोग दोबारा उत्तर की ओर भाग निकले और शाम (सीरिया) में अपना शासन क़ायम किया। क़ुरआन में इस जाति का वर्णन दो स्थानों पर आया है।

जब सुलैमान (ﷺ) ने हुदहुद को नहीं देखा तो वे क्रोधित हो उठे और कहा, "मैं उसे कठोर दंड दूँगा, या उसकी हत्या कर दूँगा।"

«फिर कुछ अधिक देर नहीं ठहरा कि उसने आकर कहा ! मैंने वह जानकारी प्राप्त की है जो आप को मालूम नहीं है। मैं सबा से आप के पास एक विश्वसनीय सूचना लेकर आया हूँ।» (सूरा–27, अन-नम्ल, आयत–22)

दूसरे स्थान पर 'सबा' का वर्णन इस प्रकार आया है–

«सबा के लिए उनके निवास-स्थान ही में एक निशानी थी – उनके दाएँ-बाएँ दो बाग़ – खाओ अपने रब की रोज़ी और उसके कृतज्ञ बनो। तुम्हारे निवास के लिए अच्छा नगर है। और तुम्हारा प्रभु दयाशील है।» (सूरा–34, सबा, आयत–15)

यहाँ दाएँ-बाएँ दो बाग़ का अर्थ यह भी हो सकता है कि आदमी जहाँ से भी अपने दाएँ-बाएँ देखे उसे दूर तक बाग़ ही दिखाई दें।

अब हम यहाँ कुछ सबा जाति के विषय में वर्णन करते हैं :

सबा नाम की यह जाति यमन में आबाद थी। इसका काल खंड लगभग नवीं शताब्दी ईसा पूर्व है। क़ुरआन के अनुसार इस जाति का उल्लेख सर्वप्रथम 926-965 ईसा पूर्व में मिलता है। उस समय उनकी शासिका एक रानी थी, जिसका नाम अरबी ग्रन्थों में तो बिलक़ीस आया है, परन्तु क़ुरआन, बाइबल तथा हदीसों से उसके नाम का पता नहीं चलता। हाँ तफ़सीर की किताबों में बिलक़ीस नाम आया है, लेकिन यह कोई प्रामाणिक बात नहीं है। यह जाति कोई एक हज़ार वर्ष तक उन्नति करती रही। पहली शताब्दी ईसा पूर्व हिम्यर नामक एक दूसरी अरबी जाति ने उसको हटाकर अपना शासन स्थापित कर लिया। बाइबल से पता चलता है कि सबा के लोग मसाले, हीरे-जवाहिर तथा सोने का व्यापार करते थे। (देखिए: यहेजकेल 27:22) इनका व्यापार अरब से लेकर भारत तथा हब्शा तक फैला हुआ था। यूँ तो बाइबल में इनका नाम बार-बार आया है। (देखिए: अय्यूब, 1:10, 6:19, उत्पत्ति 10:7; योएल, 3:8; यिर्मयाह, 6:20) परन्तु जो विवरण हमें क़ुरआन में मिलता है उसमें इनका उल्लेख नहीं है। यूनान और रोम के विद्वान तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व उनका बहुत विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं, क्योंकि सुलैमान (عليه السلام) के समय से ही सबा एक धनवान जाति के रूप में प्रसिद्ध हो चुकी थी। सूर्य तथा चाँद इनके देवता थे। सूरा-27, अन-नम्ल आयत–24 में आया है कि ये लोग सूर्य की पूजा करते थे। अरबी ग्रन्थों से भी यही मालूम होता है। सबा के लोग अपने आपको सूर्यवंशी कहते थे। यमन की खुदाई में जो मंदिर के भग्नावशेष मिले हैं उनमें अलमक़ा नाम के देवता के बहुत-से बुत मिले हैं, जिसकी पूजा-पाठ के लिए विभिन्न प्रकार के आसन मिलते हैं। लेकिन जब अल्लाह की यातना आई तो यह जाति भी संसार से मिट गई, क्योंकि अल्लाह किसी बहुदेववादी जाति को पसन्द नहीं करता। वह संसार में कितनी ही उन्नति कर ले, एक दिन अवश्य ऐसा आएगा जब वह नष्ट हो जाएगी। सबा जाति के विषय में प्रसिद्ध है कि इसके लोग सोने-चाँदी के बरतनों में खाना खाते थे। इनके घरों में सोने, चाँदी, तथा हाथी दाँत के काम होते थे, जिनके बारे में सुनकर यूनानियों और रोमनों के मुँह में पानी आ जाता था। यही कारण है कि हब्श का राजा उनको अपने अधीन करने के लिए बार-बार आक्रमण करता रहा। कहते हैं कि उन्होंने सनआ के ऊँचे पर्वतों पर वह अदभुत महल बनाया जिसका नाम गुमदान है, जो शताब्दियों से संसार के आश्चर्यों में से एक है। लगभग 650 ईसा पूर्व उन्होंने मारिब में अरिम अर्थात एक बाँध बनाया, जो विभिन्न पर्वतों के बीच है। और आने वाले राजा उसको बढ़ाते रहे। और इस बांध के बनने के बाद उन्होंने अपनी राजधानी मारिब को बना लिया जो सनआ से 96 किलोमीटर की दूरी पर है। फिर एक समय ऐसा भी आया कि उन्होंने मारिब को छोड़ कर अपनी राजधानी ज़ैदान को बना लिया, जो ज़िफ़ार के नाम से प्रसिद्ध हुआ और इस समय ओमान का एक प्रदेश है।

फिर इस जाति का 300 ईसवी से पतन प्रारम्भ हो गया। उसे व्यापार में बहुत घाटा हुआ। देश में गरोही उपद्रव होने लगा। देश की शान्ति भंग हो गई। यहाँ तक कि हब्शी राजाओं का उन पर अधिकार हो गया। बड़े यत्न के पश्चात् उनसे स्वतंत्रता मिली। लगभग 450 ईसवी में अल्लाह ने उनपर ऐसी बाढ़ भेजी कि अरिम बाँध टूट गया। और पूरा देश पानी में डूब गया। कृषि नष्ट हो गई।

जब यहूदी राजाओं का अत्याचार बहुत बढ़ गया तो हब्शी राजा ने, जो ईसाई था, दोबारा यमन पर अपना अधिकार जमा लिया। इसके हब्शी वायसराय ने पूरे अरब पर अधिकार करने के लिए सन् 570 ईसवी में मक्का पर चढ़ाई कर दी और हाथियों के एक बहुत बड़े लश्कर को लेकर काबा को ढाने के लिए निकल पड़ा, परन्तु अल्लाह ने उसके हाथियों पर पक्षियों के बहुत से झुंड भेज दिए, उनकी चोंचों में कंकरियाँ थीं। कंकरियों की मार के कारण हाथी भाग खड़े हुए। क़ुरआन ने सूरा फ़ील में इसी की ओर संकेत किया है। सन 575 ईसवी में यमन ईरानियों के अधिकार में आ गया। और जब ईरानी गवर्नर 628 ईसवी में मुसलमान हो गया तो पूरा यमन इस्लामी देश बन गया।

यमन के इस संक्षिप्त इतिहास के बाद अब हम फिर सबा के विषय में कुछ बताते हैं–

क़ुरआन के वर्णन से स्पष्ट होता है कि सबा नामक यह जाति अपने समय की बड़ी विशाल जाति थी, जिसकी राजधानी सनआ थी। ये लोग व्यापार तथा खेती-बाड़ी करते थे। इन्होंने पर्वतों के बीच बड़ा-सा बांध भी बना रखा था, ताकि वर्षा के पानी को इकट्ठा किया जा सके। उस बाँध के लिए क़ुरआन में अरिम शब्द आया है। (सूरा–34, सबा, आयत–16) इसके द्वारा वे खेती बाड़ी करते थे, जिसके कारण चारों ओर हरा-भरा दिखाई देता था। उनको चाहिए था कि इस पर अल्लाह के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते और उसकी उपासना करते परन्तु उन्होंने अल्लाह ही को छोड़ दिया, बल्कि उसके बाग़ी बन गए। वे समझने लगे कि यह जो कुछ उनको मिला है केवल उनके प्रयासों और परिश्रमों का परिणाम है। फलतः अल्लाह ने उनके बाँध को तोड़ दिया–

«परन्तु वे मुँह मोड़ गए, तो हमने उन पर बाँध-तोड़ बाढ़ भेज दी और उन्हें उनके दोनों बाग़ों के स्थान पर दूसरे दो बाग़ दिए जिन में कड़ुवे-कसैले फल और झाऊ के पेड़ थे और कुछ थोड़ी-सी झड़-बेरियाँ। यह बदला हम ने उन्हें इसलिए दिया कि उन्होंने कृतघ्नता दिखाई। ऐसा बदला तो हम कृतघ्न लोगों को ही देते हैं।» (सूरा–34, सबा, आयतें-16,17)

अर्थात् जब उन्होंने कुफ़्र किया और हमारे अनुग्रहों को ठुकरा दिया तो हमने बाँध तोड़कर उनकी खेती-बाड़ी को नष्ट कर दिया। उनकी कृषि की सारी व्यवस्था नष्ट हो गई अब उन खेतों में कुछ जंगली फल-फूल निकलने लगे, जिनपर उनको गुज़र-बसर करनी पड़ी।

सबा की रानी

सबा नामक यह जाति यमन में रहती थी। (देखिए : सबा) सुलैमान (عليه السلام) के समय सबा की राजगद्दी पर एक स्त्री विराजमान थी। इसके सही नाम का तो हमको पता नहीं, परन्तु अरबी ग्रन्थों में इसका नाम बिलक़ीस बताया गया है। क़ुरआन और बाइबल में इसके विषय में विस्तृत वर्णन आया है, जिससे पता चलता है कि वह सुलैमान (عليه السلام) से मिलने के लिए बैतुल-मक़दिस गई थी। क़ुरआन में है –

«उसने (सुलैमान ने) पक्षियों की जाँच-पड़ताल की और कहा, "क्या बात है कि मैं अमुक हुदहुद को नहीं देख रहा हूँ? क्या वह ग़ायब हो गया है? (सूरा-27, नम्ल, आयत-20)

मैं उसे कठोर दण्ड दूँगा, या उसे ज़िब्ह कर दूँगा, या उसे मेरे पास खुली दलील (उज़्र) लानी होगी।"

तो कुछ ज़्यादा देर नहीं हुई कि उसने (आकर) कहा, "मैंने वह बात मालूम की है जो आपको मालूम नहीं, मैं सबा से आप के पास एक सच्ची ख़बर लेकर आया हूँ। मैंने एक स्त्री को देखा जो उनपर शासन करती है, और उसे हर चीज़ प्राप्त है, और उस का एक बड़ा सिंहासन है।

मैंने उसे और उसकी जातिवालों को देखा कि वे अल्लाह को छोड़कर सूर्य को सजदा करते हैं; और शैतान ने उनके कर्मों को उनके लिए शोभायमान बना दिया है, और उन्हें मार्ग से रोक दिया है, अतः वे सीधा मार्ग नहीं पा रहे हैं — कि अल्लाह को सजदा न करें, जो आकाशों और धरती में छिपी चीज़ निकालता है और जानता है जो कुछ भी तुम छिपाते और जो कुछ ज़ाहिर करते हो, अल्लाह कि जिसके सिवा कोई इलाह नहीं, वह महान् सिंहासन का रब (स्वामी) है।

उसने कहा, "अभी हम देख लेते हैं कि तूने सच कहा है या तू झूठों में से है।

मेरा यह पत्र लेकर जा और उसे उनकी ओर डाल दे; फिर उनके पास से पलट आ कि वे क्या उत्तर देते हैं।" वह (शासिका) बोली, "ऐ सरदारो! मेरी ओर एक प्रतिष्ठित पत्र डाला गया है। वह सुलैमान की ओर से है और वह है, 'अल्लाह के नाम से, जो अत्यन्त कृपाशील और दयावान् है। यह कि मेरे मुक़ाबले में सरकशी न करो, और मुस्लिम (आज्ञाकारी) होकर मेरे पास हाज़िर हो जाओ।'

उस (शासिका) ने कहा, "ऐ सरदारो! मेरे मामले में मुझे राय दो। मैं किसी मामले का फ़ैसला नहीं करती जब तक कि तुम मेरे पास हाज़िर न हो।"

उन्होंने कहा, "हम शक्तिशाली और सख़्त लड़नेवाले हैं, आगे फ़ैसले का अधिकार आपको है; तो आप देख लें क्या हुक्म देती हैं।"

(शासिका ने) कहा, "सम्राट जब किसी बस्ती में प्रवेश करते हैं, तो उसे ख़राब कर देते हैं और वहाँ के प्रतिष्ठित लोगों को अपमानित करते हैं। वे ऐसा ही किया करते हैं। मैं उन लोगों के पास एक उपहार भेजती हूँ, फिर देखती हूँ कि दूत क्या (उत्तर) लेकर पलटते हैं।"

जब वह (दूत) सुलैमान के पास पहुँचा, तो उस ने कहा, "क्या तुम माल से मुझे मदद पहुँचाओगे ? जो कुछ अल्लाह ने मुझे दिया है वह उससे उत्तम है जो तुम्हें दिया है। तुम ही अपने उपहार से खुश रहो। उन के पास वापस जाओ। हम उनपर ऐसी सेनाएं लेकर आएंगे जिन का मुक़ाबला उनसे न हो सकेगा, और हम उन्हें अपमानित करके वहाँ से निकाल देंगे, और वे सम्मानहीन हो कर रहेंगे।"

(सुलैमान ने) कहा, "ऐ सरदारो ! तुम में कौन उस सिंहासन को लेकर मेरे पास आता है इससे पहले कि वे लोग आज्ञाकारी होकर मेरे पास आएँ ?"

जिन्नों में से एक बलिष्ट ने कहा, "मैं उसे ले आऊँगा इससे पहले कि आप अपने स्थान से उठें। मुझ में उस (के उठा लाने) की शक्ति है और मैं विश्वसनीय हूँ।"

जिसके पास 'किताब' का ज्ञान था उसने कहा, "मैं आपकी पलक झपकने से पहले उसे ला देता हूँ।" फिर जब उसने उसे अपने पास रखा हुआ देखा, उसने कहा, "यह मेरे रब का अनुग्रह है, ताकि वह मेरी परीक्षा करे कि मैं कृतज्ञता दिखलाता हूँ या कुफ़्र करता हूँ। जो कोई कृतज्ञता दिखलाता है वह अपने ही लिए कृतज्ञता दिखलाता है, और जिस किसी ने कुफ़्र किया तो निस्सन्देह मेरा रब निस्पृह और बड़ा उदार है।"

(सुलैमान ने) कहा, "अपरिचित रूप से उसके सामने उसका सिंहासन लाओ देखें वह राह पाती है या उन लोगों में से होती है जो राह नहीं पाते।" जब वह आई तो कहा गया, "क्या तेरा सिंहासन ऐसा ही है?" उसने कहा यह तो जैसे वही है। और हमें तो इससे पहले ही ज्ञान प्राप्त हो चुका था और हम मुस्लिम हो गए थे।"

अल्लाह के सिवा वह जो कुछ पूजती थी उसी ने उसे (ईमान लाने से) रोक रखा था, निश्चय ही वह कुफ़्र करनेवालों में से थी। उससे कहा गया, "महल में दाख़िल हो।" जब उसने उसे देखा तो उसे जल-सरोवर समझा और (उसमें उतरने के लिए) अपनी पिंडलियाँ खोल दीं।

(सुलैमान ने) कहा, "यह तो महल है, जिसमें शीशे जड़े हुए हैं।"

बोली, "मेरे रब ! मैंने अपने-आप पर ज़ुल्म किया था और अब मैंने सुलैमान के साथ अपने-आप को अल्लाह को समर्पित किया जो सारे संसार का रब है।"» (सूरा-27, अन-नम्ल, आयतें-20-44)

क़ुरआन के बयान का निचोड़ यह है कि सबा की जाति सूर्य की पूजा करती थी। सुलैमान (عليه السلام) ने रानी के नाम जो पत्र दिया उसको अल्लाह के नाम से प्रारम्भ किया था ताकि सूर्य-पूजा का खंडन

किया जा सके। अल्लाह ने सुलैमान (عليه السلام) को यह चमत्कार दिया था कि उनके पास ऐसे जिन्न रहते थे जो क्षण भर में रानी के सिंहासन को यमन से उठा कर बैतुल-मक़दिस पहुँचा सकते थे। इससे अल्लाह की बड़ाई सिद्ध होती है। राज सिंहासन के देखते ही रानी पुकार उठी कि हमने तेरे विषय में जो कुछ सुना था उसको सुनते ही मुस्लिम (अवज्ञाकारी) हो गए थे। परन्तु इन देवी देवताओं ने हमें अपने चक्कर में डाल रखा था, लेकिन अब मैं इनको छोड़कर केवल एक अल्लाह पर ईमान लाती हूँ, और आज से मैं मुस्लिम (अवज्ञाकारी) होती हूँ।

क़ुरआन में सबा की रानी का वर्णन केवल ऐतिहासिक घटना के तौर पर नहीं किया गया है बल्कि उसका मक़सद ऐकेश्वरवाद का प्रचार करना तथा बहुदेवाद का खंडन करना है।

लेकिन बाइबल में जिस प्रकार उसका वर्णन आया है उससे किसी ख़ास विषय पर प्रकाश नहीं पड़ता। देखिए बाइबल में क्या आया है –

❁ शीबा देश की रानी का आगमन

1. जब शीबा की रानी ने यहोवा के नाम के विषय पर सुलैमान की कीर्ति सुनी, तब वह पहेलियों से उसकी परीक्षा करने चल पड़ी। 2. वह तो बहुत भारी दल, और मसालों, और बहुत सोने और मणि से लदे ऊंट साथ लिए हुए यरुशलेम को आई, और सुलैमान के पास पहुंचकर अपने मन की सब बातों के विषय में उससे बातें करने लगी। 3. सुलैमान ने उसकी सब पहेलियों का उत्तर दिया, कोई बात राजा की बुद्धि से ऐसी बाहर न रही कि वह उसको न बता सका। 4. जब शीबा की रानी ने सुलैमान की बुद्धिमानी और उसका बनाया हुआ भवन और उसकी मेज पर का भोजन देखा, 5. और उसके कर्मचारी किस रीति बैठते, और उसके टहलुए किस रीति खड़े रहते, और कैसे-कैसे कपड़े पहने रहते हैं, और उसके पिलानेवाले कैसे हैं, और वह कैसी चढ़ाई है जिससे वह यहोवा के भवन को जाया करता है, यह सब उसने देखा, तब वह चकित हो गई। 6. तब उसने राजा से कहा, "तेरे कामों और बुद्धिमानी की जो कीर्ति मैंने अपने देश में सुनी थी वह सच ही है। 7. परन्तु जब तक मैंने आप ही आकर अपनी आंखों से यह न देखा, तब तक मैंने उन बातों की पुष्टि न की, परन्तु इसका आधा भी मुझे न बताया गया था; तेरी बुद्धिमानी और वैभव उस कीर्ति से भी बढ़कर है जो मैंने सुनी थी। 8. धन्य हैं तेरे जन और धन्य हैं तेरे ये सेवक जो नित्य तेरे सम्मुख उपस्थित रहकर तेरी बुद्धि की बातें सुनते हैं। 9. धन्य है तेरा परमेश्वर यहोवा जो तुझ से ऐसा प्रसन्न हुआ कि तुझे इसराईल राष्ट्र के सिंहासन पर विराजमान किया। यहोवा इसराईल से सदा प्रेम रखता है, इस कारण उसने तुझे न्याय और धर्म करने को राजा बना दिया है।" 10. उसने राजा को लगभग चार हज़ार किलो सोना, बहुत-सा सुगन्धद्रव्य और मणि दिया; जितना सुगन्धद्रव्य शीबा की रानी ने राजा सुलैमान को दिया, उतना फिर कभी नहीं आया। 11. फिर हीराम के जहाज़ भी जो ओपीर से सोना

लाते थे, वे बहुत-सी चन्दन की लकड़ी और मणि भी लाए। 12. और राजा ने चन्दन की लकड़ी से यहोवा के भवन और राजभवन के लिए जंगले और गवैयों के लिए वीणा और सारंगियां बनवाईं। ऐसी चन्दन की लकड़ी आज तक फिर नहीं आई और न दिखाई पड़ी है। 13. और शीबा की रानी ने जो कुछ चाहा वही राजा सुलैमान ने उसकी इच्छा के अनुसार उसको दिया, फिर राजा सुलैमान ने उसको अपनी उदारता से बहुत कुछ दिया। तब वह अपने जनों समेत अपने देश को लौट गई। (देखिए : राजाओं 10:1-13)

कुरआन, सहीह हदीसों तथा बाइबल से यह तो पता नहीं चलता कि सुलैमान (ﷺ) ने किस से विवाह किया था परन्तु हब्शा के इतिहास में मिलता है कि हब्शी राजा सुलैमान (ﷺ) की संतान से थे, जो मलिका सबा से पैदा हुए थे। इसलिए यहूदियों ने हब्शी यहूदियों को बनी-इसराईल की संतान नहीं माना क्यों कि सबा की रानी बनी-इसराईल से नहीं थी।

सहीफ़ा

सहीफ़ा का अर्थ है धर्म-ग्रंथ, जिसका बहुवचन है 'सुहुफ़'। क़ुरआन में यही बहुवचन विभिन्न स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है। जो इस प्रकार है –

1. इबराहीम (ﷺ) के सहीफ़े :

क़ुरआन ने दो स्थानों पर इबराहीम (ﷺ) के सहीफ़े का वर्णन किया है –

एक सूरा नज्म में,

«क्या उसको इस बात की सूचना नहीं हुई जो कुछ कि मूसा के सहीफ़ों में है। और इबराहीम के (सहीफ़ों में) जिसने (अल्लाह की बन्दगी का) पूरा-पूरा हक़ अदा कर दिया। इस बात की सूचना कि कोई बोझ उठानेवाला किसी दूसरे का बोझ नहीं उठाएगा, और यह कि मनुष्य के लिए बस वही है जो कि उसने चेष्टा की, और यह कि उसकी चेष्टा जल्द ही देखी जाएगी, फिर उसे भंरपूर बदला दिया जाएग।» (सूरा-53, नज्म, आयतें 36-41)

सूरा नज्म की आयत-36 से लेकर सूरा के अन्त तक पढ़ने से ऐसा लगता है कि जैसे सब इबराहीम (ﷺ) के सहीफ़े में था, उनके असल सहीफ़े तो अब पृथ्वी पर नहीं हैं परन्तु उनकी प्रमुख शिक्षाओं का जो क़ुरआन ने वर्णन कर दिया है, और वास्तव में सारे नाबियों की भी यही शिक्षा थी। परन्तु कुछ लोगों ने अपनी ओर से बिगाड़ पैदा कर लिया, और ईसा (ﷺ) को अपना 'उद्धारकर्ता (मुक्तिदाता) बना लिया– (देखें बाइबल, लूक़ा 2:11)

दूसरे सूरा आला में, जिसमें कहा गया है–

«निस्सन्देह यह सब पहले के सहीफ़ों में भी है, इबराहीम और मूसा के सहीफ़ों में।» (सूरा-87, अल-आला, आयतें- 18,19)

अर्थात सूरा आला की पूरी उन्नीस आयतें इबराहीम (अलैहि॰) के सहीफ़े में भी थीं और मूसा (अलैहि॰) के सहीफ़ों में भी। यही कथन इब्ने-अब्बास का भी है। (देखें तफ़सीर इब्ने-अबी हातिम 1:3419)

2. **मूसा (अलैहि॰) के सहीफ़े :**

मूसा (अलैहि॰) के सहीफ़े का वर्णन इबराहीम (अलैहि॰) के सहीफ़ों में आ गया है।

उत्पत्ति, निर्गमन, लैव्यवस्था, गिनती तथा व्यवस्थाविवरण बाइबल की प्रारम्भिक पाँच पुस्तकें हैं। इनको तौरात कहा जाता है। ये मूसा (अलैहि॰) पर अवतरित हुई थीं। परन्तु वास्तविकता यह है कि इनमें बहुत कुछ फेर बदल कर दिया गया है। किन्तु बहुत सी बातें अभी भी इनमें ऐसी हैं जिनकी पुष्टि क़ुरआन से होती है। उन्हीं बातों को क़ुरआन हुदा व नूर (मार्गदर्शन तथा ज्योतिप्रकाश) कहता है। (देखें : सूरा-5, अल-माइदा, आयतें 44-46)

इसी प्रकार मूसा (अलैहि॰) के सहीफ़े के कुछ भाग का स्वयं क़ुरआन में वर्णन किया गया है : (देखें सूरा-5, अल-माइदा, आयतें 32, 45 तथा सूरा-7, अल-आराफ़, आयत-145)

बल्कि एक स्थान पर तो क़ुरआन आश्चर्य प्रकट करते हुए कहता है –

«ये तुमसे फैसला कराएंगे भी कैसे, जबकि इनके पास "तौरात" है जिसमें अल्लाह का आदेश मौजूद है! फिर इसके बाद भी वे मुँह मोड़ते हैं। वे तो ईमान ही नहीं रखते।» (सूरा-5, अल-माइदा, आयत-43)

3. क़ुरआन के लिए भी सुहुफ़ शब्द का प्रयोग हुआ है। (देखें सूरा-80, अ-ब-स, आयतें13-15 तथा सूरा-98, अल-बैयिनह, आयत 2)
4. कर्म-पत्र के लिए भी सुहुफ़ शब्द का प्रयोग हुआ है। (देखें सूरा 81, अत-तकवीर, आयत-10)
5. मुक्ति-पत्र के लिए भी सुहुफ़ शब्द का प्रयोग हुआ है। (देखें सूरा-74, अल-मुद्दस्सिर, आयत-52)

सैले-अरिम

सैल का अर्थ है बाढ़ और अरिम का अर्थ है बाँध अर्थात् 'सैले-अरिम' का अभिप्राय वह बाँध है जो बाढ़ के कारण टूट गया था। इसे संक्षेप में 'बाँध-तोड़ बाढ़' कहा जा सकता है।

सैले-अरिम का वर्णन क़ुरआन में केवल एक बार आया है–

«जब उन्होंने मुँह मोड़ लिया तो हमने उन्हें सैले-अरिम (बाँध-तोड़ बाढ़) के द्वारा नष्ट कर दिया।» (सूरा–34, सबा, आयत–16)

सबा यमन की एक जाति थी, जो बड़ी उन्नति कर गई थी। (देखिए : सबा) उस जाति के लोगों की उन्नति का कारण एक तो उनका व्यापार था। दूसरे उन्होंने पहाड़ों के बीच बाँध बनाकर पानी रोक रखा था, जिससे वे खेती किया करते थे। फलत: उनका देश कृषि में बहुत उन्नति कर गया था। जिधर आँख उठाकर देखें उधर हरियाली ही हरियाली दिखाई देती थी। ऐसी अवस्था में उनको चाहिए था कि अल्लाह के उपदेशों पर चलते और उसके आदेशों का पालन करते, परन्तु वे घमंड करने लगे। उन्होंने अल्लाह के आदेशों का उल्लंघन किया और उसके उपदेशों को ठुकरा दिया, तो अल्लाह ने उन्हें सैले-अरिम ही के द्वारा नष्ट कर दिया। वे नगर जो आपस में मिले-जुले थे, वीरान हो गए। सारी खेती-बाड़ी नष्ट हो गई। जो बच गए वे यमन से निकल भागे। ग़स्सान शाम की ओर भागे। औस, और ख़ज़रज मदीना में आबाद हो गए, जिसको उस समय यसरिब कहा जाता था। बनू-ख़ुज़ाआ ने मक्का और जद्दा का रुख़ किया। इस प्रकार सबा नाम की जाति यमन से समाप्त हो गई। केवल कुछ लोग ही बचे जो एकेश्वरवाद पर विश्वास करते थे। क़ुरआन ने इनका चित्र इस प्रकार खींचा है–

«जब वे मुँह मोड़ गए, तो हमने उनपर बाँध-तोड़ बाढ़ भेज दी, और उन्हें उनके दोनों बाग़ों के स्थान पर दूसरे दो बाग़ दिए, जिनमें कड़वे-कसैले फल और झाऊ थे और कुछ थोड़ी-सी झड़-बेरियाँ। यह बदला हमने उन्हें इसलिए दिया कि उन्होंने कुफ़्र किया। और हम यातना अकृतज्ञ को ही देते हैं। और हमने उनके बीच, और उन नगरों के बीच जिनमें हमने बरकत दी थी, खुली हुई बस्तियाँ बसा दी थीं। और सफ़र के लिए बीच-बीच में डेरे बना दिए थे ताकि निश्चिन्त होकर सफ़र करें। परन्तु उन्होंने कहा : ऐ हमारे रब! हमारे सफ़र को लम्बा कर दे। उन्होंने अपने ऊपर अत्याचार किया तो हमने उन्हें अतीत की कहानियाँ बना दिया, और उन्हें तितर-बितर कर दिया। निश्चय ही इसमें निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो सब्र करनेवाले तथा कृतज्ञ हैं। शैतान ने उनके विषय में अपना विचार सच कर दिखाया और विश्वास करनेवालों के एक गरोह के अतिरिक्त सब उसके पीछे चल पड़े।» (सूरा–34, सबा, आयतें-16-20)

सबा का यह बाँध, जिसका ज्ञान इतिहास से ही होता है, सन 542 ईसवी में टूट गया। इस बाँध की लम्बाई 1760 फ़िट और चौड़ाई साठ फ़िट थी। इस बाँध को बनाने में बहुत-से राजाओं ने योगदान दिया। आज भी उस वादी या खाई को, जिसमें यह बाँध था, अरिम कहते हैं। यह बाँध छठी शताब्दी से पहले भी एक बार टूट चुका था, परन्तु पूरी तरह छठी शताब्दी अर्थात् 542 में टूट गया। और सबा नाम की यह जाति सदैव के लिए बिखर गई। यही अल्लाह का नियम है। कुफ़्र करनेवालों को ढीला छोड़ता रहता है, परन्तु एक दिन ऐसा आता है कि पृथ्वी से उनको नष्ट कर देता है और फिर वे इतिहास

के पन्नों ही में पढ़े जाते हैं। इस बाँध के कुछ अवशेष अब भी पाए जाते हैं। सन 1843 ईसवी को आरनोल्ड नामक फ़्रांसीसी विद्वान वहाँ तक पहुँचने में सफल हो गया। उसने जो कुछ उसके विषय में बताया वह यह है कि यह बाँध दो पहाड़ों के बीच में बना हुआ है। इसको मिट्टी तथा पत्थरों को जोड़कर बनाया गया है। और इन दोनों पहाड़ों के निचले भाग में पानी निकलने के लिए मार्ग बनाया गया है। और वहाँ से पानी निकलकर खेतों की सिंचाई करता है। इन मार्गों को बन्द करने के लिए भारी-भारी और बड़े-बड़े द्वार बनाए गए हैं। आवश्यकता अनुसार पानी छोड़ा जाता है, फिर बन्द कर दिया जाता है।

कहते हैं कि इस बाँध को विभिन्न राजाओं के शासनकाल में ऊँचा और बड़ा बनाया जाता रहा, यहाँ तक कि सन् 300 ईसवी में पूरी तरह बनकर तैयार हुआ। और सन 542 ईसवी में एक बाढ़ के द्वारा नष्ट हो गया।

सूर

सूर का अर्थ है सींग या नरसिंघा। क़ुरआन में इसका वर्णन दस स्थानों पर आया है और हर स्थान पर एक ही अर्थ है वह यह कि प्रलय से पहले सूर फूँका जाएगा, जिसकी आवाज़ इतनी गंभीर और भयानक होगी कि सारे लोग बेहोश हो जाएँगे। और फिर दूसरी बार सूर फूँका जाएगा तो सारे लोग अपनी क़ब्रों से उठ खड़े होंगे। और अपना हिसाब-किताब देने के लिए हश्र के मैदान में इकट्ठा हो जाएँगे।

«जिस दिन सूर (नरसिंघा) फूँका जाएगा।» (सूरा–6, अल-अनआम, आयत–73)

«सूर फूँका जाएगा, तो हम सबको इकट्ठा कर लेंगे।» (सूरा–18, अल-कहफ़, आयत–99)

«जिस दिन सूर फूँका जाएगा, तो हम अपराधियों को इकट्ठा करेंगे, इस तरह कि उनकी आँखें पथराई होंगी।» (सूरा–20, ता-हा, आयत–102)

«फिर जब सूर फूँका जाएगा तो उनके बीच न कोई नाता रहेगा, और न ही वे एक दूसरे को पूछेंगे।» (सूरा–23, अल-मोमिनून, आयत–101)

«जिस दिन सूर फूँका जाएगा, तो जो आकाशों और धरती में हैं, घबरा उठेंगे, सिवाय उनके जिन्हें अल्लाह चाहे, और सब कान दबाए उसके समक्ष (झुके हुए) उपस्थित हो जाएँगे।» (सूरा–27, अन-नम्ल, आयत–87)

«जब सूर फूँका जाएगा तो ये लोग अपनी क़ब्रों से निकलकर अपने रब की ओर दौड़ पड़ेंगे।» (सूरा–36, या-सीन, आयत–51)

«जब सूर फूँका जाएगा तो जो कोई आकाशों और धरती में होगा, वह अचेत हो जाएगा सिवाय उसके जिसको अल्लाह चाहे। फिर दोबारा सूर फूँका जाएगा, तो लोग तुरन्त खड़े हो जाएँगे और एक दूसरे को देखने लगेंगे।» (सूरा–39, अज़-ज़ुमर, आयत–68)

«जिस दिन सूर फूँका जाएगा यही है वह दिन जिसकी धमकी दी गई थी।» (सूरा–50, क़ाफ़, आयत–20)

«फिर जिस दिन एक बार सूर फूँका जाएगा। और धरती और पहाड़ उठाकर एक ही बार में चूर्ण-चूर्ण कर दिए जाएँगे, तो उस दिन आनेवाली (क़ियामत) आ जाएगी।» (सूरा–69, अल-हाक़्क़ा, आयतें-13-15)

«जिस दिन सूर फूँका जाएगा तुम लोग दल के दल चले आ रहे होगे।» (सूरा–78, अन-नबा, आयत–18)

इन आयतों से स्पष्ट होता है कि सूर दो बार फूँका जाएगा। सूरा ज़ुमर की आयत से भी यही बात मालूम होती है। सहीह मुस्लिम की एक हदीस से भी इसी का पता चलता है। (देखिए : सहीह मुस्लिम : 2940)

कुछ विद्वानों का विचार है कि सूर तीन बार फूँका जाएगा। पहली बार फूँकने से आकाशों और पृथ्वी पर जो भी होंगे घबरा उठेंगे, जैसा कि सूरा नम्ल आयत–87 में आया है। दूसरी बार सूर फूँकने से आकाशों और पृथ्वी पर जो भी होंगे बेहोश हो जाएँगे। और तीसरी बार सूर फूँकने से लोग अपनी क़ब्रों से उठ खड़े होंगे, जैसा कि सूरा ज़ुमर की आयत 68 से पता चलता है। लेकिन हमारे विचार में सूर दो ही बार फूँका जाएगा। सूरा नम्ल में जो घबरा जाने का ज़िक्र आया है, और सूरा ज़ुमर में बेहोश हो जाने का ज़िक्र आया है दोनों का अर्थ एक ही है। क्योंकि कुछ लोगों को अल्लाह इस घबराहट से बचा लेगा जैसा कि सूरा नम्ल की उसी आयत में आया है तो इसका यही अर्थ है कि कुछ लोगों को बेहोश होने से बचा लेगा। इसकी पुष्टि उस हदीस से होती है जिसमें नबी (ﷺ) ने फ़रमाया–

"मुझे अल्लाह के नबियों पर फ़ज़ीलत (श्रेष्ठता) मत दो क्योंकि जब सूर फूँका जाएगा तो जो कोई आकाशों और धरती पर है बेहोश हो जाएगा, सिवाय उन लोगों के जिनको अल्लाह चाहे, फिर जब दोबारा सूर फूँका जाएगा तो मैं सबसे पहले उठनेवालों में हूँगा। लेकिन मैं क्या देखूँगा कि मूसा (عليه السلام) अर्श पकड़े खड़े हैं। अब मुझे नहीं मालूम कि क्या तूर पर्वत पर उनके बेहोश हो जाने के कारण वे दोबारा बेहोश नहीं हुए या मुझसे पहले उनको उठा दिया गया।" (बुख़ारी : 3414 तथा मुस्लिम : 2373)

वास्तव में इस हदीस के अनुसार सूरा नम्ल में जो घबराहट का वर्णन आया है, उससे बेहोश होने ही का अर्थ निकलता है, क्योंकि उसी आयत के अन्त में आया है, «परन्तु जिसे अल्लाह चाहे।» अर्थात् वह बेहोश नहीं होगा।

यहाँ यह बात भी स्पष्ट कर देनी ज़रूरी है कि कुछ हदीसों में सूर फूँकनेवाले फ़रिश्ते का नाम इसराफ़ील आया है। परन्तु ये हदीसें सहीह नहीं हैं। (इसके लिए देखिए मेरी पुस्तक : 'जामेअ कामिल')

सूरा

सूरा शहर की उस दीवार को कहते हैं जो उसको घेरे रहती है। इसी प्रकार किसी घर को जिस दीवार से घेरा जाता है उसको भी सूरा कहा जाता है। इसी प्रकार क़ुरआन में 114 सूरतें हैं। उन्हें सूरा इस लिए कहते हैं कि ये अपने अन्दर उन भावों को घेरे हुए हैं, जो उनमें बयान हुए हैं। हिन्दी साहित्य की भाषा में इन्हें अध्याय कह सकते हैं।

इन सूरतों को अलग करने के लिए हर सूरा के आरंभ में बिस्मिल्लाह लिखा जाता है, केवल सूरा तौबा के आरंभ में बिस्मिल्लाह नहीं लिखा गया, क्योंकि कुछ लोगों का विचार है कि सूरा तौबा सूरा अनफ़ाल ही का अंश है।

हर सूरा के शुरू में मक्की या मदनी भी लिखा जाता है, जिसका अर्थ है कि यह सूरा मक्का काल में उतरी या मदीना काल में।

सूअर

सूअर का माँस खाना (देखिए: सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–173; सूरा–5, अल-माइदा, आयत–3 और सूरा–16, अन-नहल् आयत–115), उसको पालना और उसका व्यापार करना यह सब कुछ हराम है। क्योंकि यह जानवर अपवित्र है। इससे पहले तौरात में भी इसका खाना हराम था (देखिए: लैव्यव्यस्था, 11:7-8) और इसी की शिक्षा ईसा (عليه السلام) भी देते थे। परन्तु सेन्ट पॉल ने जब ईसाइयत में प्रवेश किया तो उसने सूअर का मांस हलाल कर दिया। अब दोबारा जब ईसा (عليه السلام) पृथ्वी पर वापस आएँगे, तो फिर सूअर का मांस हराम कर देंगे और अपने हाथों से उसे क़त्ल करेंगे जैसा कि सहीह हदीस में आया है। (देखिए: बुख़ारी : 2222 तथा मुस्लिम : 155)

तौरात की किताब 'लैव्यवस्था' के भाग (11) में शुद्ध और अशुद्ध पशुओं का वर्णन वाक्य नम्बर (7-8) में स्पष्ट रूप से आया है।

"सूअर जो चिरे अर्थात फटे खुर का होता तो है परन्तु पगुर नहीं करता, इसलिए वह तुम्हारे लिए अशुद्ध है। इसके मांस में से कुछ न खाना और इनकी लोथ को छूना भी नहीं। ये तुम्हारे लिए अशुद्ध हैं।"

सहाबा (رضي الله عنهم)

ये वे लोग हैं जो नबी (ﷺ) पर ईमान लाए, और हर प्रकार के कष्टों को सहन करते हुए भी आप का साथ न छोड़ा। इस्लाम की दृष्टि में इनको बड़ा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, क्योंकि इन्हीं के द्वारा हम तक इस्लाम पहुँचा। अत: क़ुरआन में विभिन्न प्रकार से इनके संबंध में वर्णन मिलता है। कहीं यह बताया कि मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं और जो लोग इनके साथ हैं वे इस्लाम विरोधियों (सत्य का इनकार करनेवालों) के लिए तो कठोर हैं और आपस में दयालु। (सूरा–48, अल-फ़त्ह, आयत–29)

अर्थात् इस्लाम पर उनका दृढ़ विश्वास है।

और कहीं उनको यह कहकर संबोधित किया गया है –

«तुम एक उत्तम समुदाय हो। तुमको लोगों के लिए पैदा किया गया। तुम सत्कर्मों का आदेश देते हो और कुकर्मों से लोगों को रोकते हो। और अल्लाह पर ईमान रखते हो।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–110)

यद्यपि इस आयत में सारे मुसलमानों को संबोधित किया गया है, परन्तु प्रथमत: जिन लोगों को संबोधित किया गया वे सहाबा ही थे।

और कहीं अल्लाह ने केवल सहाबा को ही संबोधित करते हुए कहा –

«निश्चय ही अल्लाह मोमिनों से प्रसन्न हुआ, जब वे एक वृक्ष के नीचे तुमसे बैअ्त कर रहे थे।» (सूरा–48, अल-फ़त्ह, आयत–18)

इस आयत में अल्लाह ने प्रत्यक्ष रूप से बता दिया कि वह सहाबा से प्रसन्न है। जब हम इनके जीवन का अध्ययन करते हैं तो पता चलता है कि इन्होंने इस्लाम धर्म ग्रहण करने के बाद बहुत कष्ट झेला परन्तु नबी (ﷺ) का साथ न छोड़ा। घरों से निकाले गए, रेगिस्तान की तपती धरती पर घसीटा गया। इसपर भी इस्लाम नहीं छोड़ा तो कोड़े बरसाए गए, घर बार छोड़ने के पश्चात् भी पीछा किया गया। (देखिए: हिजरत) यह सब इसलिए कि वे एक अल्लाह पर ईमान लाए थे, परन्तु बुतों के पूजनेवाले विधर्मियों को यह बात पसन्द नहीं आई और उन्होंने विभिन्न प्रकार से इनको कष्ट पहुँचाया। इन ईमान लाने वालों ने धैर्य से काम लिया, जो अल्लाह को पसन्द आ गया, और उसने प्रलय तक तथा हमेशा के लिए इनको अमर बना दिया। इसलिए किसी मुसलमान के लिए उचित नहीं कि उनको बुरा कहे। इसी की ओर संकेत करते हुए नबी (ﷺ) ने फ़रमाया –

"मेरे साथियों को बुरा मत कहो, मैं उसकी क़सम खाकर कहता हूँ जिसके हाथ में मेरी जान है, अगर तुममें से कोई 'उहद' पर्वत के बराबर भी सोना ख़र्च कर दे तो भी उनके पद को नहीं पहुँच सकता, बल्कि उनका आधा भी नहीं पहुँच सकता।" (देखिए: बुख़ारी, 3673 तथा मुस्लिम, 2540)

❋ सहाबा (رضي الله عنهم) की संख्या :

यूँ तो इस्लाम स्वीकार करनेवालों के नामों की कोई सूची नहीं मिलती, परन्तु विद्वानों का विचार है कि इनकी संख्या नबी (ﷺ) के देहान्त के समय एक लाख बीस हज़ार से अधिक थी, क्योंकि एक लाख सहाबा तो नबी (ﷺ) के साथ हज में सम्मिलित हुए थे, जबकि बहुत सारे लोग मदीना तथा उसके चारों ओर ऐसे थे जो उस समय हज पर नहीं जा सके थे।

❋ इस्लाम ग्रहण करनेवाले पहले सहाबा :

1. बच्चों में सर्वप्रथम इस्लाम ग्रहण करनेवाले, अली-बिन-अबू-तालिब (ﷺ), नबी (ﷺ) के चाचा के पुत्र तथा आप (ﷺ) के दामाद।

2. स्त्रियों में सर्वप्रथम इस्लाम ग्रहण करनेवाली ख़दीजा-बिन्त-ख़ुवैलिद (رضي الله عنها), नबी (ﷺ) की पत्नी।

3. पुरुषों में सर्वप्रथम इस्लाम ग्रहण करनेवाले अबू-बक्र सिद्दीक़ (ﷺ) मुसलमानों के पहले ख़लीफ़ा, नबी (ﷺ) के दोस्त एवं ससुर।

4. स्वतंत्र किए ग़ुलामों में सर्वप्रथम इस्लाम ग्रहण करनेवाले ज़ैद-बिन-हारिसा (ﷺ) जिनको ख़दीजा ने नबी (ﷺ) की सेवा के लिए भेंट किया था, फिर आप (ﷺ) ने उन्हें स्वतंत्र कर दिया, परन्तु वे आप (ﷺ) के पास ही रहे, कहीं और जाने से इनकार कर दिया।

❋ प्रसिद्ध सहाबा :

प्रसिद्ध सहाबा में सबसे प्रथम चार 'ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन' (न्यायशील ख़ुलफ़ा) आते हैं। जो ये हैं –

1. अबू-बक्र सिद्दीक़ (ﷺ) :

मुसलमान इस बात पर सहमत हैं कि नबी (ﷺ) के बाद वे सर्वश्रेष्ठ हैं। इसलिए जिस दिन नबी (ﷺ) का देहान्त हुआ, उसी दिन मदीनावासियों ने उनके हाथ पर नबी (ﷺ) का ख़लीफ़ा होने की बैअ़त कर ली। अगर कोई पहले दिन बैअ़त न कर सका तो उसने बाद में कर ली।

उनकी खिलाफ़त का कुल समय दो वर्ष, तीन माह, आठ दिन है। उनका देहान्त 13 सन् हिजरी में हुआ। उस समय आपकी उम्र तिरसठ वर्ष थी। उनको सहाबा में सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। उन्होंने नबी (ﷺ) का साथ उस समय भी दिया, जब आप (ﷺ) ने मक्का से मदीना को हिजरत की। अबू-बक्र को विश्वास था कि मक्का के विधर्मी अवश्य पीछा करेंगे। इसलिए उत्तर का मार्ग छोड़कर, जो मदीना जाता था, दक्षिण का मार्ग अपनाया और एक गुफा में तीन दिन तक छिपे रहे। दुश्मन आप (ﷺ) को ढूँढते हुए गुफा के दहाने पर पहुँच गए, जिसके कारण अबू-बक्र चिन्तित हो गए कि अगर उन्होंने झाँककर देखा तो वे हमें देख लेंगे, परन्तु नबी (ﷺ) ज़रा भी नहीं डरे, बल्कि उनको सांत्वना दी कि चिन्ता न करो, अल्लाह हमारे साथ है। क़ुरआन की यह आयत इसी ओर संकेत करती है –

"यदि तुम उसकी (रसूल की) सहायता न भी करो तो (क्या हो जाएगा), अल्लाह उसकी सहायता उस समय कर चुका है जबकि कुफ़्र करनेवालों ने उसे (मक्का से) निकाल दिया था। वह दो में का दूसरा था; जब वे दोनों गुफा में थे, जब वह अपने साथी से कह रहा था, "ग़म न करो अल्लाह हमारे साथ है" तो अल्लाह ने उसपर

अपनी ओर से शान्ति उतारी और उसकी सहायता ऐसी सेनाओं से की जिन्हें तुमने नहीं देखा, और कुफ़्र करनेवालों का बोल नीचा कर दिया, और अल्लाह ही का बोल ऊँचा रहनेवाला है, और अल्लाह प्रभुत्त्वशाली और तत्त्वदर्शी है।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयत–40)

नबी (ﷺ) को दृढ़ विश्वास था कि जब अल्लाह ने आप (ﷺ) को अन्तिम नबी बनाकर भेजा है तो वह स्वंय आप (ﷺ) की रक्षा करेगा। सूरा माइदा यूँ तो मदीना में उतरी, फिर भी उसकी यह आयत

«अल्लाह लोगों से आपकी रक्षा करेगा।»

(क़ुरआन, सूरा–5, अल-माइदा, आयत–67) एक ऐसा चमत्कार है, जो हिजरत करने से पूर्व भी सत्य सिद्ध हुआ और हिजरत करने के बाद भी।

सहीह हदीसों में अबू-बक्र सिद्दीक़ (رضي الله عنه) की बड़ी श्रेष्ठता बयान की गई है। एक हदीस में आता है –

"अगर मैं किसी को अपना ख़लील (दोस्त) बनाता तो वह अबू-बक्र होते, लेकिन वह मेरे भाई और साथी हैं, क्योंकि अल्लाह ने मुझे अपना दोस्त बना लिया है।" (बुख़ारी तथा मुस्लिम, 2383)

2. उमर-बिन-ख़त्ताब (رضي الله عنه) :

इनको तेरह सन् हिजरी में ख़लीफ़ा बनाया गया और तेईस सन् हिजरी में शहीद कर दिए गए। शहीद करनेवाला एक पारसी ग़ुलाम था, जिसका नाम अबू-लूलू फ़िरोज़ था। इस प्रकार इनका शासनकाल दस वर्ष, और साढ़े छह मास रहा। ये पहले ख़लीफ़ा हैं जिनको अमीरुल-मोमिनीन कहा गया। शहादत के समय आपकी उम्र तिरसठ वर्ष थी। इनके शासनकाल में जो युद्ध हुए उनमें प्रसिद्ध युद्ध यरमूक, क़ादसिया, तथा नहावन्द, हैं, जिनमें मुसलमानों को सफलता प्राप्त हुई और इस्लामी शासन अरब प्रायद्वीप से लेकर मिस्र शाम (सीरिया), इराक़ तथा ईरान तक फैल गया। सहीह हदीसों में उनकी बड़ी श्रेष्ठता बताई गई है। वे अपने ईमान में इतने पक्के थे कि एक अवसर पर नबी (ﷺ) ने उनसे फ़रमाया –

"उस अल्लाह की क़सम, जिसके हाथ में मेरा जीवन है! तुम जिस मार्ग से गुज़रते हो शैतान उस मार्ग को छोड़कर कोई और मार्ग अपना लेता है।" (बुख़ारी, 3294 तथा मुस्लिम, 2396)

फ़रमाया,

"बनी-इसराईल में कुछ ऐसे लोग थे, जो नबी तो नहीं थे परन्तु उनको इलहाम हुआ करता था। अगर मेरी उम्मत में कोई ऐसा हो सकता है तो वह उमर है।" (बुख़ारी, 3689 तथा मुस्लिम, 2398)

अर्थात् उमर-बिन-ख़त्ताब के विचार ऐसे होते थे जैसे उनको अल्लाह की ओर से इलहाम किया गया है। इसलिए स्वयं उमर (رضي الله عنه) का कथन है कि तीन स्थानों पर मेरे रब ने मेरे विचारों की पुष्टि की है। मक़ामे-इबराहिम, परदा तथा बद्र के क़ैदी। अर्थात् इन तीन स्थानों पर मेरे विचार के समर्थन में आयतें उतरीं। (देखिए: मुस्लिम 2399)

3. उस्मान-बिन-अफ़्फ़ान (ﷺ) :

ये मुसलमानों के तीसरे ख़लीफ़ा हैं। उमर-बिन-ख़त्ताब (ﷺ) ने अपने बाद छह महान सहाबा की कमेटी बना दी थी जिसके सदस्यों के नाम ये हैं :

1. उस्मान-बिन-अफ़्फ़ान (ﷺ)
2. अली-बिन-अबी तालिब (ﷺ)
3. तल्हा-बिन-उबैदुल्लाह (ﷺ)
4. साद-बिन-अबी वक़्क़ास (ﷺ)
5. अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (ﷺ)
6. ज़ुबैर-बिन-अव्वाम (ﷺ)

और कहा, "आप लोग आपस में मिलकर किसी एक को अपना ख़लीफ़ा चुन लें।" सब ने उस्मान-बिन-अफ़्फ़ान (ﷺ) को अपना ख़लीफ़ा चुन लिया।

इस प्रकार उमर (ﷺ) की शहादत के पश्चात् वे सन् 24 हिजरी को ख़लीफ़ा बनाए गए और पैंतीस सन् हिजरी को वे भी शहीद कर दिए गए। उनका शासनकाल दस दिन कम बारह वर्ष रहा। उनको शहीद करनेवालों में किनाना-बिन-बिश्र, क़ुतैरा सकोनी और अब्दुर्रहमान-बिन-उदैस थे, जो सबके सब मिस्री थे। उनके शासनकाल में इस्लामी सल्तनत उत्तरी अफ़्रीक़ा तक फैल गई थी।

सहीह हदीसों में उनकी भी बड़ी श्रेष्ठता बयान की गई है। उस्मान (ﷺ) की इससे बड़ी श्रेष्ठता और क्या हो सकती है कि नबी (ﷺ) ने अपनी एक पुत्री के देहान्त के बाद दूसरी पुत्री का भी उस्मान (ﷺ) से निकाह कर दिया। उस्मान (ﷺ) के विषय में प्रसिद्ध है कि आप इतने शर्मीले थे कि एक बार नबी (ﷺ) आइशा (رضي الله عنها) के घर में इस प्रकार लेटे हुए थे कि आपकी पिण्डली का कुछ भाग खुला हुआ था। इतने में अबू-बक्र (ﷺ) ने द्वार खटखटाया और अन्दर आने की आज्ञा माँगी। उनको आज्ञा मिल गई, थोड़ी देर के पश्चात् उमर (ﷺ) को आज्ञा मिल गई, और नबी (ﷺ) इसी दशा में लेटे रहे थोड़ी देर पश्चात् उस्मान (ﷺ) ने अन्दर आने की आज्ञा माँगी। तो आप (ﷺ) उठकर बैठ गए और अपना वस्त्र बराबर कर लिया।

आइशा (رضي الله عنها) ने तत्पश्चात् नबी (ﷺ) से कहा,

"अबू-बक्र आए तो आप वैसे ही लेटे रहे, उमर आए तब भी आप वैसे ही लेटे रहे, परन्तु जब उस्मान आए तो आप संभलकर बैठ गए, और अपना वस्त्र भी ठीक कर लिया।" तब आप (ﷺ) ने फ़रमाया, "क्या मैं उस व्यक्ति से न शरमाऊँ जिससे फ़रिश्ते भी शरमाते हैं।"
(देखिए : मुस्लिम, 2401)

4. अली-बिन-अबू-तालिब (ﷺ) :

ये नबी (ﷺ) के चाचा अबू-तालिब के पुत्र तथा आप (ﷺ) की प्रिय पुत्री फ़ातिमा (رضي الله عنها) के पति थे। जिस दिन उस्मान (ﷺ) की शहादत हुई, उसी दिन पैंतीस सन् हिजरी को मदीनावालों ने उनके ख़लीफ़ा होने की बैअ़त कर ली। फिर वे मदीना से कूफ़ा चले गए और वहीं सन चालीस हिजरी में अब्दुर्रहमान-बिन-मुल्जिम नामी एक व्यक्ति ने उनको शहीद कर दिया। उस समय उनकी उम्र तिरेसठ वर्ष थी। इस प्रकार उनका शासनकाल चार वर्ष, नौ माह, दस दिन बनता है। उनकी श्रेष्ठता के वर्णन में बहुत सारी सहीह हदीसें आई हैं। उनमें से एक यह है–

जब नबी (ﷺ) अपने सहाबा के साथ तबूक के युद्ध के लिए निकले तो अली (ﷺ) को घर पर छोड़ दिया, ताकि वे स्त्रियों और बच्चों की देख-भाल कर सकें, तो अली (ﷺ) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आप मुझे बच्चों और स्त्रियों के पास छोड़ रहे हैं? (अर्थात् मुझे जिहाद पर नहीं ले जा रहे हैं?)" इस पर नबी (ﷺ) ने फ़रमाया, "ऐ अली! क्या तुम इस बात से प्रसन्न नहीं कि तुम्हारा दर्जा मेरे निकट वही हो जो हारून (عليه السلام) का दर्जा मूसा (عليه السلام) के निकट था। परन्तु मेरे बाद अब कोई नबी नहीं आएगा।" (देखिए : बुख़ारी, 4416 तथा मुस्लिम, 2404)

✻ हदीस बयान करनेवाले सहाबा की संख्या :

इससे पहले यह बात बताई जा चुकी है कि नबी (ﷺ) के देहान्त के समय सहाबा की संख्या लगभग एक लाख बीस हज़ार थी। तेरह हज़ार से अधिक सहाबा की जीवनियाँ आज भी किताबों में पाई जाती हैं, जिनमें एक हज़ार से अधिक वे सहाबा हैं, जिन्होंने नबी (ﷺ) की हदीसें बयान की हैं। बक़ी-बिन-मख़्लद जो हदीस के बड़े विद्वान थे, जिनका देहान्त 276 सन् हिजरी में हुआ। उनकी 'मुसनद' में एक हज़ार से अधिक सहाबा की हदीसें पाई जाती हैं, जिनमें से यहाँ केवल दस सहाबा का वर्णन किया जा रहा है –

1. **अबू-हुरैरा (ﷺ) :** इनकी हदीसों की संख्या सबसे अधिक है, जो 5374 बनती है। ये इस्लाम क़बूल करने के बाद यमन से मदीना आ गए थे और नबी (ﷺ) की सेवा में लग गए थे। उनका नियम था कि वे आप (ﷺ) के द्वार पर बैठे रहते थे और जब आप (ﷺ) कहीं जाते तो साथ हो लेते। जो कुछ आप फ़रमाते उसे याद कर लेते। एक बार उन्होंने नबी (ﷺ) से अपनी स्मरण-शक्ति की कमज़ोरी का वर्णन किया, जिसपर नबी (ﷺ) ने उनके लिए दुआ की। उनका कहना है कि फिर तो मैं कभी नहीं भूला।

2. **अब्दुल्लाह-बिन-उमर-बिन-ख़त्ताब (ﷺ) :** इनकी हदीसों की संख्या 2630 है।

3. **अनस-बिन-मालिक (ﷺ) :** इनकी हदीसों की संख्या 2236 है।

4. **आइशा-बिन्त-अबी-बक्र** (رضي الله عنها) **:** नबी (ﷺ) की पत्नी थीं। इनकी हदीसों की संख्या 2210 है।

5. **अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास** (ﷺ) **:** उनकी हदीसों की संख्या 1660 है।

6. **जाबिर-बिन- अब्दुल्लाह** (ﷺ) **:** इनकी हदीसों की संख्या 1540 है।

7. **अबू-सईद-ख़ुदरी** (ﷺ) **:** इनकी हदीसों की संख्या 1170 है।

8. **अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद** (ﷺ) **:** इनकी हदीसों की संख्या 848 है।

9. **अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-आस** (ﷺ) **:** इनकी हदीसों की संख्या 700 है।

10. **उमर-बिन-ख़त्ताब** (ﷺ) **:** इनकी हदीसों की संख्या 537 है।

ऊपर जो संख्या बताई गई है यह संख्या हाफ़िज़ इब्ने-हजम ने अपनी पुस्तक 'जवामिअ सीरत' में बक़ी-बिन- मख़्लद की मुसनद के आधार पर बताई है। और उन्होंने स्वयं यह भी कह दिया है कि अगर किसी को कुछ और हदीसें मिल जाएँ तो उसको चाहिए कि इस संख्या में जोड़ ले। इसलिए इसकी भी संभावना है कि इस संख्या में कुछ इज़ाफ़ा भी हो जाए। (देखिए : पृष्ठ-315)

हदीसों की संख्या के विषय में यहाँ यह बात भी सामने रहे कि इस समय हमारे पास हदीस की सैकड़ों पुस्तकें पाई जाती हैं उनमें हदीसों की संख्या साठ से सत्तर हज़ार तक है। जो लगभग तीन लाख सनदों से बयान की गई हैं, बल्कि जर्मनी के एक विद्वान, जिसने इसाबा शीर्षक पुस्तक को एडिट करके कोलकाता से प्रकाशित किया था, वह उसकी भूमिका में लिखता है कि हदीस बयान करनेवाले रावियों की संख्या पाँच लाख तक है। जिनके जीवन को अस्मा-उर्रिजाल की पुस्तकों में सुरक्षित कर लिया गया है। परन्तु ये साठ से सत्तर हज़ार हदीसें सब सहीह नहीं हैं। इस विषय पर रिसर्च या जाँच-पड़ताल करने से पता चलता है कि सहीह हदीसों की संख्या लगभग पन्द्रह हज़ार है, जो हदीस की सैकड़ों किताबों में फैली हुई हैं। अब इस बात की आवश्यकता है कि इन सहीह हदीसों को ज़ईफ़ हदीसों से अलग कर दिया जाए, क्योंकि ज़ईफ़ हदीसें इस्लाम धर्म की स्तम्भ नहीं बन सकती।

वे सहाबी जिनका नाम क़ुरआन में आया है –

क़ुरआन में जिन सहाबी का नाम आया है वे ज़ैद (ﷺ) हैं। वे वास्तव में अरब वंश से थे। उनका पूरा नाम ज़ैद- बिन-हारिसा-बिन-शराहील अल-कल्बी था, परन्तु बचपन में ही किसी ने उन्हें अपहृत कर लिया और ग़ुलाम बनाकर बेच दिया। नबी (ﷺ) की पहली पत्नी ख़दीजा (رضي الله عنها) ने उन्हें ख़रीदकर नबी (ﷺ) की सेवा में प्रस्तुत कर दिया। आप (ﷺ) ने उन्हें स्वतंत्र कर दिया और अपना पुत्र बना लिया,

---

* मैंने अल्लाह का नाम लेकर यह कठिन काम प्रारम्भ कर दिया है। जिसका नाम अल-जामिउल-कामिल रखा है। इसके अब तक 12 भाग पूर्ण हो चुके हैं। दुआ करता हूँ कि अल्लाह शेष हदीसों को भी इकट्ठा करने का साहस दे।

जिसे मुतबन्ना (लेपालक) कहते हैं। और फिर आप (ﷺ) ने अपनी फूफी उमैया-बिन्त-अब्दुल-मुत्तलिब की पुत्री ज़ैनब- बिन्त-जहश से इनका निकाह कर दिया। परन्तु दोनों एक साथ जीवन न बिता सके। आपस में मतभेद पैदा हो गया। यहाँ तक कि दोनों में तलाक़ हो जाने की संभावना पैदा हो गई। फिर वह्य के द्वारा अल्लाह ने आपको सचेत कर दिया कि यह तलाक़ होकर रहेगी, और फिर ज़ैनब से आपका विवाह कर दिया जाएगा, ताकि अज्ञानकाल की इस रीति का खंडन किया जा सके, जिसमें लेपालक बेटे की पत्नी से विवाह करना वैसे ही निषिद्ध था जिस प्रकार पुत्र की पत्नी से। परन्तु आप संकोच में थे कि यदि ऐसा हो गया तो लोग क्या कहेंगे अर्थात् भविष्य में क्या होनेवाला है, अल्लाह ने आप (ﷺ) को सब कुछ बता दिया था। फिर भी आप ज़ैद से यही कहते रहे, "अल्लाह से भय खाओ और तलाक़ मत दो" इस परिस्थिति में सूरा–3, अल-अहज़ाब की ये आयतें उतरीं –

«(याद करो) जबकि तुम उस व्यक्ति से कह रहे थे जिस पर अल्लाह ने भी उपकार किया तथा तुमने भी कि तुम अपनी पत्नी को अपने पास रखो तथा अल्लाह से डरो तथा तुम अपने दिल में वह बात छिपाए हुए थे जिसे अल्लाह प्रकट करनेवाला था तथा तुम लोगों से भय खाते थे हालाँकि अल्लाह इसका अधिक अधिकारी था कि तुम उससे डरते। जब ज़ैद ने उस स्त्री से अपना रिश्ता काट लिया तो हमने उसे तेरे निकाह में दे दिया, ताकि मुसलमानों पर अपने लेपालकों की पत्नियों के विषय में किसी प्रकार का संकोच न रहे, जबकि वे उनसे अपना रिश्ता काट लें। अल्लाह का (यह) आदेश होकर ही रहनेवाला था।» (क़ुरआन, सूरा-33, अल-अहज़ाब, आयत-37)

ज़ैनब (رضي الله عنها) बाद में गर्व किया करती थीं कि मेरा विवाह नबी (ﷺ) से अल्लाह तआला ने स्वयं कराया है।

वे दस सहाबा जिनको इसी संसार में जन्नत की शुभ सूचना दे दी गई –

1. अबू-बक्र-सिद्दीक़-बिन-अबू-कुहाफ़ा (رضي الله عنه): देहान्त 13 सन् हिजरी।
2. उमर-बिन-ख़त्ताब (رضي الله عنه): देहान्त 23 सन् हिजरी।
3. उस्मान-बिन-अफ़्फ़ान (رضي الله عنه): देहान्त 35 सन् हिजरी।
4. अली-बिन-अबू-तालिब (رضي الله عنه): देहान्त 40 सन् हिजरी।
5. ज़ुबैर-बिन-अव्वाम (رضي الله عنه): देहान्त 36 सन् हिजरी।
6. तलहा-बिन-उबैदुल्लाह (رضي الله عنه): देहान्त 36 सन् हिजरी।
7. अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (رضي الله عنه): देहान्त 32 सन् हिजरी ।
8. अबू-उबैदा-बिन-जर्राह (رضي الله عنه): देहान्त 18 सन् हिजरी।

9. सईद-बिन-ज़ैद-अदवी (ﷺ): देहान्त 50 सन् हिजरी।

10. साद-बिन-अबी-वक़्क़ास (ﷺ): देहान्त 55 सन् हिजरी।

साद-बिन-अबी-वक़्क़ास (ﷺ) का दस जन्नतियों में सबसे अन्त में देहान्त हुआ।

ये दस सहाबी तो वे हैं जिनको नबी (ﷺ) ने एक ही हदीस में स्वर्ग की शुभ सूचना दे दी थी। इनके अतिरिक्त और भी सहाबी हैं जिनको विभिन्न समयों में स्वर्ग की शुभ सूचना दी गई।

❋ सहाबा के जीवन चरित्र पर लिखी गई प्रसिद्ध अरबी पुस्तकें :

यूँ तो सहाबा के जीवन पर सैकड़ों पुस्तकें लिखी गईं, परन्तु यहाँ केवल कुछ ही पुस्तकों का वर्णन किया जा रहा है –

1. मोजम सहाबा : लेखक : अब्दुल-बाक़ी बिन क़ानेअ़ (देहान्त : 351 सन् हिजरी)
2. मारिफ़तुस्सहाबा : लेखक : अबू नुऐम इस्फ़हानी (देहान्त : 430 सन् हिजरी)
3. अल-इस्तीआब : लेखक : यूसुफ़-बिन-अब्दुल्लाह-बिन-इब्ने-अब्दुल-बर्र (देहान्त : 463 सन् हिजरी)
4. उस्दुल ग़ाबा फ़ी मारिफ़तुस्सहाबा : लेखक : इज़्ज़ुद्दीन अबुल-हसन मुहम्मद-बिन-मुहम्मद-इब्ने-असीर (देहान्त : 620 सन् हिजरी)
5. तजरीद अस्माए सहाबा : लेखक : शम्सुद्दीन ज़हबी (देहान्त : 748 सन् हिजरी)
6. अल-इसाबा फ़ी तमीज़िस्सहाबा : लेखक : अहमद-बिन-अली-इब्ने-हजर (देहान्त : 852 सन् हिजरी)

इस समय पृथ्वी पर केवल इस्लाम ही एक मात्र ऐसा धर्म है जिसमें नबी (ﷺ) तथा आप (ﷺ) के सहाबा और सहाबा के शिष्यों और शिष्यों के शिष्यों अर्थात् पाँच शताब्दी तक के उन मनुष्यों का सम्पूर्ण जीवन-चरित्र सुरक्षित कर लिया गया, जिनको हदीस के रावी कहते हैं (अर्थात् हदीस बयान करने वाले), ताकि हदीसों की जाँच-पड़ताल में इन हदीसों के रावियों के जीवन चरित्र का अध्ययन किया जा सके, क्योंकि हदीस के सहीह या ज़ईफ़ होने का आधार इन्हीं रावियों पर है। अर्थात् अगर रावी सच्चा है, जिसको हदीस की परिभाषा में सिक़ह कहते हैं, तो हदीस सहीह हो जाएगी, और अगर रावी सच्चा नहीं है, जिसको ज़ईफ़ कहते हैं तो हदीस ज़ईफ़ हो जाएगी। यद्यपि रावियों के अतिरिक्त और भी बहुत सारी चीज़ें देखनी पड़ती हैं जिनका वर्णन करना यहाँ सम्भव नहीं है। परन्तु सहीह हदीस के लिए रावी के सच्चा होने की बड़ी महत्ता है। रावियों के सिक़ह तथा ज़ईफ़ होने के बहुत सारे सिद्धान्त बनाए गए हैं। उनमें विशेष सिद्धान्त यह है कि हर रावी के विषय में दो बातों का अधिक ध्यान रखा जाएगा।

1. एक यह कि रावी अपने आचरण और व्यवहार में सदाचारी और सच्चा मुसलमान हो, जो वाजिबात पर अमल करता हो, तथा हराम से बचता हो अर्थात् उसका जीवन इस्लामी शिक्षाओं के अनुसार हो।
2. दूसरी बात यह कि उसकी स्मरण-शक्ति शक्तिशाली हो, वह जो याद करले और जब पूछा जाए तो वैसे ही बताए जैसे उसने अपने उस्ताद से सुना हो और उनको लिख लेता है तो यह और उत्तम है।

जब किसी रावी में ये दोनों विशेषताएँ पाई जाएँगी तो उसको सिक़ह रावी कहा जाएगा और उसकी हदीस सहीह मानी जाएगी। और जिसमें ये दोनों विशेषताएँ या उनमें से एक न पाई जाए तो वह रावी ज़ईफ़ कहलाएगा और उसकी हदीस ज़ईफ़ कहलाएगी। हदीसों को परखने का यह एक ऐसा सिद्धान्त है जो हम हर हदीस की जाँच-पड़ताल में प्रयोग करते हैं। यह सिद्धान्त मुसलमानों की खोज है। इसका प्रयोग किसी और धर्म में करना असम्भव है।

साअ

यह अनाज नापने का एक पैमाना है, जिसका वर्णन यूसुफ़ (ﷺ) के वृत्तान्त में इस प्रकार आया है–

«उन्होंने कहा, ''शाही पैमाना हमें नहीं मिल रहा है। जो व्यक्ति उसे ला दे उसे एक ऊँट का बोझ-भर ग़ल्ला (अनाज) इनाम मिलेगा।''» (सूरा–12, यूसुफ़, आयत–72)

यही पैमाना नबी (ﷺ) के समय में भी प्रयोग होता था। इसी पैमाने के द्वारा ज़कातुलफ़ित्र (सदक़-ए-फ़ित्र) अदा की जाती थी। इसी पैमाने के द्वारा खजूरों का अन्दाज़ा लगाकर ज़कात ली जाती थी। इसी पैमाने की ओर संकेत करते हुए नबी (ﷺ) ने यह दुआ की थी–

''ऐ अल्लाह! उनके साअ और मुद्द में बरकत फ़रमा।'' (देखिए: बुख़ारी 2130 तथा मुस्लिम, 1368)

आजकल के वज़न के अनुसार साअ तीन किलोग्राम के बराबर होता है। मुद्द भी एक पैमाना है, चार मुद्द का एक साअ होता है, और साठ साअ का एक सक। इन पैमानों का वर्णन हदीसों में बार-बार आता है।

सत्य की खोज

कुरआन में अल्लाह का कथन है कि जो व्यक्ति सत्य की खोज करेगा उसे अल्लाह सत्य-मार्ग अवश्य दिखा देगा–

«रहे वे लोग जिन्होंने हमारे मार्ग में मिलकर प्रयास किया, उन्हें हम अपना मार्ग अवश्य दिखा देंगे, (अर्थात् वे भटक नहीं सकते। उन्हें जीवन के किसी न किसी मोड़ पर

सत्य-मार्ग अवश्य मिल जाएगा।) निस्संदेह अल्लाह सदाचारियों के साथ है।» (सूरा–29, अल-अनकबूत, आयत–69)

यहाँ इस्लामी इतिहास से एक ऐसे व्यक्ति की कहानी उसी के शब्दों में बयान की जा रही है जो सत्य की तलाश में निकला और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जिसने बड़ी कठिनाइयों का सामना किया, कष्ट सहे और अन्त में अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सफल हुआ।

मैं एक ईरानी था। मेरे पिता मंदिर के संचालक थे, जिनकी आज्ञा से मैं मंदिर में आग जलाया करता था और यह कोशिश करता था कि वह कभी बुझने न पाए। जिसके कारण मेरे पिता मुझसे बहुत प्रेम करते थे। यहाँ तक कि मुझे घर से निकलने नहीं देते थे। एक बार मैं किसी काम के लिए पिता ही की आज्ञा से घर से निकला। थोड़ी दूर चलने के बाद मुझे एक गिरजाघर से घंटा बजने की आवाज़ आई। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह कैसी आवाज़ है जिसको आज तक मुझे सुनने का अवसर नहीं मिला। मैं उस गिरजाघर में दाख़िल हो गया और वहाँ हो रही पूजा-पाठ को ध्यान से देखने लगा। शाम होने तक वहीं ठहरा रहा। फिर घर आ गया। मेरे पिता ने देर से घर आने पर पूछा कि तुम कहाँ थे? मैंने कहा कि मैं गिरजाघर चला गया था। वहाँ ईसाइयों की पूजा-पाठ को देखता रहा जो मुझे बहुत पसन्द आई। यह सुनना था कि मेरे पिता ने लोहे की ज़ंजीर से मुझे बाँध दिया और कहने लगे तुम्हारा धर्म उनसे उत्तम है। परन्तु मुझे तो उनका धर्म उत्तम लगने लगा। इसलिए मैंने ईसाई पादरी को संदेश भेजा कि मैं ईसाई धर्म के बारे में और अधिक जानना चाहता हूँ। उसने उत्तर दिया कि हमारा बड़ा गिरजाघर शाम (सीरिया) में है, वहाँ तुमको ईसाई धर्म की अधिक शिक्षा मिल सकती है। मैंने उनको पैग़ाम भेजा कि जब कोई क़ाफ़िला शाम से आए तो मुझे सूचित करें, मैं उनके साथ शाम जाऊँगा। वह दिन आ गया जब मैं अपने पैरों की बेड़ियाँ काटकर शाम के लिए रवाना हो गया। वहाँ पहुँच कर मैं महान पुरोहित की सेवा में उपस्थित हुआ और उसकी सेवा करने लगा। वह मुझसे बड़ा प्रसन्न हुआ, परन्तु मैंने देखा कि वह एक बहुत ही बुरा आदमी है। लोगों से दान लेता तो है परन्तु निर्धनों पर ख़र्च नहीं करता, बल्कि उसको छिपाकर रख लेता है। जब उसका देहान्त हो गया और लोग उसको दफ़न करने के लिए आए तो मैंने उनको उसकी वास्तविकता बता दी। लोगों ने प्रमाण माँगा तो मैं उनको एक कोठरी में ले गया, जहाँ उसने सोने और चाँदी के ढेर लगा रखे थे। यह देखकर लोगों को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने उसे सूली पर लटका दिया और पत्थर मारने लगे। फिर एक दूसरा पादरी नियुक्त हुआ, जो पहलेवाले से अच्छा था। संसार से वैरागी और आख़िरत का इच्छुक था। मैं उसकी सेवा में लग गया। जब उसकी मृत्यु निकट आ गई तो मैंने उससे कहा, "ऐ पादरी! तुम जानते हो कि मैं तुमसे कितना प्यार करता हूँ। अब तुम संसार से जानेवाले हो, बताओ मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ?" उसने कहा, "ऐ पुत्र! लोग बदल गए हैं। आज मुझे संसार में कोई ऐसा पादरी मालूम नहीं होता है जिस प्रकार मैं था। हाँ, मूसिल (इराक़) में एक पादरी है, तुम उसके पास चले जाओ, उसको तुम मेरी ही तरह पाओगे।"

उसकी मृत्यु के पश्चात् मैं मूसिल चला गया और वहाँ के पादरी को बता दिया कि मुझे उसके पास किसने भेजा है। वह बड़ा प्रसन्न हुआ और अपनी सेवा में रख लिया। उसको भी मैंने पहलेवाले की तरह पाया जो बड़ा सदाचारी था। जब उसकी मृत्यु निकट आई तो मैंने उससे कहा, "ऐ आदरणीय पादरी! तुम मृत्यु के निकट हो। अब बताओ कि मैं कहाँ जाऊँ? उसने कहा, "ऐ पुत्र! मुझे तो कोई व्यक्ति इस प्रकार का नहीं मिल रहा है जिस प्रकार के हम थे। परन्तु तुम नुसीबीन[1] चले जाओ।" पादरी की मृत्यु के पश्चात् मैं नुसीबीन चला गया और वहाँ के पादरी को मैंने पहले पादरी की बातें बताईं तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ और अपने पास रहने की अनुमति दे दी। उसको भी मैंने पहले दो पादरियों की तरह ईश-भक्त पाया। परन्तु जब वह भी मृत्यु के निकट पहुँच गया तो मैंने उससे कहा, "ऐ पादरी! अब तुम बताओ कि मैं किसके पास जाऊँ।" उसने कहा, "तुम अमोरिया[2] चले जाओ। वहाँ का पादरी ऐसा ही होगा जैसा तुमने हमें पाया है। पादरी की मृत्यु के पश्चात् मैं अमोरिया चला गया। वहाँ रहने लगा। वहाँ मैंने व्यापार भी किया और बहुत सारी गायों का स्वामी बन गया। जब उसकी मृत्यु भी निकट आ गई तो मैंने उससे कहा, "ऐ पादरी! तुमको अपनी कहानी बता चुका हूँ, अब बताओ मैं कहाँ जाऊँ?" उसने कहा, "ऐ पुत्र! इस समय इस धरती पर कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसके पास जाने का परामर्श दूँ, लेकिन मेरी बात ध्यान से सुनो : अब एक नबी के आने का समय आ गया है जो इबराहीम के धर्म पर होगा, जो अरब में पैदा होगा। फिर वह एक ऐसे स्थान की ओर हिजरत (स्वदेश त्याग) करेगा, जो खजूर के वृक्षों से भरा होगा, उसके कुछ चिह्न हैं जो ये हैं। वह भेंट की हुई वस्तुएँ तो खाएगा, परन्तु सदक़ा (दान) की चीज़ें नहीं खाएगा। उसके दोनों मोढ़ों के बीच में नुबूवत की मुहर होगी। अब अगर तुम उसके देश की यात्रा कर सकते हो तो वहीं चले जाओ और उसको तलाश करो।" इसके बाद उसका देहान्त हो गया।

पादरी के मरने के पश्चात् मैं अमोरिया में कुछ दिन ठहरा रहा। इतने में मुझे पता चला कि अरब के कुछ व्यापारी आए हुए हैं। मैंने उनसे मुलाक़ात की और इच्छा प्रकट की कि मेरे पास जो ये गाएँ और बकरियाँ हैं तुम ले लो और मुझे अपने साथ अरब देश ले चलो। उन्होंने स्वीकार कर लिया, लेकिन जब वे वादी क़ुरा (जो शाम और मदीना के बीच है) पहुँचे तो उन्होंने एक यहूदी के हाथ मुझे बेच दिया। मैं उस यहूदी के पास रहने लगा। यह स्थान खजूरों से भरा हुआ था। विचार करने लगा, कहीं यह वही स्थान तो नहीं जहाँ मुझे जाना है। इतने में उस यहूदी के चाचा के बेटे का वहाँ आना हुआ जो मदीना का रहनेवाला था। उसने मुझे ख़रीद लिया और मुझे लेकर मदीना आ गया। मदीना देखते ही मेरे नेत्रों में प्रकाश दौड़ गया और पूरा विश्वास हो गया कि यह वही स्थान है जिसका वर्णन पादरी ने किया था। मैं इसी प्रकार ग़ुलामी का जीवन व्यतीत कर रहा था। मुझे अपने मालिक के काम से बहुत कम समय मिलता था।

---

[1] यह तुर्की के शहर का नाम है जो सीरिया के बार्डर पर पड़ता है इसको तुर्की में इस प्रकार लिखते हैं : Nusaybin

[2] यह भी तुर्की का एक शहर है जिसको इस प्रकार लिखते हैं। Bamorion

एक दिन क्या सुनता हूँ कि मेरे मालिक से उसके चाचा के बेटे ने कहा, "क्या तुमने सुना है क़ुबा के लोगों के पास एक व्यक्ति है जो मक्का से आया है और कहता है कि मैं नबी हूँ।" उसकी बातें सुनकर मुझे झुरझुरी आ गई। मैंने दुबारा पूछा कि तुम क्या कह रहे थे? यह सुनना था कि मेरे मालिक ने मुझे डाँटा और कहा कि तुम अपना काम करो। इन बातों पर ध्यान मत दो।

रात्रि के अंधेरे में एक दिन मैं उस नबी के पास पहुँचा और कहा, "आप और आपके साथी हिजरत करके आए हैं? आप अवश्य मुहताज होंगे। मेरे पास जो कुछ है मैं आपको दान करता हूँ।" यह कहते हुए मैंने उनके सामने खाने की कुछ वस्तुएँ रख दीं। नबी ने अपने साथियों से कहा, "तुम लोग इन्हें खाओ।" और स्वयं आपने अपना हाथ उठा लिया और उसमें से कुछ भी नहीं खाया। मैंने अपने मन में कहा कि चलो आज एक परीक्षा तो हो गई कि वह दान नहीं खाता। फिर नबी मदीना में प्रवेश कर गए तो एक दिन मैं उनकी सेवा में उपस्थित हुआ और कहा, "मैंने देखा कि आप दान नहीं खाते, इसलिए मैं आपके लिए उपहार (तोहफ़ा) लेकर आया हूँ" तो आपने इसे स्वीकार कर लिया और स्वयं उसमें से कुछ खाया और अपने साथियों को खाने के लिए कहा। मैंने अपने मन में विचार किया कि यह दूसरी बात भी सच निकली।

फिर एक दिन मैं उनसे मिलने के लिए उपस्थित हुआ तो आप बक़ीअ में किसी को दफ़न करने के बाद बैठे हुए थे और आपका शरीर दो चादरों में लिपटा हुआ था। मैंने आपको सलाम किया और आपकी पीठ की ओर कुछ खोजने लगा। आपने अपनी पीठ से चादर हटा ली। यह देखते ही मैं आपसे लिपटकर रोने लगा और नुबूवत की मुहर को बोसा देने लगा। आपने बड़े प्यार से मुझे अपने पास बिठाया और मुझसे पूछा, "क्या बात है बताओ?" मैंने शुरू से अपनी कहानी सुनाई और बताया कि आपकी तलाश में मैंने क्या कुछ नहीं किया और आज मैं अपने आपको बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ कि अल्लाह ने मुझे सत्य तक पहुँचा दिया।

नबी (ﷺ) और आपके सहाबा यह कहानी सुनकर बड़े प्रभावित हुए।

यह कहानी हज़रत सलमान फ़ारसी (رضي الله عنه) की है जो आप (ﷺ) की कोशिशों और यत्नों से स्वतंत्र हुए। इस्लाम में आपको बड़ी महानता प्राप्त हुई।

किसी ने ठीक कहा है, "जो प्रयत्न करेगा सत्य को प्राप्त कर ही लेगा।"

सजदा

सजदे का अर्थ है ललाट (पेशानी) को पृथ्वी पर टेकना। इस्लाम से पहले लोग बुतों और बादशाहों को सजदा किया करते थे। परन्तु इस्लाम ने अल्लाह के अतिरिक्त किसी और को सजदा करने को सदैव के लिए निषिद्ध कर दिया, क्योंकि किसी और को सजदा करना तौहीद की शिक्षा के विरूद्ध है और यही सारे नबियों का मार्ग था। (देखिए : रुकूअ)

सजदे का सही तरीक़ा शरीर के सात अंगों ललाट, दोनों हाथों, दोनों घुटनों तथा दोनों पंजों को पृथ्वी पर इस प्रकार टेकना कि पेट पृथ्वी से उठा हो और दोनों हाथ सिर के बराबर हों, न उससे आगे न उससे पीछे, और फिर पूरी संतुष्टि के साथ अल्लाह की बड़ाई बयान करना। सहीह हदीसों में आता है कि बन्दा सजदे की दशा में अल्लाह से बहुत निकट हो जाता है।

सजदा नमाज़ का विशेष स्तंभ है, जिसके बिना नमाज़ नहीं होती, इसलिए अल्लाह के अतिरिक्त किसी और को सजदा करना बहुत बड़ा शिर्क है। ऐसा करनेवाला इस्लाम धर्म की परिधि से बाहर हो जाता है।

सजदे के विषय में जो आयतें आई हैं उनका वर्णन रुकूअ शब्द के अन्तर्गत किया जा चुका है।

सफ़ा

सफ़ा एक पहाड़ी का नाम है जो काबा से लगभग 100 मीटर की दूरी पर है। इसका वर्णन क़ुरआन में एक बार आया है –

«निस्सन्देह सफ़ा तथा मरवा अल्लाह की विशेष निशानियों में से हैं।» (सूरा–2, अल-बक़रा आयत–158)
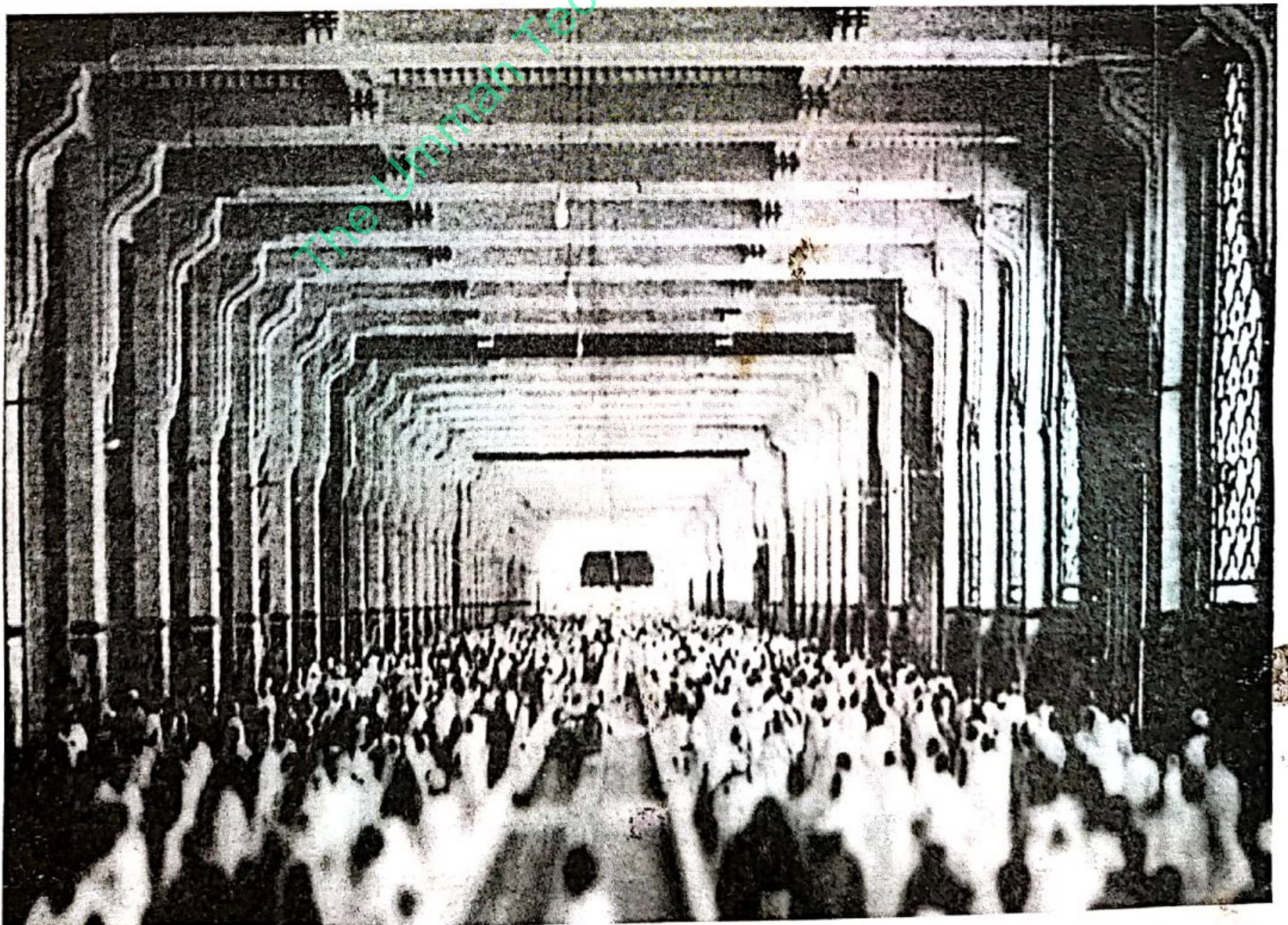
"सफ़ा और मरवा के बीच सई का एक दृश्य"

सफ़ा और मरवा ये वही दो पहाड़ियाँ हैं जिनके बीच हज या उमरा करनेवाले सात बार सई करते हैं, ताकि हाजरा (ﷺ) की सई की घटना को याद कर सकें, जैसा कि शब्द मरवा में पूरी तफ़सील से बता दिया गया है। सफ़ा की इस पहाड़ी का नबी (ﷺ) के जीवन से भी बड़ा सम्बन्ध रहा है। पवित्र क़ुरआन में नबी (ﷺ) से कहा गया–

«अपने निकटतम नातेदारों को सचेत करो।» (सूरा–26, अश-शुअरा, आयत–214)

जब उपर्युक्त आयत उतरी तो अल्लाह के अंतिम ईशदूत मुहम्मद (ﷺ) उसी सफ़ा नामक पहाड़ी पर चढ़ गए और अरब के लोगों का नाम लेकर पुकारा, "ऐ लोगो!" जब सब लोग इकट्ठा हो गए तो आप (ﷺ) ने फ़रमाया, "अगर मैं तुमसे यह कहूँ कि शत्रु इस घाटी से तुमपर आक्रमण करनेवाला है तो क्या मेरी बात मानोगे?" सबने कहा "हाँ! क्यों नहीं, हमने कभी आपको झूठ बोलते नहीं पाया।" तब आप (ﷺ) ने फ़रमाया, "मैं तुम्हें कठोर यातना से डरानेवाला हूँ।" अबू-लहब खड़ा हुआ और कहने लगा, "तुम्हारा सत्यानाश हो। क्या तुमने हमें इसी लिए इकट्ठा किया था?" इसी घटना के बाद सूरा–111, अल-लहब उतरी –

«टूट गए अबू लहब के दोनों हाथ और वह स्वयं भी विनष्ट हो गया, न उसका धन उसके काम आया और न वह कुछ जो उसने कमाया। वह शीघ्र ही भड़कती आग में पड़ेगा, और उसकी स्त्री भी ईंधन लादनेवाली, उसकी गरदन में खजूर के रेशों की बटी हुई रस्सी पड़ी होगी।» (सूरा–111,अल-लहब, आयत–1-5) (देखिए : बुख़ारी 4770 और मुस्लिम 208)

यही सफ़ा नाम की वह पहाड़ी है, जिसपर मक्का-विजय के बाद खड़े होकर नबी (ﷺ) ने यह एलान किया था –

"जो अबू सुफ़यान के घर में प्रवेश कर जाए उसको सुरक्षा है, जो शस्त्र फेंक दे, उसको सुरक्षा है, जो अपने घर का द्वार बन्द कर ले उसको भी सुरक्षा है।" (सहीह मुस्लिम 1780, मक्का-विजय)

साबिईन

साबिईन सबअ शब्द से बना है। इसका अर्थ है एक ओर के हो जाना। इस प्रकार साबिईन का अर्थ होता है एक ओर के हो जानेवाले लोग। ऐसा लगता है कि ये लोग किसी नबी के अनुयायी थे, परन्तु फिर धीरे-धीरे सत्यमार्ग छोड़ बैठे और असत्य की ओर झुक गए। इसलिए कुछ विद्वानों ने इन्हें नूह (ﷺ) का अनुयायी बताया है, परन्तु इस बात को सिद्ध करना असम्भव है। क़ुरआन में इनका वर्णन केवल एक बार आया है –

«निस्संदेह जो लोग ईमान लाए और जो यहूदी बने और साबिई और ईसाई, और मजूस और जिन लोगों ने शिर्क किया, सबके मध्य क़ियामत के दिन अल्लाह निर्णय कर देगा। निस्संदेह हर वस्तु अल्लाह की दृष्टि में है।» (सूरा–22, अल-हज, आयत–17)

क़ुरआन से यह सिद्ध हुआ कि नबी (ﷺ) के जीवनकाल में साबिई पाए जाते थे। कुछ इतिहासकारों ने लिखा है कि इनकी बस्तियाँ शाम (सीरिया) में थीं और चूँकि क़ुरैश के लोग व्यापार के लिए शाम (सीरिया) जाया करते थे। इसलिए उनको इनके विषय में पूरा ज्ञान था। जब इस्लाम अरब देश के हर घर में प्रवेश कर गया, तो बहुत-से साबिई मुसलमान हो गए। वे शाम के शहर हरान में इकट्ठा हो गए। वहाँ उनका एक मन्दिर भी था, जिसमें चाँद की पूजा की जाती थी। उनका विश्वास था कि आत्मा की शक्ति बहुत बड़ी है। उसके द्वारा बन्दा अल्लाह तक पहुँच सकता है। इसलिए अपनी इन्द्रियों पर अधिकार प्राप्त करने तथा उन्हें वश में करने के पश्चात् ही आत्मा की शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। इस्लाम की कुछ शिक्षाओं को भी उन्होंने अपने धर्म में दाख़िल कर लिया था, जैसे नमाज़। वे लोग तीन समय नमाज़ पढ़ते थे और इसको अल्लाह तक पहुँचने का सबसे उत्तम साधन समझते थे। वे सुअर, कुत्ता और इसी प्रकार अशुद्ध पशुओं का मांस नहीं खाते थे।

इस्लामी राज्य में इनको बड़ी उन्नति मिली और ये अब्बासी ख़लीफ़ा के मंत्रियों में सम्मिलित हो गए। परन्तु फिर ये इस्लामी शिक्षा से प्रभावित होते गए और अधिकतर लोगों ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया। इस समय कुछ साबिई इराक़ में पाए जाते हैं।

सुवाअ

सुवाअ : यह हुज़ैल क़बीले का बुत था। (अधिक जानकारी के लिए देखिए : 'वद्द'।)

सद्व्यवहार की शिक्षाएँ

देखें 'क़ुरआन में सद्व्यवहार की शिक्षाएँ'

सीना

यह वह रेगिस्तान है जो उक़बा की खाड़ी तथा स्वेज की खाड़ी के बीच में पाया जाता है। इसकी लम्बाई लगभग तीन सौ किलोमीटर और चौड़ाई लगभग एक सौ पचास किलोमीटर है। बनी-इसराईल इसी रेगिस्तान सीना में चालीस वर्ष तक भटकते रहे।

"सीना पर्वत"

सीना एक पहाड़ का नाम भी है, जिसको तूर कहते हैं। मूसा (عليه السلام) को इसी तूर नामक पहाड़ पर तौरात दी गई थी। क़ुरआन में दो स्थानों पर सीना का प्रयोग तूर के साथ आया है–

«(हमने पैदा किया) वह वृक्ष भी जो तूर सीना से निकलता है।» (सूरा–23, अल-मोमिनून, आयत–20)

«क़सम है तीन (इंजीर) की और ज़ैतून की, और तूर सीनीन की।» (सूरा–95, अत-तीन, आयतें–1,2)

यह तूर सीनीन वही सीना है जिसके तूर नामक पर्वत पर मूसा (عليه السلام) को तौरात दी गई।

सीना एक पर्वत का भी नाम है जिसको हुरेब पर्वत कहते हैं, जिसका वर्णन तौरात में बार-बार आया है, जहाँ बनी-इसराईल ने अपना डेरा डाला और फिर उनके साथ विभिन्न प्रकार की घटनाएँ घटित हुईं।

सवामिअ

सवामिअ सोमआ का बहुवचन है। इसका अर्थ है वह आश्रम (ख़ानक़ाह) जहाँ ईसाई साधु संन्यासी (राहिब) तन्हा या अपने कुछ चेलों के साथ इबादत करता है। क़ुरआन में सवामिअ का उल्लेख इस जगत में जारी अल्लाह के एक विशेष नियम के तहत हुआ है। अल्लाह ने संसार के लिए यह नियम बना दिया है कि एक के द्वारा दूसरे का निवारण करता रहे। अगर ऐसा न होता तो ये आश्रम, गिरजे, यहूदियों की इबादतगाहें, मुसलमानों की मस्जिदें, जिनमें अल्लाह के नाम का स्मरण किया

जाता है, सब गिरा दिए जाते, और यह दुनिया उपद्रव का केन्द्र बन जाती और क़ियामत से पहले ही नष्ट, भ्रष्ट हो जाती। क़ुरआन में इसी की ओर संकेत किया गया है–

«वे लोग जो अपने घरों से बिना किसी कारण निकाल दिए गए केवल इसलिए कि उन्होंने कहा, ''हमारा रब तो अल्लाह है।'' यदि अल्लाह लोगों को एक-दूसरे से न हटाता रहता, तो ये मठ, गिरजे, (यहूदियों के) उपासना-गृह तथा (मुसलमानों की) मस्जिदें, जिनमें अल्लाह का अधिक नाम लिया जाता है सब ढा दी जातीं।» (सूरा–22, अल-हज्ज, आयत–40)

सायबा

सायबा उस ऊँट को कहते हैं जिसको किसी देवता के नाम पर छोड़ दिया जाता था। उसपर सवारी करना वर्जित था। अरब के मूर्तिपूजक यह विश्वास करते थे कि यह ऊँट चूँकि देवता के लिए छोड़ा गया है इसलिए अब वही देवता इसपर सवारी करेंगे। किसी मनुष्य को उसपर सवारी करना हराम है।

ये सब उनकी घड़त बातें थीं। अल्लाह ने इस विषय में किसी प्रकार का हुक्म नहीं दिया था। जैसा कि क़ुरआन में कहा गया है–

«अल्लाह ने न कोई बहीरा ठहराया है और न सायबा और न वसीला और न हाम परन्तु इनकार करनेवाले अल्लाह पर झूठ का आरोपण करते हैं और उनमें अधिकतर बुद्धि से काम नहीं लेते।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–103)

सहीह हदीस में आता है कि नबी (ﷺ) ने फ़रमाया–

''मैंने अम्र-बिन-आमिर ख़ुज़ाई को देखा जो अपनी अँतड़ियों को नरक में खींच रहा था, क्योंकि सर्वप्रथम उसी ने मूर्तियों के नाम पर पशु स्वतंत्र किया।'' (बुख़ारी 4623 तथा मुस्लिम 2856)

क्योंकि अल्लाह को छोड़कर किसी देवी-देवता के नाम पर पशु मुक्त करना, चढ़ावा चढ़ाना, नज़्र करना, ज़िब्ह करना, सब शिर्क है। और इस शिर्क को करनेवाला सर्वप्रथम अम्र-बिन-आमिर ख़ुज़ाई था।

सलवा

सलवा बटेर की तरह का कोई पक्षी था, जो अल्लाह तआला ने अपनी कृपा से बनी-इसराईल के लिए उतारा था, जब वे सीना के रेगिस्तान में भटक रहे थे–

«हमने तुम्हारे ऊपर बादलों की छाया की, और तुमपर मन्न और सलवा उतारा। हमारी ओर से प्रदान की हुई वस्तुएँ खाओ।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–57; सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–160 तथा सूरा–20 ता-हा, आयत–80)

स-ल-वात

स-ल-वात शब्द क़ुरआन मजीद में यहूदियों की इबादतगाह के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। क़ुरआन में बताया गया है कि अल्लाह अपने नियम के अनुसार लोगों को एक-दूसरे के द्वारा हटाता रहता है, क्योंकि अगर ऐसा न होता तो मठ और गिरजा और यहूदी प्रार्थना-भवन और मस्जिदें, जिनमें अल्लाह का नाम लिया जाता है, सब ढा दी जातीं और यह दुनिया उपद्रव का केन्द्र बन जाती। क़ुरआन में है–

«वे लोग जो अपने घरों से बिना किसी कारण के निकाल दिए गए केवल इस लिए कि उन्होंने कहा, "हमारा 'रब' तो अल्लाह है।" यदि अल्लाह लोगों को एक-दूसरे के द्वारा न हटाता रहता, तो ये मठ (आश्रम), गिरजे, (यहूदियों) के उपासना-गृह, तथा (मुसलमानों की) मस्जिदें, जिनमें अल्लाह का अधिक नाम लिया जाता है, सब ढा दी जातीं।» (सूरा–22, अल-हज्ज, आयत–40)

सामरी

सामरी का नाम क़ुरआन मजीद में, सूरा–20, ता-हा में तीन बार आया है। (देखिए: आयत–85, 87, 95)

यह कोई बुत पूजक मुनाफ़िक़ था, जो मिस्र से बनी-इसराईल के साथ आ गया था, ताकि उनको पथभ्रष्ट करता रहे। उसने कुछ जादू-टोने भी सीख रखे थे और अपने पास कुछ ऐसी चीज़ें भी रखी थीं, जिनके द्वारा अप्राकृतिक प्रभाव डाला जा सकता था।

अब आइए, सामरी के कारनामों पर नज़र डालते हैं।

जब मूसा (عليه السلام) तूर पर तौरात लेने गए, और वापस आने में कुछ समय लग गया तो सामरी ने बनी-इसराईल को पथभ्रष्ट करने का षड़यंत्र रचा, जिसकी सूचना अल्लाह ने मूसा (عليه السلام) को तूर पर ही दे दी –

«कहा : हमने तेरी जाति को तेरे पीछे परीक्षा में डाल दिया, तथा उन्हें सामरी ने भटका दिया।» (सूरा–20, ता-हा, आयत–85)

अर्थात् बनी-इसराईल के लिए यह एक परीक्षा थी कि वे तौहीद पर क़ायम रह सकते हैं या नहीं ? सामरी ने बनी- इसराईल को कैसे भटकाया ?

उसने बनी-इसराईल से सोने के ज़ेवरात जमा किए, जो वे मिस्रियों से चोरी करके या जो उनके पास रखी आमानत थे, लेकर आ गए। फिर उसको आग में डालकर एक बछड़ा बना लिया और उसके मुँह में वही मिट्टी, जो रसूल के पद्-चिह्नों से उठाई थी, डाल दी, जिसके कारण बछड़े से आवाज़ निकलने लगी और कहा–

«यही तुम्हारा और मूसा का पूज्य है।» (सूरा–20, ता-हा, आयतें–87-88)

मगर क्या उनको यह बात समझ में नहीं आ रही थी कि यह बछड़ा उनको किसी प्रकार का लाभ या हानि नहीं पहुँचा सकता, बल्कि वह तो किसी बात का उत्तर भी नहीं दे सकता। (देखिए: सूरा–20, ता-हा, आयत–89)

हारून (عليه السلام) ने बनी-इसराईल को इससे बहुत रोका और कहा भी कि तुम्हारा वास्तविक रब तो रहमान है। मेरा अनुकरण करो तथा मेरी बात मानो, परन्तु उन्होंने कहा : मूसा के आने तक तो हम इसी की बंदगी करते रहेंगे। (देखिए: सूरा–20, ता-हा, आयतें–90-91)

मूसा (عليه السلام) जब वापस आए और अपनी जाति को बछड़े की पूजा करते देखा तो क्रोधित हो उठे और जो तख़्तियाँ तूर से लाए थे, जिनमें अल्लाह का संदेश था, नीचे डाल दीं और अपने भाई हारून (عليه السلام) का सिर पकड़कर खींचने लगे, कि तुमने इनको मना क्यों नहीं किया। हारून (عليه السلام) ने कहा–

«ऐ मेरी माँ के बेटे! इन्होंने मुझे कमज़ोर समझा और निकट था कि मुझे क़त्ल कर देते।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–150)

एक दूसरा कारण यह बताया कि मैं अगर इन पर सख़्ती करता तो ये बिखर जाते और फिर आप कहते–

«तूने बनी-इसराईल में विभेद डाल दिया और मेरी बात पर ध्यान न दिया।» (सूरा–20, ता-हा, आयत–94)

स्पष्ट है मूसा (عليه السلام) हारून (عليه السلام) की बातों से संतुष्ट हो गए होंगे। इसलिए अब सामरी की ओर मुतवज्जह हुए–

«(मूसा ने) पूछा, "ऐ सामरी! तेरा क्या मामला है!" उसने कहा, "मैंने वह कुछ देखा जिसे दूसरों ने नहीं देखा, तो मैंने रसूल के पद-चिह्नों से एक मुट्ठी (मिट्टी) उठा ली। फिर उसको उस (बछड़े) में डाल दी। इसी प्रकार मेरे जी ने मुझे पट्टी पढ़ाई।" (मूसा ने) कहा, "ठीक है तू जा, अब इस जीवन में तू यही कहता रहे 'मुझे न छूना'। और तेरे लिए (आख़िरत में यातना का) एक अन्य वचन भी है जो तुझ से कदापि नहीं टलेगा तथा अब तू अपने इस देवता को भी देख, जिसका तू पुरोहित बना है। हम इसे जला देंगे, फिर इसे चूर-चूर करके दरिया में बहा देंगे।" लोगो! तुम्हारा पूज्य तो केवल अल्लाह है, उसके अतिरिक्त कोई पूज्य नहीं, उसका ज्ञान सभी चीज़ों पर हावी है।» (सूरा–20, ता-हा, आयतें–95-98)

कहते हैं कि सामरी फिर पहाड़ों और जंगलों में चला गया और वहीं जानवरों के साथ रहने लगा और फिर वहीं मर गया, और जानवरों का भोजन बन गया।

साँप

साँप पृथ्वी पर रेंगनेवाला एक जीव है। क़ुरआन में केवल मूसा (عليه السلام) के वृत्तान्त में इसका वर्णन आया है। जब मूसा (عليه السلام) को अल्लाह ने चमत्कार दिखाना चाहा और कहा–

«ऐ मूसा! यह तेरे दाहिने हाथ में क्या है ? उसने कहा : यह मेरी लाठी है।» (सूरा–20, ता-हा, आयत–17)

अल्लाह को मालूम था कि उनके हाथ में लाठी है, परन्तु लाठी को साँप बनाकर दिखाना था इसलिए हुक्म हुआ–

«कहा, ''डाल दे इसे, ऐ मूसा !'' अतः उसने उसे डाल दिया। सहसा क्या देखते हैं कि वह एक साँप है, जो दौड़ रहा है। कहा, ''इसे पकड़ ले और डर मत। हम इसे इसकी पहली हालत पर लौटा देंगे।''» (सूरा–20, ता-हा, आयत–19,20 तथा सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–107)

फिर जब मूसा (عليه السلام) और जादूगरों के बीच फ़िरऔन के सम्मुख मुक़ाबला हुआ और जादूगरों ने अपनी रस्सियाँ और लाठियाँ डाल दीं और बोले–

«फ़िरऔन के प्रताप से हम ही विजयी रहेंगे। फिर मूसा ने अपनी लाठी फेंकी तो क्या देखते हैं कि वह उस स्वाँग को, जो वे रचाते थे, निगलती जा रही है। इसपर जादूगर सजदे में गिर पड़े और बोल उठे : हम सारे संसार के रब पर ईमान ले आए, मूसा और हारून के रब पर।» (सूरा–26, अश-शुअरा, आयतें–44-48)

संतान

प्रजनन से प्राणियों का वंश-क्रम चलता है। इसलिए मनुष्य को अल्लाह की महत्त्वपूर्ण देन संतान है। क़ुरआन में है–

«आकाशों और धरती का राज्य केवल अल्लाह के लिए है। वह जो चाहता है पैदा करता है, जिसे चाहता है पुत्रियाँ देता है और जिसे चाहता है पुत्र देता है। या उन्हें पुत्र और पुत्रियाँ मिला-जुलाकर देता है। और जिसे चाहता है निस्संतान रखता है। निश्चय ही वह सर्वज्ञ और सामर्थ्यवान है।» (सूरा–42, अश-शूरा, आयतें–49,50)

अल्लाह की इच्छा से ही सन्तानोत्पत्ति का क्रम चलता है। कोई उसके इस अधिकार में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। उपर्युक्त आयत में उन लोगों के लिए संदेश है जो संतान की खोज में पीरों,

फ़क़ीरों, क़ब्रों तथा मज़ारों का चक्कर काटते हैं। जो उन्हीं की तरह या उनसे भी निर्बल हैं। और फिर उनको अल्लाह का साझी बनाकर उनसे संतान माँगते हैं और इस बात को भूल जाते हैं कि संतान का देनेवाला तो केवल अल्लाह है। कोई उसके इस अधिकार में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

यहाँ इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि इसमें वे डॉक्टर, हकीम, वैध जो किसी रोगी का इलाज करते हैं वह इलाज इस आयत के विरुद्ध नहीं है, क्योंकि सहीह हदीसों में आया है–

"अल्लाह ने हर रोग की दवा पैदा की है।" (सहीह बुख़ारी, 5678)

इसलिए ये दवाएँ भी उसी समय काम करती हैं जब अल्लाह की इच्छा हो। क्या आपने कभी विचार नहीं किया कि एक ही दवा से एक रोगी स्वस्थ हो जाता है और दूसरा नहीं हो पाता।

इसी प्रकार आधुनिक साधनों के द्वारा संतान पैदा करने के सारे जतन वास्तव में अल्लाह ही की इच्छा पर निर्भर हैं। अगर वह न चाहे तो कुछ भी नहीं हो सकता। माता-पिता के मिलाप से जिसे चाहे पुत्र दे, जिसे चाहे पुत्री दे और जिसे चाहे पुत्र-पुत्रियाँ दोनों दे, और जिसे चाहे बाँझ बना दे। अतः हममें से प्रत्येक व्यक्ति को यह दुआ करते रहना चाहिए–

ऐ अल्लाह ! तू बड़ा महान है, तेरी महिमा अपार और असीम है। हम तेरा ही गुणगान करते हैं और केवल तेरी ही बन्दगी करते हैं और तुझी से सहायता चाहते हैं।

सोंठ

देखें, ज़ंजबील

साद

देखें, अलिफ़-लाम-मीम

सवाब

सवाब का अर्थ है बदला। यह बदला अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। परन्तु क़ुरआन में यह शब्द केवल अच्छे बदले के लिए प्रयुक्त हुआ है–

«जो संसार में अपने कर्मों का बदला चाहेगा हम उसे संसार ही में दे देते हैं। और जो आख़िरत में चाहता है उसे हम आख़िरत में देंगे। और हम कृतज्ञता करनेवाले को बहुत जल्द बदला देंगे।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–145)

अल्लाह उन लोगों को, जो अब तक ईमान नहीं लाए, संबोधित करके कहता है–

«कितना अच्छा होता अगर वे ईमान लाते, और अल्लाह के सत्कर्मी बन्दे बनते तो अल्लाह के यहाँ जो उनको बदला मिलता वह बहुत ही उत्तम होता, अगर वे इसको जानते।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–103)

इससे पता चलता है कि अल्लाह के यहाँ उत्तम बदला पाने के लिए ईमान और सदाचार दोनों का होना अनिवार्य है। केवल ईमान ही काफ़ी नहीं, क्योंकि कर्म ईमान का हिस्सा है, जिसके बिना ईमान सही नहीं हो सकता।

सवाब ही के अर्थ में एक शब्द क़ुरआन में और प्रयुक्त हुआ है जिसको अज्र (कर्म-फल), कहते हैं। इसका अर्थ है मज़दूर की मज़दूरी, अर्थात् अल्लाह पुण्य कर्म करनेवालों के कर्त्तव्य को यों ही अकारथ नहीं होने देता, बल्कि उसका कर्म-फल उसी प्रकार देता है जिस प्रकार एक मज़दूर को दिया जाता है।

«अल्लाह मोमिनों के कर्म-फल अकारथ नहीं करेगा।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–171)

«निश्चय ही हम सुधार करनेवालों के कर्म-फल को नष्ट नहीं करेंगे।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–170)

«निस्सन्देह अल्लाह उत्तमकारों का कर्म-फल अकारथ नहीं करता।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयत–120)

परन्तु इसके लिए अनिवार्य है कि –

1. ईमान के साथ सदाचार का पालन करनेवाला हो। (देखिए: सूरा–41, हा-मीम अस-सजदा, आयत–8)
2. अल्लाह से डरनेवाला तथा धैर्य रखनेवाला हो। (देखिए: सूरा–12, यूसुफ़, आयत–90)
3. किसी पुण्य कर्म का फल दुनियावालों से न माँगे बल्कि अल्लाह पर छोड़ दे। (देखिए: सूरा–12, यूसुफ़, आयत–104)

वह जो भी अच्छे कर्म कर रहा हो उसमें अल्लाह की प्रसन्नता अभीष्ट हो। इसलिए जितने भी रसूल आए उन्होंने बड़े स्पष्ट रूप से यह एलान कर दिया कि हमारे संदेश का अभिप्राय केवल अल्लाह की प्रसन्नता है। हम तुमसे कोई बदला नहीं माँगते, बल्कि हम तो केवल तुम्हें सत्य-मार्ग दिखाने आए हैं। अब यह तुमपर निर्भर करता है कि इसको ग्रहण करते हो या नहीं।

संघर्ष

संघर्ष को अरबी में मुहारबा कहते हैं। मुहारबा का अर्थ है किसी जत्थे या संगठन के द्वारा देश में उपद्रव मचाना, लोगों को लूटना, उनकी हत्या करना, उनकी स्त्रियों के साथ बलात्कार करना, घरों को आग लगाना, ऐसे लोगों को मुहारिब कहते हैं। क़ुरआन में इन्हीं लोगों की ओर संकेत किया गया है–

«जो अल्लाह और उसके रसूल से संघर्ष करें और धरती में उपद्रव मचाएँ, उनके लिए दंड यह है कि उनको बुरी तरह क़त्ल किया जाए या उनको सूली पर चढ़ा दिया जाए, या उनके हाथ और उनके पाँव विपरीत दिशाओं से काट दिए जाएँ या उनको देश से निकाल दिया जाए, यह तो उनके लिए संसार में अपमान तथा अनादर है और आख़िरत के लिए बड़ी यातना है।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–33)

यह कड़ा दंड वास्तव में दूसरों के लिए शिक्षा (इबरत) है, क्योंकि एक बार नबी (ﷺ) के समय में ऐसी ही एक घटना हुई थी जिसपर यह आयत उतरी और फिर कभी कोई ऐसी घटना नहीं घटी।

वह घटना यह है। उक़ल तथा उरैना क़बीले के कुछ लोग मुसलमान होकर मदीना आए। परन्तु मदीना का मौसम उनको रास नहीं आया और वे लोग बीमार पड़ गए, इस पर नबी (ﷺ) ने उनसे कहा, ''अगर तुम लोग चाहो तो मदीना के बाहर जो ज़कात के ऊँट पले हुए हैं वहाँ चले जाओ, और उनके मूत्र तथा दूध का प्रयोग करो।'' उन्होंने ऐसा ही किया। फलतः उनका स्वास्थ्य अच्छा हो गया। फिर उन्होंने ऊँटों के चरवाहे को क़त्ल कर दिया और ऊँटों का रेवड़ लेकर भाग निकले। जब इसकी सूचना नबी (ﷺ) को मिली तो आपने कुछ लोगों को भेजा, ताकि उन्हें पकड़कर लाया जाए। पकड़े जाने पर उनके हाथ पाँव काट दिए गए, आँखों में गर्म लोहे की सलाई फेर दी गई। उन्हें सूर्य की तपती हुई धूम में छोड़ दिया गया, यहाँ तक कि उनकी मृत्यु हो गई। (बुख़ारी, 233 तथा मुस्लिम 1671)

इस एक घटना के पश्चात् फिर किसी को इस प्रकार के उपद्रव का साहस नहीं हुआ, अर्थात् इस घटना ने कितनी जानों को बचा लिया। परन्तु उपद्रव करनेवाले पकड़े जाने से पूर्व अगर अपने आपको राज्य के सुपुर्द कर दें, तो उनका दंड क्षमा किया जा सकता है। क़ुरआन में है–

«परन्तु जिन लोगों ने पकड़े जाने से पूर्व तौबा कर ली, तो जान लो कि अल्लाह बड़ा क्षमाशील और दया करनेवाला है।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–34)

यह क्षमा केवल उस दंड तक सीमित है, जिसका संबंध राज्य से है। परन्तु जिसका संबंध किसी व्यक्ति से हो, चाहे वह क़त्ल हो या लूट-मार, जब तक वह क्षमा न कर दे क्षमा नहीं किया जाएगा, क्योंकि राज्य को यह अधिकार नहीं है कि लोगों के अधिकार को माफ़ कर दे।

ह
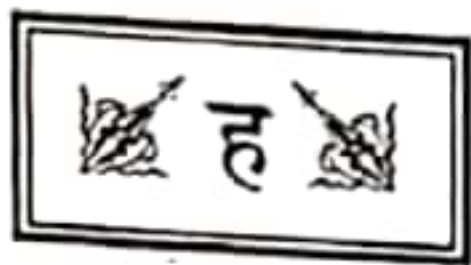
हाविया

हाविया का अर्थ है गहरी खाई। अर्थात् बुराई करनेवाले गहरी खाइ में गिरते चले जाएँगे। क़ुरआन में है –

«जिसके पलड़े हल्के होंगे, उसका ठिकाना हाविया है।» (सूरा–101, अल-क़ारिआ, आयतें–8,9)

अब कुछ उनके विषय में जिनका ठिकाना जहन्नम बताया गया है–

1. मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) और विधर्मी (अवज्ञाकारी)–

«निश्चय ही अल्लाह मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) और इस्लाम- विरोधियों (इनकार करनेवालों) को जहन्नम में एकत्र करनेवाला है।» (क़ुरआन, सूरा–4, अन-निसा, आयत–140)

2. अल्लाह के साथ किसी और को अपना पूज्य बनानेवाले–

«देखो, अल्लाह के साथ कोई दूसरा पूज्य-प्रभु न घड़ना, नहीं तो तिरस्कार तथा अपमान के साथ जहन्नम में डाल दिए जाओगे।» (क़ुरआन, सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–39)

3. अल्लाह को छोड़कर लोग जिनकी पूजा-पाठ करते हैं, वे भी जहन्नम के वासी होंगे–

«निश्चय ही तुम और वे कुछ जिनको तुम अल्लाह को छोड़कर पूजते हो, सब जहन्नम का ईंधन हो। तुम उसके घाट उतरोगे।» (क़ुरआन, सूरा–21, अल-अंबिया, आयत–98)

पूज्य के नरक में जाने का अर्थ है पूज्य वस्तु अर्थात मूर्तियाँ, न कि वह सदाचारी व्यक्ति जिसकी मूर्ति बनाकर पूजा जाता है।

आज लोग जिनकी पूजा कर रहे हैं, उन्होंने अपने जीवन में कभी अपनी पूजा की ओर किसी को नहीं बुलाया, बल्कि वे एकेश्वरवाद ही की शिक्षा देते रहे। उनकी मृत्यु के पश्चात् लोगों ने उनको पूज्य बना लिया। वे निर्णय के दिन साफ़-साफ़ कह देंगे कि हमने इन्हें कभी अपनी पूजा की ओर नहीं बुलाया, बल्कि इन्होंने ख़ुद ही हमें पूज्य बनाया। इस विषय में ईसा (عليه السلام) के बारे में यह विवरण पढ़िए–

«याद करो, जब अल्लाह कहेगा, ''ऐ मरयम के बेटे ईसा! क्या तुमने लोगों से कहा था कि अल्लाह के अतिरिक्त दो और पूज्य – मुझे और मेरी माँ – को बना लो ?'' वह कहेगा, ''महिमावान है तू! मुझसे यह नहीं हो सकता कि मैं वह बात कहूँ, जिसका मुझे कोई हक़ नहीं है। यदि मैंने यह कहा होता तो तुझे मालूम ही होता। तू जानता है, जो कुछ मेरे मन में है। निश्चय ही तू छिपी बातों को भली-भाँति जाननेवाला है। मैंने उनसे उसके सिवा कुछ नहीं कहा, जिसका तूने मुझे आदेश दिया था, यह ''कि अल्लाह ही की बन्दगी करो जो मेरा भी रब है और तुम्हारा भी रब है।'' और जब तक मैं उनमें रहा, उनकी ख़बर रखता था, फिर तूने मुझे उठा लिया तो फिर तू ही उनका निरीक्षक था। और तू हर चीज़ का साक्षी है।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयतें–116-117)

4. जहन्नम में जानेवालों में जिन्न तथा मनुष्य दोनों ही होंगे–

«निश्चय ही हमने बहुत-से जिन्नों और मनुष्यों को जहन्नम ही के लिए फैला रखा है।» (क़ुरआन, सूरा–7 अल-आराफ़, आयत–179)

इस प्रकार पवित्र क़ुरआन में जहन्नम (नरक) का विस्तृत वर्णन किया गया है, जिसका सारांश यह है कि मनुष्य इस संसार में जो कुछ करता है उसका आनेवाले जीवन पर प्रभाव पड़ेगा, वह जीवन जो मृत्यु के पश्चात् आरंभ होगा। जिन्होंने अच्छे कर्म किए होंगे उन्हें उस जीवन में सुफल और पुरस्कार मिलेगा और जिन्होंने बुरे कर्म किए होंगे उन्हें कुफल और कठोर दंड मिलेगा। ऐसा इसलिए होगा कि कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य के कर्मों का इस संसार में उचित और पूरा-पूरा बदला नहीं मिलता, जैसे कोई अत्याचारी अपने अत्याचार का परिणाम नहीं भुगतता, इसलिए प्रलय दिवस में जब वह अल्लाह की अदालत में प्रवेश करेगा तो उसे अवश्य ही अपने अत्याचार का परिणाम भुगतना पड़ेगा। उसे दुखदायी और यातनाप्रद जहन्नम में डाल दिया जाएगा। इसके विपरीत अच्छे कर्म करनेवालों को स्वर्ग में भेजा जाएगा, क्योंकि इसी प्रकार अल्लाह की न्याय-व्यवस्था क़ायम होगी।

हारून (अलैहिस्सलाम)

क़ुरआन में हारून नामक दो व्यक्तियों का वर्णन आया है, एक वे जो मूसा (अलैहिस्सलाम) के भाई थे, जिनको नबी बनाकर अल्लाह ने मूसा (अलैहिस्सलाम) के साथ फ़िरऔन के पास भेजा और दूसरे वे जो मरयम के भाई थे। यहाँ सबसे पहले मूसा (अलैहिस्सलाम) के भाई हारून (अलैहिस्सलाम) का वर्णन किया जा रहा है।

ये मूसा (अलैहिस्सलाम) से तीन वर्ष बड़े थे। मगर प्रश्न यह उठता है कि फ़िरऔन ने उनकी हत्या क्यों नहीं करवाई? क्योंकि फ़िरऔन तो बनी-इसराईल के पुरुषों की हत्या करवा देता था। उत्तर यह है कि हो सकता है उसने यह आदेश हारून (अलैहिस्सलाम) की पैदाइश के बाद दिया हो। कुछ इतिहासकारों का विचार

है कि जब फ़िरऔन ने बनी-इसराईल के पुरुषों की हत्या का आदेश दे दिया तो मिस्रियों ने देखा कि इस प्रकार तो बनी इसराईल के सभी पुरुष मारे जाएँगे, फिर हमारी सेवा तथा हमारे खेतों में काम कौन करेगा? इसलिए उन्होंने फ़िरऔन से अनुरोध किया कि एक वर्ष छोड़कर दूसरे वर्ष बनी-इसराईल के बालकों की हत्या की जाए तो उचित होगा। फ़िरऔन ने उनकी बात मान ली। इसलिए हो सकता है जिस वर्ष बालकों की हत्या न की गई हो उस वर्ष हारून (عليه السلام) पैदा हुए हों। तौरात और क़ुरआन से इनके बचपन के विषय में कुछ पता नहीं चलता।

सबसे पहले क़ुरआन में उनका वर्णन उस समय आया है जब अल्लाह ने मूसा (عليه السلام) को रसूल बनाकर फ़िरऔन और उसकी जाति के लोगों के पास भेजा तो मूसा (عليه السلام) ने अल्लाह से कहा–

«ऐ रब! मुझसे उनके एक व्यक्ति की जान गई है। इसलिए मैं डरता हूँ कि वे मुझे मार डालेंगे। मेरे भाई हारून की ज़बान मुझसे बढ़कर धारा प्रवाह है। अत: उसे मेरे साथ सहायक के रूप में भेज कि वह मेरी पुष्टि करे। मुझे भय है कि वे मुझे झुठलाएँगे।» (सूरा–28, अल-क़सस, आयतें-33,34)

दूसरे स्थान पर आया है–

«उसने कहा, ''ऐ मेरे रब! मुझे भय है कि वे मुझे झुठला देंगे और मेरा सीना घुटता है और मेरी ज़बान भली प्रकार नहीं चलती। इसलिए हारून की ओर भी सन्देश भेज दे।''» (सूरा–26, अश-शुअरा, आयतें-12,13)

अल्लाह ने दोनों को आदेश दिया कि तुम दोनों फ़िरऔन के पास जाओ। इसका विस्तृत विवरण तौरात में आया है। (देखिए: निर्गमन, 4:10-15) फिर ये दोनों फ़िरऔन के पास गए, लेकिन वही हुआ जिसका मूसा (عليه السلام) को भय था। उसने और उसकी जाति ने दोनों को झुठला दिया और कहने लगे–

«क्या हम अपने ही जैसे दो आदमियों पर ईमान लाएँ, जबकि स्वयं उनकी जातिवाले हमारे पास हैं।» (सूरा–23, अल-मोमिनून, आयत–47)

एक और वर्णन हारून (عليه السلام) का उस समय आता है जब मिस्र के सभी जादूगर पुकार उठते हैं–

«हम सारे संसार के रब पर ईमान ले आए–मूसा और हारून के रब पर।» (सूरा–26, अश-शुअरा, आयतें-47,48)

फिर तीसरा वर्णन क़ुरआन और तौरात में विस्तारपूर्वक उस समय आता है जब मूसा (عليه السلام) तूर नामक पर्वत पर अपने रब से तौरात लेने जाते हैं और अपने पीछे हारून को बनी-इसराईल का रखवाला बना जाते हैं। (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–142) परन्तु जब वे वापस आए तो क्या देखते हैं कि बनी-इसराईल ने एक सोने का बछड़ा बना लिया है और उसकी उपासना करने लगे हैं। (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–148) जिसपर मूसा (عليه السلام) क्रोधित हो उठते हैं–

«फिर मूसा अत्यन्त क्रोध और दुख की दशा में अपनी जाति की ओर पलटा।» (सूरा–20, ता-हा, आयत–86)

«मूसा ने कहा : ऐ हारून! जब तुमने देखा कि वे पथभ्रष्ट हो गए हैं तो किस चीज़ ने तुम्हें रोका ?» (सूरा–20, ता-हा, आयत–92)

मूसा (ﷺ) ने हारून (ﷺ) की दाढ़ी को पकड़कर उनको झंझोड़ा। जिसपर हारून (ﷺ) बोल पड़े–

«ऐ मेरी माँ के बेटे! मेरी दाढ़ी न पकड़ और न मेरा सिर। मुझे यह डर हुआ कि कहीं तू यह न कहे कि तुमने बनी-इसराईल में फूट डाल दी और मेरी बात का ध्यान नहीं रखा।» (सूरा–20, ता-हा, आयत–94)

एक दूसरे स्थान पर आया है–

«जब मूसा अत्यन्त क्रुद्ध और दुखी होकर अपनी जातिवालों की ओर पलटा तो उसने कहा, "तुम लोगों ने मेरे पीछे बहुत बुरा किया। क्या तुम अपने रब के आदेश से पहले ही जल्दी कर बैठे ?" उसने (तौरात की) तख़्तियाँ डाल दीं और अपने भाई के सिर को पकड़कर अपनी ओर खींचने लगा। उसने कहा, "ऐ मेरी माँ के पुत्र, इन लोगों ने मुझे निर्बल समझा, और निकट था कि मेरी हत्या कर डालते, तू ऐसा काम न कर कि शत्रु मुझ पर हँसें, और मुझे अत्याचार करनेवालों में सम्मिलित न कर।"» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–150)

क़ुरआन से भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि बछड़े को बनाने और पूजने में हारून (ﷺ) का कोई हाथ नहीं था। हाँ उन्होंने फूट के भय से बनी-इसराईल को कठोरता के साथ नहीं रोका। इसलिए मूसा (ﷺ) ने उनके साथ कठोर बर्ताव किया। परन्तु तौरात में जहाँ बहुत सारी ग़लतियाँ की हैं, वहीं यह ग़लती भी की गई है कि बछड़ा बनाने और उसकी पूजा-पाठ का काम हारून (ﷺ) से संबद्ध कर दिया गया है। (देखिए : निर्गमन अध्याय 32)

नबियों से जो ग़लत बातें संबद्ध कर दी गई हैं, क़ुरआन ने ज़ोरदार ढंग से उनका खंडन किया है और सच्ची बात प्रस्तुत कर दी है–

«हमने मूसा तथा हारून पर उपकार किया। और उनको तथा उनकी जातिवालों को बड़ी घुटन से छुटकारा दिया और उनकी सहायता की तो वही विजयी रहे, और हमने उन दोनों को स्पष्ट किताब दी और उन्हें सीधा मार्ग दिखाया, और हमने पीछे आनेवाली नस्लों में उसका अच्छा ज़िक्र छोड़ा कि "सलाम है मूसा तथा हारून पर।" निस्सन्देह हम उत्तमकारों को ऐसा ही बदला देते हैं। निश्चय ही वे दोनों हमारे ईमानवाले बन्दों में से थे।» (सूरा–37, अस-साफ़्फ़ात, आयतें-114-122)

तौरात से पता चलता है कि बनी-इसराईल ने हारून (عليه السلام) को अपना पहला पुरोहित चुना। (देखिए: निर्गमन, 40:12-15) और चालीस वर्ष तक वे इस पद पर रहे। उनके पश्चात् यह पद उनकी संतान को मिला। मृत्यु के समय उनकी उम्र 123 वर्ष थी। सीना के किसी पर्वत पर उनकी क़ब्र है। आजकल वहाँ एक मस्जिद बना दी गई है। और अब उस पर्वत को हारून पर्वत कहते हैं। तौरात से यह भी पता चलता है कि उनका देहान्त मूसा (عليه السلام) से पहले हो गया था। (देखिए: गिनती, 20:22-29)

दूसरा हारून वह है जिसका वर्णन क़ुरआन में आया है। वह अपनी बहन मरयम को धिक्कारते और शर्म दिलाते हुए कहता है –

«ऐ हारून की बहन! न तेरा पिता कोई बुरा आदमी था और न तेरी माता कोई बदचलन थी।» (सूरा–19, मरयम, आयत–28)

हारून की बहन

पवित्र क़ुरआन में ईसा (عليه السلام) की माँ मरयम को हारून की बहन कहा गया है। धर्मग्रंथों के अनुसार हज़रत मरयम को न तो किसी आदमी ने हाथ लगाया था और न ही किसी जिन्न ने, फिर भी वह अविवाहितावस्था में ही एक बच्चे की माँ बन गई थीं। यह अल्लाह का बहुत बड़ा चमत्कार था। जब वह उस बच्चे को गोद में लेकर अपनी जातिवालों के पास आईं तो उनकी जातिवालों ने उन्हें धिक्कारते और शर्म दिलाते हुए हारून की बहन कहकर संबोधित किया। पवित्र क़ुरआन में इसी स्थिति का वर्णन इन शब्दों में हुआ है–

«फिर वह बच्चे को लिए हुए अपनी जाति की ओर आई। लोग कहने लगे, "ऐ मरयम! यह तू ने बड़ा पाप किया। ऐ हारून की बहन, न तेरा पिता कोई बुरा आदमी था और न तेरी माँ ही बदचलन थी।"» (सूरा–19, मरयम, आयतें-27-28)

ये हारून कौन है? विद्वानों का इसमें मतभेद है। कुछ का विचार है इससे अभीष्ट मूसा के भाई हारून हैं, क्योंकि मरयम उन्हीं के वंश की थीं। इसलिए उनकी ओर संबद्ध करके मरयम को यह लज्जा दिलाई जा रही है कि तू हारून जैसे नबी के वंश से है और तेरे पूर्वज बदकार नहीं थे।

दूसरे यह भी हो सकता है कि मरयम के हारून नाम का कोई भाई हो जो अपनी जाति में सच्चरित्र प्रसिद्ध हो। कुछ लोग उसे जानते हों, क्योंकि मरयम तथा उनके वंश के विषय में हमारे पास बहुत कम ज्ञान है। इसकी पुष्टि एक हदीस से भी होती है जिसको मुस्लिम ने अपनी सहीह हदीसों में बयान किया है कि लोग नबियों तथा सच्चरित्र लोगों के नामों पर नाम रखा करते थे। इसलिए हो सकता है कि मरयम के किसी भाई का नाम हारून रहा हो। (सहीह मुस्लिम, आदाब-9, 3:1785)

तीसरे यह कि यह कोई चरित्रवान् व्यक्ति बनी-इसराईल में था। मरयम (عليها السلام) उसकी वास्तविक बहन तो नहीं थीं, परन्तु उसी के वंश से थीं। यही विचार क़तादा इत्यादि विद्वानों का है। क़ुरआन में इस तरह की और भी व्याख्या आई है। जैसे–

«आद की ओर उनके भाई हूद को भेजा।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–65)

हूद (عليه السلام) उस पूरी (आद) जाति के वास्तविक भाई तो नहीं थे परन्तु उनको उस पूरी जाति का भाई कहकर पुकारा गया।

हामान

यह फ़िरऔन का मंत्री था। जब मूसा (عليه السلام) को अल्लाह ने फ़िरऔन के पास भेजा तो यह फ़िरऔन के साथ मिलकर आपका मुक़ाबला करता था, बल्कि एक बार तो फ़िरऔन ने उसको आदेश दिया कि एक ऐसा ऊँचा भवन बनवाए जिसपर चढ़कर वह उस अल्लाह की खोज लगाएगा जिसकी ओर से मूसा (عليه السلام) को भेजा गया है–

«फ़िरऔन ने कहा, ''ऐ मूसा, मैं तो अपने अतिरिक्त तुम्हारे किसी पूज्य (इलाह) को नहीं जानता। अच्छा तो ऐ हामान! तू हमारे लिए मिट्टी (की ईंटों) को आग में पकाकर एक ऊँचा भवन बना, ताकि मैं मूसा के पूज्य (इलाह) को उसमें झाँक कर देखूँ और मैं तो इसे झूठों में से समझता हूँ।''» (क़ुरआन, सूरा–28, अल-क़सस, आयत–38)

«फ़िरऔन ने कहा : ऐ हामान! मेरे लिए एक उच्च भवन बना, सम्भव है मैं उन मार्गों पर पहुँच जाऊँ जो आकाश में हैं। फिर मूसा के पूज्य (इलाह) को तो देखूँ। वास्तव में मैं तो उसे झूठा विचार करता हूँ।» (सूरा–40, अल-मोमिन, आयतें-36,37)

बिगड़े हुए मनुष्यों की यह वह मूर्खता है जो तीन हज़ार सालों से चली आ रही है, क्योंकि आज भी कभी-कभी ऐसे मूर्खों के विषय में समाचारपत्रों में यह पढ़ने को मिलता है कि अमुक व्यक्ति ने आकाश में जाकर अल्लाह को तलाश किया। परन्तु वह उसको नहीं मिला। विशेषकर कम्यूनिस्ट नेता और अल्लाह पर विश्वास न करनेवाले वैज्ञानिक। परन्तु इन लोगों को कौन समझाए कि मूसा (عليه السلام) ने और दूसरे नबियों ने जिस अल्लाह की ओर बुलाया है, वह किसी व्यक्ति के रंग-रूप का नहीं, निराकार है। वह तो बड़ा विराट है, जिसको नेत्रों के द्वारा नहीं देखा जा सकता। (देखिए : सूरा–6, अल-अनआम, आयत–103)

फ़िरऔन और हामान की कोई युक्ति न तो सफल होनी थी और न हुई। मूसा (عليه السلام), जिनको फ़िरऔन ने अपना शत्रु बना रखा था, उसी के घर में पलते-बढ़ते रहे। निश्चय ही फ़िरऔन, हामान और उसकी सेना से बहुत बड़ी चूक हो गई और वे मूसा (عليه السلام) की दावत को दबाने में असफल रहे। (देखिए : सूरा–28, अल-क़सस, आयत–8)

कुछ यूरोपीय विद्वानों ने यह आशंका व्यक्त की है कि तौरात में हामान नामक जिस व्यक्ति का वर्णन आया है वह मूसा (عليه السلام) के बहुत बाद का एक ईरानी राजा का मंत्री था, जो किसी प्रकार राजा से यह आदेश जारी कराने में सफल हो गया था कि सारे ईरानी यहूदियों की हत्या कर दी जाए। परन्तु मुर्दख़ाई नामक एक यहूदी ने स्तीर नामक एक कुमारी के द्वारा राजा के इस आदेश को वापस करवा दिया और स्वयं हामान की हत्या का आदेश जारी करा दिया। बाइबल की सत्तरहवीं पुस्तक एस्तेर में इसका विस्तृत वर्णन हुआ है। परन्तु यहाँ प्रश्न उठता है कि हमें यह कैसे मालूम हो गया कि फ़िरऔन के किसी मंत्री का नाम हामान नहीं था? क्या हमारे पास उसके मंत्रियों की कोई सूची है, जिसमें उसका नाम नहीं लिखा है। जब ऐसा नहीं है तो फिर उसमें आशंका का कोई कारण नहीं है। क़ुरआन ने उसका वर्णन एक से अधिक स्थानों पर किया है और हदीस से भी उसकी पुष्टि होती है, जैसा कि अदुल्लाह-बिन-अम्र ने बयान किया कि एक दिन नबी (ﷺ) ने फ़रमाया–

"जिसने इन सलातों (नमाज़ों) को अच्छे तरीक़े से अदा किया, उनके लिए प्रलय के दिन प्रकाश, प्रमाण तथा मुक्ति होगी, और जिसने अच्छे तरीक़े से अदा नहीं किया, उनके लिए न प्रकाश होगा, न प्रमाण तथा न ही मुक्ति और वह क़ारून, फ़िरऔन, हामान, तथा उबय-बिन-काब के साथ होंगे।" (मुस्नद अहमद, 2:169, दारमी, 2:301)

मिस्र के एक बड़े देवता का नाम अमोन (AMON) है। इसलिए यह कोई अचम्भे की बात नहीं कि इस देवता के किसी पुजारी का नाम हामान हो, क्योंकि दोनों शब्दों में कुछ अधिक भिन्नता नहीं है। या फिर यही अमोन जिसके नाम पर किसी मंत्री का नाम था, फिर अरबी भाषा में हामान बन गया हो। इन दोनों नामों में स्वर-साम्य पाया जाता है।

हूद (عليه السلام)

हूद (عليه السلام) अरब के पैग़म्बरों में से एक थे। हूद (عليه السلام) वे पहले पैग़म्बर हैं जिन्हें नूह (عليه السلام) के बाद अरब निवासियों की ओर भेजा गया। उनकी जाति का नाम आद था, जो नूह के बाद बड़ी जातियों में से एक थी–

«और हमने आद की ओर उनके भाई हूद को भेजा। उसने कहा, "ऐ मेरी जातिवालो, अल्लाह की इबादत करो। उसके सिवा कोई तुम्हारा इलाह (पूज्य) नहीं, तो क्या तुम डरते नहीं?" और याद करो जब अल्लाह ने नूह की जाति के बाद तुम्हें उत्तराधिकारी (ख़लीफ़ा) बनाया और शारीरिक दृष्टि में भी तुम्हें अधिक विशालता दी।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयतें-65-69)

इससे पता चलता है कि आद जाति, जिनकी ओर हूद (عليه السلام) को भेजा गया था, नूह (عليه السلام) के बाद की कोई जाति है। कुछ इतिहासकारों ने हूद (عليه السلام) को साम-बिन-नूह का पर पोता बताया है और उनकी वंशावली इस प्रकार प्रस्तुत की है–

हूद पुत्र शालह पुत्र अर्फ़क़्शाद पुत्र साम पुत्र नूह।

लेकिन प्रश्न यह उठता है कि क्या तूफ़ान के बाद केवल सात पुश्तों में आद नामक जाति इतनी बड़ी बन गई, जिसके समान कोई दूसरी जाति नहीं बन सकी। उत्तर यह है कि या तो यह वंशावली कुछ अधिक विश्वास के लायक़ नहीं है या फिर उन लोगों की आयु हमसे अधिक हुआ करती थी, क्योंकि आद नामक जाति और हूद के बीच में तो केवल तीन पीढ़ियाँ हैं। जैसा कि एक दूसरा इतिहासकार लिखता है–

हूद पुत्र अब्दुल्लाह पुत्र रवाह पुत्र ख़लूद पुत्र आद पुत्र अवस पुत्र अरम पुत्र साम पुत्र नूह।

उत्तर कुछ भी हो, यह बात विश्वास के साथ कही जा सकती है कि आद जाति अपने समय की बहुत बड़ी जाति थी। इसके निवास स्थान के विषय में लोगों का विचार है कि यह यमन में हज़रमौत के निकट कहीं आबाद थी, जो स्थान आज रेगिस्तान में बदल चुका है, जहाँ कोई जीवित नहीं रह सकता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि ये लोग यमन से निकलकर इराक़ और शाम तक फैल गए थे। परन्तु इतिहास से इस बात की पुष्टि नहीं होती क्योंकि इनको अपने ही स्थान पर नष्ट कर दिया गया। वह भी ऐसे कि कोई निशानी तक न बच सकी, जिसका वर्णन आगे आएगा। फिर इनको मिस्र के ऊँचे-ऊँचे पिरामिड का निर्माता कहना कुछ सत्य नहीं लगता। परन्तु यह एक शक्तिशाली जाति थी।

«तो आद जो थे वे नाहक़ भूमि में बड़े बने और कहा, ''कौन शक्ति में हमसे बढ़कर है।'' क्या उन्होंने नहीं देखा कि अल्लाह, जिसने उन्हें पैदा किया वह, उनसे शक्ति में बढ़कर है? वे हमारी आयतों का इनकार ही करते रहे।» (सूरा–41, अस-सजदा, आयत–15)

«क्या तुमने देखा नहीं कि तुम्हारे रब ने क्या किया आद के साथ, स्तम्भोंवाले इरम के साथ? वे ऐसे थे जिनके समान सारे देश में पैदा नहीं हुए।» (सूरा–89, अल-फ़ज्र, आयतें-6-8)

अर्थात् जिस समय यह जाति थी उस समय उस जैसी कोई और जाति नहीं थी। ये लोग ऊँचे-ऊँचे स्तम्भों को बनाते थे और उनमें रहते थे, अर्थात् उस समय उनसे प्रभावशाली कोई जाति नहीं थी। परन्तु जब वे अल्लाह को छोड़कर देवी-देवताओं की पूजा करने लगे, नबी की बार-बार चेतावनी के बावजूद सत्य-मार्ग को ग्रहण नहीं किया, बल्कि नबी ही को निर्बुद्धि और झूठा कहा (आराफ़ 7:67) तो उनको अल्लाह की यातना ने ऐसा घेरा कि फिर वे संसार से मिट गए, जिसका वर्णन आगे आ रहा है। इनके तीन बड़े बुत थे जिनकी ये पूजा किया करते थे। वे ये हैं–

समदा, समूदा और हरा।

हूद अलैहिस्सलाम और पहले आद की बस्तियां
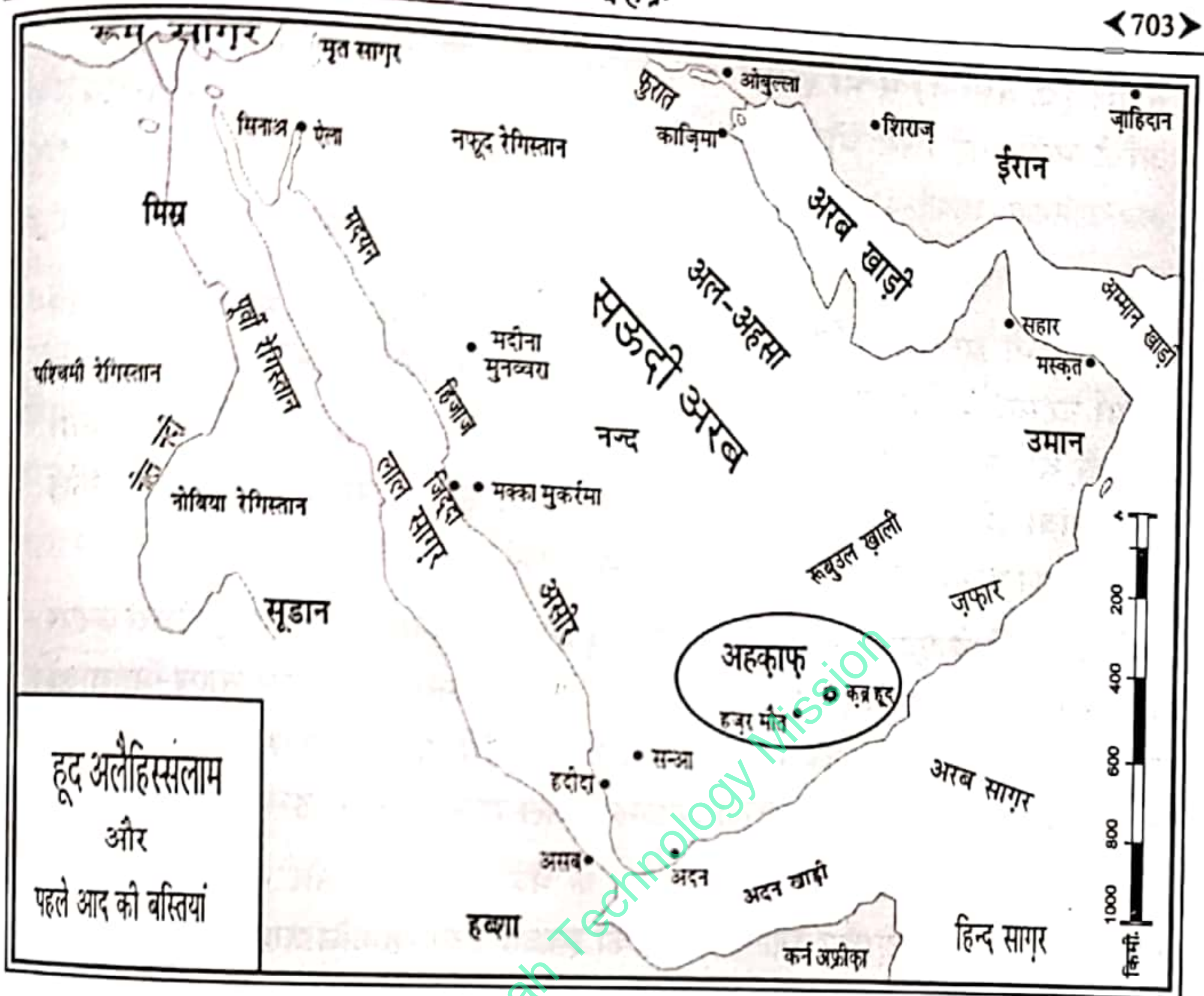
सभी नबियों का आह्वान और आमंत्रण एक अल्लाह की इबादत था। इसलिए हूद (अलैहि०) ने भी अपनी जाति को मूर्ति-पूजा से रोका और उसे एक अल्लाह की पूजा की ओर बुलाया, जिसने आकाशों और पृथ्वी को पैदा किया, जो हमारा पालनहार है। परन्तु हूद की जाति ने भी दूसरी जातियों की तरह अपने नबी को झुठलाया और उनकी बात मानने से इनकार कर दिया—

«याद करो आद के भाई (हूद) को, जब उसने अपनी जातिवालों को अहक़ाफ़ में सचेत किया। और इससे पहले और इसके पश्चात भी सचेत करनेवाले गुज़र चुके हैं। उसने कहा, "अल्लाह के अतिरिक्त किसी और की इबादत न करो। मुझे तुम्हारे बारे में एक बड़े दिन की यातना का भय है।" उन्होंने कहा : क्या तू हमारे पास इसलिए आया है कि हमको हमारे इलाहों (पूज्य देवताओं) से फेर दे? अच्छा, तो हम पर ले आ जिस (यातना) की तू हमें धमकी देता है, यदि तू सच्चे लोगों में से है।» (सूरा–46, अल-अहक़ाफ़, आयतें-21,22)

अहक़ाफ़ से अभीष्ट वह मरुस्थल है जो अरब के दक्षिण में स्थित है। यह कभी हरा-भरा था, इसमें आद की जाति थी। जहाँ ईश-धर्म का निमंत्रण लेकर हूद (अलैहि०) आए। परन्तु उन्होंने नबी के निमंत्रण को ठुकरा दिया, जिसके कारण उनको यातना ने घेर लिया। देखिए इस विषय में क़ुरआन क्या कहता है—

«आद (के वृत्तान्त) में भी (शिक्षा-प्रद निशानी है), जब हमने उनपर उजाड़ देनेवाली आँधी भेजी, वह जिस चीज़ पर से भी गुज़रती उसे चूरा-चूरा कर देती।» (सूरा–51, अज़्-ज़ारियात, आयतें-41,42)

अल्लाह तआला ने फ़रमाया–

«आद ने भी झुठलाया। फिर देख लो कैसी रही मेरी यातना, और मेरा डराना। हमने उनपर नहूसत के दिन बहुत भयानक हवा चलाई। वह लोगों को इस प्रकार उखाड़ फेंकती थी, मानो वे खजूर के उखड़े हुए तने हैं। तो देखो कैसी रही मेरी यातना और मेरा डरावा और हमने क़ुरआन को शिक्षा के लिए, सुगम बना दिया है। क्या है कोई शिक्षा ग्रहण करनेवाला?» (सूरा–54, अल-क़मर, आयतें-18-22)

«रहे आद, तो वे एक अनियंत्रित प्रचण्ड वायु के द्वारा विनष्ट कर दिए गए, जिसे उनपर सात रात और आठ दिन तक चलाए रखा, जिसमें उनका सब कुछ तहस-नहस हो गया। बस देखो वे लोग इसमें ढेर हो गए। जैसे खजूरों के खोखले तने हों। क्या अब उनमें से कोई शेष दिखाई देता है?» (सूरा–69, अल-हाक़्क़ा, आयतें-6-8)

यह है उस जाति का अंजाम जिसने अल्लाह के भेजे हुए रसूलों और नबियों को झुठलाया। अल्लाह की इबादत को छोड़कर देवी-देवताओं की इबादत करते रहे और तरह-तरह की बुराइयों में पड़े रहे। हूद (ﷺ) और उन पर ईमान लानेवाले एकेश्वरवादी लोग उनके देश पर अल्लाह का अज़ाब (प्रकोप) आ जाने के तत्पश्चात कहाँ गए, इस विषय में क़ुरआन और सहीह हदीसों में कुछ नहीं मिलता। इसलिए हम पूरे विश्वास के साथ कुछ नहीं कह सकते। कुछ लोगों का विचार है कि हज़रमौत में दो क़ब्रें हैं, जिनमें से एक हूद (ﷺ) की और दूसरी सालेह (ﷺ) की। कुछ लोगों का विचार है कि हूद (ﷺ) भी दूसरे नबियों की तरह मक्का चले गए और वहीं उनका देहान्त हो गया। परन्तु किसी सहीह हदीस से इसकी पुष्टि नहीं होती।

हदीस

इससे अभिप्राय है नबी (ﷺ) का कथन और कर्म। किसी का आप (ﷺ) के सामने कोई काम करना, या कुछ कहना और आप (ﷺ) का उसपर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न करना भी हदीस के अन्तर्गत आता है। वैसे इसको इस्लामी परिभाषा में तक़रीर कहते हैं। यह उर्दूवाली तक़रीर (भाषण) नहीं है, बल्कि इसका अर्थ है किसी बात पर नबी (ﷺ) ने इनकार नहीं किया।

यूँ तो क़ुरआन में इस अर्थ में हदीस का वर्णन नहीं आया है, परन्तु क़ुरआन में नबी (ﷺ) के इस कथन और कर्म को विभिन्न तरीक़ों से बयान किया गया है, जैसे –

«रसूल तुम्हें जो कुछ दे, उसे ग्रहण करो और जिस चीज़ से तुम्हें रोके उससे रुक जाओ और अल्लाह का डर रखो। निस्सन्देह अल्लाह कड़ी यातना देनेवाला है।» (सूरा–59, अल-हश्र, आयत–7)

इसी प्रकार अल्लाह का यह आदेश–

«किसी ईमानवाले पुरुष, और ईमानवाली स्त्री को यह हक़ नहीं है कि जब अल्लाह और रसूल किसी बात का निर्णय कर दें तो फिर उन्हें अपने मामले में कोई अधिकार शेष रहे। जो कोई अल्लाह और उसके रसूल की अवज्ञा करे तो वह खुला गुमराही में पड़ गया।» (सूरा-33, अल-अहज़ाब, आयत–36)

एक स्थान पर उन लोगों को सचेत किया गया है जो रसूल (ﷺ) की अवज्ञा करते हैं–

«ऐ ईमानवालो, अपने बीच रसूल को इस प्रकार मत पुकारो जिस प्रकार तुम एक दूसरे को पुकारते हो। निस्सन्देह अल्लाह उन लोगों को भली-भाँति जानता है जो तुममें से आँख बचाकर निकल जाते हैं। तो जो लोग उसके आदेश की अवज्ञा करते हैं, उनको डरना चाहिए फिर ऐसा न हो कि उनपर कोई आज़माइश आ पड़े या वे दुखद यातना में पड़ जाएँ।» (सूरा–24, अन-नूर, आयत–63)

इस्लाम में हदीस का बड़ा महत्व है। इस्लाम के दो ही मूल स्रोत हैं, एक क़ुरआन और दूसरा हदीस। हदीस की इसी महत्ता के कारण, मुस्लिम विद्वान प्रारम्भ से ही हदीसों को इकंट्ठा करने की चेष्टा करते रहे। इन विद्वानों को मुहद्दिस (हदीस-विशेषज्ञ) कहते हैं। हदीसों की रिसर्च और जाँच-परख के लिए उन्होंने कुछ नियम निश्चित किए, ताकि सहीह और ज़ईफ़ हदीस को परखा जा सके।

जैसे सहीह हदीसों के लिए निम्नलिखित शर्तें लगाईं–

1. उसकी सनद मुसलसल हो अर्थात् बीच में कोई ऐसा रावी न हो, जिसने अगले रावी से हदीस न सुनी हो।
2. सनद का हर रावी न्यायशील (आदिल) हो।
3. सनद का हर रावी दृढ़ स्मरण-शक्ति रखता हो।
4. वह हदीस शाज़ न हो, अर्थात किसी अपने से ऊँचे रावियों के विरुद्ध न हो।

हदीस की जिस सनद में ये शर्तें पाई जाएँगी, उसको सहीह कहा जाएगा और जिस सनद में इनमें से कोई भी शर्त लुप्त हो जाएगी उसे ज़ईफ़ कहा जाएगा। हदीस का ज्ञान एक स्थायी विद्या है, जिसपर बहुत सारी पुस्तकें लिखी गई हैं। इसके लिए मेरी अरबी पुस्तक 'मुअ्जम मुस्तलिहात हदीस' लाभदायक है, जो अब उर्दू भाषा में भी प्रकाशित हो गई है। इस समय हदीस की मुख्य पुस्तकें ये हैं–

1. **सहीह बुख़ारी :** इसके रचयिता इमाम अबू-अब्दुल्लाह-मुहम्मद बिन इसमाईल बुख़ारी हैं, जो सन 194 हिजरी में पैदा हुए, और 256 हिजरी में उनका देहान्त हुआ। इस किताब की सभी हदीसें सहीह हैं, जिनकी संख्या बिना पुनरावृत्ति के 2602 बनती है। जबकि पुनरावृत्ति की स्थिति में इनकी संख्या 9082 है, जैसाकि इस किताब के प्रसिद्ध भाष्यकार हाफ़िज़ इब्ने-हजर ने अपनी किताब फ़त्हुलबारी में बताया है।
2. **सहीह मुस्लिम :** इसके रचयिता इमाम मुस्लिम-बिन-अल-हज्जाज नेशापूरी हैं, जो सन 204 हिजरी में नेशापुर में पैदा हुए, और सन 261 हिजरी में उनका देहान्त हुआ। इस किताब की भी सभी हदीसें सहीह हैं, जिनकी संख्या बिना पुनरावृत्ति के 3033 और पुनरावृत्ति की स्थिति में 7390 है। जैसा कि मशहूर-बिन-हसन ने अपनी पुस्तक 'इमाम मुस्लिम और आपकी किताब सहीह मुस्लिम' में बताया है।
3. **सुनन अबू दाऊद :** इसके रचयिता इमाम अबू-दाऊद हैं जो सन् 202 हिजरी में पैदा हुए और सन् 275 हिजरी में इस नश्वर संसार से चल बसे। इस पुस्तक में कुल 4080 हदीसें हैं, परन्तु इनमें सब सहीह नहीं हैं।
4. **सुनन तिरमिज़ी :** इसके रचयिता इमाम अबू-ईसा मुहम्मद-बिन-ईसा तिरमिज़ी हैं, जो सन 209 हिजरी में पैदा हुए और सन 279 हिजरी में उनका देहान्त हुआ। इनकी हदीसों की संख्या लगभग 3956 है, परन्तु इनमें से कुछ हदीसें सहीह नहीं हैं।
5. **सुनन नसई :** इसके रचयिता इमाम नसई हैं, जो सन 215 हिजरी में पैदा हुए और सन 303 हिजरी में उनका निधन हो गया। इनकी हदीसों कि संख्या लगभग 5758 है। परन्तु इनमें से कुछ हदीसें सहीह नहीं हैं।
6. **सुनन इब्ने-माजा :** इसके रचयिता इमाम इब्ने-माजा हैं, जो सन 209 हिजरी में पैदा हुए और सन 273 हिजरी में उनका निधन हो गया। इनकी हदीसों की संख्या 4341 है। इनमें से कुछ हदीसें सहीह नहीं हैं। इसलिए मुहद्दिस शैख़ अल्बानी ने अन्तिमो-ल्लिखित चार पुस्तकों में से हर एक को दो भागों में बाँटा है–

एक सहीह, दूसरी ज़ईफ़ अर्थात् सहीह अबू-दाऊद और दूसरी ज़ईफ़ अबू-दाऊद; सहीह तिरमिज़ी और दूसरी ज़ईफ़ तिरमिज़ी; सहीह नसई और दूसरी ज़ईफ़ नसई; सहीह इब्ने-माजा और दूसरी ज़ईफ़ इब्ने-माजा।

इन छह ग्रन्थों को मिलाकर 'सिहाह सित्ता' भी कहा जाता है, जिसका अर्थ है छह सही किताबें। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इन छह किताबों में जो कुछ है सब सहीह है। बल्कि जैसा बताया गया सहीह बुख़ारी तथा सहीह मुस्लिम के अतिरिक्त शेष चार किताबों में कुछ ज़ईफ़ हदीसें भी पाई

जाती हैं। इस लिए 'सिहाह सित्ता' का अर्थ है कि इन पुस्तकों में अधिकतर हदीसें सहीह हैं। हदीस की दूसरी प्रसिद्ध पुस्तकों में मुस्नद इमाम अहमद है, जिसके रचयिता इमाम अहमद-बिन-हम्बल हैं, जो सन 164 हिजरी में मरो में पैदा हुए और सन 241 हिजरी में इस दुनिया से चल बसे। उनकी इस पुस्तक में हदीसों की संख्या 24647 है, जो नई रिसर्च के साथ पचास भागों में प्रकाशित हुई है। इसके अन्तिम पाँच भाग केवल विषय सूची हैं।

हदीस की पुस्तकों की सही-सही संख्या बता पाना सम्भव नहीं है। इसके लिए कत्तानी (देहान्त सन् 1345 हिजरी) की किताब 'अर्रेसाला मुस्ततरफ़ा' देखना लाभदायक है।

परन्तु सहीह हदीसों की संख्या मेरे विचार में पन्द्रह हज़ार के निकट है। इनपर मैं कई वर्षों से काम कर रहा हूँ। इसका नाम अल-जामिउल कामिल रखा गया है। आशा है कि 15 से 16 भागों में यह काम पूरा हो जाएगा।

हम्मालतल-हतब

इसका अर्थ है सिर पर ईंधन उठाने वाली। यह संकेत है अबू-लहब की पत्नी की ओर, जो अपने पति की तरह नबी (ﷺ) पर ईमान नहीं लाई, बल्कि जब भी अवसर मिलता आप (ﷺ) को कष्ट पहुँचाने का प्रयत्न करती। उसके विषय में क़ुरआन में अल्लाह ने यह कहा–

«उसकी स्त्री भी जो ईंधन लादे होगी। उसके गले में खजूर के रेशों की बटी हुई रस्सी पड़ी होगी।» (सूरा–111, अल-लहब, आयतें-4,5)

इसका नाम अरवा-बिन्ते-हरब था जिसका पिता हरब-बिन-उमैया और भाई अबू-सुफ़ियान-बिन-हरब मक्का के सरदारों में थे। उसके सिर पर सदैव ताज और गले में मोतियों का हार लटकता रहता था। उसके विषय में यह कहा जाता है कि प्रलय के दिन वह अपने सिर पर लकड़ी उठाए होगी और गले में रस्सी पड़ी होगी और वह अपने पति अबू-लहब के साथ इसी दशा में नरक में प्रवेश करेगी। इस आयत में एक भविष्यवाणी है कि ये दोनों कदापि इस्लाम स्वीकार नहीं करेंगे बल्कि इसी दशा में इनकी मृत्यु होगी और फिर ऐसा ही हुआ।

इतिहास की कुछ पुस्तकों से पता चलता है कि संसार में भी इसके साथ कुछ ऐसी ही दुर्घटना हुई कि एक दिन वह नबी (ﷺ) को कष्ट पहुँचाने के लिए पहाड़ों से काँटेदार लकड़ियाँ चुनकर ला रही थी, ताकि उनको नबी (ﷺ) के रास्ते में डाल दे, कि अचानक गट्ठर की रस्सी गले में आ पड़ी जिससे उसका गला घुट गया और उसके शरीर से प्राण निकल गए।

यह है उस बद क़िस्मत औरत का परिणाम, जो इस्लाम की शत्रुता में यहाँ तक बढ़ गई थी कि नबी (ﷺ) के रास्ते में काँटे बिछाया करती थी।

हुनैन का युद्ध

हुनैन एक बस्ती का नाम है, जो मक्का और ताइफ़ के बीच में है। मक्का की फ़तह (विजय) के बाद इस बस्ती के सरदारों ने एक सम्मेलन किया, जिसमें उन्होंने निर्णय लिया कि इस्लाम बड़ी तेज़ी से फैल रहा है। जिस मक्का से मुहम्मद (ﷺ) तथा उनके अनुयायियों को निकाल दिया गया था, अब वह भी इस्लाम में प्रवेश कर गया है। इसलिए हो सकता है कि कल इस्लामी सेना हमारी ओर न बढ़ने लगे। इसलिए आवश्यक हो गया है कि उसपर आक्रमण कर दिया जाए।

इसकी सूचना नबी (ﷺ) को मिली तो आपने अपने साथियों को हुनैन की ओर बढ़ने का आदेश दिया। उस समय इस्लामी सैनिकों की संख्या बारह हज़ार तक पहुँच चुकी थी। दस हज़ार वे जो मदीना से आए थे और दो हज़ार वे जिन्होंने मक्का में अभी-अभी इस्लाम स्वीकार किया। अब तक के युद्धों में यह इस्लाम की सबसे बड़ी सेना थी। 10 शव्वाल 8 हिजरी/फ़रवरी 630 ई. को इस्लामी सेना हुनैन पहुँच गई। अभी युद्ध आरम्भ भी नहीं हुआ था कि मुसलमानों के दिलों में यह घमंड आ गया कि आज तो हम विजयी होकर रहेंगे। यह बात अल्लाह को पसन्द नहीं आई क्योंकि मुसलमान कभी अपने ऊपर घमंड नहीं करता, विजयी होना या पराजित होना सब अल्लाह के हाथ में है। मुसलमानों को सदैव अल्लाह पर भरोसा करना चाहिए परन्तु यह आवश्यक है कि वे अपनी शक्ति को बढ़ाने की निरंतर चेष्टा करते रहें। जैसा कि अल्लाह का आदेश है–

«जहाँ तक हो सके तुम (सेना) शक्ति और तैयार बंधे हुए घोड़े उनके लिए तैयार रखो, ताकि इसके द्वारा अल्लाह के शत्रुओं तथा अपने शत्रुओं और इनके सिवा उन को भी भयभीत करते रहो, जिन्हें तुम नहीं जानते, अल्लाह जानता है, और अल्लाह के मार्ग में जो भी ख़र्च करोगे उसका पूरा-पूरा बदला तुम्हें दिया जाएगा, और तुम्हारे साथ कोई अन्याय नहीं किया जाएगा।» (सूरा–8, अल-अनफ़ाल, आयत–60)

युद्ध प्रारम्भ होते ही शत्रुओं ने, जो विभिन्न पर्वत-घाटियों में छिपे हुए थे, मुसलमानों पर तीरों की वर्षा कर दी, जिसका मुसलमानों को ज्ञान नहीं था क्योंकि वे तो मैदान में युद्ध करना चाहते थे। इस नई परिस्थिति ने इस्लामी सेना के पाँव उखाड़ दिए और वे भागने लगे, परन्तु नबी (ﷺ) और आपके कुछ साथी अपने स्थान पर डटे रहे और उस समय आपने यह कहना शुरू कर दिया–

''मैं एक ऐसा नबी हूँ जो झूठ नहीं बोलता। मैं अब्दुल मुत्तलिब का पुत्र हूँ।'' और फिर नबी (ﷺ) ने अब्बास (رضي الله عنه) से, जो आपके चाचा थे, कहा, ''जाओ ऊँचे स्वर में मुसलमानों को आवाज़ दो।'' अब्बास (رضي الله عنه) की आवाज़ सुनते ही एक-एक मुसलमान पलटने लगा और कुछ ही घंटो में इस्लामी सेना इकट्ठी हो गई और फिर वह शत्रु पर ऐसे टूटे जैसे शाहीन अपने शिकार पर टूट पड़ता है। इस दशा ने शत्रुओं के पैर उखाड़ दिए और वे पराजित हो गए। इसी युद्ध के विषय में ये आयतें उतरीं–

«अल्लाह बहुत-से अवसरों पर तुम्हारी सहायता कर चुका है। और हुनैन (की लड़ाई) के दिन भी, जब कि तुम अपनी अधिक संख्या पर फूल गए थे, तो वह तुम्हारे कुछ काम नहीं आई और धरती विशाल होते हुए भी तुम पर तंग हो गई, और तुम पीठ फेरकर भाग निकले। फिर अल्लाह ने अपने रसूल तथा ईमानवालों पर शान्ति उतारी और ऐसी सेना उतारी जिन्हें तुम देख नहीं सके (अर्थात् फ़रिश्ते) और उन लोगों को यातना दी जिन्होंने कुफ़्र किया और यही कुफ़्र करनेवालों का बदला है।» (क़ुरआन, सूरा-9, अत-तौबा, आयतें-25,26)

इस युद्ध में चार मुसलमान शहीद हुए। शत्रुओं में से सत्तर व्यक्ति मारे गए। छह हज़ार बन्दी बनाए गए, जिनको बाद में छोड़ दिया गया फिर सब लोग मुसलमान हो गए।

हिजरत

इसका अर्थ है अल्लाह के लिए देश त्याग कर विदेश में शरण लेना। जैसे इबराहीम (عليه السلام) ने कहा–

«मैं अपने रब की ओर हिजरत करनेवाला हूँ। निस्सन्देह वह अत्यन्त प्रभुत्वशाली तथा तत्वदर्शी है।» (क़ुरआन, सूरा–29, अनकबूत, आयत–26)

इबराहीम (عليه السلام) का मूर्ति पूजकों के बीच रहते हुए एक अल्लाह की उपासना करना कठिन हो गया, तो वे अपना देश उर छोड़कर फ़िलस्तीन की ओर हिजरत कर गए।

इस्लामी इतिहास में पहली हिजरत तो वह है जो मक्का से हब्शा की ओर हुई, जिसमें कुल 11 पुरुष तथा 4 स्त्रियाँ थीं। यह नबी (ﷺ) की नुबूवत के पाँचवें वर्ष की घटना है। जब मुसलमानों के लिए मक्का में रहना कठिन हो गया, तो नबी (ﷺ) ने कहा–

"हब्शा का राजा ऐसा है जिसके यहाँ किसी पर अत्याचार नहीं होता। इसलिए तुम लोग उसके पास चले जाओ, यहाँ तक कि अल्लाह तुम्हारी कठिनाइयों को दूर कर दे।" (देखिए: इब्ने-हिशाम, 1:334)

हब्शा में लोगों को सूचना मिली कि मक्कावाले मुसलमान हो गए हैं, इसलिए कुछ लोग वापस आ गए। उनमें उस्मान- बिन मज़ऊन भी थे। परन्तु यह सूचना ग़लत थी। इसलिए वे लोगा दोबारा हब्शा चले गए। इस बार उनके साथ 80 लोग थे। इसको दूसरी हिजरत कहते हैं। लेकिन मक्का के इस्लाम-विरोधी इस बात से अप्रसन्न थे कि हब्शा जाकर ये मुसलमान शान्तिपूर्वक रहें। इसलिए उन्होंने अपने दूत भेजे और राजा से कहा कि इन लोगों को मक्का वापस भेज दे। राजा ने इन शरणार्थियों से उनके धर्म के विषय में पूछा तो जाफ़र-बिन-अबू तालिब ने उसके सामने बहुत ही हृदयस्पर्शी और कायापलट कर देनेवाला भाषण दिया। उसमें उन्होंने कहा–

"ऐ राजा, हम मूर्तिपूजक थे, देवी-देवताओं की उपासना करते थे; मरे हुए जानवर खाते थे; पड़ोसी पर अत्याचार करते थे; हम एक-दूसरे के रक्त के प्यासे थे; हमें हलाल और हराम का कोई पता नहीं था; ऐसी दशा में अल्लाह ने हमारी जाति से एक व्यक्ति को, जिसको हम भली-भाँति जानते हैं और जिसकी सच्चाई एवं वफ़ादारी सर्वत्र प्रसिद्ध है, नबी बनाकर भेजा, उसने हमें एक अल्लाह की बन्दगी का आदेश दिया, शिर्क से रोका और पड़ोसियों तथा नातेदारों के साथ अच्छा बर्ताव करने का हुक्म दिया।"

हब्शी राजा ने कहा, "अच्छा, उसपर जो वह्य आती है उसमें से कुछ सुनाओ।"

इसपर जाफ़र (ﷺ) ने क़ुरआन की सूरा–19, मरयम की कुछ आयतें पढ़कर सुनाईं। ये आयतें सुनकर राजा की आँखों से आँसू बह निकले यहाँ तक कि उसकी दाढ़ी भीग गई। उसके दरबार में बैठे हुए पादरी भी रो पड़े। राजा ने कहा, "यह तो वही वह्य है, जो ईसा (عليه السلام) पर आती थी, क्योंकि दोनों की बातें वास्तव में एक ही दीप की किरणें हैं। ऐ शरणार्थियो, जाओ, तुम मेरे देश में जिस प्रकार चाहो, जीवन व्यतीत करो। (विस्तृत जानकारी के लिए देखिए मेरी पुस्तक : क़ुरआन की शीतल छाया।)

इतिहास में सबसे प्रसिद्ध हिजरत नबी मुहम्मद (ﷺ) की है, जो मक्का से मदीना की ओर की गई थी। और इसी हिजरत को बाद में ख़लीफ़ा उमर (ﷺ) ने मुसलमानों के लिए ऐतिहासिक वर्ष बनाया। इस हिजरत यात्रा में बहुत सारे चमत्कार प्रकट हुए। (देखिए : मुहम्मद ﷺ)

नबी (ﷺ) के मदीना पहुँचने के बाद मक्का से मुसलमान हिजरत करके मदीना आने लगे, क्योंकि अब मक्का में रहना उनके लिए बहुत कठिन हो गया था।

उस समय उन लोगों की निन्दा की गई, जिन्होंने हिजरत नहीं की। हाँ, जो लोग चाहकर भी किसी विवशता के कारण ऐसा नहीं कर पाए, उनकी बात अलग थी। क़ुरआन में है –

«जो लोग अपने ऊपर अत्याचार कर रहे थे, जब फ़रिश्तों ने उनका प्राण निकाल लिया तो पूछा, "तुम किस दशा में थे?" उन्होंने कहा, "हम धरती पर बेबस (निर्बल) थे। तो फ़रिश्तों ने कहा, "क्या अल्लाह की धरती विशाल न थी कि तुम उसमें कहीं हिजरत कर जाते! यही लोग हैं जिनका ठिकाना जहन्नम (नर्क) है। वह क्या ही बुरा ठिकाना है। सिवाय उन बेबस पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के, जिनके पास (हिजरत के लिए) कोई उपाय और मार्ग नहीं है। सम्भव है कि अल्लाह इन लोगों को क्षमा कर दे, अल्लाह नर्मी करनेवाला और क्षमाशील है।» (सूरा–4, अन-निसा, आयतें-97-99.)

और फिर इसके बादवाली आयत में यह धीरज बँधाया जा रहा है और सांतवना दी जा रही है कि हिजरत करनेवालों को विदेश में कोई कठिनाई नहीं होगी, बल्कि उनको विस्तृत आजीविका के साधन प्राप्त होंगे–

"गारे सूर वाला पहाड़, हिजरत के समय नबी ﷺ जिस में रुके थे"

«जो कोई अल्लाह के लिए हिजरत करेगा, वह धरती को बहुत विशाल, तथा उसपर बहुत-से निवास-स्थान पाएगा, और जो कोई अल्लाह और उसके रसूल की ओर हिजरत के कारण निकले और फिर उसकी मृत्यु हो जाए तो उसका प्रतिदान अल्लाह देगा। अल्लाह बड़ा क्षमाशील और दया करनेवाला है।» (सूरा–4,अन-निसा, आयत–100)

जब वर्ष 8 हिजरी को मक्का विजय हो गया और उसके निवासी मुसलमान हो गए तो अब मक्का से मदीना हिजरत करने की आवश्यकता नहीं रही। ऐसे अवसर पर नबी (ﷺ) ने यह एलान कर दिया–

''विजय के बाद अब हिजरत नहीं रही, परन्तु जिहाद रहेगा, इसलिए अगर तुम्हें जिहाद के लिए पुकारा जाए तो निकल पड़ो।'' (बुख़ारी : 1834, मुस्लिम : 1353)

अर्थात् मक्का से मदीना हिजरत बन्द हो गई, परन्तु दुनिया के किसी और भाग में मुसलमानों पर अत्याचार किया जा रहा हो, उनको अपने धर्मानुसार जीवन व्यतीत नहीं करने दिया जा रहा हो तो उस देश से हिजरत करना आज भी मुसलमानों पर अनिवार्य है।

हिजरी

यह हिजरी वर्ष नबी (ﷺ) के मक्का से मदीना हिजरत करने के कारण उमर (رضي الله عنه) (मुसलमानों के दूसरे ख़लीफ़ा) ने प्रचलित किया क्योंकि इस्लामी इतिहास में हिजरत सब से बड़ी घटना थी, जिसके कारण मुसलमानों को बड़ा कष्ट उठाना पड़ा, इसलिए उमर (رضي الله عنه) ने मुसलमानों में हिजरी वर्ष प्रचलित कर दिया। (देखें हिजरत)

हत्या

क़ुरआन तथा सहीह हदीसों में जिन चीज़ों को वर्जित बताया गया है उनमें से एक हत्या (क़त्ल) भी है।

«जो कोई किसी मोमिन (मुसलमान) की जान-बूझकर हत्या कर दे तो उसका दंड नरक है, जिसमें वह सदैव रहेगा, उनपर अल्लाह का प्रकोप और उसकी फिटकार है, उसके लिए अल्लाह ने बड़ी यातना तैयार कर रखी है।» (सूरा–4, अन-निसा, आयत–93)

«किसी जीव की हत्या न करो, जिसे (मारना) अल्लाह ने वर्जित किया है। यह और बात है कि हक़्क़ (न्याय) का यही तक़ाज़ा हो। और जो व्यक्ति निर्दोष मारा जाए हमने उसके उत्तराधिकारी को (हत्या का) बदला लेने का अधिकार दे रखा है। परन्तु उसे चाहिए कि वह हत्या करने में सीमा पार न करे। निश्चय ही उसकी सहायता की जाएगी।» (सूरा–17, बनी-इसराईल, आयत–33)

अर्थात् एक व्यक्ति के बदले एक ही क़त्ल करे। पुरानी रीति के अनुसार एक व्यक्ति की हत्या के बदले पूरे क़बीले (वंश) को खुले आम क़त्ल न करे–

«दरिद्रता के भय से अपनी सन्तान की हत्या न करो, हम उन्हें भी जीविका देते हैं और तुम्हें भी; वास्तव में उनकी हत्या एक महापाप है।» (सूरा–17, वनी-इसराईल, आयत–31)

इस्लाम से पूर्व अज्ञानकाल में दरिद्रता के कारण लोग अपनी सन्तान की हत्या कर देते थे और वर्तमान समय में उसी काम को परिवार-नियोजन के सुन्दर नाम से कर रहे हैं। इस प्रकार हम फिर एक बार उसी अज्ञानकाल में पहुँच गए हैं।

एक व्यक्ति नबी (ﷺ) की सेवा में उपस्थित हुआ और उसने महापापों के विषय में प्रश्न किया जिसपर आप (ﷺ) ने यह उत्तर दिया –

"महापाप ये हैं कि तुम अल्लाह के साथ किसी और को पुकारो, जब कि उसी ने तुम्हें पैदा किया, और अपनी सन्तान को इस भय से क़त्ल करो कि तुम्हारे साथ खाएगी, और अपने पड़ोसी की पत्नी के साथ व्यभिचार करो।"

फिर नबी (ﷺ) ने यह आयत पढ़ी–

«जो अल्लाह के साथ किसी दूसरे इलाह (इष्टपूज्य) को नहीं पुकारते और नाहक़ किसी जीव की जिसे अल्लाह ने हराम किया है हत्या नहीं करते; और न ज़िना (व्यभिचार) करते हैं। – जो कोई ये काम करे वह गुनाह के वबाल से दोचार होगा।» (सूरा–25, अल-फ़ुरकान, आयत–68)

(देखिए : बुख़ारी : 6861 तथा मुस्लिम : 86)

हाथी

हाथी का वर्णन क़ुरआन में केवल एक बार आया है–

«क्या तूने नहीं देखा कि तेरे रब ने हाथीवालों के साथ क्या किया ?» (सूरा–105, अल-फ़ील :1)

ये हाथीवाले कौन थे, इनके पूरे विवरण के लिए देखिए 'असहाबुल- फ़ील'।

हज

हज का अर्थ है इच्छा प्रकट करना, अर्थात् हज एक ऐसी इबादत है जिसमें काबे के दर्शन की इच्छा से यात्रा की जाती है।

❋ हज का हुक्म :

हज जीवन में एक बार हर उस पुरुष तथा स्त्री पर अनिवार्य है जो बैतुल्लाह (काबा) जाने की स्थिति में हो, अर्थात् उसके पास बाल-बच्चों की आवश्यकता पूरी होने के बाद इतना धन हो कि वह मक्का की यात्रा कर सके। जैसा कि क़ुरआन में आया है–

«लोगों पर अल्लाह ने हज करना अनिवार्य कर दिया है, जो उसके (घर तक) पहुँचने का सामर्थ्य रखते हों।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–97)

जीवन में एक बार इसलिए कहा गया है कि एक सहीह हदीस में आया है कि नबी (ﷺ) ने लोगों से फ़रमाया,

"ऐ लोगो अल्लाह ने तुमपर हज अनिवार्य कर दिया है इस लिए हज करो" एक व्यक्ति ने प्रश्न किया, "ऐ अल्लाह के रसूल! क्या प्रत्येक वर्ष?" तो नबी (ﷺ) चुप रहे। परन्तु उस व्यक्ति ने यही प्रश्न तीन बार पूछा तब आपने फ़रमाया, "अगर मैं 'हाँ' कह देता तो प्रत्येक वर्ष अनिवार्य हो जाता, और तुम प्रत्येक वर्ष हज करने का सामर्थ्य न रखते। इस लिए ऐ लोगो! जो मैं कह दूँ उसपर बस कर लिया करो। तुमसे पहले लोग नबियों से अधिक प्रश्न करने के कारण तबाह हो गए। इस लिए अगर मैं किसी चीज़ का हुक्म दूँ तो अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसपर अमल करो, और अगर किसी चीज़ से मना करूँ तो उससे रुक जाओ।" (सहीह मुस्लिम, 1337, बुख़ारी, 7288)

इस हदीस में इस्लाम का एक सिद्धान्त यह बताया गया है कि जिन चीज़ों के करने का हुक्म दिया गया है, उनको अपनी सामर्थ्य के अनुसार किया जाए (सिवाय वाजिबात के जिनका करना अनिवार्य है) परन्तु जिन चीज़ों से मना किया गया है उनसे रुकना आवश्यक है।

अब आइए कुछ इस पर प्रकाश डालते हैं कि हज कैसे किया जाता है –

1. नीयत करना : नीयत इस्लामी पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ है कि व्यक्ति किसी इबादत के करने से पूर्व अपने मन में इच्छा करे कि यह इबादत केवल अल्लाह के लिए कर रहा हूँ। यह नीयत करते हुए एहराम का वस्त्र धारण करे। मक्का में प्रवेश करने के लिए चार मीक़ात (स्थान) नियुक्त किए गए हैं जिस मीक़ात से भी प्रवेश करे या मीक़ात के बराबरवाले भाग से प्रवेश करे वहाँ नीयत करनी चाहिए, और एहराम का वस्त्र धारण करना चाहिए। घर से भी एहराम का वस्त्र धारण कर सकते हैं।

एहराम का वस्त्र धारण करने से पूर्व स्नान करना, नाख़ून काटना, गुप्तांग तथा बग़ल के बाल साफ़ करना, शरीर में सुगन्ध का प्रयोग करना उचित है।

2. मक्का पहुँचकर काबे का तवाफ़ करना और अगर तमत्तो हज की नीयत हो तो सफ़ा मरवा की सई (दौड़) करने के पश्चात् सिर के बाल मुंडा देना, या छोटे करा देना, और फिर एहराम का वस्त्र बदलकर एहराम से बाहर निकल जाना, और अगर, मुफ़रिद हज या कारिन हज की नीयत है तो काबा का तवाफ़ करने के पश्चात् एहराम ही की दशा में बाक़ी रहना चाहिए।
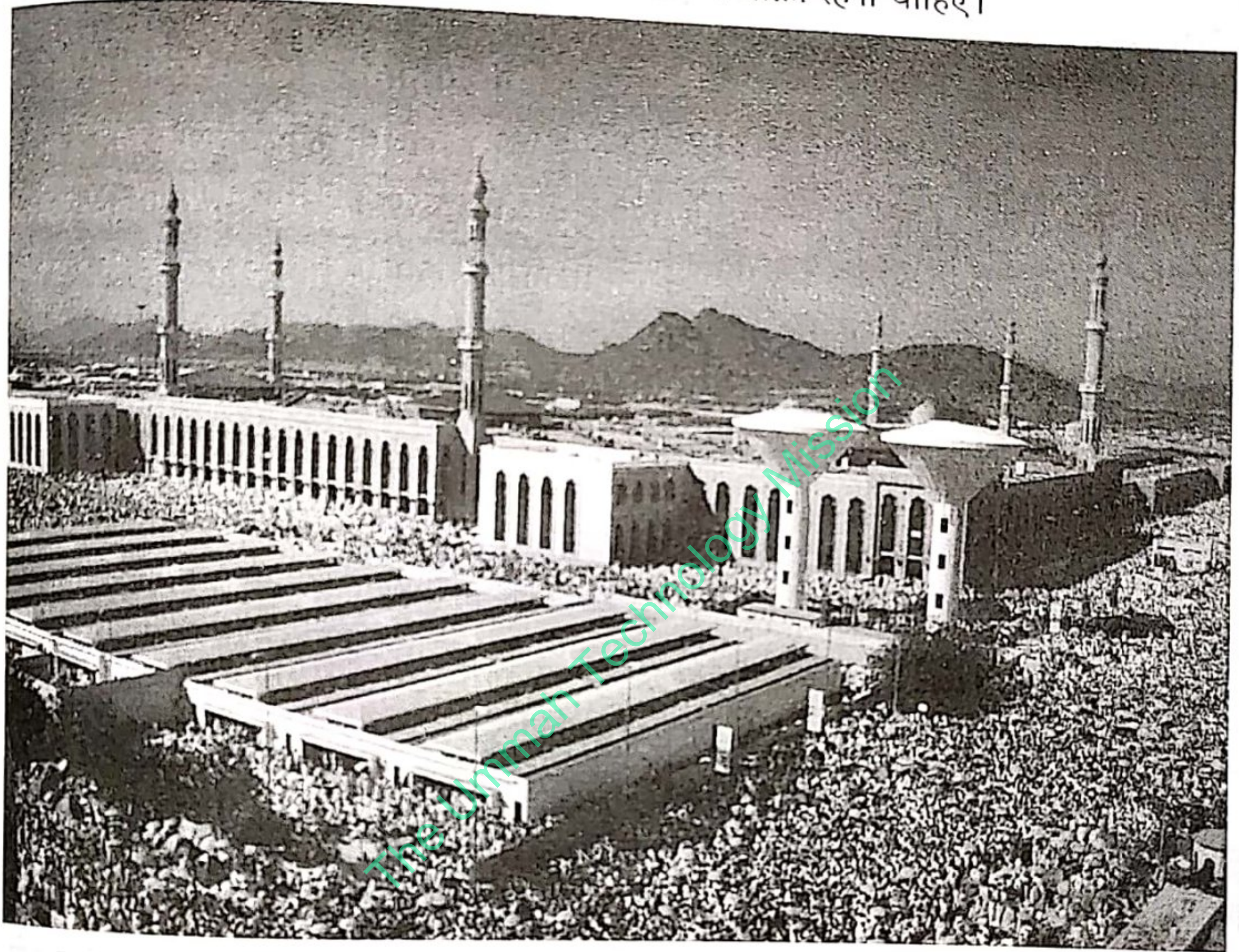
"अराफ़ात में मस्जिदे नमिरा में नमाज़ पढ़ने वालों का एक सुन्दर दृश्य"

3. आठ ज़िलहिज्जा को दोबारा एहराम पहनकर जिसने एहराम खोल दिया हो, और जो एहराम ही की दशा में हो – मिना को निकल जाए। अगर वहाँ इस प्रकार पहुँचे कि ज़ोहर, अस्र, मग़रिब, इशा और फिर नौ ज़िलहिज्जा को फ़ज्र की नमाज़ पढ़ सके तो उत्तम है।

4. नौ ज़िलहिज्जा को सूर्य निकलने के पश्चात् अरफ़ात की ओर चल पड़े वहाँ थोड़ा विश्राम करने के पश्चात् अगर सम्भव हो तो इमाम का ख़ुतबा (अभिभाषण) सुनने तथा ज़ोहर और अस्र दोनों नमाज़ों को एक समय में पढ़ने के लिए नमिरा की मस्जिद में उपस्थित हो जाए। और अगर मस्जिद न पहुँच सके तो ख़ेमे ही में ज़ोहर और अस्र की नमाज़ मिलाकर पढ़ने के पश्चात् दुआ माँगना शुरू करे और सुर्यास्त तक इसमें लगा रहे, क्योंकि अरफ़ात का दिन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और श्रेष्ठ है। एक सहीह हदीस में आता है–

"अरफ़ा के अतिरिक्त कोई ऐसा दिन नहीं है जिस दिन अल्लाह सबसे अधिक अपने बन्दों को नरक की आग से मुक्त करता हो, इस दिन अल्लाह बहुत निकट आ जाता है और फ़रिश्तों से बड़े गर्व से कहता है : ये लोग क्या चाहते हैं?" (सहीह मुस्लिम, 1348)

कुछ हदीसों में यह भी आया है कि अल्लाह अपने फ़रिश्तों को साक्षी बनाकर कहता है, "आज मैंने इन सब को क्षमा कर दिया।"

हज के दिनों में सबसे महत्त्वपूर्ण अरफ़ात का दिन है। इसलिए हाजी अरफ़ात के मैदान में सूर्य ढलने से लेकर सूर्यास्त होने तक दुआओं में संलग्न रहते हैं, अपनी कोताहियों के लिए क्षमा माँगते हैं, और भविष्य में किसी कुकर्म के न करने की प्रतिज्ञा करते हैं। इसलिए सही हज तो वही है जिसकी ओर संकेत करते हुए नबी (ﷺ) ने फ़रमाया,

"जिसने इस प्रकार हज किया कि किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं किया और न कोई निर्लज्जता का कर्म किया तो वह ऐसा हो जाता है जैसे अभी-अभी माँ के पेट से निकला हो।" (देखिए : बुख़ारी, 1521 तथा मुस्लिम, 1350)

तात्पर्य यह कि उसके सारे गुनाह माफ़ कर दिए जाते हैं। एक दूसरी सहीह हदीस में अरफ़ात के दिन की विशेषता इस प्रकार बताई गई है–

"हज तो अरफ़ात है।"

अर्थात् अरफ़ात में कुछ समय बिताए बिना हज नहीं हो सकता और वह समय नौ ज़िलहिज्जा की सुबह से लेकर दस ज़िलहिज्जा की सुबह तक है। इन चौबीस घंटों में किसी भी समय कोई अरफ़ात के मैदान में पहुँच जाए तो उसका हज हो जाएगा, और जो न पहुँच पाएगा उसका हज नहीं होगा।

दूसरे यह कि दुआओं का विशेष स्थान अरफ़ात का मैदान है, हाजियों को चाहिए कि इस मैदान में जितनी दुआएँ कर सकते हैं, करें। अपने लिए, अपनी संतान के लिए, सारे मुसलमानों के लिए सारे संसार में शान्ति के लिए इत्यादि। क्योंकि इस दिन अल्लाह अपने बन्दों की दुआएँ स्वीकार करता है।

5. अरफ़ात में सुर्यास्त होते ही मग़रिब की नमाज़ पढ़े बग़ैर मुज़दलफ़ा के लिए रवाना हो जाए, और वहीं मग़रिब तथा इशा की नमाज़ दोनों एक साथ मिलाकर पढ़े।
6. अगर साथ में बच्चे और दुर्बल स्त्रियाँ हों तो आधी रात के पश्चात्, मुज़दलफ़ा से मिना के लिए रवाना हो जाना चाहिए।
7. अगर साथ में बच्चे और स्त्रियाँ न हों तो भोर तक मुज़दलफ़ा में रुकना चाहिए। सुबह की नमाज़ पढ़ने के पश्चात् कुछ देर तक खड़े होकर दुआ करनी चाहिए, जिसकी ओर क़ुरआन में संकेत किया गया है–

«जब अरफ़ात से चलो तो मशअ़रे-हराम के पास अल्लाह को याद करो, जैसा कि उसने तुम्हें बताया है, इससे पहले निश्चय ही तुम मार्ग भटके हुए लोगों में थे।» (सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-198)
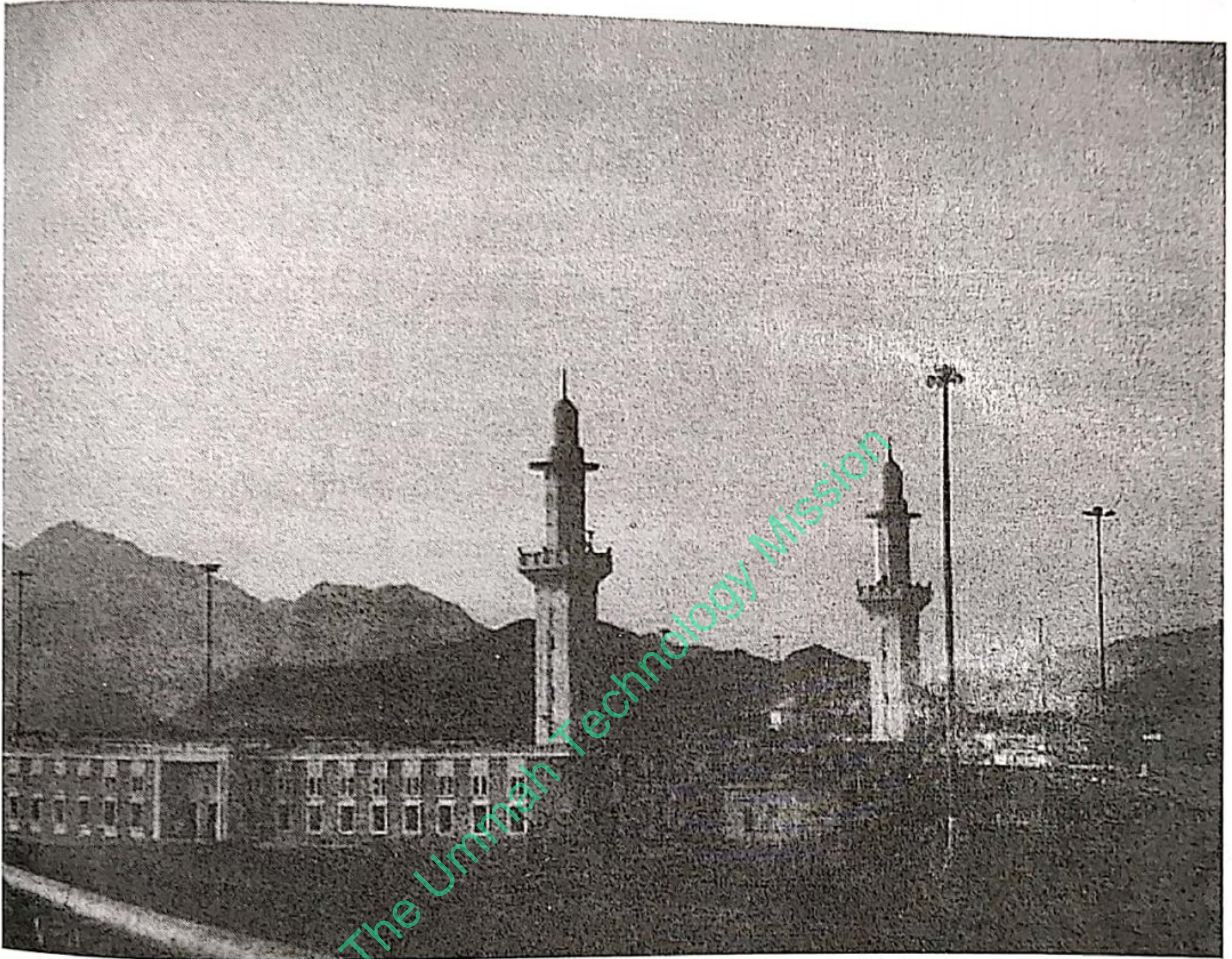
"मुज़दलफ़ा में मस्जिद मशअ़रे-हराम"

मशअ़रे-हराम को मुज़दलफ़ा भी कहते हैं। और जहाँ नबी (ﷺ) ने आराम फ़रमाया था, वहाँ एक सुन्दर मस्जिद बना दी गई है।

8. मुज़दलफ़ा में रात बिताने, सुबह की नमाज़ पढ़ने तथा दुआ करने के पश्चात् दस ज़िलहिज्जा को मिना के लिए रवाना हो जाना चाहिए यहाँ पहुँचकर सबसे पहले अक़बा नामक जमरा को सात कंकरियाँ मारनी चाहिएँ।

9. अगर क़ुरबानी करनी हो तो क़ुरबानी करे।

10. सिर के बाल मुंडाने या छोटे कराने चाहिएं, और फिर मैल-कुचैल को दूर करने के लिए स्नान करना चाहिए। जैसा कि क़ुरआन में आया है–

«फिर अपना मैल-कुचैल दूर करो।» (सूरा-22, अल-हज्ज, आयत-29)

अर्थात् अब वह अपना एहराम खोल दे, और अपना साधारण वस्त्र धारण कर ले। इस प्रकार अब उसपर जो एहराम की पाबन्दियाँ थीं, समाप्त हो गईं। सिवाय इसके कि अभी अपनी पत्नी से संभोग नहीं कर सकता।

11.सम्भव हो तो दस ज़िलहिज्जा को या फिर तेरह ज़िलहिज्जा तक तवाफ़े-इफ़ाज़ा के लिए, जिसको तवाफ़े-ज़ियारत तथा तवाफ़े-हज भी कहते हैं, मक्का को रवाना हो जाए और काबा का तवाफ़ करे। इस तवाफ़ के बिना हज पूरा नहीं होगा। फिर दो रकअत नमाज़ पढ़े।

क़ुरआन की इस आयत का संकेत, जिसमें कहा गया है कि काबा का तवाफ़ करो, इसी तवाफ़ के विषय में है–

«फिर अपना मैल-कुचैल दूर करो और अपनी मन्नतों को पूरा करो, और काबा का तवाफ़ करो।» (सूरा–22, अल-हज, आयत–29)

12. इसके पश्चात सफ़ा तथा मरवा के बीच सई करे (अर्थात दौड़ लगाए), जो सफ़ा से प्रारम्भ की जाए और मरवा पर समाप्त की जाए। जैसा कि क़ुरआन में आया है–

«निस्सन्देह सफ़ा और मरवा अल्लाह की निशानियों में से हैं। तो जो अल्लाह के घर का हज करे या उमरा करे, उसके लिए इसमें कोई दोष नहीं कि वह इनके बीच सई करे।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–158)

सफ़ा तथा मरवा के बीच सई करना हज का आवश्यक अंग है, परन्तु इस आयत में जो यह आया है, 'इसमें कोई दोष नहीं कि वह इसके बीच सई करे' कुछ सहाबा ने समझा कि यह अनिवार्य नहीं है। जब आइशा (رضي الله عنها) को इसका ज्ञान हुआ तो उन्होंने कहा कि अगर यह अर्थ होता तो अल्लाह यह फ़रमाता, "यदि इनके बीच तवाफ़ न करें तो कोई दोष नहीं है।"

फिर बताया कि इस्लाम क़बूल करने से पूर्व अनसार मनात नामक बुत का हज करते थे। जब वे मुसलमान हो गए तो उन्होंने सफ़ा तथा मरवा के बीच सई करने में झिझक प्रकट की और अल्लाह के रसूल (ﷺ) से कहा, "हमें सफ़ा तथा मरवा के बीच सई करने में झिझक है।" तब अल्लाह ने यह आयत उतारी। (देखिए: बुख़ारी, 1643 तथा मुस्लिम, 1278)

सहीह मुस्लिम की एक हदीस में यह भी आया है कि इस्लाम से पूर्व अनसार दो बुतों का हज करते थे जिनका नाम इसाफ़ तथा नाइला था और फिर वे सफ़ा-मरवा की सई किया करते थे। जब उन्होंने इस्लाम क़बूल कर लिया तो उनको झिझक होने लगी इस पर यह आयत उतरी।" (देखिए: मुस्लिम, 1277)

इसलिए अब यह सई हज का अंग है। और सई करने के बाद उसका हज पूर्ण हो जाएगा।

13.ग्यारह, बारह तथा तेरह ज़िलहिज्जा को मिना में रात बिताए। अगर बारह को ही वापस होना चाहे तो हो सकता है, जैसा कि अल्लाह ने फ़रमाया–
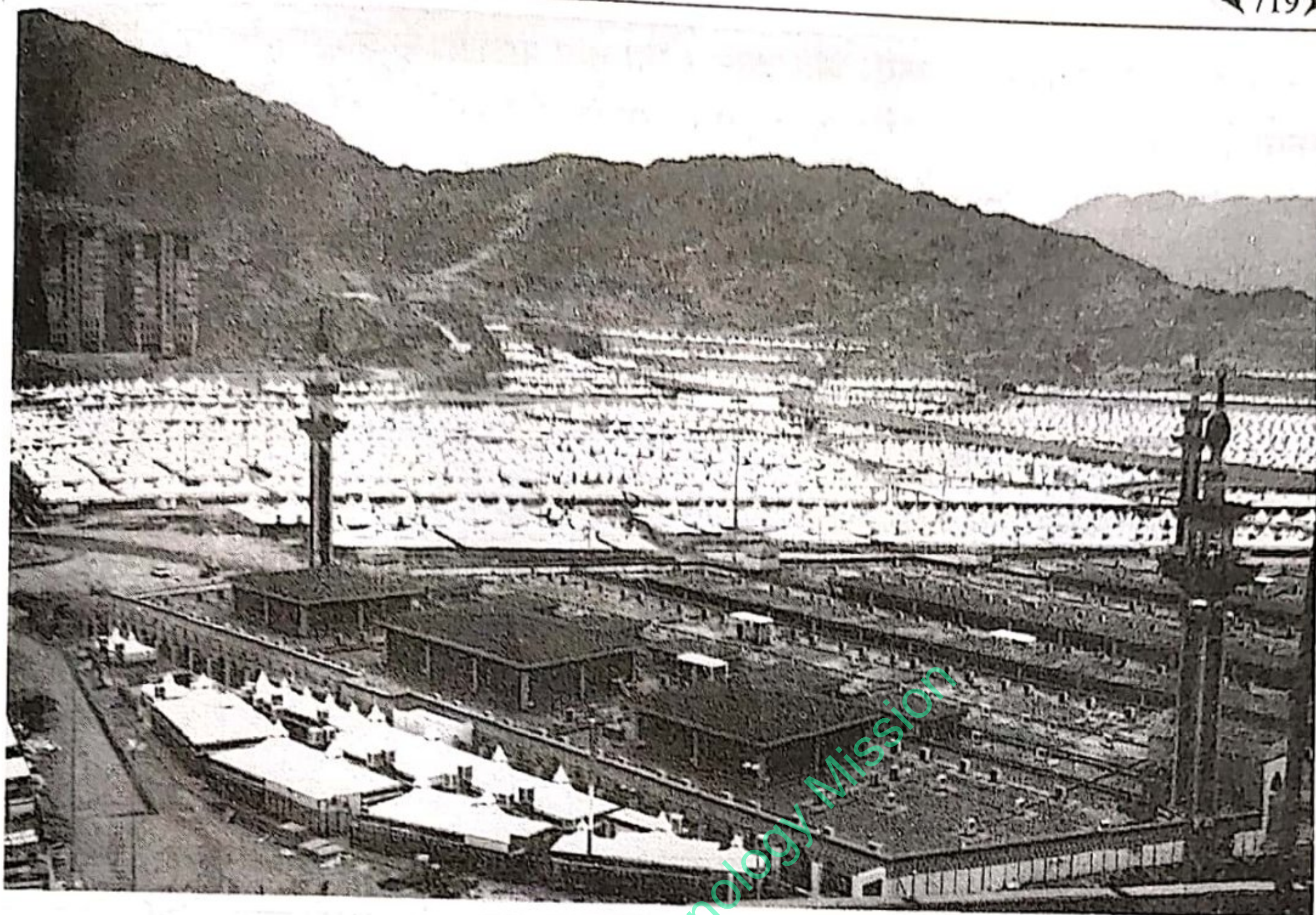
"मिना में मस्जिद ख़ेफ़"

«मिना के दिन, जो गिनती के कुछ दिन हैं, अल्लाह को याद करो, तो जो दो ही दिनों में जल्दी कर ले तो उसपर कोई दोष नहीं है, और जो अगर ठहर जाए तो उसपर भी कोई दोष नहीं है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–203)

मिना के इन तीन दिनों में उसे एक तो छोटे जमरा, फिर बीच के जमरा, फिर उक़बा के जमरा को सात-सात कंकरियाँ मारनी हैं। जो भोर से लेकर दूसरे भोर तक मारी जा सकती हैं जिसका फ़तवा सऊदी अरब के प्रधान मुफ़्ती ने दिया है।

दूसरा यह कि अपना शेष समय अल्लाह को स्मरण करने में बिताए जिसका वर्णन क़ुरआन में आया है–

«फिर जब तुम अपना हज पूरा कर लो तो अल्लाह को स्मरण करो जिस प्रकार पहले अपने पूर्वजों को याद करते थे, बल्कि अल्लाह का स्मरण उससे भी बढ़कर हो।» (सूरा–2, अल-बक़रा; आयत–200)

इब्ने-अब्बास (ﷺ) और दूसरे सहाबा से उल्लिखित है कि लोग हज करने के बाद मिना में अपने पूर्वजों की कहानियाँ बयान किया करते थे, जिनमें उनके दान तथा उनकी वीरता की दास्तानें होती थीं। अल्लाह ने मुसलमानों को हुक्म दिया कि मिना के मैदान में अब पुरानी कथाओं और कहानियों के

स्थान पर अल्लाह को स्मरण करो, और उससे संसार तथा परलोक में अच्छाइयाँ माँगो, कहीं ऐसा न करना कि संसार की अच्छाइयाँ तो माँग लीं, परन्तु परलोक को भूल बैठे, इसी की ओर अल्लाह ने इस आयत में संकेत किया है–

«फिर लोगों में से कुछ ऐसे हैं जो कहते हैं "हमारे रब! हमें संसार ही में दे दे। तो ऐसे लोगों के लिए परलोक में कोई भाग नहीं है।" और उनमें से कुछ ऐसे हैं जो कहते हैं, "हमारे रब! हमें संसार में भी भलाई दे, और परलोक में भी और हमें आग की यातना से बचा।" यही वे लोग हैं जिनको उनके किए का भाग मिलना है, और अल्लाह शीघ्र ही हिसाब करनेवाला है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयतें-200-202)

दुआ करने की बड़ी महत्ता है नबी (ﷺ) यह दुआ किया करते थे।–

"ऐ रब! हमें संसार में भी अच्छाइयाँ दे तथा परलोक में भी, और आग की यातना से बचा।" (देखिए: बुख़ारी 4522 तथा मुस्लिम 2690) और सहीह मुस्लिम में तो यह शब्द आया है कि अधिकतर यही दुआ करते थे।

एक बार नबी (ﷺ) एक रोगी का हाल-समाचार पूछने गए तो देखा कि वह सूखकर काँटा हो गया था। आप (ﷺ) ने उससे पूछा, "क्या तुम कोई दुआ किया करते थे?" उसने कहा, "हाँ, मैं यह दुआ करता था कि ऐ अल्लाह! तू मुझे जो यातना परलोक में देना चाहता है वह इसी संसार में दे दे।" इसपर नबी (ﷺ) ने कहा, "अल्लाह महिमावान है (सुबहानल्लाह)। तुम इसकी शक्ति नहीं रखते, तुमने क्यों नहीं यह दुआ की कि ऐ अल्लाह! मुझे संसार की भलाइयाँ दे तथा परलोक की भी और आग की यातना से बचा।" (देखिए: मुस्लिम, 2688)

हज की नीयत करने तथा एहराम का वस्त्र धारण करने के बाद हाजी पर निम्नलिखित कार्य वर्जित हैं–

1. पुरुष के लिए क़मीज़-पाजामा अर्थात् सिला हुआ कोई भी वस्त्र धारण करना। औरतें सिला हुआ वस्त्र धारण करेंगी।
2. सुगन्ध का प्रयोग करना।
3. सिर के बाल या शरीर के किसी भी भाग के बाल काटना।
4. सिर ढाँकना।
5. विवाह करना।
6. स्त्री से संभोग करना।
7. शिकार करना।

अगर किसी हाजी से कोई ग़लती हो जाए, और उपर्युक्त निषिद्ध कर्मों में से कोई कर्म कर ले तो उसपर आवश्यक है कि उसका दंड भरे, जो इस प्रकार है:– बाल या नाख़ून काटने, सिला वस्त्र धारण करने, सुगंध का प्रयोग करने तथा सिर ढांकने का दंड यह है :

1. तीन दिन रोज़े रखे,

2. या छः ग़रीबों को भोजन कराए,

3. या एक बकरा क़ुरबान करे और ग़रीबों में बाँट दे, परन्तु स्वयं न खाए।

अगर वह शिकार कर बैठा तो उसी शिकार के समान कोई क़ुरबानी करे और उसके समान क़ुरबानी का कोई पशु न हो तो दो आदमी उसका मूल्य लगाएँ और वह उसके बराबर ग़रीबों को भोजन कराए, या रोज़ा (उपवास) रखे। पत्नी से संभोग करने की दशा में उसका हज विकृत हो जाएगा। अब उसपर अनिवार्य है कि एक ऊँट की क़ुरबानी दे तथा दूसरे वर्ष हज करे। परन्तु अगर किसी ने मिना पहुँचने के बाद कंकरी मारने, क़ुरबानी करने तथा बाल मुंडवाने के पश्चात् पत्नी से संभोग कर लिया तो उसका हज विकृत नहीं होगा, उसको एक बकरे की क़ुरबानी देनी होगी।

ये तीन काम करने के पश्चात् हाजी एहराम से निकल जाता है। इसको प्रथम तहल्लुल कहते हैं, और जब वह तवाफ़ इफ़ाजा कर ले तो इसको द्वितीय तहल्लुल कहते हैं, अब हाजी सारी निषिद्ध चीज़ों से मुक्त हो गया।

❁ हज क्या है ?

यह वास्तव में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन है, जिसमें सब मिलकर एक अल्लाह की इबादत करते हैं। इस इबादत से जो शिक्षाएँ मिलती हैं उनमें से कुछ ये हैं–

1. संसार के कोने-कोने से मुसलमान केवल एक अल्लाह की इबादत के लिए मक्का में इकट्ठा होते हैं।

2. सबके वस्त्र एक समान होते हैं, अर्थात् दो चादर, एक तहबन्द के तौर पर बांधने के लिए, दूसरी शरीर पर ऊपर लपेटने के लिए। वस्त्र की इस समानता ने धनी-निर्धन, राजा-रंक, गोरा-काला, सबको एक बना दिया, जिसकी पुष्टि अल्लाह के निम्नलिखित कथन से होती है–

«ऐ लोगो ! हमने तुम्हें एक पुरुष और एक स्त्री से पैदा किया और तुम्हारी बहुत-सी जातियाँ और वंश बना दिए ताकि तुम एक-दूसरे को पहचान सको।» (सूरा–49, अल-हुजुरात, आयत–13)

अर्थात् सारे मनुष्य एक माता-पिता की संतान हैं। इस बात को हज में बड़ी सरलता से समझा जा सकता है। हज में सारे मुसलमान एक प्रकार का वस्त्र धारण किए हुए, *"अल्लाहुम-म लब्बैक"* कहते हुए, और एक-दूसरे की सहायता करते हुए यह इबादत पूरी करते हैं।
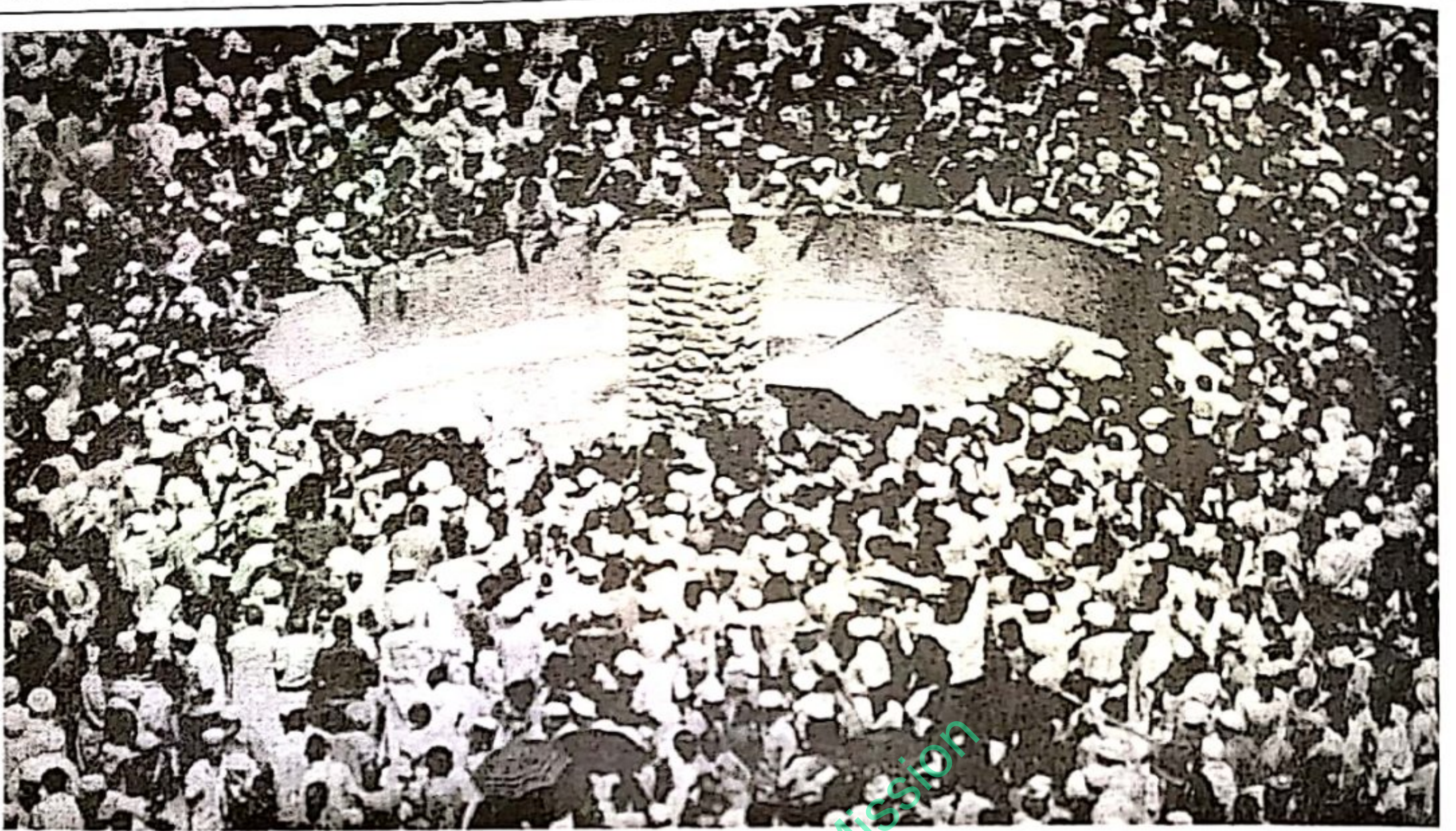
'हज में जमरात को कंकरी मारते हुए'

3. शैतान जो मनुष्य की रगों में रक्त के साथ दौड़ता रहता है, उससे सदा के लिए छुटकारा पाने का हज एक उत्तम माध्यम है, क्योंकि दस ज़िल-हिज्जा से लेकर तेरह ज़िलहिज्जा तक हाजी तीन जमरात को कंकरियाँ मारकर वास्तव में अपने अन्दर के शैतान को मारते हैं। इस प्रकार यह शैतान जो हमें पथभ्रष्ट करने का प्रयत्न करता रहता है। वह सदैव के लिए निष्कासित हो जाता है।

इतिहास की पुस्तकों में आया है कि जब इबराहीम (ﷺ) ने अपने बेटे इसमाईल (ﷺ) को कुरबान करना चाहा तो इन तीन स्थानों पर शैतान उन्हें पथभ्रष्ट करने की चेष्टा करता रहा, जिसको कंकरियाँ मार-मारकर इबराहीम (ﷺ) ने अपना धार्मिक कर्त्तव्य पूरा किया।

4. हज के इन छह दिनों में, अर्थात् आठ तारीख़ से तेरह तारीख़ तक, हाजी अपनी इन्द्रियों को दमित करने का प्रयत्न करता है। यह एक प्रकार की परीक्षा है। अगर हाजी इस परीक्षा में सफल हो जाता है तो शेष जीवन में भी सफल हो जाएगा। अर्थात् अल्लाह के बताए हुए अहकाम पर अमल करेगा और उसने जिन चीज़ों से रोका है, उनसे रुक जाएगा। यह बहुत बड़ी सफलता है उन लोगों के लिए जो हज के पश्चात् अपने अन्दर यह परिवर्तन महसूस करते हैं–

«लोगों में हज के लिए पुकार दो कि वे पैदल और छरछरी ऊँटनियों पर दूर के मार्गों से तुम्हारे पास आएँ, ताकि वे अपने लाभ को देखें (जो हज में रखे गए हैं)।» (सूरा–22, अल-हज, आयत-27)

यहाँ हज के लाभों में से कुछ लाभों का ही वर्णन किया गया है। ये लाभ हज करनेवालों को लोक और परलोक दोनों में प्राप्त होते हैं।

हैज़

देखें, 'मासिक धर्म'

हुदूद

यह 'हद' शब्द का बहुवचन है। हुदूद का अर्थ होता है सीमाएँ। अर्थात् अल्लाह ने कुछ सीमाएँ निर्धारित कर रखी हैं, जिनके निकट फटकना भी वर्जित है। ये सीमाएँ अल्लाह के द्वारा निषिद्ध किए हुए आदेश हैं।

कुरआन में आया है–

«ये अल्लाह की सीमाएँ हैं। इनके निकट भी न जाओ।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–187)

परन्तु जो लोग सीमा का उल्लंघन करते हैं, जिसके कारण समाज में उपद्रव पैदा होता है। उन उल्लंघनकारियों को रोकने के लिए विभिन्न प्रकार के दण्ड निर्धारित किए गए हैं, ताकि समाज को अशान्ति से बचाया जाए, जिनको हुदूद कहते हैं और हुदूद लागू करना इस्लामी शासक के कर्त्तव्यों में से विशेष कर्त्तव्य है। क्योंकि इसके द्वारा ही वह लोगों के जीवन, धन तथा मर्यादा की रक्षा कर सकता है। इसलिए हुदूद लागू करने की सहीह हदीसों में बड़ी महत्ता बताई गई है–

"अल्लाह की हदों में से किसी हद को लागू करना चालीस दिन की वर्षा से उत्तम है।" (इब्ने-माजा 2537 तथा मुस्नद अहमद 2:402)

यही कारण है कि जहाँ भी अल्लाह के हुदूद लागू किए जाते हैं, वहाँ लोग शन्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। इन हुदूद में से ज़िना, क़ज़फ़, शराब, चोरी, हत्या, हराबा, धमकी, ताज़ीर इत्यादि हैं। (अधिक जानकारी के लिए इन्हें इनके स्थानों पर देखिए।

हूर

आख़िरत में अल्लाह ने मोमिनों के लिए जो नेमतें तैयार कर रखी हैं उनमें से ये हूरें भी हैं, जो गोरी-चिट्टी होंगी।

हूर का अर्थ है वे सुन्दर स्त्रियाँ जिनकी आँखों का कालापन बहुत काला, और सफ़ेदी बहुत सफ़ेद होगी।

अरबी भाषा में हूर का अर्थ है सुन्दर व रूपवती स्त्रियाँ। क़ुरआन में इनकी जो विशेषताएँ बताई गई हैं वे इस प्रकार हैं–

1. उनकी आँखें मृग जैसी सुन्दर और बड़ी-बड़ी होंगी। इसलिए उनको हूरे-एन (बड़ी नेत्रों वाली) कहा गया है। (सूरा–44, अद्-दुख़ान, आयत–54 तथा सूरा–52, अत-तूर, आयत–20)
2. वे नीची दृष्टिवाली अर्थात लज्जावान स्त्रियाँ होंगी। क़ुरआन में है–

«वे नीची दृष्टिवाली (लज्जावती) स्त्रियाँ होंगी, जिन्हें इससे पहले किसी मनुष्य ने या किसी जिन्न ने हाथ भी नहीं लगाया होगा।»

3. उनकी सुन्दरता याक़ूत एवं मरजान जैसी होगी। क़ुरआन में है–

«वे सुन्दरता में मानो याक़ूत (लाल मणि) तथा मरजान (मूँगे) के समान हैं।»

4. वे सदाचारी तथा भली होंगी। क़ुरआन में है–

«इनमें उच्च चरित्र की सुन्दर स्त्रियाँ होंगी।»

5. उनके लिए जन्नत में ख़ेमे लगे होंगे, जिनमें वे ठहरी होंगी। (देखिए: सूरा–55, अर-रहमान, आयतें–56, 58, 70, 72, 74)

अर्थात् न केवल वे कुँवारी होंगी, बल्कि किसी ने उन्हें हाथ तक नहीं लगाया होगा।

हवारी

हवारी शब्द होर से बना है, जिसका अर्थ है सफ़ेद। इसी से हूर बना है, जिसका अर्थ है गोरी-चिट्टी स्त्रियाँ। ये हवारी ईसा (ﷺ) के साथी थे। हो सकता है ये लोग सफ़ेद कपड़े पहनते हों। इसलिए इनको हवारी कहा गया, इसी कारण पादरी सफ़ेद कपड़े पहनते हैं। और फिर इसका अर्थ सहायक हो गया। इसी की ओर नबी (ﷺ) की इस हदीस में भी संकेत किया गया है –

"हर नबी के हवारी होते थे, और मेरा हवारी-ज़ुबैर-बिन अव्वाम है।" (बुख़ारी, 2846 तथा मुस्लिम, 2115)

जिस प्रकार अनसार नबी (ﷺ) तथा मुसलमानों के सहायक बने, उसी प्रकार हवारी ईसा (ﷺ) के सहायक थे।

क़ुरआन में इसी की ओर संकेत किया गया है–

«जब ईसा ने उनके कुफ़्र को भाँप लिया तो कहा, "कौन है अल्लाह के मार्ग में मेरी सहायता करनेवाला?" इसपर हवारियों ने उत्तर दिया, "हम अल्लाह के मार्ग में सहायक हैं। हम अल्लाह पर ईमान लाए, और गवाह रहो कि हम मुसलमान (आज्ञाकारी) हैं।"» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–52)

अल्लाह ईमानवालों को संबोधित करके क़ुरआन में कहता है–

«ऐ ईमानवालो! अल्लाह के सहायक बनो, जैसा कि मरयम के बेटे ईसा ने हवारियों (साथियों) से कहा था, ''कौन हैं अल्लाह के मार्ग में मेरे सहायक?'' तो हवारियों ने कहा, ''हम हैं अल्लाह के सहायक।''» (सूरा–61, अस-सफ़, आयत–14)

इन हवारियों पर अल्लाह की दयालुता यह थी कि स्वयं अल्लाह ने उनके दिलों में डाल दिया कि तुम लोग मुझपर और मेरे नबी ईसा पर ईमान लाओ, क्योंकि बनी-इसराईल ने ईसा (عليه السلام) को जादूगर कहकर उनकी नुबूवत का इनकार कर दिया था–

«जब कि मैंने हवारियों के दिल में डाला कि मुझ पर और मेरे रसूल पर ईमान लाओ तो उन्होंने कहा : हम ईमान लाए और गवाह रहना कि हम मुसलमान (आज्ञाकारी) हैं।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–111)

और फिर अल्लाह ने ईसा (عليه السلام) तथा उनके हवारियों का एक संवाद वर्णन किया है, जो इस प्रकार है–

«याद करो जब हवारियों ने कहा, ''ऐ मरयम के बेटे ईसा! क्या तेरा रब हम पर आसमान से खाने से भरा दस्तरख़ान उतार सकता है?'' उसने कहा : अल्लाह से डरो यदि तुम ईमानवाले हो।

वे बोले : हम चाहते हैं कि उसमें से खाएँ और दिलों को इतमीनान हो जाए और हम जान लें कि तूने हमसे सच कहा है, और हम उसपर गवाह हों।

मरयम के बेटे ईसा ने कहा : ऐ अल्लाह! हमारे रब! हम पर आसमान से खाने से भरे दस्तरख़ान उतार, कि ये हमारे लिए, हमारे अगलों और पिछलों के लिए ईद (यादगार), और तेरी ओर से एक निशानी हो। हमें रोज़ी दे और तू सबसे अच्छा रोज़ी देनेवाला है।

अल्लाह ने कहा : निश्चय ही मैं उसे (खाने से भरे दस्तरख़ान को) तुमपर उतारनेवाला हूँ, परन्तु इसके बाद जो कोई तुममें कुफ़्र करेगा, तो मैं अवश्य उसे ऐसी यातना दूँगा जो संसार में किसी को न दी होगी।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयतें–112-115)

इस संवाद से यह प्रतीत होता है कि अभी हवारियों का ईमान क्षीण नहीं हुआ था, और चाहते थे कि कोई ऐसा चमत्कार प्रकट हो जिसमें उनका ईमान शक्तिशाली बन जाए, इसलिए उन्होंने आकाश से दस्तरख़ान उतरने का चमत्कार तलब किया।

हाम

हाम उस ऊँट को कहते हैं जिससे दस ऊँटनियाँ गर्भवती हो चुकी हों। ऐसे ऊँट को किसी देवी-देवता के नाम पर छोड़ दिया जाता था। उस पर न सवारी करते, न उसे ज़ब्ह कर के उसका मांस खाते थे। वह ऊँट स्वतंत्र होकर जहाँ चाहता घूमता फिरता। यह इस्लाम से पूर्व अरबों के अन्धविश्वासों में से एक था। क़ुरआन में एक स्थान पर इसी की ओर संकेत किया गया है–

«अल्लाह ने न कोई बहीरा ठहराया है और न सायबा और न वसीला और न हाम। परन्तु इनकार करनेवाले अल्लाह पर मिथ्या आरोप लगाते हैं, और उनमें से अधिकतर बुद्धि से काम नहीं लेते।» (सूरा–5, अल- माइदा, आयत–103)

हुदहुद

यह एक पक्षी है जो अधिकतर फ़िलस्तीन में पाया जाता है। इसकी चोंच लम्बी होती है। चोंच के द्वारा यह अपने भोजन का पता लगाता है। कीड़े-मकोड़े इसका प्रिय भोजन हैं। जिसके कारण मूसा (عليه السلام) के पंथ में इसे खाना हराम है और इस्लाम में इसे अस्वच्छ पक्षियों की श्रेणी में रखा गया है और इसके वध से रोका गया है। हुदहुद के अतिरिक्त तीन अन्य जीव हैं: चींटी, मधुमक्खी, और सुर्द। (देखिए: अबू-दाऊद, 5267; इब्ने-माजा, 3224 तथा अहमद, 3066)

क़ुरआन में हुदहुद का वर्णन केवल एक बार आया है। जैसा कि आप सुलैमान (عليه السلام) के वृत्तान्त में पाएँगे कि अल्लाह ने उनके अधिकार में जिन्न, मनुष्य तथा पक्षियों को दे दिया था। एक बार वे पक्षियों का निरीक्षण कर रहे थे, तो देखा कि हुदहुद अनुपस्थित है। उस समय उन्होंने कहा–

«मैं हुदहुद को नहीं देख रहा हूँ। क्या वास्तव में वह अनुपस्थित है? निश्चय ही, मैं उसे कड़ा दण्ड दूँगा, या उसका वध कर डालूँगा या फिर वह आकर मेरे सामने कोई उचित कारण बताए।» (सूरा–27, अन-नम्ल, आयतें–20,21)

(इसके बाद का वृत्तान्त आप सुलैमान (عليه السلام) के जीवन-चरित्र में पढ़ें।)

हा-मीम

देखें, 'अलिफ़-लाम-मीम'

हाकिम

देखें, 'शासक'

हलाल तथा हराम

इस्लाम धर्म में किसी बात या चीज़ को हलाल या हराम घोषित करने का अधिकार केवल अल्लाह तथा उसके रसूल (ﷺ) को है। इसलिए उन लोगों की कठोर निन्दा की गई है जो बिना ज्ञान के हलाल तथा हराम का फ़तवा देते रहते हैं–

«अपनी ज़बानों के बयान किए हुए झूठ के आधार पर यह न कहो, ''यह हलाल है, और यह हराम है।'' ताकि इसके द्वारा तुम अल्लाह पर झूठ घड़ने लगो। निस्सन्देह जो अल्लाह पर झूठ घड़ते हैं वे सफल नहीं होते।» (सूरा–16, अन-नह्ल, आयत–116)

मक्का के मुशरिकों ने अपने ऊपर कुछ चीज़ें हराम कर ली थीं, जैसे देवी-देवताओं के नाम पर छोड़े गए जानवर, इसपर अल्लाह उनको सम्बोधित करके कहता है–

«कह दो, ''तुम लोगों ने कभी इस पर विचार किया कि जो जीविका अल्लाह ने तुम्हारे लिए उतारी है। उनमें से तुमने स्वयं हराम और हलाल ठहरा ली।'' कहो, ''क्या अल्लाह ने तुम्हें इसकी अनुमति दी है या तुम अल्लाह पर झूठा दोष लगा रहे हो ?''» (सूरा–10, यूनुस, आयत–59)

इसी प्रकार मोमिनों को भी संकेत करते हुए कहा गया है–

«ऐ ईमानवालो ! जो अच्छी पाक चीज़ें अल्लाह ने तुम्हारे लिए हलाल की हैं, उन्हें हराम न करो और सीमोल्लंघन न करो, निस्सन्देह अल्लाह सीमा का उल्लंघन करनेवालों को पसन्द नहीं करता।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–87)

«(अल्लाह ही) उनके लिए शुद्ध चीज़ें हलाल और अशुद्ध चीज़ें हराम करता है।» (सूरा–7, अल-आराफ़, आयत–157)

बल्कि एक स्थान पर तो नबी (ﷺ) को भी सम्बोधित करके कहा गया है–

«ऐ नबी ! जिस चीज़ को अल्लाह ने तुम्हारे लिए हलाल किया है, उसे अपनी पत्नियों को प्रसन्न करने के लिए क्यों हराम करते हो और अल्लाह अत्यन्त क्षमाशील और दयावान है।» (सूरा–66, अत-तहरीम, आयत–1)

इससे ज्ञात हुआ कि जिस चीज़ को अल्लाह ने हलाल कर दिया, उसे नबी (ﷺ) को भी हराम करने का अधिकार नहीं है। क़ुरआन में वर्णित हलाल और हराम की सूची के अतिरिक्त नबी की हदीस में वर्णित हलाल एवं हराम चीज़ें भी मान्य हैं, क्योंकि नबी ने अपनी इच्छा से नहीं बल्कि अल्लाह के आदेश से ही किसी चीज़ को हलाल या हराम ठहराया है।

एक हदीस से भी इस बात की पुष्टि होती है जिसमें नबी (ﷺ) ने फ़रमाया–

''एक समय ऐसा भी आएगा जब कोई व्यक्ति गाव तकिए पर टेक लगाए बैठा होगा और उसको मेरी हदीसें सुनाई जाएँगी तो कहेगा, ''हमारे और तुम्हारे बीच यह अल्लाह की किताब (क़ुरआन) है। जो इसमें हलाल है उसे हम भी हलाल कहेंगे और जो इसमें हराम है हम भी उसे हराम कहेंगे।'' (ऐ लोगो!) सचेत हो जाओ जिसको अल्लाह के रसूल ने हराम किया वह ऐसे ही है जैसे अल्लाह ने हराम किया।'' (देखिए : तिरमिज़ी एवं इब्ने-माजा, 12)

अबू दाऊद 3804; मुस्नद अहमद 4:130 इत्यादि हदीस की किताबों में कुछ उदाहरण भी दिए गए हैं। जैसे कहा गया है–

''सचेत रहो तुम्हारे लिए पालतू गधा हलाल नहीं है। और इसी प्रकार केंचुलीवाले दरिन्दे भी हलाल नहीं हैं। इसी प्रकार मुआहिद (वह ग़ैर-मुस्लिम जो इस्लामी राज्य में आदेश लेकर जाए) की गिरी हुई कोई वस्तु भी तुम्हारे लिए हलाल नहीं है (अर्थात् उसको वापस कर दो)।''

सारांश यह कि नबी (ﷺ) ने हमारे लिए दो चीज़ें छोड़ी हैं। एक अल्लाह की किताब क़ुरआन और दूसरी अपनी सुन्नत। अब इनके अनुसार जो हलाल हैं वे हलाल हैं और उसके अनुसार जो हराम हैं वे हराम हैं। किसी को अधिकार नहीं कि इनके अनुसार जो हलाल हैं उन्हें हराम कर दे या जो हराम हैं उन्हें हलाल कर दे। और मुस्लिम-समुदाय जब तक क़ुरआन और सुन्नत को दृढ़तापूर्वक पकड़े रहेगा, पथ-भ्रष्ट नहीं होगा।

ज्ञ
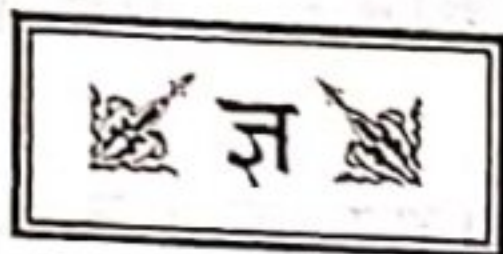
ज्ञानी

अल्लाह के बहुत सारे गुणों में एक गुण अलीम भी है जिसका अनुवाद ज्ञानी किया जा सकता है। इसका अर्थ है कि जो कुछ इस कायनात में होता है अल्लाह सब कुछ जानता है। यहाँ तक कि एक पत्ता भी हिलता है तो उसका ज्ञान भी उसको होता है। क़ुरआन में है –

«अल्लाह से डरो, अल्लाह तुम्हें शिक्षा दे रहा है, और वह हर चीज़ का ज्ञान रखनेवाला है।» (सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-282)

क्योंकि जब वही हर चीज़ का पैदा करनेवाला है तो वह हर चीज़ का ज्ञानी भी है। (देखें सूरा-6 अल-अनआम, आयत-101)

बल्कि उसका ज्ञान तो इतना विस्तृत है कि वह दिलों में छिपी बातों को भी जान लेता है । (देखें सूरा-11 हूद, आयत-5)

जब अल्लाह ईसा (عليه السلام) से कहेगा –

«ऐ ईसा-बिन-मरयम! क्या तूने लोगों से कहा था कि अल्लाह को छोड़कर मुझे और मेरी माँ को पूज्य बना लो ?»

तो ईसा उत्तर देगा –

«महिमावान है तू! मुझसे ऐसा नहीं हो सकता कि ऐसी बात कहूँ जिसका मुझे कुछ भी अधिकार नहीं, यदि मैं यह कहता तो तुझे मालूम हो जाता। तू जानता है जो कुछ मेरे मन में है। जबकि मैं नहीं जानता जो कुछ तेरे मन में है।» (क़ुरआन : सूरा-5, माइदा, आयत-116)

क़ुरआन में बार-बार अल्लाह के गुण (अलीम होने) का वर्णन आया है। और दूसरे सदगुणों की तरह यह उसका (ज़ाती) गुण है, क्योंकि इसके बिना उसकी कल्पना करना असम्भव है।

ईश्वर का ज्ञान अपना और असीम है जबकि हमारा ज्ञान सीमित तथा हमारा अपना नहीं बल्कि सीखा हुआ है। तभी तो हम देखते हैं कि जब बच्चा पैदा होता है तो उसका ज्ञान शून्य होता है–

«अल्लाह ने तुम्हें तुम्हारी माताओं के पेटों से निकाला, तुम कुछ नहीं जानते थे (अर्थात तुम्हारा ज्ञान शून्य था) उसने तुम्हें कान, आँख और दिल दिए, ताकि तुम उसके कृतज्ञ बनो।» (सूरा-16, नह्ल, आयत-78)

अर्थात कान, आँख और दिल ज्ञान सीखने के साधन हैं जिनके द्वारा मनुष्य ज्ञान सीख कर ज्ञानी बन जाता है।

ज्ञान-विज्ञान

कुछ लोगों का विचार है कि धर्म और ज्ञान एक जगह जमा नहीं हो सकते। उनके विचारों में चूँकि धर्म की रूप-रेखा अंधविश्वास पर आधारित है, जहाँ ज्ञान की रौशनी पहुँचकर हलचल मचा देती है, इसलिए धार्मिक पुरुषों ने लोगों के ज्ञान प्राप्त करने पर रोक लगा रखी है। यही वजह थी कि जब यूरोप में ज्ञान की रौशनी फैली तो पोप व्याकुल हो उठे और उन्होंने ईसाई मत को बचाने के लिए विद्वानों की कड़ी आलोचना शुरू कर दी। यहाँ तक कि सैकड़ों वैज्ञानिक फाँसी के तख़्ते पर लटका दिए गए और उनकी मेहनत के फल को आग में डाल दिया गया। जिसके नतीजे में ऐसे विचार फैलने लगे कि धर्म और ज्ञान कभी भी एक स्थान पर जमा नहीं हो सकते और आज फिर इसी विचार को पूरी शक्ति के साथ लोगों में फैलाया जा रहा है।

वैसे जब हम धर्म के इतिहास का अध्ययन करते हैं तो पता चलता है कि बहुत सारे धर्मों की स्थापना अंधविश्वास पर हुई है और धर्म की व्याख्या काल्पनिक बातों से की गई है। इन्हें जब ज्ञान की कसौटी पर रखकर परखा जाता है तो दोनों में बड़ा अन्तर दिखाई पड़ता है। इसलिए कि आज के ज्ञानी प्राचीन काल्पनिक कहानियों पर यक़ीन नहीं रखते। इतिहास के काल्पनिक सूरमाओं पर से उनका विश्वास उठता जा रहा है। धर्म के रस्मो-रिवाज में उनको कोई आकर्षण नहीं दिखाई देता और अब वे पूजा-पाठ से बेज़ार दिखाई देते हैं। उनकी इस हालत ने उनको ईश्वर का बाग़ी बना दिया है।

बीसवीं शताब्दी में यह है धर्म की विकृत अवधारणा। शायद इनसानी बुद्धि की यह अन्तिम पहुँच है, जब वह स्थान और समय की हद पार कर अपने ज्ञान की रौशनी में ही अपने भविष्य को प्रत्यक्ष देखना चाहता है। अब वह धरती पर रहते हुए आकाश की सैर कर रहा है। अब उसका पाँव चाँद के सौन्दर्य को भी रौंदने लगा है। शायद इसी लिए आज के वैज्ञानिक युग में भी कुछ लोग धर्म को केवल कुछ अंधविश्वासों का पुलिन्दा समझने पर तुले हुए हैं, जिसके कारण धर्म का एक ग़लत रूप लोगों के सामने आने लगा है।

इस समय दूसरे धर्मों से हटकर केवल इस्लाम की उन शिक्षाओं का हम अध्ययन करेंगे जिनमें ज्ञान प्राप्त करने पर पूरा-पूरा ज़ोर दिया गया है। इस्लाम में ज्ञानरहित विश्वास को कोई महत्व नहीं दिया गया है। इसको पढ़ते हुए आप आज से चौदह सौ साल पहले का माहौल अपने सामने रखें तो आपको अच्छी तरह मालूम हो जाएगा कि इस्लाम की शिक्षा कितनी वैज्ञानिक और सत्यता पर आधारित है कि उसने ऐसे समय में भी ज्ञान प्राप्त करने की शिक्षा दी जब ज्ञान प्राप्त करने का कोई महत्व नहीं था। जीवन या तो खाने-पीने का नाम था या फिर कुछ बुतों के प्रति अंधविश्वास प्रकट करने का।

क़ुरआन की सबसे पहली आयत जो अल्लाह के पैग़म्बर मुहम्मद (ﷺ) पर अवतरित हुई वह यह थी–

«पढ़! अपने पालनहार का नाम लेकर, जिसने पैदा किया। पैदा किया इनसान को जमे हुए ख़ून के एक लोथड़े से। पढ़ और तेरा पालनहार बड़ा ही उदार है, जिसने ज्ञान सिखाया क़लम के द्वारा, ज्ञान दिया इनसान को उस चीज़ का जिसको वह नहीं जानता था।» (सूरा–96, अल-अलक़, आयतें–1-5)

इन आयतों पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि इस्लाम शिक्षा पर कितना बल देता है, जिसकी पहली पुकार ही ज्ञान प्राप्त करने से सम्बन्ध रखती है और सही बात तो यह है कि जिस धर्म का आरम्भ ही शिक्षा और ज्ञान से हो, उसका भविष्य कितना अधिक ज्ञानपूर्ण होगा।

आगे के पृष्ठों में सिद्ध किया जाएगा कि क़ुरआन कितना वैज्ञानिक ग्रंथ है जिसमें ज्ञान का एक ऐसा भण्डार है कि उसपर जितना भी विचार किया जाए कम है।

❋ शिक्षा प्राप्त करने की प्रेरणा

क़ुरआन कहता है–

«ऐसा क्यों न हुआ कि उनके हर गरोह में से एक टोली निकलती ताकि वे धर्म में समझ पैदा करते और वे अपने लोगों को होशियार करते, जबकि वे उनकी ओर पलटते। इस तरह शायद वे बुरे कामों से बच जाते।» (सूरा–9, अत-तौबा, आयत–122)

क़ुरआन की यह एक आयत उन सब आरोपों को झुठलाने के लिए काफ़ी है जो इस्लाम पर ज्ञान और विज्ञान के बारे में लगाए जाते हैं। अगर इस्लाम ज्ञान और विज्ञान के विरुद्ध होता तो क़ुरआन इस तरह पुकारकर न कहता कि ऐ लोगो! अपने घरों से शिक्षा प्राप्त करने के लिए निकलो, ताकि संसार को सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म और अच्छे-बुरे कर्मों से सचेत कर सको।

आज सारा संसार ज़ुल्म की आग में झुलस रहा है, जबकि इनसान धरती पर रहते हुए आकाश का स्वप्न देखने लगा है। मगर जिस सुख-चैन के लिए उसने अपनी पूँजी ख़र्च कर डाली है वह उसको अब तक प्राप्त नहीं हुआ। इसलिए कि वह अपने सत्य-मार्ग से मुँह मोड़कर किसी और रास्ते पर चल पड़ा है। उसकी शिक्षा का उद्देश्य था कि संसार की सही रहनुमाई और मार्गदर्शन करे, परन्तु आज वह एटम बम बनाकर उसको ग़लत जगह इस्तेमाल कर रहा है और अपनी ताक़त को इनसानों की भलाई के बजाए उसे नष्ट-विनष्ट करने में लगा हुआ है। परन्तु वह शिक्षा जो इनसान को इनसान बनाने के लिए प्राप्त की जाए इस्लाम उसके विरुद्ध कभी नहीं रहा, और न रहेगा।

आपको आश्चर्य होगा कि क़ुरआन अपने नबी को सम्बोधित करके कहता है–

«अतः जान रखो कि अल्लाह के अलावा और कोई इबादत के योग्य नहीं।» (सूरा–47, मुहम्मद, आयत–19)

इसमें इस बात की तरफ़ इशारा है कि ईश्वर की प्रार्थना और इबादत उस समय तक सही नहीं होगी जब तक पुजारी को यह न मालूम हो जाए कि उपासना के योग्य तो केवल ईश्वर ही है। दूसरे शब्दों में, यह कह सकते हैं कि उपासक को चाहिए कि उपासना करने से पहले अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त कर ले। कहीं ऐसा न हो कि अज्ञान में वह किसी और की उपासना कर बैठे।

इसमें उन लोगों के लिए चेतावनी है जो धर्म को केवल अंधविश्वासों का योग समझते हैं और उसकी वास्तविकता से अच्छी तरह परिचित होने की चेष्टा नहीं करते। हो सकता है कि उनका यह दृष्टिकोण दूसरे धर्मों के बारे में सत्य हो, परन्तु इस्लाम इसके बिलकुल विपरीत है।

इस बात को कुछ और स्पष्ट रूप से समझने के लिए मुहम्मद (ﷺ) की कुछ पवित्र शिक्षाओं का सारांश यहाँ बयान किया जा रहा है ताकि इस्लाम में शिक्षा के महत्व को भली-भाँति समझा जा सके।

क़ैस-बिन-क़सीर कहते हैं कि एक बार मैं अबू-दरदा के साथ दमिश्क़ की मस्जिद में बैठा था कि एक आदमी आया और कहने लगा, "ऐ अबू-दरदा! मैं मदीना से आपके पास इसलिए आया हूँ कि मुझे ख़बर मिली है कि आप मुहम्मद (ﷺ) की हदीस बयान करते हैं।"

अबू-दरदा ने फ़रमाया मैंने अल्लाह के रसूल (ﷺ) से सुना है कि आप फ़रमाते थे–

"जो व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करने के लिए रास्ता तय करके आगे बढ़ता है उसके रास्ते में फ़रिश्ते पर (पंख) बिछाते हैं और ईश्वर उसके रास्ते को आसान कर देता है।" (इब्ने-माजा 226)

अनस (ﷺ) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने फ़रमाया–

"जो व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करने के लिए निकलता है वह अल्लाह के रास्ते में है, यहाँ तक कि वापस आ जाए।" (तिरमिज़ी 2647)

अब्दुल्लाह बिन अब्बास (ﷺ) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने फ़रमाया –

"जिसके साथ अल्लाह भलाई करना चाहता है उसको धर्म में सूझबूझ प्रदान कर देता है।"

अबू-दरदा कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) का उपदेश है कि –

"शिक्षित व्यक्ति की विशेषता उपासक पर उसी प्रकार है जिस प्रकार चौदहवीं के चाँद की विशेषता सारे सितारों पर। और शिक्षित लोग नबियों के वारिस हैं और नबी दीनार तथा दिरहम नहीं छोड़कर जाते, बल्कि वे शिक्षा और ज्ञान छोड़ते हैं, इसलिए जिसने शिक्षा ग्रहण की उसने बहुत बड़ा भाग्य प्राप्त किया।" (अबू दाऊद 3641 तथा इब्ने-माजा 223)

अबू हुरैरा कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने फ़रमाया–

"ज्ञान की बात मोमिन की खोई हुई सम्पत्ति है। इसलिए वह उसको जहाँ भी पाए उसका वही हक़दार है।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

ये तो कुछ वे हदीसें हुईं जो शिक्षा प्राप्त करने पर उभारती हैं। अब आइए कुछ ऐसी हदीसों का भी अध्ययन करें जो ज्ञान छिपाने और उसको दूसरों तक न पहुँचाने पर कड़ी आलोचना करती हैं। इस प्रकार हमको मालूम होता है कि इस्लाम शिक्षा प्राप्त करने पर किस तरह उभारता है। दूसरे शब्दों में इस्लाम कितना वैज्ञानिक धर्म है।

❋ ज्ञान छिपानेवालों की कड़ी आलोचना

शिक्षा की इसी विशेषता के कारण क़ुरआन उन लोगों की कड़ी आलोचना करता है जो ज्ञान रखते हुए भी उसको दूसरों से छिपाते हैं और उसको समाज में फैलाने की कोशिश नहीं करते ताकि और लोग उससे लाभ उठा सकें, इससे यह बात भली-भाँति स्पष्ट हो जाती है कि इस्लाम में शिक्षा का कितना महत्त्व है।

आइए, क़ुरआन की कुछ ऐसी आयतों का भी अध्ययन करें जो ज्ञान छिपानेवालों की कड़ी आलोचना करती हैं–

«उससे बढ़कर अत्याचारी कौन होगा जिसके पास ईश्वर की ओर से गवाही हो और वह उसे छिपाए।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–140)

गवाही का अर्थ इस्लामी धर्म-गुरू यह लेते हैं कि यहूदियों और ईसाइयों की किताबों में मुहम्मद (ﷺ) के आने की ख़बर दी गई थी, परन्तु उन्होंने इसको छिपा दिया और नबी (ﷺ) ने अपने नबी होने का दावा किया तो उन्होंने उसको ठुकरा दिया। हिन्दू धर्म के ग्रन्थ वेद और पुराणों में भी मुहम्मद (ﷺ) के आने की सूचना दी गई है। इसके कुछ नमूने यहाँ पेश करते हैं।

"एक-दूसरे देश में एक आचार्य अपने मित्रों के साथ आएंगे उनका नाम महामद होगा, वे रेगिस्तानी क्षेत्र में आएंगे।" (भविष्य पुराण अ. 323 सू. 5/8)

इस श्लोक और सूत्र में स्पष्ट रूप से नाम और स्थान के संकेत हैं। आनेवाले पुरुष की अन्य निशानियाँ इस प्रकार बयान हुई हैं–

"पैदाइशी तौर पर उनका ख़तना किया हुआ होगा, उनके जटा नहीं होगी, वे दाढ़ी रखे हुए होंगे, गोश्त खाएँगे, अपना संदेश स्पष्ट शब्दों में ज़ोरदार तरीक़े से प्रसारित करेंगे, अपने संदेश के माननेवालों को मूसलाई नाम से पुकारेंगे।"

इस श्लोक को ध्यानपूर्वक देखिए। ख़तने का रिवाज हिन्दुओं में नहीं था। जटा यहाँ का धार्मिक निशान था। आनेवाले महान पुरुष अर्थात् मुहम्मद (ﷺ) के अन्दर ये सभी बातें पाई जाती हैं। फिर इस संदेश के माननेवालों के लिए मूसलाई का नाम है। यह शब्द मुस्लिम और मुसलमान की ओर संकेत करता है।

अथर्ववेद अध्याय 20 में निम्नलिखित श्लोक देख सकते हैं–

"हे भक्तो! इसको ध्यान से सुनो, प्रशंसा किया गया, प्रशंसा किया जानेवाला वह महामहे महान ऋषि साठ हज़ार नव्वे लोगों के बीच आएगा।"

मुहम्मद का अर्थ है, जिसकी प्रशंसा की गई हो। आप (ﷺ) की पैदाइश के समय मक्का की आबादी साठ हज़ार थी।

क़ुरआन मजीद नबी (ﷺ)को 'जगत् के लिए रहमत' के नाम से याद करता है। ऋग्वेद में भी है–

"रहमत का नाम पानेवाला, प्रशंसा किया हुआ दस हज़ार साथियों के साथ आएगा।" (मंत्र 5/27/1)

इसी तरह वेद में महामहे और महामद के नाम से भी मुहम्मद (ﷺ) के आगमन का उल्लेख है।

यह अर्थ अपने स्थान पर सही है मगर आप इसको और भी विस्तृत कीजिए और उसमें हर उस गवाही को शामिल कर लीजिए जो अल्लाह ने आपको सौंपी है, चाहे वह शिक्षा हो या किसी विशेष वस्तु का ज्ञान जो मानव-समाज के लिए लाभदायक हो। क़ुरआन में है –

«सत्य को असत्य से गड-मड न करो और जानते-बूझते सत्य को न छिपाओ।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–42)

«रसूल पर पहुँचा देने के अलावा और कोई ज़िम्मेदारी नहीं, और अल्लाह सब जानता है जो कुछ तुम खुले करते हो और जो छिपाते हो।» (सूरा–5, अल-माइदा, आयत–99)

«याद करो जब अल्लाह ने उन लोगों से, जिन्हें किताब दी गई थी, यह पक्का वादा लिया कि तुम इस किताब को लोगों के सामने भली-भाँति स्पष्ट करोगे और छिपाओगे नहीं तो उन्होंने उसे पीठ पीछे डाल दिया और थोड़े मूल्य पर उसका सौदा किया तो क्या ही बुरा सौदा है जो ये करते हैं।» (सूरा–3, आले-इमरान, आयत–187)

इन आयतों से यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है कि पिछली जातियों ने अल्लाह की ओर से दी गई किताब को लोगों से छिपाए रखा और उसको भली-भाँति उन तक नहीं पहुँचाया और यह एक प्रकार का बहुत बड़ा अत्याचार है, क्योंकि यह किताब ज्ञान का भंडार थी उसको छिपानेवाला बहुत बड़ा अत्याचारी और धर्म-विरोधी व्यक्ति है। क़ुरआन में है–

«निस्सन्देह जो लोग हमारी उतारी हुई खुली-खुली निशानियों और मार्गदर्शन को छिपाते हैं, जबकि हम उसे लोगों की रहनुमाई के लिए अपनी किताब में खोलकर बयान कर चुके हैं, वही हैं जिनपर अल्लाह की फटकार पड़ती है और फटकारनेवाले जिन्हें फटकारते हैं।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–159)

«निस्सन्देह जो लोग उस चीज़ को छिपाते हैं जो अल्लाह ने अपनी किताब में उतारी है, और उसके बदले थोड़ा मूल्य प्राप्त करते हैं, वे अपने पेट में आग के सिवा किसी और चीज़ को नहीं भर रहे हैं और क़ियामत के दिन न तो अल्लाह उनसे बात करेगा और न उन्हें पाक करेगा। उनके लिए दुखदायिनी यातना है।» (सूरा–2, अल-बक़रा, आयत–174)

ये वे कुछ आयतें हैं जो ज्ञान छिपानेवालों पर कड़ी आलोचना करती हैं, इनसे भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि इस्लाम में शिक्षा का कितना महत्त्व है। अब आइए अल्लाह के रसूल (ﷺ) के कथनों की रौशनी में इस बात को और स्पष्ट कर दें। अबू-हुरैरा (ؓ) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने फ़रमाया–

"जिससे कोई ज्ञान की बात पूछी गई हो और वह उसको जानता हो, मगर उसने उसे छिपा दिया, उसे प्रलय के दिन आग की लगाम लगाई जाएगी।" (अबू-दाऊद 3658, तिरमिज़ी 2649, इब्ने-माजा 261)

इस हदीस में उन लोगों की कड़ी आलोचना की गई है जो ज्ञान रखते हुए भी उसको लोगों तक नहीं पहुँचाते जिसके कारण वह ज्ञान कुछ लोगों तक ही सीमित रह जाता है। उसका लाभ दूसरों को नहीं पहुँचता, क्योंकि दूसरों तक ज्ञान पहुँचाने में उसकी बढ़ोत्तरी हैं और अपने तक रख लेना उसके लिए नुक़सान है। यह भी हो सकता है कि ज्ञान जिसे दूसरे तक पहुँचाया गया है, वह उससे अधिक समझ रखनेवाला हो और उसके द्वारा अधिक फ़ायदा उठाए जैसा कि एक दूसरी हदीस में आया है–

अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (ﷺ) का कहना है कि मैंने अल्लाह के रसूल (ﷺ) को यह कहते हुए सुना–

"अल्लाह उस बन्दे को ख़ुश रखे जिसने मेरी बात सुनी, उसे याद रखा और ठीक रूप में लोगों तक पहुँचाया। क्योंकि प्राय: ऐसा होता है कि समझ और विवेक की बात का पहुँचानेवाला स्वयं उतना ज़्यादा समझदार नहीं होता और ऐसा भी होता है कि समझ और विवेक की बात का पहुँचानेवाला ऐसे व्यक्ति तक बात पहुँचा देता है जो कि उससे कहीं ज़्यादा विवेकशील होता है।" (तिरमिज़ी 2658 तथा इब्ने-माजा 232)

इस हदीस में जिस बात की ओर इशारा किया गया है वह यह है कि ज्ञानवालों को ज्ञान छिपाना नहीं चाहिए। इसकी वजह से पूरे समाज का नुक़सान होता है, क्योंकि ज्ञान धारक प्राय: अपने ज्ञान का लाभ नहीं समझता। इसलिए अगर वह दूसरों तक वह ज्ञान पहुँचा देता है तो दूसरे उससे इच्छानुसार लाभ उठा सकते हैं, क्योंकि ईश्वर ने प्रत्येक व्यक्ति में यह सलाहियत नहीं रखी है कि अच्छी बातों को समाज में लागू कर सके।

इसलिए इस हदीस में एक प्रकार से उन लोगों की आलोचना है जो ज्ञान को दूसरों तक नहीं पहुँचाते।

हाँ, इतनी बात ज़रूर याद रखनी चाहिए कि ज्ञान पहुँचाते हुए उस व्यक्ति को भी अच्छी तरह देख लेना चाहिए, जिसको ज्ञान पहुँचाया जा रहा है कि कहीं वह उस ज्ञान के कारण फ़ितने में न पड़ जाए जैसा कि एक हदीस में आया है–

अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद से उल्लिखित है कि उन्होंने कहा–

"लोगों को हदीस सुनाते समय उनकी समझ-बूझ का ख़्याल रखो। कहीं ऐसा न हो कि तुम उनको ऐसी बातें बता दो जो उनकी समझ से ऊँची हों और उनके कारण कोई फ़ितना पैदा हो जाए।" (सहीह मुस्लिम)

यद्यपि यह नबी (ﷺ) की हदीस नहीं है, परन्तु इससे यह बात भली प्रकार स्पष्ट होती है कि हदीस बयान करते समय लोगों की समझ-बूझ का सदैव ख़्याल रखा जाना चाहिए।

यह जो कुछ मैंने बताया है इसका सम्बन्ध इस्लामी शिक्षाओं से है। रही वे शिक्षाएँ जिनका सम्बन्ध हमारे सामाजिक जीवन से है तो क़ुरआन ने इस विषय में बड़ी चेतावनी दी है, यहाँ तक कि उन लोगों को कि जो अपनी अक़्ल को भली-भाँति प्रयोग नहीं करते, पशुओं के समान बताया है–

«उनके पास दिल हैं परन्तु वे उनसे समझते नहीं, और उनके पास आँखें हैं परन्तु वे उनसे देखते नहीं, और उनके पास कान हैं परन्तु वे उनसे सुनते नहीं। वे तो पशुओं की तरह हैं, बल्कि ऐसे लोग तो उनसे भी अधिक गुमराह हैं। यही वे लोग हैं जो ग़फ़लत में पड़े हुए हैं।» (सूरा–7, आराफ़, आयत-179)

इससे बढ़कर उन लोगों की निन्दा और क्या हो सकती है जो अक़्ल रखते हुए भी मानव-समाज की भलाई सोचने के लिए तैयार नहीं हैं, जिसके कारण वे क़ियामत के दिन अपने इस गुनाह को स्वीकार करेंगे और कहेंगे –

«यदि हम सुनते होते, या बुद्धि से काम लेते तो हम दहकती आग में पड़नेवालों में न होते।» (सूरा–67, अल-मुल्क, आयत-10)

इसलिए अल्लाह ने मनुष्य को बार-बार अपने सामने फैले हुऐ ब्रह्माण्ड को देखने, विचारने, तथा उस पर ध्यान देने की चेतावनी दी है ताकि वे इस पृथ्वी को नष्ट करने के बजाय उसको आबाद करें। इसलिए हम पूरे विश्वास के साथ यह कह सकते हैं कि नई साइंस के द्वारा जो तरक़्क़ी मनुष्य की भलाई के लिए हुई है इस्लाम उसको स्वीकार करता है, और इस्लाम ही एक ऐसा धर्म है जो साइंस की उन्नति में रुकावट नहीं डालता बल्कि ज्ञान को असीमित बताता है ताकि और अधिक प्रयत्न किया जाए। परन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं कि हम इनसान की हर शिक्षा को आँख बन्द करके ग्रहण कर लेंगे। बल्कि पहले हम उसे इस्लाम की कसौटी पर परखेंगे जो उसके विरुद्ध होगी उसको छोड़ देंगे।

अत: हम इस तरह की शिक्षाओं को कदापि स्वीकार नहीं करेंगे।

संक्षेप में यह कि आप क़ुरआन पर एक नज़र डालकर देखें तो इसमें बहुमूल्य हीरे आपको मिलेंगे, जिसका अगर विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाए तो संसार के सारे काग़ज़ और रोशनाई समाप्त हो जाए, फिर भी उनकी तह तक मनुष्य नहीं पहुँच सकता। इसी की ओर क़ुरआन संकेत करता है –

«धरती में जितने वृक्ष हैं, यदि वे क़लम हो जाएँ और यह समुद्र उसकी स्याही हो जाए, उसके बाद सात और समुद्र हों तब भी अल्लाह के बोल समाप्त न हो सकेंगे। निश्चय ही अल्लाह प्रभुत्त्वशाली और तत्त्वदर्शी है।» (सूरा–31, लुक़मान, आयत–27)

❀ ❀ ❀

القاموس الموضوعي
للقرآن الكريم

تأليف

الدكتور محمد ضياء الرحمن الأعظمي

أستاذ الحديث وعميد كلية الحديث سابقاً

الجامعة الإسلامية بالمدينة المنورة

(١٤٢٩هـ - ٢٠٠٨م)

بسم الله الرحمن الرحيم

الحمد لله ربّ العالمين، والصّلاة والسّلام على رسوله الكريم، وعلى آله وأصحابه أجمعين.

أما بعد:

فإنّ القرآن الكريم يشتمل على علوم شتى من عقيدة وشريعة، وقصص الأنبياء والرسل، وتاريخ الأمم والملوك، وغيرها من الموضوعات.

وقد ظهرت تراجم معاني القرآن الكريم باللغات الأجنبية بلغ عددها أكثر من مائة وعشرين لغة حسب الإحصاء في القرن الماضي، فاقتضت الحاجة إلى وضع قاموس للقرآن الكريم لتسهيل فهمه لغير المتخصصين فيه، وخاصة غير المسلمين الذين تقلّ ـ أو تنعدم ـ ثقافتهم عن القرآن، وتعاليم الإسلام، وسيرة النبيّ عليه الصّلاة والسّلام.

وإنّي أحمد الله سبحانه وتعالى الذي وفقني لإتمام هذا القاموس مبتدئاً باللغة الهندية، آمل أن يترجم إلى جميع اللغات التي ترجم فيها معاني القرآن الكريم ليسهل على قرائها فهم القرآن ومقاصده.

وإني على علم بأنه ظهرت عدّة قواميس للقرآن الكريم باللغات الأجنبية في الدول الأوربية إلا أنها كانت بأقلام غير المسلمين من اليهود والنصارى والقاديانيين والبهائيين والمنتسبين إلى الفرق الضالة من الفرق المبتدعة والمشبوهين الذين قصدهم تحريف معاني القرآن، وتشويه صورة الإسلام، والتشكيك في سيرة سيد الأنام عليه الصلاة والسلام، ولذا قد يكون هذا القاموس هو أول من نوعه ألّف بقلم مسلم معتمداً على الكتاب والسنة الصحيحة وأقوال الصحابة والتابعين والأئمة المجتهدين ومن سلك مسالكهم

من دون تحريف ولا تعطيل ولا تأويل، والحمد لله رب العالمين، وأسأله سبحانه وتعالى أن يتقبّل مني هذا الجهد المتواضع، ويجعله خالصاً لوجهه الكريم، داعياً الله سبحانه وتعالى لي التوفيق والسداد ولقرّائه الهداية إلى الصراط المستقيم.

وصلى الله على نبيّنا محمد وعلى آله وأصحابه أجمعين.

التاريخ ٢٥/ ٢/ ١٤٣٠ هـ.

المؤلف عفا الله عنه

المدينة المنورة

الهدف الأساسي من تأليف هذا القاموس وبيان منهجه

إنّ الهدف الذي من أجله ألّفتُ هذا القاموس هو بالدّرجة الأولى تعريف غير المسلمين بالقرآن الكريم لأسباب من أهمِّها:

١- إنَّ القرآن الكريم كتاب الله لخلقه أجمعين، وهو لا يخاطب فئة معيّنة من النّاس، وإنّما يخاطب الناس جميعاً على اختلاف طبقاتهم الدنيوية، ومشاربهم الدِّينية؛ ولذا أرسل الله رسوله محمداً ﷺ بشيراً ونذيراً للناس أجمعين، وجعله رحمة للعالمين، كما قال الله تعالى ﴿ قُلْ يَٰٓأَيُّهَا ٱلنَّاسُ إِنِّى رَسُولُ ٱللَّهِ إِلَيْكُمْ جَمِيعًا ﴾ [الأعراف: ١٥٨]، وقال: ﴿ وَمَآ أَرْسَلْنَٰكَ إِلَّا رَحْمَةً لِّلْعَٰلَمِينَ ﴾ [الأنبياء: ١٠٧].

٢- لقد رأينا في زماننا هذا توجيه التُّهم الباطلة إلى الإسلام وتشويه تعاليم القرآن وتحريف معانيه وإظهار الحسد والبغض لسيد البشر نبيّنا ﷺ، كلُّ ذلك لنشر الكراهيّة بين الأمم ضد الإسلام والمسلمين، وذلك من خلال القنوات الفضائيّة والمجلات والصُّحف والأفلام السينمائيّة، والقواميس القرآنية التي وضعوها باللغات الأجنبية إلى غير ذلك من الوسائل.

٣- تصحيح الصورة المغلوطة عن الإسلام لدى كثير من غير المسلمين بأسلوب علمي، ودعوتهم إلى التعايش السلمي القائم على العدالة والمساواة، واحترام حقوق الآخرين على ضوء ما يدعو إليه القرآن الكريم، وفتح الحوار بين أصحاب الديانات الأخرى، لأننا لا نستطيع أن نعيش بمعزل عن العالم في ظل التحديات الجديدة على أن يكون التمثيل من جانب المسلمين من يدرك تاريخ الديانات الأخرى

ومعتقدات أصحابها إدراكاً تاماً، علاوة على تمكنه من علوم القرآن والسنة النبوية، لأن التمثيل الهزيل ضرره أكثر من نفعه.

فرأيت من واجبي أن أقوم بتأليف هذا القاموس لدعوة هؤلاء وغيرهم إلى الإسلام الصحيح، مخاطباً إياهم بلغتهم وعلى قدر عقولهم؛ ولذا قد أحتاج إلى شرح ما هو معروف لدى المسلمين مثل الركوع والسجود والتكبير والتسبيح وغير ذلك وبيان معانيها وحكمها.

وأمّا المنهج الذي سرتُ عليه فهو عرض دعوة القرآن كما جاء فيه مستعيناً في ذلك بالآيات القرآنية والأحاديث النبوية الصحيحة وأقوال السلف من الصحابة والتابعين ومن سلك مسلكهم بعيداً عن الخوض في المسائل المختلف فيها بين المسلمين؛ ولذا لم أتعرَّض للمناقشات والمناظرات التي توجد في كتب العقيدة والفقه وغيرها، وإنما كنتُ ركّزتُ على عرض المسائل بأسلوب علميّ ودعويّ مع بيان حِكَمها على ضوء الإعجاز البياني كما جاء في القرآن الكريم والأحاديث النبويّة.

واما الموضوعات التي تطرّقت إليها فهي ما يلي بالإيجاز:

١ - شرح العقائد الوارد ذكرها في القرآن الكريم والأحاديث النبوية الصحيحة مثل الإيمان بالله، والإيمان بالملائكة، والإيمان بالرسل، والإيمان بالكتب، والإيمان باليوم الآخر، والإيمان بالقدر خيره وشرّه، والإيمان بصفة الجنّة والنار وغيرها من الأمور الغيبية.

٢ - التحذير من الشرك والابتداع وعبادة الأصنام ومساوئ الأخلاق وما يترتب عليها من الأحكام في الدنيا والآخرة.

٣- شرح الأحكام الوارد ذكرها في القرآن الكريم مثل الصلاة والزكاة والصوم والحج والنكاح والطلاق والمعاملات وغيرها.

٤- عرض تاريخ الأنبياء، وسيرهم العطرة، ودعوتهم، وما لقوا من أقوامهم من الأذى والمصائب.

٥- عرض تاريخ الملوك والأشخاص الوارد ذكرهم في القرآن الكريم، وبيان الهدف من ذلك.

٦- ذكر الأقوام والأمم وأيام الله وآياته، وما خلص منها من العظة والعبرة.

٧- التعريف بالحيوانات والجمادات والأقطار والمدن الوارد ذكرها في القرآن الكريم مع بيان الحكم فيها.

٨- تهذيب الأخلاق من الإحسان والبر والصلة، وإزالة الأذى عن الطريق، وبيان كون النبي ﷺ بعث رحمة للعالمين حتى للبهائم.

ورتبتُ هذه الموضوعات على حروف الهجاء، فتجد - مثلاً -:

في حرف الألف: الله، إبراهيم، إلياس، أيوب، إسماعيل، إنسان، الإيمان، الآخرة، ألواح، أهل الكتاب، إطعام الطعام، وغيرها من الموضوعات.

وفي حرف الباء: البرزخ، بابل، البعث، البر، بقرة، بكة، بصل، البيع، البيت العتيق، بنو إسرائيل، البخل، وغيرها.

وفي حرف التاء: التقوى، تبّع، التين، التوبة، التابوت، التحريف، وغيرها، هكذا إلى حرف الياء.

وسميتُه بـ «**القاموس الموضوعي للقرآن الكريم**». وهذا بمعنى «**دائرة المعارف للقرآن الكريم**».

وقد بلغت هذه الموضوعات ما يزيد على ثلاثمائة موضوع، والبحث لا يزال جارياً في استخراج مزيد من الموضوعات؛ لأنّ القرآن الكريم بحر في شموله لا يدرك قعره.

وبهذا أرجو أني قمتُ ببعض ما يجبُ عليّ - والحمد لله - إزاء هذا الكتاب الكريم الذي ﴿ لَّا يَأْتِيهِ ٱلْبَٰطِلُ مِنۢ بَيْنِ يَدَيْهِ وَلَا مِنْ خَلْفِهِۦ ۖ تَنزِيلٌ مِّنْ حَكِيمٍ حَمِيدٍ ﴾.

وآمل أن نشر هذا القاموس وترجمته إلى اللغات العالمية الأخرى، وتوزيعه على أساتذة الجامعات والمثقفين والبرلمانيين وغيرهم سوف يزيل - بإذن الله - كثيراً من المفاهيم الخاطئة المنسوبة إلى الإسلام ويدعوهم إلى اعتناق هذا الدين الحنيف، وهذه هي الغاية من تأليف هذا القاموس. طالباً من الله تعالى العون والتوفيق، وسائلاً منه أن يجعل هذا العمل خالصاً لوجهه الكريم، فإنه نعم المولى نعم النصير، والحمد لله ربّ العالمين، وصلّى الله على نبيّنا محمّدٍ وعلى آله وأصحابه أجمعين.

المؤلف عفا الله عنه

❀ ❀ ❀